ॐ

परमात्मने नमः

प्रवचनसार प्रवचन

(भाग-1)

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत
श्री प्रवचनसार परमागम पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईस्वी सन् 1968-69 वर्ष के शब्दशः धारावाही प्रवचन।
(गाथा 1 से 38)

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत 2080 | **वीर संवत 2550** | **ई. सन 2024**

—: प्रकाशन :—

आध्यात्मिक सन्त पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की 135वीं जन्मजयन्ती के अवसर पर

वैशाख शुक्ल 2, दिनांक 09 मई 2024

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250 फोन : 02846–244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई–400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

विवेक कम्प्यूटर

अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी।
मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं॥

उपरोक्त मंगलाचरण में शासननायक महावीरस्वामी के बाद श्री गौतम गणधर को नमस्कार करके जिन्हें तीसरे नम्बर में नमस्कार किया गया है, ऐसे भरतक्षेत्र के समर्थ आचार्य श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव वर्तमान जैनशासन के शासनस्तम्भ हैं, जिन्होंने मूल मोक्षमार्ग को शास्त्रों में जीवन्त रखकर अनेकानेक भव्य जीवों पर असीम उपकार किया है। साम्प्रत जैनसमाज श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य से सुचारूरूप से परिचित है ही। तथापि उनके प्रति भक्ति से प्रेरित होकर उनके प्रति उपकार व्यक्त किये बिना नहीं रहा जा सकता है। श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत पंच परमागमों में 'प्रवचनसार' शास्त्र 'द्वितीय श्रुतस्कन्ध' के सर्वोत्कृष्ट आगमों में से एक है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की महिमा दर्शाते हुए अनेक शिलालेख आज भी विद्यमान हैं। उनके लिखे हुए शास्त्र साक्षात् गणधरदेव के वचनों जितने ही प्रमाणभूत माने जाते हैं।

महाविदेक्षेत्र में विद्यमान त्रिलोकनाथ वीतराग सर्वज्ञ परमदेवाधिदेव श्री सीमन्धर भगवान की प्रत्यक्ष दिव्य देशना सुनकर भरत में आकर भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने अनेक शास्त्रों की रचना की है। जिनशासन के अनेक मुख्य सिद्धान्तों के बीज इस 'प्रवचनसार' शास्त्र में विद्यमान हैं। अत: यह प्रवचनसार ग्रन्थ है, वह भगवान श्री सीमन्धरस्वामी के दिव्य सन्देश ही है। तीन विभाग में विभाजित हुए इस ग्रन्थ में वस्तुस्वरूप को समझाते हुए मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है। जो मुमुक्षु जीव को महामिथ्यात्वरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिये दिव्य प्रकाश समान ही है।

महामिथ्यात्व से प्रभावित इस दुषमकाल में ऐसे सर्वोत्कृष्ट परमागमों के सिद्धान्त समझने का अज्ञानी जीवों का कहाँ सामर्थ्य था? परन्तु भरतक्षेत्र के अहोभाग्य से तथा भव्य जीवों को तारने के लिये, इस मिथ्यात्व के घोर तिमिर को नष्ट करने के लिये एक दिव्य प्रकाश हुआ! वह हैं कहान गुरुदेव!! पूज्य गुरुदेवश्री इस काल का एक अजोड़ रत्न हैं! जिन्होंने स्वयं की ज्ञानप्रभा द्वारा गूढ़ परमागमों के रहस्यों को प्रकाशित किया। जिनके घर में आगम उपलब्ध थे, उन्हें भी आगमों को

रहस्य उद्घाटन की शक्ति नहीं थी, ऐसे इस दुषमकाल में पूज्य गुरुदेवश्री के परम प्रभावनायोग से घर-घर में मूलभूत परमागमों के स्वाध्याय की प्रणाली शुरु हुई। द्रव्य, गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त इत्यादि अनेकानेक वस्तुस्वरूप को स्पष्ट करते हुए सिद्धान्तों को पूज्य गुरुदेवश्री ने प्रकाशित किया। प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन के वचनानुसार 'पूज्य गुरुदेवश्री इस काल का एक अचम्भा ही है। पूज्य गुरुदेवश्री को श्रुत की लब्धि थी। पंचम काल में निरन्तर अमृतझरती गुरुदेव की वाणी भगवान का विरह भुलाती है।' इत्यादि अनेकानेक बहुमानसूचक वाक्य पूज्य गुरुदेवश्री की असाधारण प्रतिभा को व्यक्त करते हैं। ऐसे भवदधितारणहार, निष्कारण करुणाशील, अध्यात्ममूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक मूल परमागमों पर प्रवचन प्रदान कर दिव्य अमृतधारा बरसायी है।

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों को अक्षरशः प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त होना, वह इस मनुष्य जीवन का अमूल्य आनन्दसभर अवसर है। प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री प्रवचनसार परमागम पर, ई.स. 1968-69 में हुए प्रवचनों को अक्षरशः प्रकाशित किया गया है। प्रस्तुत प्रथम भाग में ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन की 1 से 38 गाथा तक हुए 33 प्रवचनों को समाविष्ट किया गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ऑडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झबेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस महान कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उनके आभारी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की उपलब्धता सी.डी., डी.वी.डी, तथा वेबसाईट (www.vitragvani.com) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा की गयी है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की ऐसी भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का अधिकाधिक लाभ सामान्यजन प्राप्त करें कि जिससे यह वाणी शाश्वत् बनी रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ़ हों, ऐसी भावना के फलस्वरूप यह प्रवचन प्रकाशित किये जा रहे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन के करकमल में सादर समर्पित करते हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्यरचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर और ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य गुजराती भाषा में पूजा इम्प्रेशन्स द्वारा किया गया है। गुजराती प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्री

सुधीरभाई शाह, सूरत तथा श्री अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा किया गया है। प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राज.) द्वारा किया गया है। इस प्रसंग पर ट्रस्ट सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करता है। जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा उत्तरदायित्व पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक तथा उपयोगपूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशन कार्य में प्रमादवश अथवा आजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र के प्रति क्षमायाचना करते हैं। ट्रस्ट, मुमुक्षुजनों से विनती करता है कि यदि कोई अशुद्धि उनके ख्याल में आये तो ट्रस्ट को प्रेषित करे, जिससे आगामी संस्करण में समुचित संशोधन हो सके। प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ www.vitragvani.com तथा vitragvani एप पर उपलब्ध है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधे, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं। इति शुभम्।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विले पार्ला, मुम्बई

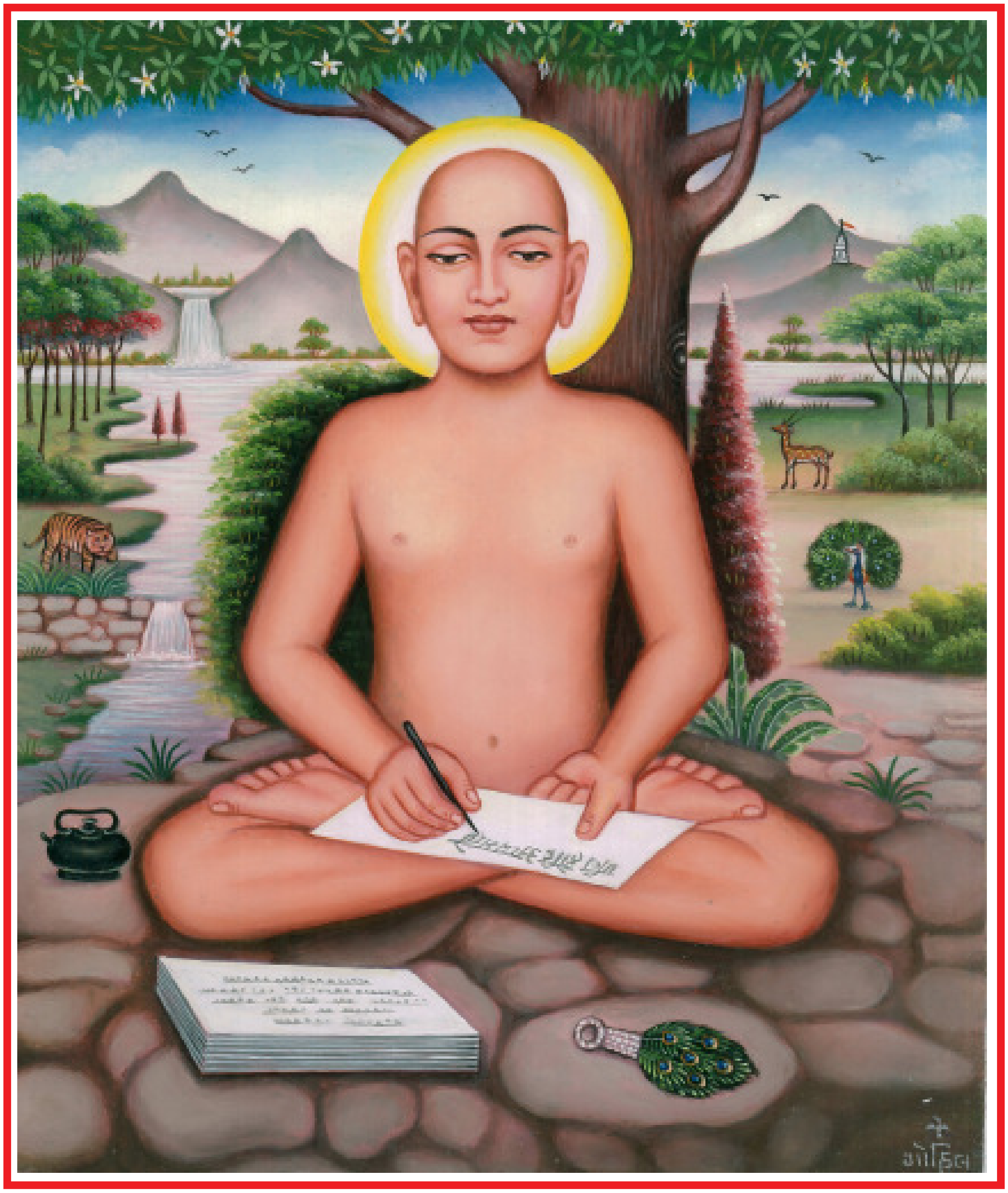

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन–उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्‌भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते–करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह–समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन

रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल

तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप

इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	श्लोक / गाथा	पृष्ठ संख्या
०१ए	१०-०८-१९६८	श्लोक -१ से ३, गाथा-१ से ५	००१
०१बी	११-०८-१९६८	गाथा-१ से ५	०१७
००१	०३-०९-१९६८	श्लोक -१ से ३, गाथा-१ से ५	०२५
००२	०४-०९-१९६८	गाथा-१ से ५	०४२
००३	०५-०९-१९६८	गाथा-१ से ५	०६१
००४	०६-०९-१९६८	गाथा-१ से ५, ६	०८०
००५	०७-०९-१९६८	गाथा-६, ७	०९८
००६	०८-०९-१९६८	गाथा-७, ८	११५
००७	०९-०९-१९६८	गाथा-८, ९	१३३
००८	१०-०९-१९६८	गाथा-९, १०	१५१
००९	११-०९-१९६८	गाथा-१०	१७१
०१०	१२-०९-१९६८	गाथा-११, १२	१९१
०११	१३-०९-१९६८	गाथा-१३, १४	२१०
०१२	१४-०९-१९६८	गाथा-१५, १६	२३१
०१३	१५-०९-१९६८	गाथा-१६	२५०
०१४	१६-०९-१९६८	गाथा-१६	२७०
०१५	१७-०९-१९६८	गाथा-१६, १७	२९०
०१६	१८-०९-१९६८	गाथा-१७, १८	३०७
०१७	१९-०९-१९६८	गाथा-१८, १९	३२६
०१८	२०-०९-१९६८	गाथा-१९ से २१	३४३
०१९	२१-०९-१९६८	गाथा-२१, २२	३६१
०२०	२२-०९-१९६८	गाथा-२२, २३	३७९

०२१	२३-०९-१९६८	गाथा-२४ से २६	३९७
०२२	२४-०९-१९६८	गाथा-२६, २७	४१५
०२३	२५-०९-१९६८	गाथा-२८, २९	४३३
०२४	२६-०९-१९६८	गाथा-२९, ३०, ३१	४४९
०२५	२७-०९-१९६८	गाथा-३१, ३२	४६७
०२६	२८-०९-१९६८	गाथा-३२, ३३, ३४	४८४
०२७	२९-०९-१९६८	गाथा-३४, ३५	५०१
०२८	३०-०९-१९६८	गाथा-३५, ३६	५२०
०२९	०१-१०-१९६८	गाथा-३६, ३७	५४०
०३०	०२-१०-१९६८	गाथा-३७	५५९
०३१	०३-१०-१९६८	गाथा-३७, ३८	५७८

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

प्रवचनसार प्रवचन

(भाग-१)

(श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री प्रवचनसार परमागम पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईस्वी सन् १९६८-६९ के शब्दशः प्रवचन)

श्रावण कृष्ण २, शनिवार, दिनांक १०-०८-१९६८
गाथा - १ से ५, श्लोक - १ से ३, प्रवचन - १ (ए)

यह प्रवचनसार। कुन्दकुन्दाचार्य कृत सम्पूर्ण जैन आगम का सार इसमें है। अमृतचन्द्राचार्य तो कहते हैं। देखो, तीसरे कलश में, देखो, तीसरा है न उसमें? तीसरा कलश है। परमानन्द। यहाँ परमानन्द से मांगलिक शुरु किया है, भाई!

परमानन्दसुधारसपिपासितानां हिताय भव्यानाम्।
क्रियते प्रकटिततत्त्वा प्रवचनसारस्य वृत्तिरियम्॥३॥

अर्थ : परमानन्दरूपी सुधारस के पिपासु भव्य जीवों के हितार्थ,.... देखो, आत्मा के अतीन्द्रियरस की जिसको पिपासा है और निर्विकल्प आनन्द को पीने की जिसकी भावना है, उसके लिये मैं प्रवचनसार कहूँगा, ऐसा अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। आहाहा! परमानन्दरूपी सुधारस। आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप ही नित्यानन्द है। उसका परमानन्द सुधारस अमृतरस का पिपासु भव्यजीव, इसके जो योग्य जीव है उसके हितार्थ, उसके हित के लिये। **तत्त्व (वस्तुस्वरूप को) प्रगट करनेवाली...** वास्तविक भगवान आत्मा भी तत्त्व जो आत्मभाव उसको प्रगट करनेवाली **प्रवचनसार**

की यह टीका रची जा रही है। उसके लिये प्रवचनसार की टीका रचने में आयी है। उसके लिये प्रवचनसार कहने में आया है, ऐसा लिया। ओहो! जिसको परमानन्द अतीन्द्रिय आनन्द, निर्विकल्प आनन्द जो स्वभाव उसका है, उसकी पिपासा—तृषा लगी है। समझ में आया? ऐसे पिपासु को तृप्ति करने के लिये यह टीका की जाती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो! करुणा। ऐसा पिपासु। आत्मा आनन्दमूर्ति, उसके अन्तर में शुद्ध आनन्द की जिसको जिज्ञासा, अभिलाषा, पिपासु—तृषा है, उसके हित के लिये, हित के कारण यह प्रवचनसार की टीका रची जा रही है। ऐसा लिखा है। समझ में आया? अब मूल सूत्र का अर्थ कैसा है, उसकी बात जरा प्रशंसा अमृतचन्द्राचार्य करते हैं। देखो! नीचे है।

अब, जिनके संसार समुद्र का किनारा निकट है,.... कुन्दकुन्दाचार्य। हजार वर्ष पहले हुए—अमृतचन्द्राचार्य के पहले। उसकी टीका मिल गयी उनको। समझ में आया? उनकी शब्द की शैली उसमें से, वह शब्द तो निमित्त है, परन्तु नैमित्तिक उनकी दशा कैसी थी, उसको प्रसिद्ध शब्दों द्वारा हुई थी, वही बात अमृतचन्द्राचार्य ने अन्दर में लिखी गयी और वह बात अन्तर में प्रतीत हो गयी। वह कुन्दकुन्दाचार्य मिले तो नहीं उनको। छद्मस्थ हैं अमृतचन्द्राचार्य तो। कुन्दकुन्दाचार्य तो हजार वर्ष पहले हुए। परन्तु शब्द की शैली देखकर ही उसकी निमित्तता और नैमित्तिक अन्दर दशा कैसी थी? कि शब्द निमित्त से नैमित्तिक प्रसिद्ध किया, उसका बोध हो गया। यह रचना करनेवाले कुन्दकुन्दाचार्य... समझ में आया? **जिनके संसार समुद्र का किनारा निकट है,....** संसार अब अल्प रहा है। ऐसा हमको कुन्दकुन्दाचार्य महाराज के लिये आचार्य पंच महाव्रतधारी हैं, समझ में आया? ऐसी खबर पड़ गयी। हजार वर्ष पहले के मुनि की खबर (पड़ गयी)। समझ में आया? संसार समुद्र का किनारा, ओहो! निकट—अल्प है, एकाध भव में पार करेंगे।

सातिशय विवेकज्योति प्रगट हो गयी है,.... देखो, कारण यह। उत्तम विवेकज्याति भेदज्ञान। **(अर्थात् परम भेदविज्ञान का प्रकाश उत्पन्न हो गया है)....** इतनी खबर पड़ गयी? हजार वर्ष पहले हुए न? ज्ञान की निर्मलता में जिसकी निर्मलता अनुभव कितना है, वह प्रकार उनके ख्याल में आ जाता है, दूसरे जीव को भी। ऐसी उसमें सामर्थ्य है।

समझ में आया? कैसे है भगवानजीभाई? ठीक नहीं बराबर? बहुत ऐसे ध्यान नहीं, ध्यान अन्यत्र आड़ा-टेढ़ा है। .... कहो, समझ में आया? क्या कहते हैं, समझ में आया? **विवेकज्योति प्रगट हो गयी है,....** ओहोहो! क्या कहते हैं? कुन्दकुन्दाचार्य के आत्मा में सातिशय विवेकज्योति कि जो विवेक ज्योति... सातिशय क्यों लिया? भेदज्ञान उत्पन्न हुआ वह हुआ, उससे अब केवलज्ञान लेंगे। समझ में आया? वह भेदज्ञानज्योति अब अस्त नहीं होगी। इसलिए सातिशय शब्द प्रयोग किया है। जैसे सातिशय अप्रमत्त कहते हैं न? अप्रमत्त सातिशय। तो अप्रमत्त सातिशय तो आठवें (गुणस्थान में ही) ही चढ़े, नीचे आवे नहीं। ऐसी भेदज्ञानज्योति कुन्दकुन्दाचार्य को ऐसी प्रगट हुई कि सातिशय। वह भेदज्ञान से आगे जाकर केवलज्ञान लेगा। उसमें भेदज्ञान में विरह नहीं पड़ेगा, खण्ड नहीं पड़ेगा। आहाहा! समझ में आया? दूसरा आत्मा दूसरे आत्मा की इतनी प्रतीति और इतने जोर से ज्ञान में वह बात आ गयी है, वह जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं।

तथा समस्त एकान्तवादरूप अविद्या का अभिनिवेश अस्त हो गया है.... एक भी अंश आग्रह, एकान्त आग्रह, किसी भी नय का एकान्त आग्रह सब छूट गया। अनेकान्त। वह तो पहले सिद्ध किया इतना। अब **ऐसे कोई (आसन्नभव्य महात्माश्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य), पारमेश्वरी अनेकान्तवादविद्या को....** एकान्तवाद नाश हो गया है, अनेकान्तवाद प्रगट हो गया है, ऐसे अस्ति-नास्ति किया है। अमृत अनेकान्त—राग अपने में नहीं; अपने में आनन्द है—ऐसी अनेकान्त विद्या का भान जिसको प्रगट हो गया। **अनेकान्तवादविद्या को प्राप्त करके,....** भाषा देखो! ओहोहो! इतना-इतना भरोसा पंच महाव्रतधारी मुनि... इतनी आत्मा की सामर्थ्य है कि जैसा आत्मा है सामने, उसकी प्रतीति और विवेक कर लेते हैं। समझ में आया? **पारमेश्वरी अनेकान्तवादविद्या को प्राप्त करके,....** भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने भगवान आत्मा आनन्दमय, ज्ञानमय, राग नहीं, ऐसी अनेकान्तविद्या को प्राप्त किया है। महाराज! आप तो पंच महाव्रतधारी हैं। हजार वर्ष पहले हुए, आपके अवधिज्ञान नहीं, मन:पर्ययज्ञान नहीं, केवलज्ञान नहीं (फिर भी) ऐसी प्रतीति, ऐसी यथार्थ पहिचान (कैसे की)? ऐसी पहिचान हम कर सकते हैं। वे आचार्य ऐसे थे, वह हमारे ज्ञान में आ गया है। फेरफार बिना नि:सन्देहरूप से आ गया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

समस्त पक्ष का परिग्रह त्याग देने से.... कोई पक्षपात रहा नहीं। .... रहा नहीं। यह हमारा जैन, यह पर—ऐसा कुछ रहा नहीं, ऐसा कहते हैं। यह हमारा जैन है, सम्प्रदाय पर है, वस्तु की ज्ञाता-दृष्टा ऐसी प्रगट हो गयी है जिसमें किसी प्रकार का परिग्रह अर्थात् पक्षपात **त्याग देने से अत्यन्त मध्यस्थ होकर,....** वीतरागभाव प्रगट हो गया है। जिसको वीतरागदशा, केवली जैसे देखते-जानते हैं, पक्षपात नहीं, वैसे कुन्दकुन्दाचार्य को कोई पक्षपात नहीं है। वस्तु का स्वरूप है ऐसा.... वह भगवान की स्तुति में आता है समन्तभद्र में। हे नाथ! आपने धर्म कह दिया। जिनशासन का फल होगा या नहीं होगा, आपने देखा नहीं। देखा नहीं क्या, वह तो केवलज्ञानी हैं, सत्य वस्तु कह दी। किसको लाभ हुआ, किसको नहीं हुआ, उसकी .... है नहीं, वह तो ज्ञान में सब पहली बात आ गयी है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य (ने) समस्त परिग्रह का—पक्षपात का परिग्रह छोड़ दिया है। अत्यन्त मध्यस्थ... अत्यन्त मध्यस्थ.... अत्यन्त मध्यस्थ... स्वरूप में अत्यन्त स्थ है। वीतरागता में अन्तर स्थिर है। यह प्रवचनसार का मांगलिक होता है।

सर्व पुरुषार्थ में सारभूत.... सर्व पुरुषार्थ में सार। धर्म अर्थात् पुण्य पुरुषार्थ, लक्ष्मी पुरुषार्थ, भोग पुरुषार्थ और मोक्ष पुरुषार्थ—इन चार में सार कौन? **आत्मा के लिये अत्यन्त हिततम....** अत्यन्त हिततम। **भगवन्त पंचपरमेष्ठी के प्रसाद से उत्पन्न होने योग्य....** ओहोहो! पंच परमेष्ठी की कृपा से उत्पन्न होनेयोग्य मोक्षलक्ष्मी। ऐई! श्रीमद् कहते हैं 'करुणा हम पावत है तुमकी, वह बात रही सुगुरुगम की।' भगवान को कहते हैं, प्रभु! आपकी करुणा हमारे पर आ गयी है। आहाहा! आपकी करुणा और प्रसन्नता अपने में आयी तो पंच परमेष्ठी की करुणा से हमारा प्राप्त हमको हुआ है। ऐसा निमित्तप्रधान से कथन अपना शुद्ध उपादान से करते हैं। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, पुरुषार्थ में सार ऐसा पंच परमेष्ठी के प्रसाद से उत्पन्न होनेयोग्य। कौन सार? **परमार्थसत्य, अक्षय मोक्षलक्ष्मी....** ओहो! मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति पंच परमेष्ठी की कृपा से होती है। है न उसमें? अर्थ किया है न? प्रसाद का अर्थ किया है नीचे देखो, ३. **प्रसन्नता, कृपा।** नीचे है। यह पंच परमेष्ठी की कृपा से मोक्षलक्ष्मी मिलती है। ....देखो! क्या है? अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। ....भाई! इसका अर्थ यह कि अपनी योग्यता जहाँ प्रगट है,

वहाँ वह भगवान पंच परमेष्ठी ही उसमें निमित्त है, दूसरा कोई निमित्त होता नहीं। समझ में आया? णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आईरियाण, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। 'लोए' (शब्द) सबको लागू पड़ता है, हों! समझ में आया?

कहते हैं, ऐसा **मोक्षलक्ष्मी को उपादेयरूप से निश्चित करते हुए....** कौन? कुन्दकुन्दाचार्य। पंच परमेष्ठी की कृपा से मिलनेवाली मोक्षलक्ष्मी, वह हमें अंगीकार करनेयोग्य है, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहकर यह शास्त्र बनाते हैं। ऐसा आत्मा ने शास्त्र बनाया है, ऐसा पहला उपोद्घात करते हैं। पुरुष प्रमाण से वचन प्रमाण। तो पुरुष ऐसा था। समझ में आया? **निश्चित करते हुए वर्तमान तीर्थ के नायक....** वर्तमान महावीर भगवान **पूर्वक भगवन्त पंचपरमेष्ठी को प्रणमन और वन्दन....** यह विशेष अर्थ कहेंगे। ऐसा **होनेवाले नमस्कार के द्वारा सन्मान करके सर्वारम्भ से (उद्यम से) मोक्षमार्ग का आश्रय करते हुए....** कुन्दकुन्दाचार्य सर्व प्रयत्न से अपना मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को अंगीकार करके, कुन्दकुन्दाचार्य अपने मोक्षमार्ग को अंगीकार करके। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। **प्रतिज्ञा करते हैं।** ऐसा अंगीकार करके प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं प्रवचनसार कहूँगा। ऐसे मांगलिक पहले अमृतचन्द्राचार्य ने इतनी कुन्दकुन्दाचार्य की महिमा-प्रशंसा करके मांगलिक किया है। अब भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की पाँच गाथा का मंगलाचरण है।

गाथा-१ से ५ पर प्रवचन

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदं धोदघाइकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं॥१॥

सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्धसब्भावे।
समणे या णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे॥२॥

ते ते सव्वे समगं समगं पत्तेगमेव पत्तेगं।
वंदामि य वट्टंते अरहंते माणुसे खेत्ते॥३॥

किच्चा अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं।
अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव सव्वेसिं ॥४॥

तेसिं विसुद्धदंसणणाणपहाणासमं समासेज्ज।
उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती ॥४॥ (पणगं)

प्रवचनसार बहुत वर्ष से अभी बन्द था। आज शुरु करते हैं मंगलाचरण करके। इसमें हिन्दी नहीं है, (हरिगीत) गुजराती है, उसकी पाँच गाथा का। पीछे है, देखो! पीछे, पीछे है। एकदम पीछे।

सुरेन्द्र-नरेन्द्र-असुरपति-वन्दित, घातिकर्म-प्रक्षालक जो।
नमन करूँ मैं धर्म-तीर्थ-कर्ता, इन वर्धमान प्रभु को ॥१॥

यह गुजराती है।

अन्य सभी तीर्थंकर अरु विशुद्ध सत्तायुत सिद्धों को।
दर्शन-ज्ञान-चरित्र-वीर्य-तप-आचारों युत मुनिवर को ॥२॥

उन सबको मैं एक साथ या एक-एक करके सबको।
नमन करूँ मैं मनुज क्षेत्र में विद्यमान अर्हन्तों को ॥३॥

अर्हन्तों को, सिद्धों को, एवं गणधर भगवन्तों को।
अध्यापक अरु सर्व साधु को, वन्दन करके इन सबको ॥४॥

इनके शुद्ध ज्ञान-दर्शनमय, निर्मल आश्रम को पाकर।
समताभाव प्राप्त करता हूँ, जो मंगल शिवपददायक ॥५॥

मैं वीतरागता प्राप्त करता हूँ। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं वीतरागता साम्यभाव शुद्धोपयोग मैं प्राप्त करता हूँ और शुद्धोपयोग से ही मुक्ति प्राप्त होती है। शुद्धोपयोग कहो, साम्य कहो, वीतरागता कहो, निर्विकल्प आचरण आनन्द का कहो... समझ में आया? उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है। कोई शुभभाव आदि व्यवहार से कोई मोक्ष की प्राप्ति होती नहीं। ऐसा आचार्य ने पहली पाँच गाथाओं में ऐसा शुरु किया। ओहोहो!

अब उसकी टीका। टीका है न? टीका में अपने गुजराती में पहले यह शब्द लिया है। उसमें अन्त में लिया है हिन्दीवाले ने। क्योंकि टीका में पहला शब्द पड़ा है,

परन्तु उसमें बाद में लिया है। अपने पीछे से पहले लिया है। है न अन्तिम पंक्ति? मैं वन्दन करनेवाला कौन हूँ? यह कहते हैं। अन्तिम पंक्ति है। प्रथम ही, यह स्वसंवेदन प्रत्यक्ष। है? पहली गाथा की अन्तिम पंक्ति। पहली गाथा की अन्तिम पंक्ति। टीका में वह पहला शब्द है। परन्तु हिन्दीवाले में जरा फेरफार कर दिया है। यहाँ से लेना है। है? संस्कृत में भी यह है। देखो! '**एष स्वसंवेदनप्रत्यक्षदर्शनज्ञानसामान्यात्माहं**' क्या कहते हैं? भगवान! मैं वन्दन करनेवाला कैसा हूँ? मैं वन्दन आपको करता हूँ। आपको करता हूँ, वह भी उसमें अभेद है। अभेद नमस्कार है। आपको तो ऐसा निमित्त से कथन है। परन्तु अपना स्वभाव जो शुद्ध आनन्द आदि है, उसमें मैं एकाकार होता हूँ तो वन्दन करनेवाला और वन्दन होनेयोग्य दो का विकल्प उसमें छूट जाता है। इतनी.... होती है कि भगवान ऐसा, ऐसा होते ही अपने आत्मा में भगवान ऐसा हो जाता है। समझ में आया? अरिहन्त, सिद्ध आदि परमेश्वर पाँच ऐसे, ऐसा जहाँ ध्यान में आया तो कहते हैं कि मैं वन्दन करनेवाला ऐसा हूँ और उनको वन्दन करता हूँ, परन्तु उनको वन्दन करने में मेरा आराध्य-आराधकभाव मेरे में समा जाता है। आराधक मैं और आराध्य परमेश्वर दूसरा, ऐसा रहता नहीं। समझ में आया? मैं ध्यान करनेयोग्य और ध्यान में ध्येय भगवान, ऐसा रहता नहीं, ऐसा मेरा नमस्कार है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? समझ में आता है? बहुत मार्मिक गाथा है।

हम तो कहते हैं, मैं पंच परमेष्ठी, पाठ तो ऐसा है कि पंच परमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ। वह तो व्यवहार हो गया (क्योंकि) विकल्प आया। ऐसा नहीं। मैं कहता हूँ पंच परमेष्ठी। परन्तु जैसा पंच परमेष्ठी वीतरागभाव से विराजमान है, ऐसा मैं वन्दन करनेवाला, मैं ऐसा हूँ, ऐसा वन्दन करता हूँ, तब हमारा उपयोग अन्दर में झुक जाता है। भेद नहीं रहता, द्वैतपना नहीं रहता। भगवान आराध्य है, मैं आराधक हूँ, आराधनेयोग्य है, आराध्य, आराधनेयोग्य। आराधक मैं हूँ, यह बात छूट जाती है। समझ में आया? मैं ज्ञानानन्दस्वभाव पूर्णानन्द प्रभु, पंच परमेष्ठी जो वीतरागी पर्यायरूप परमात्मा, पंच परमेष्ठी अर्थात् वीतरागपर्यायरूप परमात्मा वन्दन करनेयोग्य और मैं वन्दन करनेवाला, ऐसी तीव्र जहाँ अन्दर से भावना उठती है, वहाँ अद्वैत नमस्कार हो जाता है। समझ में आया? द्वैतपना रहता नहीं कि यह भगवान है और मैं वन्दन करता हूँ, ऐसा रहता नहीं।

आत्मविशुद्धि, परमात्मविशुद्धि। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **यह....** यह शब्द पड़ा है न! **'एष' 'एष'** यह मैं। मैं कौन हूँ? कुन्दकुन्दाचार्य... मैं कौन? **यह स्वसंवेदनप्रत्यक्ष...** मैं तो अपना आनन्द और ज्ञान से प्रत्यक्ष होनेवाला मैं आत्मा—मैं प्रत्यक्ष हुआ हूँ, ऐसा मैं हूँ। मैं ऐसा हूँ। आहाहा! समझ में आया? देखो! पंचम काल के मुनि कहते हैं। आहाहा! यह। **'एष'** शब्द पड़ा है न संस्कृत में? **'एष'** यह, यह। यह बताता है प्रत्यक्षपना। कैसा प्रत्यक्षपना? स्वसंवेदन प्रत्यक्ष। मैं आत्मा कौन हूँ? कि मैं अपनी ज्ञानपर्याय और आनन्दपर्याय से जाननेयोग्य हूँ अनुभूति से, ऐसा मैं आत्मा हूँ। मैं राग से और पर से जाननेयोग्य ऐसा तो मैं हूँ नहीं। मैं नहीं, ऐसा न कहकर, मैं ऐसा हूँ—ऐसा अस्ति से कहा है। समझ में आया? मैं राग से और पर से वेदन करनेयोग्य नहीं हूँ, ऐसा न कहकर अस्ति से कहा। मैं **यह...** है न यह? उसमें—गुजराती में क्या शब्द है? मैं है? यह। उसमें हुं शब्द नहीं। यह पीछे है न उसमें। मैं प्रणाम करता हूँ, उसमें है न भाई? फिर मैं है, उसमें—हिन्दी में। **यह स्वसंवेदनप्रत्यक्ष दर्शनज्ञानसामान्यस्वरूप मैं...** प्रणाम करता हूँ। मुझे शब्द फेर का ख्याल है, भाई! यह मैं, ऐसा। यह मैं। देखो! कितने ही अभी कहते हैं कि यह मैं (ऐसा कहने से) पक्षपात हो गया, खण्ड-खण्ड ज्ञान हो गया। आहाहा! समझ में आया? रजनीश है न, बहुत उल्टे गप्प मारता है बहुत। ओहोहो जो अभी तक आचार्य और शास्त्र हुए, उसमें छेतरपिण्डी कर दिया है, लोगों को ठगा है, ऐसा कहता है। अरे! भगवान! क्या कहता है भाई तू? पुण्यप्रकृति का योग है। लोगों को खबर नहीं होती और यहाँ की निश्चय की बात सुने तो कितनों को ऐसा लगे कि वह तो कानजीस्वामी कहते हैं, वह सुन लिया तो अधिक बात है? यहाँ वह पहले से कहा है अमृतचन्द्राचार्य ने।

'एष''एष' अहं शब्द पड़ा है न भाई अन्तिम संस्कृत में है। **'एष स्वसंवेदनप्रत्यक्ष-दर्शनज्ञानसामान्यात्माहं'** अहं अर्थात् अस्तिपना बतलाता है। अहं, उसका अभिमान नहीं है। आहाहा! मैं ऐसा हूँ। सब कहे ऐसा नहीं। सब आत्मा हो, मैं हूँ—ऐसा नहीं। सब आत्मा से और दूसरे जड़ आदि पदार्थ से अपनी भिन्नता का बोध करते हैं। उसमें वह विकल्प नहीं। और मैं ऐसा हूँ, तो सारा अखण्ड है, उसमें भेद पड़ गया, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आ... यह तो शान्ति से समझनेयोग्य चीज़ है। यह... यह प्रत्यक्ष

ऐसा जहाँ नजर में आया न आत्मा, ऐसा यह। मैं अर्थात् हूँ। यह मैं। शुद्ध आनन्दकन्द परमानन्द मूर्ति यह मैं स्वसंवेदनप्रत्यक्ष हूँ। मैं तो अपने ज्ञान से और आनन्द से प्रत्यक्ष हूँ, ऐसा मैं हूँ। कौन कहता है ? यह आचार्य कहते हैं। छद्मस्थ आचार्य कहते हैं, पंचम काल के मुनि कहते हैं। कितने ही कहते हैं कि अभी तो शुद्ध उपयोग होता ही नहीं। तो सारे मुनियों को कुन्दकुन्दाचार्य को भी शुद्ध उपयोग होता नहीं, ऐसा कहते हैं। अभी तो शुभ उपयोग ही होता है। शुद्ध तो आठवें गुणस्थान में होता है। बड़ी विरुद्धता। ओहोहो! वह तुम्हारे वहाँ से चली है। तुम्हारे गाँव में से चली है। कहो, समझ में आया ? आहाहा! गजब काम करते हैं।

जैसा यह कहते हैं, मैं खण्ड-खण्ड कहने से वर्तमान शुद्ध उपयोग... यहाँ आचार्य कहते हैं कि मैं तो स्वसंवेदनप्रत्यक्ष त्रिकाल ऐसा हूँ, वर्तमान प्रत्यक्ष होकर मैं कहता हूँ। कहते समय तो विकल्प है, शास्त्र लिखते समय तो विकल्प है, परन्तु उस विकल्प की मुख्यता नहीं है। यहाँ प्रत्यक्ष यह ज्ञायकमूर्ति चिदानन्दस्वरूप मेरे ज्ञान की पर्याय में प्रत्यक्ष ज्ञेय हो गया हूँ। प्रत्यक्ष। पर का आश्रय है नहीं। निमित्त का, राग का आश्रय है नहीं। आश्रय है नहीं, ऐसा भी नहीं कहा। मेरे तो प्रत्यक्ष होनेयोग्य मैं आत्मा हूँ। मैं प्रत्यक्ष हुआ हूँ, यह मैं हूँ। मैं मुझे प्रत्यक्ष हुआ हूँ, यह मैं हूँ। आहाहा! कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : भेद से अभेद की प्राप्ति....

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद कहाँ है ? कौन कहता है भेद ? कहाँ है ? भेद है ही नहीं यहाँ। प्रत्यक्ष कहा न! ज्ञान की पर्याय से मैं प्रत्यक्ष हूँ, अभेद ही हूँ। भेद कहाँ आया उसमें ? कहाँ से आया ?

मैं यह, यह पहला शब्द है। यह मैं अर्थात् हुं। स्वसंवेदनज्ञान—सीधे ज्ञान से आत्मा को प्रत्यक्ष करता हूँ, वह मैं हूँ। उसका अर्थ कि जो विकल्प उठा है कि अट्ठाईस मूलगुण है, वह मैं नहीं और वन्दन करनेयोग्य मुनि का अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प है, वह वन्दन करनेयोग्य है ? नग्नदशा वन्दन करनेयोग्य है ? अन्तर में स्वसंवेदनता वीतराग पर्याय प्रगट हुई है निर्विकारी, वह वन्दन करनेयोग्य है। समझ में आया ? तो कहते हैं कि मैं ऐसा हूँ और मैं परमेश्वर को वन्दन करता हूँ, ऐसा मैं मुझको वन्दन करता हूँ।

सेठी! मैं पंच परमेष्ठी में ही हूँ, मैं उसमें हूँ। आहाहा! आचार्य है या नहीं? इतनी खबर पड़ जाती है? अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान न हो तो भी? वह तो दूसरी बात है। अवधि, मनःपर्यय हो या न हो, वह तो एक ज्ञान का वैभव है वैभव। वह कोई साधकपने की पुष्टि में कोई कारण है नहीं। मैं यह स्व अपने संवेदन, अपने से संवेदन प्रत्यक्ष होनेवाला मैं कैसा? अब तक साधारण बात हुई।

वस्तु कैसी है? कि **दर्शनज्ञानसामान्यस्वरूप....** मैं तो दृष्टा और ज्ञाता ऐसा सामान्य स्वरूप मेरा त्रिकाल है। आहाहा! समझ में आया? दर्शन उपयोग, हों! ज्ञान उपयोग त्रिकाल, दर्शन-ज्ञान सामान्य अभेद ऐसा मैं हूँ। समझ में आया? **दर्शनज्ञानसामान्यरूप....** एकरूप, अखण्डरूप ऐसा मैं प्रणाम करता हूँ। लो। मैं पंच परमेष्ठी को प्रणाम करता हूँ। ओहोहो! अर्थात् मैं नमस्कार करता हूँ। ऐसा नमस्कार करता हूँ कि मैं आराधक, भगवान, आराधन करनेयोग्य और मैं आराधक, यह बात मुझमें छूट जाती है, ऐसा मैं अपने को प्रणाम करता हूँ। अपने को करता हूँ, उसको पर को किया, ऐसा कहने में आता है। समझे? देखो भाई! मंगलाचरण होता है। आज पुरुषार्थसिद्धि (उपाय) प्रकाशित हुआ है। कहो, समझ में आया? बहिन के जन्मदिवस में प्रकाशित करना था प्रवचनसार।

कहते हैं, अहो! यह प्रवचनसार का मंगलाचरण होता है, आनन्द के पिपासु के लिये बनी टीका, उसका मंगलाचरण है। आहाहा! मैं प्रणाम करता हूँ। अरे! भगवान! यह और मैं ऐसा भिन्न क्यों किया? यह सब उसको, उस रूप हूँ और उसको नमस्कार करता हूँ, ऐसा नहीं कहा। यह मैं। थोड़े शब्द में बड़ा भरा है भाई! यह कोई कथा नहीं, वार्ता नहीं। समझ में आया? यह तो अध्यात्म परमेश्वर की कथा है। पारमेश्वरी कथा है। टीका में लेंगे। समझ में आया?

अब टीका पहले से। वह पहले यह लिया कि मैं ऐसा हूँ। अब मैं किसको वन्दन करता हूँ? **जो सुरेन्द्रों....** पहला शब्द है उसमें। सुरेन्द्रों अर्थात् वैमानिक के देव। **असुरेन्द्रों...** भवनपति आदि के देव। **नरेन्द्रों के....** चक्रवर्ती आदि मनुष्य के इन्द्र। उनके **द्वारा वन्दित होने से....** देखो! उन द्वारा वन्दित होने से। तीन लोक में ऊँचे प्रधान पुरुषों से वन्दनीक है। अग्रगण्य पुरुषों से परमात्मा वन्दनीक पंच परमेष्ठी हैं। तीन लोक में अग्रगण्य पुरुष हैं, उनको वन्दनीक हैं। **तीन लोक के एक गुरु हैं,....** एक ही गुरु आप हैं। आहाहा!

समझ में आया ? महावीरदेव को वन्दन करते हैं। महाविदेह शब्द पड़ा है न ? महाविदेह। भगवान महावीर तीर्थ के नायक, उनके शासन में हम हैं। तो कहते हैं कि वर्धमान भगवान कैसे हैं ? तीन लोक के अग्रगण्य में एक ही गुरु, एक ही गुरु हैं। सर्वज्ञदेव परमगुरु महावीर तीन लोक के अग्रगण्य के इन्द्रों को पूजनीक हैं। एक बात। **(अनन्य सर्वोत्कृष्ट) गुरु हैं,....**

अब दूसरी बात। पाठ में लिया है। **जिनमें घातिकर्ममल के धो डालने से....** देखो, ऐसा घातिकर्म नाश हुआ और ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं कहा। वह कहते हैं तुम्हारे। पहले ऐसा कहो, ज्ञानावरणीय नाश हो तो ज्ञान होता है, ऐसा कहो। तुम कहते हो, ज्ञान प्रगट होता है तो ज्ञानावरणीय का नाश होता जाता है, ऐसा नहीं कहो तुम। .... क्या कहते हैं ? उल्टी गंगा चलती है तुम्हारी, ऐसा कहते हैं वे लोग। भाई ! तेरी उल्टी गंगा चलती है, तेरी तुझे खबर नहीं है। क्या कहते हैं आचार्य ? देखो, **जिनमें घातिकर्ममल के धो डालने से....** जिनमें अर्थात् भगवान में, ऐसा। क्या कहना है ? भगवान में, महावीर भगवान में **घातिकर्ममल के धो डालने से....** घातिकर्म का मल धो डाला। धो डालने का अर्थ साफ। अकेला नाश किया, वह भाषा नहीं ली भाई ! धो डालने से। पानी से जैसे साफ कर देते हैं न, कपड़ा साफ स्वच्छ जल में। वैसे चार घातिकर्म को धो डाला। क्या हुआ ? **जिनमें....** भगवान महावीर में **जगत पर अनुग्रह करने में समर्थ....** देखो, **जगत पर अनुग्रह करने में समर्थ अनन्तशक्तिरूप परमेश्वरता है,....** देखो ! आहाहा ! जगत को अनुग्रह करने की परमेश्वरता परमेश्वर में है। इसका जो लक्ष्य करते हैं, उसको परमेश्वरता प्रगट होती है। तो भगवान में अनुग्रह परमेश्वरता की शक्ति उनमें है, ऐसा कहते हैं। ऐई ! आहाहा !

मुमुक्षु : सरस लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत लिखा है ? आज बहिन का जन्मदिन है न, तो मांगलिक होना चाहिए न ! आहाहा ! देखो !

कहते हैं, निमित्त कुछ करता नहीं, पर से कुछ होता नहीं, वाणी से लाभ होता नहीं, भगवान से लाभ होता नहीं, लाभ अपने द्रव्य के आश्रय से होता है, ऐसा अभी तक कहते थे न ? ऐई ! धन्नालालजी ! अभी तक कल तक तुम ऐसा कहते थे कि

ओहोहो! अपना लाभ पर्यायदृष्टि से भी होता नहीं। निमित्त से, विकल्प से नहीं। परमेश्वर से नहीं। परमेश्वर में भी दूसरे को लाभ पहुँचाने में परमेश्वर अयोग्य हैं। ऐसा आया था? ३७२ गाथा में ऐसा आता है। समझ में आया? यह वाणी कैसी और यह! सुन तो सही! आहाहा! इतनी परमेश्वरता जिसको प्रगट हुई है, वह दूसरे में अनुग्रह करने में समर्थ परमेश्वरता है। आहाहा! भगवान! यह जिसको यह भगवान की परमेश्वरता प्रगट में, लक्ष्य में आ गयी, उसको भगवान का अनुग्रह ही हो गया, ऐसा कहते हैं और उस समय में भगवान के ज्ञान में ऐसा आया था कि इस समय यह अनुभव कर लेगा, और इस समय में केवलज्ञान पायेगा तो उसको अनुग्रह है, ऐसा कहते हैं। नाथ! मेरा उच्च पद है, यह तो आपके ज्ञान में आ गया है। समझ में आया? मैं भविष्य में क्या होऊँगा? मैं अल्प काल में मोक्ष लूँगा, ऐसी पदवी पाकर, यह आपके ज्ञान में आ गया है। समझ में आया? मुझे भरोसा है कि आप मेरे निमित्त हुए तो आपका अनुग्रह मेरे पर हुआ, ऐसा कहते हैं। ऐई! चन्दुभाई!

उसमें आता है न, ज्ञानदर्पण में नहीं? व्यवहार से कुछ लाभ नहीं। व्यवहार से ... बहुत विवाद नहीं करना। क्योंकि व्यवहार बहुत करने जायेगा, परमेश्वर केवलज्ञानी भी आदरनेयोग्य नहीं, व्यवहार ऐसा हो जाता है तो। .... आया था न? तब कहा था न उसमें है। पंच संग्रह—अध्यात्म पंच संग्रह, दीपचन्दजी ने लिखा है, बहुत-बहुत सत्य। .... परन्तु ऐसा बहुत जोर करेगा तो परमेश्वर है, उनकी वाणी का बहुमान तुझे नहीं रहेगा। यहाँ तो कहते हैं... धन्नालालजी! है तो ऐसा है वैसा, हों। परन्तु जब ऐसा भान होता है, तब बहुमान का विकल्प आये बिना नहीं रहता। तथापि वह विकल्प हेय है। आहाहा! वीतराग का स्याद्वादमार्ग अनेकान्त मार्ग वह समझने में महापुरुषार्थ चाहिए। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा महावीर शासननायक वर्तमान शासन के नायक। अरे! शासन तो अपनी पर्याय में है, उसका नायक वह हुआ? है? पाठ है। है देखो, आगे देखो। **श्री वर्धमानदेव को प्रवर्तमान तीर्थ की नायकता के कारण....** देखो! इस कारण से मैं उनको वन्दन करता हूँ। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मैंने मेरी पहिचान की है और वह परमात्मा कैसा है, वह मेरे ज्ञान में आ गया है। अरिहन्त

की पर्याय कैसी है, वह मेरे ज्ञान में बराबर आ गयी है। ऐसी पहिचान करके मैं वन्दन करता हूँ, तो वन्दन में द्वैतपना छूट जाता है, अद्वैत हो जाता है। समझ में आया? **जगत पर अनुग्रह करने में....** लो, यह तो परमेश्वर अनुग्रह करते हैं भक्त के ऊपर। राक्षसों का नाश करते हैं। यह तो परमेश्वरता ऐसी पूर्ण प्रगट हुई कि जो उसका लक्ष्य करे तो उसको परमेश्वरता प्रगट हुए बिना रहे नहीं। उसमें वे निमित्त पड़ते हैं, इसलिए अनुग्रह करने में समर्थ है, ऐसा कहने में आता है। और वह परमेश्वर ही निमित्त होता है, दूसरा कोई निमित्त होता नहीं। ऐसा कहते हैं। जिसकी पूर्ण केवलज्ञान और पूर्ण वीतरागदशा। अरे! उसकी अस्ति की सत्ता का स्वीकार कौन करे? समझ में आया? इतनी एक पर्याय में तीन काल-तीन लोक का जानना-देखना। आहाहा! एक समय, वह भाषा नहीं, कथन नहीं, विकल्प से नहीं। अन्दर में अस्तिपना उसको एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक हो, उससे भी अनन्तगुना है तो जान सके, ऐसी पर्याय, उसकी सत्ता का स्वीकार जिसको हो, कहते हैं कि भगवान का ही अनुग्रह है उसमें। समझ में आया? अपना अनुग्रह है अपने में, तो निमित्त से अनुग्रह है, ऐसा कहने में आया है। उसमें बाहर से कोई प्रसन्न होना या खुशी होना, ऐसी चीज़ नहीं यह। समझ में आया? बहुत सभा प्रसन्न हो जाये, प्रसन्न हो जाये, ऐसी यह चीज़ नहीं। यह तो अन्तर में आत्मा प्रसन्न हो जाये, ऐसी बात है। समझ में आया?

कहते हैं कि परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने घातिकर्म धो डाले हैं, प्रगट हुई अनुग्रह शक्ति। परमेश्वरता प्रगट हुई है। आहाहा! जगत के ऊपर। जगत के ऊपर कहते हैं, क्या हुआ? सारे जगत के ऊपर? सारे जगत के ऊपर? जगत में तो भव्य, अभव्य है, जड़ है, सब है। परन्तु वह जगत उसको यहाँ कहते हैं कि जो मोक्ष का सहारा लेने की जिसकी तैयारी है, ऐसे जगत में अनुग्रह करने में समर्थ है, वह जगत, प्रधान जगत वह है। समझ में आया? आहाहा! भाषा देखो! **जगत पर अनुग्रह करने में समर्थ....** महाराज! जगत की व्याख्या क्या करते हैं आप? भव्य पर या अभव्य पर? क्या है? .... जो प्राणी उसका लक्ष्य करके अपना स्वभाव का आश्रय करके प्रगट करते हैं, वही जगत, वही वस्तु, वही अग्रगण्य, उसको भगवान का अनुग्रह करने की ताकत है। समझ में आया? धन्नालालजी! ऐसी बात है। यह ज्ञान की लहर है। समझ में आया?

अनुग्रह करने में समर्थ अनन्त शक्तिरूप परमेश्वरता है,.... कोई कहे कि सर्वशक्तिरूप परमेश्वरता है, ऐसा क्यों नहीं कहा? अनन्त शक्तिरूप परमेश्वरता है, ऐसा कहा, परन्तु वह तो अनन्त कहो या सर्व (कहो)। परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं कि दूसरे का काम कर दे तो वह सर्व शक्तिमान कहने में आता है। समझ में आया? काम करनेवाला, मोक्ष का करनेवाला जीव में निमित्तपने की शक्ति हो तो वह भगवान में है, दूसरे में है नहीं। समझ में आया? **तीर्थता के कारण....** तीर्थ शब्द पड़ा है न? **तीर्थता के कारण योगियों को तारने में समर्थ हैं,....** लो, यह आया वापस स्पष्टीकरण। उसमें जगत कहा था न? बाद में स्पष्टीकरण कर दिया। पाठ में है न वह? पाठ में है न तीर्थ। '**पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं।**' मूल श्लोक है न! पहला श्लोक (गाथा) है। यह उसका अर्थ होता है। यहाँ तो श्लोक का अर्थ होता है। '**एस सुरासुरमणुसिंद-वंदिदं धोदघाइकम्ममलं।**' उसका अर्थ हुआ पहले। पीछे '**तित्थं**' उसका अर्थ होता है। फिर '**धम्मस्स कत्तारं**' फिर इसका अर्थ होगा। एक-एक शब्द का अर्थ होता है, कुन्दकुन्दाचार्य के पहले श्लोक (गाथा) का।

भगवान महावीर ऐसे हैं **तीर्थता के कारण योगियों को तारने में समर्थ हैं,....** स्पष्टीकरण कर दिया। योगी अपने स्वरूप में यदि अन्दर एकाकार होनेवाला है, उसको तारने में समर्थ है, ऐसा निमित्त कहा। ऐई! चन्दुभाई! आहाहा! जो अपना स्वरूप आनन्दस्वरूप शुद्ध चिदानन्द, उसमें जिसने अपनी पर्याय को जोड़ा है, जोड़ा है योग-योग युज धातु। वह नियमसार में आता है कि इसको योग कहते हैं। अपने स्वरूप में जुड़ान करना, वह योग है। दूसरे करते हैं परमसमाधि, ऐसा वैसा, कुम्भक, रेचक, वह सब है नहीं। ऐसा योगियों को तारने में समर्थ है, ऐसा फिर स्पष्टीकरण कर दिया। उसमें वह निमित्त होता है। समझ में आया? देखो, अमृतचन्द्राचार्य के एक-एक शब्द को लेकर स्पष्टीकरण करते हैं। टीका का अर्थ स्पष्टीकरण है न! कहते हैं, हमारी टीका तुम बहुत करते हो, टुका बहुत करते हो। यह टीका बहुत करते हैं। पाठ में जो भरा है सामान्य, उसका विशेष स्पष्टीकरण करते हैं। **तीर्थता के कारण योगियों को तारने में समर्थ हैं,....** तीर्थ का करनेवाला है न? तीर्थ का कारण है न? परन्तु तीर्थ कौन? कि जो तारनेवाला है, उसको निमित्त है—ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... उसमें क्या है? उसमें आया क्या? उसमें इसका सम्बन्ध नहीं। वह तो हुआ अपने से। परन्तु वाणी थी, बस इतनी बात है। रचना तो अपने से की है, अपने ज्ञान में आया तो रचना की है। ज्ञान तो अपने में से आया है। भगवान की वाणी तो सबके लिये निमित्त थी। समझ में आया? तो गणधर में इतना क्षयोपशम था तो अपने से रचना की। दूसरे को क्यों इतना क्षयोपशम हुआ नहीं? समझ में आया? इसलिए समान निमित्त थे परन्तु तो भी जिसकी योग्यता है, उस प्रमाण में उसको प्रगट हुआ तो समाप्त हो गया, निमित्त ने कुछ किया नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....दूसरे अर्थ करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे अर्थ करते हैं। ऐसा है। आहाहा! भगवान ऐसा कहते हैं। भैया! गणधर ने ऐसी क्षयोपशम दशा प्रगट की मेरे से तो दूसरे ने क्यों प्रगट नहीं की? समवसरण में तो लाखों-करोड़ों मनुष्य थे। समझ में आया?

मुमुक्षु : मन:पर्यय ज्ञानी भी....

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत थे। मन:पर्यय ज्ञानी आदि साधु थे, अवधिज्ञानी थे। उसमें क्या आया? उसकी अपनी योग्यता प्रमाण प्राप्त करता है, उतना प्रमाण में निमित्त कहने में आता है। इतने प्रमाण में निमित्त कहने में आता है। वहाँ धोधमार एक समय में बारह अंग चौदह पूर्व की धारा एकसाथ बहती है। तो जितना अन्दर में क्षयोपशम अपनी योग्यता से प्रगट किया हो, इतनी वाणी में तो बहुत है, परन्तु इतने को निमित्त कहने में आया, बस। समझ में आया? **तीर्थता के कारण योगियों को तारने में समर्थ हैं,....** अच्छा। अब आया।

धर्म के कर्ता होने से.... देखो अब! **जो शुद्ध स्वरूपपरिणति के कर्ता....** अपनी स्वरूपपरिणति का कर्ता, ऐसा कहा। समझ में आया? **धर्म के कर्ता होने से जो शुद्ध स्वरूपपरिणति के कर्ता....** है। समझ में आया? पर की नहीं, हों! धर्म के कर्ता होने से स्वरूपपरिणति के कर्ता हैं, उसका—स्वरूप परिणति का करनेवाला है। **उन परम भट्टारक,....** आहाहा! ऐसा परम भट्टारक सूर्य, परमसूर्य। **महादेवाधिदेव....** अमृतचन्द्राचार्य,

वर्धमान। इस शब्द का अर्थ हो गया एक एक का, अब वर्धमान का करते हैं। ऐसा परम भट्टारक, परम भट्टारक सूर्य। परम सूर्य। **महादेवाधिदेव....** यह भट्टारक अभी गद्दी पर बैठते हैं, वे भट्टारक नहीं, हों! यहाँ उनको भट्टारक कहते हैं न? भट्टारक केवलज्ञानी को भट्टारक कहते हैं, सन्तों को भी भट्टारक कहते हैं। भावलिंगी वीतरागीदशा को भट्टारक कहते हैं। समझ में आया? **महादेवाधिदेव...** देवाधिदेव तो इन्द्र भी हैं देव के देव। यह तो महादेवाधिदेव। आहाहा! **परमेश्वर....** इतनी व्याख्या, अमृतचन्द्राचार्य भगवान महावीर के लिये इतने विशेषण प्रयोग करते हैं। परम-ईश्वर—परमेश्वर। ओहो! परमात्मा महावीर परमेश्वर। कोई परमेश्वर कर्ता-हर्ता है—ऐसा नहीं। समझ में आया? **परम पूज्य....** आहाहा! परमपूज्य (अर्थात्) उत्कृष्टरूप से पूजनेयोग्य।

जिनका नामग्रहण भी अच्छा है.... भाषा देखो! समझ में आया? **'सुगृहीतनाम-श्रीवर्धमानदेवं' 'सुगृहीतनाम'** आहाहा! भाव निक्षेप से जिसका भाव है, उसका नाम। तो भाव भी जिसका ग्रहण करना अच्छा है, कहते हैं। आहाहा! **जिनका नामग्रहण भी अच्छा है....** नाम महावीर... महावीर। ऐसी पर्याय उस समय नम जाती है। ऐसा नाम... महावीर। पूर्ण पुरुषार्थ का पराक्रमी ऐसा आत्मा, ऐसा भगवान, ऐसा आत्मा। ऐसा नाम में अपनी पर्याय अपने में नमती है, जिसका नामग्रहण भी अच्छा है। चन्दूभाई! आहाहा! समझ में आया?

उसमें लिखा है न दीपचन्दजी ने, जिसके नाम से अनन्त मोक्ष गये। उनका नामनिक्षेप। परन्तु नामनिक्षेप का अर्थ? ज्ञानी को निक्षेप होता है। ज्ञेयनिक्षेप का ज्ञान ज्ञानी को होता है, नय का ज्ञान निक्षेप नयवाले को होता है, जिसको नय प्रगट हुआ, उसको निक्षेप है। समझ में आया? तो कहते हैं, अपना स्वरूप जिसको अन्दर प्रमाणज्ञान से प्रगट हुआ है, उसको नामनिक्षेप कहने में आता है। भगवान का नाम, उसका ख्याल आ गया। नय से, ज्ञान से। ऐसा भगवान का नामग्रहण भी अच्छा है। **ऐसे श्री वर्धमानदेव को...** ऐसे श्री वर्धमान परमात्मा को **प्रवर्तमान तीर्थ की नायकता के कारण....** प्रवर्तमान—चलता तीर्थ जो है शासन, उसके **नायकता के कारण....** उसके अग्रगण्य के कारण **प्रथम ही, प्रणाम करता हूँ।** पहला शब्द आ गया। ऐसे को मैं प्रणाम करता हूँ। आहाहा! ऐसा महामांगलिक एक गाथा के अर्थ में ऐसा ले लिया है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ३, रविवार, दिनांक ११-०८-१९६८
गाथा - १ से ५, प्रवचन - १ (बी)

.... भूतकाल के सर्व सिद्धों। **तत्पश्चात् इन्हीं पंच परमेष्ठियों को, उस-उस व्यक्ति में (पर्याय में) व्याप्त होनेवाले सभी को,....** वह-वह पर्याय जो पहले वर्णन की, ऐसी अवस्था में व्याप्त पंच परमेष्ठी हैं, उनको फिर स्मरण किया। फिर याद करने का कारण क्या है ? समझ में आया ? कि पहले सामान्य रीति से वन्दन किया था, अब सबको मिलाकर समुदायरूप से वन्दन करता हूँ और एक-एक को भी वन्दन करता हूँ, ऐसा डालने को यहाँ फिर याद किया है। समझ में आया ? पहले तो वन्दन सामान्यरूप कहा, उसमें व्यक्तिगत एक-एक को और समुदाय को, ऐसा भेद नहीं किया था। तो ऐसा भेद करने में भी साथ में ले लिया। वरना तो पहले तो वन्दन किया था। समझ में आया ?

तत्पश्चात् इन्हीं.... इन्हीं पंच परमेष्ठी को। इन्हीं अर्थात् वही पंच परमेष्ठी। वर्धमान भगवान, अनन्त तीर्थंकर और सर्वसिद्ध और आचार्य, उपाध्याय और साधु। जो लिया। **इन्हीं पंच परमेष्ठियों को, उस-उस व्यक्ति में (पर्याय में) व्याप्त...** अपनी-अपनी जो पर्याय वहाँ कही थी, शुद्ध सत्तावाले, अस्तित्ववाले, शुद्ध उपयोगवाले वह अपनी पर्याय में व्याप्त **होनेवाले सभी को...** ओहोहो ! समझ में आया ? **वर्तमान में इस क्षेत्र में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभाव होने से...** और वर्तमान में इस क्षेत्र में... यह भूतकाल की बात कही, वर्तमान में इस क्षेत्र में तीर्थंकर का अभाव होने से **महाविदेहक्षेत्र में उनका सद्भाव होने से...** आहाहा ! देखो ! महाविदेहक्षेत्र सिद्ध किया। वहाँ पर भगवान सीमन्धर परमात्मा आदि विराजमान हैं। ऐसे याद किया। वहाँ गये थे। आठ दिन रहे थे। और कहते हैं कि वर्तमान तीर्थंकर का यहाँ अभाव, महाविदेह में सद्भाव। तो वर्तमान में कहीं नहीं है, ऐसा नहीं है। वर्तमान में यहाँ नहीं है। समझ में आया ? परन्तु वर्तमान में सब क्षेत्र में नहीं, ऐसा नहीं। आहाहा ! वर्तमान का भाग कर दिया। भूतकाल के परमेष्ठी सब सिद्ध, तीर्थंकर, आचार्य, उपाध्याय, साधु, सबको—पंच परमेष्ठी को नमस्कार किया, फिर याद करता हूँ कि एक-एक व्यक्ति को भिन्न कर-करके। अरे ! अनन्त सिद्ध हुए, अनन्त आचार्य, उपाध्याय, साधु हुए। एक-एक व्यक्ति को (वन्दन करने में)

कितना काल लगे तुझे ? मैं तो एक समय में अनन्त को नमस्कार करता हूँ। आहाहा ! प्रत्येक-प्रत्येक को और समुदायरूप को एक क्षण में साथ में वन्दन करता हूँ। सामान्य और विशेष दोनों हुए। युगपद् वन्दन सबको सामान्य, एक-एक वन्दन एक-एक को विशेष। समझ में आया ? ओहोहो ! कितने अनन्त ? तीर्थंकर, अनन्त सिद्ध आदि यह और वर्तमान भगवान का विरह होने से महाविदेहक्षेत्र में उनका सद्भाव—अस्ति होने से, साक्षात् भगवान तीर्थंकर महाविदेह में विराजमान परमात्मा हैं, अनन्त केवलज्ञानादि पहले जो तीर्थंकर का स्वरूप वर्णन किया, ऐसे ही तीर्थंकर वर्तमान में यहाँ भरत (क्षेत्र) में नहीं, ऐसे ही तीर्थंकर महाविदेहक्षेत्र में मौजूद है। ओहोहो !

कहते हैं, **मनुष्यक्षेत्र में प्रवर्तमान...** मनुष्यक्षेत्र में वर्तमान है, प्रवर्तमान। खास वर्तमान है। **तीर्थनायकयुक्त...** तीर्थंकर को याद करना है न ? ऐसा तीर्थ का नायक ऐसे सहित **वर्तमानकालगोचर करके,...** क्या कहते हैं, देखो ! **तीर्थनायकयुक्त...** यह वहाँ लिया, बस। अब सबको **वर्तमानकालगोचर करके...** अब सब लिये इसमें, भाई ! आहाहा ! **(महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान श्री सीमन्धरादि तीर्थंकरों की भाँति मानों सभी पंच परमेष्ठी भगवान वर्तमानकाल में ही विद्यमान हों, इस प्रकार अत्यन्त भक्ति के कारण भावना भाकर-चिन्तवन करके उन्हें)....** क्या कहते हैं ? अनन्त जो पहले अतीत तीर्थंकर हुए, वर्धमान भगवान का नाम लिया और अनन्त सिद्ध हुए, आचार्य, उपाध्याय, साधु हुए। समझ में आया ? उनको मैं मानो वर्तमान हो न सब। काम तो वर्तमान में चलता है न ! समझ में आया ? मेरा ज्ञान, दर्शन आदि वन्दन का उपयोग तो वर्तमान चलता है, तो वर्तमान में मानो प्रत्यक्ष सब है एक... एक... एक... आदि अनन्त, सब भूतकाल के और वर्तमान के सब वर्तमान की भाँति मुझको ख्याल में आता है, कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? अरे... परन्तु अनन्त काल पहले हुए, जिसकी आदि नहीं सिद्ध की, उसमें वर्तमान काल तेरे आ गया ? सुन तो सही भगवान ! मेरा उपयोग इतना लागू हो गया कि भूतकाल की आदि नहीं परन्तु सबको एक.... एक... एक... तो एक-एक में तो आदि नहीं तो उसको कैसे लिया तूने ? चन्दूभाई ! आहाहा ! वर्तमान... वर्तमान... मुझे तो सब वर्तमान है। मेरी पर्याय शुद्ध वर्तमान है न ! तो उससे मैं सब वर्तमान को ही देखता हूँ। सब तीर्थंकर ऐसी-ऐसी पर्याय। यह सबको

वर्तमानकालगम्य करके, वर्तमानकालगोचर करके, वर्तमानकाल में मानो विराजता हूँ, ऐसे ज्ञेय बनाकर। आहाहा! वर्तमानकाल गम्य करके। गोचर है न? मानो वर्तमानकाल में विद्यमान हो।

अत्यन्त भक्ति के कारण भावना भाकर-चिन्तवन करके... ओहोहो! त्रिलोकनाथ परमात्मा, सिद्ध, पंच परमेष्ठी, श्रमण आदि सब और वर्तमान मानो, ऐसे वर्तमान लिया और पश्चात् सबको वर्तमान कर दिया। वर्तमान यहाँ नहीं, यहाँ नहीं, यहाँ है—ऐसे सब मेरे तो वर्तमान यहाँ ही है, ऐसा मैं जानता हूँ। आहाहा! अनन्त तीर्थंकरों को भूतकाल और वर्तमान समीप में ला दिया, ले लिया। मेरे काल का विरह है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली कोई गजब जैनशासन में!! जैनशासन में जगत के समक्ष रखने की पद्धति अलौकिक है! ओहोहो! आत्मा उछल जाये अन्दर से, ऐसी चीज़ है। समझ में आया? कहते हैं कि ऐसा भगवान पंच परमेष्ठी, प्रभु! परन्तु क्या कहते हो तुम? आदि नहीं सिद्ध में उसका प्रत्येकपना तुमने कहाँ से निकाला? ऐई! पण्डितजी! ऐई! वजुभाई! परन्तु आदि नहीं और प्रत्येक कहाँ से निकाला एक-एक को? एक-एक को तो आदि हो जाती है, भाई! प्रत्येक-प्रत्येक, एक-एक... एक-एक... एक-एक... और समुदाय सबको मैं वन्दन करता हूँ। सिद्धों की, पंच परमेष्ठी की सब जाति इकट्ठी की। समझ में आया? अपने उपयोग में सब सिद्धों की जाति इकट्ठी की। वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान... ओहोहो!

कहते हैं, **युगपद् युगपद् अर्थात् समुदायरूप से...** नहीं तो पहले तो आ गया था भूतकाल के तीर्थंकर आदि, परन्तु इसमें नाम लेने को युगपद् और प्रत्येक भिन्न करने को नाम लिया। ओहोहो! वीतराग के दरबार में प्रवेश करते हैं, ऐसी बात है यह तो। वीतरागी दरबार खड़ा कर दिया पर्याय में, ऐसा कहते हैं। सारे वीतरागी परमेश्वर मेरी पर्याय में आ गये। .... शब्द है या नहीं? समझ में आया? है न, भगवान देखो न! पुस्तक सामने है या नहीं? क्या है, देखो! ओहोहो! अनन्त सिद्धों का दरबार और वर्तमान तीर्थंकर का दरबार अपने उपयोग में वर्तमान काल कर लिया है।

कहते हैं, सबको **युगपद् युगपद् अर्थात् समुदायरूप से और प्रत्येक प्रत्येक को अर्थात् व्यक्तिगतरूप से सम्भावना करता हूँ।** मैं तो व्यक्तिगतरूप से सम्मान देता हूँ,

व्यक्तिगतरूप से मैं उनको आराध्य मानता हूँ। आहाहा! प्रवचनसार में कहने की शैली में पहले... समझ में आया? **और प्रत्येक प्रत्येक को...** यहाँ तो विशेष यहाँ है, भाई! प्रत्येक-प्रत्येक को, ओहो! अनन्त-अनन्त पुद्गलपरावर्तन में अनन्त सिद्ध हुए, अनन्त-अनन्त पुद्गलपरावर्तन का। एक चौबीसी में दस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम, तो एक चौबीसी में भी असंख्य सिद्ध होते हैं, एक चौबीसी में असंख्य सिद्ध। ऐसी अनन्त चौबीसी एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में आती है। इतना तो एक पुद्गलपरावर्तन में अनन्तवें भाग में सिद्ध की संख्या, ऐसा पुद्गलपरावर्तन और ऐसे अनन्त पुद्गलपरावर्तन से सिद्ध होते हैं। प्रत्येक को वन्दन करता हूँ। अरे! प्रभु! क्या कहते हो तुम! आहाहा! नवरंगभाई!

मुमुक्षु : .... खड़ा हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना बड़ा ... परमात्मा को समाहित कर दे अनन्त को। आहाहा! समझ में आया?

अनन्त पुद्गलपरावर्तन। प्रभु! तुम प्रत्येक-प्रत्येक को (वन्दन करते हो)! आहाहा! पद्धति, वह पद्धति कोई! **प्रत्येक प्रत्येक को अर्थात् व्यक्तिगतरूप से सम्भावना करता हूँ।** नाथ! अनन्त सिद्धों को, अनन्त तीर्थंकरों को, आचार्य, उपाध्याय, साधु को एक-एक को, एक-एक को लगातार भगवान सब वर्तमान विराजते हैं लगातार ऐसे। आहाहा! सिद्ध होना है अल्पकाल में, उनकी लाईन में बैठना है न! **प्रत्येक प्रत्येक को अर्थात् व्यक्तिगतरूप से सम्भावना करता हूँ।** महाराज! अनन्त पुद्गलपरावर्तन के एक-एक सिद्ध को भिन्न करके कि तुम्हारे तो पुद्गलपरावर्तन चाहिए पूरा वन्दन करने को तो। भाई! समझ में आया? अरे! भगवान! सुन तो सही! केवलज्ञान की एक पर्याय में सारा लोकालोक समा जाता है तो मेरी पर्याय में सारे अनन्त तीर्थंकर वर्तमान में सब आ गये हैं। समझ में आया?

यह प्रवचनसार का मंगलाचरण होता है। कल से शुरु हुआ बहिन के जन्मदिवस से। ५५वाँ वर्ष लगा बहिन को। जन्म की बात नहीं, हों! धर्म की बात है। धर्म का जन्म हुआ, उसका यह महोत्सव है। समझ में आया? आहाहा! पंच परमेष्ठी। आज तुम्हारे... मण्डप में पत्र लिखते हैं न कि आप आये तो मण्डप की शोभा विशेष होगी। लिखते हैं? हिन्दी में लिखते हैं या नहीं तुम्हारे? विवाह में। आपके आने से हमारा मण्डप...

यहाँ तो कहे हमारे पास आप विराजते हो तो हमारी शोभा बढ़ गयी है। समझ में आया?

यह यहाँ कहेंगे अभी स्वयंवर मण्डप कहेंगे। यह मेरी दीक्षा का स्वयंवर मण्डप है। ऐसा कहेंगे। मैं सबको बुलाकर मेरी दीक्षा में उपस्थित—हाजिर रखता हूँ। आहाहा! पण्डितजी! वह देव को हाजिर नहीं रखा, परमेष्ठी को हाजिर रखा, सब आओ। यहाँ तो अनन्त सिद्ध, अनन्त तीर्थंकर। हमारे स्वयंवर दीक्षा, दीक्षा को मैं अंगीकार करता हूँ, शुद्ध उपयोग में आप उपस्थित—हाजिर रहो नाथ! आहाहा! और हमारी केवलज्ञान लक्ष्मी न फिरे। आप जैसा हमारी दीक्षा के समीप में है, विवाह में भी अच्छे पुरुष को ले जाये—करोड़पति को ले जाये तो उसकी कन्या न फिरे। उसके पिताजी कदाचित् ऐसा कहे कि लाओ मेरे एक लाख रुपये चाहिए अभी, वरना कन्या का विवाह नहीं करूँगा। आठ बज गयी है। पाँच मिनिट, दस मिनिट जरा देरी लगे तो करोड़पति साथ में हो। सौ-पचास लोगों को विवाह में ले जाते हैं न। तो उसका करोड़पति कहे कि यह क्या हुआ? आठ बज गये और कन्या क्यों नहीं आती है? कानाफूसी-कानाफूसी हो, कान में बात पड़ गयी कि उसके पिता पैसा माँगते हैं, एक लाख माँगते हैं। यहाँ तो पच्चीस हजार भी नहीं, क्या करना? .... उठकर अन्दर जाये। क्या है? कन्या नहीं मिलेगी, लाख (रुपये दो)। अरे! अभी! अपना लाख रुपये का हार दे देवे। मैं जिसके साथ हूँ, उसकी कन्या नहीं फिरेगी। समझ में आया? मैं जिसके साथ... समझ में आता है? मैं जिसके साथ हूँ, उसकी कन्या का समय फिरेगा नहीं। समय हो, उस समय कन्या देनी पड़ेगी। पैसा ले ले। समझ में आया? क्या हुआ बाहर में खबर न पड़े। जाओ। परमात्मा हमारी दीक्षा में, मैंने आपको साथ में रखा, हमारी केवलज्ञान लक्ष्मी जो है, वह तीन काल में फिरेगी नहीं। पुकार यह है। पद्मचन्दजी! यह बाहर का तो दृष्टान्त है। यह तो अन्दर की बात है।

कहते हैं, ओहो! सम्भावना की व्याख्या है न नीचे! **सन्मान, आराधना....** भगवान! मैं प्रत्येक व्यक्ति को कितनी आस्था का विषय बड़ा! उतना सिद्धों को प्रत्येक को मैं आराधता हूँ। ओहोहो! अप्रतिहतभाव बतलाते हैं। समझ में आया? अप्रतिहतभाववाले परमात्मा हुए, उनको प्रत्येक को मैं वन्दन करता हूँ। प्रत्येक को। ओहोहो! गजब करते हैं! इतने अनन्त पुद्गलपरावर्तन के सिद्ध एक-एक, प्रभु! तुमने

एक-एक निकालकर अल्प उपयोग में इतना कैसे तुमने उनका आराधन किया? मेरे अनन्त गुण—समाज उसका मैंने आराधन किया है, (तो) सबको मैंने आराधन किया, ऐसा मैं प्रत्येक को वन्दन करता हूँ। ओहोहो! यह शब्द निमित्तरूप से उसकी नैमित्तिक अन्तर की स्थिति क्या है, उसको प्रसिद्ध करता है। समझ में आया? इतना प्रत्येक वन्दन का जो उपयोग है, यह तो भाषा आयी, ऐसी वाणी निमित्त, उसकी उपयोग की निर्मलता की और अप्रतिहतभाव की वह प्रसिद्धि करता है। इसी सम्यग्दर्शनभाव से सिद्धपद लेना है, ऐसा कहते हैं। उसमें पड़ना, फिर पड़ना (गिरना), ऐसा है नहीं। समझ में आया? मैंने अनन्त सिद्धों को पक्ष में ले लिया है। आहाहा!

वह कृष्ण में आता है न कृष्ण में, भाई सूरदास में आता है। सूरदास में ऐसी क्रीड़ा आती है। आँख से अन्ध था सूरदास। कृष्ण का हाथ पकड़ लिया था। तो कृष्ण हाथ छोड़कर चले गये। सूरदास कहते हैं, नाथ! मेरा हाथ छोड़कर चले गये, मेरे हृदय से नहीं चले जायेंगे। आहाहा! सूरदास कहते हैं। कृष्ण! कृष्ण! ऐसी पुकार करते थे। आँख बन्द थी न। सूरदास थे। कृष्ण! हाथ पकड़ा था पहले, छुड़ाकर चले गये। देखते नहीं। कृष्ण! मेरे हृदय से आप नहीं निकल गये। हाथ छोड़कर चले गये उसमें क्या हुआ? समझ में आया? इसी प्रकार यह कहते हैं अनन्त काल से भिन्न हो गया हमारे से, परन्तु हमारे कलेजे में से आप अनन्त नहीं निकले। आहाहा!

किस प्रकार से सम्भावना करता हूँ? देखो, अब आया। **मोक्षलक्ष्मी के स्वयंवर समान...** देखो! स्वयंवर। मैं मोक्ष की पर्याय को प्राप्त करने में, मैंने दीक्षा में प्रसन्न किया है। स्वयंवर में वह कन्या वर को पसन्द करती है न! पहले रिवाज था न! हजारों राजकुमारों को बुलावे मण्डप में, कन्या पास करे, उसके साथ विवाह करे। स्वयंवर। स्वयं-प्रसिद्ध करने का जो वर है, उसको वरते हैं। उसका नाम स्वयंवर। उसके माता-पिता उसका सम्बन्ध नहीं करते। समझ में आया? यह द्रौपदी आदि का कथन आता है न स्वयंवर। हजारों राजकुमार हों और उसकी दासी हो, वह दर्पण लेकर, ऐसे मुख न देखे। दर्पण दिखावे। उसमें वह फोटो ले, तो कन्या को बतावे। यह कुमार ऐसा है, ऐसा है, पाण्डव है, ऐसा पराक्रमी है, मुख देखे दर्पण में, हों! सामने न देखे। अर्जुन आया अर्जुन ऐसा है। स्वयंवर माला डाल दी। ऐसे अनन्त सिद्ध दूर हैं, परन्तु हमने नजदीक कर

लिया, उनको मैंने वर लिया, उनका मैं आदर करता हूँ, वन्दन करता हूँ मैं प्रत्येक को।

ऐसी मेरी मोक्षलक्ष्मी के स्वयंवर। देखो! **परम निर्ग्रन्थता की दीक्षा का...** आहाहा! धन्य अवतार है न! **परम निर्ग्रन्थता की दीक्षा का...** परम वीतरागता की दीक्षा का **उत्सव है....** कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मेरे तो परम दीक्षा का उत्सव है। आहाहा! आनन्दमय प्रसंग मेरा है, मुझे तो आनन्दमय प्रसंग है। मैं स्वयं स्थान को वर्तता हूँ, शुद्ध उपयोग को मैं स्वयं प्राप्त करता हूँ, किसी के आश्रय बिना मेरी पसंदगी शुद्ध उपयोग की है। आहाहा! धन्नालालजी! आहाहा! कहते हैं? **परम निर्ग्रन्थता की दीक्षा का उत्सव है, उसके उचित...** मैं स्वयंवर समान। आहाहा! यह बात करते हैं। सबको याद करके फिर भाई! यह कहा। मेरी दीक्षा का स्वयंवर मण्डप है, इसलिए तुम सबको बुलाया है। समझ में आया? यहाँ तुम्हारे विवाह के पश्चात् बड़ों के पैद छूते हैं। यह तो मेरा स्वयंवर मण्डप है, इसलिए सबको वन्दन करता हूँ। तुम्हारे है न नवरंगभाई! विवाह होने के पश्चात् बड़ों के (पैर छूते हैं), अच्छा किया तुमने मुझे डाला कुँए में। पैर छूते हैं। एक बार मैंने देखा है। हमारे फावाभाई के विवाह के समय। (संवत्) १९६४ के वर्ष की बात है। संवत् ६४। आहाहा!

ओहो! **मोक्षलक्ष्मी के स्वयंवर समान...** मैंने मेरी पसन्दगी शुद्ध उपयोग की शुद्ध उपयोग की दीक्षा की मैंने पसन्दगी की है। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य अपनी प्रसिद्धि इस भाव से करते हैं। **उसके उचित....** उसके उचित, हों! उसके उचित। **मंगलाचरणभूत जो कृतिकर्मशास्त्रोपदिष्ट वन्दनोच्चार (कृतिकर्मशास्त्र में उपदेशे हुए स्तुतिवचन) के द्वारा सम्भावना करता हूँ।** लो! नीचे है कृतिकर्म। **अंग बाह्य १४ प्रकीर्णकों में छट्ठा प्रकीर्णक कृतिकर्म है, जिसमें नित्यनैमित्तिक क्रिया का वर्णन है।** उस प्रकार से मैं वन्दन करता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अब इस प्रकार अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा सर्व साधुओं को प्रणाम और वन्दनोच्चार से प्रवर्तमान द्वैत के द्वारा, भाव्यभावक भाव से उत्पन्न अत्यन्त गाढ़ इतरेतर मिलन के कारण... मैं इतना भगवान परमेष्ठी आदि को वन्दन करता हूँ। करते-करते यह मेरा आराध्य है, मैं आराधक हूँ—ऐसा भूल जाता हूँ। वीतरागी उपयोग मेरा होता है, वह अद्वैत नमस्कार है। पहले तो विकल्प से किया। करते... करते... उपयोग जब

अन्तर में जम गया, तो छठवें गुणस्थान में जैसा विकल्प था ऐसा... ऐसा... ऐसा... विकल्प था। फिर जम गया अन्दर। अपना उपयोग अपने में रह गया। आराध्य और आराधक मैं ही हूँ। आराधना योग्य दूसरा और आराधक मैं, यह बात अद्वैत नमस्कार में छूट गयी।

समस्त स्वपर का विभाग विलीन हो जाने से जिसमें अद्वैत प्रवर्तमान है, ऐसा नमस्कार करके,.... लो! ऐसा भगवान आत्मा को पंच परमेष्ठी को मैं नमस्कार करता हूँ। **उन्हीं....** पंच परमेष्ठी जो हैं **अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधुओं के आश्रम को,...** क्या कहते हैं? जैसे मठ में सन्त मिलता है, बड़ा आश्रम हो न, वहाँ उसका मालिक मिले न! बड़ा मठ है, उसके महन्त कहाँ रहते हैं? कि उस आश्रम में। वैसे पंच परमेष्ठी कहाँ रहते हैं? सम्यग्दर्शन-ज्ञान में। सम्यग्दर्शन-ज्ञान वह पंच परमेष्ठी का आश्रम है। आहाहा! वाह रे वाह! समझ में आया?

मुमुक्षु : सुनी नहीं पहले।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनी नहीं? सुने बिना लोग आलोचना करते हैं न! पहले सुनना चाहिए, समझना चाहिए, भगवान! यह तो परमेश्वर की बात है। यह कोई कल्पना की या गच्छ की ऐसी नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

सर्व साधुओं के आश्रम को—जो कि विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधान होने से... उस आश्रम में सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रधान है, तो ऐसा सम्यग्ज्ञान-दर्शन प्राप्त करके मैं चारित्र प्राप्त करता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अकेला साम्यभाव सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना प्राप्त होता नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! **विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधान होने से सहजशुद्ध-दर्शनज्ञानस्वभाववाले आत्मतत्त्व का श्रद्धान और ज्ञान जिसका लक्षण है, ऐसे...** देखो! स्वाभाविक शुद्ध दर्शन आत्मा अखण्डानन्द प्रभु की प्रतीति, उसका ज्ञान ऐसा स्वभाववाला, ऐसा स्वभाववाला आत्मतत्त्व। सहजशुद्धदर्शन-ज्ञान त्रिकाली बात वह तो है। त्रिकाली दर्शन-ज्ञान सहजस्वभाव उसका आत्मतत्त्व। **श्रद्धान और ज्ञान जिसका लक्षण है, ऐसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का सम्पादक है...** कहो, समझ में आया? सम्पादक है न? प्राप्त करानेवाला, उत्पन्न करानेवाला। ऐसा दर्शन-ज्ञान प्राप्त करके मैं वीतरागभाव, साम्यभाव, शुद्ध उपयोगभाव, निर्विकल्प भाव अंगीकार—दीक्षा लेता हूँ। यह मेरी दीक्षा। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ११, मंगलवार, दिनांक ०३-०९-१९६८
श्लोक - १ से ३, गाथा - १ से ५, प्रवचन - १

भगवान की ॐ ध्वनि का सार उसका नाम प्रवचनसार कहा जाता है। प्र अर्थात् विशेष। प्रवचन—भगवान की दिव्यध्वनि में से निकले हुए, उसका सार कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने भगवान के समीप जाकर सुना हुआ है, ॐध्वनि सुनी हुई और यहाँ आकर प्रवचनसार आदि रचना की। उसमें प्रथम अमृतचन्द्राचार्य यह प्रवचनसार की गाथा का जो मंगलाचरणरूप से टीका करनेवाले पहला मंगलाचरण करते हैं। **'नमः श्रीसिद्धेभ्यः' 'नमोऽनेकान्ताय' श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री प्रवचनसार ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन।** इसकी टीका का नाम। मूल श्लोक प्रवचनसार कुन्दकुन्दाचार्यकृत और अमृतचन्द्राचार्यकृत ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन। ज्ञान का सार, उसका कथन। उसकी टीका का पहला मंगलाचरण अमृतचन्द्राचार्य का। यह पहला मंगलाचरण है, यह पहले पढ़ गये हैं। यह अमृतचन्द्राचार्य का—टीका करनेवाले का महा मंगलाचरण प्रथम कहने में आता है।

सर्वव्याप्येकचिद्रूपस्वरूपाय परात्मने।
स्वोपलब्धिप्रसिद्धाय ज्ञानानन्दात्मने नमः॥१॥

इस टीका का जो मंगलाचरण है न, इसका अर्थ है अब नीचे। **अमृतचन्द्राचार्यदेव श्लोक द्वारा मंगलाचरण करते हुए ज्ञानानन्दस्वरूप परमात्मा को नमस्कार करते हैं:—**

अर्थ :— सर्वव्यापी.... देखो! आत्मा की उत्कृष्ट दशा कैसी है? कहते हैं कि उसका ज्ञान सर्वव्यापी है। सर्व को जानना, उसका नाम सर्वव्यापी। **सर्वव्यापी (सबका ज्ञाता-दृष्टा)....** ज्ञान की जो पर्याय पूर्ण जिसे प्रगट हुई है, उन सबको—तीन काल-तीन लोक को जानता-देखता है। इसलिए वह सब क्षेत्र को, सब द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में मानो व्याप्त हो गया हो। जानता है, ऐसा व्याप्त हो गया, ऐसा कहा जाता है। ऐसे **एक चैतन्यरूप...** लो, जहाँ अब भेद नहीं रहा। साधक में तो अभी ज्ञान की पर्याय अपूर्ण होती है। पूर्ण एक चैतन्यस्वरूप, एक चैतन्यस्वरूप पर्याय, हों! एक चैतन्यस्वरूप मात्र

जिसका स्वरूप है... ऐसा आत्मा। अनन्त गुणों में अन्दर अविनाभावरूप से आ जाता है। परन्तु चैतन्यस्वरूप जिसका मूल स्वरूप है। **और जो स्वानुभवप्रसिद्ध है....** आत्मा की स्वानुभूति से वह प्रसिद्ध हो सकता है। समझ में आया?

जो आत्मा का स्वरूप चैतन्यस्वरूप है, वह स्वानुभवप्रसिद्ध—अन्तर के अनुभव द्वारा प्रसिद्ध अर्थात् प्रगट हो सकता है। समयसार में यह....

मुमुक्षु : किसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा को। अनुभव करे उसे। उस परमात्मा में जो प्रसिद्ध हुए, वह भी जो स्वानुभव प्रसिद्ध करे, उसे स्वयं अपना आत्मा प्रसिद्ध होता है, ऐसा कहते हैं। जिसे प्रसिद्ध हो गया है, ऐसा परमात्मा। और जो प्रसिद्ध होने के योग्य ही है, वह आत्मा। भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप स्व-अनुभव से प्रसिद्ध होने के और प्रगट होने के योग्य है। ऐसे जो परमात्मा। यहाँ वन्दन करते हैं परमात्मा को, परन्तु मैं भी ऐसा हूँ प्रसिद्ध होने के योग्य, साथ में ऐसा कहते हैं। और उन्होंने भी स्वानुभव से पर्याय प्रगट की है। समझ में आया?

केवलज्ञानी परमात्मा ने प्राप्त किये अनन्त दर्शन और आनन्द, वह स्वानुभव की प्रसिद्धि से प्राप्त हुए हैं। समझ में आया? **(शुद्ध आत्मानुभव से प्रकृष्टतया सिद्ध है)...** पूर्ण प्रगट हुए। **उस ज्ञानानन्दात्मक...** दो वस्तु पूरी मूल वस्तु में। ज्ञान और आनन्दस्वरूप बस, मुख्य वस्तु। ज्ञान और आनन्दस्वरूप ऐसे जो परमात्मा, उत्कृष्ट जो परमात्मा अर्थात् आत्मा। जिसकी दशा पूर्ण हो गयी है, ऐसे उत्कृष्ट अर्थात् पर-आत्मा उन्हें नमस्कार करता हूँ। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : की न बात। चैतन्यस्वरूप जिसका है, जिसने अनुभव से प्रगट किया है और प्रगट में मुख्य वस्तु यह। अनन्त गुण भले दूसरे प्रगट हुए, परन्तु जिसने ज्ञान की पूर्णता और आनन्द की पूर्णता प्रगट की, ऐसा उत्कृष्ट आत्मा, उसे नमस्कार करता हूँ। कहो, समझ में आया? उसे मैं नमता हूँ। ऐसे परमात्मा के अतिरिक्त मैं दूसरे को नमता नहीं। देखो! आत्मा में परमात्मा की दशा की प्रगटता की प्रतीति के भानपूर्वक

वन्दन करते हैं। अहो! जिसका ज्ञान और आनन्दरूप शक्तिरूप से था, उन्हें प्रगटरूप से परिणम गया, प्रगट हो गया। ऐसे उत्कृष्ट आत्मा ऐसी पर्याय को प्राप्त हैं, उन्हें मैं मेरे लक्ष्य में लेकर उन्हें नमता हूँ। समझ में आया? अर्थात् कि कोई इस जगत के कर्ता हैं, ऐसा नहीं, परन्तु सर्व के जाननेवाले-देखनेवाले वे हैं, ऐसा कहा। किसी चीज़ के कर्ता हैं परमात्मा, ऐसा परमात्मा हो नहीं सकता। परमात्मा उसे कहते हैं कि सर्व को—तीन काल-तीन लोक को जाने। ऐसी अपनी ही पर्याय की प्रगटता करके अपने को जाने, ज्ञान को, आनन्द को अनुभव करे। ऐसे परमात्मा आत्मा की उत्कृष्ट दशा को प्राप्त हुए हैं, उन्हें नमस्कार करता हूँ। समझ में आया?

यह बड़ा मांगलिक किया। मम् अर्थात्, मम् अर्थात् ममता, उसे गलावे अथवा मंग अर्थात् पवित्रता, आनन्द, उसे लाती—प्राप्ति करे। ऐसे परमात्मा को अन्तर में स्थापते, अन्तर की ओर स्वरूप में झुकने से जो आत्मा में अन्दर झुकाव का नमन होता है, उसमें शान्ति और आनन्द की प्राप्ति होती है, अशान्ति और दुःख का नाश होता है। कहो, समझ में आया? उसे यह मंगलाचरणरूप से (कहते हैं)। साधु स्वयं मंगलस्वरूप आचार्य हैं, अमृतचन्द्राचार्य। परन्तु उत्कृष्ट पर्याय को प्राप्त नहीं तो उन्हें (परमात्मा को) नमस्कार करते हैं।

(अब अनेकान्तमय ज्ञान की मंगल के लिये....) अब ज्ञान को—शास्त्र को नमस्कार। पहले देव को नमस्कार करे, फिर शास्त्र को। ऐसा है न? देव-शास्त्र-गुरु तीन। आता है न मांगलिक में वन्दन में? पहले देव को नमस्कार किया कि देव ऐसे होते हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर और पूर्णानन्द को प्राप्त ऐसे देव होते हैं। दिव्यशक्ति को प्राप्त किया, उन्हें देव कहा जाता है। किसी के कर्ता-हर्ता, किसी को दे देवे, ऐसे देव हो सकते नहीं। अब ज्ञान का अर्थात् शास्त्र का स्वरूप। अनेकान्तमय वीतराग की वाणी अथवा अनेकान्तमय आत्मा का ज्ञान, उसे यहाँ याद करके नमस्कार करते हैं।

हेलोल्लुप्तमहामोहतमस्तोमं जयत्यदः।
प्रकाशयज्जगत्तत्त्वमनेकान्तमयं महः ॥२॥

कैसा है तेज—आत्मा का ज्ञानतेज? **महामोहरूपी अन्धकारसमूह को लीलामात्र में नष्ट करता है...** भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, राग और दुःखरूप नहीं।

ऐसा जो अनेकान्त ज्ञान... समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्दमय है। और वह अज्ञान तथा दु:खरूप नहीं। ऐसा जो अनेकान्त ज्ञान, वह ज्ञान महा मोहरूपी अन्धकार... महामोह शब्द से मिथ्यात्व। महा मिथ्याभ्रान्ति, मिथ्या अभिप्राय ऐसा जो महामोह मिथ्यात्वशल्य। ऐसे अन्धकार को **अन्धकारसमूह को...** मिथ्याज्ञान का अन्धकार समूह (को) **लीलामात्र में नष्ट करता है...** आनन्द का अनुभव करते-करते वह नाश हो जाता है। दु:ख से नाश हो जाता है, ऐसा है नहीं। लीलामात्र में। बहुत कष्ट सहन करना पड़े और बहुत करना पड़े और कर्म खपे, ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अनेकान्त ज्ञान। चैतन्यमूर्ति चैतन्यपने है, आनन्दपने है; रागपने नहीं, परपने नहीं। एक-एक गुण एक-एकपने है, दूसरे गुणपने नहीं—ऐसा अनेकान्त का जो अन्तर ज्ञान महामोह को नष्ट करके लीलमात्र में जो व्यय कर डालता है। लीला अर्थात् आनन्द की लहर, मौज करते-करते, ऐसा। कहो, समझ में आया? भाई! धर्म तो कष्टदायक हो और दु:ख बहुत सहन करना पड़े, तब धर्म हो, ऐसा इनकार करते हैं। धर्म कष्टदायक होता नहीं।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय और ज्ञान की मूर्ति उसका जो अन्तर स्वसंवेदनज्ञान, वह ज्ञान कैसा है? कि अन्तर की एकाग्रता के आनन्द की लहर में मोह का बात की बात में अथवा लीलामात्र में उसका नाश कर डालता है। समझ में आया? **और जगत के स्वरूप को प्रकाशित करता है...** जगत का तीन काल-तीन लोक का स्वरूप जो ज्ञान में ज्ञात होता है। प्रकाश ऐसी जो ज्ञानमूर्ति आत्मा अथवा ज्ञानसम्पदा, वह अपने स्वरूप को (और) पर को जाने, ऐसे ज्ञान को याद करके नमस्कार करते हैं। **ऐसा अनेकान्तमय तेज...** तेज अर्थात् ज्ञान। अनेकान्तमय तेज ज्ञान। ऐसा **तेज सदा जयवन्त है।** सदा वह ज्ञान जयवन्त वर्तता है। ऐसा कहकर मांगलिक किया है। अथवा अपना भगवान आत्मा जिस ज्ञान से ज्ञात हुआ—अनेकान्तमय ज्ञान से ज्ञात हुआ, वह जाना, वह जयवन्त वर्तता है। ऐसा का ऐसा रहेगा, वह मेरी साधकदशा प्रगट हुई है, वह जयवन्त रहेगी। उसमें से ही मैं पूर्ण परमात्मा को (प्राप्त करूँगा)। ऐसे प्रथम स्वसंवेदनज्ञान को नमस्कार किया है। कहो, समझ में आया? यह धर्म कैसे हो, वह भी इकट्ठा आता

है, परमात्मपद कैसे प्राप्त हो, वह भी इकट्ठा आ जाता है इसमें। कहो, सेठी! आ जाता है या नहीं इसमें? आ जाता है? **सदा जयवन्त है।** भाषा देखी! वह तेज—अनेकान्तमय ज्ञान सदा जयवन्त वर्तता है। समझ में आया?

(अब, श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव श्लोक द्वारा अनेकान्तमय जिनप्रवचन के सारभूत इस प्रवचनसार शास्त्र की टीका करने की प्रतिज्ञा करते हैं:-) किसके लिये करता हूँ? यह टीका किसके लिये करता हूँ?

परमानन्दसुधारसपिपासितानां हिताय भव्यानाम्।
क्रियते प्रकटिततत्त्वा प्रवचनसारस्य वृत्तिरियम्॥३॥

पहले तो मांगलिक किया, देव को नमस्कार किया और सम्यग्ज्ञान को नमस्कार किया। करके अब किसके लिये टीका होती है, (यह कहते हैं)।

अर्थ : परमानन्दरूपी सुधारस के पिपासु... आत्मा, वह तो परमानन्द की मूर्ति स्वभाव है, ऐसे परमानन्दरूपी सुधारस—अमृतरस। देखो! सुधारस—अमृतरस के जो पिपासु हैं। जिन्हें स्वर्ग-नरक नहीं चाहिए, चार गति नहीं चाहिए, पुण्य नहीं चाहिए। वह भव्य जीव जिसे पुण्य नहीं चाहिए, पुण्य के फल नहीं चाहिए, चार गति नहीं चाहिए। वह चाहिए है सुधारस के आनन्द की भावना करके आनन्द-परमानन्द। दुनिया का ध्येय तो सुख का है या नहीं? सुख का ध्येय है न? वह कौन सा सुख? कहते हैं। आत्मा का... देखो! परमानन्द। परम आनन्द अतीन्द्रिय आत्मा का स्वभाव, उसकी जिसे पिपासा है। जो पुण्य के अर्थी हैं, पुण्य के फल के अर्थी हैं, उनके लिये यह टीका नहीं, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? यह व्यवहार के—राग के अर्थी हैं, उनके लिये यह टीका नहीं, कहते हैं। उसे नहीं रुचे, नहीं सुहाये।

परमानन्दरूपी सुधारस—अमृतरस। है न पाठ में है न यह? सुधारस। अमृतचन्द्र नाम भी आ जाता है सुधारस—अमृतरस। पिपासु। जैसे तृषा लगी हो पानी की और उसे जब मौसम्बी का पानी मिले, उसे दिया जाता है, जिसे तृषा लगी हो उसे। इसी प्रकार जिसे परमानन्द की पिपासा, अभिलाषा है। अहो! मेरा आत्मा परमानन्द की मूर्ति प्रगट कैसे परमानन्द हो, ऐसी जिसे रुचि और जिज्ञासा है। वह परमानन्द निर्विकल्प रस की

तृषा है। जिसे आत्मा की निर्विकल्प आनन्द की जिसे तृषा लगी है। आहाहा! समझ में आया?

परमानन्दरूपी सुधारस के पिपासु... ओहोहो! प्याऊ बाँधते हैं न, प्याऊ। किसके लिये? तृषातुर के लिये। तृषा... ऐसा कहते हैं कि हम टीका की प्याऊ बाँधते हैं, किसके लिये? जिसे आत्मा के आनन्द का रस पीना हो, उसके लिये। प्याऊ बाँधते हैं, प्याऊ। प्याऊ कहे न? उसे क्या कहते हैं? प्यावा कहे न, प्यावा। 'प्यावा कांठे पंथ बन्यो छे आ तो।' वह जेठालालभाई गाते थे। मोरारजीभाई के भाई जेठालाल, राजकोट। ऐसा कहते हैं कि हमारा प्याऊ, टीकारूप प्याऊ किसके लिये है? जिसे ज्ञान की पिपासा, तृषा है, उसके लिये है। कहो, शोभालालभाई! आहाहा! श्रोता ऐसे हों, उनके लिये हमारा कहना है, ऐसा कहते हैं, देखो यह। आहाहा! कहो, भीखाभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जानने के लिये आयेगा। निमित्त कौन है, यह आयेगा। निमित्त का ज्ञान कराते हैं न। ज्ञानप्रधान अधिकार है न, तो उसमें निमित्त साथ में हो, उसका ज्ञान। धारक कैसे जीव होते हैं, उसका ज्ञान साथ में कराते हैं। वस्तु ऐसी ही आवे। समझ में आया?

पहली शर्त यह है कि यह प्रवचनसार की टीका करते हुए किसके लिये है? जिसे भूख लगी हो और प्यास लगी हो। आनन्द की भूख लगी और आनन्द की तृषा लगी हो। आहाहा! ऐसे भव्य जीवों के—ऐसे योग्य जीवों के हित के लिये। देखो, उनके हित के लिये। वास्तव में तो परमानन्द की प्राप्ति हो, वही उपाय इसमें कहा जायेगा। राग और पुण्य बँधे और फलाना हो, यह बात इसमें आवे भले, परन्तु वह कहीं भावना करनेयोग्य नहीं। अकेला परमानन्द मिले, वह भावना और वह बात कही जायेगी। आहाहा! समझ में आया?

परमानन्दरूपी अतीन्द्रिय आनन्द भगवान आत्मा की जो अतीन्द्रिय आनन्द की दशा, उसके पिपासु, तृषालु, तृषावन्त जीव हैं। 'दूजा नहीं मन रोग' आता है न श्रीमद् में। 'काम एक आत्मार्थ का, दूजा नहीं मन रोग।' दूसरा कोई नहीं। एक मेरा स्वरूप

सच्चिदानन्द है, वह आनन्द की दशा हमको प्रगट होओ। एक ही अभिलाषा और एक ही पिपासा और तृषा है। ऐसे **जीवों के हितार्थ, तत्त्व (वस्तुस्वरूप को) प्रगट करनेवाली...** यह टीका तत्त्व को प्रगट करती है। तत्त्वदीपिका नाम है न! ऊपर आ गया न! समझ में आया? तत्त्वप्रदीपिका, प्रदीपिका वृत्ति। ऐसा। तत्त्वप्रदीपिकावृत्ति। अर्थात् तत्त्व को कहनेवाली यह टीका है। वास्तविक तत्त्व को प्रगट करनेवाली टीका है। आहाहा! **प्रवचनसार की यह टीका रची जा रही है।**

अब **(इस प्रकार मंगलाचरण और टीका रचने की प्रतिज्ञा करके, भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचित प्रवचनसार की पहली पाँच गाथाओं के प्रारम्भ में श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव उन गाथाओं की उत्थानिका करते हैं।)** क्या कहते हैं? कि यह गाथा बनानेवाले पुरुष कौन हैं? यह प्रवचनसार के शास्त्र को रचनेवाले कौन हैं? पुरुष प्रमाण से वचन प्रमाण। वह पुरुष कौन है कि जिसने यह शास्त्र रचा? ओहोहो! कितने अन्तर में? हजार वर्ष के अन्तर में कुन्दकुन्दाचार्य हुए। वर्तमान उनकी वाणी के भाव द्वारा उनका आत्मा कैसा था, यह जान लिया था। समझ में आया? देखो, कोई कहे कि नहीं ज्ञात होता। पहले कैसे मुनि हुए, उनकी दशा की अभी क्या खबर पड़े? हम छद्मस्थ हैं, यह मुनि छद्मस्थ हैं। अमृतचन्द्राचार्य छद्मस्थ हैं, केवली नहीं। तथापि कुन्दकुन्दाचार्य इनके पहले हजार वर्ष पहले हो गये। तथापि उनके आत्मा की स्थिति कैसी थी, उसका वर्णन पंच महाव्रतधारी स्वयं करते हैं। समझ में आया? ओहोहो!

अब, जिनके संसार समुद्र का किनारा निकट है,... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्यदेव को संसार का किनारा निकट है। एकाध भव करके केवलज्ञान पायेंगे। संसार का अन्त आने की तैयारी है। आहाहा! कहो, समझ में आया? देखो, यह कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त मुनि को पहिचानकर कहनेवाले टीका करनेवाले कहते हैं, अमृतचन्द्राचार्य पंच महाव्रत के धारक। सत्य बोलने की जिन्हें प्रतिज्ञा है, असत्य बोलना नहीं। समझ में आया? ओहो! ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य हजार वर्ष पहले हुए और उनके पश्चात् हजार वर्ष में स्वयं ऐसे हुए इस ओर। तो कहते हैं, ओहो! जो महात्मा कुन्दकुन्दाचार्य **जिनके संसार समुद्र का किनारा निकट है,...** कहो, समझ में आया? आसन्न है न? '**आसन्न**' शब्द है न, उसका किया है। समझ में आया? '**संसार पारावार आसन्न**' बड़ा संसाररूपी

समुद्र, परन्तु अब उसका अन्त है। कहो, दूसरे आत्मा का भी भान निःसन्देह केवलज्ञानी जाने, ऐसा भी हो सकता है या नहीं? समझ में आया? उनकी वाणी और उनके न्याय और दशा देखकर, यह दशावान जीव ऐसा होता है, उसकी ही यह वाणी होती है। समझ में आया? ऐसा देखकर स्वयं अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर मुनि जंगलवासी... मुनि तो जंगलवासी ही होते हैं न! समझ में आाय? मुनि को तो वस्त्र, पात्र होते नहीं। तीन काल में होते नहीं। नग्नदशा अन्तर के आनन्द के अनुभव के निश्चय पंचाचारसहित, यह ऐसे आचार्य महाराज हैं। जो स्वयं गणधर को नमस्कार करनेयोग्य स्वयं हैं। गणधर जिसे नमस्कार (करे), ऐसे पद में स्वयं हैं। कौन? अमृतचन्द्राचार्य। गणधर जिन्हें नमस्कार (करें), 'णमो लोए सव्व आयरियाणं' वह स्वयं आचार्य कुन्दकुन्द की बात कोलकरारसहित भगवान की साक्षी से सत्य है, वैसी प्रसिद्ध करते हैं। समझ में आया?

अहो! **संसार समुद्र का किनारा...** किनारा जिन्हें अब नजदीक है। किनारा आने पर यहाँ आ गया है, कहते हैं। समझ में आया? **ऐसे कोई....** ऐसे कोई अर्थात् **(आसन्नभव्य महात्मा।)** ऐसा। **(श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव), ...** ओहोहो! देखे ऐसे मुनि भावलिंगी सन्त। वे भावलिंगी सन्त भावलिंगी सन्त को परखते हैं। समझ में आया? ऐसी बात दिगम्बर सन्त के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं अन्यत्र हो नहीं सकती। वे स्वयं कहते हैं कि ऐसे सन्त हैं, उन्होंने यह प्रवचनसार कहा है, उसकी मैं टीका करूँगा। समझ में आया? आहाहा!

जिनके सातिशय विवेकज्योति प्रगट हो गयी है... अब संसार किनारा निकट है, उसका कारण कि उत्तम भेदज्ञान जिन्हें प्रगट हुआ है। आहाहा! विकल्प से पार भगवान निर्विकल्प आनन्द की मूर्ति ऐसी विवेकशक्ति **सातिशय (उत्तम) विवेकज्योति...** सातिशय विवेकज्योति। ओहोहो! समझ में आया? है न? मूल पाठ में है यह, इसका शब्द है यह। अतिशय विवेकज्योति। है न? **'सातिशयविवेकज्योति'।** ऐसा कहना चाहते हैं कि जो विवेकज्योति प्रगट हुई, वह केवलज्ञान को लेगी, तब तक भेदज्ञान रहेगा। उसके भेदज्ञान को अब विरोध आयेगा नहीं। आहाहा! समझ में आया? जैसे सातवाँ गुणस्थान सातिशय आठवें में चढ़े ऐसा होता है न, उसी प्रकार यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की भेदज्ञानज्योति सातिशय है। लो, यह पंचमहाव्रतधारी, ऐसा कहते हैं। सातिशय भेदज्ञान,

उत्तम भेदज्ञान है। जिसे अन्तर धारा विकल्प से भिन्न चीज़ ऐसा भेदज्ञान अतिशयवाला—विशेष, दूसरों से विशेष भेदज्ञान, ऐसा कहते हैं। ओहो! और भेदज्ञान में विशेष क्या? वह उनकी दशा ऐसी है, कहते हैं। देखो! यह शास्त्र कहनेवाले ऐसे हैं, ऐसा पहले सिद्ध करते हैं। सेठ!

(उत्तम) विवेकज्योति.... विवेक अर्थात् भेद, विवेक अर्थात् भिन्नता **जिनके प्रगट हो गयी है...** ऐसी हमको खबर है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! कितना ज्ञान अपना निर्मल है कि जिस ज्ञान द्वारा कुन्दकुन्दाचार्य की भेदज्ञान की सातिशयता सिद्ध करते हैं। उनका भेदज्ञान अलौकिक है! अलौकिक है, सातिशय कहो या उत्तम कहो। समझ में आया? पर से भिन्न पड़ा हुआ उनका ज्ञान विशेषतावाला है। दूसरों की अपेक्षा—साधारण की अपेक्षा विशेषतावाला है। **जिनके प्रगट हो गयी है...** ऐसा कहकर क्या कहते हैं? पहले नहीं थी। समझ में आया? व्यवहार के विकल्प, निमित्त आदि से जिनकी आत्मज्योति भिन्न पड़ गयी है। भिन्न पड़ी है परन्तु विशेषरूप से भिन्न पड़ गयी है। समझ में आया? ऐसे पुरुष इस प्रवचनसार के कहनेवाले हैं। कहो, समझ में आया?

(परम भेदविज्ञान का प्रकाश उत्पन्न हो गया है)... देखा! उत्तम का अर्थ परम किया, सातिशय का अर्थ उत्तम किया, उत्तम का अर्थ परम किया। **समस्त एकान्तवादरूप अविद्या का अभिनिवेश...** एकान्त—एक भी अंश एकान्तवाद जिन्हें रहा नहीं। है न नीचे? 'अभिनिवेश=अभिप्राय; एकान्तवाद का निश्चय, आग्रह।' समस्त एकान्तवाद की विद्या अर्थात् उसका ज्ञान खोटा, उसका जो अभिप्राय जिन्हें अस्त हो गया है। वह अज्ञान एकान्तपने का अज्ञान है, वह सब नाश हो गया है। आहाहा! कहो, समझ में आया? समस्त एकान्तवाद की विद्या—अज्ञानभाव अस्त हो गया है, अस्त हो गया है। विवेकज्योति प्रगट हुई है और एकान्तवाद जिन्हें अस्त हो गया है। और अब उसके सामने अनेकान्त रखते हैं, एकान्त के सामने।

पारमेश्वरी (परमेश्वर जिनेन्द्रदेव की)... पारमेश्वरी। लो, पारमेश्वरी, यह शब्द आता है न, परमेश्वरी अर्थात् पारमेश्वरी। **(परमेश्वर जिनभगवान की) अनेकान्तवाद-विद्या को प्राप्त करके...** एकान्त का नाश हुआ है और अनेकान्तवाद को प्राप्त हुए हैं।

आहाहा! समझ में आया? परमेश्वरी। परम जिन भगवान वीतराग परमात्मा ने कहा हुआ अनेकान्त—अमृत, अनेकान्त का अमृत, उसे प्राप्त करके **समस्त पक्ष का परिग्रह (शत्रुमित्रादि का समस्त पक्षपात) त्याग देने से...** जिन्हें पक्षपात छूट गया है। यह मेरे हैं और यह तेरे हैं, यह पक्षपात छूट गया है। समस्त पक्षपात छूट गया है। कहो, **अत्यन्त मध्यस्थ होकर,...** अत्यन्त वीतरागता प्रगट करके **सर्व पुरुषार्थ में सारभूत...** लो। (अर्थ नीचे देखो) **धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार पुरुष-अर्थों में (पुरुष-प्रयोजनों में) मोक्ष ही सारभूत...** है। कहो। धर्म अर्थात् पुण्य, पुण्य का पुरुषार्थ; अर्थ अर्थात् लक्ष्मी का पुरुषार्थ कमाने का; काम अर्थात् भोग का पुरुषार्थ और मोक्ष का पुरुषार्थ, इन चार में मोक्ष का पुरुषार्थ सारभूत है। पाप और पुण्य का पुरुषार्थ... पुण्य अर्थात् धर्म और पाप अर्थात् अर्थ और काम। पुण्य और पाप का पुरुषार्थ निरर्थक है, सार नहीं। आहाहा! यह जरा आयेगा इसमें कि साधु कैसे होते हैं। कल नहीं? क्या कहलाता है कल? आकिंचन (धर्म)। आकिंचन का अर्थ लिया है टीका में। स्वामी कार्तिकेय। आकिंचन में ऐसा लिया। बहुत सरस लिया है।

कहते हैं, **सर्व पुरुषार्थ में सारभूत...** पुरुषार्थ—वीर्य तो है। पुण्य परिणाम में वीर्य-पुरुषार्थ तो है और भोग में भी पाप का पुरुषार्थ तो है। पैसा कमाने में पुरुषार्थ है पाप का। इन पुण्य और पाप के पुरुषार्थ में मोक्ष पुरुषार्थ वह सारभूत है। पुण्य और पाप का पुरुषार्थ सारभूत है नहीं। निकाल डाला यहाँ, लो पहले से। समझ में आया? धर्म शब्द से पुण्य है यहाँ। है न नीचे? धर्म का पुरुषार्थ सार नहीं। अर्थात् पुण्य का पुरुषार्थ सार नहीं, ऐसा। धर्म अर्थात् पुण्य यहाँ। शब्द तो ऐसा है—धर्म। लो, धर्म का पुरुषार्थ सार नहीं अर्थात्? व्यवहार जो पुण्य शुभभाव है, वह पुरुषार्थ सार नहीं। परमार्थ धर्म का पुरुषार्थ—मोक्ष का पुरुषार्थ, वह सारभूत है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : दो अर्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ। और एक शुद्ध। मोक्ष पुरुषार्थ शुद्ध।

कहते हैं, **सर्व पुरुषार्थ में सारभूत होने से आत्मा के लिये अत्यन्त हिततम है...** लो। हिततम=उत्कृष्ट हितस्वरूप है। **ऐसी, भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रसाद से उत्पन्न होनेयोग्य,...** कहो, समझ में आया? कहते हैं न! **पंच परमेष्ठी के प्रसाद से उत्पन्न**

होनेयोग्य,... निमित्तपना बतलाया है। जिसे परमात्मदशा प्रगट हो, उसे पंच परमेष्ठी की वाणी और उनका ज्ञान ही निमित्त होता है। प्रगट होता है तो यह होता है, इतना। परन्तु उससे होता है, ऐसा नहीं है। इसका अर्थ यह है।

मुमुक्षु : अर्थात् उनसे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उनसे का अर्थ यह हुआ। व्यवहार निमित्त का ज्ञान कराया और यहाँ उसका ज्ञान दोनों साथ में कराया, ज्ञान कराया। यह तो सब इसमें बहुत आयेगा। निमित्त अर्थात् कि यहाँ पुरुषार्थ करनेवाला जब मोक्ष का पुरुषार्थ करता है, तब निमित्त पंच परमेष्ठी का ही होता है। यह अभी तो आगे स्वयं अनुग्रह करने को समर्थ यहाँ तक लेंगे। है न, यही निमित्त होता है। निमित्त का अर्थ ऐसा नहीं कि निमित्त है इसलिए यहाँ हुआ। ऐसा नहीं। यह निमित्त का अर्थ ही नहीं। कहो, समझ में आया? निमित्त की व्याख्या यह है कि दूसरी चीज़ है। परन्तु उससे हुआ, वह है तो यहाँ हुआ—ऐसी निमित्त की व्याख्या होती नहीं।

मुमुक्षु : उपस्थित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपस्थिति तो है, परन्तु उसके कारण हुआ है, ऐसा नहीं। तो वह निमित्त रहता नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह प्रश्न ही नहीं। होवे, तब ऐसा निमित्त होता है। इतनी बात है। यहाँ तो ज्ञानप्रधान कथन सब ऐसे आयेंगे। दोनों साथ में बतायेंगे। दृष्टि के विषय में तो अकेला अभेद और अपने से प्राप्त करता है। ज्ञान के विषय में दो स्व-पर का प्रकाशपना साथ में बताते हैं। ऐसी प्रवचनसार की शैली है, ज्ञानप्रधान कथन है न यह सब। क्या कहते हैं?

भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रसाद से... देखो! प्रसाद से (अर्थात्) प्रसन्नता। अरिहन्त की प्रसन्नता होगी? सिद्ध की प्रसन्नता होगी? दूसरे आत्मा के ऊपर प्रसन्न होंगे? प्रसन्न का अर्थ कि स्वयं वीतरागता को प्रगट करके प्रसन्न होता है, उसमें वीतरागपने का निमित्तपना है, इसलिए प्रसन्नता और कृपा के करनेवाले पंच परमेष्ठी हैं, ऐसा कहा जाता

है। आहाहा! समझ में आया? पंच परमेष्ठी की कृपा से मोक्षलक्ष्मी मिलती है। शोभालालजी! इसका अर्थ कि अपनी मोक्षसाधक दशा करे, तब पंच परमेष्ठी का ज्ञान अथवा वाणी ही उसे निमित्त होती है। दूसरा निमित्त हो नहीं सकता। ऐसा सिद्ध करते हैं। कहो, समझ में आया? ज्ञान स्व-परप्रकाशक है तो स्व का और पर का ज्ञान करने की बात साथ में कहना चाहते हैं, ऐसा।

आत्मा को सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र हो, वह होता है स्वयं से, स्वयं के द्रव्य के आश्रय से, परन्तु उस समय निमित्तपने कौन होता है? कि पंच परमेष्ठी वीतरागदेव की पंच परमेष्ठी की दशा, वह निमित्त होती है। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु—वीतरागी पर्याय जिन्हें प्रगट हुई है पूर्ण और एक अपूर्ण है, ऐसे ही पंच परमेष्ठी उसे निमित्त होते हैं, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? वस्तु को नहीं प्राप्त ऐसे उसे निमित्त नहीं होते, ऐसा सिद्ध करते हैं। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र उसे निमित्त नहीं होते। परन्तु निमित्त हो, इसलिए उससे होता है, ऐसा नहीं है। अपनी कृपा अपने ऊपर हुई, तब निमित्त ने कृपा की और प्रसन्नता की, ऐसा कहा जाता है। ऐसी वाणी है कबीर के जैसी। अमरचन्दभाई!

कहते हैं, **भगवन्त पंच परमेष्ठी....** देखो! भगवन्त पंच परमेष्ठी । देखो, पाँचों को भगवान कहा। साधु भी भगवान, आचार्य भगवान, उपाध्याय भगवान, अरिहन्त-सिद्ध तो भगवान है ही। भगवंत पंच परमेष्ठी। ओहो! जिनकी वीतरागदशा प्रगट हुई है। साधु किसे कहते हैं? वीतराग—लीला में रमते-रमते राम आत्मा में है, ऐसे आचार्य, ऐसे उपाध्याय। अरिहन्त, सिद्ध तो पूर्ण हैं। **भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रसाद से—मेहरबानी से....** यह तो पाँचवीं गाथा में नहीं आता? हमारे गुरु ने हमको कृपा करके उपदेश दिया। अनुग्रह करके उपदेश दिया। लो, स्वयं को अनुग्रह हुआ है न, इसलिए अनुग्रह में निमित्त कौन है, ऐसा कहना है। आहाहा! ऐसा पंच परमेष्ठी के अतिरिक्त दूसरा निमित्त हो सकता नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं।

सर्वज्ञ और वीतरागता जिसे प्रगट करनी है, उसे सर्वज्ञता और वीतरागता प्रगट हो गयी है और या प्रगट होने की तैयारी है, ऐसे जीव ही उसे निमित्त होते हैं। बस, यह सिद्ध करना है। अपने ज्ञान में स्व का होने पर ऐसा निमित्त होता है, उसका पर का ज्ञान

स्व-परप्रकाश में साथ में होता है, यह बात सिद्ध करनी है। समझ में आया?

भगवान **भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रसाद से...** कृपा से, प्रसन्नता। लो, वीतराग को प्रसन्नता होगी? 'तित्थयरा मे पसीयंतु।' आता है या नहीं? लोगस्स में आता है। भगवानजीभाई! लोगस्स में नहीं आता? 'तित्थयरा मे पसीयंतु।' हे तीर्थंकर भगवानो! मुझ पर प्रसन्न होओ। वे वीतराग प्रसन्न होते होंगे?

मुमुक्षु : उसमें लिखा है और हम....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहा न, उसके साथ में किया। उसका अर्थ कि मेरी प्रसन्नता वीतराग के आनन्द की मुझे प्रगट होती है, उसमें आपका ज्ञान और वाणी निमित्त है। समझ में आया? निमित्त नहीं, ऐसा नहीं और निमित्त द्वारा होता है, ऐसा भी नहीं। बात यह है। ज्ञानप्रधान कथन है। परन्तु दोनों की बात साथ में आती है।

भगवन्त पंच परमेष्ठी... ओहोहो! स्वयं आचार्य भी ऐसा कहते हैं। समझ में आया? स्वयं आचार्य अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं और कुन्दकुन्दाचार्य को कैसे प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं। **भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रसाद से उत्पन्न होनेयोग्य, परमार्थसत्य...** क्या? यह मोक्षलक्ष्मी। आहाहा! भगवान आत्मा की अनन्त ज्ञान—आनन्द की लक्ष्मी जो शक्तिरूप से तो है, उसे प्रगटरूप प्राप्ति की मोक्षलक्ष्मी में पंच परमेष्ठी निमित्त हैं। **प्रसाद से उत्पन्न होनेयोग्य,....** कहा। समझ में आया? अनादि से उपजी हुई नहीं थी। मोक्षलक्ष्मी, पंच परमेष्ठी का निमित्त है, उनके प्रसाद से उपजनेयोग्य है। **परमार्थसत्य....** वास्तव में सच्ची। क्या? **अक्षय (अविनाशी) मोक्षलक्ष्मी...** जिसे दशा प्रगट हो, वह पश्चात् नष्ट हो नहीं, ऐसी आत्मा की मोक्षलक्ष्मी। आहाहा!

उपादेयरूप से निश्चित करते हुए,... 'ग्रहण करनेयोग्य, (मोक्षलक्ष्मी हिततम, यथार्थ और अविनाशी होने से उपादेय है।) इतने विशेषण दिये। मोक्ष अर्थात् परमानन्द की—शुद्धता की प्राप्ति, वह ग्रहण करनेयोग्य है। मोक्षरूपी लक्ष्मी हिततम है। हिततम, सच्ची और अविनाशी होने से उपादेय है। समझ में आया? मोक्षलक्ष्मी को **उपादेयरूप से निश्चित करते हुए,...** आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, ग्रहण करने, प्रगट करनेयोग्य तो एक मोक्ष ही है। इस प्रकार से उपादेय, हों! उपजनेयोग्य है न वह। प्रगट करनेयोग्य हो तो मोक्षपर्याय प्रगट करनेयोग्य है। ऐसा **उपादेयरूप से निश्चित करते हुए,...** आहाहा!

प्रवर्तमान तीर्थ के नायक (श्री महावीरस्वामी) पूर्वक... वर्तमान तीर्थ के नायक। अन्तिम भगवान महावीर (हुए), इसलिए अभी उनका शासन है—ऐसा कहते हैं। तीर्थ के नायक। तीर्थ के नायक भगवान पर तो होते नहीं नायक। ऐई! यह सब ऐसा आयेगा इसमें।

प्रवर्तमान तीर्थ के नायक... नायक हैं, तीर्थ के वे नायक हैं। **(श्री महावीरस्वामी) पूर्वक भगवन्त पंच परमेष्ठी को...** महावीरस्वामी पूर्वक भगवान पंच परमेष्ठी को। समझ में आया? मूल एक तीर्थंकर अभी यह ही है। तेईस तीर्थंकर बाद में आयेंगे, इसके बाद आयेंगे, तेईस बाद में आयेंगे। यहाँ तो महावीरस्वामी पूर्वक पंच परमेष्ठी लेना है। पंच परमेष्ठी को '**प्रणमन=देह से नमस्कार करना। वन्दन=वचन से स्तुति करना। (नमस्कार में प्रणमन और वन्दन दोनों का समावेश होता है।)** देह से क्रिया तो देह से, उसमें—देह में नमने का जो भाव है न, वह लेना। देह से नमने की क्रिया के साथ निमित्तरूप से होता है। कहो। देह से नमना। एक ओर कहे कि देह से नमा नहीं जा सकता ऐसे। और वचन से स्तुति करना। लो। इसका अर्थ कि उस समय ऐसा उसका विकल्प होता है। देह ऐसे नमती है, वचन से स्तुति करते हैं। कड़क रहकर ऐसे वन्दन करते हैं, ऐसा नहीं, ऐसा (कहना है)। अन्दर में भावनमन है, शरीर भी नम जाता है। स्तुति करने का भाव है तो वाणी द्वारा स्तुतिवचन निकलते हैं। समझ में आया? यहाँ ज्ञानप्रधान कथन में साथ में निमित्त होता है, वह सब लेकर बात करते हैं। अमरचन्दभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ज्ञान दृष्टिसहित का ज्ञान, इसलिए सच्चा।

मुमुक्षु : दृष्टि सहित का ज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी यहाँ बात चलती है। जिसके ज्ञान में, श्रद्धा में ऐसा हुआ है कि मेरे पर्याय के आश्रय से ही मुझे यह प्रगट हुआ नहीं तो विकल्प और निमित्त के आश्रय से प्रगट नहीं होता। उसे कहते हैं कि ऐसे जीव के लिये मोक्ष जो उपादेय है आत्मा प्रगट करनेयोग्य है, उसमें पंच परमेष्ठी की कृपा है। 'करुणा हम पावत है तुमकी' आता है न? 'करुणा हम पावत है' हे भगवान! आपकी करुणा है। आपके ज्ञान में इस समय में यह जीव इस भूमिका में है, ऐसा जो आपके ज्ञान में आया है, वही

आपकी करुणा हमारे ऊपर है, ऐसा कहते हैं। वीतरागी देव हैं। वीतराग को करुणा होती है? या प्रसन्नता होती है?

मुमुक्षु : आता है, करुणा....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह करुणा। वीतरागपर्याय, वह करुणा है। वह वीतरागपर्याय। वह यही कहते हैं यहाँ। समझ में आया? लोगस्स में भी विवाद उठता है। 'तित्थयरा मे पसीयंतु' हे भगवान! मुझ पर प्रसन्न होओ। तो वीतराग प्रसन्न होते होंगे? यह तो मैं प्रसन्न हूँ मेरे स्वभाव के आदर से, ऐसे मेरे प्रसन्न में भगवान वीतराग निमित्त है, उसे मैं प्रसन्नता का आरोप देकर मुझ पर प्रसन्न होओ, ऐसा कहा जाता है। आता है या नहीं उसमें? 'तित्थयरा मे पसीयंतु सिद्धासिद्धिं मम दिसंतु।' लोगस्स में आता है। हे सिद्ध भगवान! मुझे सिद्धि दो। तो देते होंगे वे? परन्तु अपनी भावना पूर्ण मोक्षलक्ष्मी की है, इसलिए निमित्त को ऐसा कहते हैं, हे नाथ! मुझे मोक्षलक्ष्मी दो। निमित्त के कथन तो ऐसे ही होते हैं न, भाई! आहाहा!

प्रणमन और वन्दन से होनेवाले नमस्कार के द्वारा सन्मान करके सर्वारम्भ से (उद्यम से)... सर्व उद्यम से। आहाहा! मेरा वर्तमान पुरुषार्थ जितना है, उतने उद्यम से **मोक्षमार्ग का आश्रय करते हुए प्रतिज्ञा करते हैं।** देखो, पुरुषार्थ से बात करते हैं। सर्व पुरुषार्थ से मोक्षमार्ग का आश्रय करते—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो वीतरागीपर्याय, उसका आश्रय करते हुए **प्रतिज्ञा करते हैं**—कहो। कुन्दकुन्दाचार्य इस प्रकार मोक्षमार्ग का आश्रय करते हुए प्रतिज्ञा करते हैं, ऐसा अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। समझ में आया? **सर्वारम्भ से (उद्यम से)...** जितने पुरुषार्थ की योग्यता है, उतने पुरुषार्थ से अन्दर मोक्षमार्ग अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान का आश्रय करते हुए प्रतिज्ञा करते हैं। देखो! यहाँ मोक्षमार्ग एक ही प्रकार का है। हों! उसकी प्रतिज्ञा करते हैं, लो। कहो, समझ में आया? गाथा, अब गाथा लेनी है न। '**अथ सूत्रावतार**'

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदं धोदघाइकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं ॥१॥

सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्धसब्भावे।
समणे या णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे ॥२॥

ते ते सव्वे समगं समगं पत्तेगमेव पत्तेगं।
वंदामि य वट्टंते अरहंते माणुसे खेत्ते ॥३॥

किच्चा अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं।
अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव सव्वेसिं ॥४॥

पहले जो श्रमण में समाहित कर दिये थे, उन्हें यहाँ वापस भिन्न कर डाले। कहा था न दूसरी गाथा में? '**समणे।**' यह श्रमण में तीनों समाहित कर दिये थे दूसरी गाथा में। उन्हें यहाँ भिन्न कर डाला प्रत्येक को वापस।

तेसिं विसुद्धदंसणणाणपहाणासमं समासेज्ज।
उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती ॥४॥ (पणगं)

सुरेन्द्र-नरेन्द्र-असुरपति-वन्दित, घातिकर्म-प्रक्षालक जो।
नमन करूँ मैं धर्म-तीर्थ-कर्ता, इन वर्धमान प्रभु को ॥१॥

अन्य सभी तीर्थंकर अरु विशुद्ध सत्तायुत सिद्धों को।
दर्शन-ज्ञान-चरित्र-वीर्य-तप-आचारों युत मुनिवर को ॥२॥

उन सबको मैं एक साथ या एक-एक करके सबको।
नमन करूँ मैं मनुज क्षेत्र में विद्यमान अर्हन्तों को ॥३॥

महाविदेहक्षेत्र में वर्ते उन्हें—भगवान को नमस्कार करता हूँ।

अर्हन्तों को, सिद्धों को, एवं गणधर भगवन्तों को।
अध्यापक अरु सर्व साधु को, वन्दन करके इन सबको ॥४॥

इनके शुद्ध ज्ञान-दर्शनमय, निर्मल आश्रम को पाकर।
समताभाव प्राप्त करता हूँ, जो मंगल शिवपददायक ॥५॥

आहाहा! महामांगलिक। उसकी टीका। इसका अर्थ सब टीका में आ जाता है। हिन्दी में यह पहला शब्द गुजराती में बाद में आता है। इतना अन्तर है। कौनसा पहला? हिन्दी है? सेठी! क्या है? हिन्दी है? हिन्दी है? ठीक। यह अन्तिम बोल है हिन्दी में।

टीका :- यह स्वसंवेदनप्रत्यक्ष दर्शनज्ञानसामान्यस्वरूप मैं,... यह बाद में आता

है, हिन्दी में, देखो! पहले पेरेग्राफ का अन्तिम भाग। गुजराती में पहले आता है और हिन्दी में बाद में आता है। क्या कहते हैं? पंच परमेष्ठी को वन्दन करनेवाला मैं कौन? मैं कौन हूँ? वन्दन करनेयोग्य पंच परमेष्ठी और वन्दन करनेवाला मैं। मैं हूँ कौन? **यह....** मूल शब्द है न? '**एष**' '**एष**' शब्द आया था अपने कलश में, सवेरे नहीं? '**एष**' वहाँ भी '**एष**' शब्द था। '**एष**' उसमें अन्तिम शब्द था। **यह...** मैं कौन हूँ? **स्वसंवेदनप्रत्यक्ष...** हूँ। मेरे ज्ञान से ज्ञात हो, जाना, ऐसा मैं प्रत्यक्ष हूँ। मैं यह आत्मा हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह स्वसंवेदनप्रत्यक्ष.... देखो नीचे। है न? **स्वसंवेदनप्रत्यक्ष=स्वानुभव से प्रत्यक्ष (दर्शनज्ञानसामान्य स्वानुभव से प्रत्यक्ष है।)** यह तो बाद में बात करेंगे। **दर्शनज्ञान-सामान्यस्वरूप...** हूँ। सामान्य देखना और ज्ञान, उन दो रूप से सामान्य, ऐसा। देखना और जानना, वह सामान्य एकरूप उस स्वसंवेदनप्रत्यक्ष से होता है, ऐसा मैं हूँ। क्या कहते हैं, समझ में आया? मेरा रूप दर्शन और ज्ञान, मेरा रूप दर्शन और ज्ञान—ऐसा सामान्य। दोनों सामान्य अर्थात् शक्तिरूप से। सामान्य अर्थात् यहाँ ज्ञान को (विशेष) कहते हैं इसलिए वह दर्शन (सामान्य), यह बात यहाँ नहीं है। मेरा स्वभाव दर्शन—दृष्टा और ज्ञान। सामान्य अर्थात् शक्तिरूप स्वरूप, ऐसा। वह कैसा? कि स्वसंवेदनप्रत्यक्ष होनेवाला मैं हूँ। मेरे ज्ञान-दर्शन को मैंने मेरे ज्ञान से प्रत्यक्ष किया है। देखो, यह आचार्य कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य अपने लिये कहते हैं। वह बात तो अमृतचन्द्राचार्य ने की थी कि यह कुन्दकुन्दाचार्य ऐसे थे। यह स्वयं कहते हैं कि मैं कौन हूँ। मैं रागवाला हूँ? पुण्यवाला हूँ? किसी का शिष्य हूँ? ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? मैं अर्थात् मेरा ज्ञान और दर्शन जो शाश्वत् स्वरूप जो स्वरूप ऐसा आत्मा, उसे प्रत्यक्ष स्वसंवेदन से वेदन करता हूँ, जानता हूँ—ऐसा मैं हूँ। यह मैं आत्मा। राग और व्यवहार बीच में है, वह मैं नहीं, ऐसा कहते हैं। नहीं (-नकार) ऐसा नहीं लिया। वह व्यवहार बीच में उठा है और विकल्प वह मैं नहीं, ऐसा कहते हैं। वन्दन करने का विकल्प भी मैं नहीं। यह विशेष बात करेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १३, बुधवार, दिनांक ०४-०९-१९६८
गाथा - १ से ५, प्रवचन - २

प्रवचनसार, ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन। पहली पाँच गाथायें, उनकी टीका। शुरु हुआ है। यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य पंच परमेष्ठी को नमस्कार करते हैं। तो अब कहते हैं कि नमस्कार करनेयोग्य भगवान और मैं नमस्कार करनेवाला। परन्तु मैं कैसा हूँ? समझ में आया? यहाँ नमस्कार करनेयोग्य भगवान, वह तो व्यवहार हो गया। परन्तु ज्ञान में वह आता है। प्रधान कथन ज्ञान में (आता है)। वहाँ तो यहाँ तक कथन आया, हे भगवान! पंच परमेष्ठी की कृपा से ही आत्मा को मुक्ति होती है। ऐसा आया, लो। ऐ... भीखाभाई!

मुमुक्षु : भीखाभाई का .... बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्होंने कहा था, इसलिए तो उसे कहा। उसमें ऐसा कहा, लो। परन्तु इसका अर्थ वापस कहा है कि मैं मोक्षमार्ग का आश्रय करता हूँ। यह भी वापस कहा है। समझे न? दोनों बातें साथ में रखना। मोक्षमार्ग का आश्रय मैं करता हूँ। वापस वहाँ ऐसा कहा है कि मोक्षमार्ग का (आश्रय मैं करता हूँ)। द्रव्य का आश्रय करता हूँ, ऐसा नहीं कहा। यहाँ तो जिस शैली से (कहा हो, वैसा समझना)। पर्याय मुझे प्रगट करनी है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो आत्मा के आश्रय से होती है, वह स्वयं मोक्ष का मार्ग निर्मल है, उसका मैं आश्रय करता हूँ अथवा अंगीकार करता हूँ। ऐसा आवे। ऐसे देखो तो अकेली ध्रुवदृष्टि में यह पर्याय और क्या? भाई! यह आवे ज्ञानकथन में उसका ज्ञान कराने के लिये। और आचार्य स्वयं कहते हैं। समझ में आया? वरना अकेला ध्रुव है दृष्टि में तो। दृष्टि का विषय तो ध्रुव द्रव्य है। पर्याय, दृष्टि का विषय करे, परन्तु पर्याय का आश्रय होता नहीं। समझ में आया? परन्तु जहाँ ज्ञान से कथन चलता हो, वहाँ आचार्य स्वयं ऐसा कहते हैं कि मैं वन्दन करनेवाला, पाँचों ही परमेष्ठी वन्दन करनेयोग्य हैं। समझ में आया? और उनके निमित्त से ही मुझे यह मोक्ष का मार्ग (मिला)। आश्रय मैं स्वयं करता हूँ। परन्तु निमित्त पंच परमेष्ठी है, ऐसा करके यह सिद्ध किया है कि पंच परमेष्ठी वीतरागी पर्याय से परिणमित धर्मी को धर्म परिणमन दशा के निश्चय में निमित्त यही होते हैं। समझ में आया? दूसरे निमित्त नहीं होते।

जैसे जीव गति करे तो उसे निमित्त धर्मास्तिकाय का ही होता है। तब उसे भी ऐसा कहा अर्थात् कि वह होता ही है, वह ही होता है। गति करे और अधर्मास्तिकाय का निमित्त हो या दूसरे का हो, ऐसा हो सकता नहीं। इसी प्रकार आत्मा अपना स्वरूप जो शुद्ध चिदानन्द आत्मा, उसका आश्रय करके सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो मोक्ष का मार्ग वीतरागी निर्विकल्प शान्ति, उसे मैं अंगीकार करता हूँ, ऐसा ज्ञानी अपने को करे। आहाहा! समझ में आया? वह समयसार का द्रव्य का कथन बहुत सुनकर ऐसा लगे कि यह क्या? परन्तु यह वस्तु का स्वरूप इस प्रकार से है। वापस ज्ञान में से भूल जाये कि निमित्त कौन था, भूल जाये तो वह वस्तु के स्वरूप में स्थापन करते हैं यहाँ। समझ में आया? कहीं पंच परमेष्ठी से उत्पन्न होता नहीं। शब्द तो ऐसे हैं, लो। रात्रि में प्रश्न हुआ था। परन्तु लिखा है, उसका अर्थ हुआ न कि मैं मेरे मोक्षमार्ग को अंगीकार करता हूँ। देखो! है न अन्दर? **साक्षात् मोक्षमार्ग को अंगीकार किया।** मैंने। अन्तिम पाँच लाईन। यह तो क्रम में आवे, तब आवे न!

आत्मा, यह तो मोक्षमार्ग के द्वार खोलने की बात है। आहाहा! कहते हैं कि जिसे सर्वज्ञपना प्रगट हुआ है, एक समय में तीन काल–तीन लोक जाने, जिसे सिद्धपना प्रगट हुआ है, पूर्ण दशा आठ कर्म के अभाव की, और जिसे आचार्य और उपाध्याय पद सन्तों की दशा आत्मा के अनुभवसहित वीतरागी पर्याय परिणत जो पंच परमेष्ठी है, वे ही मेरे अनुभव में निमित्तरूप से हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे कोई शास्त्र या दूसरा कोई कुगुरु, कुदेव कोई स्वयं जगत का कर्ता मनाते हो, वह वाणी कहे और उससे आत्मा को निमित्त हो, ऐसा तीन काल में होता नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं।

अथवा कोई मिथ्यादृष्टि हो और शास्त्र का पढ़नेवाला हो और वह उपदेश करे और उस धर्मी को निमित्त हो, ऐसा होता नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? सेठ! जैसा है वैसा (समझना)। 'जहाँ जहाँ जो जो योग्य है, वहाँ समझना वही।' उस–उस प्रकार से उसे समझना चाहिए।

यहाँ कहते हैं कि वन्दन करनेवाला मैं कैसा हूँ? अर्थात् आत्मा मैं कैसा हूँ? कि **स्वसंवेदनप्रत्यक्ष....** भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द आदि अनन्त गुण की शक्ति का पिण्ड प्रभु, परन्तु मैं मेरे ज्ञान से प्रत्यक्ष हो सकूँ, वह मैं हूँ। ऐसा मैं वन्दन करनेवाला

पंच परमेष्ठी को वन्दन करता हूँ। समझ में आया? **स्वसंवेदनप्रत्यक्ष दर्शनज्ञान-सामान्यस्वरूप....** देखो! वापस वस्तु की स्थिति आत्मा आत्मा करे, परन्तु वह आत्मा, वह वस्तु है कि जिसमें दर्शन और ज्ञान ऐसा एकरूप जिसका स्वरूप है, दृष्टा और ज्ञाता जिसका—आत्मा का स्वभाव है। समझ में आया? दृष्टा और ज्ञाता। ऐसा जिसका स्वभाव परिपूर्ण भगवान इस एक आत्मा का है। ऐसा मैं स्वसंवेदनप्रत्यक्ष करनेवाला मेरा आत्मा, वह मैं वन्दन करता हूँ। समझ में आया? किसे वन्दन करता हूँ?

जो सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों और नरेन्द्रों के द्वारा वन्दित होने से तीन लोक के एक (अनन्य सर्वोत्कृष्ट) गुरु हैं,.... जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान वर्तता है और पूर्ण वीतरागता और पूर्ण आनन्ददशा जिन्हें प्रगट हो गयी है, वे कैसे हैं? सुरेन्द्रो—ऊर्ध्वलोक के सुर अर्थात् देवों के इन्द्र भी, इन्द्र के भी वे गुरु हैं, एक ही गुरु वे हैं। समझ में आया? सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों। नीचे असुर हैं उनके इन्द्र। और नरेन्द्रों—यह मनुष्य के चक्रवर्ती, वासुदेव आदि। उनसे वन्दित, ऐसे जगत के महापुरुषों से भी जो वन्दित है। समझ में आया? उनसे वन्दित होने के कारण त्रिलोक के वे गुरु हैं। आहाहा! देखो! सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा... समझ में आया?

महावीर भगवान का यहाँ मुख्यरूप से पहले वर्णन है। अन्तिम परमात्मा तीर्थंकरदेव का शासन है। पहले तीर्थंकर.... वर्धमान प्रभु महावीर भगवान ऐसे थे, ऐसा पहिचानकर। वे कैसे? कि ऊपर के स्वर्ग के इन्द्र, नीचे के इन्द्र और मध्य के—तिरछा के इन्द्र को वन्दित हैं वे। वंदनेयोग्य हैं। इसलिए त्रिलोक के—यह तीन लोक के (गुरु हैं)। तीन लोक हो गये न इसमें? सुरेन्द्र, असुरेन्द्र और नरेन्द्र। तीन लोक के.... कोई ऐसा कहे कि, परन्तु ऐसे उत्तम पुरुष वन्दन करे परन्तु साधारण तो मानते नहीं उन्हें। वे मानते नहीं, उन्हें लेना नहीं यहाँ। समझ में आया? यहाँ तो महा सुरेन्द्र। शकेन्द्र इन्द्र है। पहले देवलोक का शकेन्द्र बत्तीस लाख विमान का स्वामी है। ईशान इन्द्र अट्ठाईस लाख का, दूसरा ईशान देवलोक है, उसका स्वामी है, जिसमें असंख्य देव हैं। ऐसे-ऐसे एक-एक इन्द्र, सुरेन्द्र जो हैं बड़े, उनसे वन्दित हैं। इसलिए तीन लोक के पुरुषों से वन्दित, ऐसा ले लिया। साधारण लोगों को देव को वे मान्य हैं और उन्हें तीर्थंकरदेव और भगवान मान्य हैं। क्या कहा, समझ में आया?

साधारण मनुष्य की गिनती नहीं यहाँ, कहते हैं। उत्तम पुरुष महा इन्द्र, सुरेन्द्र, असुरेन्द्र और नरेन्द्र, बलदेव, चक्रवर्ती, वासुदेव पुरुष हों महापुण्यवन्त, ऐसों से वन्दित होने से त्रिलोक के एक ही अनन्य, सर्वोत्कृष्ट एक ही गुरु हैं। भगवान वर्धमान महावीर परमात्मा वे एक ही तीन लोक को पूज्य होने से त्रिलोक के... त्रिलोक के, ऐसा कहा है। विवाद निकालना हो तो निकाले इसमें।

मुमुक्षु : किसमें विवाद निकाले ?

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिलोक को कहाँ मान्य है ? भगवान सबको कहीं मान्य है ? महावीर के तो विरोध करनेवाले भी बहुत हैं। वे गिनती में ही नहीं हैं, कहते हैं। समझ में आया ?

जो महा इन्द्र है, जिनके नीचे असंख्य देव हैं और चक्रवर्ती के नीचे बत्तीस हजार (राजा) .... वासुदेव, उन्हें वन्दित होने से... यह तो प्रवचनसार ज्ञानप्रधान कथन चलता है। त्रिलोक के एक गुरु हैं। अनन्य अर्थात् उनके अतिरिक्त दूसरा नहीं और सर्वोत्कृष्ट एक ही गुरु—परमेश्वर है। देखो, सर्वज्ञ को गुरुरूप से सिद्ध किया। समझ में आया ? ऐसा कहते हैं कि मैं कौन हूँ, यह पहिचानता हूँ मुझे और वे कैसे हैं, उन्हें भी मैं पहिचानता हूँ, ऐसा कहकर उनका वर्णन करता हूँ। कहो, समझ में आया ?

घातिकर्ममल के धो डालने से.... अब क्या सिद्ध करते हैं ? सर्वज्ञ परमेश्वर महावीर हुए, उन्हें पहले घातिकर्म थे। घातिकर्म—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय। ऐसे आठ कर्म की जाति है अन्दर। उसमें चार घातिकर्म, चार अघाति (कर्म हैं)। वस्तु की स्थिति यह है। इसलिए परमेश्वर जो सर्वज्ञ महावीर हुए, उन्हें चार घातिकर्म थे, ऐसे घातिकर्मरूपी मैल **धो डालने से....** धो डाला है—नाश कर दिया है। अर्थात् पहले से सर्वज्ञ गुरु थे अनादि के, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द परमात्मा स्वयं, उसका आश्रय करके घातिकर्म को धो डाला। नाश कर (दिया) ऐसा नहीं कहा। जैसे वस्त्र साफ कर डाले न साफ, वैसे साफ कर डाले। ऐसा होने से... सुन न! **जिनको....** अर्थात् परमेश्वर महावीर परमात्मा वर्धमान तीर्थंकर को **जगत पर अनुग्रह करने में समर्थ....** अमरचन्दभाई! यह क्या ? सुन न। परमेश्वर की वाणी और परमेश्वर स्वयं ही धर्मात्मा धर्म होनेवाले को

निमित्त वे ही होते हैं। समझ में आया? दूसरे देव, कुदेव, कुशास्त्र वे कोई निमित्त हो नहीं सकते। दूसरे निमित्त हो और यह कहे कि मैं धर्म को प्राप्त हुआ हूँ। उसे धर्म हो सकता नहीं। समझ में आया? कहते हैं, चार कर्म धो डाले होने से **जिनमें जगत पर....** सम्पूर्ण जगत पर, ऐसा लिया है। इसमें समझ में आया? ऐई! सम्पूर्ण जगत के ऊपर, लिया। भव्य-अभव्य पूरा जगत। सुन न! वह जगत कहलाता है। यह जो आत्मा पात्र होकर समझना चाहता है, उसे भगवान, तिरने में समर्थ परमेश्वरता से निमित्त होती है। समझ में आया? वरना यहाँ तो जगत पर कहा है। ऐ... अमरचन्दभाई! यह क्या लिखा? आचार्य अमृतचन्द्राचार्य पंच महाव्रत के धारी और जिसने सूक्ष्म द्रव्यदृष्टि का अनुभव करके जिसने चारित्र अंगीकृत किया है, वे ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जगत पर—दुनिया के ऊपर **अनुग्रह करने में समर्थ....** उसे निमित्त होने में अनुग्रह, उसे लाभ देने में समर्थ हो तो वह परमेश्वर महावीर एक ही गुरु हैं। आहाहा! समझ में आया?

अनुग्रह करने में समर्थ ऐसी अनन्तशक्तिरूप परमेश्वरता है,.... पर को अनुग्रह करे, ऐसी अनन्त परमेश्वर शक्ति है। मुझमें है, ऐसा नहीं। उसे अनुग्रह करे, ऐसी अनन्त परमेश्वरशक्ति उनकी है। ऐ... पोपटभाई! कहो, जेठालालभाई! एक ओर समयसार सुना हो और एक ओर यह, यह क्या कहते हैं? ऐसा ही है। वहाँ दृष्टिप्रधान कथन करके निमित्त कैसे परमेश्वर होते हैं, उनका भी ज्ञान वहाँ है। समझ में आया? आहाहा! सब गाथा में आता है न सब जगह। **जगत पर अनुग्रह करने में समर्थ ऐसी...** कैसी? **अनन्तशक्तिरूप परमेश्वरता....** जगत अर्थात् कि उनकी वाणी और वे परमात्मा स्वयं अनुग्रह करने में... देखो, यहाँ आत्मा उसे अनुग्रह करने में समर्थ, ऐसा लिया है। ऐई! वाणी-बाणी नहीं ली। भाई! समझ में आया? सीधा आत्मा है। सीधा भगवान सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर महावीर। वर्धमान शब्द यहाँ प्रयोग किया है न, वर्धमान। वृद्धिगत होकर अपना माप पूर्ण हो गया जिन्हें। ऐसे परमेश्वर महावीर अर्थात् वर्धमान, वे जगत को अनन्त शक्तिरूप परमेश्वरता अनुग्रह करने में समर्थ हैं। ऐसी उन्हें परमेश्वरता प्रगट हुई है। उसे जो पहिचाने और लक्ष्य करे, उसे परमेश्वरता में निमित्त वे होते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? धूप को रखो बीच में। कहो क्या कहा इसमें? समझ में आया इसमें?

यह तो धीरे-धीरे व्याख्यान चले ऐसा है यह। वापस ऐसा कितनों को लगे कि यह कहाँ आया? मार्ग ही यह है, सुन न! आहाहा! भगवान अनन्त परमेश्वरता। एक समय में जिसे तीन काल-तीन लोक का ज्ञान, वीतरागता प्रगटी है और जिसे आहार-पानी का भाव नहीं होता। शरीर जिनका परम औदारिक स्फटिक जैसा हो गया हो शरीर। ऐसा आत्मा जगत को अनुग्रह करने में यह ऐसे परमेश्वर समर्थ हैं। ऐसा आत्मा, हों! वाणी-बाणी यहाँ नहीं लेनी वापस। आहाहा! जेठालालभाई! उसका कुछ नहीं, वह तो जैसा है, वैसा है।

जगत पर अनुग्रह करने में समर्थ ऐसी अनन्त.... अमृतचन्द्राचार्य महाराज जिन्होंने टीका समयसार, प्रवचनसार और पंचास्तिकाय की बनायी है। जिन्होंने गणधर जैसा काम कुन्दकुन्दाचार्य के पश्चात् किया है। वे ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **अनन्तशक्तिरूप परमेश्वरता....** जगत के ऊपर अनुग्रह करने में समर्थ प्रगट हुई है। ऐसा आत्मा, उसे जो समझे और प्राप्त करे, उसे वह निमित्त कहने में आते हैं। ऐसा कहते हैं। न समझे और न प्राप्त करे (ऐसे) अभव्य पड़े हैं दूसरे साधारण, उनकी तो यहाँ बात नहीं। यहाँ तो अनुग्रह करने में समर्थ ही है। यह उसने जो अन्दर भान किया, उसे अनुग्रह करने में समर्थ ही कहने में आता है। उसे क्या है परमेश्वरता, उसे जिसने पहिचाना नहीं, उसे तो निमित्तरूप से किस प्रकार हो? समझ में आया?

ओहो! अरिहन्त सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्हें एक सूक्ष्म काल, एक 'क' बोले, उसमें असंख्य समय जाते हैं। उसका असंख्यवाँ भाग एक समय, (उसमें) उन्हें तीन काल-तीन लोक का ज्ञान वर्तता है। समझ में आया? और पूर्ण वीतरागता और पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का, अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र उछल गया, ऐसे परमेश्वर वर्धमान महावीर दुनिया सारी, सारे जगत को अनुग्रह करने में शक्ति है, ऐसी परमेश्वरता प्रगटी है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, मुझे भगवान का अनुग्रह हुआ तो मेरे ऊपर उनका अनुग्रह—कृपा है। जा! आहाहा! समझ में आया? मेरा आत्मा भगवान की वाणी और भगवान को पहिचानकर जो तैयार हो गया अन्दर से, मेरे ऊपर भगवान की अनुग्रहता वर्तती है। ऐसी उनकी परमेश्वरता है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

तीर्थता के कारण.... अब दूसरा शब्द। मूल शब्द है श्लोक के, हों! कुन्दकुन्दाचार्य

के श्लोक (गाथायें) हैं, उसका अर्थ चलता है। **जो तीर्थता के कारण योगियों को तारने में समर्थ हैं,...** लो आया वापस। जो कोई आत्मा के आनन्द और अनन्त गुण का पिण्ड भगवान है, उसमें जिसने अन्तर जुड़ान किया है, उसे तारने में निमित्त कहा जाता है। लो। कहो, भीखाभाई!

मुमुक्षु : यह निमित्त, यह उपादान।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब निमित्त (कहा जाता है)। जिसने भगवान आत्मा अनन्त भगवान को देखा परमेश्वर ने, उसमें अनन्त गुण-शक्तियाँ हैं। वह ज्ञान, दर्शन आदि गिनती से अनन्त शक्तियाँ। ऐसा जो आत्मा जिसे पूर्ण रीति से प्रगट दशा हो गयी है, कहते हैं कि जिसने अपने आत्मा में योग—जुड़ान करके... लो यह पर्यूषण आये न, यह पर्यूषण है न। परि—समस्त प्रकार से जोड़ना। आत्मा अनन्त ज्ञान का धनी पूर्ण स्वभाव, उसमें अन्तर दृष्टि को और ज्ञान को जोड़कर अन्दर योग विकल्परहित हों, निर्विकल्प। निर्विकल्प दर्शन, ज्ञान, चारित्र से आत्मा में एकाग्र होना, ऐसे जो योगी, उन्हें तारने में समर्थ है। लो, वापस बदला। डाला वहाँ। उन्हें तारने में समर्थ है। वह अनुग्रह है सही सबके ऊपर। कहो, समझ में आया? आहाहा! प्रवचनसार अभी बहुत वर्ष से वाँचन नहीं हुआ। पाँच वर्ष गये। यह अक्षर भी बहुत अच्छे आये हैं।

योगियों को तारने में समर्थ हैं,... अब योगी तो तिरते हैं, उन्हें तारने में समर्थ? ऐसा कहते हैं, जिसने आत्मा में भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्यदल की अनुभवदृष्टि करके जो रमणता करता है, उसे वे निमित्त कहे जाते हैं। समझ में आया? ज्ञान का स्व-परप्रकाशक स्वभाव है न! स्व-परप्रकाशक स्वभाव से यह सब कथन किया है। **तीर्थता के कारण...** तिरे हुए होने के कारण **योगियों को तारने में समर्थ हैं,...** लो, समझ में आया? योगी तो स्वयं हुए हैं स्वयं से। समझ में आया? परन्तु भगवान का ज्ञान केवलज्ञान और परमात्मदशा ऐसा जिसे ख्याल में आकर जिसने आत्मा में जुड़ान किया है, उसे परमात्मा तारने में समर्थ कहे जाते हैं। लो, समझ में आया? भक्त ऐसा भी भक्ति में कहे, हे भगवान! हम हमारे से तिरते हैं और तुमको तरणतारण कहना, यह किस काम का? हम न तिरें और तिराओ तो तुम सही। उपाय करें—परिणमे हम, और तुम तारने को समर्थ! ठीक! भाई! वस्तु की स्थिति ऐसी है कि जिसे सर्वज्ञ परमेश्वर

परमात्मदशा जिसकी प्रगट हुई है, ऐसे अन्तिम वर्धमान तीर्थंकर थे, उनकी इस दशा को जिसने पहिचाना है, उसने आत्मा में जुड़ान किया है, उसे भगवान तारने को समर्थ कहे जाते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

धर्म के कर्ता होने से... कैसे है परमेश्वर सर्वज्ञ परमात्मा? महावीर वर्धमान परमात्मा कैसे हैं? **धर्म के कर्ता...** वे तो धर्म के परिणमन करनेवाले होने से। अपने धर्म के करनेवाले होने से, ऐसा कहते हैं। **शुद्ध स्वरूपपरिणति के कर्ता हैं,...** ओहो! आत्मा की पूर्ण केवलज्ञान दशा, वीतराग परिणति अवस्था शुद्ध, ऐसी अवस्था के वे करनेवाले हैं, करनेवाले वे हैं। पर को करने में निमित्त हैं इतना। समझ में आया? देखो, ऐसा लेते-लेते कहाँ लाये वापस! यह तो कहते हैं कि योगियों को तारने में समर्थ और स्वयं अपनी शुद्ध परिणति के कर्ता हैं, पर के कर्ता नहीं। समझ में आया?

धर्म के कर्ता.... अर्थात् परिणमनेवाले होने से जो शुद्ध परिणति के करनेवाले हैं। **शुद्ध स्वरूपपरिणति के कर्ता हैं,...** लो। केवलज्ञानी को शुद्धस्वरूप परिणति के करनेवाले कहा। समझ में आया? शुद्धस्वरूप परिणति अर्थात् अवस्था। जिनकी अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य सब शुद्ध परिणतिरूप निर्मल दशा हो गयी है। उसके कारण वे धर्म के कर्ता कहे जाते हैं। पर के धर्म के कर्ता कहलाये वह निमित्त से है। इस प्रकार स्वयं से होता है, इतनी बात है। ओहोहो! देखो! भगवान की पहिचान की है कि परमेश्वर ऐसे होते हैं। समझ में आया? ऐसा पहिचानकर मैं वन्दन करता हूँ। ऐसा का ऐसा बिना भान के नहीं कूटता। छिलके कूटे और दिखायी दे मानो उसके कण चावल होंगे—ऐसा नहीं, कहते हैं। बराबर जानता हूँ कि चावल कूटे जाते हैं और छिलके भिन्न पड़ते हैं। समझ में आया? आहाहा!

कैसे हैं परमेश्वर? **उन परम भट्टारक,...** तीन लोक के पूजनीक पुरुष हैं। यह भट्टारक होते हैं, वे नहीं, हों! गद्दी पर बैठे वे भट्टारक नहीं। परम सूर्य, भट्टारक अर्थात् सूर्य। परम सूर्य। आहाहा! यह तो वे भट्टारक तो नाम के हैं। यह ज्ञानसूर्य, चैतन्यसूर्य झबकता प्रगट हुआ है जहाँ। एक समय की अवस्था में चैतन्यसूर्य तीन काल-तीन लोक को जानता हुआ ज्ञान प्रगट हुआ है। ऐसे परम भट्टारक हैं, परम भट्टारक हैं—परम सूर्य हैं। आहाहा! **महादेवाधिदेव....** हैं। अकेले देवाधिदेव नहीं, महादेवाधिदेव। आहाहा!

महादेव-अधिदेव, देवों के भी देव। देव के देव गणधर और उनके भी महादेवाधिदेव। देखो, परमेश्वर ऐसे होते हैं। तीर्थंकर और सर्वज्ञ वीतरागदेव ऐसे होते हैं। उसके अतिरिक्त परमेश्वर दूसरे प्रकार से माने, वह परमेश्वर को पहिचानते नहीं और उन्हें पहिचानते नहीं, इसलिए आत्मा का कल्याण करने के योग्य भी नहीं। शान्तिभाई! कवि है भाई यह। सुना था। जोड़ दिया है वहाँ जोड़ दिया। कहा था बाहर। आहाहा!

महादेवाधिदेव, परमेश्वर,... आहाहा! कितने विशेषण! यह संस्कृत टीका में है, हों! अमृतचन्द्राचार्य महामुनि जो आचार्यों को भी वन्दनीक है पंच नमस्कार में। वे स्वयं कहते हैं कि परमेश्वर परमात्मा। परमेश्वरता जिन्हें पूर्ण प्रगट हो गयी है। समझ में आया? और वे परम पूज्य हैं। भगवान महावीर परमात्मा त्रिलोकनाथ परम पूज्य हैं, परम पूज्य हैं, उत्कृष्ट पूजने के योग्य हैं वे। इतना हुआ। अब नाम आया सही न, पाठ में वर्धमान शब्द पड़ा है न! नाम खोलकर नाम किया न इसलिए फिर अर्थ (किया)। नाम पड़ा न, नाम पड़ा है।

जिनका नामग्रहण भी अच्छा है... वर्धमान ऐसे परमात्मा का नाम भी अच्छा है, ऐसा कहते हैं। निश्चय से तो उनका नमन अच्छा है परन्तु उनका नामस्मरण करना, वह भी अच्छा है। यह शुभभाव की सिद्धि की। भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वरूप की ओर चढ़ा हुआ है, उसे परमात्मा निमित्त होकर कहते हैं, उन परमात्मा का नाम भी मुझे भला है। आहाहा! समझ में आया? यह शुभविकल्प है परन्तु व्यवहार से मुझे यह भी भला है, ऐसा कहते हैं। कहो, वजुभाई! निश्चय से तो उनका नाम अर्थात् अपने में नमन—परिणमन होना। परन्तु व्यवहार से नाम शब्द पड़ा है न यहाँ, 'वर्धमान भगवान' वर्धमान तीर्थंकर। अहो! जिनका नामस्मरण करने से भी शुभभाव, शुभराग प्रशस्त उत्पन्न होता है। वह भी व्यवहार से भला कहा जाता है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

ऐसे श्री वर्धमानदेव को... लो, इतने विशेषण दिये। ऐसे श्री वर्धमान महावीर परमात्मा को **ऐसे श्री वर्धमानदेव को...** स्वरूप की लक्ष्मीवाले वर्धमान वृद्धिगत होकर पूर्ण हुए, ऐसे देव को, दिव्यशक्ति प्रगटी उन्हें। **प्रवर्तमान तीर्थ की नायकता के कारण...** वर्तमान तीर्थंकर महावीर परमात्मा का शासन चलता है। उनकी परम्परा में मुनि, गणधर सन्त हुए, समकिती धर्मी हुए, वे उनकी परम्परा में हुए हैं। अभी दूसरा

शासन, तीर्थंकर महावीर के अतिरिक्त दूसरे का है नहीं। पहले हो गये, उन पहले का शासन, यह महावीर परमात्मा ने जो मार्ग कहा, उस मार्ग के आराधक जीव परम्परा से वे उसमें हुए, इसलिए शासन उनका है। प्रवर्तमान तीर्थ के, प्रवर्तमान तीर्थ—तिरनेवाले साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। साध्वी अर्थात् आर्यिका। ऐसे तीर्थ जो स्वरूप को तारे, अपना उद्धार करते हैं अन्दर से, ऐसे तीर्थ के नायक महावीर नायक हैं। कहो, समझ में आया? ऐसे के **कारण प्रथम ही प्रणाम करता हूँ।** भाषा देखो! पहले उन्हें नमता हूँ, ऐसा कहते हैं। फिर बाद में कहेंगे। आहाहा! कहो, यह पुस्तक तो अभी नयी प्रकाशित हो गयी, पुरानी है कब की। (संवत्) २००४ के वर्ष में प्रकाशित हो गयी है। यह २४ वर्ष में चलती है अब। यह दूसरी बार प्रकाशित हुई, बीस वर्ष में प्रकाशित हुई। कहो, समझ में आया इसमें?

ऐसे श्री वर्धमानदेव को प्रवर्तमान—चलते तिरने के उपाय के धर्मी जीवों को, धर्मी जीवों के नायक वे हैं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि, साधु, आर्यिका, श्रावक और श्राविका के वे परमात्मा वर्धमान देव तीर्थ के नायक वे हैं। समझ में आया? इस कारण—ऐसे कारण से प्रथम उनके शासन में मैं वर्तता हूँ, इसलिए उन्हें प्रथम नमस्कार करता हूँ। कहो, समझ में आया? देखो, **प्रथम ही प्रणाम करता हूँ।** ऐसा है न? देखो। **'देवं प्रणमामि'** ठीक। **'प्रथमत एव'।** प्रथम प्रणमता हूँ। ओहोहो! कितना विवेक है! तीर्थंकर की परमात्मदशा को पहिचाननेवाले जीवों की कितनी स्थिति है! अपनी स्थिति वर्णन की और वन्दन करनेवाला मैं हूँ और जिन्हें वन्दन करता हूँ, वे ऐसे हैं। मैं अन्धी दौड़ से वन्दन करता हूँ, ऐसा नहीं। कहो, मणिभाई! समझ में आया इसमें? यह सब अन्धी दौड़ से चलता है अभी तो। अन्धी दौड़ से चलता है, ऐसा।

मुमुक्षु : अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं कौन महावीर कौन? तीर्थंकर कैसे? उनका स्वरूप केवलज्ञान क्या? आनन्द क्या? जय भगवान, वे तो केवली थे।

मुमुक्षु : सच्चे ही हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चे भी किसके थे? सच्चे उनके। परन्तु यहाँ सच्चा समझे, तब उसे सच्चा हो न! समझ में आया? आहाहा!

तत्पश्चात्.... भाषा देखो! अब पहले उन्हें वन्दन करता हूँ। कुन्दकुन्दाचार्य महा... 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो।' गौतम के पश्चात् जिन्हें तीसरा पद मिला। ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य भगवान परमेश्वर जिनकी तुलना वे शक्ति से स्थित, वे कहते हैं, मैं महावीर को पहले नमन करता हूँ। पश्चात् मैं यह प्रवचनसार कहूँगा। अर्थात् फिर मैं साम्य को अंगीकार करूँगा, ऐसा कहते हैं। **तत्पश्चात्...** है न? '**तदनु**' ऐसा है न? तत् अनु। **जो विशुद्ध सत्तावान् होने से...** अब सिद्ध की पहिचान बतलाते हैं। समझ में आया? विशुद्ध अस्तित्व, है न? जिसका विशुद्धपना है, ऐसे **ताप से उत्तीर्ण हुए (अन्तिम ताव दिए हुए अग्नि में से बाहर निकले हुए) उत्तम सुवर्ण के समान शुद्ध दर्शनज्ञानस्वभाव को प्राप्त हुए हैं, ऐसे शेष अतीत तीर्थंकरों को...** महावीर के अतिरिक्त अतीत अनन्त तीर्थंकर। कैसे हो गये अनन्त तीर्थंकर? ताप से जैसे सोना को ताप देते हैं न अग्नि का? करते... करते... करते... सोलहवान हो जाता है। सोलहवान सोना। कितना न्याय देते हैं। जिन्हें आत्मा के आनन्द को साधते हुए एकाग्रता की ध्यान की आँच देते हुए, पर्याय में आत्मा की एकाग्रता की आँच देते हुए, वस्तु के स्वरूप में परिपूर्णता तो थी, परन्तु उसे धर्मध्यान एकाग्रता की आँच देते हुए जिसे पूर्ण अन्तिम सोना सोलहवान निकल जाये, अन्तिम ताप देकर अग्नि में से बाहर निकले, ऐसे **उत्तम सुवर्ण के समान...** सोलहवान सोना हो गया। ऐसे अनन्त तीर्थंकर हो गये महावीर के अतिरिक्त। पहले महावीर को वन्दन किया। शेष **उत्तम सुवर्ण के समान शुद्ध दर्शनज्ञानस्वभाव को प्राप्त हुए हैं,...** कैसे हैं परमात्मा हुए वे? शुद्ध जो दर्शन और ज्ञानस्वभाव था, वह पर्याय में शुद्ध दर्शन-ज्ञानस्वभाव को प्राप्त हुए, ऐसा लिया। देखो न, उसमें कहा न, दर्शन-ज्ञान सामान्यस्वरूप हूँ। ऐसे स्वरूप को जो पर्याय में प्राप्त हुए हैं। क्या कहा, समझ में आया? परमेश्वर जो महावीर के अतिरिक्त हुए, वे भी अपनी शुद्ध सत्ता में जो अन्दर दर्शन और ज्ञानस्वभाव शक्ति पूर्ण स्वभाव था, उसे पर्याय में प्राप्त हुए हैं।

शुद्ध दर्शनज्ञानस्वभाव को प्राप्त हुए हैं, ऐसे शेष अतीत तीर्थंकरों को... (अतीत अर्थात्) गत; हो गये; भूतकालीन। अनन्त। **और सर्वसिद्धों को...** यद्यपि तीर्थंकर भी सिद्ध तो है अभी। परन्तु कुन्दकुन्दाचार्य ने उन्हें पृथक करके लिया है। वरना तो अनन्त

तीर्थंकर जो महावीर से पहले हुए, वे भी अभी सिद्ध ही हैं। परन्तु खास उनकी तीर्थंकरता की विशेषता को लक्ष्य में लेकर उन अनन्त तीर्थंकरों को वन्दन करने के लिये अलग किया। वरना तो वे सिद्ध ही हैं, सिद्ध में समाहित हो जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे अनन्त तीर्थंकर हो गये, ऐसा सिद्ध करते हैं। महावीर भगवान से पहले पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, ऋषभदेव इनके पहले अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त काल से... अनन्त काल से भूतकाल के अनन्त काल से अनन्त तीर्थंकर हुए। उन सबको याद करके मैं नमस्कार करता हूँ। आहाहा! ज्ञान में कितनी आस्तिकता की विशालता और भक्ति! सत् है वैसा। समझ में आया? आहाहा! कोई कहे न, जैनधर्म तो महावीर के पश्चात् निकला, कोई कहे कि ऋषभदेव भगवान के पश्चात् निकला। अरे... सुन न अब! तुझे खबर नहीं। निकले क्या?

आत्मा वीतराग की मूर्ति वीतराग विज्ञानघन है। वे पाये हैं, ऐसे पुण्यवन्त तीर्थंकर को पहले याद करते हैं। समझ में आया? अनन्त तीर्थंकर भगवान पहले अनन्त... अनन्त... (हो गये)। ओहोहो! जिनकी संख्या अनन्त है। उन्हें **और सर्व सिद्धों को....** इसके अतिरिक्त सब जो केवलज्ञान पाकर सिद्ध हुए हैं (उन्हें)। तीर्थंकर तो पुण्यवन्त और पवित्रता दोनों में पूरे होते हैं। पवित्रता केवलज्ञान, केवलदर्शन की होती है और शरीर में औदारिक, परमौदारिकशरीर। जिन्हें आहार नहीं होता, पानी नहीं होता, रोग नहीं होता शरीर में, उन्हें परमेश्वर कहा जाता है। ऐसे परमेश्वर भूतकाल में पुण्यवन्त और पवित्रता को प्राप्त हुए की पहली व्याख्या (करके) स्मरण किया है। पश्चात् सर्व सिद्ध। आत्मा का केवलज्ञान प्राप्त हुए, पूर्णानन्द, भले पुण्य न हो बाहर परन्तु आत्मा का केवलज्ञान प्राप्त हुए और सिद्ध हुए, केवलज्ञान अन्दर पूर्णानन्द एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाना। तीर्थंकर जितना पुण्य न हो उनका। सामान्यकेवली भरत इत्यादि को। समझ में आया? भरत चक्रवर्ती इत्यादि सामान्यकेवली हुए। ऐसे **सर्व सिद्धों को....** इस आस्था में कितनी आस्तिकता वर्तती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सर्व सिद्ध कितने? तीर्थंकर तो संख्यात थोड़े होते हैं चौबीसी में। और उस चौबीसी में असंख्यात मोक्ष जाते हैं। एक तीर्थंकर के उसमें (काल में) पहले में, हों! बाद में थोड़े। परन्तु चौबीस तीर्थंकर की जो स्थिति है, दस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम की, तीर्थंकर

चौबीस और सिद्ध असंख्य होते हैं। क्या कहा? चौबीस तीर्थंकर जो हुए उनका काल दस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम है। इसलिए चौबीस हों, उसे (काल) दस क्रोड़ाक्रोड़ी (सागर) चाहिए, परन्तु उसमें सिद्ध हुए, वे असंख्य होते हैं। एक-एक चौबीसी में चौबीस (तीर्थंकर) हुए, उसमें असंख्य मोक्ष में गये हैं असंख्य (जीव)। केवलज्ञान, केवलदर्शन, आनन्द प्राप्त करके पूर्णानन्द की शक्ति जैसा परमात्मा तीर्थंकरदेव प्राप्त हुए, वैसा ही वे प्राप्त हुए। समझ में आया? ओहोहो!

सर्व सिद्धों को.... अब श्रमणों की बात करते हैं। पाठ में श्रमण है न अकेला? श्रमण की व्याख्या करते हैं। अब श्रमण को मैं वन्दन करता हूँ। श्रमण कैसे होते हैं? आचार्य, उपाध्याय और साधु। आहाहा! **ज्ञानाचार....** जिन्हें आत्मज्ञान का रमणता का आचार प्रगट हुआ है। **दर्शनाचार....** जिन्हें सम्यग्दर्शन का आचार रमणता का प्रगट हुआ है। **चारित्राचार....** जिन्हें वीतरागी परिणति की रमणता प्रगट हुई है। **तपाचार...** जिन्हें इच्छानिरोध होकर जैसे सोना गेरु से शोभे, वैसे चारित्र की उग्रता से जिन्हें आनन्द की लहर विशेष बढ़ गयी है। अतीन्द्रिय आनन्द का प्रतपन बढ़ गया है। यह छद्मस्थ हैं, केवलज्ञानी नहीं, परन्तु इनकी पहिचान दी कि ऐसे ये हैं। वह स्वयं पहिचानता है, ऐसा कहते हैं। स्वयं ऐसे हैं और ऐसे होते हैं, उन्हें वन्दन करता हूँ। आहाहा! यहाँ तो उनकी पहिचान कराते हैं। और **वीर्याचार...** उनका पुरुषार्थ स्वरूप की रमणता का उग्र परिणमित हो गया है। भगवान आत्मा नग्न मुनि, तीनों नग्न होते हैं। तीनों दिगम्बर होते हैं, जंगल में बसते हैं। आहार आदि लेने.... आवे। ऐसे आचार्य, उपाध्याय, साधु... समझ में आया? ऐसे **वीर्याचारसहित होने से...** जिन्हें आत्मा के पूर्ण आनन्द के प्रति वीर्य जाग उठा है उग्र और जिनका बल आत्मा के आचरण में रम रहा है। ऐसे होने से। **जिन्होंने परम शुद्ध उपयोगभूमिका को प्राप्त किया है,...** आहाहा! देखो तो सही, साधु किसे कहना! आचार्य किसे कहना! उपाध्याय किसे कहना!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तीनों इकट्ठे आ गये न!

परम शुद्ध उपयोगभूमिका... यह पंच महाव्रत के विकल्प-फिकल्प उन्हें होते नहीं, ऐसा कहते हैं। वह साधुपना नहीं है। विकल्प तो राग है। राग वन्दनीक है? वे

मुनि परमात्मा को साधते हैं, अपने स्वरूप को (साधते हैं)। ज्ञानानन्द शान्ति, आनन्द के पंचाचार में उसके कारण से परम शुद्ध उपयोग। देखो! कोई कहता है कि अभी मुनि को शुद्ध उपयोग नहीं। यहाँ स्वयं कहते हैं कि शुद्ध उपयोग की भूमि प्राप्त, उसे ही आचार्य, उपाध्याय, साधु कहते हैं। परम शुद्ध उपयोग को प्राप्त हो, उसे आचार्य, उपाध्याय, साधु कहते हैं। वस्त्र बदले और अकेले नग्न हो और मात्र पंच महाव्रत को पाले, इसलिए साधु, आचार्य, उपाध्याय है? नहीं। शान्तिभाई! देखो है अन्दर?

मुमुक्षु : उसमें इनकार किया जाये ऐसा नहीं, शान्तिभाई से या किसी से।

पूज्य गुरुदेवश्री : जिज्ञासा से आये हैं न। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा ने कहा हुआ मार्ग, कहते हैं कि जो आचार्य, उपाध्याय, साधु... देखो! दया, दान, व्रत के परिणाम वे शुभ हैं। उन्हें छोड़कर जिसे आत्मा के आनन्द में शुद्ध पवित्रता के उपयोग का व्यापार प्रगट हो गया है। शुद्ध उपयोग उसे यहाँ साधु कहा जाता है। पंच महाव्रत पाले, इसलिए साधु? नहीं। वह विकल्प होता है, परन्तु वह कहीं गुण नहीं है, वह साधुपना नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : (पंचम काल में) फेरफार चले।

पूज्य गुरुदेवश्री : फेरफार कुछ नहीं चलता। बचाव करते हैं बचाव। ऐई... शोभालालजी! भैयाजी बचाव करते हैं कि (पंचम) काल में तो थोड़ा-थोड़ा ढीला चले। यह तो तीन काल का एक ही मार्ग है। साधु उसे कहते हैं कि जिसे बाह्य में नग्नदशा हो। उस स्थिति का वर्णन यहाँ नहीं। हो अवश्य नग्न, मुनि हों और नग्न न हों तो वह मुनि ही नहीं है। अब कहते हैं कि मुनि नग्न है और अन्दर अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प है, ऐसा होता है। उन्हें वस्त्र, पात्र का विकल्प हो तो वह मुनि ही नहीं। परन्तु वह विकल्प है और नग्नपना है, वह मुनिपना नहीं। आहाहा! जिसे परमात्मा शुद्ध चैतन्यवस्तु अपनी है शुद्ध, उसका परम शुद्ध उपयोग—व्यापार अन्दर से प्रगट हो गया है। निर्विकल्प वीतराग परिणति परिणम गयी है, उसे आचार्य कहते हैं, उसे उपाध्याय कहते हैं, उसे साधु कहते हैं।

देखो! टोडरमलजी ने लिया है भाई! मोक्षमार्गप्रकाशक में यही (कहा है)।

टोडरमलजी घर की बात नहीं करते। पहले के पण्डित, वे तो शास्त्र में हो उसे मिलानकर रहस्य खोलते हैं। समझ में आया? पहले अध्याय में यह डाला है उन्होंने। कैसे होते हैं, साधु, आचार्य, उपाध्याय? यही शब्द डाले हैं वहाँ। परम शुद्ध उपयोग को प्राप्त। कहो, समझ में आया? मात्र वस्त्र रखे और कहे कि हम साधु हैं, यह तो तीन काल में नहीं है।

मुमुक्षु : कठोर क्रिया पालते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिया पाले वह जड़ की है, राग की। वह साधु नहीं। साधु तो उसे कहते हैं कि जिसे अखण्ड आनन्दस्वरूप परमात्मा अन्दर अनुभव में आया है, और शुभ-अशुभ परिणामरहित जिसे शुद्ध उपयोग का आचरण प्रगट होता है। समझ में आया? आहाहा! देखो न, पंच परमेष्ठी की पहिचान भी देते हैं साथ में। ऐसे हों, उन्हें वन्दन करता हूँ, ऐसा कहते हैं। मैं ऐसा हूँ और वन्दन करनेयोग्य ऐसे होते हैं। समझ में आया? यह तो बाहर का वेश देखे तो जय भगवान! सेठ कुछ अन्तर कर सके नहीं। अपने से तो अच्छे हैं। वे अच्छे ही नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा!

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य की मूर्ति अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा, उसे अन्दर अवलम्बकर जिसे शुद्ध आत्मा का उपयोग—व्यापार (प्रगट हुआ है)। वह उपयोग शब्द से (आशय है) शुद्ध आचरण का व्यापार। आचरण शब्द प्रयोग किया है न! जानना-देखना वह उपयोग अलग वस्तु है और यह तो उपयोग अर्थात् आचरण। इसीलिए लिया है, ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्रासार, तपाचार और वीर्याचार। ऐसा जिन्हें शुद्ध उपयोगरूपी आचरण प्राप्त है। आहाहा! समझ में आया? बारह उपयोग है न—पाँच ज्ञान, तीन अज्ञान, चार दर्शन, वह तो जानने-देखनेरूप। यह उपयोग आचरण जितने की बात है, चारित्र की बात है। इसलिए कहते हैं, जो ऐसे ज्ञान के स्वरूप में रम रहे हैं, दर्शन में रम रहे हैं, आनन्द में रम रहे हैं, वीर्य का स्फुरण इतना अन्दर में साधन कर रहे हैं। इस कारण से—ऐसे कारण से **जिन्होंने परम शुद्ध उपयोगभूमिका...** देखो! पर्याय। भूमि अर्थात् दशा। जिन्होंने परम शुद्ध उपयोगदशा को प्राप्त किया है। आहाहा! समझ में आया? भाव की ही बात की है। परन्तु ऐसे हों, उन्हें शरीर नग्न ही होता है। उन्हें विकल्प उठे तो अट्ठाईस मूलगुण और एक बार आहार, यह विकल्प होता है।

परन्तु यह विकल्प है, वह कहीं साधुपना नहीं, वह कहीं गुण नहीं और वन्दनीक वह चीज़ नहीं। वन्दनीक तो शुद्ध उपयोग की प्राप्त दशा, वह वन्दनीक है। आहाहा! समझ में आया? वापस **शुद्ध उपयोगभूमिका को प्राप्त किया है...** अर्थात्? कर्म-बर्म हटा है और प्राप्त किया है, ऐसी बातें भी ली नहीं, देखो! आहाहा!

मुमुक्षु : धो डाले हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो अभी आचार्य, उपाध्याय की बात चलती है न! तीर्थंकर ने धो डाले हैं। परन्तु आचार्य, उपाध्याय, साधु ने भी शुद्ध उपयोगभूमिका को प्राप्त किया है। कर्म तो अपने आप हट जाते हैं। कर्म हटे, इसलिए शुद्ध उपयोग को प्राप्त किया है, ऐसा नहीं है। इसीलिए तो लिया। **ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचारयुक्त होने से...** कर्म का अभाव होने से और कर्म का क्षयोपशम होने से, ऐसा नहीं। भाई! ऐसा नहीं। आहाहा! देखो न, एक शैली तो देखो शैली। ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य, सर्वज्ञ के पश्चात् सर्वज्ञ के मार्गानुसारी—रास्ते-रास्ते चलनेवाले, उस पंथ में चलनेवाले कहते हैं कि ऐसे साधु, ऐसे आचार्य, उपाध्याय हों, वे शुद्ध उपयोग को प्राप्त होते हैं।

ऐसे श्रमणों को... पाठ में श्रमण है सही न! **जो कि आचार्यत्व, उपाध्यायत्व और साधुत्वरूप विशेषों से विशिष्ट (भेदयुक्त) है....** इस प्रकार से भले साधु हैं परन्तु यह तीन प्रकार के भेदवाले हैं। **उन्हें—नमस्कार करता हूँ।** लो। भगवान महावीर को पहले नमन करता हूँ और पश्चात् इन तीन परमेष्ठी साधु को नमन करता हूँ। **तत्पश्चात्....** यह भी है न '**तदनु**' '**तदनु**'। आहाहा! गजब बात परन्तु भाई! पंच परमेष्ठी को पंच गाथा में ऐसे परमेष्ठी को स्मरण किया है। आहाहा! प्रभु! ऐसी दशा प्राप्त है आपको, यह मेरे ज्ञान में है, हों! मेरे ख्याल में है, इसलिए मैं आपको नमन करता हूँ। आहाहा! स्वयं आचार्य है न। ढाई द्वीप में तो आचार्य फिर कोई दीक्षा लिये हुए हों। उपाध्याय और साधु की दीक्षा के पश्चात् किसी ने दीक्षा ली हो परन्तु मैं तो सबको भाव से नमस्कार करता हूँ।

मुमुक्षु : स्वयं को वन्दन....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो स्वयं नमन करते हैं। स्वयं स्वसंवेदन (स्वरूप) ऐसा हूँ। समझ में आया? आहाहा! वन्दन करने का विकल्प उठा है न? सुन न, उसे गौण कर दिया है यहाँ। शुद्ध उपयोग को प्राप्त है, वही हम हैं। शुद्ध रमणता परमानन्द की मूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द के रस का अन्तर पूर्ण व्यापार ऐसे शुद्ध उपयोग को प्राप्त, उसे साधु, आचार्य और उपाध्याय कहा जाता है। इसके अतिरिक्त की दूसरी स्थिति आचार्य, उपाध्याय, साधु को हो नहीं सकती। ओहो! पंच परमेष्ठी की पहिचान। समझ में आया? यह तो पहाड़ा बोले जाये, णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं। किसी को खबर नहीं होती कुछ। क्या अरिहन्त, किसे कहना सिद्ध....

तत्पश्चात् इन्हीं पंच परमेष्ठियों को,... यह पंच परमेष्ठी को वापस। और **उस-उस व्यक्ति में (पर्याय में) व्याप्त होनेवाले सभी को,...** ऐसे पंच परमेष्ठी को और उस-उस व्यक्ति अर्थात् दशा में व्यापनेवाले सबको। **वर्तमान में इस क्षेत्र में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभाव होने से...** देखो! ओहोहो! **वर्तमान में इस क्षेत्र में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभाव...** है अभी। महावीर आदि तीर्थंकर अभी हैं नहीं। **और महाविदेहक्षेत्र में उनका (तीर्थंकरों का) सद्भाव होने से...** आहाहा! महाविदेहक्षेत्र है, भरतक्षेत्र से आगे। यह भरतक्षेत्र है। महाविदेहक्षेत्र बहुत दूर है। **महाविदेहक्षेत्र में तीर्थंकरों का सद्भाव...** बीस तीर्थंकर विराजते हैं अभी। आहाहा! केवलज्ञानी, केवलदर्शी, पूर्ण आनन्द, एक समय में तीन काल-तीन लोक को देखे ऐसे बीस तीर्थंकर महाविदेहक्षेत्र में अभी वर्तमान विराजते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान तीर्थंकरों का वर्तमान काल में भरतक्षेत्र में विरह है, अभाव है। महाविदेहक्षेत्र में परमात्मा त्रिलोकनाथ सीमन्धरप्रभु आदि तीर्थंकरों की अस्ति होने से। वर्तमान तीर्थंकर विराजते हैं वहाँ। आहाहा! वे कहते हैं न, महाविदेह कहाँ होगा? भगवान कहाँ होंगे? सुन न अब! लोगों को भान नहीं होता। महाविदेहक्षेत्र दूर है, भरत (क्षेत्र) से आगे जम्बुद्वीप में अन्दर। वहाँ वर्तमान में ऐसे-ऐसे महाविदेहक्षेत्र ढाई द्वीप में पाँच हैं। एक-एक में चार तीर्थंकर विराजते हैं। ऐसे बीस तीर्थंकर विद्यमान वर्तमान विराजते हैं। समझ में आया? तीन काल-तीन लोक का जिन्हें ज्ञान है। अनाहारी

परमात्मा दिव्यध्वनि जिन्हें खिरती है, इन्द्र जिनके समीप सुनने जाते हैं अभी महाविदेहक्षेत्र में। समझ में आया?

महाविदेहक्षेत्र में तीर्थंकरों का सद्भाव होने से... एक साधु कहे, अरिहन्त हो गये होंगे, अभी तो कोई अरिहन्त नहीं। अरे... मूर्ख! सुन न! तुझे वर्तमान यहाँ नहीं, इसलिए अन्यत्र नहीं? समझ में आया? तीर्थंकरपने का **महाविदेहक्षेत्र में उनका सद्भाव होने से मनुष्यक्षेत्र में प्रवर्तमान तीर्थनायकयुक्त...** लो, ऐसे मनुष्यक्षेत्र में प्रवर्तते ढाई द्वीप में। **मनुष्यक्षेत्र में प्रवर्तमान तीर्थनायकयुक्त...** वे तीर्थ के नायक हैं। साधु, आर्यिका, श्रावक, श्राविका तिरने के वे भगवान नायक हैं। उन्हें **वर्तमानगोचर करके....** आहाहा! देखो! वे लिये न, पंच परमेष्ठी को और उस-उस पर्याय में व्यापनेवाले सबको और इन तीर्थंकर को सब मानो मेरे (लिये) तो वर्तमान है, ऐसा मैं उन्हें नमन करता हूँ। आहाहा!

(महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान श्री सीमंधरादि तीर्थंकरों की भाँति मानों सभी पंच परमेष्ठी भगवान वर्तमान काल में ही विद्यमान हों, इस प्रकार अत्यन्त भक्ति के कारण भावना भाकर—चिन्तवन करके उन्हें)... मानो वर्तमान सब सिद्ध, तीर्थंकर, केवली, साधु, आचार्य, उपाध्याय वर्तमान हों—ऐसे मैं नमन करता हूँ। मेरी वर्तमान दशा से वर्तमान ऐसे हों, उन्हें नमन करता हूँ। आहाहा! **युगपद् युगपद्....** एक साथ सबको और प्रत्येक-प्रत्येक को। भगवान भी अनन्त सिद्ध हैं, अनन्त तीर्थंकर हो गये, अनन्त आचार्य, उपाध्याय, साधु हो गये और एक-एक की संख्या का पार नहीं होता और व्यक्ति को एक-एक को कहाँ भिन्न करते हो? एक-एक को पृथक् नमन कहाँ करते हो? वे अनन्त तीर्थंकर और अनन्त सिद्ध और आचार्य, उपाध्याय, साधु को समुदायरूप से भी नमन करता हूँ सामान्यरूप से (और) विशेषरूप से व्यक्तिगत एक-एक को—परमात्मा को मैं नमता हूँ। समझ में आया? ऐसा मेरा अनन्त तीर्थंकरों और अनन्त सिद्धों को नमस्कार वर्तमान हुआ। आहाहा! प्रवचनसार है या नहीं घर में? रखा होगा। रखा तो होगा पुराना। कहाँ कुछ दरकार है? ऐसा कहते हैं। बहियाँ फिराने की निवृत्ति है।

यह भगवान कौन हो गये, भगवान कैसे उसकी भी खबर नहीं होती, फिर जहाँ-

तहाँ भटका करे, कोई ब्राह्मण के यहाँ और कोई फलाना के यहाँ और कोई ढींकणा के यहाँ। कहाँ गया हसमुख ? ठीक। हसमुख उघाड़ा करे ऐसा है तुम्हारा सबका, हों! हित की (बात) है। कहो, समझ में आया ? आहाहा! कहो। इसमें वे कहाँ गये हैदरशाह ? मनहर! वह ब्राह्मण है और ऐसी बात करता है न, भागवत वर्णन करता है और ढींकणा वर्णन करता है। अरे! सब मिथ्यादृष्टि हैं, सुन न अब। समझ में आया ? ऐसे स्वरूप के जाननेवाले और पहिचाननेवाले हम और ऐसे जीवों को नमस्कार करते हैं। ऐसा कहते हैं। इसके अतिरिक्त हम दूसरे को नमते नहीं। आहाहा!

युगपद् युगपद् अर्थात् समुदायरूप से और प्रत्येक प्रत्येक को अर्थात् व्यक्तिगतरूप से सम्भावना करता हूँ। यह सन्मान देता हूँ। 'संभावना करना; सन्मान करना।' सबका सन्मान करता हूँ। भगवान परमात्मा सिद्ध, अनन्त आचार्य, उपाध्याय व्यक्तिगत सबको मैं नमन करता हूँ। आहाहा! ऐसा भक्ति का उल्लसित भाव कुन्दकुन्दाचार्य को पंच परमेष्ठी के प्रति आया है। ऐसा व्यवहार आये बिना रहता नहीं, यह सिद्ध करते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १४, गुरुवार, दिनांक ०५-०९-१९६८
गाथा - १ से ५, प्रवचन - ३

कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में दिगम्बर मुनि हुए। जो भगवान के पास गये थे। सीमन्धर भगवान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं, उनके पास गये थे। वहाँ आठ दिन रहे थे और वहाँ से आकर यह समयसार, प्रवचनसार आदि बनाये। प्रवचनसार बनाने से पहले पंच परमेष्ठी को नमस्कार करते हैं। पंच परमेष्ठी जो अरिहन्त भगवान, सिद्ध भगवान (आदि)। मैं वन्दन करनेवाला कैसा हूँ, यह पहले कहा कि मुझे खबर है कि मैं वन्दन करनेवाला कौन हूँ। मैं स्वसंवेद्य—मेरे ज्ञान से मुझे प्रत्यक्ष होऊँ, ऐसा यह प्रत्यक्ष हूँ, ऐसा मैं हूँ। समझ में आया? पोपटभाई! उसका नाम आत्मा जाना कहलाता है, उसे धर्म हुआ कहलाता है। मैं, मैं कैसा हूँ आत्मा? मेरे ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष हो सकता हूँ, ऐसा स्वसंवेदन (प्रत्यक्ष) हूँ। तब है कैसा मेरा स्वरूप? मेरा स्वरूप जो आत्मा है, वह दर्शनज्ञानस्वरूप है, दर्शनज्ञानस्वरूप है। वह मैं परमात्मा पंच परमेष्ठी आदि को नमस्कार करता हूँ। समझ में आया? यहाँ तक आया है अपने।

वर्तमान में तीर्थंकर का भरतक्षेत्र में अभाव है। महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान तीर्थंकर परमात्मा विराजते हैं। इसलिए कहते हैं कि महाविदेह में विराजमान... पंच महाविदेहक्षेत्र है। उनमें प्रत्येक में विराजमान तीर्थंकर वर्तमान में और भूतकाल के तीर्थंकर हुए और अनन्त सिद्ध, मैं सबको समुदायरूप से एक साथ भी वन्दन करता हूँ और एक-एक—प्रत्येक को भी मैं वन्दन और प्रणमन करता हूँ। वन्दे शब्द तो पड़ा है पाठ में। पहला प्रणमन शब्द पड़ा है, फिर वन्दे शब्द पड़ा है। दोनों होकर फिर... है। दो होकर पाठ में दो शब्द हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि मैं प्रत्येक अनन्त तीर्थंकर हुए, अनन्त सिद्ध हुए, वर्तमान भगवान विराजते हैं। सबको मेरी नजर के समक्ष समुदायरूप से उन्हें वन्दन करता हूँ और नमस्कार (करता हूँ) और सबको मैं एक-एक प्रत्येक-प्रत्येक को प्रणमन और वन्दन ऐसा नमस्कार करता हूँ। सन्मान करता हूँ, ऐसा कहता है न पाठ। यहाँ तक आया है न अपने। मैं सन्मान देता हूँ। समझ में आया? मैं आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप हूँ, मुझे

भान है कि मैं आत्मा ऐसा हूँ। ऐसा धर्मी वह जब पंच परमेष्ठी को नमस्कार करे, तब उसे शुभ विकल्प होता है। समझ में आया? वह विकल्प व्यवहारनमस्कार कहा जाता है। परन्तु यहाँ उसे एक न्याय से मैं सम्भावना करता हूँ, ऐसा कहते हैं। देखो! किस प्रकार?

मोक्षलक्ष्मी के स्वयंवर समान जो परम निर्ग्रन्थता की दीक्षा का उत्सव... स्वयं सम्यग्दृष्टि और अनुभवदृष्टि और ज्ञानी तो है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, पुण्य-पाप के विकल्परहित है, शरीर, कर्मरहित है और दर्शन-ज्ञानसहित है। दर्शन अर्थात् दृष्टा स्वभाव त्रिकाल और ज्ञानस्वभाव त्रिकाल ऐसे सहित हूँ और पुण्य-पाप के विकल्प, शरीर, कर्म की अस्ति जगत में है, परन्तु मैं उनसे रहित हूँ। ऐसा आत्मज्ञान और आत्मदर्शन की भूमिकासहित मैं सभी परमेश्वरों को वन्दन और प्रणमन करके **मोक्षलक्ष्मी के स्वयंवर समान...** मैं अब चारित्र अंगीकार करता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? चारित्र अंगीकार करना अर्थात् शुद्ध उपयोग वीतरागदशा। आत्मा का भान और सम्यग्ज्ञान होने पर भी, जब वीतरागपना-साम्यपना शुद्ध उपयोगपना समता के रस का भावपना प्रगट होता है, उसे चारित्र और उसे दीक्षा और उसे मोक्षलक्ष्मी के वरण के लिये स्वयंवर मण्डप कहा जाता है।

मुमुक्षु : शुद्ध उपयोग को?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध उपयोग को। समझ में आया? पहले में स्वयंवर मांडे जाते थे न जब स्वयंवर। सीता आदि... वे स्वयं पसन्द करे, तब माला डाले। उसे स्वयंवर—अपने को पसन्द हो, वह वर। उसी प्रकार यहाँ मुझे पसन्द आती मोक्ष की लक्ष्मी—पूर्ण केवलज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण दर्शन, पूर्ण वीर्य ऐसी मोक्ष की—आत्मा की पूर्ण शुद्ध दशा उस मोक्षलक्ष्मी के स्वयंवर समान। उसका स्वयंवर मैंने माँडा है, कहते हैं। उसमें सब भगवानों को पधराता हूँ। प्रभु! पधारो, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। अमरचन्दभाई! लोगों को ऐसा होता है न? साधारण व्यक्ति हो तो एक गृहस्थ को साथ ले जाये। विवाह हो न, विवाह में साधारण व्यक्ति हो तो सेठ जैसों को साथ ले जाये, ऐसे को शर्माने के लिये। साथ ले जाये और उसमें वह पुत्री न देता हो और समय आठ, साढ़े आठ हो गया और समय आठ (बजे) देने का हो और अन्दर गड़बड़ करता हो।

देरी क्यों लगी? आठ (बजे) का टाईम है। उसका समय होता है न? आठ का समय है और यह पाव घण्टा क्यों जाता है? समय वर्ते सावधान, ऐसा नहीं कहते? कहते हैं या नहीं तुम्हारे ऐसा? सब सुना हुआ है। अपने एक बार फावाभाई का विवाह देखा है, बाकी हमने देखा नहीं। समय वर्ते सावधान। अर्थात् जो समय है, उस समय सावधान होओ। ऐ... न्यालभाई! यह तो सब करनेवाले हैं सामने। यह समय क्यों व्यतीत हुआ? सेठ बैठे हैं भगवानदास। देरी क्यों लगती है?

मुमुक्षु : फिर बोले, ... सावधान।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अब.... फिर अन्दर देरी लगे न, उठकर जाना पड़े। शोभालालजी! दूसरे के साथ बारात में जाये तो मुफ्त में नहीं वह... देरी लगे (तो पूछे), क्या है? क्यों देरी लगती है? पच्चीस हजार माँगता है। परन्तु वह वर साधारण है और पच्चीस हजार (लावे कहाँ से)? कन्या नहीं वरे। हें! अपना हार दे। मैं साथ में हूँ, उसकी कन्या समय पर फिरे नहीं।

ऐसा कहते हैं, हे नाथ! मेरी दीक्षा का–चारित्र का महोत्सव मेरे आत्मा के भानसहित मैं स्वयं मोक्ष को वरने के लिये चारित्र अंगीकार करता हूँ। यह आप अनन्त तीर्थंकरों को साक्षी से साथ में रखा है। चारित्र की मोक्षलक्ष्मी फिरे नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! देखो तो एक भक्ति का आह्लाद! अनन्त तीर्थंकर हो गये, अनन्त सिद्ध हो गये, अनन्त आचार्य, उपाध्या, (साधु) हुए और वर्तमान भगवान विराजते हैं। मैं तो सबको वर्तमानरूप से मेरे स्वयंवर मण्डप में स्मरण करता हूँ। आहाहा! समझ में आया? मोक्षरूपी लक्ष्मी। देखो, यह धूल की लक्ष्मी लोग माँगते हैं, उसमें कुछ नहीं, दुःख के सरदार हैं। भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : इनको कहाँ चिन्ता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, यह सब बहुत आते हैं न! कुछ पैसा मिले, यह मिले। कहते हैं, धूल भी नहीं अब उसमें, सुन न! मर गया हैरान होकर अनन्त काल। पाँच–दस करोड़, पच्चीस करोड़, अरबों करोड़ अनन्त बार मिले। उसमें तुझे क्या? तुझे दुःख मिला। यह मोक्षरूपी लक्ष्मी के स्वयंवर समान। **स्वयंवर समान जो परम निर्ग्रन्थता**

की दीक्षा... भाषा देखो! परम निर्ग्रन्थपना वीतरागपना। साधुपना कैसा है ? बापू! लोगों ने सुना नहीं। समझ में आया ? परम निर्ग्रन्थदशा वीतरागीदशा आनन्द की पूर्ण दशा प्राप्त करने के लिये वीतरागी चारित्र कारण है। ऐसी दीक्षा को मुनिपना कहते हैं। अन्तर के आत्मा के अनुभव के भानसहित, स्वसंवेदन आत्मा के आनन्द के भानसहित। जब दीक्षित होता है, तब निर्ग्रन्थपने को मैं अंगीकार करता हूँ।

कैसा है निर्ग्रन्थपना ? **मोक्षलक्ष्मी के स्वयंवर समान जो परम निर्ग्रन्थता की दीक्षा का उत्सव...** मुझे तो आनन्दमय प्रसंग है। आहाहा! विवाह में नहीं लिखते ? तुम्हारे आने से मण्डप की शोभा बढ़ेगी। सब बहुत लिखते हैं उल्टे में। समझ में आया ? दामाद पैसेवाला हो और न आता हो तो ऐसे लिखे कि, बहिन! तुम आना और लेते आना घर से भी। समझे न ? ऐसा है और वैसा है, मण्डप की शोभा बढ़ेगी। विवाह हो न! लकड़ियाँ बाँधकर बनाते हैं न वह। मण्डप और वह लकड़ियाँ डालते हैं न ? माणेकस्तम्भ। लकड़ियाँ हैं सब। माणेक कहाँ थे वहाँ ? इसी प्रकार यहाँ बाहर की शोभा के लिये कहते हैं, हे नाथ! मेरे स्वयंवर दीक्षित के मण्डप की शोभा के लिये प्रभु! आप पधारो और मैं आपको संग में रखता हूँ। आहाहा!

शास्त्र में आता है भाई! द्रौपदी के स्वयंवर का आता है न ? उसके पिताश्री ने सबको बुलाया। सबको बुलाया, एक-एक को। तो वासुदेव आये, श्रीकृष्ण आये स्वयंवर के लिये। सब राजा आये, बड़े-बड़े राजकुमार और बड़े श्रीकृष्ण भी आये। उसको ... ऐसे तो उन्हें बहिनरूप से है। क्योंकि.... यह सब आये। इसलिए स्वयं सबका सत्कार करने सामने जाते हैं पहले हाथी के हौदे पर। द्रुपद राजा। पहले श्रीकृष्ण को सन्मान करने देते हैं। समुच्चय, फिर प्रत्येक को। बहुत हजारों राजा आते हैं। फिर किसी-किसी को—प्रत्येक-प्रत्येक को सबको मैं सन्मान देता हूँ, ऐसा कहकर बोलते हैं। सब तक कहाँ पहुँचे ? समय हो पाव घण्टा। सबको मैं सन्मान देता हूँ बड़ों को मुख्य करके सबको मैं सन्मान देता हूँ। ऐसा कहकर पधारो... पधारो। हमारे स्वयंवर में। स्वयंवर होता था पहले। राजा की पुत्री बड़ी हो।

यहाँ कहते हैं, मेरा स्वयंवर निर्ग्रन्थदशा का है। आहाहा! जिससे मोक्ष की लक्ष्मी मुझे प्राप्त होगी। शान्तिभाई! देखो, यह करना पड़ेगा, हों! जिसे सुखी होना हो

तो। यह सब रास्ते दुःख के सरदार जगत के हैं। भगवान आत्मा अन्तर का पहला सम्यग्दर्शन इसे प्रगट करना पड़ेगा। इसके बिना यह सुख का पंथ नहीं, दुःख के पंथ का नाश, इसके बिना नहीं होगा। यह तो पहले कहा है कि मैं सम्यग्दृष्टि हूँ। मेरे शुद्ध भगवान आत्मा के आनन्द का स्वाद मैंने लिया है और मैं अतीन्द्रिय आनन्दमय, पूर्ण ज्ञानमय हूँ। अब मैं... अभी मेरी पर्याय में चारित्रदशा नहीं... इस प्रकार से बात की है न! स्वयं चारित्र में है परन्तु व्यक्तिगत दीक्षित हो, उसे ऐसी दशा होती है, ऐसा स्वयं साथ में लेकर बात करते हैं। समझ में आया?

कुन्दकुन्दाचार्य चारित्रवन्त तो हैं, वीतराग निर्ग्रन्थदशा जिनकी बाह्य में नग्नदशा, अन्तर में वीतरागता प्रगट हुई है। ऐसे आचार्य कहते हैं, मेरी निर्ग्रन्थपने की दीक्षा का उत्सव **उसके उचित....** उसके योग्य **मंगलाचरणभूत जो कृतिकर्मशास्त्रोपदिष्ट...** उसके योग्य मुझे जो मंगलाचरण करना चाहिए अथवा पंच परमेष्ठी को सन्मान देना चाहिए, वह **कृतिकर्मशास्त्रोपदिष्ट वन्दनोच्चार...** भाषा देखो। वन्दन उच्चार शब्द प्रयोग किया है। मूल पाठ में वन्दन शब्द है, उसका यहाँ वन्दन उच्चार शब्द किया, ऐसा कहता हूँ। उच्चार शब्द डाला है। वाणी लेनी है न! प्रणमन में तो नमन लेना है और यहाँ वन्दन इसलिए दोनों को निकालकर टीका में... प्रणमन पहले किया। वन्दन उच्चार। वन्दन उच्चार... ऐसे उच्चार करते हुए, स्तुति करते-करते। शरीर से नमते हैं, वन्दन-प्रणाम करते हैं और वन्दन उच्चार स्तुति करते हैं। वन्दनोच्चार का अर्थ यहाँ स्तुति करते हैं।

(कृतिकर्मशास्त्र में उपदेशे हुए स्तुतिवचन)... देखो! **उसके द्वारा...** अनन्त तीर्थंकरों की अस्ति वर्तमान में हो, सर्वज्ञ परमेश्वर सिद्ध हुए, वे मुझे वर्तमान अस्ति में हैं, ऐसा आश्रय करके, लक्ष्य करके वन्दन करता हूँ। उन्हें सन्मान देता हूँ। कहो, है यह शुभविकल्प। समझ में आया? वस्तु भगवान आत्मा तो चिदानन्द शान्त वीतरागमूर्ति आत्मा है, ऐसा भान होने पर भी अभी पूर्ण वीतरागता की प्राप्ति की चारित्रदशा नहीं है। वह चारित्रदशा प्रगट करने के लिये वन्दन करते हैं, वह विकल्प है, राग है। वह राग है, वह पुण्यबन्ध का कारण है। कहो, समझ में आया? आहाहा! कहाँ गये? मणिभाई! लो, यह पंच परमेष्ठी को वन्दन करे, वह विकल्प और राग पुण्य है। ऐसा कि, हमारे क्या करना अन्तिम रटन? अन्त में रटन करना क्या? यह ज्ञान और आनन्द हूँ। भगवान

भगवान का रटन, वह शुभराग और पुण्य है; धर्म नहीं। कहो, समझ में आया? परन्तु ऐसे भानसहित को ऐसा विकल्प हो, उसे पुण्यबन्ध का कारण होता है। जिसे भान ही नहीं (कि) मैं ज्ञातादृष्टा और आनन्द हूँ, उसरहित अकेले वन्दन आदि का अकेला पुण्यबन्धन हो। साथ में धर्म माने तो मिथ्यात्व का पाप साथ में लगे। शान्तिभाई! आहाहा! उसके योग्य, ऐसा कहा, भाषा है न? संस्कृत ऐसी है न? '**मोक्षलक्ष्मीस्वयंवरायमाणपरनैर्ग्रन्थ्यदीक्षाक्षणोचित**' बराबर है। उसके योग्य। प्रणमन करता हूँ देह से और स्तुति वन्दन उच्चार करता हूँ। कहो, समझ में आया?

अब इस प्रकार... अन्तर वीतरागता प्रगट करे, वह दीक्षा, हों! यह अभी जो दीक्षा-बीक्षा है, वह दीक्षा नहीं। अभी कहते हैं न, यह दीक्षा हुई और महिला ने दीक्षा (ली)। दीक्षा नहीं, दख्या है वह तो सब। समझ में आया? आत्मा के अन्तर भान—अनुभवसहित वह पुरुष हो, स्त्री को दीक्षितपना नहीं हो सकता। समझ में आया? चारित्रदशा स्त्री को होती नहीं, स्त्री का देह उसे हो सकता नहीं। पुरुष का देह हो निमित्तरूप से और अन्तर के भान जिसे स्वरूप (का हुआ है कि), राग के विकल्प का मैं कर्ता नहीं, देह की क्रिया का कर्ता नहीं, नग्नपने की दशा का कर्ता मैं नहीं। पोपटभाई! आहाहा! मुनि हो, उसे नग्नदशा होती है, भाई! लोगों को खबर है एक की। मुनि किसे कहना और समयग्दर्शन किसे कहना! अन्धाधुन्धी बातें सब। समझ में आया?

कहते हैं, इस प्रकार से मैं सब परमेश्वरों को मेरे लक्ष्य में लेकर वन्दन उच्चार और प्रणमन करता हूँ। **अब इस प्रकार अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा सर्व साधुओं को...** पाठ में है न पीछे। उसमें श्रमण शब्द था, उसमें तीनों (आचार्य, उपाध्याय, साधु) समाहित किये थे। फिर मूल पाठ में शब्द है न, उसका अर्थ होता है। अर्हंत भगवान जो केवलज्ञानी परमात्मा, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का का ज्ञान वर्तता है ऐसे, सिद्ध परमात्मा शरीररहित होकर परमात्मा सिद्ध हुए। आचार्य जिन्हें अन्तर शुद्ध उपयोग की प्राप्ति हुई है। विकल्प पंच महाव्रत का विकल्प, वह कहीं साधुपना नहीं। अन्तर शुद्ध आत्मा के आनन्द के आचरण का शुद्ध उपयोग प्राप्त, वे आचार्य। उपाध्याय, वे भी अन्तर में शुद्ध उपयोग जिन्हें प्राप्त हो, वे उपाध्याय हैं, साधु,

वे भी जिन्हें अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का शुद्ध उपयोग प्रगट हुआ है, उसे साधु कहा जाता है। आहाहा!

सर्व साधुओं को प्रणाम और वन्दनोच्चार से... लो, मिलाया अब साथ में। प्रणाम अर्थात् देह से नमूँ, वाणी से उच्चार करूँ आदि। उच्चार आदि स्वतन्त्र किया है, हों! देह का नमन, वह स्वतन्त्र है परन्तु यहाँ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध वर्णन करके बात करते हैं। वन्दन करने का विकल्प है, इसलिए देह वहाँ नमती है, (परन्तु) उस क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं है। समझ में आया? परन्तु वन्दन का विकल्प आता है और देह नमती है, इसलिए निमित्त से कहा है कि देह झुकाकर वन्दन करते हैं और बोलते हैं, उस वाणी का आत्मा कर्ता नहीं। अरे! कठिन बातें, भाई! परन्तु जब स्तुति का शुभ विकल्प आया है, तब वाणी निकलती है, इसलिए स्तुति द्वारा, ऐसा निमित्त से कथन किया जाता है। गजब बातें! समझ में आया? वाणी का कर्ता आत्मा नहीं ज्ञानी, अज्ञानी भी नहीं। परन्तु अज्ञानी मानता है।

सवेरे आया था या नहीं? सब धर्मी के भाव वाणी में आये हैं या नहीं? कि वाणी अद्धर से ही निकलती होगी? ऐ... मणिभाई! धर्मी का भाव तो आत्मा में रहा। वाणी तो जड़ है, वहाँ भाव कहाँ से आया आत्मा का? यह वाणी तो जड़ है, परमाणु है, मिट्टी-धूल है। इससे वाणी निकलती है, वह कहीं आत्मा में से नहीं आती। शोभालालजी! आहाहा! अरे! जगत को तत्त्व क्या है, यह खबर भी नहीं होती। आचार्य कहते हैं, यह शास्त्र मैंने बनाया नहीं। शब्द की शक्ति से बना हुआ शास्त्र है। शब्द में, यह सामर्थ्य स्व-पर को कहने की सामर्थ्य शब्द में है। तब भाई ने प्रश्न किया था कि फेरफार हो न, भूल हो तो ऐसा नहीं, ऐसा लिखते हैं। यह भाव आवे, तब ऐसा लिखा जाता है या नहीं? नहीं, नहीं। ऐसा कि यह लिखा गया परन्तु ऐसा नहीं, ऐसा करना चाहिए। .... भाव प्रमाण ऐसा .... हो गया है। आत्मा ने विकल्प किया कि ऐसा नहीं चाहिए, इसलिए हुआ है—ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब बात भाई! ऐ... सेठ!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दरकार की नहीं अभी तक। पैसा प्राप्त करने के लिये पैसा... पैसा... पैसा... पैसा। कहो, समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, ऐसे अरिहन्तों, सिद्धों, आचार्यों, उपाध्यायों, साधुओं... सर्व साधु हैं न? प्रणाम और वन्दन उच्चार। ऐसे वन्दन उच्चार **से प्रवर्तमान द्वैत द्वारा...** यह द्वैत नमस्कार हुआ। क्योंकि दो हुआ न—प्रणाम और वन्दन। देह नमे और वन्दनोच्चार। **भाव्यभावकपने के कारण...** भाव्य है.... ऐसा विकल्प उठा है। अनन्त तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर जो हुए, वे मुझे आराध्य हैं, आराध्य हैं, आराधनेयोग्य हैं, यह भाव्य में गया। भावक—मैं उसका आराधक हूँ। मैं उसे आराधता हूँ। आहाहा! देखो! भान है अन्दर, हों! दर्शन-ज्ञानसहित ज्ञाता-दृष्टा का। परन्तु विकल्प शुभ उठा है कि यह परमात्मा अनन्त परमेश्वर मेरी चारित्र की दशा के स्वयंवर उत्सव में पधारे हैं, पधारे हैं। समझे न? मैं उन्हें वन्दन करता हूँ। अर्थात् वन्दनोच्चार और प्रणमन करके (वन्दन करता हूँ)।

भाव्यभावक... यह मुझे आराधनेयोग्य और मैं आराधक। नीचे (फुटनोट में अर्थ) है देखा! 'भानेयोग्य; चिन्तवनयोग्य, ध्यान करनेयोग्य अर्थात् ध्येय।' यह पंच परमेष्ठी ध्येय हैं और 'भावक=भानेवाला, चिन्तवन करनेवाला, ध्यान करनेवाला अर्थात् ध्याता।' यह भावक है। समझ में आया? परन्तु कहते हैं उसके (कारण) **उत्पन्न अत्यन्त गाढ़ इतरेतर मिलन के कारण...** अर्थात् कि व्यवहारनय से ऐसा कहा है वास्तव में तो। यह मिलन कहाँ इकट्ठा होता था? भगवान परमेश्वर का ज्ञान यहाँ ज्ञान में बतलाना है न! अद्वैत कहा है न भाई! अद्वैतनय। ज्ञान-ज्ञेय का अद्वैतनय। ज्ञान में सब परमेश्वर ऐसे है, ऐसा ज्ञान हो गया है न। विकल्प भले हो। समझ में आया? इससे मानो ज्ञान में वे ज्ञेय आ गये और दोनों एक हो गये। ज्ञान की अपेक्षा से। विकल्प तो है वहाँ। एक हुए नहीं, परन्तु असद्भूतव्यवहारनय से एक हैं, ऐसा गिनकर लीन हो गये, उसे यहाँ अद्वैत नमस्कार कहा गया है। कहो, समझ में आया? अमरचन्दभाई! देखो! यह व्यवहार की बात आती है। आहाहा!

यह परमेश्वर अनन्त हैं, ऐसा ज्ञान में भास हुआ है और साथ में पर है, इसलिए विकल्प—शुभभाव तो उठा है। यह शुभभाव है, वह वास्तव में तो पुण्यबन्ध का ही कारण है। यह धर्म—संवर-निर्जरा नहीं है। परन्तु ऐसा भाव चारित्र की प्राप्ति से पहले आये बिना रहता नहीं। यह उसे उचित कृतिकर्म (उपदिष्ट) मंगल उच्चारण करता हूँ। द्वैत द्वार (उत्पन्न हुए) **अत्यन्त गाढ़ इतरेतर मिलन के...** मैं और भगवान, मैं और

परमेश्वर दोनों मानो इतरेतर एक हैं। उसके **समस्त स्व-पर का विभाग विलीन हो जाने से...** स्व-पर का विभाग विलीन अर्थात् कि यह ऐसा है, ऐसा भिन्नता का विशेष ख्याल नहीं रहा। भिन्नता का विशेष ख्याल नहीं रहा, इतनी बात है।

जिसमें अद्वैत प्रवर्तमान है... देखो, अद्वैत नीचे (फुटनोट में)। 'पंच परमेष्ठी के प्रति अत्यन्त आराध्यभाव के कारण...' यह तो ऐसा हुआ, (संवत्) १९८४ में बात (आयी) थी कि जिसे ऐसा कि शुभभाव हो तो तीर्थंकरगोत्र बाँधे और यदि बहुत शुभभाव हो तो संवर, निर्जरा हो। राणपुर में, राणपुर में हुआ था एक बार। (संवत्) १९८४ का चातुर्मास था। कहा, यह क्या? जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे... ऐसा कुछ आता है। आता है? उत्कृष्ट .... निर्जरा होती है। कहो, मैंने कहा, यह क्या? ८४ में वे सब.... परन्तु इसका अर्थ क्या? उत्कृष्ट.... अर्थात् क्या? जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह तो शुभ है। उसमें उत्कृष्ट (शुभ) आवे तो (भी) पुण्य बँधता है। उसमें निर्जरा कहाँ से होती थी? ऐई! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेद अर्थात् यह है तो व्यवहार से अभेद। निश्चय से अभेद है नहीं। व्यवहार का कथन है। यह कहे न, एकाकार हो गया, मैं उसमें लीन हो गया। लीन तो कहाँ होता था पर में? उसे यहाँ वास्तव में तो असद्भूतव्यवहारनय को सिद्ध करना है।

द्वैत नमस्कार तो यह है कि भगवान भाव्य आराध्य है और मैं आराधक हूँ, ऐसा जो विकल्प है, उसे व्यवहारभक्ति अथवा व्यवहार नमस्कार कहा जाता है। और स्वरूप अपना ज्ञाता-दृष्टा है, ऐसा भान है, उसमें एकाकार होता है वीतरागदशा से, उसे अद्वैत नमस्कार, निश्चय से वह अद्वैत नमस्कार है। व्यवहार से इसे जरा अद्वैत व्यवहार से कहा गया है। समझ में आया? स्वयं ऐसा विकल्प करता है, तब लक्ष्य तो वहाँ ही है, आड़ा-टेढ़ा लक्ष्य है ही नहीं। समझे न? ऐसा यदि कहे कि पहले आड़ा-टेढ़ा लक्ष्य था, (फिर) वहाँ एकाकार हुए। परन्तु ऐसा होता ही नहीं। लक्ष्य तो वहीं का वहीं है। परन्तु व्यवहारनय से मानो निमित्त और नैमित्तिक एक हों। निमित्त-नैमित्तिक व्यवहार है, तथापि दोनों व्यवहार से एक हो, ऐसा गिनकर अद्वैत नमस्कार कहा गया है।

मुमुक्षु : अद्वैत का अर्थ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक, दोनों एक हो गये, ऐसा। हुए नहीं, परन्तु व्यवहारनय से दोनों एक हुए, ऐसा कहा जाता है।

मुमुक्षु : रंग जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रँगता है, वह तो राग में है। वह कहीं पर में नहीं रहता। समझ में आया? राग में भी कहाँ रँगा है वास्तव में? ज्ञान से रँगा है। ज्ञान में रहकर ज्ञानी राग का ज्ञान करता है। ज्ञानी—धर्मी जो है, वह तो ज्ञान में राग का करता है। और राग में भी नहीं तथा पर में भी नहीं। परन्तु यहाँ व्यवहार सिद्ध करना है न कि पंच परमेष्ठी की इतनी गाढ़ उत्कृष्ट भक्ति हुई कि जिसे स्वयं भूल गया कि मैं यह हूँ और वह यह है। इसलिए अभेद व्यवहारनय से कहा जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अन्दर की बात है वहाँ। समझ में आया? आनन्दघनजी में आता है। चिद् धातु। वह तो चैतन्य की बात है, वहाँ निर्मल की बात है।

इतरेतर मिलन के कारण समस्त स्व-पर का विभाग विलीन हो जाने से जिसमें अद्वैत प्रवर्तमान है, ऐसा नमस्कार करके,... नमस्कार का अर्थ शरीर का नमना और वाणी से उच्चार करनेसहित को एकाकार को यहाँ अद्वैत नमस्कार कहा गया है। समझ में आया? **उन्हीं अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधुओं के आश्रम को...** क्या कहते हैं अब? क्या कहते हैं, देखो! कहते हैं कि जैसे कोई राजा या कोई बाबा या मठधारी हो तो वह मठ में मिलता है। उसका आश्रम हो वहाँ मिलेगा न! इसी प्रकार परमेश्वर कहाँ मिलें? मोक्षलक्ष्मी कहाँ मिले? परमेश्वरदशा कहाँ मिले? और पंच परमेष्ठी की भेंट भी कहाँ हो? समझ में आया? अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, सर्वसाधु का आश्रम—धाम **जो कि (आश्रम) विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधान होने से...** देखो! पंच परमेष्ठी का धाम। यहाँ विशुद्ध दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह उसका पहला धाम, वहाँ भगवान मिलते हैं। आहाहा! समझ में आया? अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा, उसका निर्विकल्प सम्यग्दर्शन का अनुभव और वह निर्विकल्प जैसा अनन्त गुण का पिण्ड है, उसका ज्ञान,

यह पंच परमेष्ठी से मिलने का धाम। वहाँ प्रवेश करे, उस स्थिति की भूमिका में तो उसे परमेश्वर मिलते हैं। अर्थात् उसे चारित्रदशा होकर केवलज्ञान होता है। जिसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान ही नहीं, उसे चारित्र होता नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

आत्मा सम्यक् चीज़ क्या है? निर्विकल्प आनन्द क्या है? उसका तो अनुभव नहीं और ले लो दीक्षा, ले लो महाव्रत। बिना एक के शून्य है, रण में शोर मचाने जैसी बात है। समझ में आया? ऐ... कान्तिभाई! दाँत निकालते हैं (हँसते हैं)। तुमको भान नहीं हो, फिर वहाँ वे दीक्षा दे तो ओहोहो! हो जाये तुम्हारे। भारी दीक्षा। फिर खर्च करो २००-५०० हमें दे तो दीक्षा को मदद की कहलाये। ऐ... शान्तिभाई! पड़े यह सब बड़ होकर वहाँ। दीक्षा... दीक्षा। यह भी क्या, दीक्षा में सेठ को बुलावे। कहाँ दीक्षा थी? सम्यक् आत्मा विकल्परहित चिदानन्द प्रभु, सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव ने कहा, ऐसा आत्मा अन्तर दृष्टि में अनुभव में न आवे और उसका ज्ञान न हो, तब तक तो वह समकिती नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं... ऐ... भीखाभाई! उसमें कहीं तुम्हारे दिक्कत नहीं। लाभ की बात, वह तो है, ऐसा है। वह तो निमित्त का ज्ञान कराते हैं।

जो कि (आश्रम) विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधान होने से... क्या कहते हैं? है नीचे अर्थ। इसका अर्थ, सहज का है। नीचे है न, देखो वह अद्वैत। 'यद्यपि नमस्कार में (१) प्रणाम और (२) वन्दनोच्चार दोनों समाहित होने से द्वैत (दो-पना) घटित होता है तो भी तीव्र भक्तिभाव से स्व-पर का भेद विलीन हो जाने से अपेक्षा से तो उसमें अद्वैत प्रवर्तता है।' व्यवहारनय से अद्वैत कहा गया है। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! आचार्य स्वयं कहते हैं, उसका इतना अर्थ समझना। कहते हैं, आहाहा! कितनी बात वर्णन की है! पंच परमेष्ठी का प्रसाद है, कहते हैं। अर्थात् कि उन्होंने जो मार्ग कहा, वह हमारे ख्याल में और हमारी दृष्टि में आया है, (इसलिए) मुझे भगवान की कृपा वर्तती है। समझ में आया?

कहते है, **विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधान होने से...** कहते हैं कि पंच परमेष्ठी का धाम—आश्रम—मण्डप, उसका स्थान कहाँ है? कि सम्यग्दर्शन और ज्ञान आत्मा निर्विकल्प दर्शन और निर्विकल्प ज्ञान, वहाँ भगवान का धाम मिले, ऐसा है, वहाँ भगवान मिलेंगे।

समझ में आया ? वहाँ पंच परमेष्ठी की पर्याय की प्राप्ति होगी, अन्यत्र होगी नहीं, ऐसा कहते हैं। साधुपने की पर्याय, आचार्य, उपाध्याय, अरिहन्त और सिद्ध की दशा, वह जिसके अन्दर में विशुद्ध सम्यग्दर्शन, ज्ञान प्राप्त है, वही पंच परमेष्ठी का धाम है, वही उनका मठ है, वह उनका आश्रम है, वह उनका घर है। उस घर में विशुद्ध सम्यग्दर्शन, ज्ञान के घर में पंच परमेष्ठी की पर्याय प्राप्त होगी। समझ में आया ? आहाहा !

अब कहते हैं, यह श्रद्धा का स्वरूप क्या ? यह वर्णन करते हैं। **सहजशुद्धदर्शन-ज्ञानस्वभाववाला आत्मतत्त्व...** भाषा देखो। अब यह श्रद्धान और ज्ञान जिसका लक्षण है, वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ? ऐसा कहते हैं। स्वाभाविक, भगवान आत्मा में स्वाभाविक शुद्ध दर्शन... दर्शनशक्ति त्रिकाल। दर्शन-दृष्टापना त्रिकाली सहज दर्शनस्वरूप और सहज ज्ञानस्वभाववाला भगवान। देखो ! यहाँ आत्मा को रागवाला और पुण्यवाला और विकल्पवाला और कर्मवाला, ऐसा नहीं कहा। आत्मा ऐसा है ही नहीं। आहाहा !

कैसा है भगवान ? सहज विशुद्ध शुद्ध दर्शन-ज्ञानस्वभाववाला आत्मतत्त्व। स्वाभाविक दृष्टा-ज्ञाता का स्वभाव जिसमें परिपूर्ण बेहद अनन्त पड़ा है, ऐसा सहजशुद्धदर्शन-ज्ञानस्वभाववाला आत्मतत्त्व, उसका श्रद्धान, उसका श्रद्धान... उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह श्रद्धान अर्थात् निर्विकल्प श्रद्धान की यह बात है। समझ में आया ? भगवान आत्मा, यह दर्शन अर्थात् दृष्टाशक्ति अनन्त-बेहद है। स्वभाव है न। सहज शुद्ध, सहज शुद्ध पवित्र स्वाभाविक दर्शन-ज्ञानस्वभाववाला जो आत्मतत्त्व, उसकी अन्तर्मुख होकर उसके अनुभव में सम्यग्दर्शन (हो), उसे सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली भूमिका कहा जाता है। समझ में आया ? सहज। नीचे (अर्थ) किया है, देखो ! 'सहजशुद्धदर्शनज्ञानस्वभाववाला=सहज शुद्ध दर्शन और ज्ञान जिसका स्वभाव है, ऐसा।' ऐसा जो आत्मतत्त्व, उसका **श्रद्धान और ज्ञान...** उसका ज्ञान। शास्त्र का ज्ञान और पठन की यहाँ बात नहीं। भगवान आत्मा स्वाभाविक दर्शन, ज्ञानस्वभाववाला स्वभाववान आत्मतत्त्व का ज्ञान। शास्त्र का ज्ञान या नौ तत्त्व का भेदवाला ज्ञान, वह ज्ञान नहीं। समझ में आया ? उसे ज्ञान कहते हैं, वस्तु सहज दर्शनशक्ति अनन्त बेहद। ज्ञान शुद्ध सहज बेहद, उसका ज्ञान, उसका ज्ञान। बीच में रागादि है, उनका नहीं, पुण्य आदि का नहीं।

वह तो उसमें नास्ति है। अस्ति ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका दर्शन-ज्ञान स्वरूप जो है, उसकी श्रद्धा और उसका ज्ञान। उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की धर्म की शुरुआत वहाँ से चलती है। समझ में आया? आहाहा! बिना भान के कूटे और धर्म हो जायेगा। और भटक मरेगा चौरासी के अवतार में। धूल में भी नहीं कुछ।

भगवान महाप्रभु विराजता है स्वाभाविक दर्शन और ज्ञान की मूर्ति है। दर्शन अर्थात् यहाँ समकित नहीं। दर्शन अर्थात् देखना स्वभाव त्रिकाल। समझ में आया? यहाँ आत्मा को सहज दर्शन, शुद्ध दर्शन-ज्ञानस्वभाववाला ही कहा है, बस। वह राग, पुण्यवाला नहीं, व्यवहारवाला नहीं, निमित्तवाला नहीं और अल्प ज्ञान तथा अल्प दर्शन जितना नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ क्या कहते हैं? सम्यग्दर्शन-ज्ञान जो आश्रम है पंच परमेष्ठी की पर्याय वहाँ प्राप्त होती है, ऐसा जो आश्रम, वह कैसा है? कि जिसमें सहज दर्शन-ज्ञान, सम्यग्दर्शन और ज्ञान (स्वरूप) वस्तु है, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान कैसे हैं? कि सहज शुद्ध आत्मा की दर्शन और ज्ञान शक्ति—स्वभाव है, उसकी श्रद्धा और उसका ज्ञान। उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया?

उस **आत्मतत्त्व का श्रद्धान और ज्ञान जिसका लक्षण है, ऐसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का सम्पादक है,...** 'प्राप्त करानेवाला; उत्पन्न करनेवाला।' क्या कहते हैं? वह आश्रम कैसा है? कि जिसमें विशुद्ध ज्ञान-दर्शन प्रधान होने से ऐसे तत्त्व की श्रद्धा-ज्ञान को प्राप्त करानेवाला है। उसमें यह प्राप्त होता है। समझ में आया? **उसे प्राप्त करके...** अब कहते हैं। ऐसे आत्मा के अनुभव की श्रद्धा और आत्मा के ज्ञान को प्राप्त करके। देखो! धर्म की यह भूमिका तो पहली प्रगट है। अब उसे चारित्र की बात होती है। निर्ग्रन्थदशा वीतरागदशा का चारित्र मुनिपना साधुपना उसे होता है। दूसरे को साधुपना नहीं हो सकता। समझ में आया?

सम्यग्दर्शनज्ञान सम्पन्न होकर,... ऐसा। जो आश्रम सम्यग्दर्शन का सम्पादक है ऐसा। ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान को प्राप्त होकर। बस यहाँ तक दशा रही चौथे (गुणस्थान) की। **जिसमें कषायकण विद्यमान होने से...** क्या कहते हैं अब? देखो, यहाँ तक साधारण बात तब अपने दो व्याख्यानों में हो गयी थी, अब यह बात नहीं हुई थी।

कहते हैं, मैं सहज स्वभाव मेरा त्रिकाली दर्शन और ज्ञान, ऐसा जो आत्मा, उसमें अनन्त गुण इकट्ठे आ गये। सामान्यदर्शन और ज्ञान—ऐसा मूल स्वभाव है, ऐसे आत्मा की श्रद्धा और ज्ञान को पाकर अब मैं चारित्र—साम्यभाव—शुद्ध उपयोग (सहित) वीतराग चारित्र अंगीकार करना चाहता हूँ। परन्तु कहते हैं, उसमें कषायकण बीच में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य का विकल्प जो उठता है, वह कषाय का कण है, राग है। पंच महाव्रत के परिणाम जो हैं, पंच महाव्रत के। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ऐसा जो भाव, वह विकल्प—राग का कण है। समझ में आया? समझ में आता है या नहीं? कषायकण। देखो! कषाय का छोटा अंश, कण अर्थात्। बीच में वह आया, विकल्प उठा, पंच महाव्रत ऐसे होते हैं, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य (और अपरिग्रह)। सर्वज्ञ ने कही हुई पंच महाव्रत की वृत्ति व्यवहार आया, परन्तु वह कुछ साधुपद नहीं है, कहते हैं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित आगे बढ़कर मुझे चारित्र की भूमिका में विकल्प उठा। अभी चारित्र पूर्ण नहीं, परन्तु स्थिरता अमुक अंश में है, उसमें यह विकल्प उठता है। पंच महाव्रत, अहिंसा, एक बार आहार लेना, सामायिक, वन्दन, कायोत्सर्ग—ऐसा विकल्प है, वह छठवीं भूमिका में—छठवें गुणस्थान में ऐसा कण आता है, परन्तु मैं उसे उल्लंघ जाता हूँ। देखो! है विकल्प में, तथापि उल्लंघ जाता हूँ, ऐसा कहते हैं। भावना में है न! आहाहा! गजब बात! अट्ठाईस मूलगुण साधुपद के। साधुपद के नग्नदशा होती है उनकी और तीन कषाय (चौकड़ी) का जिसमें अभाव होता है, उसे अट्ठाईस मूलगुण होते हैं। एक बार आहार लेना, एक ही बार मुनि को आहार होता है, दो बार होता नहीं। और सामायिक, चौविसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण आदि का विकल्प होता है। पंच महाव्रत का विकल्प होता है, खड़े-खड़े आहार ले। मुनि की दशा को खड़े-खड़े आहार ऐसी दशा ही उनकी होती है। ऐसा जो विकल्प है, वह बीच में मुझे आया, परन्तु वह कषाय का कण है, कहते हैं, राग है, पुण्यबन्ध का कारण है, वह चारित्र नहीं। कहो, समझ में आया?

जिसमें कषायकण विद्यमान होने से... देखो! है सही, ऐसा कहते हैं। **जीव को जो पुण्यबन्ध की प्राप्ति का कारण है...** आहाहा! अहिंसा—पर को न मारूँ, छह काय के जीव को, हों! छह काय के जीव हैं। पृथ्वी के जीव असंख्य हैं। पृथ्वी... पृथ्वी। यह

पत्थर है न खान में, उसके एक कण में असंख्य जीव हैं। पानी की एक बूँद में असंख्य जीव हैं, अग्नि की एक चिंगारी में असंख्य जीव हैं, आत्मा हैं असंख्य, वायु के एक फुंकार में असंख्य जीव हैं, प्रत्येक वनस्पति के पत्ते में असंख्य जीव हैं और निगोद के एक टुकड़े में अनन्त जीव हैं। और दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय, यह सब असंख्य जीव हैं। अंक कहे उतने जीव हैं। उन सब जीवों को नहीं मारने का मेरा विकल्प जो है अहिंसा का, वह पुण्यबन्ध का कारण है, धर्म नहीं। समझ में आया? आहाहा!

इसी प्रकार वीतराग ने कहे हुए तत्त्वों का कथन करने में हमारा जो विकल्प उठता है, वह भी कषाय का कण है। कुछ भी अदत्त—किसी के दिये बिना नहीं लेना, ऐसा मुझे विकल्प उठे, वह भी राग का कण है। मैं शरीर से नौ कोटि से ब्रह्मचर्य पालन करता हूँ, ऐसा जो विकल्प है, वह भी राग का कण है, कषाय का कण है, पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! धर्म नहीं, चारित्र नहीं वह। समझ में आया? वह पुण्यबन्ध का कारण, **पुण्यबन्ध की प्राप्ति का कारण है...** लो, **ऐसे सरागचारित्र...** सरागचारित्र अर्थात् रागवाला विकल्प। छठवें गुणस्थान में। सम्यग्दर्शन-ज्ञान चौथे गुणस्थान में (हुए) और छठवें गुणस्थान में वह राग का विकल्प जो है अट्ठाईस मूलगुण का, पंच महाव्रत का, वह पुण्यबन्ध का कारण है, ऐसा सरागचारित्र। ओहो! कितनी बात करते हैं! इतना स्पष्ट होने पर भी उल्टा करते हैं, लो। ओहो! अरे! उसे तिरने की इच्छा कहे और वापस डूबने की श्रद्धा करे। मुनिपना—साधु किसे कहना, बापू! यह कोई दूसरी चीज़ है। लोगों को खबर भी नहीं। साधुपद तो, 'मनुष्य होना मुश्किल है तो साधु कहाँ से होय, साधु हुआ तो सिद्ध हुआ।' आहाहा! साधु तो जगत का परमेश्वर है। आहाहा!

कहते हैं, मैं यह चारित्र—साम्य अर्थात् शुद्ध उपयोग(रूप) वीतरागभाव अंगीकार करना चाहता हूँ परन्तु बीच में यह विकल्प साथ में छठवें गुणस्थान का आया है, वह पुण्यबन्ध की प्राप्ति का कारण है, सरागचारित्र है, वह क्रम से आ पड़ा होने से। क्रम में छठवीं भूमिका में वह राग ऐसा आवे। क्रम से आ पड़ा, हों! कर्ता होकर किया, ऐसा नहीं, भाई! भाषा। मैंने पंच महाव्रत के परिणाम किये, इसलिए ऐसा नहीं। यहाँ तो क्रम से आ पड़ा होने से। भाषा तो देखो। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित

जहाँ चारित्र की दशा पूर्ण प्राप्त नहीं हुई, सातवें (गुणस्थान) की, उससे पहले ऐसा कण कषाय का है, कहते हैं वह सरागचारित्र है। परन्तु सरागचारित्र, ऐसा कहा न? परन्तु सराग अर्थात् रागवाला भाग है, वह चारित्र का। वह पुण्यबन्ध का कारण है, वह संवर-निर्जरा का कारण नहीं, मोक्ष का कारण वह बिल्कुल नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसमें कहाँ अफ्रीका में तो ऐसा कहीं सुनाई दे, ऐसा है? भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : यहाँ भी नहीं तो अफ्रीका में कहाँ.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ मुश्किल है, बात सच्ची। यहाँ मुश्किल है तो वहाँ कहाँ था? आहाहा!

कहते हैं कि सम्यग्दर्शन और ज्ञान—जिसमें परमात्मा प्राप्त हो पंच परमेष्ठी ऐसी भूमिका हुई, तथापि अभी मैं पूर्ण शान्ति और समता, जिसमें विकल्परहित चारित्र को अंगीकार करना चाहता हूँ, परन्तु बीच में राग क्रम में आ पड़ा है। आहाहा! भगवान के पास या साधु के पास मुनिपना अंगीकार करे, तब ऐसा विकल्प आवे, पंच महाव्रत आदि, परन्तु कहते हैं कि वह क्रम से आ पड़ा है, क्रम में आ पड़ा है। आहाहा! **(गुणस्थान आरोहण के क्रम में...)** गुणस्थान है न? चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ उसके क्रम में छठवाँ गुणस्थान है वह। सम्यग्दर्शन और ज्ञान, वह चौथा गुणस्थान है। और उसमें से जरा शान्ति अन्दर बढ़े, वह पाँचवाँ गुणस्थान श्रावक का कहलाता है। यह वाड़ा के श्रावक हैं, उनकी यहाँ बात नहीं। अन्तर में पहली भूमिका में चौथा गुणस्थान आवे, उसे सम्यग्दर्शन में अनन्तानुबन्धी का अभाव और शान्ति का वेदन (होता है)। पश्चात् आगे बढ़ते हुए पाँचवें गुणस्थान का श्रावकपना जब आवे, तब अन्दर शान्ति विशेष बढ़ जाती है। शान्ति और आनन्द का अंश बढ़ जाये, तब उसे बारह व्रतादि के विकल्प होते हैं, परन्तु विकल्प है, वह पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया?

आगे जब मुनिपना ग्रहण करे, तब उसके पहले उसे विकल्प आवे। यहाँ तो यह शैली ली है। वरना तो सातवाँ आवे, पश्चात् छठवाँ होता है, परन्तु यहाँ वह विकल्प कषाय का कण है, उसे बतलाकर उल्लंघकर सातवाँ (आता है), ऐसा लेना है। वरना तो पहले सातवीं भूमिका आती है, पश्चात् छठवाँ आता है। परन्तु कहते हैं कि मेरी भूमिका में चारित्र की प्राप्ति में ऐसा पहला भाग कण का आ गया, ऐसा कहते हैं। समझ

में आया? आहाहा! दुनिया को चारित्र किसे कहना, साधुपना (किसे) कहना, इसकी खबर नहीं। श्रद्धा खोटी और माने कि हमारी श्रद्धा सच्ची है। उसमें बोले सही कि कुसाधु को साधु माने तो मिथ्यात्व, साधु को कुसाधु माने तो मिथ्यात्व। परन्तु किसे कहना, इसका भान नहीं। शान्तिभाई! सब पहाड़े बोले थे यह भी वहाँ। प्रतिक्रमण में आता है न? ऐ... शान्तिभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षमा करता हूँ, ऐसा नहीं। क्षमा भूल जाये। खऊं छुं, खऊं छुं। ठीक। कुछ शब्द के अर्थ की खबर नहीं होती। आहाहा! अरे! यह तो सब मूढ़ जीव हैं, उन्हें धर्म कैसा? यहाँ तो विवेक जिसे (प्रगट हुआ है), राग से, विकल्प से भिन्न पड़कर निर्विकल्प आत्मा का अनुभव और दृष्टि हुई है जो सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी ने कहा हुआ आत्मा; अज्ञानी ने कहा हुआ आत्मा, वह आत्मा नहीं। समझ में आया? वह आत्मा दर्शन-ज्ञान के परिपूर्ण पूर से भरा हुआ है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान को पाये होने पर भी आगे चारित्र को प्राप्त करना चाहता हूँ, तथापि कहते हैं कि कषाय का कण है। यह शैली ली है। वरना तो चौथे, पाँचवें गुणस्थान में जब विकल्प आता है न पहले कि मैं महाव्रत लूँ, ऐसा विकल्प है न, वह शैली गिनी है यहाँ। वरना तो छठवाँ गुणस्थान हो पहले, ऐसा नहीं होता। पाँचवें और चौथे में हो वहाँ यह विकल्प हो, वह टूटकर सातवाँ गुणस्थान मुनि को पहले आता है। अप्रमत्तदशा ही आती है, अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, उसका नाम साधुपना है। समझ में आया? तब उसकी शरीर की नग्नदशा सहज हो जाती है। तब उसे वस्त्र, पात्र नहीं हो सकते। फिर उसे जब विकल्प उठे अन्तर्मुहूर्त में, तब उसे अहिंसा, सत्य आदि, किसी जीव को न मारूँ, आहार लूँ, दूसरे को कहूँ, प्ररूपित करूँ—ऐसा विकल्प उठे, वह राग है। आहाहा! तत्त्व की खबर नहीं होती और तत्त्व की श्रद्धा सच्ची है, ऐसा माने। कहो, सेठी! अप्रमत्तदशा सातवीं भूमिका। यही कहते हैं न!

आत्मा का दर्शन, ज्ञान तो है, पश्चात् जब विकल्प आता है तब साधु के निकट, गुरु के निकट जाकर कहता है, मुझे पंच महाव्रत दो। विकल्प तो आया। वह तो अभी चौथे, पाँचवें में आया है। और यहाँ वर्णन करते हैं, वह सातवाँ आने के बाद जब छठवें

में आता है न, उसे हेयरूप गिनकर अन्दर जाना है सातवें में, यह बात वर्णन करते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ मार्ग यह है। यह कहीं किसी का अनदेखा कहा हुआ नहीं। भगवान परमात्मा एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे, उनकी वाणी में यह आया है, ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है।

यहाँ तो कहते हैं अरे! मुझे यह गुणस्थान के क्रम में राग का कण आ गया है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य पालन करूँ, रखूँ, नग्नदशा हो—ऐसा विकल्प है, वह राग का कण है, पुण्यबन्ध का कारण है। धर्म की वह वस्तु नहीं। आहाहा! ऐसे **चारित्रमोह के मन्द उदय से आ पड़ने पर भी...** देखो, है न? **(गुणस्थान आरोहण के क्रम में बलात्...)** जबरदस्ती अर्थात् मेरी भावना तो वीतरागता की एकाग्रता (की है), परन्तु अन्दर पुरुषार्थ की कमी के कारण राग का कण (आ गया है)। कहो, समझ में आया? **(आ पड़ने पर भी...)—दूर उल्लंघन करके,...** मैं उस विकल्प को भी छोड़ देता हूँ, क्योंकि वह पुण्यबन्ध का कारण है। अब **जो समस्त कषायक्लेशरूपी कलंक से भिन्न होने से...** अन्दर सातवीं भूमिका मुनि की निर्वाण का कारण शुद्ध उपयोग, वह उसकी भूमिका है। समझ में आया? मुनि का भान होने के पश्चात् उसे छठवें (गुणस्थान) में विकल्प आता है। छठवाँ-सातवाँ, छठवाँ-सातवाँ हजारों बार आवे, हजारों बार। टिक नहीं सके अन्दर आनन्द में तो विकल्प आवे। नग्नदशा है, मुनि तो जंगल में होते हैं। सच्चे सन्त की बात है, हों! समझ में आया? वस्तु का स्वरूप तो ऐसा है। अब उससे विरुद्ध हो, उसे माने और उसकी यहाँ व्याख्या हो तो कहे, यह तो साधु को मानते नहीं। साधु तो हो, उसे माने या न हो उसे माने? समझ में आया? साधुपना तो ऐसा होता है। अन्तर अनुभवदृष्टिसहित अन्दर आगे बढ़ता है, उसे अहिंसा भगवान ने कहे हुए व्यवहार ऐसे पंच महाव्रत के विकल्प उठे हैं, राग, उसे पुण्यबन्ध का कारण जाने, मान्यता में—श्रद्धा में उसे राग का कारण जानकर छोड़ना चाहता है। **दूर उल्लंघन करके,...** कहते हैं। देखा! **दूर उल्लंघन करके,...** एकदम उसे छोड़कर सातवें में जाता हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जहाँ ध्याता-ध्यान और ध्येय भूल जाते हैं। मैं ध्याता हूँ और ध्यान करनेवाला हूँ और ध्येय ध्रुव है, ऐसा भेद भी जहाँ नहीं। सम्यग्दर्शन के पश्चात्, सम्यग्ज्ञान के पश्चात् चारित्र की भूमिका यह प्रगट होने पर उस समय सब भूल जाता

है। अकेला आनन्द का उपयोग रहे, अतीन्द्रिय आनन्द की उग्रता का चारित्र का उपयोग रहे, उसे साम्यभाव—समताभाव—शुद्ध उपयोग भाव—निर्ग्रन्थदशा उसे कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

समस्त कषायक्लेशरूपी कलंक से भिन्न होने से... कोई ऐसा कहे कि समस्त कषायक्लेश से भिन्न तो बारहवें गुणस्थान में (होता है)। अब सुन न! बुद्धिपूर्वक सब कषाय गयी, इसलिए समस्त कषायक्लेश गया। समझ में आया? भारी विवाद उठे। पाठ तो यह है न भाई इसमें? **समस्त कषायक्लेशरूपी कलंक से...** कषाय बुद्धिपूर्वक का विकल्प था, वह छूटा, (इसलिए) सब कषाय छूट गयी। जाओ, अबुद्धिपूर्वक की थोड़ी रही, उसका स्वामी नहीं। स्वामी तो राग का भी नहीं यहाँ। परन्तु अबुद्धिपूर्वक राग अन्दर ध्यान में होता है, तथापि उसकी पर्याय में नहीं, ऐसा यहाँ गिनना है। **निर्वाण प्राप्ति का कारण है...** लो। यह निर्वाण अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति का कारण अन्दर में निर्विकल्प शुद्ध उपयोग(रूप) चारित्र, वह मोक्ष का कारण है। समझ में आया? ऐसा अंगीकार करने... मुनि की दशा तो यही है कुन्दकुन्दाचार्य की। परन्तु दूसरों को अंगीकार कराने और वस्तु ऐसी होती है और करनेवाली की भावना ऐसी होती है, उसका वर्णन लेकर बात करते हैं। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १५, शुक्रवार, दिनांक ०६-०९-१९६८
गाथा - १ से ५, ६, प्रवचन - ४

ज्ञानतत्त्व (प्रज्ञापन) अधिकार चलता है। कुन्दकुन्दाचार्य पहली पाँच गाथाओं में अपनी बात करते हैं। इस प्रकार जगत के प्राणी को भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान पाकर चारित्रपना निर्ग्रन्थपना कैसे प्राप्त होता है, यह समझाते हैं। समझ में आया? निर्ग्रन्थतारूप चारित्र जो वीतरागपने की परिणति, वह मुक्ति का कारण है। समझ में आया? और वह वीतराग परिणति उसके पहले आत्मा में पंच परमेष्ठी का जो आश्रम, विश्राम स्थान, विश्राम धाम, ऐसा जो आत्मा दर्शन-ज्ञान सामान्यस्वरूप जो है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणतारूप जो दर्शन और ज्ञान की प्राप्तिरूप भाव, वह पंच परमेष्ठी का आश्रम, विश्राम स्थान, विश्राम धाम है। समझ में आया?

आत्मा को विश्राम का स्थान पंच परमेष्ठी का आश्रम। अर्थात् कि पंच परमेष्ठी (पर्याय), वह प्राप्त कैसे हो? पंच परमेष्ठी जो दर्शन-ज्ञान सम्पन्न है और फिर वीतराग सम्पन्न है, उसका मूल आश्रमधाम आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान को पावे, वह पंच परमेष्ठी के आश्रम का, विश्राम का, शान्ति का स्थिरता का धाम है। समझ में आया?

मुमुक्षु : नहीं समझ में आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आया, यह ठीक कहा। तुम्हारे कहाँ गये? पहले आ गया या नहीं? दो-तीन दिन से चला है, परन्तु याद नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। फिर से कहलवाते हैं, ऐसा रखो। देखो, आया न? पहले आ गया।

पंच परमेष्ठी के आश्रम को कि जो **विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधान होने से...** है न? अर्थात् कि आत्मा सहज शुद्ध दर्शन-ज्ञानस्वभाववाला आत्मतत्त्व। भगवान आत्मा स्वाभाविक शुद्ध दर्शन-ज्ञान, ज्ञाता-दृष्टा और ज्ञाता जिसका सहज स्वभाव, बेहद-अनन्त स्वभाव, ऐसा जो आत्मतत्त्व, उसकी श्रद्धा और ज्ञान, स्वरूप की ओर सन्मुखता की श्रद्धा और ज्ञान, वह पंच परमेष्ठी का आश्रम—धाम। उसमें से पंच परमेष्ठी की पर्याय प्राप्त होती है। समझ में आया? मठ में जाये, तब उसका महात्मा हो वह मिले न? .... इसी प्रकार मठ है यह भगवान का। समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तु आत्मा,

देखो ! प्रथम सम्यग्दर्शन और ज्ञान, वह पंच परमेष्ठी का विश्रामधाम कि जिसमें परमात्मा प्राप्त हो सकता है। जिससे परमात्मा की भेंट हो सकती है। समझ में आया ? वह आश्रम अर्थात् क्या ? कि भगवान आत्मा स्वाभाविक सहज दर्शन और ज्ञाता-दृष्टा और ज्ञाता ऐसा उसका त्रिकाली अप्रतिहत ऐसा उसका त्रिकाली स्वभाव। ऐसे स्वभाववान आत्मा की... कहा न ऊपर देखो !

विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधान... उसका सम्यग्दर्शन। स्वरूप-सन्मुख की प्राप्ति की प्राप्त श्रद्धा और उसके सन्मुख का जो ज्ञान, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन, ज्ञान, पंच परमेष्ठी उसमें से प्राप्ति होगी, इसलिए पंच परमेष्ठी का आश्रमधाम उसे कहा जाता है। समझ में आया ? साधु की पर्याय, आचार्य की, उपाध्याय की, अरिहन्त और सिद्ध की, यह पंच परमेष्ठी की पर्याय, उसका आश्रम —धाम भगवान आत्मा, उसमें दर्शन-ज्ञान का पिण्ड स्वयं है, वस्तु है न, वस्तु। तत्त्व है न, तो उसका तत्त्व सत्त्व क्या है ? सामान्य देखना, यहाँ देखने की बात है और जानना—ऐसा जिसका स्वभाव बेहद शक्ति का स्वरूप ऐसा जो आत्मतत्त्व, उसकी अन्तर में स्वसन्मुख की प्रतीति सम्यग्दर्शन और उसके स्वसन्मुख का स्वसंवेदनज्ञान, उसमें से पंच परमेष्ठी मिलेंगे, इसके अतिरिक्त मिलेंगे नहीं। समझ में आया ? कहो, समझ में आया या नहीं ? समझ में आया या नहीं ? बराबर नहीं। बराबर हाँ नहीं पड़ती। पूछेंगे और नहीं आये तो क्या करना ? यह भगवानदास को मिलना हो तो इनका जो बँगला है, वहाँ जाना चाहिए इनके धाम में। वहाँ इनसे मिला जा सकता है। इनके घर में हो न वहाँ। कहो, शोभालालजी ! यह भगवानदास और भगवान को मिलना हो तो उनके मकान में जाना चाहिए, वे बैठे हों वहाँ। इसी प्रकार आत्मा का सम्यग्दर्शन, ज्ञान वहाँ भगवान मिले ऐसा है। उनके धाम में इसे पहले जाना चाहिए। आहाहा ! आचार्यों ने भी... यहाँ कहते हैं कि राग में, किसी क्षेत्र में, किसी स्थान में, कोई शत्रुंजय या सम्मेदशिखर में या समवसरण में जाये तो वहाँ से परमात्मा की प्राप्ति हो या पाँच पद की निर्मल वीतरागी पर्याय की प्राप्ति होगी ? वहाँ है नहीं। समझ में आया ? भगवान आत्मा... कहा, देखो न !

ऐसा **विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधान होने से....** यह क्रम है न ! अरिहन्त, सिद्ध आदि आश्रम **जो कि (आश्रम) विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधान होने से...** जिसमें सम्यग्दर्शन और

ज्ञान की मुख्यता होने से। सम्यग्दर्शन और ज्ञान बिना किसी प्रकार से पंच परमेष्ठी की प्राप्ति होगी नहीं। अथवा साधुपद, आचार्यपद, उपाध्यायपद, अरिहन्त और सिद्धपद सम्यग्दर्शन और ज्ञान की प्राप्ति बिना कोई पद प्राप्त नहीं हो सकता। यह अपने परमेष्ठी। दूसरे कहाँ परमेष्ठी हैं ? कहते हैं न, यह क्या कहते हैं ? दर्शन-ज्ञानस्वरूप आत्मा का सम्यग्दर्शन और ज्ञान—उसके सन्मुख की श्रद्धा और ज्ञान का अनुभव करना, वह प्राप्ति। समझ में आया ? कहो, अमरचन्दजी ! आहाहा ! देखो ! महात्मा से मिलना हो या सेठिया से मिलना हो, लो न, उसका स्थान हो वहाँ जाना पड़े न ! स्थान में प्राप्त हो या अन्यत्र जाये ? इसी प्रकार भगवान पंच परमेष्ठी की पर्याय को प्राप्त करना हो तो भगवान आत्मा दर्शन और ज्ञान की मूडी—पूँजी महा ध्रुव तत्त्व है। उसका निर्विकल्प सम्यग्दर्शन और निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान, वह पंच परमेष्ठी का आश्रम, स्थान—विश्रामस्थान, विश्रामधाम है। आहाहा ! कहो, समझ में आया ?

ऐसा दूसरे प्रकार से आता है न, ऐसा आत्मा, उसमें स्थिर होगा तो ऐसा होगा। उसका अर्थ आया न, १७-१८ में। समयसार। यही बात की है। यह आत्मा दर्शन-ज्ञान (स्वरूप है)। यहाँ स्थिर होगा तो चारित्र होगा या वीतरागता होगी। समझ में आया ? दूसरी कोई क्रिया द्वारा वीतरागता होगी, ऐसा नहीं। यह भगवान आत्मा दर्शन और ज्ञान, ऐसा सामान्य दर्शन और विशेष ज्ञान, ऐसी जो स्वभाव की मूडी—पूँजी भगवान आत्मा का दर्शन, उसकी श्रद्धा, निर्विकल्प स्वसन्मुख का ज्ञान, ज्ञान का वेदन स्वसंवेदन, वह पंच परमेष्ठी अर्थात् अपनी पूर्ण वीतरागी पर्याय की प्राप्ति का वह धाम है। वहाँ विश्रामस्थान है, वहाँ स्थिर होगा तो वह मिलेगा। समझ में आया ? भगवानजीभाई ! कहो, समझ में आया या नहीं ? लो, हमारे भगवानजीभाई तो वहाँ.... इन्हें गाँव दूसरा नहीं, स्थान दूसरा नहीं, क्षेत्र दूसरा नहीं, काल दूसरा नहीं, भाव दूसरा नहीं। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं, जिसे निर्ग्रन्थपना वीतरागपर्याय मुझे प्रगट करनी है, मुनि स्वयं उनको हुई है, परन्तु शैली से बात करते हैं, दूसरे को साथ लेकर बात करते हैं कि अपने लाओ विचार करते हैं कि क्या होगा तत्त्व ? साधन में करण क्या ? आता है न समयसार में ? कर्ता, कर्म भेद करके बात (की), परन्तु अब उसे भिन्न करने का करण क्या, हम विचारते हैं। लो, विचारते हैं तो उन्हें—आचार्य को नया विचारना है ? परन्तु जगत के

जीवों को साथ लेकर उसका निर्णय कराना चाहते हैं। इसी प्रकार जिससे साधुपद लेना है, निर्ग्रन्थदशा, साधुपद, चारित्रदशा (जो) मुक्ति का कारण है, निर्वाण का कारण है, ऐसी चारित्रदशा प्राप्त करनी हो, उसे पहले सम्यग्दर्शन और ज्ञान, वह पंच परमेष्ठी की पर्याय को प्राप्ति करने का विश्रामधाम वह है। इसका उसे अनुभव और श्रद्धा-ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। प्रसन्नजी! समझ में आया? समझ में आया या नहीं? कहाँ गया लेखन में? थोड़ा ऐसा फिर गया। क्या कहा परन्तु यहाँ?

आश्रम कहा है न? आश्रम कहो, स्थान कहो, धाम कहो, ठिकाना कहो, विश्राम का स्थान है, विश्राम का धाम है। आहाहा! वहाँ विश्राम मिलता है। समझ में आया? भगवान आत्मा दृष्टा और ज्ञाता ऐसा उसका शाश्वत् असली अनन्त बेहद स्वभाव और जिसका स्वभाव है, उसे मर्यादा क्या हो? वह वस्तु है, उसका भाव—स्वभाव। स्वभाववान है, उसका स्वभाव। यहाँ तो मुख्यरूप से दर्शन-ज्ञान से ही लेते हैं न! पंचास्तिकाय में लिया है न! दर्शन-ज्ञान अप्रतिहत जिसका स्वभाव है। पंचास्तिकाय में है आता है, मुझे बहुत याद नहीं। परन्तु इस प्रकार से उसका वस्तुस्वभाव ही आत्मा उसके साथ आनन्द, अस्तित्व भले साथ हो, परन्तु मूल दर्शन और ज्ञान—दृष्टा और ज्ञाता उसका मूल स्वभाव है। अर्थात् उपयोगरूप स्वभाव दृष्टा और ज्ञाता उसका त्रिकाली स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। भाई! आहाहा! '**उवओगलक्खणो णिच्चं**' (समयसार, गाथा-२४)। भगवान आत्मा तो उपयोग नित्य त्रिकाल, हों! त्रिकाल नित्य। दृष्टा और ज्ञाता, ऐसा जो उपयोग उस लक्षण से लक्षित वह भगवान उपयोगस्वरूप है। उसमें पुण्य नहीं, पाप नहीं, राग नहीं, कर्म नहीं, शरीर नहीं, भेद नहीं, कुछ नहीं। समझ में आया? ऐसे आत्मतत्त्व के श्रद्धान और ज्ञान जिसका लक्षण है, ऐसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान का सम्पादक आश्रम है। आहाहा!

उसे प्राप्त करके.... उसे पहले प्राप्त करके, फिर चारित्र की बात। सम्यग्दर्शन और ज्ञान की प्राप्ति बिना निर्ग्रंथपना मुनिपना चारित्रपना व्रतपना प्रत्याख्यानपना होता नहीं। इसलिए यह बात करते हैं। समझ में आया? वह भी यह चारित्र कैसा? यह कहते हैं। **सम्यग्दर्शनज्ञानसम्पन्न होकर, जिसमें कषायकण विद्यमान होने से...** कहते हैं कि जहाँ आगे जाता हूँ, वहाँ पंच महाव्रत के विकल्प दिखते हैं। छठवें गुणस्थान में मुनिदशा हुई

है, तथापि वहाँ राग पंच महाव्रत का विकल्प, अट्ठाईस मूलगुण का (विकल्प दिखता है)। अट्ठाईस मूलगुण समझ में आते हैं? आते हैं न? छह आवश्यक, सामायिक का विकल्प उठता है। ऐसे २८ हैं न? आगे आयेगा, प्रवचनसार अन्तिम भाग में। यह अट्ठाईस मूलगुण जो है... देखो न, है न उसमें? कितनी है? चरणानुयोग में। आया, उसकी बात करते हैं पहले। २०८ (गाथा)। **व्रत, समिति, इन्द्रियनिरोध, लोंच, आवश्यक, अचेलपना, अस्नान, क्षितिशयन, अदंतधोवन... 'स्थितिभोजनम्' 'एकभक्तं'** देखो **'एकभक्तं'** आया। **'एकभक्तं'** उसमें आता है दशवैकालिक में। **'एकभक्तं'** की गाथा डाली है न, श्रीमद् ने डाली है। **'एते खलु मूलगुणाः'** यह विकल्प है, उस शुभराग के यह सब प्रकार हैं। पाँच व्रत, इन्द्रियनिरोध, लोंच, छह आवश्यक, अचेलपना—वस्त्र नहीं, ऐसा विकल्प। अस्नानपना, खड़े-खड़े (एक बार आहार), क्षितिशयन अर्थात् नीचे जमीन पर सोना, अदन्तधोवन, खड़े-खड़े भोजन, एक बार आहार ऐसे अट्ठाईस मूलगुण का जो विकल्प है, कहते हैं, वह कषाय का कण है। आहाहा! समझ में आया? अब अभी तो कितने ही कहते हैं, तीर्थंकरों ने पंच महाव्रत पालन किये, कुन्दकुन्दाचार्य ने अट्ठाईस मूलगुण पालन किये। अरे... भाई! थे, उन्हें पालन किये—ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है। व्यवहारनय अर्थात् पालन नहीं किये और हैं, उनका ज्ञान कराने के लिये यह बात की है।

यहाँ यह कहते हैं। स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य अपनी स्थिति का वर्णन (करते हुए कहते हैं)। उन्हें तो दशा हो गयी है, परन्तु होने के पहले ऐसा था हमारे और लेनेवाले को भी ऐसा पहले होता है। कहते हैं कि **कषायकण विद्यमान होने से....** अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प, सामायिक करूँ, चौबीसंथो तीर्थंकर की स्तुति, गुरु को वन्दन, प्रतिक्रमण इत्यादि छह आवश्यक। एक बार आहार खड़े-खड़े आहार, जमीन पर सोना, ऐसा जो अट्ठाईस प्रकार का कषाय का कण विकल्प है, वह आता है। वह पुण्यबन्ध की प्राप्ति का कारण है। भाषा देखना। वह निर्वाण की प्राप्ति का कारण कहेंगे। वीतरागचारित्र जो सातवें गुणस्थान का चारित्र है, वह उपयोग साम्यभाव—वीतरागभाव है, वह मुक्ति का कारण है और इससे पहले अन्दर तीन कषाय का अभाव होता है, सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र उतना होता है, साथ में यह अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प

होता है। वह पुण्यबन्ध की प्राप्ति का कारण है। समझ में आया? साधुपद किसे कहते हैं? उसे अंगीकार करना हो, चारित्र के बिना मुक्ति नहीं, परन्तु चारित्र कैसा होता है, उसकी इसे खबर नहीं होती। चारित्र की प्राप्ति, दर्शन-ज्ञान की प्राप्ति बिना चारित्र की प्राप्ति होती नहीं। अब इसकी खबर नहीं और सीधे (ले लेवे)। यह तो जगत के जीव की स्थिति है, जीव स्वतन्त्र है। यह तो अस्ति से समझाया जाता है। ऐसा मार्ग है, भाई! समझ में आया?

कहते हैं, कषायकण जीव को पुण्यबन्ध की प्राप्ति का कारण है, ऐसा सरागचारित्र। यह सरागचारित्र अर्थात् अन्दर तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव तो है, परन्तु साथ में विकल्प है, इसलिए उसे सरागचारित्र कहा है। समझ में आया? यह **क्रम से आ पड़ने पर भी...** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान पंच परमेष्ठी का आश्रमधाम विश्रामस्थान को मैं प्राप्त हुआ हूँ और पाते हुए बीच में आगे बढ़ते हुए मुझमें ऐसे अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प जो कषाय का कण है, पुण्य प्राप्ति का कारण है, चारित्र की प्राप्ति का कारण नहीं और मोक्ष की प्राप्ति का कारण नहीं। समझ में आया? सर्वज्ञ का कहा हुआ चारित्रमार्ग निर्ग्रंथमार्ग अलौकिक है! आहा! और उस चारित्र की प्राप्ति बिना मुक्ति कभी हो सकती नहीं। समझ में आया? मोक्ष कभी चारित्र के बिना होता नहीं। परन्तु वह चारित्र सम्यग्दर्शन के सम्पादन बिना होता नहीं। आहाहा! और वह सम्यग्दर्शन और ज्ञान आत्मा के आश्रय बिना होता नहीं। समझ में आया?

यह तो भाषा का विवाद उठा न! भाषा की। भाषा कौन करे? यहाँ तो कहते हैं, यहाँ विकल्प उठा, वह कषाय का कण है न! सेठी! भाषा तो जड़ की पर्याय है। कौन करे जड़ को? आहाहा! परन्तु कुछ आशय तो आता होगा न भाषा में? न हो तो समझाने का भाषा में कैसे आया? परन्तु भाषा में कुछ आशय न आता हो जीव का तो उसको समझने में कैसे आया? कहो, समझ में आया इसमें? भाषा तो बीच में मुफ्त की जड़ की पर्याय है। समझ में आया? आत्मा उसमें आया नहीं, आत्मा उसे छूता भी नहीं, तथा सुननेवाला भाषा को छूता भी नहीं। आहाहा! यह बात! सेठ! भाषा तो जड़ की पर्याय है। जड़ की पर्याय छुए चैतन्य को? उसका ज्ञान होता है, उससे तब भाषा निमित्त कहलाती है। निमित्त का अर्थ कर्ता-फर्ता नहीं, उसके कारण उसका अस्तित्व नहीं,

ऐसा उसका अर्थ है। भाषा की पर्याय के होने के कारण उसकी ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व, इसके अस्तित्व के कारण वह अस्तित्व—ऐसा नहीं। उसे निमित्त कहा जाता है। समझ में आया?

इसी प्रकार ज्ञानी की ज्ञानपर्याय या विकल्प या योग-कम्पन्न है, इसलिए भाषा है, यह निमित्त कहलाये उसे, परन्तु यह निमित्त है तो भाषा की पर्याय है, ऐसा नहीं है। आहाहा! भाषा की पर्याय की योग्यता नहीं उस समय ऐसी? निमित्त उसे अनुकूल है। भाषा की पर्याय को वह निमित्त अनुकूल है। इसलिए परमाणु की पर्याय स्वयं के कारण से अनुरूपपने परिणमती है। कठोर बात है, भाई! समझ में आया? भगवान चैतन्य की पर्याय मुनि की, ज्ञानी की, केवली की; भाषा की पर्याय तो जड़ की है, उसमें जाता है? यह तो बात भाई वीतरागमार्ग ऐसा है कोई। लोगों को स्वतन्त्रता की खबर नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अवसर आवे तब कहे न! अभी बदल डाला वापस। निमित्त से तो ऐसा ही कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, मेरे अन्दर आत्मा की दशा में अपनी बात करके जगत को समझाते हैं। सम्यग्दर्शन और ज्ञान को प्राप्त होकर मैं चारित्र को प्राप्त हुआ हूँ, परन्तु बीच में अभी राग का कण आया है पंच महाव्रत आदि, उसे उल्लंघकर। है? **दूर उल्लंघन करके...** भाषा देखो! **दूर उल्लंघन करके...** अर्थात् उस राग को मैं छूता भी नहीं। आहाहा! ऐसे गुलाँट खाकर स्थिरता हो जाती है मुझे चारित्र की, राग को स्पर्शे बिना। **दूर उल्लंघन करके, जो समस्त कषायक्लेशरूपी कलंक से भिन्न होने से...** भाषा देखो। देखो! अपनी बात करते हैं और वीतरागचारित्र में समस्त कषाय-क्लेश कलंक से भिन्न कहा। कितने ही ऐसा कहते हैं, लो समस्त कषायकलंक से भिन्न तो बारहवें गुणस्थान में होता है। अब सुन न! समझ में आया? वह विकल्प जो था पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण का, वह गया और स्थिरता हुई; इसलिए समस्त कषायरहित कहा जाता है। समझ में आया? अरे! समझने की दिक्कत, श्रद्धा करने की दिक्कत, अब उसे चारित्र कहाँ से हो? समझ में आया?

समस्त कषायक्लेश है, कहते हैं। ओहोहो! यह पंच महाव्रत के परिणाम शुभयोग है न, शुभ उपयोग है, क्लेश है। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम व्यवहार पंच महाव्रत जो अहिंसा है, वह क्लेश है, वह कषाय अग्नि है। समझ में आया?

निर्वाण प्राप्ति का कारण है ऐसे... निर्वाण की प्राप्ति। उसमें ऐसा कहा था, पुण्यबन्ध की प्राप्ति का कारण, ऐसा कहा था। तब अब (कहते हैं), **निर्वाण प्राप्ति का कारण है ऐसे वीतरागचारित्र नामक साम्य को प्राप्त करता हूँ।** करता हूँ, ऐसा कहते हैं। स्वयं पंचम काल के सन्त स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य दोनों दिगम्बर मुनि हैं, बाह्य नग्नदशा है परन्तु मैं तो वीतरागचारित्र, जिसमें राग का पंच महाव्रत का विकल्प भी नहीं, ऐसी मेरी वीतरागदशा को मैं प्राप्त करता हूँ, कि जो वीतरागदशा मोक्ष का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

कषायक्लेशरूप कलंक... कषाय क्लेश कलंक है। आहाहा! भाषा तो देखो। अरे! बीच में पंच महाव्रत का विकल्प आवे, पर की दया का, भक्ति का विकल्प (आवे), कहते हैं कि वह कषायक्लेश कलंक है, हों! आहाहा! समझ में आया? शोभालालजी! कलंक है। चारित्रदशा प्राप्त होने से पहले यह सब कलंक है, कहते हैं। आहाहा! तब वह कहता है, पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण, वही धर्म और उससे आगे चारित्र और वह मुक्ति का कारण। अरे... भगवान! बहुत बड़ा भूला है। भगवान भूला की खिडकी में चढ़ गया है। है न आत्माराम की? आत्माराम है न यह? यह भगवान भूला की खिड़की में (रहता था)। उसके परिवार में भगवान भूला हो गया। नाम आत्माराम है और भगवान भूला, उसके परिवार में हो गये, उनकी खिड़की में वह रहता है। कहो, समझ में आया? आहाहा! गजब बात करते हैं।

भाई! तेरा तो समरस शान्तस्वभाव। यह पंच महाव्रत के विकल्प के अग्नि को शान्त करने की तेरी सामर्थ्य है, कहते हैं। आहाहा! अन्तर में वीतरागी पर्याय प्रगट करके, उस कषायकलंक की अग्नि की भट्टी को शीतल शान्त कर डाले, जलाकर राख कर डाले, ऐसा तेरा स्वभाव है। शीतल जल डालकर कषाय का कण छोड़ दे। आहाहा! वह स्वयं चैतन्यबिम्ब है, उसकी शान्ति की पर्याय पूर्ण... शान्ति कहो, साम्य कहो, वीतरागचारित्र कहो, धर्म कहो—एक ही बात है। शुद्ध उपयोग कहो। कहते हैं कि उस

शुद्ध उपयोग को मैं **कषायक्लेशरूपी कलंक से भिन्न होने से निर्वाण की प्राप्ति का कारण है, ऐसे वीतरागचारित्र नामक...** वीतरागचारित्र कहो या साम्य कहो। समता, यह समता। पंच महाव्रत के, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प हैं, वह विषम है, क्लेश है। समझ में आया? कलंक है।

भगवान आत्मा... कहते हैं कि मैं वीतरागचारित्र को (प्राप्त करता हूँ)। देखो, पंचम काल के मुनि स्वयं की बात करते हैं। यह तो कहते हैं कि ऐसा चारित्र अभी नहीं होता, चौथे काल में होता है और अभी नहीं होता। अभी सरागचारित्र ही होता है, ऐसा (कुछ लोग) कहते हैं। जेठालालभाई! लोगों ने विचार करने की दरकार कहाँ की है! क्या सत्य है? अरे! ऐसे काल में अनन्त काल में मुश्किल से इसे समय मिला, भव के अभाव के काल में भव का अभाव कैसे हो, इसका विचार किया नहीं, निर्णय किया नहीं और ऐसे का ऐसा बिना भान के (कूटता है)। ऐसे कहीं मार्ग (हाथ नहीं आता)। यह तो वीतराग का मार्ग है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर जिस रास्ते गये, उनका यह रास्ता है। समझ में आया?

कहते हैं, **ऐसे वीतरागचारित्र नामक...** भाषा समझे न? **साम्य को प्राप्त करता हूँ।** पाठ में साम्य है सही न! साम्य-वीतराग परिणति, शुद्ध उपयोगदशा, चारित्र की रमणता, रागरहित की वीतराग अवस्था, उसे प्राप्त करता हूँ—ऐसा कहते हैं। उसे प्राप्त होगा, ऐसा नहीं कहा। भविष्य में प्राप्त होगा ऐसा वीतरागचारित्र-साम्य—ऐसा नहीं। यह तो वर्तमान प्राप्त करता हूँ, ऐसा है, देखो! समझ में आया? उन मुनि की यह दशा होती है। उसे णमो लोए आयरियाणं, णमो लोए उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं में सम्मिलित हो, ऐसी दशा न हो वह तीन पद में सम्मिलित नहीं। आहाहा! क्या, समझ में आया या नहीं? वे भी ठीक हैं, वस्त्रवाले और वे साधु भी कुछ ठीक हैं। जय महाराज! ऐई... मनसुख! कहाँ गया हसमुख, है या गया? है? ठीक। कहो, समझ में आया इसमें? भाई! तुझे खबर नहीं। चारित्र की जहाँ दशा नहीं उसे चारित्रवन्त मानना, वह दृष्टि मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व का महा कलंक पाप उसे लगता है। खबर नहीं होती। समझ में आया? आहाहा! वस्त्रसहितवाले को और स्त्री को मुनिपना हो सकता ही नहीं। और उसे माने मुनिपना तो वह मिथ्यादृष्टि मिथ्याज्ञान में रमता है। परन्तु यहाँ तो

कहते हैं, चारित्र की दशा का जैसा स्वरूप सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, ऐसे वीतरागचारित्र को प्राप्त होता हूँ। है तो विकल्प बोलने के समय, परन्तु मेरा ध्येय वहाँ है। समझ में आया? आहाहा! भाषा तो ऐसी है। लो, वीतराग साम्य को प्राप्त करता हूँ। विकल्प तो अभी लिखने के समय है। परन्तु होने पर भी उसका अभाव मुझमें है। वर्तमान में दृष्टि में तो भाव है, परन्तु मुझे स्थिरता करने की मेरी भावना है। उस भावना को शुद्ध उपयोग वर्तमान प्राप्त है, ऐसा कह दिया है। समझ में आया? आहाहा!

अब कहते हैं, **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की ऐक्यस्वरूप एकाग्रता को मैं प्राप्त हुआ हूँ...** भाषा देखो! पर्याय को अवलम्बता हूँ। ज्ञानप्रधान कथन है न! अवलम्बन तो द्रव्य का है, समझे न? परन्तु मेरी पर्याय में प्राप्ति इस प्रकार की है। कैसी? सम्यग्दर्शन—भगवान आत्मा की निर्विकल्प श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन, उसकी मुझे प्राप्ति है। सम्यग्ज्ञान—उस शुद्ध चैतन्य का ज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान, उसमें सम्यक्चारित्र। वीतराग पर्याय की रमणता एकरूप एकाग्रता। इन तीन की एकस्वरूप एकाग्रता, तीन की एकस्वरूप एकाग्रता। **ऐक्यस्वरूप एकाग्रता को मैं अवलम्बता हूँ...** अर्थात् मैंने प्राप्त किया है, इसका अर्थ अवलम्बन किया है। उस पर्याय को प्राप्त किया है, वह अवलम्बन किया है, उसका अर्थ यह। उस राग का अवलम्बन, पहले जो लक्ष्य था, वह छूटकर अभी चारित्र की वीतराग पर्याय को मैंने प्राप्त—प्रगट किया है, इसका नाम अवलम्बन किया है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? अवलम्बन का आधार तो द्रव्य है। चारित्र का, दर्शन का, ज्ञान का आधार—अवलम्बन तो द्रव्य है। परन्तु द्रव्य में सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट है, ऐसी ही मैंने वीतरागी पर्याय प्रगट की है, इसलिए मैंने उसे अवलम्बन किया है। राग को नहीं, निमित्त को नहीं, ऐसा कहना चाहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐक्यस्वरूप, **ऐक्यस्वरूप एकाग्रता को मैं...** वापस ऐसी भाषा है। वह कितने ही कहे कि 'मैं' इसमें तो अभिमान आ गया। पर से भिन्न पड़ा। इसलिए ऐसा नहीं, सब एक रखो। अरे! ऐसा नहीं, सुन न! ऐसे के ऐसे नगुरे जगे हैं। समझ में आया? मैं अवलम्बता हूँ, अस्तिरूप से सिद्ध करते हैं। मैं भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप, उसे दर्शन, ज्ञान और वीतरागी पर्याय को मैंने प्राप्त किया है, वह मेरा अवलम्बन है, वह मेरा शरण है। समझ में आया?

यह (इस) प्रतिज्ञा का अर्थ है। लो, यह प्रतिज्ञा ली है, प्रतिज्ञा। कहते हैं न, प्रतिज्ञा लो। परन्तु प्रतिज्ञा का अर्थ क्या? सम्यग्दर्शन, ज्ञान की वीतराग की पर्याय प्राप्त की, वह प्रतिज्ञा का अर्थ है। ऊपर से ऐसे बोले कि प्रतिज्ञा दो। ऐसी नहीं प्रतिज्ञा—ऐस कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? है न? '**गतोऽस्मीति प्रतिज्ञार्थः**' संस्कृत में है। **यह (इस) प्रतिज्ञा का अर्थ है।** मैंने प्रतिज्ञा की अर्थात् कि मेरा शुद्ध ज्ञानानन्द पवित्र धाम, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसकी वीतराग की परिणति, उसका एकस्वरूप जो एकाग्रता, वह मैंने प्रगट की है, यह मेरी प्रतिज्ञा। इस प्रतिज्ञा का यह अर्थ। समझ में आया? भाषा बोले कि प्रतिज्ञा ली, विकल्प आया कि प्रतिज्ञा ली, वह नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो न यह टीका अमृतचन्द्राचार्य की। आहाहा! वीतरागभाव को रेलमछेल किया है। वीतरागमार्ग में तो वीतरागभाव ही समभाव हो न! वह इस जाति का वीतरागभाव, हों! राग मन्द करे और समता रखे, वह समता नहीं।

मेरे स्वरूप को अखण्ड पूर्णानन्द प्रभु, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और सम्यक्चारित्र का ऐक्यस्वरूप, ऐसी एकाग्रता वह मैंने प्राप्त की है, यह मैंने प्रतिज्ञा की, ऐसा उसका अर्थ है। समझ में आया? आता है न पहले यह? प्रतिज्ञा नहीं? पाठ में है न? निर्वाणप्राप्त यह? कहाँ? तीसरा पृष्ठ। वह ऊपर लिखा था न, वह। आश्रय करते हुए प्रतिज्ञा करते हैं, यह। है न? **(सन्मान करते हुए) सर्व आरम्भ से (उद्यम से) मोक्षमार्ग का आश्रय करते हुए, प्रतिज्ञा करते हैं।** आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार तब.... अब अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। **इस प्रकार तब इन्होंने....** अपनी स्थिति भी यही है, परन्तु कुन्दकुन्दाचार्य है न इसके (-गाथा के कर्ता) इसलिए... **इन्होंने (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने) साक्षात् मोक्षमार्ग को अंगीकार किया।** साक्षात् मोक्षमार्ग की प्राप्ति की। आहाहा! देखो, यह मोक्ष का मार्ग। यह मेरा ऐसा मोक्षमार्ग है, भाई! आत्मा शुद्ध चिदानन्द प्रभु दर्शन-ज्ञान से भरपूर उसमें कोई राग हुआ नहीं। पारिणामिकभाव तो उसका दृष्टा और ज्ञाता त्रिकालस्वरूप है। उसकी सन्मुख का सम्यग्दर्शन और उसके सन्मुख का ज्ञान और उसमें वीतरागपरिणति, इन तीन की एकतास्वरूप को अवलम्बन किया, यह मेरा मोक्ष का मार्ग है। इस **साक्षात् मोक्षमार्ग को अंगीकार किया।** लो। साक्षात् मोक्षमार्ग को अंगीकार किया। वर्तमान ऐसा कहा है।

मुझे अंगीकार होगा, मोक्षमार्ग बाद में प्राप्त होगा—ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी खबर पड़ जाये? सम्यग्दर्शन, ज्ञान वीतराग की पर्याय को मैं प्राप्त हुआ हूँ, ऐसी खबर छद्मस्थ को पड़ जाती है? ऐ रतिभाई! हाँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! साक्षात् मोक्षमार्ग को प्राप्त किया, इसका अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के ऐक्यस्वरूप ऐसी एकाग्रता वह मैंने अंगीकार अर्थात् तीनों का ज्ञान, भान है। तीनों को मैंने प्राप्त किया है, ऐसी मुझे खबर है। यह मैंने अंगीकार किया, यह मुझे खबर है। मेरी दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकता का स्वरूप मुझे परिणमा है। आहाहा! समझ में आया? यह भाषा की बात नहीं, हों! भाव की बात है।

अत्यन्त ध्रुव विकल्प-राग से भिन्न ऐसी चीज़ की दृष्टि, ज्ञान और शान्ति; शान्ति कहो या समभाव कहो, उसमें एकाग्रतारूप अवलम्बन प्रगट किया, वह साक्षात् मेरा मोक्ष का मार्ग। उससे मुझे मोक्ष होगा, ऐसा मार्ग मैंने अंगीकार किया है, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? मेरा मोक्ष होगा, ऐसा मैंने मार्ग को अंगीकार किया है। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्दर का हुंकार आया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर का।

साक्षात् मोक्षमार्ग को अंगीकार किया। लो, यह मोक्षमार्ग। कोई कहे कि व्यवहारमोक्षमार्ग अभी होता है। निश्चयमोक्षमार्ग अभी नहीं होता। अठवाँ गुणस्थान आवे, तब होता है। अरे.. भगवान! तू क्या करता है, भाई! यह वीतरागमार्ग ऐसा नहीं होता, भाई! समझ में आया? वीतरागविज्ञान का घन भगवान, बस उसके अवलम्बन से प्रगट हुई वीतराग विज्ञान दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वही साक्षात् मोक्ष का मार्ग है। दूसरा मोक्ष का मार्ग नहीं। और बीच में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का विकल्प, वह तो कहा कि कषाय का कण है, वह तो। वह तो पुण्य की प्राप्ति का कारण है। व्यवहारदर्शन, व्यवहारज्ञान, व्यवहारचारित्र तो पुण्यबन्ध की प्राप्ति का कारण है। वह तो कषायक्लेश कलंक है। आहाहा! परन्तु चैतन्य ऐसे वीतरागविज्ञान का घन है, पिण्ड है, उसमें से अनन्त वीतरागता बहे तो भी वह प्रवाह, इतनी शक्ति कम नहीं होती, ऐसा उसका स्वभाव है। अनन्त काल अनन्त काल बीते तो भी स्वरूपाचरण की स्थिरता जो हुई है, वह ऐसी की ऐसी एक समय की हुई, वह दूसरे समय में, तीसरे समय में

चला ही करेगी। आहाहा! ऐसा निधान—निधि, ऐसा भगवान उसे मैंने दर्शन, ज्ञान, चारित्र से पर्याय की प्राप्ति की है, साक्षात् मोक्षमार्ग को मैं प्राप्त हुआ हूँ, ऐसा कहते हैं। भगवान ऐसा कहते हैं, इसलिए होगा—ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : पक्की श्रद्धा स्वयं को है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव का भान है सब। अकेली श्रद्धा, ऐसा नहीं। वेदन में दर्शन, ज्ञान, चारित्र की वीतरागता की पर्याय का वेदन है। साक्षात् मोक्षमार्ग को अंगीकार किया है। आहाहा! धन्य अवतार है न! समझ में आया? वह पल धन्य है न! ऐसा कहते हैं। श्रीमद् भी कहते हैं न? 'कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो' भावना करते हैं। 'दर्शनमोह व्यतीत हो उपजा बोध जो, दर्शनमोह व्यतीत हो उपजा बोध जो।' उसका भान तो है, कहते हैं। अब 'कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो' बाह्य में निर्ग्रन्थ नग्न दशा, अभ्यन्तर में रागरहित वीतरागदशा। समझ में आया? 'देह भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान जो, इससे प्रक्षीण चारित्रमोह विलोकिये' 'दर्शनमोह व्यतीत हो उपजा...' देखो! पहले समकित लिया। 'देह भिन्न केवल चैतन्य का...' चैतन्य अर्थात् यह दर्शन-ज्ञान से भरपूर अकेला आत्मा। 'देह भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान' 'इससे प्रक्षीण चारित्रमोह विलोकिये' स्वरूप में स्थिरता—रमते-रमते चारित्र की अस्थिरता नाश होती है, ऐसी स्थिरता प्रगट हो, ऐसा अपूर्व अवसर कब आयेगा? समझ में आया?

'द्रव्य भाव...' आता है न? 'निर्ग्रन्थमय...' द्रव्य से और भाव से। यहाँ तो भाव की बात है। उसमें व्यवहार की निमित्तता, नग्नता की वह बात गौण है। चरणानुयोग में उसे प्रसिद्ध करेंगे। समझ में आया? उसका अर्थ ऐसा नहीं कि अन्दर मोक्षमार्ग प्राप्त हो ऐसा, वह वस्त्र में—पात्र में हो, घर में स्त्रीवाला हो और घर में मकान हो और यह हो, ऐसा हो नहीं सकता। समझ में आया? ऐसी एक कथा श्वेताम्बर में आती है। कैसा नाम? भूल गये। सुरमापुत्र केवली। घर में केवलज्ञान हुआ। फिर शाक-भाजी घर में लाये लोग। छुरी चाहिए थी तो छुरी हाथ आवे नहीं। कोठी के पीछे छुरी पड़ी थी। इसलिए केवलज्ञानी ने कहा कि वह छुरी पड़ी। ठीक, केवलज्ञान का उपयोग ठीक किया यह। अरे! सम्यग्दृष्टि की दशा में उसे बताना, न बतलाना, उसका विकल्प उठे, वह भी दुःखदायक है, कहते हैं। आहाहा! समझे न?

मुमुक्षु : केवलज्ञानी बतावे....

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञानी बतावे घर में, देख पड़ी। कथा है न। खुशालदास थे न? ....उन्होंने बहुत टीका की थी कि ऐसी बातें जैनदर्शन में इस कथा को वह कुँवरजीभाई स्वीकारे। ऐसा कहा था तब, भाई! वह कुँवरजीभाई नहीं, आणंदजी कुंवरजी। कैसे? कुंवरजी आणंदजी, कुंवरजी आणंदजी। बहुत वर्ष पहले, बहुत वर्ष की बात है। बहुत वर्ष हो गये, ४०-४५। ऐसी बातें चले, उसे यह सब स्वीकारे, उसे है क्या यह? केवलज्ञानी घर में रहे... समझ में आया? छुरी को बतावे, राग को, वह यह क्या बात है? साधु हो वह घर में न हो, वह तो जंगल में हो, उसकी नग्नदशा होती है। उसे स्त्री, पुत्र और भाषा छुरी बताने का विकल्प और भाषा हो उसे? मारकर उल्टा ही मारा है न सब! समझ में आया?

मुमुक्षु : दिव्यध्वनि खिरी....

पूज्य गुरुदेवश्री : दिव्यध्वनि घर में खिरती होगी? मार्ग को बिगाड़ दिया, वीतरागमार्ग को नोंच दिया। बापू! वीतरागभाव, बापू! शान्तरस, वह चीज़ है, बापू!

कहते हैं, साक्षात् मोक्षमार्ग को मैंने अंगीकार किया, लो। आहाहा! यह पाँच गाथायें हुईं।

★ ★ ★

गाथा - ६

अब वे ही (कुन्दकुन्दाचार्यदेव) वीतरागचारित्र इष्ट फलवाला है,... देखो, यह रागरहित आत्मा की शान्ति, शुद्ध उपयोग वह इष्ट फल, जिसका इष्ट फल है मोक्ष। **उसकी उपादेयता...** वही अंगीकार करनेयोग्य है। **और सरागचारित्र...** जो राग आवे पंच महाव्रत आदि का, वह **सरागचारित्र अनिष्ट फलवाला...** है, वह पुण्यबन्ध का कारण है। **इसलिए उसकी हेयता का विवेचन करते हैं:-** वीतरागचारित्र अंगीकार करनेयोग्य है। व्यवहार का विकल्प है, जो पंच महाव्रत का, वह हेय है, आदरनेयोग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अट्ठाईस मूलगुण का वह एक निकला है न,

क्षीरसागर। तत्त्वार्थसूत्र में वह डाल दिया है, संवर में, अट्ठाईस मूलगुण न! उसने घर का नया तत्त्वार्थसूत्र बनाया। जिसका चले उसका चले, कोई पूछनेवाला नहीं होता। उमास्वामी जैसे ने तत्त्वार्थसूत्र बनाया, अब उसमें भूल निकालकर नया बनावे। महा सन्त दिगम्बर मुनि अर्थात् भगवान के घर को भेंट गये हैं। आहाहा! उनके शास्त्र, उसकी कीमत लोग क्या समझे? उसमें भूल निकाले कोई और साधु। मैं भी साधु। भाई! तुझे खबर नहीं होती। उसमें अट्ठाईस मूलगुण नहीं, उसमें जघन्यपना दर्शन, ज्ञान, चारित्र नहीं। उसमें जघन्य डाला है। भाई! नया बनाकर (डाला है)। जघन्य दर्शन, ज्ञान, चारित्र का सूत्र नहीं और यह सब मानेंगे, वह मुझे जघन्य दर्शन, ज्ञान, चारित्र। इसलिए सूत्र का डाला है। उमास्वामी। अरे... भगवान! क्या करता है तू? जघन्य दर्शन, ज्ञान, चारित्र... उत्कृष्ट दर्शन, ज्ञान शब्द है। सूत्र का आया था अखबार में कहीं। आहाहा! कोई पूछनेवाला नहीं होता। बिना ग्वाल की गायें अकेली जंगल में स्वच्छन्द घूमती हैं। भरवाड समझते हो? ग्वाला। बिना ग्वाले की गाय।

परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा का विरह पड़ा, अच्छे सन्तों का विरह पड़ा। जिन्हें कल्पना जैसी लगी वैसा मार्ग बदला। नहीं चले, भाई! यह तो सर्वज्ञ की पेढी है। समझ में आया? यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव (कहते हैं), वीतरागचारित्र, वह इष्ट फलवाला होने से। कहो। **उसकी उपादेयता...** वही अंगीकार करने और प्रगट करनेयोग्य है। **सरागचारित्र अनिष्ट फलवाला है, इसलिए उसकी हेयता का विवेचन करते हैं:—** छठवीं गाथा।

संपज्जदि णिव्वाणं देवासुरमणुयरायविहवेहिं।
जीवस्स चरित्तादो दंसणणाणप्पहाणादो ॥६॥

'**राय**' अर्थात् राज? '**राय**' का अर्थ क्या? राजा? राजा का .... नीचे हरिगीत।

दर्शन-ज्ञान प्रधान चरित से, प्राप्त करें निर्वाण अहो।
देवेन्द्रों-असुरेन्द्रों एवं, नरपतियों के वैभव को॥६॥

इसकी **टीका :- दर्शनज्ञानप्रधान चारित्र से,...** लो, यह वापस वह लिया वह। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की जिसमें मुख्यता है, इसके बिना चारित्र नहीं हो सकता।

समझ में आया? भगवान आत्मा सच्चिदानन्द शुद्ध आनन्द का कन्द प्रभु, उसका अन्तर्मुख का निर्विकल्प ज्ञान, अनुभव होकर दर्शन और उसके भान का ज्ञान, वह जो चारित्र में प्रधान अर्थात् मुख्य है। **दर्शनज्ञानप्रधान चारित्र से, यदि वह (चारित्र) वीतराग हो...** शुद्ध उपयोगरूप चारित्र और यदि वीतरागचारित्र हो, **तो मोक्ष प्राप्त होता है...** बहुत तर्क करते हैं, लो तब वीतरागपना उन्हें स्वयं को था तो मोक्ष प्राप्त क्यों नहीं हुआ? ऐसी बातें करते हैं। उसमें आया न यह। साक्षात् मोक्ष का कारण है और उन्होंने अंगीकार किया है। तो उन्हें मोक्ष होना चाहिए। सुन न, मोक्ष ही है। साधुपद की दशा, कहेंगे पाँच रत्न में, पाँच रत्न (गाथाओं) में कहेंगे कि मोक्ष ही है, सिद्ध ही है। सुन न अब। समझ में आया?

नियमसार में भी पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं, अरे! साधु में और वीतराग में अन्तर करता है, वह मूढ़ है। वीतराग और साधु, दोनों एक ही हैं। दोनों अन्तर नहीं। पहले जरा अन्तर गिना, फिर निकाल दिया। समझ में आया? साक्षात् परमात्मा हुए हैं मानो, ऐसी दशा है। समझ में आया? कहते हैं, सम्यग्दर्शन और ज्ञान जिसमें मुख्य है। वह मूल एकड़ा तो मुख्य है। ऐसा जो चारित्र से... इतनी बात। **यदि वह (चारित्र) वीतराग हो...** शुद्ध उपयोग हो, साम्यभाव हो, अकषाय परिणाम हो **तो मोक्ष प्राप्त होता है...** उसे केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। **और उससे ही,...** वापस भाषा है। **और उससे ही,...** अर्थात् चारित्र तो है सही। समझ में आया? **यदि वह सराग हो...** वापस उससे अर्थात् चारित्र तो सही। परन्तु वह चारित्र वीतराग नहीं, परन्तु जरा रागवाला है, विकल्प है, ऐसा कहते हैं। साथ में राग है। आहाहा! समझ में आया? पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण का जो विकल्प साथ में हो तो **उससे ही, यदि वह सराग हो तो,...** अर्थात् चारित्र की परिणति के साथ राग हो तो। वह चारित्र की परिणति वीतराग परिणति हो गयी हो तब तो साक्षात् मोक्ष का कारण है। भगवान आत्मा दर्शन, ज्ञानपूर्वक चारित्र की परिणति होने पर भी उसमें राग का भाग बाकी रह गया है, वह यदि हो तो **देवेन्द्र...** होता है। मरकर देवेन्द्र होता है। पुण्य की प्राप्ति से स्वर्ग में जाता है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पदवी कहाँ थी ? पदवी की कहाँ व्याख्या है यहाँ ? उसे पुण्य बँधे और उसके कारण देव का भव क्लेशकारी मिले, ऐसा कहते हैं। यह कहते हैं, देखो न। **वैभवक्लेशरूप बन्ध की प्राप्ति होती है।**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नकार है, परन्तु भाव है या नहीं ? नकार दृष्टि-ज्ञान की अपेक्षा से है। भाव है तो उसका पुण्यबन्ध है। उासकी पर्याय में है या नहीं ? समझ में आया ? मुनि छठवें गुणस्थान के राग में रह जाये तो पुण्यबन्ध होकर स्वर्ग में जाये, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो न! पाँच पाण्डव यहाँ शत्रुंजय पर ध्यान में खड़े थे। नग्न मुनि, महा समर्थ, ओहोहो! महा बलवन्त योद्धा। मुनिपना वीतरागचारित्र लेकर खड़े थे, लो! दुर्योधन का भानेज आकर अग्नि... है न इसमें कहीं ? अग्नि रखी और लोहे के... आहाहा! तीन मुनि तो मोक्ष पधारे। धर्म (राजा), भीम और अर्जुन। सहदेव, नकुल दो छोटे उन्हें विकल्प जरासा विकल्प आया थोड़ा। अरे! बहुत प्रेम था न गृहस्थाश्रम में। सहोदर थे न सहोदर और अभी सहधर्मी। सहोदर, सहधर्मी। इसलिए जरा विकल्प आ गया कि कैसे होगा ? आहा! उसमें पुण्य बँध गया, और सर्वार्थसिद्धि में गये।

मुमुक्षु : अपनी चिन्ता न करके दूसरे की....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा विकल्प आया जरा। चिन्ता अर्थात् इतना विकल्प स्वयं को है। पुण्य बँध गया, सर्वार्थसिद्धि में गये। एक भव यह और दूसरा भव वह, पश्चात् मोक्ष जायेंगे। दो भव हो गये। और तीन तो अपने स्वरूप में एकाकार स्वभाव के निधान में स्थिर हो गये हैं। केवल(ज्ञान) पाकर मोक्ष गये हैं। यह शत्रुंजय। समझ में आया ? यह स्मृति का स्थान है। वहाँ जाकर यह स्मृति आवे कि ओहो! तीन पाण्डव यहाँ मोक्ष पधारे। जो स्थान है वहाँ ऊपर है ऊपर (समश्रेणी में)। इसके लिये व्यवहाररूप से विकल्प में भक्ति का भाव आता है। समझ में आया ? परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दो भव रहे। दो भव के क्लेश में रहेंगे।

कहते हैं, **देवेन्द्र-असुरेन्द्र...** कोई चारित्रवन्त हो और समकित में दोष लग गया

हो, समकित में जरा, तो वह असुरेन्द्र होता है। व्यंतर नहीं होता। सम्यग्दृष्टि असुर में नहीं जाता। समझ में आया? भवनपति का देव हो, वह मिथ्यात्व होकर जाता है। इसलिए ऐसी भी एक बात अन्दर ले ली कुन्दकुन्दाचार्य ने। समझ में आया? निर्ग्रन्थ मुनि हुए सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित, चारित्र हुआ, परन्तु कोई अन्दर में श्रद्धा में—सम्यग्दर्शन में अन्तर पड़ गया तो उसे असुरेन्द्र का आयुष्य बँध जाता है। समझ में आया? फिर मनुष्य होकर मोक्ष जाये। इस प्रकार से लिया है यहाँ। वरना सम्यग्दृष्टि असुरेन्द्र में जाता नहीं। सम्यग्दृष्टि हो तो वैमानिक देव में ही उपजता है, ऐसा नियम है। मनुष्य सम्यग्दृष्टि ज्ञानी चौथेवाला, पाँचवेंवालाव, छठवेंवाला, पहले आयुष्य बँधा न हो तो यहाँ। तो उसे छठवेंवाले को तो ऐसा ही होता है, स्वर्ग में जाता है। और **नरेन्द्र....** देखो! वहाँ से निकलकर वापस नरेन्द्र होता है। दो भव तो हो गये। साथ में राग रह गया पंच महाव्रत का, अट्ठाईस मूलगुण का, भान है, दर्शन-ज्ञान है, तीन कषाय की अभाव की परिणति भी है। परन्तु शुद्ध उपयोग जमा नहीं, उसके फल में देवेन्द्र हो, असुरेन्द्र हो, नरेन्द्र हो। चक्रवर्ती हो, कोई बलदेव हो, नर के इन्द्र।

यह वैभव। सेठ! कैसा वैभव? **क्लेशरूप...** धूल में क्या है वहाँ? पदवी मिली वैभव के क्लेश की। आहा! इतनी शान्ति लुट गयी। समझ में आया? देखो! वीतरागी मुनि के भाव। आहाहा! कहते हैं कि **वैभवक्लेशरूप बन्ध की प्राप्ति होती है।** प्राप्त होता है, ऐसा कहा न! बन्ध प्राप्त होता है। उसमें से वैभव की प्राप्ति होगी। स्वर्ग की प्राप्ति क्लेश है। समझ में आया? इसलिए वीतरागपना, वह उपादेय है और राग, वह हेय है, यह बात आयेगी....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १, शनिवार, दिनांक ०७-०९-१९६८
गाथा - ६, ७, प्रवचन - ५

प्रवचनसार, ज्ञानतत्त्व का प्रज्ञापन—कथन। छठवीं गाथा। क्या कहते हैं? मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है। संसार के जन्म-मरण के दुःख के क्लेश को नाश करनेवाला—ऐसा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र(रूप) मोक्ष का मार्ग, बन्ध के मार्ग का नाश करनेवाला है। उसे यहाँ चारित्र की प्रधानता की व्याख्या अभी है। क्योंकि दर्शन, ज्ञान और चारित्र, आत्मा का दर्शन अर्थात् आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति परमानन्दस्वरूप की अन्तर में निर्विकल्प प्रतीति स्वरूप के भानसहित, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। उस सम्यग्दर्शन बिना धर्म की शुरुआत नहीं होती। और उस दर्शन के साथ ज्ञान होता है। शुद्ध चैतन्य स्वरूप का स्वसंवेदन ज्ञान का ज्ञान—चैतन्यस्वभाव का ज्ञान, वह भी मोक्ष का मार्ग है। अब वह दर्शन, ज्ञान प्रधान जिसमें मुख्य है, पश्चात् उसे चारित्र होता है। और दर्शन, ज्ञान और चारित्र की तीन की एकता बिना मोक्ष का उपाय पूरा हुआ कहलाता नहीं और उसे मोक्ष होता नहीं। कहो, समझ में आया?

मोक्ष अर्थात् पूर्ण शुद्ध दशा। यह संसारदशा अर्थात् दुःखदशा। चार गति के अवतार में सर्वत्र दुःख है। उस दुःख का क्लेश चार गति के क्लेश का अन्त लाना हो, उसे आत्मा का सम्यग्दर्शन पहले प्रगट करना चाहिए। समझ में आया? वह सम्यक् अर्थात् चैतनय जैसा अनन्त गुण का पिण्ड पवित्र है, वैसा ही उसके स्वरूप की अन्तर भान करके प्रतीति होना और उसका ज्ञान होना, यह दर्शन और ज्ञान एकसाथ होता है। जरा स्वरूप की स्थिरता का अंश भी साथ में होता है। परन्तु यहाँ तो चारित्र की (मुख्यता से बात है)। वीतरागचारित्र साथ में हो, तब उसे मोक्ष का उपाय तीन का एकाग्र होकर एक हुआ कहलाता है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि **दर्शनज्ञानप्रधान चारित्र से...** छठवीं गाथा। जिसे दर्शन और ज्ञान तो मुख्य है, ऐसे फिर चारित्र से—स्वरूप की रमणता वीतरागभाव... सम्यग्दर्शन, ज्ञान, वह भी अरागी वीतरागी दशा है, परन्तु यह स्वरूप की विशेष भगवान आत्मा वीतरागी विज्ञानघन में लीनता—विशेष चरना—स्थिर होना—आत्मा के आनन्द की शान्ति आदि

की स्थिरता विशेष होना, वह चारित्र कहलाता है। वह चारित्र हो, तब उसे वास्तव में चारित्र मोक्ष का कारण होता है और वह चारित्र वास्तव में धर्म है। समझ में आया?

यदि वह (चारित्र) वीतराग हो... वह स्वरूप की दृष्टि और ज्ञानपूर्वक वीतरागी अर्थात् अरागी जो चारित्रदशा—चरना—रमना हो **तो मोक्ष प्राप्त होता है...** तो उसे संसार के भाव का अन्त आकर मोक्ष की दशा पूर्ण प्रगट होती है। कहो, समझ में आया? आहाहा! **और उससे ही, यदि वह सराग हो...** सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित है और कितनी ही स्वरूप की परिणति शुद्ध भी होती है, तथापि जब तक उसे पंच महाव्रत, छह आवश्यक आदि का विकल्प—शुभराग होता है, तब तक वह राग पुण्यबन्ध का कारण है। कहो, शान्तिभाई! ऐसा चारित्र। आहाहा! शान्तिभाई कहते थे, ऐसा चारित्र मैंने सुना नहीं था। कहो, समझ में आया? कितने ही आलोचना करते हैं कि देखो, कितने ही चारित्र लेते नहीं। परन्तु चारित्र किसे? दर्शन-ज्ञान बिना? जैनशासन में बहुत आया है। जैनशासन (पत्रिका)। तब कितनों ने बात सुनी हो न! लो, वहाँ तो चारित्र लेनेवाले को चारित्र छुड़ाया। परन्तु दर्शन बिना चारित्र कहाँ से आया? ऐ... शान्तिभाई! लो, यह नमूना। इनको तो दीक्षा लेनी थी। नग्न-दिगम्बर मुनि होना था। स्त्री है, पुत्र है। परन्तु इन्होंने सुना, ऐसा चारित्र कैसा? अरे! यह कहीं वस्त्र (छोड़कर) नग्न घूमे, वह कहीं चारित्र कहलाये? भाई! चारित्र की दशा तो अलौकिक है।

पहले चारित्र अर्थात् पहला स्वरूप आत्मा का वीतरागविज्ञान निर्विकल्प वस्तु, वह अनुभव में ज्ञान में आवे और उसमें प्रतीति हो और फिर प्रतीति में ऐसा हो कि उसमें स्थिर होऊँगा तो मुझे वीतरागता प्रगट होगी। वह चारित्र है। उस चारित्र में कहते हैं कि जब तक पंच महाव्रत में मुनि तो नग्न ही होते हैं—अचेल होते हैं, एक बार आहार होता है, एक बार खड़े-खड़े आहार होता है, शयन भूमि के ऊपर होता है, ऐसा उन्हें विकल्प होता है अट्ठाईस मूलगुण के तब तक, कहते हैं कि वह राग है, वह पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया?

वह **देवेन्द्र-असुरेन्द्र-नरेन्द्र के वैभवक्लेशरूप बन्ध की प्राप्ति होती है।** यह स्वर्ग के या राजा आदि के वैभव का क्लेश उसे मिलता है, वह पुण्य है इसलिए।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या दिखता है ? भान नहीं तुमको, इसलिए क्लेश कहाँ से लगे ? जलती है अन्दर कषाय अग्नि, ऐसा कहते हैं। शोभालालजी! भैयाजी कहते हैं कि हमको तो क्लेश दिखता नहीं। यदि अन्दर कषाय न हो तो शान्ति होनी चाहिए। कषाय का अभाव, वह शान्त... शान्त... शान्ति की, आनन्द की मिठास होनी चाहिए। शान्ति की मिठास नहीं, तब उसके विरुद्ध की कषाय अग्नि सुलगती है। समझ में आया ?

यह कहते हैं, मुनि हो, नग्न हो, अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो और स्वरूप की शुद्ध परिणति भी कितनी ही हो, तथापि उसे भी जो ऐसा पंच महाव्रत आदि का राग रह जाये तो उस राग में उसे पुण्यबन्ध होता है और उस पुण्यबन्ध में उसे देव, असुरेन्द्र अथवा मनुष्य के वैभव के क्लेश की प्राप्ति होती है। भगवानजीभाई! यह पैसे की प्राप्ति हो, उसे क्लेश की प्राप्ति होती है ? धूल भी होती नहीं पैसे की प्राप्ति, कहाँ से होती है ? पैसा कहाँ इसके पास है ? वह तो जड़ है। 'वह मुझे मिले' ऐसा भाव है, वह क्लेश है, कलंक है, दु:ख है, उपाधि है, वैभव है, (वह) मैल है। समझ में आया ? कहते हैं कि यदि वह मुनि होकर भी, यदि अकेले पुण्य के (भाव में) भी जो रुके तो उससे पुण्यबन्ध होकर... सम्यग्दर्शन है, ज्ञान है, स्वरूप की शुद्ध परिणति अर्थात् निर्मल अवस्था भी कितनी ही है, परन्तु उस शुभराग का कण बीच में आवे, उसमें यदि रुकेगा, (तो) पुण्य बाँधेगा। आहाहा! देखो! वीतरागमार्ग! और उससे वैभव (मिलेगा)।

देवेन्द्र-असुरेन्द्र-नरेन्द्र के वैभवक्लेशरूप बन्ध की प्राप्ति होती है। है या नहीं सेठ ? क्लेश है, कहते हैं। चाहे तो देव हो और चाहे तो चक्रवर्ती हो और चाहे तो राजा हो और चाहे तो यह धूल का सेठिया हो।

मुमुक्षु : ऐसे वैभव की इच्छा तो नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इच्छा नहीं परन्तु राग है न! इच्छा का कहाँ प्रश्न है ? राग का फल क्या होगा ? संयोग। राग का फल स्वभाव होगा ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? राग है, वह संयोगीभाव है; स्वभावभाव नहीं। इसलिए संयोगीभाव से संयोग मिले उसके बन्धन से। यह धूल मिले, यह स्त्री-पुत्र मिले, इन्द्र मिले, इन्द्राणी आदि मिले, वह तो क्लेश है। बराबर होगा यह ? ऐ... मोहनभाई! क्या यह पैसेवाले को सुखी कहते हैं न लोग ? नहीं, परन्तु कहते हैं न, वह सुखी कहते हैं न। मूर्ख इकट्ठे होकर सुखी कहे

या नहीं उसे ? मूर्ख इकट्ठे होकर सुखी कहे, हों ! पागल के अस्पताल में सब पागल ही पागल। बहुत पागल हों, उसे पागल कहे यह अच्छा पागल, ऐसा कहे। शोभालालजी ! धूल कुछ पाँच करोड़ मिले न !

यहाँ तो आचार्य कहते हैं, बापू ! तुझे खबर नहीं, प्रभु ! तू तेरी शान्ति, तेरा वीतराग विज्ञानघन स्वभाव है। तेरा स्वरूप ही वीतरागी अर्थात् रागरहित, कषायरहित, पुण्य-पापरहित और ज्ञान का पिण्ड, वह तेरा स्वरूप है। उस स्वरूप की दृष्टि, अनुभव करके, ज्ञान करके, पश्चात् भी स्वरूप में स्थिरता कितनी ही हुई हो, परन्तु यदि ऐसा कषाय का अंश उसे (रहे), दया, दान, व्रतादि के विकल्प यदि रहे तो उससे पुण्य होगा। कहो, समझ में आया ? वैभव क्लेशरूप। सामने कहा है न ? उसमें मोक्ष प्राप्त हो, ऐसा कहना है उसमें सामने, सामने कहना है। यह कहना है, मोक्ष होता है। वैभवक्लेशरूप बन्ध प्राप्त होता है। उसमें (शुद्धोपयोग में) मोक्ष प्राप्त होता है, इसमें (राग में) वैभवक्लेशरूप बन्ध प्राप्त होता है। आहाहा ! इतना पंच महाव्रत का—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, ऐसा विकल्प जो रहता है, वह भी बन्ध का ही कारण है और क्लेश का ही कारण है। शान्तिभाई ! ऐसा मार्ग है, बापू ! सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ, परमात्मा ने प्रगट किया हुआ (मार्ग है)। समझ में आया ?

इसलिए मुमुक्षु को... मोक्ष के अभिलाषी जीवों को—पूर्ण आनन्द की दशा की प्राप्ति की भावनावाले जीव को **इष्ट फलवाला होने से....** देखो ! **वीतरागचारित्र ग्रहण करनेयोग्य (उपादेय) है,....** आहाहा ! इष्ट फल, जिसका फल मोक्ष है, ऐसा जो इष्ट फल पूर्णानन्द की प्राप्ति। ऐसे इष्ट फलवाला होने से वीतरागचारित्र—स्वरूप की वीतराग रमणता, वह ग्रहण करनेयोग्य है, वह उपादेय है। सम्यग्दृष्टि को वीतरागचारित्र, वह उपादेय है।

और अनिष्ट फलवाला होने से सरागचारित्र त्यागनेयोग्य (हेय) है। वह स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और अमुक परिणति शुद्ध होने पर भी, पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प का राग रहे तो वह अनिष्ट फल है। क्योंकि वैभव के क्लेश का—बन्ध का कारण है, जिसका फल अनिष्ट है। वह इष्ट फल है मोक्ष; यह बन्ध है, वह अनिष्ट फल है। अनिष्ट फलवाला होने से सरागचारित्र हेय है। धर्मात्मा को राग का पंच महाव्रत का

विकल्प आवे, वह भी छोड़नेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? खबर नहीं होती परन्तु इसे अभी क्या सम्यग्दर्शन अथवा क्या सम्यग्ज्ञान अथवा क्या सम्यक्चारित्र। मोक्ष का क्या मार्ग? सुखी होने का क्या पंथ? सुखी होने का क्या पंथ? समझ में आया?

भगवान आत्मा में सुख है, इसके अतिरिक्त पर में कहीं सुख मानना, वह मिथ्यात्वभाव दुःख होने का पंथ है। पैसे में सुख है, शरीर में सुख है, अनुकूल संयोगों में सुख है, सुन्दर शरीर में सुख है—यह मान्यता(वाला) दुःख की दशा के पंथ के रास्ते पड़ा हुआ है। समझ में आया? अथवा राग की मन्दता का पुण्यभाव हो, वह मुझे सुख का और धर्म का कारण है, यह मिथ्यात्वभाव दुःख का रास्ता है। आहाहा! अरे! मनुष्यपना क्या है? उसमें धर्म क्या है? इसकी खबर नहीं होती। आहाहा! चौरासी के अवतार निःशरण-अशरण भटकते हैं बेचारे लोग। देखो न, यह तापी में बड़ा तूफान कितना, लोग चिल्लाहट मचाते हैं। कितने लोग मर गये, लाखों पशु मर गये। ऐसी मृत्यु तो अनन्त बार हुई है, वह कहीं नया नहीं है। अनन्त काल में इसने ऐसे अनन्त भव किये। ऐसे जन्म-मरण का कारण ऐसा जो मिथ्यात्वभाव और उसके अभाव का कारण जो सम्यग्दर्शन और उस सम्यग्दर्शन का कारण ऐसा जो द्रव्यस्वभाव त्रिकाल, उसे श्रद्धा में और अनुभव में कभी लिया नहीं।

यह अनुभव होने के पश्चात् भी, कहते हैं, उसे चारित्र की वीतरागदशा आवे तो उसकी मुक्ति होती है। अकेले समयग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से भी मुक्ति नहीं होती। समझ में आया? इसलिए मोक्ष के अभिलाषी, जिसे आत्मा की शान्ति और पूर्ण आनन्द चाहिए है, ऐसे जीवों को तो स्वरूप के भानसहित, रागरहित वीतरागचारित्र ही अंगीकार—उपादेय करनेयोग्य है। समझ में आया? और अनिष्ट फलवाला होने से सरागचारित्र छोड़नेयोग्य है। यह पंच महाव्रत के अहिंसा, सत्य, अचौर्य के परिणाम आवे, वह सम्यग्दृष्टि को छोड़नेयोग्य है, रखनेयोग्य नहीं। यह छठवीं गाथा हुई। कहो, समझ में आया? पहले श्रद्धा में, ज्ञान में तो ले कि चीज़ यह है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ७

अब चारित्र का स्वरूप व्यक्त करते हैं—सातवीं गाथा। चारित्र किसे कहना? मोक्ष का कारण चारित्र और उसका मूल कारण समयग्दर्शन और ज्ञान प्रधान। ऐसे जीव को चारित्र कैसा होता है और उसका क्या स्वरूप दशा, यह सातवीं गाथा में कहते हैं।

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ॥७॥

नीचे (हरिगीत)

निश्चय से चारित्र धर्म है, धर्म कहें जिनवर समभाव।
साम्यभाव है मोह-क्षोभ से रहित आत्मा का निजभाव॥७॥

देखो, धर्म की व्याख्या! आहाहा! इसका विवाद आया है, कल ही लेख आया है दिल्ली से। मोहक्षोभरहित परिणाम, वह चारित्र, वह धर्म, वह धर्म। यह अणुव्रत और महाव्रत धर्म नहीं। इसकी टीका की है। अब सुन न! सम्यग्दर्शन का भान तुझे नहीं, इसके बिना फिर परिणाम अणुव्रत, महाव्रत के विकल्प, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है और मिथ्यादृष्टि को अणुव्रत, महाव्रत होते ही नहीं यथार्थरूप से तो। समझ में आया? जहाँ निश्चय आत्मा निर्विकल्प आनन्द का स्वरूप का भान और ज्ञान है, वहाँ चारित्र होता है, वहाँ आगे उसे कोई श्रावक की दशा हो तो बारह व्रत आदि के विकल्प उठें, मुनिदशा हो तो अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प (उठें), उसे व्यवहार सहचारी कहा जाता है। समझ में आया? उसमें आया था भाई पहले। क्या कहलाता है? सहचारी नहीं? देखो, '**व्यवहारपञ्चाचारसहकारिकारणोत्पन्नेन निश्चयपञ्चाचारेण**' ऐसा है, देखो। पृष्ठ सातवाँ है। जयसेनाचार्य की (गाथा १ से ५ की) टीका में है। क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : सहकारी कारण कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ में रहा हुआ कहा, ऐसा कहा। यहाँ कहना है कि आत्मा अपने शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान, निर्विकल्प दर्शन—निर्विकल्प ज्ञान और चारित्र—रमणता, इच्छानिरोध की उग्र दशा और वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ का आचरण अन्तर में, ऐसा जहाँ

निश्चय आचार होता है, वहाँ सहचर ज्ञान का विकल्प होता है, दर्शन का—व्यवहारदर्शन का विकल्प होता है, चारित्र में पंच महाव्रत का विकल्प होता है, ऐसा हो, परन्तु वह है पुण्यबन्ध का कारण सहचर होता है। यहाँ निश्चय ऐसा हो, वहाँ सहचर साथ में होता है। इसके भान बिना हो, ऐसा हो नहीं सकता, ऐसा कहते हैं। शान्तिभाई! समझ में आया?

जहाँ आत्मा को अपने स्वरूप की सम्पदा ज्ञान और आनन्द का कन्द आत्मा है, ऐसे शुद्धपने का भान शुद्ध की दशा में हुआ, शुद्धदशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान में हुआ, पश्चात् उसके साथ स्थिरता की रमणता चारित्र की विशेष हो, इच्छानिरोध का आनन्द, तपाचार हो, वीर्याचार, वह पंच आचार जब हों, तब उसे साधु, आचार्य और उपाध्याय कहा जाता है। समझ में आया? और ऐसे पंचाचार के स्थान में, निश्चय के पंचाचार के भाव में साथ में जरा शुभ विकल्प राग होता है। समझ में आया? शास्त्र को पढ़ने का, श्रद्धा का व्यवहार सम्यग्दर्शन का, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का, नौ तत्त्व की भेद की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का विकल्प राग, ऐसे-ऐसे और बारह प्रकार के तप का विकल्प, व्यवहार विकल्प तप का भाग और पुरुषार्थ स्फुरित करना, ऐसा जो विकल्प, वह पंचाचार की भूमिका में ऐसा सहचर विकल्प साथ-साथ होता है। परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया? पुण्यबन्ध का कारण है परन्तु यहाँ तो उत्पन्न हुआ, ऐसा लिखा है। साथ-साथ व्यवहार कहा न! तब कहते, नहीं, यह नहीं। समझ में आया? समझ में आता है?

अरे! ऐसी मनुष्यदेह मिली, उसमें यदि यह नहीं करे, यह समझण और श्रद्धा वास्तविक नहीं प्रगट करे तो वीतरागता तो उसे प्रगट कहाँ से होगी? परन्तु ऐसा दर्शनशुद्धि और सम्यग्दर्शन का क्या स्वरूप है, चारित्र का क्या स्वरूप है, मोक्ष के मार्ग का स्वरूप क्या है, मोक्ष क्या है, उसकी भी यथार्थ पहिचान और प्रतीति नहीं करे (तो) अन्त कहीं नहीं, भाई! चौरासी के अवतार अनन्त-अनन्त अवतार। आहाहा! जिसे भव का खेद नहीं। अरे! यह भव यह कहाँ परन्तु? कहाँ मेरी गति? कहाँ मेरा स्थान? कौन मेरा संयोग? किस स्थिति में जाऊँगा? समझ में आया? रतिभाई! यह कनु और मकान कहीं साथ में आवे, ऐसा नहीं है। परन्तु पिता-पुत्र को बहुत प्रेम हो तो साथ में आवे या

नहीं रोने? रोने... रोने। रोने साथ में आवे, मुर्दे के साथ। अरे... बापू! अरे...! तुम्हारे बिना कैसे चलेगा? खोटा.. खोटा? 'निकालो निकालो रे इसे सब कहे।' पहले कहे, रखो रखो। मर जाय तब कहे, 'निकालो रे निकालो अब।' परन्तु यह सब मेहनत की, पाप किये, यह मकान बनाये, यह किया, ऐसा अभिमान किया, रचे तो कहाँ रचता है? अभिमान किया (कि) यह सब व्यवस्था की दुकान की, मांडणी बराबर की, लकड़ियाँ व्यवस्थित खड़ी की, आड़ी लकड़ियाँ डाली, उसमें ऐसा डालना। क्यों यह डिब्बे-बिब्बे रखते हैं या नहीं? नमूना, बीड़ी का नमूना हो या नहीं सब उसका? कि इस प्रकार की बीड़ी, इस प्रकार का नमूना बताओ, भाई इस डिब्बे में है। बड़ी लकड़ी के घोड़े खड़े किये हों, लकड़ी के घोड़े खड़े किये हों सब। कहो, समझ में आया? आहाहा! क्या है परन्तु? और उसमें पालिश और ऐसी लकड़ी हो व्यवस्थित। मकान की, दुकान की और क्या कहलाये? नेरडी की। नेरडी क्या कहलाती है वह? सीढ़ियाँ। सीढ़ियों में ऐसे पॉलिश पॉलिश। निकलना कठिन पड़ेगा। एक बार वहाँ कहा था। राजकोट में आहार लेने गये उसमें पालिश सब। आहाहा! बैठने का... भारी कठिन पड़ेगा यहाँ से इसे निकलना। अरे... बापू! यह क्या? परन्तु वह कहाँ तेरी थी और तेरे लिये कहाँ वहाँ आये हैं? वह तो रजकण का संयोग है। उससे तेरी चीज़ भिन्न और पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न चीज़ है। ऐसा स्वरूप का अन्तर दृष्टि और ज्ञान-भान बिना यह चौरासी के अवतार करके इसका कचूमर निकल गया।

उसे यहाँ कहते हैं कि ऐसे सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित परन्तु यदि वीतरागचारित्र होगा तो मुक्ति होगी। मात्र सम्यग्दर्शन, ज्ञान से तो नहीं, परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित की शुद्ध पर्याय की परिणति कितनी ही हो और साथ में ऐसे विकल्प शुभ परिणाम के हों तो वह अनिष्ट फल है उसका, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? इसलिए वीतरागचारित्र, श्रद्धा-ज्ञान में ले कि वीतरागचारित्र, वह प्रगट करनेयोग्य है और वही मुक्ति का कारण है। यह सातवीं गाथा देखो, इसकी टीका है न, टीका... टीका।

देखो! चारित्र किसे कहना? यह नग्नदशा, वह चारित्र नहीं। स्त्री, पुत्र छोड़कर बाहर बैठा, इसलिए चारित्र—ऐसा नहीं। यह अन्तर में पंच महाव्रत के विकल्प आवें

दया आदि के, वह चारित्र नहीं। समझ में आया? **स्वरूप में चरण करना (रमना), सो चारित्र है।** आहाहा! स्वरूप की ही खबर नहीं, वह स्वरूप में चरे कहाँ से? स्वरूप में चरना—रमना, चर... चर... चरना। कहीं माल हो, वहाँ ढोर चरे या माल बिना पत्थर चाटे? कुछ घास-बास हो तो चरे। घास न मिले तो क्या चरे ढोर? चरने गया था। क्या चरा? समझे न? उसने कहा था न, भाई? वहाँ सणोसरा। नानालालभाई का गाँव है न, सणोसरा। उस दिन वहाँ सणोसरा गये थे। सेठिया आये सब। दो गाँव धुँआ बन्द करो, दो गाँव। लाये वे आटा और घी और गुड़। परन्तु काठी के यहाँ उतरे, वह कहे हम जीमेंगे नहीं, तुम वहाँ उतरे, इसलिए जीमेंगे नहीं। उसमें एक किसान आया वृद्ध होगा पुराना। दुष्काल था, जंगल में घास-बास नहीं था। अरे! बाहर घास नहीं, पशु पत्थर चाटे या क्या करे? भगवान! तेरा बुरा होगा, हों! भगवान को गाली देता था। भगवान! तेरा बुरा होगा। इस ढोर को घास भी नहीं अभी। ऐ... न्यालभाई! वह मानो कि भगवान ने वर्षा नहीं दी और दुष्काल दिया। अरे! गायें बाहर जाती हैं, क्या चाटे? धूल चाटे वहाँ? भगवान! तेरा बुरा होगा, हों! ऐ... शोभालालजी! भगवान को कहता था वह। समझे नहीं? क्या? भगवान है न कोई ईश्वर ऐसा माने न वे लोग तो। उसे ऐसा कि यह वर्षा नहीं आयी और यह पशु (भूखों मरते हैं)। कौन भगवान था? सुन न! भगवान तो तू है। पूर्ण भगवान तो सर्वज्ञ वीतराग है, वह तो किसी को देता-लेता नहीं। सर्वज्ञ वीतराग वह परमात्मा है। परन्तु यह तो माने वह न! हमारे पास बैठा था वह। हम काठी के घर उतरे थे। बैठा-बैठा बोलता था, अरे... भगवान! तेरा बुरा होगा, हे परमेश्वर! तूने यह गायों, पशुओं के लिये घास भी नहीं दिया। ऐसा। सेठ!

मुमुक्षु : और लोग ऐसा ही कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही कहते हैं। कौन भगवान था? भगवान दुःखी करे? यह गायें कटाये और मारे और यह दुष्काल पड़े। भगवान करता था? हे मेघराजा! कहते हैं न यहाँ। कुछ भान ही नहीं होता। पागल वे कैसे पागल? पागल। देव कहे उसे। उसे और देव (कहे)।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान! सुन तो सही बापू! यह तेरा वीतराग विज्ञानघन चैतन्य आत्मा है। अकेला निर्दोष स्वभाव से भरपूर आत्मा है। ऐसा स्वरूप, उसमें

रमना, उसमें लीनता—आनन्द में लीनता करना, लीनता करना। चरना अर्थात् रमना, जम जाना अन्दर में, उसका नाम चारित्र है। समझ में आया? यहाँ तो दो रोटी खाये और पाव सेर दूध पीवे तो... ओहो! क्या चारित्र इसका! बहुत चारित्र! धूल भी नहीं, सुन न अब। वहाँ चारित्र कहाँ से आया? सादा जीवन, बहुत सादा जीवन, हों! कहते हैं ने? गृहस्थ व्यक्ति लाखोंपति तथापि पाव सेर दूध और दो रोटी खाता है, लो। उसे मिलता हो परन्तु रोटी और दाल खाता है, लो। बाजरे की रोटी और उड़द की दाल। त्याग कितना! धूल भी नहीं, सुन न त्याग। उसे त्याग कहते ही नहीं भगवान। भगवान तो, राग का अभाव होकर स्वरूप में रमणता के भाव को भगवान चारित्र और बाह्य का त्याग कहते हैं। बाह्य का अर्थात् राग का। समझ में आया?

देखो! अपने यह शब्द लिखा है, बाहर में है न बाहर। एक ओर लिखा है 'सर्वगुणांश वह समकित' खिड़की में लिखा है बाहर। एक ओर लिखा है, 'स्वरूप में चरना, वह चारित्र।' दोनों ओर दो हैं। स्वाध्यायमन्दिर में है न दरवाजे पर, एक इस दरवाजे पर और एक इस दरवाजे पर। आहा! अरे! चारित्र की खबर भी नहीं होती, चारित्र कैसा, इसका भान नहीं होता। नौ तत्त्व में संवर और निर्जरा, वह चारित्र। वह संवर, निर्जरा की क्या स्वरूप दशा, उसकी खबर नहीं होती। समझ में आया? ले लो दीक्षा। वह वस्त्र बदले गृहस्थी के और दूसरे पहने तो हो गये साधु। यह वस्त्र छोड़ डाले और नग्न हो जाये तो हो गये साधु। भाई! वस्तु की स्थिति ऐसी नहीं है।

भगवान आत्मा ज्ञान और शान्ति अर्थात् वीतराग शान्तस्वरूप, ज्ञानस्वरूप त्रिकाल बिम्ब है वह। ज्ञानमय जिनबिम्ब आत्मा है। वीतरागी चैतन्यबिम्ब आत्मा है। उसके भानसहित उसमें रमना। वह विकल्प नहीं, पंच महाव्रत का विकल्प वह नहीं, दया, दान की वृत्ति नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा वस्तु है न, वह अस्ति है न, अस्ति। आत्मा अस्ति है। है न? है तो उसमें ज्ञान और आनन्द आदि से भरपूर पदार्थ है वह। आहाहा! समझ में आया? ऐसे ज्ञान और आनन्द में एकाकार होकर रमना, चरना, आनन्द का भोजन करना, आनन्द का चरना, जमना, जम जाना अर्थात् आनन्द का भोजन करना, उसका नाम चारित्र है। कहो, जादवजीभाई! कलकत्ता में तो सुना नहीं होगा, यह चारित्र कैसा होगा! यह सामायिक की और प्रौषध किये, हो गया चारित्र। दीक्षा-बीक्षा दे,

उसमें ऐसे सेठिया इकट्ठे होकर डाले, दो सौ-पाँच सौ खर्च करो, ओहो! अपने से दीक्षा ली नहीं जाती, परन्तु दीक्षा ले उसे अपने मदद तो करना चाहिए। जादवजीभाई! अनुमोदन तो करना। परन्तु बापू! भाई! दीक्षा क्या चीज़ है, बापू! तुझे खबर नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा जिसे नजर में चढ़ा है अन्दर में। आहाहा! शुद्ध चैतन्य, इस मिट्टी से भिन्न, पुण्य-पाप के विकल्प / राग से भिन्न, ऐसा चैतन्यदल आनन्दकन्द जिसकी नजर में निधान पड़ा है, ऐसे निधान में लीन हो जाना, उसका नाम चारित्र कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! वह चारित्र मुक्ति का कारण है। आहाहा! आत्मा को पूर्ण आनन्द की प्राप्ति का वह कारण है। पूर्ण आनन्द कहो या मोक्ष कहो। परम शुद्धता। श्रीमद् कहते हैं न? 'मोक्ष कहा निज शुद्धता' निज शुद्धता, पर्याय में पूर्ण शुद्धता, वह मोक्ष। 'वह पावे सो पंथ' उस मोक्ष को जिस कारण से प्राप्त करे, उसे मोक्ष का मार्ग अर्थात् पंथ कहा जाता है। 'समझाया संक्षेप में, सकल मार्ग निर्ग्रन्थ।' निर्ग्रन्थ सन्तों ने यह मार्ग समझाया है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **स्वरूप में चरण करना....** चारित्र शब्द है न? चारित्र—चरना। अर्थात् किसमे? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, समकित—श्रद्धास्वरूप, ऐसे अनन्त गुणस्वरूप आत्मा है। उसे नजर में—दृष्टि में लिया है, श्रद्धा में लिया है, उसे ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाया है, वह बनाने के पश्चात् उसमें स्थिर होना। समझ में आया? उसे चारित्र कहते हैं। समझ में आया? **स्वसमय में प्रवृत्ति करना (अपने स्वभाव में प्रवृत्ति करना) ऐसा इसका अर्थ है।** देखो भाषा! स्वसमय अर्थात् अपने स्वभाव में प्रवर्तना, वैसा चारित्र का अर्थ है। ऐसा कि कहीं प्रवर्तना है न? चरना अर्थात् रमना है न? प्रवर्तना (तो) किसमें प्रवर्तना? दया, दान के, पंच महाव्रत के विकल्प में प्रवर्तना? नही, वह तो राग है। स्वसमय में प्रवृत्ति अर्थात् कुछ करना है न इसे? कहीं प्रवर्तना है न? परन्तु प्रवर्तना है चारित्र का अर्थात् क्या? चारित्र स्वरूप में रमना वह स्वसमय में प्रवृत्ति, ऐसा चारित्र का अर्थ है। समझ में आया? आहाहा!

स्वसमय में.... स्वसमय अर्थात् अपने पदार्थ में, अपने स्वभाव में प्रवृत्ति अर्थात् प्रवर्तना, रमना—ऐसा चारित्र का अर्थ है। शरीर की क्रिया तो कहीं रह गयी जड़ की,

पंच महाव्रत के विकल्प रह गये शुभभाव में, उसमें प्रवर्तना, वह नहीं। स्वसमय में स्व-स्वरूप भगवान अपना स्व-स्वभाव त्रिकाल शुद्ध चैतन्यमूर्ति में प्रवर्तना, वह चारित्र का अर्थ है। समझ में आया? जेठालालभाई! लो, ऐसा चारित्र। आहाहा! अभी तो चारित्र क्या कहा जाता है, उसकी व्याख्या ही पूरी उल्टी हो गयी। सब धर्मों के साथ समन्वय, यह और वह ऐसा चला है। समन्वय किसके साथ होता है?

वीतराग प्रभु आत्मा में रमना, वह चारित्र अर्थात् कि स्वसमय में प्रवृत्ति, उसका नाम चारित्र का अर्थ है। आहाहा! कितने सादे शब्दों में चारित्र को सिद्ध करते हैं! पाठ में तो इतना है। समझ में आया? **'चारित्तं खलु धम्मो'।** उसकी यह व्याख्या करते हैं। अपना स्वभाव शुद्ध वीतरागी विज्ञानघन, वह स्वसमय अर्थात् स्वस्वभाव, उसमें प्रवर्तना, पुण्य के परिणाम में नहीं प्रवर्तन और पवित्र स्वभाव में प्रवर्तना, वह चारित्र का अर्थ है। लोग कहते हैं, कुछ पालना है न? हाँ। स्वसमय को पालना (उसमें) प्रवृत्ति, उसका नाम पालना। समझ में आया? आहाहा! वीतरागी विज्ञानघन जिसने नजर में—दृष्टि में लिया है, ऐसा जो उसका स्वभाव है, उसमें प्रवृत्ति करना, उसका नाम चारित्र। कहो, समझ में आया? कहो, यह चारित्र की व्याख्या। ऐ... गुलाबचन्दभाई! ऐसा सुना था वहाँ? नहीं।

बापू! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव चारित्र की यह व्याख्या करते हैं। इन्द्रों के समक्ष में—आकाश के स्तम्भ जैसे इन्द्र तीन-तीन ज्ञान के धनी थे, उनके सामने भगवान चारित्र की यह व्याख्या करते थे। भाई! भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति प्रभु में चरना, उसमें रमना। समझ में आया? आहा! हे आत्मा! मेरा स्वरूप तो यह है। उसमें प्रवृत्ति करना, इसका नाम चारित्र है। समझ में आया? पुण्य-पाप के विकल्प की प्रवृत्ति, वह कहीं चारित्र नहीं। आहाहा! पंच महाव्रत के भाव, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, वह चारित्र नहीं। समझ में आया? उसे व्यवहारचारित्र का आरोप, निश्चयचारित्र हो तो उसे व्यवहारचारित्र का आरोप दिया है। अर्थात्? व्यवहार अर्थात् 'नहीं', उसे कहना, इसका नाम व्यवहार। आहाहा! समझ में आया?

यही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है। लो, यह धर्म की व्याख्या। यह वीतराग परमात्मा ने की हुई धर्म की यह व्याख्या। 'धर्म धर्म सब कोई कहे, धर्म न जाने मर्म' आता है न?

धर्म धर्म करता जग सब फिरे, धर्म न जाने रे मर्म जिनेश्वर,
धर्म जिनेश्वर चरण ग्रहे फिर, कोई न बाँधे कर्म जिनेश्वर,
धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं।

मेरा स्वभाव जो धर्म वीतरागी पर्याय वीतरागस्वभाव त्रिकाल, उसमें लीनता करना, रमना, उसका नाम समय की—स्वसमय की प्रवृत्ति और वही वस्तु का स्वभाव। दया, दान या पंच महाव्रत के विकल्प, वह कहीं वस्तु का स्वभाव नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह तो विभाव है, उपाधि है। यही **वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है।** इसका नाम भगवान धर्म कहते हैं। समझ में आया? यह जैन धर्म। समझ में आया या नहीं? रतिभाई! प्रवचनसार होगा या नहीं? घर में होगा। एक होगा वह पुराना पुराना। अन्तर में ले लेना, ऐसा कहते हैं यह तो, समझकर। समझण... समझण करना इसकी। यह तो शब्द है, इनका वाच्य-भाव है उसे (लक्ष्य में लेना)। कहते हैं, आहाहा! जैन धर्म, परमेश्वर त्रिलोकनाथ केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं। आता है? शाम-सवेरे बोले वह मांगलिक में। चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं... केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं। परन्तु खबर क्या, केवली पण्णत्तो धर्म की व्याख्या? केवली पण्णत्तो धर्म अपने दया पालते हैं, व्रत पालते हैं, वह धर्म। अरे! वह नहीं। समझ में आया? कहो, भीखाभाई!

कहते हैं, कैसी स्थिति का वर्णन है, ओहोहो! '**चारित्तं**' की व्याख्या की और '**खलु धम्मो**' इसकी व्याख्या तक आयी। दूसरा शब्द है न, मूल श्लोक। चारित्र की व्याख्या आयी कि स्वरूप में चरना, वह चारित्र और स्वभाव में प्रवृत्ति करना, उसका अर्थ। अभी चारित्र की व्याख्या। फिर धम्मो क्या? वह दूसरा बोल आया कि वह वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है। समझ में आया? आत्मा ज्ञायक चैतन्य वीतरागी पिण्ड प्रभु आत्मा है। प्रत्येक का एक-एक आत्मा, हों! ऐसा वीतरागी निर्विकल्प आनन्दकन्द आत्मा की अन्तर निर्विकल्प दृष्टि करके, ज्ञान करके, उसमें रमना, वह चारित्र। अर्थात् स्वभाव की प्रवृत्ति यह उसका अर्थ। अर्थात् कि वही वस्तु का स्वभाव, इसलिए धर्म। अर्थात् कि अन्दर में वह स्वभाव था, ऐसा प्रगट हुआ; इसलिए वह धर्म। समझ में आया? आहाहा! '**वत्थु सहावो धम्मो**' कहा है न?

भगवान आत्मा, यह देह के मिट्टी के रजकण से भगवान दूर है वह तो। समझ

में आया? और पुण्य-पाप के, दया, दान, व्रत के विकल्प आवे, उससे भी वह दूर—भिन्न है। ऐसा जो उसका वीतरागी विज्ञान स्वभाव-धर्म, उसका स्वभाव था, वह स्वभाव प्रगट हुआ, इसलिए वह वस्तु का स्वभाव, उसे धर्म कहा जाता है। आहा! समझ में आया? देखो! यह चारित्र की मुनिपने की निर्ग्रन्थपने की व्याख्या। आहाहा! अभी देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा की खबर न हो कि कैसे देव होते हैं, कैसे गुरु होते हैं और कैसे शास्त्र होते हैं। अब उसकी श्रद्धा की खबर नहीं होती, उसे सम्यग्दर्शन हो कब? और धर्म हो कब? समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर को पूर्ण वीतराग विज्ञानता प्रगट होकर एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान होता है, वह सर्वज्ञदेव। दिव्यशक्ति जिनकी पूर्ण प्रगट हुई, वे सर्वज्ञ परमात्मा। और यह गुरु कि जो स्वरूप की श्रद्धा-ज्ञानसहित में रमणता और स्वभाव की प्रवृत्ति, वह चारित्र का अर्थ और उस चारित्र को धर्म कहा जाता है। क्योंकि वह स्वभाव होने के कारण। वही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है। आहाहा! समझ में आया? अब इसकी व्याख्या वापस।

धर्म कैसे? **शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना, यह इसका अर्थ है।** देखो! वस्तु का स्वभाव था न, स्वभाव, वह प्रगट हुआ है। उस शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना आया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहते हैं? **यही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है।** और उस धर्म की व्याख्या कि शुद्ध चैतन्य भगवान शुद्ध ज्ञायकमूर्ति परमानन्द का पर्याय में प्रकाशित होना। समझ में आया? उसका प्रकाशित होना, ऐसा उसका—धर्म का अर्थ है। अशुद्धत उसमें नहीं है, उसका प्रकाशित होना, वह कहीं उसका धर्म नहीं। समझ में आया? आहाहा! गजब बात है! सन्तों ने चारित्र तो प्रगट किया परन्तु उसकी व्याख्या करने की सरल भाषा में... आहाहा!

कहते हैं, भाई! तेरा स्वरूप है, उसमें रमना, (वह) एक अर्थ करके चारित्र कहा। वह स्वरूप उसका स्वभाव है, इसलिए स्वसमय है, स्वपदार्थ है, स्वभाव है। उसकी प्रवृत्ति ऐसा चारित्र का अर्थ है और वही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है। क्योंकि वह वस्तु का स्वभाव है, वह प्रगट हुआ है, इसलिए वस्तु का स्वभाव, उसे धर्म कहते हैं। और उस शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना हुआ। जैसा शुद्ध था, वैसा प्रकाशित हुआ,

इसलिए यह धर्म का अर्थ शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना उसे कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? .... धर्म की यह व्याख्या। आहाहा! भगवान आत्मा अकेला शुद्ध स्वरूप स्वभाव, उसमें रमणता जो चारित्र और वह स्वभाव है, उसकी प्रवृत्ति हुई, इसलिए उस चारित्र का यह अर्थ है। और यही वस्तु का स्वभाव होने से वह वीतरागी पर्याय, उस वस्तु का स्वभाव होने से उसे भगवान धर्म कहते हैं और उस धर्म का अर्थ यह है कि शुद्ध चैतन्य भगवान प्रकाशित होता हुआ—प्रगट हुआ, इसलिए शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना, उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना... अस्तिरूप तो शुद्ध चैतन्य था, वह स्वयं पर्याय में आया प्रगट होकर। समझ में आया? राग और पुण्य का विकल्प कहीं स्वरूप में नहीं। यह तो शुद्ध चैतन्यप्रभु है, उसका प्रकाश होना, वह धर्म का अर्थ है। आहाहा! समझ में आया? यह धर्म किसे कहना, उसकी व्याख्या परमात्मा करते हैं। सन्त परमात्मा कहते हैं, वैसा करते हैं। आहाहा! दया धर्म का मूल है और अहिंसा परमो धर्म। पर की दया धर्म कहते हैं न सब। दूसरे की दया पालना। अहिंसा बड़ा धर्म है, अथवा पर की सेवा। क्या कहा? योगियों को भी धर्म है। धूल भी नहीं, सुन न अब। सेवा किसकी करे?

भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का दल पिण्ड प्रभु में रमना, वह चारित्र, वह मुक्ति का—मोक्ष का कारण। वह चारित्र स्वभाव-स्वरूप है, उसकी प्रवृत्ति, उसका नाम चारित्र का अर्थ है। और वह चारित्र स्वभावरूप होने से वह स्वभाव होने के कारण—वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है। पुण्य के परिणाम दया, दान विकल्प वह कहीं वस्तु का स्वभाव नहीं। समझ में आया? कहो, समझ में आता है इसमें? आहाहा! वह यह धर्म की व्याख्या। समयसार सोलहवीं बार शुरु किया, उसमें धर्म की व्याख्या आज आयी, देखो! प्रवचनसार। सेठ! ऐसा जैनधर्म कहो, धर्म कहो या वस्तु का स्वभाव कहो। आहाहा! यह वस्तु, वही धर्म। **यही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है।** और उसका अर्थ यह है कि **शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना, यह इसका अर्थ है।** भगवान चैतन्य, देखो यह पर्याय में प्रगट हुआ। द्रव्य और गुण शुद्ध चैतन्य थे, वस्तु शुद्ध चैतन्य आनन्द ज्ञायकपना था, उस शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना, पर्याय में उस स्वभाव का आना,

प्रगट होना, इसका नाम धर्म और चारित्र कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? अपने आप समझ में आये ऐसा नहीं, हों! वापस अर्थ थोड़ा सा धारे तो वांचन हो ऐसा है। वरना अपने आप कल्पना से वाँचने जाये तो, यह क्या कहते हैं? यह कहते हैं, वास्तविकता जो स्थिति है उसे किस प्रकार वस्तु स्वभाव था उसे धर्म कहा। तब कहा कि वह था, वह प्रगट हुआ, इसलिए हमने तो उसे धर्म कहा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! शरण यह है, बाकी कोई शरण धूल भी नहीं। भटककर मर गया अनन्त बार।

अब **वही....** वस्तु तो वह की वह चारित्र, उसे धर्म कहा, उसकी प्रवृत्ति को अर्थ कहा। वस्तु का स्वभाव, वह धर्म और शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना, वह धर्म का अर्थ। आहाहा! दिगम्बर सन्त अमृतचन्द्राचार्य भगवान को भेंट करके खड़े हैं। कहते हैं, **वही यथास्थित आत्मगुण होने से...** देखो! है तो पर्याय, परन्तु प्रकाशना किया न पहले, चैतन्य का प्रकाशित होना कहा था न! प्रकाशित होना वह तो पर्याय हो गयी। शुद्ध वीतराग विज्ञानघन है, ऐसी प्रकाश पर्याय में वीतराग विज्ञानघनता प्रगट हुई, वह धर्म का अर्थ है। कहो, जेठालालभाई! यह सब सुना भी नहीं होगा कभी यह चारित्र और.... व्याख्या जैनधर्म में जन्में हों परन्तु जैनधर्म किसे कहना, (इसकी खबर नहीं होती)। कहो, हेमाणी! समझ में आया या नहीं यह? यह समझना पड़ेगा, हों! आहाहा!

वही यथास्थित आत्मगुण... कौन? वह पर्याय, हों! स्वरूप की रमणता चारित्र वह स्वभाव की प्रवृत्ति, उसका अर्थ (कि) वह वस्तु का स्वभाव, इसलिए धर्म है और चैतन्य का प्रकाशित होना, इसलिए उसे धर्म कहा जाता है। उसे और उसे। **वही यथास्थित....** उसी धर्म की पर्याय को—चारित्र को (अर्थात्) स्वभाव की प्रवृत्ति, उसके अर्थ और स्वभावरूप धर्म का प्रकाशित होना **आत्मगुण होने से....** वह आत्मा का गुण है अर्थात् आत्मा की पर्याय है। वीतराग पर्याय प्रगट हुई, वह आत्मा की पर्याय है। राग, वह आत्मा की पर्याय और गुण है नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह पंच महाव्रत के परिणाम, वह आत्मा की पर्याय नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह तो आस्रव की पर्याय है। यहाँ तो अभी इतना भान नहीं होता और पंच महाव्रत हो गये, दीक्षा हो गयी। अरे... भगवान! भाई! जैनधर्म अर्थात् वीतराग भगवान ने कहा हुआ

धर्म। वह तो वस्तु का स्वभाव, वह धर्म है। वह कहीं नया कहीं से आवे, ऐसा नहीं है। वह कहीं वाडा की बात नहीं यह सम्प्रदाय की बात वह नहीं। वस्तु ही ऐसी है। चैतन्य भगवान रागरहित कहो या वीतराग कहो, अकेला विज्ञानघन कहो या ज्ञायकभाव कहो, ऐसा जो स्वभाव है। ऐसा स्वभाव है, उसमें लीनता होने से, वीतरागी पर्याय स्वभाव है, ऐसी प्रगट हुई, इसलिए उसे धर्म और शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना और उसे ही आत्मा का गुण होने से साम्य कहा जाता है। है न? **'जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो'**। दूसरे पद की व्याख्या। **'चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो'**। आहाहा! महा मांगलिक का मण्डप है यह। आहाहा! वाह!

कहते हैं, ऐसा जो चारित्र जो मुक्ति का कारण, वही धर्म और वही शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना और वही यथास्थित आत्मपर्याय होने से। गुण अर्थात् पर्याय। **(विषमतारहित सुस्थित आत्मा का गुण होने से)...** रागादि पंच महाव्रत का विकल्प, वह तो विषम है। समझ में आया? उससे रहित शुद्ध चैतन्य की शक्ति की व्यक्तता—वीतराग पर्याय जो प्रगट हुई, वह उसकी गुण-पर्याय होने से उसे साम्य... साम्य समता उसे कहा जाता है। उस चारित्र को धर्म कहो या चारित्र को साम्यभाव कहो। समझ में आया? उसका विवाद उठाया है सबने। अभी लालबहादुर ने लिखा है, देखो! मोहक्षोभरहित परिणाम वह धर्म। अरे... भगवान! क्या करता है, बापू? रहने दे, भाई! अनन्त तीर्थंकरों का मार्ग जो आत्मा का, उसका विरोध होता है, भाई! समझ में आया? वस्तु का विरोध होता है। वस्तु ऐसी है।

भगवान आत्मा शान्तरस से भरपूर, वीतरागस्वभाव से भरपूर, कहते हैं कि उसमें से प्रकाश हुआ, वह धर्म के लिये उसे साम्य कहा जाता है। साम्य—समता। स्वरूप वीतरागभाव था, वह प्रगट हुआ, इसलिए उसे वीतरागभाव कहो या साम्यभाव कहो। समझ में आया? है न सामने, पुस्तकें तो अब आ गयी हैं। अवसर में तो कहे न यह। परन्तु इसमें किस शब्द का अर्थ है, ऐसा इसे पकड़ना पड़ेगा। कहो, समझ में आया? आहाहा! **वही यथास्थित....** यथास्थित। आहाहा! भगवान वीतरागघन प्रभु आत्मा की प्रकाश दशा हुई, वह धर्म का अर्थ और वह उसकी पर्याय है, इसलिए उसे समताभाव, उसे समताभाव (कहा जाता है)। यह समता। समझ में आया? और इस साम्य को दूसरे प्रकार से वर्णन थोड़ा मूल पाठ से करते हैं। **(श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण २, रविवार, दिनांक ०८-०९-१९६८
गाथा - ७, ८, प्रवचन - ६

यह प्रवचनसार। ज्ञानतत्त्व—ज्ञानस्वरूप का कथन है। सातवीं गाथा। चारित्र कैसा होता है, उसकी व्याख्या है। यह छठवीं गाथा में आ गया है कि चारित्र, दर्शन-ज्ञानप्रधान होता है। प्रथम सम्यग्दर्शन और ज्ञान हो, उसकी मुख्यता, पश्चात् चारित्र हो। यह व्याख्या करेंगे, देखो! व्याख्या चली है, फिर से देखो!

चारित्र। सम्यग्दर्शन अर्थात् नीचे संस्कृत में सातवीं गाथा में कहा न? मोहक्षोभ रहित। मोह का अर्थ दर्शनमोह का अभाव और शुद्ध आत्मतत्त्व की श्रद्धा का भान। शुद्धात्मश्रद्धानरूप समकित। शुद्धात्मा के श्रद्धानयप समकित को यहाँ समकित पहले मोह के अभाव में डाला। समझ में आया? पंचास्तिकाय की १०७ गाथा आती है है न, भाई! वहाँ व्यवहार आता है न, व्यवहार। वह समकित का बीज है और फलाना, फलाना है। वहाँ भी ऐसा अर्थ—मिथ्यात्व का नाश हो, वहाँ ऐसा व्यवहार समकित होता है, ऐसा आता है। अर्थात् यह ऐसा कि व्यवहार समकित मिथ्यात्व के नाश में होता है, ऐसा कहते हैं। यह तो मिथ्यात्व के नाश की भूमिका में ऐसा व्यवहार होता है, ऐसा बतलाना है।

यहाँ कहते हैं, शुद्धात्मश्रद्धानरूप सम्यक्त्व। आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञायक ज्ञायकस्वभाव है, उसकी अन्तर में स्वसन्मुख होकर, स्वद्रव्य का आश्रय लेकर जो श्रद्धा अनुभवसहित हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।

मुमुक्षु : शुद्धात्मा की श्रद्धा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इनकार करते हैं, शुद्ध की नहीं, व्यवहार है, वह समकित है। यह ऐसा कहते हैं। यह तो विशुद्ध सम्यग्दर्शन वह नहीं, वह तो आगे होगा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अनुभव, यह अनुभव नहीं, ऐसा कहते हैं। वह आगे होगा, पहले अकेला श्रद्धामात्र व्यवहार होता है। अनुभव नहीं, उसका ज्ञान होता है।

मुमुक्षु : अनुभव का अर्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव का अर्थ ज्ञान करे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटी बात है। समझ में आया?

प्रथम में प्रथम भगवान आत्मा सर्वज्ञ ने कहा हुआ अर्थात् कि जो आत्मा वस्तु है, जीव कहो या आत्मा कहो, दोनों प्रकार से वर्णन किया है, उसका जो शाश्वत् स्वभाव दृष्टा और ज्ञाता अर्थात् दर्शन और ज्ञान, उसका मूल स्वरूप वह। उसके साथ अनन्त गुण भले हों। परन्तु उपयोग लक्षणं जीव। उपयोग लक्षण जीव। '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो**' ऐसा जो दृष्टा-ज्ञाता त्रिकाली जीव, त्रिकाली स्वभाव ऐसा जो आत्मा, ऐसे विशुद्ध आत्मा की अन्तर्मुख की सम्यग्दर्शन की प्रतीति, उसे यहाँ यथार्थ मोक्ष का मार्ग समकित कहते हैं। कहो, समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन जहाँ है, वहाँ आत्मा का स्वसंवेदनज्ञान भी होता है। उस दर्शन-ज्ञानपूर्वक चारित्र कैसा होता है, निर्ग्रन्थता कैसी होती है, उसकी बात का यह वर्णन है।

तो कहते हैं, **स्वरूप में चरण करना (रमना), सो चारित्र है।** कोई नग्नदशा बाह्य की क्रिया या पंच महाव्रत के या अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, वे कहीं चारित्र नहीं हैं, वह तो राग है। भगवान... 'स्वरूप' शब्द पड़ा है न! स्व-रूप। अपना भाव त्रिकाली। ज्ञान और दर्शन, ऐसा जो त्रिकाली स्वरूप, उसकी—जो दर्शन और ज्ञान का श्रद्धा-ज्ञान हुआ है, उसमें चरना, उसमें रमना, उसमें लीनता, उसका नाम चारित्र कहा जाता है। कि जो चारित्र, दर्शन-ज्ञानसहित का मोक्षमार्ग का तीसरा अवयव है। समझ में आया? स्वरूप में रमना, वह चारित्र है। वह स्वरूप अर्थात् क्या? यह पहली व्याख्या आ गयी है। दर्शन और ज्ञान विशुद्ध जिसका त्रिकाली स्वभाव है, ऐसा जो स्वरूप—वस्तु और उसका जो दर्शन-ज्ञान, देखना-जानना, ऐसा शाश्वत् स्वभाव, ऐसी शुद्धता की प्रतीति और ज्ञान में रमना।

स्वसमय में प्रवृत्ति करना (अपने स्वभाव में प्रवृत्ति करना), ऐसा इसका अर्थ है। स्पष्टीकरण किया कि उस स्वरूप में रमना, ऐसा चारित्र कहा, उसका अर्थ क्या?

कि स्वसमय अर्थात् अपना आत्मा। अपना स्वसमय अर्थात् अपना आत्मा, उसमें प्रवृत्ति। स्वस्वभाव में प्रवृत्ति, ऐसा चारित्र का अर्थ है।

मुमुक्षु : स्वसमय....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वसमय आत्मा कहा न। स्व अर्थात् अपना, समय अर्थात् आत्मा। ज्ञान और दर्शन, आनन्दस्वरूप जो त्रिकाली, वह स्वसमय, स्व आत्मा। आत्मा में फिर कहीं पुण्य-पाप और अल्पज्ञपना नहीं आता, वह पूरा स्वसमय आत्मा। स्व— अपना, समय अर्थात् आत्मा वस्तु। उसमें प्रवृत्ति, ऐसा चारित्र का, स्वरूप में रमना ऐसा चारित्र का यह अर्थ है। समझ में आया?

स्वरूप में रमना, वह चारित्र अर्थात् कि स्वरूप अर्थात् स्वसमय ऐसा जो आत्मा ज्ञान, आनन्द से भरपूर ऐसा स्वरूप, स्व-अपना समय अर्थात् आत्मा, उसमें प्रवृत्ति, उसमें प्रवृत्ति का नाम चारित्र—स्वरूप में रमना, ऐसा उसे चारित्र कहा जाता है। समझ में आया? **स्वसमय में प्रवृत्ति करना (अपने स्वभाव में प्रवृत्ति करना), ऐसा इसका अर्थ है।** आहाहा!

दूसरा। **यही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है।** दूसरा शब्द है न मूल पाठ में। '**चारित्तं खलु धम्मो**' 'चारित्तं खलु धम्मो'—अब धर्म की व्याख्या चलती है। **यही वस्तु का स्वभाव होने से...** अर्थात्? कि वस्तु भगवान आत्मा दर्शन, ज्ञान, आनन्दमय वह वस्तु का स्वभाव ऐसी ही अन्दर पर्याय उस जाति की प्रगट हुई, वह वस्तु का स्वभाव है। वस्तु का स्वभाव होने से वह धर्म कहा जाता है। 'वत्थु सहावो धम्मो।' वस्तु जो आत्मा, उसका शाश्वत् स्व—अपना ज्ञान, आनन्द आदि भाव, वह उसका स्वभाव। उस स्वभाव की पर्याय में प्रगट दशा उस जाति की, इसलिए उसे वस्तु स्वभाव, उसे धर्म कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

यही वस्तु का.... वही अर्थात् जो चारित्र कहा वही, ऐसा। वस्तु का स्वभाव; स्वभाव अर्थात् शाश्वत् उस स्वभाव की बात नहीं, स्वभाव तो शाश्वत् है ही। ऐसा ही स्वभाव पर्याय में प्रगट हुआ, इसलिए वही वस्तु का स्वभाव है, ऐसा कहा। समझ में आया? आहाहा! व्याख्या तो देखो! वीतरागपने की चारित्रदशा। आहाहा! समझ में

आया? और वह चारित्र साक्षात् मोक्ष का कारण है। अब कहते हैं, **यही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है।** इसकी व्याख्या क्या? अर्थ क्या? कि **शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना, यह इसका अर्थ है।** आहा! शुद्ध चैतन्य भगवान ज्ञानानन्द की मूर्ति शुद्ध चैतन्यवस्तु का प्रकाशित होना, उसका जो तेज है, वह पर्याय में आना। समझ में आया? **शुद्ध चैतन्य का....** वह तो वस्तु हुई। उसका प्रकाशित होना, वह वस्तु का स्वभाव जो धर्म, उस शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना, वह धर्म है। समझ में आया? आहाहा! यह निर्ग्रन्थपने के चारित्र की व्याख्या। समझ में आया? अभी चारित्र किसे कहना, खबर नहीं होती और बाहर के क्रियाकाण्ड में चारित्र मान ले। आहाहा! जयन्तीभाई! अपने से तो अच्छे हैं, ऐसा करके माने वापस। तू कौन और वे कौन? तू क्या है? और उसे किस प्रकार से तू मानता है? इसका निर्णय होना चाहिए न! समझ में आया?

आहाहा! देखो! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा जो आत्मा, उसका जो स्वभाव शाश्वत्, उसकी पर्याय में उसी जाति का प्रगट होना, वह वस्तु का स्वभाव है, इसलिए धर्म कहा और वह धर्म अर्थात् शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना, शुद्ध चैतन्यदल भगवान है, उसकी पर्याय में उस जाति की दशा का परिणमना, उसे यहाँ धर्म कहा जाता है।

मुमुक्षु : शुभ में शुद्ध का अंश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ में धूल भी नहीं। शुभ कहाँ था यहाँ? समझ में आया? शुभ तो अद्धर रह गया बाहर। अरे! क्या हो? उसे यह बैठा हो... उसे बैठा हो, भाई! और वह विपरीत अर्थ बैठता है, उसका फल नुकसान है, उसमें भव का घेरा है। ऐसे जीवों का तिरस्कार भी कैसे हो? बापू! भव करना और भव में भ्रमण, वह तो महा दुःखदशा है। समझ में आया? भव... आहाहा! अनन्त भव, जिस मिथ्यात्व में अनन्त भव। समकित में भव का अभाव और मोक्ष। जहाँ ऐसी वस्तु की स्थिति की खबर नहीं, विपरीत मान्यता है, उसमें काल व्यतीत करेगा, अरे! उसके फल में अनन्त भव करेगा। उस अनन्त में तो निगोद के भी भव आते हैं। ऐसे दुःख की दशा जिसके फलरूप से हो, ऐसे परिणाम के करनेवाले का तिरस्कार कैसे किये जाये? उसके प्रति द्वेष भी कैसे हो सकता है? नवरंगभाई! आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। भगवान! जन्म-मरणरहित का उपाय क्या है, उसकी तुझे खबर नहीं। कि इसमें से ऐसे शुभभाव में (धर्म) मानने से

ऐसा मिथ्यात्वभाव, भगवान! वह तो जन्म-मरण के उत्पत्ति का स्थान है। भगवान आत्मा जन्म-मरण के नाश का उसका स्वभाव है।

ऐसा भगवान शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना, वस्तु का स्वभाव वह धर्म कि जो पहले चारित्र कहा था, वही धर्म और वह धर्म अर्थात् शुद्ध भगवान शक्ति का पिण्ड परमात्मस्वरूप आनन्द का कन्द, उसका ही पर्याय में प्रकाशित होना, उसमें शुभ और अशुभभाव नहीं आते। समझ में आया? वह शुद्ध चैतन्य का प्रकाश तो, सूर्य की किरणों में से कोई मलिन किरण निकलती होगी? सूर्य की किरणें, सूर्य प्रकाश का पुंज है, उसकी किरणें प्रत्येक हजारों भी प्रकाशमय है। कोई एक किरण को कोयला ने मलिन किया? इसी प्रकार भगवान चैतन्यसूर्य है, चैतन्यसूर्य है। वह बाहर में आता है न तुम्हारे क्या वह हजार का? बाहुबलीजी, हर समय वह याद आता है। दोनों ओर दो रखे हैं न ऐसे। इसी प्रकार भगवान तो अनन्त ज्ञान के तेज का बिम्ब है आत्मा। शुद्ध चैतन्य है न! आहाहा!

भाई! क्षेत्र में थोड़ा है, ऐसा न जान। उसका भाव स्वभाव है न, स्वभाव, शुद्ध ज्ञान, दर्शन, चैतन्य शुद्ध जिसका स्वभाव है, उस स्वभाव को मर्यादा नहीं होती, हद नहीं होती, थोड़ा नहीं होता; एकरूप अखण्ड और पूर्ण होता है। समझ में आया? शुद्ध भगवान आत्मा का ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि शुद्धस्वरूप, वह तो वस्तु हुई, परन्तु वस्तु का स्वरूप—स्वभाव क्या? सत् है, उसका सत्त्व क्या? ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसा एक-एक गुण से अनन्त स्वभाव, अनन्त शक्तिवाला एक-एक गुण है। वह स्वभाव है, उसे हद नहीं होती। ऐसी जो शुद्धता की अमर्यादित शक्तियाँ, उनका पर्याय में प्रकाशित होना, इसका नाम चारित्र और धर्म है। आहाहा! समझ में आया?

शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना, यह इसका अर्थ है। ज्ञान, दर्शन और आनन्द से भरपूर भगवान की एकाग्रता होने पर उस शुद्ध चैतन्य की परिणति प्रकाशरूप से होना, इसका नाम चारित्र है। उसमें पुण्य और पाप विकल्प, महाव्रतादि विकल्प उसमें आ नहीं सकते। क्योंकि उसमें नहीं तो उसमें—पर्याय में कहाँ से आवे? समझ में आया? अरे! श्रद्धा की खबर नहीं होती, चारित्र कैसा, किसे कहना, नौ तत्त्व में संवर, निर्जरा की श्रद्धा किसे कहना और संवर, निर्जरा अर्थात् चारित्र अर्थात् मोक्ष का मार्ग और

साधुपद की दशा की श्रद्धा की खबर नहीं होती, उसे वह यह चारित्र आवे कहाँ से? और धर्म हो कहाँ से? समझ में आया?

कहते हैं, गजब अर्थ किये! ओहोहो! आत्मा को खोलकर खिला दिया है, खोलकर खिला डाला है। कली खिल गयी, कहते हैं। आहाहा! स्वरूप में चरना, वह चारित्र अर्थात् कि स्वसमय में प्रवृत्ति, वह इसका अर्थ है। या प्रवृत्ति है कुछ? करने का है उसमें? हाँ। प्रवृत्ति है कुछ उसमें? हाँ। चारित्र में तो प्रवृत्ति होती है। हाँ। अर्थात् क्या? कि स्वसमय में प्रवृत्ति। भगवान! स्वसमय आत्मा अनन्त आनन्द का कन्द है, उसकी प्रवृत्ति। आहाहा! धन्य भाग्य हो, तब यह चारित्र की व्याख्या समझने और सुनने मिलती है! समझ में आया? आहाहा! प्रगटे उसकी तो क्या बात करना! परमेश्वर हुआ वह तो!! परन्तु यह क्या है, यह जहाँ श्रद्धा और ज्ञान में आवे और श्रवण में आवे, वह भी अलौकिक बात है! समझ में आया? अर्थात्?

यही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है। उस चारित्र को धर्म कहा। स्वसमय प्रवृत्ति उसका अर्थ किया—स्वरूप में रमना, वह चारित्र की व्याख्या। प्रवृत्ति कुछ करना है न! लोग कहते हैं, कुछ प्रवृत्ति हो न, चारित्र कुछ प्रवृत्ति हो न? हाँ। कुछ प्रवृत्ति हो न? प्रवृत्ति हो न? चारित्र (अर्थात्) कुछ करना हो न? करना हो न? कुछ करना हो न? हाँ। क्या करना? कि स्वसमय भगवान शुद्ध चिदानन्दमूर्ति की प्रवृत्ति करना, वह करने का है। वह प्रवृत्ति और वह धर्म और वह चारित्र है। लोग ऐसा कहे, चारित्र अर्थात् कुछ करना। कुछ दया पालना, कुछ व्रत पालना, कुछ अपवास करना, ऐसा कुछ करना हो तो चारित्र कहलाये या नहीं? हाँ। यह तू कहे वह नहीं। शान्तिभाई! आहाहा!

अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य सन्त वे सब तो केवलज्ञान के मार्गानुसारी हैं। आहाहा! ऐसा स्वरूप, वह भी स्वरूप। कहते हैं कि उस शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना, वह प्रवृत्ति जिसे हमने धर्म कहा, चारित्र कहा था, जिसे हमने धर्म कहा था, वही शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना—परिणमना, उसे हम धर्म और चारित्र कहते हैं। दो बोल हुए। **'चारित्त खलु धम्मो धम्मो जो सो समो'** अब **'समो'** का आता है, तीसरा बोल। **वही यथास्थित आत्मगुण होने से...** गुण शब्द से यहाँ पर्याय। वही। स्वसमय स्वरूप में रमना, वह चारित्र, स्वसमय की प्रवृत्ति उसका अर्थ, वही वस्तु की पर्याय

स्वभाव का धर्म, इसलिए धर्म, वह चैतन्य का प्रकाशित होना उसका यह अर्थ है। **वही यथास्थित आत्मगुण होने से...** यथास्थित। विकृत पुण्य-पाप है, वह यथास्थित नहीं। समझ में आया? **वही यथास्थित आत्मगुण होने से...** अर्थात् कि विषमतारहित, ऐसा। सुस्थित आत्मा की पर्याय होने से वह '**साम्य है।**' यहाँ गुण कहा। गुण शब्द से यहाँ (आशय है) पर्याय। साम्य है। समझ में आया?

स्वरूप में रमना, वह चारित्र है। स्वसमय में प्रवृत्ति, उसका अर्थ है। वही वस्तु का स्वभाव, इसलिए धर्म है। शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना, उसका अर्थ है। **वही यथास्थित...** यथास्थित वस्तु है, ऐसी यथास्थित विषमतारहित, विकल्परहित यथास्थित पर्याय होने से उसे समता और उसे साम्य कहा जाता है। जिसे चारित्र कहा था, जिसे धर्म कहा था, उसे साम्य कहा जाता है। निश्चयचारित्र की पर्याय के अनेक नाम हैं। आहाहा! समझ में आया? **वही यथास्थित आत्मगुण होने से...** उसे साम्य कहते हैं, उसे समता कहते हैं, उसे वीतरागता कहते हैं, उसे निर्विकल्प स्थिरता कहते हैं, उसका नाम चारित्र और उसका नाम धर्म। दूसरी भाषा से कहें, जैनधर्म। यह धर्म शब्द आया न? जैनधर्म अर्थात् क्या? कि वस्तु जैसी है—वीतराग विज्ञानघन वस्तु है, ऐसी वीतराग विज्ञानघन की पर्याय निर्मलरूप से प्रगट हो, वह जैनधर्म, वह वस्तु का धर्म, वह वस्तु का स्वभाव। जैनधर्म कोई पक्ष नहीं, कोई सम्प्रदाय नहीं। समझ में आया? जैसा उसका वीतराग विज्ञानघन स्वरूप है। वीतराग का अर्थ कषायरहित और ज्ञान, अर्थात् चारित्र और ज्ञान, ऐसा जो स्वरूप है उसका त्रिकाली, ऐसे स्वरूप की पर्याय में अन्तर एकाग्रता होकर जो प्रगट दशा होती है, वह धर्म है। वह शुद्ध चैतन्य का प्रकाशन होना, वह जैनधर्म है। कहो, समझ में आया? शोभालालजी! कहो, जयन्तीभाई! ऐसा सुना था कहीं वहाँ? कितने भव निकाले? आहाहा!

वाह रे परमात्मा! इन्होंने परमात्मा को खोलकर रखा है न ऐसे! भाई! तेरी दशा तो यह हो, तब चारित्र कहलाये। समझ में आया? अब उस साम्य की व्याख्या करते हैं। चारित्र को धर्म, उसे साम्य (कहते हैं)। अब, अर्थात् क्या? समझ में आया? दर्शनमोह की... देखो! यहाँ तो सीधे यह लिया है। सम्यग्दर्शन अर्थात् दर्शनमोहनीय का नाश—अभाव। दर्शनमोहनीय का नाश अर्थात् उसका अभाव, उसका नाम सम्यग्दर्शन। तो यहाँ

व्यवहार–फ्यवहार दर्शन है, यह बात है नहीं। यहाँ तो सीधी सम्यग्दर्शन अर्थात् दर्शनमोह का... है न? मोहनीय के उदय से उत्पन्न होता मोह। पहले ऐसा लो। दर्शनमोह के उदय से उत्पन्न होता मोह। चारित्रमोह को एक ओर रखो। उसके **अभाव के कारण अत्यन्त निर्विकार ऐसा जीव का (सम्यग्दर्शन) परिणाम...** बस इतना। वह चारित्र परिणाम बाद में। है फिर चारित्र के परिणाम की व्याख्या। समझ में आया? स्वरूप में रमना, वह चारित्र, चारित्र वह धर्म, धर्म वह साम्य और साम्य अर्थात् क्या? समता अर्थात् क्या? देखो! यह सामायिक समता। यह समता अर्थात् क्या? साम्य अर्थात् क्या? धर्म अर्थात् क्या? चारित्र अर्थात् क्या?

दर्शनमोह का अभाव होकर आत्मा में निर्विकारी सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट होना, उसे साम्य का एक पहला भाग कहते हैं। समझ में आया? समझ में आया इसमें? कितनी स्पष्ट व्याख्या है! तथापि लोग अरे... भगवान! भाई! तेरे हाँ करने के अवसर में ना करे, बापू! तू कहाँ जायेगा? भाई! आहाहा! आहा! अरे! भाई! निराधार... निराधार, आँखें बन्द हुईं और कोई शरण नहीं, भाई! इस चीज़ की शरण है, ऐसी यदि दृष्टि नहीं हुई, भाई! कोई शरण नहीं। कोई गौशाला (नहीं), आँखें बन्द हुई कि... आहाहा! अनन्त चींटी, कौआ, निगोद के भव। आहाहा! समझ में आया? उसमें दुनिया की लज्जा भी कहाँ रखनी है और दुनिया की शर्म भी कहाँ? दुनिया ऐसा मानती है, अधिक मानते हैं, दुनिया ऐसा कहेगी। चाहे जो कहो, भाई! वस्तु तो यह है। समझ में आया? तुम तो चारित्र ऐसा मानते हो, ऐसा चारित्र अभी नहीं, इसलिए अणुव्रत, महाव्रत चारित्र को तुम मानते नहीं। भगवान! अणुव्रत, महाव्रत चारित्र नहीं होता। और सम्यग्दर्शन, ज्ञान बिना ऐसा चारित्र नहीं होता और चारित्र हो, वहाँ ऐसे पंच महाव्रत के विकल्प उठे, परन्तु वह चारित्र नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

साम्य अर्थात् क्या? कि दर्शनमोहनीय के... यह विवाद उठा है। कल ही आया था। लो, यह लोग तो मोहक्षोभरहित परिणाम को चारित्र कहते हैं। भगवान! तुझे दूसरा क्या करना है तब? यह क्या कहते हैं? देखो! '**मोहक्खोहविहीणो परिणामो।**' और अणुव्रत तथा महाव्रत पाले, उसे तो चारित्र कहते नहीं। ऐसी आलोचना की है। भगवान! भाई! जो वस्तु में नहीं, उसे तुझे कहना है, वह किस प्रकार पोसाये? समझ में आया?

विकल्प उठता है पंच महाव्रत का, अट्ठाईस मूलगुण का, भाई! वह तो बन्ध का कारण है, वह कहीं मोक्ष का कारण चारित्र नहीं है। यह तो पहले कह गये हैं पाँच गाथाओं में कि, कषाय का कण बीच में आता है। पंच महाव्रत वह कषाय का कण है। भाई! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की भूमिका में भी वह राग कषाय का कण है। यहाँ तो अभी दर्शनशुद्धि क्या, समकित क्या, उसकी खबर नहीं होती और अकेले व्रतों के विकल्प को चारित्र मान लेना। बहुत बापू! आत्मा का परमात्मा का बहुत अनादर होता है। समझ में आया? यह कहीं किसी का पंथ और पक्ष नहीं है। सोनगढ़वाले ऐसा चारित्र कहते हैं। भाई, सोनगढ़वाले कहते हैं या भगवान कहते हैं? अरे! भाई! तुझे क्या खबर है? बापू! आहाहा! यह वस्तुस्थिति ही ऐसी है, वहाँ कहना कि सोनगढ़वाले कहते हैं या भगवान कहते हैं या मुनि कहते हैं—सब एक ही है।

कहते हैं, भाई! तेरे तिरने का उपाय चारित्र जिसे साम्य कहते हैं, उसमें पहला दर्शनमोह का नाश होकर सम्यग्दर्शन होना चाहिए। समझ में आया? वह यह सम्यग्दर्शन, वही सम्यग्दर्शन है। १४४ में आता है न? उसे सम्यग्दर्शन व्यपदेश कहने में (आता है)—उसे नाम दिया जाता है। व्यवहार-फ्यवहार सम्यग्दर्शन, वह सम्यग्दर्शन है ही नहीं। आहाहा! व्यपदेश नाम भी इस सम्यग्दर्शन को (दिया जाता है)। भगवान शुद्ध चैतन्यप्रभु के अन्तर में राग के अवलम्बन बिना की द्रव्य के अवलम्बन से प्रगट हुई सम्यग्ज्ञान की, दर्शन की पर्याय, वही सम्यग्दर्शन नाम उसे दिया जाता है, दूसरे को सम्यग्दर्शन नाम प्राप्त नहीं होता। समझ में आया?

दर्शनमोहनीय के उदय से उत्पन्न होनेवाला जो मोह, उसका अभाव। अब चारित्र के परिणाम की व्याख्या है न यहाँ तो। चारित्रमोहनीय के उदय से उत्पन्न होनेवाला जो क्षोभ। वह क्षोभ है वहाँ। समझ में आया? समुद्र ऐसे स्थिर हो और डोले और जहाँ ऐसे डोले, उसी प्रकार भगवान आत्मा में सम्यग्दर्शन और ज्ञान होने पर भी विकल्प से क्षोभ होता है अन्दर क्षोभ (तो)। भगवान हिलता है, कँपता है। शुभ-अशुभभाव से आत्मा कंपता है, हिलता है, क्षोभ है, क्षोभ है। आहाहा! यह पाँच महाव्रत के परिणाम क्षोभ है। आहाहा! समझ में आया? यह **दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के उदय से उत्पन्न होनेवाले समस्त मोह और क्षोभ के अभाव के कारण...** और यहाँ ऐसा भी कहे कोई,

परन्तु यह तो समस्त मोह और क्षोभ का अभाव है। वह तो बारहवें में होत है। अरे... भगवान! यहाँ तो सातवें की बात है, भाई! समझ में आया? भाषा 'समस्त' ही है। यहाँ तो उसे चारित्र कहा, उसे धर्म कहा। यह धर्म, वीतराग का यह धर्म। यह जैन परमेश्वर ने कहा हुआ यह धर्म। केवलीपण्णत्तो धम्मो, बोलते हैं या नहीं? शाम-सवेरे पहाड़े तो बहुत बोलते हैं। यह केवलीपण्णत्तो धम्मो, वह वस्तु का शुद्ध वीतरागी स्वभाव है, उसकी पर्याय में श्रद्धा और ज्ञानसहित की स्थिरता प्रगट करना, उसका नाम जैनधर्म और वस्तु का धर्म है। वस्तु का धर्म कहो या जैनधर्म कहो। समझ में आया?

कहते हैं कि समस्त मोह, क्षोभ का अभाव। यहाँ जोर देते हैं कितने ही। देखो! क्षोभ का सबका अभाव होता है। छठवें-सातवें में कहाँ है ऐसा? यह सातवें की व्याख्या नहीं। यह तो ऊँचे गुणस्थान की बात है। भाई! सातवें में शुद्ध उपयोग होता है। उस शुद्ध उपयोग को ही यहाँ 'साम्य' शब्द से कहा गया है। शुद्ध उपयोग। छठवें गुणस्थान में सम्यग्दर्शनसहित कितनी ही स्थिरता—शान्ति है, परन्तु वह विकल्प अभी बीच में पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण के हैं, उन्हें दूर से उल्लंघकर, दूर उल्लंघकर मैं साम्य अंगीकार करता हूँ, ऐसा पाँच गाथा में आया था। आहाहा! भले तब उस काल में इन्हें विकल्प है लिखने के काल में तो भी मेरा लक्ष्य तो वहाँ उपयोग को प्राप्त... प्राप्त किया है मैंने इस प्रकार से, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वरना तो छठवें गुणस्थान की भूमिका पहले नहीं आती कहीं। परन्तु पाठ तो ऐसा लिया है। पहले तो सातवें की आती है। तथापि बीच में आ पड़ा, उसे उल्लंघकर अर्थात् वह था सही, परन्तु वापस यहाँ आ गया न, आ गया, विकल्प है अर्थात् कि उसे उल्लंघकर मुझे तो यहाँ जाना है। शुद्ध उपयोग की रमणता, वह चारित्र, वह मेरा चारित्र है। आहाहा! समझ में आया? यह सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ यह मार्ग है, भाई! परमेश्वर ने कहा हुआ यह चारित्र है। आहाहा!

साम्य का अर्थ किया। उस प्रत्येक का अर्थ किया न जैसे, वैसे इसका अर्थ किया। **दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के उदय से उत्पन्न होनेवाले...** मिथ्यात्व और क्षोभ का अभाव। **मोह और क्षोभ के अभाव के कारण अत्यन्त निर्विकार...** आहाहा! अत्यन्त निर्विकार। जिसे चरित्र कहा था, स्वरूप में रमना, वह चारित्र, उसे और उसे

कहा था। समझ में आया? स्वसमय की प्रवृत्ति, स्वसमय आत्मा शुद्ध चिदानन्द की प्रवृत्ति, वही वस्तु का स्वभाव, वह धर्म, उस शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना, उसका—धर्म का अर्थ, वही साम्य है। वह साम्य दर्शनमोह और चारित्रमोह के अभाव से, विषमता के अभाव से अन्तर से प्रगट हुआ चारित्र धर्म, जिसे शान्ति कहा है, वह शान्ति, वह जीव के परिणाम हैं। देखो! यह जीव के ये परिणाम हैं, भाई! वे रागादि, पुण्यादि जीव के परिणाम नहीं, ऐसा कहा यहाँ तो। आहाहा!

जीव स्वयं शुद्ध चैतन्यद्रव्य है उसके... परिणामी शुद्ध चैतन्य है तो उसके परिणाम शुद्ध, वे जीव के परिणाम हैं। आहाहा! गजब शैली! प्रवचनसार, समयसार कुन्दकुन्दाचार्य तो निहाल कर डाले ऐसी बातें (की) है सब। ओहोहो! ऐसे सूत्रार्थ करके—बाँधकर, भाव का निमित्तपना था, वस्तु तो उसके कारण से हुई। आत्मा को हथेली में बता दिया है ऐसा। समझ में आया? देखना तो इसे पड़े या नहीं?

मुमुक्षु : दिखाना तो आपको पड़े न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई दिखावे तो देखे यह? ऐ... भीखाभाई! आहाहा! इसका अर्थ ही यह है कि सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित शुद्ध उपयोग की रमणता को यहाँ समस्त मोह और क्षोभ के रहित ही जीव के परिणाम कहे हैं। यह शुद्ध उपयोग ही जीव के परिणाम हैं। शुभ और अशुभ, वह जीव के परिणाम नहीं। आहाहा! कहो, नवरंगभाई! कहो, इसमें क्या है? अब नया रंग क्या है? आहाहा! अभी आये नहीं वापस, नहीं? देरी हुई। यह अवसर आने का हो, तब आवे न! उसका काल हो तो आवे न! कहो, समझ में आया? यहाँ कोई विवाद नहीं, यह तो जरा वह था तो... था। आहाहा!

अत्यन्त निर्विकार ऐसा... ऐसी भाषा है। चारित्र के परिणाम को धर्म कहा, रमणता कही, स्वसमय की प्रवृत्ति कही, स्वसमय की, उसे साम्य कहा, उसे शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना कहा, वह अत्यन्त निर्विकारी परिणाम है, जिसमें विकार का अंश है नहीं। अकेला निर्विकारी नहीं लिया, अत्यन्त निर्विकार। आहाहा! स्वभाव की धार पर चढ़ा अन्दर, उसे जो घिसावट लगकर परिणति एकाकार होकर प्रगट हुई, कहते हैं कि अत्यन्त निर्विकार परिणाम; परिणाम, उसे हम चारित्र कहते हैं, उसे हम स्वसमय आत्मा की प्रवृत्ति कहते हैं, उसे वस्तु के स्वभाव का धर्म कहते हैं, उसे शुद्ध चैतन्य का

प्रकाशित होना कहते हैं, उसे ही हम समता कहता हैं, उसे ही हम मोह और क्षोभरहित के परिणाम जीव के कहे जाते हैं। समझ में आया? लो, यह चारित्र। यह चारित्र मोक्ष का कारण। उसे यह चारित्र, दर्शन-ज्ञानप्रधान होता है। जिसमें मुख्य सम्यग्दर्शन और ज्ञान हो तो यह चारित्र होता है, वरना चारित्र होता नहीं। यह छठवीं गाथा में आ गया। दर्शन-ज्ञानप्रधान चारित्र।

मुमुक्षु : ऐसा चारित्र न हो, तब दूसरे प्रकार का चारित्र नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे प्रकार का अर्थात् क्या? अज्ञान हो। आहाहा! दया के, दान के, भक्ति के परिणाम, सत्य आदि के हों तो वह परिणाम कहीं जीव के परिणाम नहीं, वह चारित्र नहीं, वह धर्म नहीं, वह क्षोभरहित और मिथ्यात्वरहित वह परिणाम नहीं। उस परिणाम में तो मिथ्यात्वभाव पड़ा है। 'वे परिणाम मैं करता हूँ, वे परिणाम मेरे हैं' ऐसे मिथ्यात्वभाववाले सविकारी मिथ्यात्वसहित के परिणाम हैं। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! गाथा तो सातवीं। तुम्हारे तो बराबर आता है, वह सवेरे आया और यह आया वापस। दोनों समय। यहाँ तक तो आया था, साम्य तक। फिर से लिया है।

मोह और क्षोभ के अभाव के कारण... पहली तो व्याख्या, यह मोह का अभाव वहाँ सम्यग्दर्शन की व्याख्या ही यह है। सम्यग्दर्शन—मोह का अभाव अर्थात्? मिथ्यात्व का अभाव अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन, वही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के प्रकार करते हैं न? नहीं, नहीं यह नहीं। यह ते मिथ्यात्व का अभाव हो, वहाँ व्यवहार समकित है। उसकी बात नहीं, वहाँ तो दूसरी बात की है १०७ में और उसका योगफल १६० में। पंचास्तिकाय में है न, १६० में। पूर्व में कहा था व्यवहार, वह व्यवहार यह है। **'धम्मादीसद्दहणं'**। यह तो निश्चय दृष्टि और अनुभव भूमिका में—निश्चय दर्शन, ज्ञान, चारित्र में व्यवहार कैसा होता है विकल्प, उसकी जाति वहाँ वर्णन की है। समझ में आया? वहाँ आगे बचाव करके (ऐसा कहे), देखो! यहाँ मिथ्यात्व के नाश को व्यवहारसमकित कहा है। ऐसा लेते हैं। १६० में। पत्रिका में लेख आया था, बहुत आया था। आहाहा! अरे! बापू! तुझे पढ़ना आता नहीं, भाई!

यहाँ तो कहते हैं, दर्शनमोह का अभाव, वह सम्यग्दर्शन है। वह एक ही प्रकार का सम्यग्दर्शन है, दो प्रकार का है नहीं। और उसके साथ राग का क्षोभ का—चपलपने

का (अभाव होता है), सम्यग्दर्शनसहित में चपलपना—क्षोभ जो विकल्प उठता है पुण्य-पाप का क्षोभ—आकुलता, उससे रहित जीव के परिणाम, उसे यहाँ चारित्र कहा जाता है। समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो वह शुद्ध उपयोग है और वहाँ शान्ति है। शान्त... शान्त... शान्तरस का.... शान्तरस का वहाँ वेदन है। बिल्कुल—अत्यन्त निर्विकार है, इसलिए शान्तरस का वेदन है। समझ में आया?

अत्यन्त निर्विकार ऐसा जीव का परिणाम है। देखा! यहाँ जीव के परिणाम भाषा नहीं प्रयोग की। ....जीव का परिणाम कहलाता है। जीव का परिणाम। जीव के परिणाम, ऐसा नहीं। यह तो फिर अपने को बोलना न आवे इसलिए जीव के परिणाम कह देते हैं। ऐई! यह एक परिणाम है, वह जीव का परिणाम है। चारित्र, वह जीव के परिणाम हैं, ऐसा अपने भाषा में कहते हैं। चारित्र, वह जीव के परिणाम हैं। यहाँ कहा, चारित्र वह जीव का परिणाम है। परिणाम कैसा? ऐसा। कहो, समझ में आया इसमें? ऐई... वजुभाई! तुम्हारे भाई तो संस्कृत के (जानकार हैं)। तुम जानते हो या नहीं? नहीं? ठीक। देखो! पाठ है या नहीं अन्दर? '**निर्विकारो जीवस्य परिणामः**' आहाहा! वह पारिणामिकभाव परिणमकर खड़ा हुआ पर्याय में, उसे चारित्र कहते हैं। समझ में आया? भगवान परमपारिणामिक ध्रुव परमभाव, वह स्वयं परिणमा। राग-फाग, निमित्त के आधीन कुछ नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा त्रिकाली परम स्वभाव का पिण्ड प्रभु ध्रुवरूप, वह पर्यायरूप से—निर्मल परिणामरूप से परिणमा, वह जीव का परिणाम, उसे चारित्र कहा जाता है। उस परिणाम को धर्म कहो, उसे चारित्र कहो, उसे साम्य कहो, उसे शुद्ध उपयोग कहो या परम शान्ति का वेदन कहो।

धन्य अवतार चारित्र का है न! हैं? ओहो! धन्य चारित्र यह दशा! और उस चरित्र बिना मुक्ति तीन काल में नहीं है। अकेले सम्यग्दर्शन, ज्ञान से कहीं मुक्ति होती नहीं। उस चारित्र का कारण दर्शन, ज्ञान है उसमें, तथापि अकेले दर्शन, ज्ञान, वह तो मूल है, चारित्र का मूल है धर्म। धम्मो समझ में आया? दंसण मूलो धम्मो। धर्म का मूल दर्शन है, धर्म यह चारित्र, यह परिणाम। दंसण मूलो धम्मो। धर्म का मूल दर्शन है और दर्शन चारित्र खलु धम्मो। चारित्र के परिणाम वह धर्म। आहाहा! समझ में आया?

यह तो अन्तर दरबार की आत्मा की बातें हैं। जिसे न्याल होकर कल्याण करना

हो, उसकी बातें हैं। हैरान होकर मर जाये, कहीं सुख नहीं। समझ में आया? यह सब पैसेवाले, शरीर निरोगी और रूपवान लगे, यह सब माँस के, हड्डियों के पिण्ड में लक्ष्य जाये वहाँ आकुलता होती है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ कहते हैं, भगवान के लक्ष्य में जाये तो निराकुलता हो ऐसी है। आहाहा! समझ में आया? चाहे जैसी सामग्री इन्द्राणी हो, रूपवान पिण्ड जैसा शरीर (हो)। भगवान! परन्तु वह तो जड़ है न, प्रभु! उस जड़ के ऊपर तेरा लक्ष्य जाये, वहाँ तुझे आकुलता होती है, नाथ! तुझे खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा शीतलरस का शान्तरस से भरपूर प्रभु उछलता है जब पर्याय में, (तब) चैतन्य का प्रकाशित होना हुआ। उछला, ऊफान आया पर्याय में, उस दशा को यहाँ शान्त और समता और चारित्र कहते हैं। वह साक्षात् मोक्ष का कारण है। समझ में आया? यह कुन्दकुन्दाचार्य कहेंगे, मैं साम्य को अंगीकार करता हूँ। आहाहा! पंचम काल के मुनि यह कहते हैं, मैं साम्य को अंगीकार करता हूँ, भाई! विकल्प बीच में आता है, उसे मैं अंगीकार करता नहीं, उसे दूर उल्लंघ जाता हूँ। आहाहा! यह तो जाहिर—प्रसिद्धि अपनी अपने में करते हैं।

भावार्थ :- शुद्ध आत्मा के श्रद्धारूप सम्यक्त्व से विरुद्ध भाव (मिथ्यात्व) वह मोह है,... देखा! शुद्ध आत्मा की श्रद्धा... चैतन्य भगवान पूर्ण पवित्र आनन्द, ऐसी जो अन्तर उसका भान होकर श्रद्धा, उसका ज्ञान होकर श्रद्धा, उसकी पहिचान होकर श्रद्धा, उससे विरुद्ध वह मिथ्यात्व, वह मोह है। लो। **और निर्विकार निश्चल चैतन्यपरिणतिरूप चारित्र से विरुद्ध भाव...** निर्विकार निश्चल और चैतन्य परिणति निर्विकारी ऐसा जो चारित्र, **उससे विरुद्ध भाव, वह क्षोभ...** है। है न अन्दर डाला है। जयसेनाचार्य ने डाला है। देखो! **'निर्विकारनिश्चलचित्तवृत्तिरूपचारित्रस्य।'** उसमें से डाला है, उसमें से अर्थ डाला है, उसमें डाला है। शुद्धात्मश्रद्धानरूप समकित की व्याख्या में यह डाला है। निर्विकार निश्चल चित्तवृत्तिरूप चारित्र। उसकी व्याख्या है जयसेनाचार्य में।

भगवान आत्मा आनन्द का नाथ पूर्णानन्द का प्रभु ऐसे आनन्द की क्रीड़ा अन्तर में करते हुए उस क्रीड़ा में चारित्र के आनन्द की दशा निर्विकारी प्रगट हो, वह निश्चल

चैतन्य परिणति, उसका नाम चारित्र। उससे विरुद्ध, वह क्षोभ। आहाहा! यह जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, कहते हैं कि वह भाव क्षोभ है। आहाहा! वह प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। भाई! यह विकल्प है, वह क्षोभ है। उसके फल में शान्ति नहीं होगी। समझ में आया? यहाँ तो तीर्थंकरगोत्र बाँधे तो और भगवान होगा। यहाँ कहे कि भाई! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधा, वह भाव क्षोभ है न, भाई! उस क्षोभ में शान्ति आयेगी क्षोभ के कारण से? प्रकृति बँधी, उसके कारण से शान्ति आयेगी? उस क्षोभ का अभाव करे तब शान्ति आयेगी। समझ में आया?

मोह और क्षोभरहित परिणाम... यह व्याख्या अभी आयी थी। लालबहादुर ने बहुत लिखा था उसमें—जैनदर्शन (पत्रिका) में। अरे! यह लोग मोह और क्षोभरहित परिणाम को चारित्र कहते हैं। अणुव्रत, महाव्रत को चारित्र कहते नहीं। भगवान! अणुव्रत, महाव्रत बापू! सम्यग्दर्शन बिना होते नहीं, भाई! आत्मा उसमें ठगा जाता है। समझ में आया? बाबूभाई! क्या यह? बाहर के दया, दान, व्रत के विकल्प यह मानो हमारा चारित्र। भाई! आत्मा ठगा जाता है, बापू! बहुत लिखा है, बहुत लिखा है यहाँ का... यहाँ का मूल। सोनगढ़ की निर्भर्त्सना (तिरस्कार) करने को। भाई! ऐसा नहीं होता प्रभु! निर्भर्त्सना इसकी है नहीं। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है, उसमें तू क्या करेगा? अणुव्रत, महाव्रत सम्यग्दर्शन बिना होते नहीं और उस बिना के विकल्प हैं, वे तो मात्र अनर्थ के करण हैं। क्षोभ है, क्षोभ है, आकुलता है। आहाहा! वह आकुलता परम्परा से मोक्ष का कारण होती होगी? समझ में आया? तब कहते हैं न, भाई! समकिती का शुभभाव परम्परा मोक्ष का कारण है। वह तो शुभ है, आकुलता है। अभी अशुभ टला है, शुद्धता प्रगट हुई है, वह शुद्धता प्रगट करके शुभ को टालेगा, ऐसी सामर्थ्य को गिनकर परम्परा कहा। परन्तु वह शुभभाव है, वह कारण है नहीं। अहो! जीव ने स्वयं अपने को ठगा है न! दूसरा तो कौन ठगे उसे? जो स्वरूप में चारित्र और दर्शन नहीं, उसे मानकर यह चारित्र माना, वह तो जीव को स्वयं ठगा है, ठग है।

वह क्षोभरहित परिणाम को साम्य कहो, उसे धर्म कहो, उसे चारित्र (कहो), **यह सब एकार्थवाचक हैं।** सबका एक ही अर्थ है। कहो, समझ में आया इसमें? आठ मिनिट की देरी है न अभी? लो, बहुत सरस गाथा! बहुत अलौकिक बात है!

★ ★ ★

गाथ - ८

आठवीं। **अब आत्मा की चारित्रता (अर्थात् आत्मा ही चारित्र है ऐसा) निश्चय करते हैं :—** भगवान आत्मा जिस परिणाम से परिणमा, वह अभेद होकर परिणमा है, इसलिए वह आत्मा है। चारित्र, वह आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? यह शुभराग, वह आत्मा नहीं। पंच महाव्रत के परिणाम, वह विकल्प है, वह आत्मा नहीं। ऐसे जो आत्मा के स्वरूप में रमणता के परिणाम जो चारित्र, जिसे धर्म कहा, जिसे क्षोभरहित परिणाम कहा, स्वसमय की प्रवृत्ति कहा अथवा जिसे शुद्ध चैतन्य का प्रकाश कहा, वह आत्मा के अविकारी परिणाम हैं, वह परिणाम है, वही आत्मा है। परिणाम अभेद हो गये हैं। उस शुद्ध परिणामरूप से आत्मा परिणम गया है। तन्मय होकर हो गया है। वीतरागी चारित्र परिणाम में आत्मा तन्मय—तद्रूप—उसरूप हुआ है, इसलिए आत्मा ही चारित्र है, ऐसा निश्चित करते हैं। चारित्र कोई आत्मा से भिन्न चीज़ नहीं। देह की क्रिया, पंच महाव्रत के परिणाम, वे कोई चारित्र नहीं और वे कोई आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयं ति पण्णत्तं।
तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेयव्वो॥८॥

नीचे (हरिगीत)।

जिन भावोंमय द्रव्य परिणमे, उनसे तन्मय हो तत्काल।
अतः धर्ममय परिणत चेतन, धर्मरूप जानो उस काल॥८॥

क्या कहते हैं? **टीका :- वास्तव में जो द्रव्य जिस समय जिस भावरूप से परिणमन करता है, वह द्रव्य उस समय उष्णतारूप से परिणमित लोहे के गोले की भाँति उस-मय है,...** दृष्टान्त दिया। वास्तव में भगवान आत्मा वस्तु द्रव्य जो है पदार्थ, जिस काल में जिस भाव अर्थात् पर्यायरूप से भाव अर्थात् यहाँ पर्याय है। वस्तु शुद्ध चैतन्यद्रव्य जो है, परमानन्द और ज्ञान-दर्शन का पिण्ड प्रभु आत्मा, वह वर्तमानकाल में—वर्तमान अवस्था में जिस पर्यायरूप से परिणमता है, वह द्रव्य वह वस्तु उस काल में, उस काल में—उस समय में **उष्णतारूप से परिणमित लोहे के गोले की भाँति...**

लोहे का गोला उष्णतारूप से परिणमा है तो वह उष्णतारूप पर्याय तन्मय हो गयी है। लोहे के गोले के साथ एक समय की पर्याय में तन्मय है। इसलिए इसका अर्थ ऐसा नहीं वापस, समझ में आया? कि शुभरूप से परिणमता है तो पूरा द्रव्य शुभ ही हो गया है, ऐसा नहीं। यहाँ तो पर्याय की बात है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। यदि शुभरूप आत्मा परिणमता है तो पूरा द्रव्य ही शुभ है। अशुभपने परिणमा तो पूरा द्रव्य ही अशुभ है। ऐसा यहाँ नहीं कहना है। द्रव्य तो शुद्ध चिदानन्दमूर्ति ज्ञायकमूर्ति त्रिकाल है। परन्तु जब चारित्र के परिणामपने—निर्दोष निर्विकारी चारित्र के परिणामपने परिणमता है, तो लोहखण्ड का गोला जैसे उष्णरूप हुआ तो उष्ण में तन्मय उसकी—लोहे की पर्याय है। इसी प्रकार चारित्ररूप परिणमित आत्मा तन्मय पर्याय में है। इसलिए वह पर्याय तन्मय अभेद है, इसलिए उसे आत्मा कहा जाता है। समझ में आया?

उस-मय है... ऐसा कहा न? चारित्र अर्थात् स्वरूप के सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित के मोह, क्षोभरहित के परिणाम, उस परिणामपने परिणमा है द्रव्य स्वयं। पर्याय में तन्मय हुआ है द्रव्य। वह आत्मा स्वयं वीतरागपर्यायपने परिणमित है, तन्मय है, इसलिए उसे आत्मा का धर्म कहते हैं। उस आत्मा को चारित्र कहा जाता है। देखा? **इसलिए यह आत्मा धर्मरूप परिणमित होने से धर्म ही है।** धर्मरूप से—वीतरागी पर्यायरूप से—शुद्ध आनन्दरूप से होता हुआ वह आत्मा ही है। उस परिणाम को आत्मा कह दिया है यहाँ। धर्म से परिणमित होता हुआ आत्मा धर्म ही है, आत्मा ही धर्म है—ऐसा कहते हैं। आत्माया धम्मे, आत्मा धर्म। कहो, समझ में आया? पहली व्याख्या थी न? '**चारित्तं खलु धम्मो।**' उस धर्म को यहाँ लाये।

जैसे... समझ में आया? उष्णतारूप से परिणमित लोहे की दशा गोले की, वह तन्मय गर्म है। उसी प्रकार **आत्मा धर्मरूप परिणमित...** सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित के वीतरागीपर्याय चारित्र में शुद्ध उपयोगरूप से, धर्मरूप से, साम्यरूप से, समतारूप से, स्वभावरूप से हुआ **होने से धर्म ही है।** धर्म से परिणमित धर्म ही है। आत्मा धर्मरूप से हुआ, वह धर्म ही है। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार आत्मा चारित्ररूप से परिणमा तो वह चारित्रवन्त ही है। आहाहा! परिणाम परिणामी से भिन्न नहीं होते। उसके परिणाम कहीं पुण्य में, विकल्प में, देह की क्रिया में वर्तते नहीं, ऐसा कहते हैं।

चारित्र के परिणाम उसकी पर्याय में वर्तते हैं। समझ में आया? देह की नग्न दशा हुई, इसलिए धर्म है और वे परिणाम जीव हैं, ऐसा नहीं। समझ में आया इसमें? आहाहा!

कहते हैं, **आत्मा धर्मरूप परिणमित होने से धर्म ही है।** धर्म से परिणमा हुआ, वापस स्वयं परिणमा हुआ धर्म है। आहाहा! कर्म का अभाव होकर, फलाना होकर बात ही नहीं यहाँ तो। स्वयं ही शुद्धपने के, मोह, क्षोभरहित के परिणामरूप से परिणमता हुआ धर्म ही है। **इस प्रकार आत्मा की चारित्रता सिद्ध हुई।** इस प्रकार आत्मा का चारित्र निश्चित हुआ। वह आत्मा का चारित्र। समझ में आया? नग्नपना, वस्त्ररहितपना या पंच महाव्रत या अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, वे कहीं आत्मा नहीं और वह आत्मा का चारित्र नहीं, वह आत्मा की जाति नहीं और आत्मा के परिणाम नहीं। समझ में आया? इसका भावार्थ कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ३, सोमवार, दिनांक ०९-०९-१९६८
गाथा - ८, ९, प्रवचन - ७

प्रवचनसार, आठवीं गाथा। **वास्तव में जो द्रव्य जिस समय जिस भावरूप से परिणमन करता है, वह द्रव्य उस समय उष्णतारूप से परिणमित लोहे के गोले की भाँति, उस-मय है;...** क्या कहते हैं? जिस समय में जो द्रव्य जिस पर्यायरूप से परिणमता है, उस पर्यायरूप से परिणमते हुए वह द्रव्य उस-मय होता है। समझ में आया? सामान्य व्याख्या कही, फिर आत्मा की कहेंगे। **उष्णतारूप से परिणमित लोहे के गोले की भाँति,...** लोहे का गोला उष्णतारूप से—गर्मरूप से परिणमता है, वह गर्म हो जाता है पर्याय में तो। तन्मय गर्म ही है। पर्यायरूप से, हों!

इसलिए यह आत्मा धर्मरूप परिणमित होने से धर्म ही है। यह सिद्ध करना है यहाँ तो। '**चारित्तं खलु धम्मो।**' आत्मा अपने शुद्धस्वरूप की दृष्टि और ज्ञानसहित अपना जो शुद्धस्वभाव, ऐसे उपयोग कहा एकरूप, दो रूप कहो तो दर्शन और ज्ञान कहा। ऐसा जो उसका स्वभाव एकरूप कहो तो वह उपयोगस्वरूप है। उसके दो भाग किये कि दर्शन और ज्ञानस्वभाववाला आत्मतत्त्व, उसकी श्रद्धा और उसका ज्ञान, जिसमें प्रधान है, ऐसा चारित्र। मगनभाई! समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तु स्वयं पदार्थ उपयोगस्वरूप है, ऐसा उपयोगस्वरूप। उसके अन्तर्भेद करके कहो तो दर्शन-ज्ञानस्वरूप, दर्शन-ज्ञानस्वरूप, उपयोगस्वरूप, दर्शन-ज्ञानस्वरूप—ऐसा जो आत्मतत्त्व उसकी श्रद्धा। समझ में आया? ऐसा जो आत्मतत्त्व उसकी श्रद्धा—स्वसन्मुख होकर निर्विकल्प प्रतीति होना, वह सम्यग्दर्शन और उसके सन्मुख होकर उसका ज्ञान। दर्शन-ज्ञानस्वभाववाला ऐसा आत्मतत्त्व, उसका ज्ञान वह सम्यग्ज्ञान, वह जिसमें प्रधान है अर्थात् मुख्य है। किसमें? चारित्र में। चारित्र होने में यह पहले दर्शन और ज्ञान मुख्य है। दर्शन और ज्ञान न हो तो चारित्र होता नहीं। और चारित्ररूप से हुआ आत्मा चारित्ररूप ही परिणम जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? चारित्र कोई देह की क्रिया नहीं, चारित्र कोई शुभाशुभ परिणाम नहीं। चारित्र—चरना। शुद्ध दर्शन-ज्ञानस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, उसमें चरना, रमना, स्वरूप में स्थिर होना, ऐसी जो वीतरागी परिणति—पर्याय—

परिणाम—उसरूप परिणमा आत्मा ही धर्मस्वरूप है। समझ में आया? समझ में आता है?

आत्मा धर्मरूप परिणमित होने से... धर्म अर्थात् वीतरागी परिणाम। शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित अरागी परिणति ऐसा जो चैतन्य धर्म—जैनधर्म—आत्मधर्म उसरूप से परिणमा आत्मा, वह आत्मा धर्म ही है। वह आत्मा ही स्वयं धर्म हुआ। समझ में आया? समझ में आया या नहीं? बराबर नहीं आया। बराबर दरकार की ही नहीं अभी तक कुछ। ऐसा कहना पड़े या नहीं? यह तो कहे, हमको सुनानेवाले मिले नहीं। परन्तु दरकार कब की है? तो भी कहाँ दरकार है अभी? यहाँ कहते हैं, आठवीं गाथा है न आठवीं, इसका अर्थ टीका। दूसरी लाईन है न, दूसरी। **इसलिए यह आत्मा...** है? बताओ भाई! तुम साथ में (बैठे हो)। **धर्मरूप परिणमित होने से...** भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन का पिण्ड ऐसा प्रभु, उसकी श्रद्धा-ज्ञानसहित शुद्धपने के परिणाम से शुद्ध उपयोग से परिणमता हुआ, शुद्ध उपयोग के शुद्ध आचरणरूप से परिणमता हुआ, पुण्य-पापरूप से नहीं। शुद्ध उपयोगरूप से परिणमता हुआ। वह शुद्ध उपयोग, वह धर्म, उसरूप से परिणमता हुआ वह आत्मा स्वयं ही धर्म है। समझ में आया?

जैसे लोहे का गोला उष्णरूप परिणमता हुआ वह गोला ही गर्म है, गोला ही गर्मरूप हुआ है। गर्म ही है गोला। वस्तु अन्दर भिन्न है, यह तो पर्यायपने की बात है न! इसी प्रकार भगवान आत्मा शुद्ध द्रव्यरूप से, शुद्ध ज्ञानगुणरूप से है परन्तु ऐसा जो शुद्धपने परिणमा तो वह आत्मा ही स्वयं धर्मरूप परिणमता हुआ आत्मा ही धर्म है। लो, आत्मा का धर्म आत्मा के परिणाम से भिन्न नहीं होता। समझ में आया? आत्मा का धर्म आत्मा के शुद्ध उपयोग के अतिरिक्त बाह्य में नहीं होता।

इस प्रकार आत्मा की चारित्रता सिद्ध हुई। इस प्रकार भगवान आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान की प्रधानता की मुख्यता में यह शुद्ध उपयोग का परिणमन, यह चारित्र सिद्ध हुआ। इसका नाम चारित्र। समझ में आया?

भावार्थ :- चारित्र आत्मा का ही भाव है। चारित्र ही आत्मा की पर्याय है। भाव अर्थात् पर्याय—अवस्था। चारित्र, वह आत्मा की वीतरागी पर्याय है—ऐसा **सातवीं गाथा में कहा गया है। इस गाथा में अभेदनय से यह कहा है कि जैसे उष्णतारूप**

परिणमित लोहे का गोला स्वयं ही उष्णता है—लोहे का गोला और उष्णता पृथक् नहीं है, इसी प्रकार चारित्रभाव से परिणमित आत्मा स्वयं ही चारित्र है। आत्मा चारित्र है। पर्याय उसकी है न! अभेद हुआ। जैसा वीतरागी विज्ञानघनस्वरूप था, ऐसी ही शक्ति में से व्यक्तता की वीतराग परिणतिरूप से परिणमा, वह आत्मा ही परिणमा है। वह चारित्र आत्मा है, वह धर्म आत्मा है, शुद्ध उपयोग वह आत्मा है, शुद्ध परिणति वह आत्मा है। समझ में आया? कहो, धर्म नहीं कहीं मन्दिर में, धर्म नहीं स्वाध्यायमन्दिर में, धर्म नहीं कहीं पर्वत में, धर्म नहीं कहीं दया, दान के परिणाम में—ऐसा कहते हैं। भगवान के नामस्मरण में भी धर्म नहीं। उसमें धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! महावीर... महावीर... महावीर... कहते हैं कि यह विकल्प है, यह धर्म नहीं। व्यवहार धर्म है। अन्दर में कहा है न टीका में, जयसेनाचार्य की टीका में कहा है।

'**निजशुद्धात्मपरिणतिरूपो निश्चयधर्मो भवति।**' धर्म की इन्होंने दो व्याख्या की। उसमें एक ही की है, टीका में दो की है जयसेनाचार्य ने।'**निजशुद्धात्मपरिणतिरूपो निश्चयधर्मो**' और '**पञ्चपरमेष्ठयादि**' देखो! पंच परमेष्ठी आदि '**पञ्चपरमेष्ठयादिभक्ति-परिणामरूपो व्यवहारधर्मस्तावदुच्यते**' संस्कृत में है, यह तुमको नहीं आता। संस्कृत में है जयसेनाचार्यदेव की टीका में देखो! '**धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेयव्वो**' है न, इसलिए फिर उसका अर्थ किया कि आत्मा शुद्ध पुण्य-पाप के भावरहित, ऐसी वीतरागी परिणति से परिणमता आत्मा निश्चयधर्म है, वह सच्चा धर्म है और उस काल में शुभरूप से परिणमे, वह व्यवहारधर्म अर्थात् पुण्य है। पंच परमेष्ठी का स्मरण, पंच परमेष्ठी की भक्ति, पंच परमेष्ठी का बहुमान। शोभालालजी! अर्थात् शुभभाव। यह निश्चयधर्म ऐसा हो, वहाँ ऐसा हो तो उसे व्यवहारधर्म, पुण्य को व्यवहारधर्म कहा जाता है। तो उसको व्यवहारधर्म कहा जाता है, वरना व्यवहार भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आस्रव, बन्ध। बाबूलालजी आये हैं क्या? कब आये? अच्छा। कहो, समझ में आया?

अन्दर डाला है, दो डालते हैं न! '**धम्मपरिणदो आदा धम्मो**' है न? इसलिए धर्म के दो प्रकार लिये कि आत्मा चैतन्य शुद्धस्वरूप, वह अपनी स्वसंवेदन श्रद्धा के

ज्ञानसहित शुद्धरूप से परिणमे, वह निश्चयधर्म और पंच परमेष्ठी अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु की भक्ति, उनका स्मरण, उनके बहुमान का विकल्प, वह व्यवहारधर्म अर्थात् पुण्य है। समझ में आया? वह भी यह निश्चय धर्म हो तो उसको (विकल्प को) व्यवहार कहा जाता है। वरना तो अकेले मिथ्यादृष्टि को तो शुभभाव है, पुण्यबन्ध है और साथ में मिथ्यात्व का बन्ध है, इसलिए उसे तो कुछ व्यवहार से भी धर्म है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु नहीं, वस्तु में नहीं, इसलिए फिर... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान करे। परन्तु वह भगवान स्वयं है, उसमें जहाँ निश्चय का भान नहीं, उसे भगवान... भगवान का विकल्प भी व्यवहार धर्म के नाम को प्राप्त नहीं होता। कहो, चिमनभाई! बराबर? कहो, समझ में आया इसमें? यह आठवीं गाथा हुई।

★ ★ ★

गाथा - ९

अब यहाँ जीव का शुभ, अशुभ और शुद्धत्व (अर्थात् यह जीव ही शुभ, अशुभ और शुद्ध है, ऐसा) निश्चित करते हैं। सातवीं गाथा का आठवीं (गाथा में) सार (कहा कि) चारित्र स्वयं आत्मा है, इतना सिद्ध किया। अब तो चारित्र शुद्ध परिणाम (हो) या शुभपरिणाम हो या अशुभ हो, वह आत्मा उसरूप शुभ और अशुभरूप होता है। समझ में आया? यह बात करते हैं, देखो नौवीं (गाथा)।

जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो।
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणामसब्भावो॥९॥

शुभ या अशुभ भावमय परिणमता आत्मा शुभ-अशुभ बने।
शुद्धरूप परिणमित शुद्ध, परिणाम स्वभावी होने से॥९॥

लो, इसमें भी गड़बड़, अर्थ करने में ऐसी गड़बड़। जगत को अभी ऐसा निकला है न!

टीका :- जब यह आत्मा शुभ या अशुभ राग भाव से परिणमित होता है... देखो! जब आत्मा पंच परमेष्ठी की भक्ति, दया, दान, व्रतादि के परिणामरूप होता है, तब शुभभावरूप परिणमता है, वह पुण्यरूप परिणमता है। वह शुभरूप भी परिणमता है। उसक पर्याय परिणमी है उसमें। वह पर के कारण नहीं और पर में नहीं। शुभपने परिणमित जीव ही स्वयं शुभरूप परिणमता है। वह शुभ परिणाम पर के हैं, ऐसा नहीं, (ऐसा) यहाँ सिद्ध करना है। ज्ञान अधिकार है न! पर से भेद है। दृष्टि में तो शुभ परिणाम जीव के नहीं, यह अलग बात है। इसके पश्चात् परभाव की बात है, वह तो फिर दृष्टि के विषय में।

यहाँ तो कहते हैं, कि शुभभावरूप से परिणमता है जीव। शुभ के तीन प्रकार। एक क्रिया का दया, दान, व्रतादि के परिणाम का शुभभाव; एक भक्ति का; एक नामस्मरण आदि का शुभभाव और एक गुणी-गुण के भेदरूप का शुभभाव। गुणी आत्मा और उसमें अनन्त गुण है, ऐसा वह विकल्प जो भाव, वह शुभभाव, उसरूप से आत्मा होता है। वह कर्म के कारण से नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। उस शुभरूप परिणमता है, वह आत्मा परिणमता है, कर्म के कारण नहीं, कर्म में नहीं, कर्म के कारण नहीं, कर्म के आश्रय से नहीं। अपना परिणमन शुभरूप परिणमा वह आत्मा। समझ में आया?

ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन है न यह। ज्ञान जानता है कि मुझमें शुभरूपी दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण आदि का शुभ उपयोग मेरा परिणमन है, पर्याय है। वह अपनी ही पर्याय का परिणमन हुआ है। उसके साथ जीव पर्याय में शुभ उपयोग में तन्मय है, उस स्वरूप है। परन्तु बात यह है, इस समय कहीं पूरा आत्मा शुभरूप होता है, ऐसा नहीं। कितने ही ऐसा कहते हैं कि शुभरूप परिणमा तो आत्मा शुभ ही है। अब फिर कहीं शुद्ध-बुद्ध कुछ रहता नहीं। अरे! ऐसे अर्थ करे। भाई! वह तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञायक ध्रुव सत्त्व तत्त्व त्रिकाल निर्मलानन्द है। जो वस्तु ध्रुव है, दर्शन-ज्ञान का पिण्ड है, अनन्त गुण का पिण्ड-पुंज है, ऐसी चीज़ ध्रुव है, वह तो त्रिकाल शुद्ध है। उसमें अशुद्धपना कुछ स्पर्शता नहीं। परन्तु उसकी पर्याय में अशुद्धपने का एक भाग ऐसा शुभ, अशुद्धपने का एक भाग ऐसा शुभ (परिणमता है)। अशुद्धपने के दो भाग—शुभ और अशुभ। यह शुभ से परिणमते हुए आत्मा शुभरूप पर्याय में तन्मय हो गया है। शुभपर्याय

ऐसे आगे रह गयी है और उसका आत्मा भिन्न रहा है, ऐसा है नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

दर्शन अधिकार में यह आया था, कर्ताकर्म में कि आत्मा शुद्ध चैतन्यप्रभु दर्शनविशुद्धि जहाँ प्रगट हुई, वहाँ आत्मा में निर्मल पर्याय, वह आत्मा की। वह द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध, पर्याय शुद्ध, वह आत्मा। और जो अशुद्धता है, वह पुद्गल के परिणाम, अपने नहीं। वह तो अपनी पर्याय में शुद्धता और अशुद्धता का भेद करके बात है। आहाहा! समझ में आया? समयसार के कथन, प्रवचनसार के कथन, दोनों का मिलान करे तो खबर पड़े, समझे वह। वहाँ तो ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि व्यवहार से मुक्त है। अर्थात् वस्तु है चैतन्य भगवान परमात्मस्वरूप आनन्दस्वरूप, उस आनन्द की रमणता में चढ़ा प्रभु आत्मा, तब उसे आनन्द की दशा, वही आत्मा है। थोड़ी कुछ दुःख की दशा, राग की दशा रही, वह पर्याय आत्मा की नहीं, वह आत्मा की पर्याय में नहीं। द्रव्य-गुण में तो नहीं, परन्तु उसकी पर्याय में भी नहीं। समझ में आया? अरे..! कठिन बात भाई! जुगराजजी! वहाँ (कहते हैं), उसकी पर्याय में नहीं, यहाँ कहते हैं तू परिणमा है। वहाँ दर्शन की शुद्धि की दर्शन की अपेक्षा से वहाँ बात है। यहाँ ज्ञानप्रधान में पर से भिन्न बतलाना है इतनी (बात) है और वहाँ दर्शन में तो राग से भी भिन्न स्व परिणमन तेरा, यह बतलाना है। समझ में आया? वहाँ ऐसा कहा था, और यहाँ यह कहा। फावाभाई कहते, सवेरे जहाँ धारण करें वहाँ दोपहर में दूसरा आवे। ऐई... मनुसखभाई! फावाभाई कहते थे। दिमाग बराबर नहीं। एक बात निश्चित करें कि शुभभाव आत्मा का नहीं, वहाँ फिर दोपहर में आवे कि शुभभाव आत्मा का है। अब इसमें (मिलान कैसे करना)? यह तो शुभभाव आत्मा में है, ऐसा आया। दान का एक ओर रखो। परन्तु यह दान का जो भाव है, वह जीव के परिणाम हैं। लोहे का गोला जैसे उष्णरूप परिणमा है, वह परिणमन कहीं लोहे से भिन्न नहीं और भिन्न के कारण वह उष्णता का परिणमन नहीं। अग्नि के कारण उष्ण हुआ है, ऐसा नहीं। लोहे का गोला स्वयं ही उष्णतारूप से हुआ है। इसी प्रकार भगवान आत्मा शुभरूप स्वयं ही हुआ है, कर्म के कारण नहीं। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञान तो अंश-अंश को परखकर जितना भिन्न है अपना स्वरूप—द्रव्य, गुण और

पर्याय, जितना, उसे ज्ञान बराबर जाने। द्रव्य से शुद्ध हूँ, गुण से शुद्ध हूँ और पर्याय से शुद्ध परिणमा हूँ इतना भी मैं हूँ और शुभपने परिणमूँ, वह भी मेरी पर्याय का ही परिणमन है और मुझमें है, मैं उसमें गया हूँ पर्याय से। पर्याय से, हों! समझ में आया? वह कर्ताकर्म का अधिकार पढ़े तब (ऐसा आवे कि) कर्म से व्याप्यव्यापक है विकार। कर्म, वह व्यापक—पसरनेवाला है और पुण्य-पाप के भाव, उसका व्याप्य अर्थात् उसकी अवस्था है। जैसे मिट्टी का घड़ा अवस्था है, मिट्टी का घड़ा अवस्था है, इसी प्रकार कर्म की पुण्य-पाप की अवस्था है, आत्मा की नहीं। सेठ! यह सब समझना पड़ेगा यह सब। समयसार में ऐसा आवे। ७५-७६-७७ (गाथा)। ऐ... न्यालभाई!

मुमुक्षु : ज्ञानी के....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ परन्तु, जिसमें जैसा हो, ऐसा हो न। ज्ञानी के गम में से जैसे बैठता हो, वैसे बैठे न!

देखो! वहाँ तो ऐसा कहा कि सम्यग्दृष्टि को विकार के परिणाम ही नहीं। और अन्तिम श्लोक में वहाँ यह कहा समयसार में, धर्मी को भी राग के परिणाम होते हैं, युद्ध के होते हैं, भोग के होते हैं, वासना के होते हैं। समझ में आया? वहाँ अन्तिम ज्ञानप्रधान करके पूरी चीज़ समझायी है वापस। स्याद्वाद अधिकार में।

मुमुक्षु : यह सीधे चारित्र अपेक्षा से।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो ज्ञानप्रधान कथन है उसमें। यहाँ भी ज्ञानप्रधान ज्ञान जानता है न! अपनी पर्याय में मलिनता जानता है। यहाँ भी यह है। यहाँ तो आयेगा, कर्तृत्व राग का, जैसे रंगरेज रंगता है, वैसे आत्मा रंगता है राग के साथ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कर्म के कारण से है? कर्म तो परद्रव्य है। उसे जीव स्पर्श भी नहीं करता। शुभरूप से दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण, श्रवण आदि ऐसे शुभपने परिणमता आत्मा शुभ है। कहो, हीराभाई! वहाँ ७५-७६ में (दूसरा कहते हैं)। एक के एक आचार्य, वहाँ कुछ और यहाँ कुछ? सब समझ तो सही, किस अपेक्षा से है? समझ में आया?

वहाँ दृष्टि का विषय दृष्टि स्वयं निर्विकल्प है, उसका तत्त्व विषय वह निर्विकल्प

है। इसलिए दृष्टि में अभेद की दृष्टि होने पर उसके परिणमन में निर्मल अवस्था अभेद हुई, वह उसकी पर्याय गिनने में आती है। उसका जितना विकल्प शुभ आदि उठे, वह आत्मा का गिनने में नहीं आकर, उसे पुद्गल का गिनने में आता है। मगनभाई! आहाहा! क्यों? कि वह अपने परिणमन से उसके परिणमन की जाति ही अलग है। इसलिए उसे पर से भिन्न बताकर राग की भिन्नता (बताकर कहा कि) तुझमें राग नहीं, तुझमें तो निर्मल द्रव्य, निर्मल गुण, निर्मल पर्याय, वह तेरा अस्तित्व।

यहाँ तो आंशिक ज्ञान जानता है कि द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है, पर्याय कितनी ही शुद्ध है। तथापि अशुद्धपने परिणमन तन्मय मैं हूँ, ऐसा ज्ञान जानता है। तब उस ज्ञेय की परिपूर्णता ज्ञान में आयी कहलाती है। यह तो अभ्यास करे तो समझ में आये ऐसा है। ऊपर से समझ में नहीं आता ऐसा। जैसे बीड़ी में पैसे मिल गये एकदम। समझ में आया? वहाँ कहीं बुद्धि-बुद्धि काम करती नहीं, बुद्धि नहीं थी वहाँ कुछ। शोभालालजी! बुद्धि के कारण मिला है? ऐसा कहलाता है? नहीं, नहीं, बुद्धि क्या काम करे वहाँ? वह तो पूर्व के पुण्य के परमाणु हो... मिले नहीं, आवे उसे माने कि मिला है। यह मिले। अशुभ फिर आयेगा। अभी जो कहा है न, कि आत्मा शुभ और अशुभ रागभाव से परिणमता है। देखो!

अब शुभ कहा और अशुभपने। हिंसा के भाव, झूठ के भाव, विषयवासना के भाव, काम, क्रोध के भाव, वे अशुभ हैं। अशुभरूप से भी आत्मा स्वयं होता है। अशुभ की पर्याय आत्मा स्वयं तन्मय अशुभ होता है। वह उसकी पर्याय जड़ की है और जड़ में है और पुद्गल के वे परिणाम हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? लो, ५०वीं गाथा २९ बोल के कचरे में कहे, पुद्गल... पुद्गल। यह बात तो द्रव्यदृष्टि की मुख्य में अकेला भगवान द्रव्य शुद्ध चैतन्य की शक्ति में से व्यक्तता निर्मल हो, उतनी ही उसकी है। निमित्त के आधीन हुई वस्तु उसकी वस्तु में है नहीं। पर में डाल दिया, पृथक् हो जानेवाली है इसलिए। यहाँ वापस विवेक कराया ज्ञान में। ज्ञान द्रव्य को परिपूर्ण जाने, गुण को परिपूर्ण जाने और पर्याय की शुद्धता, अशुद्धता मेरी है, मेरा परिणमन है, ऐसा ज्ञान जाने। अमरचन्दभाई! समयसार की कथनशैली देखो न! आहाहा!

एक ओर ऐसा कहे कि ध्रुव वह जीव का स्वरूप है। उत्पाद-व्यय जीव का

स्वरूप ही नहीं। क्योंकि उत्पाद-व्यय व्यवहार है। व्यवहार अभूतार्थ है। भूतार्थ, वह अकेला द्रव्यस्वभाव, वही भूतार्थ है। समझ में आया? परमात्मप्रकाश में ४३ गाथा में आता है। वस्तु... वस्तु त्रिकाल ध्रुव एक समय की पर्याय छोड़कर जो दल अकेला चैतन्य सत्त्व वस्तु है, वह ही स्वरूप जीव का है। समझ में आया? द्रव्य आत्मलाभ हेतु। वस्तु के स्वरूप की अस्ति कितनी? कि ध्रुव की। वह पारिणामिकभाव वह स्वरूप। उत्पाद-व्यय नहीं। वह व्यवहार है।

यहाँ कहते हैं कि उत्पाद-व्यय में जितना शुभ परिणाम और अशुभ होता है, वह तुझमें तेरा है। वह ज्ञान पर से भिन्न करके अपने अंश में जितनी मलिनता है, उसे जानता है। समझ में आया? उसका नाम स्याद्वाद। जैसे तैसे घसीटकर बैठाने की बात नहीं है यह, हों! वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

यहाँ कहते हैं कि **आत्मा शुभ के अशुभ रागभाव से...** यहाँ रागभाव से कहा है न? ऐसे वहाँ द्वेष आदि ले लेना। **परिणमित होता है, तब जवा कुसुम या तमाल पुष्प के (लाल या काले) रंगरूप परिणमित स्फटिक की भाँति,...** स्फटिक की स्वच्छता स्फटिक की है, परन्तु काले और लाल फूल का संयोग हो, तब काले, लाल की झांईरूप से परिणमता है। स्फटिक स्वयं परिणमता है काले, लाल रूप से। वह फूल के कारण से नहीं, फूल में नहीं। काले, लाल की झांई स्फटिक की स्वयं की है। समझ में आया? यह स्फटिक का दृष्टान्त २७७-२७८ (गाथा) समयसार में दिया है। लाल आदि का परिणमन वह परद्रव्य का है, स्वद्रव्य का नहीं। वहाँ ऐसा लिया। यह का यह स्फटिक का दृष्टान्त देकर। स्फटिक में जो लाल और कालिमा दिखती है, वह स्फटिक की नहीं, पर की है। वस्तु का स्वरूप सिद्ध करके दृष्टि का विषय बताया। भगवान आत्मा चैतन्यस्फटिक में पुण्य-पाप के परिणाम का परिणमन, वह परद्रव्य का परिणमन है, स्वद्रव्य का नहीं। जेठालालभाई! वहाँ वे लोग ऐसा कहते हैं, देखो, परद्रव्य के कारण विकार परिणमा। अरे... भगवान! कितनी इसकी... वहाँ ऐसा आवे, परदव्वेण... देखो! परद्रव्य से लाल और हरा रंग हुआ। ऐसे परद्रव्य के कारण (होता है)। आत्मा अकेला रागरूप परिणमता नहीं, निमित्त के कारण राग और द्वेषरूप परिणमे। वहाँ वे निकालते हैं कि देखो! परद्रव्य के कारण परिणमन (होता है), तुम इनकार करते हो। अब सुन

न! वह तो स्वद्रव्य की सिद्धि करते हुए स्वद्रव्य स्वयं रागरूप परिणमना, उसका स्वभाव नहीं और निमित्ताधीन जब उसकी अवस्था होती है, तब उसका परिणमन विकारी होता है। इसलिए उसे परद्रव्य के परिणाम से रागादि हुए, ऐसा कहा गया है। अरे! जेठालालभाई! तुलना करनी चाहिए। समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्य शुद्ध द्रव्य परमात्मस्वरूप ऐसा भान होने पर भी, कहते हैं कि जब शुभरूप परिणमता है, तब शुभरूप होता है। स्फटिक रत्न की भाँति। दृष्टान्त दिया है न? लाल और काला। लाल अर्थात् शुभ लेना और काला अर्थात् अशुभ। समझे न? जासुदपुष्प के या तमालपुष्प। जासुद का लाल और तमाल का काला (रंग)। इसी प्रकार जब शुभरूप परिणमे, तो स्फटिक जैसे लालरूप परिणमे, वैसे यह आत्मा शुभरूप परिणमता है। जैसे स्फटिक कालेरूप परिणमे—होता है, ऐसे आत्मा अशुभरूप होता है। पुण्य-पाप का भाव, हिंसा, झूठ का भाव, चोरी, विषय का भाव, क्रोध, मान, माया यह अशुभ परिणाम जीव के परिणाम हैं। जीव उसरूप से तन्मय होकर परिणमता है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

(लाल या काले) रंगरूप परिणमित स्फटिक की भाँति, परिणामस्वभाव होने से... क्या कहा? वह जीव परिणाम बदलने के स्वभाववाला होने के कारण से, ऐसा सिद्ध किया। शुभ-अशुभरूप कैसे परिणमता है? कि परिणमने का—बदलने का उसका स्वभाव है। इसलिए अपने कारण से वह शुभ और अशुभरूप परिणमता है। समझ में आया? **शुभ या अशुभ होता है (उस समय आत्मा स्वयं ही शुभ या अशुभ है);...** दया के परिणाम शुभ हुए और हिंसा के अशुभ हुए, इस समय आत्मा शुभ और अशुभरूप वेश धारण किया है उसने। वह आत्मा का ही वेश है, आत्मा की ही पर्याय है और आत्मा ही उसमें तन्मयरूप से परिणमा है। पर्यायरूप से, हों! वस्तु तो ध्रुव शुद्ध है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि देखो, अशुभरूप से परिणमा तो आत्मा अशुभ ही है। अर्थात्? वह तो पर्याय अशुभ है, द्रव्य-गुण से नहीं। समझ में आया? इसका अर्थ यह करे। अशुभरूप से परिणमने के समय शुद्धपना कहाँ रहता है? शुद्धपना अकेला रहता है द्रव्य में, सुन न! वस्तु वह कहीं अशुभ होती होगी? यह तो पर्याय की बात चलती है, भाई!

आहाहा! जैनतत्त्व वीतरागदर्शन आत्मदर्शन को वास्तविक जानना बहुत कठिन है, सूक्ष्म ज्ञान है, भाई! यह कहीं बातें करने की नहीं। वस्तु को सिद्ध करने की बात है। समझ में आया? परद्रव्य पृथक् है। परद्रव्य को और स्वद्रव्य की पर्याय को सम्बन्ध क्या? वह तो पर है। शुभ-अशुभ परिणाम कर्म के कारण हुए हैं और अनुभूति से भिन्न है, यह जो कहा, वह तो द्रव्य की दृष्टि की अपेक्षा से कहा, परन्तु ज्ञान जो हुआ वह ज्ञान तो जानता है कि यह शुभ-अशुभ परिणमन मुझमें, मेरे कारण से मैं हुआ हूँ, उस वेशरूप मैं हुआ हूँ। समझ में आया? समयसार और प्रवचनसार दो चलते हैं यहाँ तो।

मुमुक्षु : .... निर्णय नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्णय करे ऐसा है, परन्तु इसे ठिकाना नहीं होता तो क्या करे? दिमाग में निर्णय कर सके। वस्तुस्वभाव भगवान आत्मा चैतन्य ध्रुव अकेला उपयोग ही स्वभाव जिसका ज्ञान और दर्शन स्वभाव, स्वभाव जिसका त्रिकाल है, समझ में आया? एक रूप से देखो तो उपयोग है, दो रूप से देखो तो दर्शन और ज्ञान है। तीन रूप से देखो तो ज्ञान, दर्शन और चारित्रस्वरूप त्रिकाल है। चार रूप से देखो तो अनन्त ज्ञान, दर्शन, अनन्त आनन्द और वीर्य ऐसे चतुष्टयरूप से त्रिकाल है। वस्तु त्रिकाल ऐसी है। समझ में आया? यह तो ध्रुव की बात है और दृष्टि का विषय ध्रुव है। सम्यग्दर्शन का विषय ध्रुव है। आहाहा! परन्तु सम्यग्दर्शन स्वयं पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? और सम्यग्दर्शन पर्याय तथा उसका विषय ध्रुव, क्या इसमें समझना? इसमें कहीं कोई निर्धार—निर्णय होता नहीं। हमारे फावाभाई कहते थे कि घड़ीक में ऐसा होता है कि विकार जीव का नहीं। वहाँ फिर आवे कि विकाररूप आत्मा परिणमता है। उसमें उलझे साधारण लोग। समझ में आया? वह तो भाई! न समझ में आये, तब तक संसार में उलझेगा। समझे न? किसे कहना करेला और किसे कहना लौकी। यह लौकी नहीं चलती, क्या इसमें से लेना? कौनसी लौकी इसमें किसे कहते होंगे, लौकी और किसे कहते होंगे करेला? वहाँ भी उलझे। इसी प्रकार वस्तु न समझ में आये तो सर्वत्र उलझन में आये। समझ में आये उसे कहीं उलझन नहीं होती। 'समझ के पीछे सब सरल है।' आहाहा!

कहते हैं, यहाँ तो परद्रव्य से ज्ञानस्वरूप से ज्ञानस्वरूप से भिन्न है। उसके द्रव्य,

गुण और पर्याय उसके, उसके अस्तित्व में है, यह सिद्ध करना है। समझ में आया? प्रवचनसार। भगवान की दिव्यध्वनि का प्र—विशेष दिव्यध्वनि। कितने ही और ऐसा कहते हैं, यह लोग तो, अशुद्ध परिणति जीव की नहीं, कर्म की है—ऐसा मानते हैं। अरे! कौन, सुन न। किस अपेक्षा से कहते हैं? किसी समय जहाँ दृष्टि का विषय आया हो वहाँ अशुद्ध परिणति जीव की नहीं, जीव उस रूप परिणमता नहीं, पुद्गल का परिणमन है, लो यह सोनगढ़वाले ऐसा कहते हैं। अरे! सुन न, किस अपेक्षा से कहा था? दृष्टि की अपेक्षा से समयसार में ऐसा कहा है। समझ में आया?

एक पर्याय के दो भाग—शुद्ध और अशुद्ध। शुद्ध, वह जीव की, शुद्ध वह ज्ञानी की पर्याय। अशुद्ध, वह पुद्गल की पर्याय। चिमनभाई! यह दृष्टि की प्रधानता का विषय कथन में है। परन्तु दृष्टि में से जब ज्ञान सम्यक् हुआ साथ में, वह ज्ञान तो स्व-परप्रकाशक है। द्रव्य और पर्याय दोनों को जानता है। दृष्टि तो अकेली द्रव्य को ही श्रद्धती है। समझ में आया? परन्तु दृष्टि होने पर जो कारण होकर जो ज्ञान कार्य हुआ, वह ज्ञान द्रव्य है शुद्ध, उसे जानता है, पर्याय में अशुद्धता होती है, वह मेरी पर्याय में परिणमन है, ऐसा ज्ञान जानता है। समझ में आया?

और शुभ-अशुभ परिणमन के समय, स्फटिक रत्न के काले और लाल फूल के निमित्त के संग से जैसे काली झांईं और लाल झांईं स्फटिक की ही है, स्फटिक उसरूप हुआ है। इसी प्रकार भगवान आत्मा शुभ और अशुभ परिणाम के समय वह आत्मा उसरूप तन्मय होकर पर्याय से परिणमा है। समझ में आया? **और जब वह शुद्ध अरागभाव से परिणमित होता है...** शुद्ध अर्थात् अरागभाव, ऐसा। उस राग में राग-द्वेष, विषय सब डाल देना, हों! मिथ्यात्व आदि सब। परन्तु ज्ञानी को तो अशुभपने का परिणमन है, उसमें मिथ्यात्व का परिणमन नहीं। समझ में आया? ज्ञान के भान में अशुभ के भाव में वहाँ मिथ्यात्व का नहीं, अशुभ का (परिणमन) है। अज्ञानी को अशुभ के परिणमन में मिथ्यात्व का भी परिणमन है, परन्तु उसे उसकी खबर नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हुई न छनावट। यह तुम्हारा चिरंजीवी ना करता है। कहो,

समझ में आया? कहलाये ऐसा सही, (परन्तु) वस्तुस्थिति दूसरी। कहो, समझ में आया?

जब वह शुद्ध अरागभाव से परिणमित होता है... भगवान आत्मा सच्चिदानन्द शुद्धस्वरूप स्वयं अपनी शुद्ध परिणति से—धर्म की परिणति से—वीतराग पर्यायरूप से होता है, तब स्वयं ही वीतरागरूप हो गया तन्मय। **तब शुद्ध अरागपरिणत (रंगरहित) स्फटिक की भाँति,...** स्फटिक फिर लाल, कालेरूप परिणमता नहीं। वह अपने कारण से नहीं परिणमता। इसी प्रकार आत्मा राग और अशुभ आदि, द्वेषादि उसरूप नहीं परिणमता, शुद्धरूप परिणमता है, तब स्वयं शुद्धरूप परिणमता है। उसकी अपनी पर्याय का शुद्धपना है। द्रव्य-गुण शुद्ध है, ऐसी पर्याय भी शुद्ध है। उसमें द्रव्य-गुण शुद्ध है परन्तु पर्याय में शुभ-अशुभ का परिणमन है। समझ में आया? **शुद्ध होता है।** लो। **परिणत स्फटिक की भाँति, परिणामस्वभाव होने से...** देखो, परिणाम (स्वभावी)। कूटस्थ स्वभाव नित्य अकेला स्वभाव नहीं जीव का। परिणामस्वभावी है, पर्याय का स्वभाव है। समझ में आया? पर्याय का स्वभाव है कि रागरूप या अशुद्धरूप होना, वह पर्याय का स्वभाव है। बदलता है न, बदलता है अर्थात् परिणमता है, परिणमता है अर्थात् होता है।

(उस समय आत्मा स्वयं ही शुद्ध है)। शुद्ध सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की वीतरागी पर्याय से परिणमित आत्मा स्वयं शुद्ध है। पर्याय से, हों! द्रव्य-गुण तो शुद्ध है। समझ में आया? देखो! है न? **(उस समय आत्मा स्वयं ही शुद्ध है)।** स्वयं शुद्ध है अर्थात्? पर्याय से शुद्ध है, ऐसा। आहाहा! समझ में आया? छठवीं गाथा में कहा है, वह दूसरी बात कही। जब आत्मा त्रिकाली ज्ञायक शुद्ध है, वह पर का लक्ष्य छोड़कर अपनी सेवा करता है, ऐसी शुद्ध पर्याय प्रगट करता है, उस शुद्ध पर्याय द्वारा उसे ख्याल में आता है कि यह द्रव्य शुद्ध है। समझ में आया? यह द्रव्य शुद्ध है, ऐसा वहाँ सिद्ध किया है। शुद्धता के परिणाम द्वारा पर से लक्ष्य छोड़कर द्रव्य की सेवा हुई अर्थात् एकाग्र हुआ, तब शुद्धता में—शुद्धता की पर्याय में भान हुआ कि 'यह शुद्ध है।' यह शुद्ध पर्यायपने हुआ, वह स्वयं शुद्ध है, वह पर्याय से शुद्ध है, वह यहाँ लेना है। वह त्रिकाल शुद्ध था। समझ में आया? आहाहा!

तब (समयसार गाथा) छठवीं में ऐसा कहा, शिष्य ने पूछा, प्रभु! शुद्ध किसे

कहना ? शुद्ध किसे कहना ? तब कहे, आत्मा जो त्रिकाली वस्तु है, उसके ऊपर दृष्टि देने से, पर से हटने से, दृष्टि देने से जिस दृष्टि को शुद्धता प्रगट हुई, ऐसे जीव के लिये यह द्रव्य शुद्ध है, ऐसा वहाँ कहा। यहाँ तो वीतरागी पर्याय से परिणमित आत्मा, वह पर्यायरूप से परिणमा, वह शुद्ध है। द्रव्य-गुण तो शुद्ध है। समझ में आया ? यह तो इतना तो आता है अब परन्तु कुछ.... आहाहा ! क्या कहते हैं ? देखो !

(उस समय आत्मा...) अर्थात् कि त्रिकाली नहीं। त्रिकाली तो शुद्ध है, वह तो है। परन्तु शुद्ध पर्यायरूप से परिणमे, उस समय आत्मा शुद्ध है। पर्याय अपेक्षा से शुद्ध है, उस समय पर्याय अपेक्षा से शुद्ध है। उसमें ऐसा कहा था कि पर का लक्ष्य छोड़कर द्रव्य की सेवा करे, उस समय उसे शुद्ध है। कौन सा शुद्ध ? द्रव्य। समझ में आया ? उस समय वह शुद्ध है, ऐसा कहा। यहाँ शुद्ध पर्याय परिणमे, उस समय शुद्ध है। द्रव्य-गुण तो शुद्ध है ही। समझ में आया ? उस समय आत्मा स्वयं शुद्ध है।

इस प्रकार जीव का शुभत्व, अशुभत्व और शुद्धत्व सिद्ध हुआ। वह यह जीव कहो या आत्मा कहो, सब एक ही है। देखो, पहले आत्मा लिखा था। देखो, पहली लाईन में। फिर जीव कहा। लोग ऐसा न समझे कि जीव और आत्मा फिर भिन्न होंगे। जीव मलिन और आत्मा शुद्ध त्रिकाल है, पर्याय से शुद्ध है, ऐसा जीव, ऐसा नहीं। समझ में आया ? आत्मा तो त्रिकाल शुद्ध ही है, जीव मलिन होता है पर्याय में, ऐसा नहीं। मगनभाई ! इसलिए दो शब्द डालते हैं बदलकर। जब यह आत्मा, तब यहाँ कहा कि जीव कहते हैं। समझ में आया ? वह अशुभपना और शुभपना सिद्ध किया इस प्रकार जीव का। समझ में आया ? '**सिद्धं जीवस्य**' है न, पाठ में है, संस्कृत है। '**सिद्धं जीवस्य शुभाशुभशुद्धत्वम्**'। और पहले लिया कि, '**यदाऽयमात्मा शुभेनाशुभेन वा रागभावेन परिणमति**' ऐसा कहा था। ओहोहो ! टीका की कथन की पद्धति ! कितना समाहित कर देते हैं ! कोई कहे कि आत्मा तो पर्याय से भी सदा ही शुद्ध ही है, जीव जो है अन्त:करण विशिष्ट, वह अशुद्ध है। ऐसा नहीं। वह तो जीव कहो या आत्मा कहो, वह की वह चीज़ है। वह जीव स्वयं या आत्मा स्वयं शुभ और अशुभरूप से—अशुद्धरूप से परिणमता है, तब स्वयं आत्मा ही अशुद्धरूप से हुआ है। आत्मा और भिन्न रह जाता है और जीव अन्दर अशुद्धरूप होता है, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया ? आहाहा ! वीतराग ने कहा

हुआ तत्त्व जैसा है, वैसा उसे बराबर समझना पड़ेगा। कुछ भी अन्तर रहेगा न्याय में तो ज्ञान—श्रद्धा सच्ची नहीं होगी तो उसका आचरण भी सच्चा नहीं होगा।

शुभ या अशुभपना और शुद्धपना ये तीनों जीव के सिद्ध हुए। लो, जीव के सिद्ध हुए। भगवान आत्मा वस्तु से और उसकी शक्ति से अर्थात् स्वभाव से शुद्धपना होने पर भी पर्याय में परिणमनस्वभाव के कारण स्वभाव के आश्रय से शुद्धपने परिणमे, तब स्वयं ही उस पर्यायपने तन्मय होता है, तब शुभ और अशुभ ऐसे अशुद्ध परिणाम से परिणमे तो उस काल में वही शुभ और अशुभरूप से जीव ही होता है—आत्मा ही होता है। समझ में आया?

भावार्थ :- आत्मा सर्वथा कूटस्थ नहीं,... पारिणामिक कहा न! अकेला नित्य कूटस्थ नहीं। कूट है न, कूट—शिखर। शिखर जैसे खड़ा हो (उसमें) कुछ बदले ऐसा नहीं, परन्तु पानी कायम रहकर तरंग उठे, ऐसा आत्मा है। नित्य परिणामी है। कूटस्थ। वेदान्त आदि कहे, बस आत्मा कूटस्थ है। परिणमना और पर्याय, वह और क्या? निश्चयाभास है मिथ्यादृष्टि। समझ में आया? जिसने पर्याय मानी नहीं उसके संसार सिद्ध नहीं होता, उसके मोक्षमार्ग सिद्ध नहीं होता, उसके मोक्ष भी सिद्ध नहीं होता। क्योंकि वह तो सब पर्याय है। समझ में आया? वेदान्त आदि कहे, अनित्य आत्मा? अशुद्ध आत्मा हो? चिल्लाहट मचाये। सुन न अब, पर्याय से अशुद्ध परिणमता है, इसलिए आत्मा होता है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म लगे, बहुत पहलुओं से सत्य सिद्ध करते हुए कठिन लगे। मिल जाये कोई ऐसा, बस विचार छोड़ दो सब। उसको ऐसा लगे, आहाहा! विचार छोड़ दो सब। क्या और क्या विचार छोड़ना? और छूटकर कहाँ जाये? और कैसे थे? और इसके अतिरिक्त क्या रहता है? यह कुछ है? नास्तिक मत है नास्तिक। समझ में आया? शिवलालभाई! शिवलालभाई कहते थे। कॉलेज में लानेवाले हैं, बोटाद में... बोटाद में रजनीश को। ऐसे भी होते हैं न कितने ही। भावनगर में लाते हैं। ऐसे निकले न कोई एक-दो निकले गाँव में मान लेने के लिये। अपने यहाँ आये, देखो हमने भाषण कराया और लोग सब इकट्ठे हो और ऐसा सब बकवास, बकवास अर्थात् लोग बहुत इकट्ठे हों। आहाहा! भारी नवीन श्रेणी लगती है, हों! अज्ञान की। समझ में आया? अभी यह रजनीश का चला है न? गप्प ही गप्प। सिद्धान्त तत्त्व

से अत्यन्त विरुद्ध। सर्वज्ञ परमेश्वर के सत्य मार्ग से एकदम उलटा। ऐ... शोभालालजी! भाई, इनके पुत्र के वे थे। यहाँ थे और वहाँ आये थे। लोग पुस्तकें लेकर आये थे वहाँ। मल्हारगढ़ पुस्तक लेकर आया था। वह नहीं था कोई दाढ़ीवाला सफेद। कहा, गृहीत मिथ्यात्व की पुस्तक है। हाय... हाय! भड़का।

आत्मा, एक-एक आत्मा सर्वज्ञस्वभावी ज्ञ—स्वभावी है। क्योंकि वस्तु है वह ज्ञ—स्वभाव है आत्मा। वह परिपूर्ण वस्तु है और परिपूर्ण की पर्याय प्रगट होती है। वह सर्वज्ञ है और सर्वज्ञ ने कहे हुए तत्त्व, वे सच्चे हैं। यह जाने नहीं, तब तक उसकी कोई बात सुननेयोग्य नहीं। समझ में आया? गप्प ही गप्प अपनी कल्पना से तर्क उठाकर करे और यह (लोग) बेचारे... तुम्हारे गाँव में आया था या नहीं? सर्वत्र फिरता है। यह तो वस्तुस्थिति...

मुमुक्षु : कोई आधार ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं, कोई तत्त्व ही नहीं। अद्धर से बातें गप्पगोला।

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा एक-एक, आत्मा एक-एक—ऐसे अनन्त आत्मायें और एक-एक आत्मा स्वयं वस्तु से शुद्ध होने पर भी उसकी पर्याय में शुद्धरूप से परिणमे तो शुद्ध हो और अशुद्धपने परिणमे तो शुभ-अशुभ परिणमन हो। ऐसी वस्तु की स्थिति—वस्तुस्थिति ऐसी है। समझ में आया? जो शुभ और अशुभरूप परिणमता न हो तो उसे टालना क्या? और रखना क्या? समझ में आया? और टालने में किसका आश्रय लेना? पर्याय का आश्रय ले? त्रिकाल ज्ञायक शुद्ध चैतन्य के आश्रय से अशुभता और शुभता टलती है। है उसकी दशा में। समझ में आया? न हो तो उसे पूर्ण आनन्द होना चाहिए। आनन्द नहीं तो शुभाशुभ परिणाम का विकृत दु:ख है। किसी के कारण नहीं, कर्म के कारण नहीं, फलाने के कारण नहीं, ढींकणा के कारण नहीं, उसके स्वयं के परिणामी स्वभाव के कारण से है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

आत्मा सर्वथा कूटस्थ नहीं है, किन्तु स्थिर रहकर परिणमन करना उसका स्वभाव है,... टिककर अर्थात् नित्य परिणामी। वस्तुरूप से ध्रुव रहे, पर्यायरूप से परिणमे। वस्तु को अपरिणामी भी कहते हैं। ध्रुव स्वभाव को अपरिणामी भी कहते हैं। उसे पारिणामिकभाव कहते हैं और उसे ध्रुव भी कहते हैं। अवस्था बदले, उसे परिणामी

परिणाम कहा जाता है। दोनों होकर पूरे आत्मा का एक रूप है। दो होकर आत्मा का एक रूप। समझ में आया? **वह जैसे-जैसे भावों से परिणमित होता है, वैसा वैसा ही वह स्वयं हो जाता है।** परिणाम स्वभाव होने से जिस समय जिस प्रकार के परिणाम हों, उसरूप वह परिणम जाता है। समझ में आया?

जैसे स्फटिकमणि स्वभाव से निर्मल है तथापि जब वह लाल या काले फल के संयोगनिमित्त से परिणामित होता है,... संयोग तो निमित्त है वह तो। संयोग निमित्त है देखा वह तो। परिणमता है, **तब लाल या काला स्वयं ही हो जाता है।** कहो। यह लाल और काला फूल लकड़ी के नीचे रखो तो नहीं होगा। क्योंकि उसका (लकड़ी का) स्वयं का परिणमने का स्वभाव नहीं। देखो, यह शीशपैन है, रखो लाल। होगा लाल? यह इसका स्वभाव नहीं पर्याय होने का। उसका (स्फटिक का) स्वभाव है पर्याय होने का लाल और काला, इसलिए होता है। फूल के कारण से नहीं। समझ में आया? इसी प्रकार आत्मा में विकारी होने का पर्याय का स्वभाव है, कर्म के कारण से नहीं। मगनभाई! क्या यह? गजब बात यह! घड़ीक में समयसार की बात आवे तब वहाँ डाले उठाकर। भाई! वहाँ दर्शनप्रधान में अन्दर में उसकी (शुद्ध) पर्याय का अभेदपना वही आत्मा। और ज्ञानप्रधान के कथन में उसका एक-एक अंश जितना शुभ, अशुभ है, वह भी पर्याय उसकी है, ऐसा यहाँ जानना है। समझ में आया? **तब लाल या काला स्वयं ही हो जाता है।**.

इसी प्रकार आत्मा स्वभाव से शुद्ध-बुद्ध-एकस्वरूपी होने पर भी... लो। आत्मा स्वभाव से, है? शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव होने पर भी... है न अन्दर यह? जयसेनाचार्य में है न। '**जीवः स्वभावेन शुद्धबुद्धैकस्वरूपोऽपि**' संस्कृत है यह थोड़ा डाला है उसमें से समझने को। है न, यह तो डाले। **आत्मा स्वभाव से शुद्ध-बुद्ध-एकस्वरूपी होने पर भी...** क्या कहा? आत्मा त्रिकाल तो शुद्ध-बुद्ध ज्ञान का पिण्ड ऐसा स्वभाव है। वस्तु तो ऐसी की ऐसी है, वस्तु तो ऐसी की ऐसी है। शुभ-अशुभपने परिणमे तो भी वस्तु तो ऐसी की ऐसी है। कहीं वस्तु शुभ-अशुभरूप से होती नहीं। पर्याय में शुभ-अशुभ होता है। व्यवहार पर्याय है न। वह **होने पर भी व्यवहार से जब गृहस्थदशा में सम्यक्त्वपूर्वक...** देखो, भाषा ली है। समझ में आया? है न अन्दर बराबर देखो! '**यथासंभवं सरागसम्यक्त्व-**

पूर्वकदानपूजादि-शुभानुष्ठानेन' यह गृहस्थी सम्यग्दृष्टि आत्मा का श्रद्धा-ज्ञान शुद्धता होने पर भी गृहस्थाश्रम में समकितपूर्वक **दानपूजादि शुभ अनुष्ठानरूप शुभोपयोग में...** जीव स्वयं परिणमता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अलग। शुद्धता तो है, परन्तु उस समय शुभ दानादि के परिणाम से जीव स्वयं परिणमता है, इतना सिद्ध करना है। शुद्धता तो है। समकितपूर्वक कहा अर्थात् क्या कहा? समकितपूर्वक वह पर्याय शुद्धता है। समकितपूर्वक अर्थात् क्या? द्रव्यपूर्वक, ऐसा नहीं कहा। समकितपूर्वक। समकितपूर्वक अर्थात् समकित की पर्यायपूर्वक शुद्धपूर्वक, ऐसा कहा न यहाँ। ऐ... वजुभाई! क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निकाल दिया। वे समझ न जाये इसलिए। सराग समकित का अर्थ कि राग के काल में समकित को चारित्र की अपेक्षा से सराग कहा जाता है। समकित सराग-फराग है नहीं। समकित तो वीतराग ही है। परन्तु चारित्र का राग का काल होता है, इस अपेक्षा से उसे निमित्त से कहकर सराग समकित कहा। वीतराग हो, तब वीतराग समकित कहा। समकित तो वीतराग ही है। समकित को सराग-फरागपना होता नहीं। शुद्ध चैतन्यद्रव्य की परिणति शुद्ध वीतराग परिणति, वह सम्यक्त्व है। समझ में आया?

शुद्ध-बुद्ध-एकस्वरूपी होने पर भी व्यवहार से जब गृहस्थदशा में सम्यक्त्वपूर्वक... देखा, समकितपूर्वक यह शुद्ध दशा हुई। शुद्ध परिणति है। उस समय दान, पूजादि शुभ अनुष्ठानरूप से परिणमता है, वह शुभ उपयोग है। **मुनिदशा में मूलगुण तथा उत्तरगुण इत्यादि शुभ अनुष्ठानरूप शुभोपयोग में परिणमित होता है...** मुनि को भी आत्मदर्शन और ज्ञान की शुद्धतापूर्वक पंच महाव्रत के परिणाम, मूलगुण, उत्तरगुण आदि रागरूप परिणमता है, तब उसे भी शुभ उपयोग होता है। मुनि को भी सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रपूर्वक। उसे (नीचे) सम्यग्दर्शन, ज्ञान और अंश चारित्रपूर्वक शुभ-अशुभ होता है। (शुभ), अशुभरूप से परिणमता है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ४, मंगलवार, दिनांक १०-०९-१९६८
गाथा - ९, १०, प्रवचन - ८

ज्ञानतत्त्व का अधिकार। ९वीं गाथा का भावार्थ चलता है। क्या कहते हैं इसमें? यहाँ तक आया, देखो! **मुनिदशा में मूलगुण तथा उत्तरगुण इत्यादि शुभ अनुष्ठानरूप शुभोपयोग में परिणमित होता है, तब स्वयं ही शुभ होता है,...** क्या कहा? कि यह आत्मा जो है, वह नित्य परिणामी है। त्रिकाल टिककर वर्तमान में पलटता है, ऐसा उसका परिणमन स्वभाव है। समझ में आया? ध्रुवपना कायम रखकर, नित्य वस्तु ध्रुव कायम रहकर उसकी वर्तमान अवस्था में परिणामस्वभाव होने से वह क्षण-क्षण में परिणमती है। वह परिणमना उसका तीन प्रकार से है। शुभरूप परिणमे... गृहस्थाश्रम का दृष्टान्त दिया। आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-भानपूर्वक शुद्धता में द्रव्य, गुण और शुद्धता की पर्याय थोड़ी प्रगट हुई है, उसके साथ गृहस्थाश्रम में दान-पूजादि का भाव हो, तब शुभभाव से, समकिती भी शुभभाव से परिणमित होता है। समझ में आया? शुद्धता परिणति तो है ही साथ में, परन्तु उस समय दान, पूजा, भक्ति, नामस्मरणादि हो तो उस समय आत्मा ही स्वयं शुभ परिणाम से—शुद्ध पर्याय से—शुभभाव से—शुभ उपयोग से परिणमित स्वयं तन्मय होकर परिणमता है। वह पर्याय कहीं पर में रहती है और पर से हुई है, ऐसा नहीं है। कहो, मगनभाई! आहाहा!

इसी प्रकार मुनिदशा में भी आत्मा शुद्ध ध्रुव चैतन्य के सम्यग्दर्शनपूर्वक... सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ तो कोई उसे शुभ परिणाम को व्यवहारधर्म भी कहने में नहीं आता। वस्तु शुद्ध चैतन्य आनन्दमूर्ति का अन्तर्मुख का सम्यग्दर्शन, उसका निश्चय और उसका ज्ञान और उसमें स्थिरता, उसपूर्वक मुनि को भी पंच महाव्रत आदि मूलगुण के विकल्प होते हैं, उस समय मुनि भी शुभ उपयोग से परिणमित—हुआ—रहा होता है। समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं? बराबर नहीं आता। बहुत सूक्ष्म पड़े सूक्ष्म। यह तो कहा न! वस्तु है वस्तु शुद्ध चैतन्य पदार्थ। यह परमाणु की अभी बात छोड़कर सामान्य तो सभी बात कह गये, परन्तु अभी आत्मा की बात है न? अर्थात् आत्मा... परमाणु भी ऐसा है यह रजकण। रजकण भी कायम टिककर उसमें भी

परिणाम अर्थात् पर्याय हुआ करती है। और वह परमाणु ध्रुवरूप से रहकर भी उसकी पर्याय काली, लाल, हरी में वह तन्मयरूप से परिणमता है। कहो, समझ में आया ? इसी प्रकार आत्मा....

यहाँ चारित्र की व्याख्या है। चारित्तं खलु धम्मो, उससे बात शुरु हुई है। धर्म, वह आत्मा के शुद्ध ध्रुव चैतन्य प्रभु का जो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान उसमें स्वरूप की रमणता का चरना, रमना, वह चारित्र। उस चारित्र से परिणमित आत्मा चारित्ररूप हुआ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? वीतरागी पर्यायरूप से हुआ आत्मा उसरूप हुआ है। द्रव्य-गुण तो है, परन्तु वीतराग परिणामरूप से, चारित्ररूप से परिणमित—हुआ आत्मा ही वीतराग परिणाम में तन्मय है। इसलिए आत्मा ही चारित्ररूप हुआ है। ऐसे आत्मा चारित्रसहित होने पर भी, यह उत्कृष्ट आत्मा की (बात) नहीं, अमुक चारित्र होने पर भी जब उसे पंच महाव्रतादि शुभ के परिणाम हैं, तब शुभरूप से परिणमित है, शुभरूप से हुआ है। यद्यपि शुभ है, वह पुण्यबन्ध का कारण है और जितना आत्मा शुद्ध चैतन्य के सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक स्थिरता हुई है, वह मोक्ष का कारण है। समझ में आया ? यह सब सीखना पड़ेगा, सेठ! भाई! क्यों ? सीखना तो पड़ेगा या नहीं ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक है। ....

आत्मा देह से तो भिन्न है। इससे—रजकणों के पिण्ड से, शरीर से, कर्म से, वाणी से भिन्न है। इसलिए उसकी यहाँ बात नहीं। यहाँ तो आत्मा स्वयं जो है, वह एक समय में पूर्ण अन्तर्मुख दल, चैतन्यदल ध्रुव है जिसका स्वरूप। अन्तर्मुख एक समय की पर्याय के अतिरिक्त का अन्तर्मुख ध्रुव, वह नित्य कूटस्थ है। अर्थात् कि उसमें बदलना, वह ध्रुव में नहीं होता। उसकी वर्तमान अवस्था जो है, बदलना, उत्पाद-व्यय का परिणमना, वह पर्याय में है। समझ में आया ? वह उत्पाद-व्यय के परिणमन में, स्वरूप के भानसहित की स्थिरता की रमणता हो तो वह चारित्र के परिणमनरूप से परिणमित आत्मा ही उस धर्मरूप हुआ, इसलिए आत्मा ही स्वयं धर्म है। और शुभरूप परिणमे तब आत्मा ही स्वयं पुण्यरूप है। समझ में आया ? दो बातें आयीं।

और जब मिथ्यात्वादि पाँच प्रत्ययरूप अशुभोपयोग में परिणमित होता है,... अर्थात् क्या कहते हैं ? अशुभरूप से उनको—समकिती को इसमें नहीं डाला। अशुभ में मुख्यरूप से उसे अशुभ तो मिथ्यात्वी को है। समकिती में मुख्यरूप से अशुभ परिणाम है (उन्हें) गौणरूप से है, उसकी गिनती ली नहीं है। अब अनादि का अज्ञानी आत्मा मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग—ऐसे पाँच जो आस्रव, बन्ध के कारण हैं, उस रूप से जब वे पाँचों ही प्रत्यय आस्रव... पाँच आस्रव। प्रत्यय अर्थात् आस्रव। **अशुभपयोग से....** आस्रवरूप से जब आत्मा अशुभरूप होता है। **तब स्वयं ही अशुभ होता है...** समझ में आया ? भगवान शुद्ध चैतन्य प्रभु अपने को भूलकर, पुण्य में धर्म है, पाप में ठीक है, मजा है, संयोगों में अनुकूल-प्रतिकूल की कल्पना है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव और उसमें आसक्ति अव्रत का भाव, प्रमाद का, कषाय का और योग का कम्पन भाव, ये पाँचों ही बन्ध के भाव आस्रव हैं, अशुभ हैं। यह आत्मा अशुभ परिणाम से परिणमता है, तब आत्मा ही अशुभरूप हो जाता है। पर्याय में, हों ! द्रव्य-गुण तो शुद्ध त्रिकाल है। समझ में आया ? वीतराग का मार्ग यह इसे समझना पड़ेगा। बिना भान के चले हैं। बिना भान के। पैसा-बैसा खर्च कर डाले, यह भक्ति की, पूजा की, एकाध व्रत ले लेवे। सेठ ! .... ऐसे धर्म प्राप्त नहीं होता। निहालभाई !

मुमुक्षु : सरल बहुत था।

पूज्य गुरुदेवश्री : सरल बहुत था ऐसा कहते हैं। यह बहुत महँगा हो गया। धूल में भी सरल नहीं था। उल्टा था। सरल सेली थी। सेली। सरल अर्थात् सेली। सेली अर्थात् राख। यहाँ हमारे सेली... सेली समझते हो न ? राख को सेली कहते हैं। भस्म होती है न, उसे सेली कहते हैं। भस्म नहीं होती ? राख, चूल्हे की राख। उसे यहाँ हमारी काठियावाड़ी भाषा में सेली कहते हैं। ऐसा धर्म सेला था अर्थात् राख जैसा था। जहाँ वस्तु वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ ने तत्त्व क्या कहा है ? उस तत्त्व की अवस्था क्या है ? उस अवस्थारूप परिणमता है तो वह स्वयं परिणमता है या पर के कारण पर में परिणमता है ? कुछ खबर नहीं होती, उसे धर्म किस प्रकार हो ? समझ में आया ? पहले तत्त्वदृष्टि और तत्त्वज्ञान बिना कुछ भी उसका ज्ञान और चारित्र सब थोथा-थोथा होते हैं। व्रतादि पाले न, लोग कहे, यह महाव्रत लिये, अट्ठाईस मूलगुण।

धूल भी नहीं। बिना एक के शून्य है। भगवानभाई! सब प्रौषध करते और सामायिक करते न? वे सब थोथा थे। पोषा तो उसमें कहाँ था?

मुमुक्षु : बिना भान के चलता जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिना भान के।

भगवान आत्मा... ओहो! आत्मा की मूल दृष्टि और मूल रुचि और परिणति बिना उस वस्तु बिना उसकी भूमिका जहाँ न हो, वहाँ उसका वृक्ष कहाँ से उगे व्रत और नियम? समझ में आया? यहाँ तो पहला चैतन्य भगवान ध्रुवस्वरूप चिदानन्द परम... परम स्वरूप... परम स्वरूप... परम स्वरूप की अन्तर दृष्टि। क्योंकि वस्तु अन्तर्मुख द्रव्य है। पर्याय में प्रतीति पर्याय में होती है, परन्तु उस पर्याय में प्रतीति, वस्तु पूरी है, उसकी प्रतीति बिना, उसका एकड़ा आगे चलेगा नहीं। समझ में आया? इसलिए यहाँ चारित्रधर्म के समय उस वस्तु की अन्तर पूर्ण वस्तु की प्रतीति है, उसका ज्ञान है, तदुपरान्त उसमें चारित्र अर्थात् लीनता—रमता है, जमता है, स्थिर होता है, शुद्ध चैतन्य का प्रकाश प्रगट हुआ है। समझ में आया? ऐसी परिणति में परिणमित तत्त्व ही परिणमा है। उसे—आत्मा को चारित्ररूपी धर्म कहते हैं। आत्मा स्वयं ही चारित्र है, आत्मा स्वयं धर्म है, ऐसा। और उस धर्म के समय भी शुभ परिणाम यदि हुए हों तो भी उस शुभरूप से परिणमित वह जीव ही है। समझ में आया? समयसार की शैली अलग चीज़, यह शैली अलग। वहाँ दर्शनप्रधान, पश्चात् ज्ञान को जाने गौणरूप से, वह अलग बात है। यहाँ तो ज्ञान की प्रधानता सामान्य और विशेष दोनों को एक साथ लेकर जानता है। समझ में आया?

मिथ्यात्वादि पाँच प्रत्ययरूप... प्रत्यय अर्थात् आस्रव। **अशुभोपयोग से....** जब जीव होता है **तब स्वयं ही अशुभ होता है।** आत्मा ही अशुभरूप परिणमित होता है। कर्म परिणमित हुए हैं और कर्म के कारण परिणमे हैं, ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया? यह शुभ-अशुभ की बात की। अब शुद्ध की करते हैं। **जैसे स्फटिकमणि अपने स्वाभाविक निर्मल रंग में परिणमित होता है...** स्फटिकमणि अपना स्वभाव सफेद स्वच्छ उज्ज्वल, ऐसे उज्ज्वल और स्वच्छरूप से जब परिणमता है तो स्फटिकपने की

पर्यायरूप से परिणमा, वह तन्मय हो गया है। **तब स्वयं ही शुद्ध होता है,...** कौन? स्फटिकमणि। **उसी प्रकार आत्मा भी जब निश्चय रत्नत्रयात्मक शुद्धोपयोग में परिणमित होता है,...** भाषा व्याख्या देखो! जयसेनाचार्य की टीका की है। निश्चयरत्नत्रयस्वरूप, है न? निश्चय अर्थात् सच्चा, रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान आत्म अर्थात् स्वरूप। निश्चय सच्चे रत्नत्रयस्वरूप शुद्ध उपयोग से। यह शुद्ध उपयोग की व्याख्या। दया, दान, व्रत के परिणाम वे शुभ हैं; मिथ्यात्व के, अव्रत के, प्रमाद, कषाय के, योग के वे अशुभ हैं और यह शुद्ध (परिणाम है)।

भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य की ध्येय दृष्टि करके जो निश्चय सम्यग्दर्शन हुआ, उससे जो आत्मा का बोध और ज्ञान हुआ और आत्मा में रमणता की स्थिरता—चारित्र हुआ, वह निश्चयरत्नत्रयस्वरूप। आत्म अर्थात् स्वरूप। शुद्ध उपयोग। उस शुद्ध उपयोग से आत्मा ही परिणमता है। कर्म, शरीर, वाणी उससे भिन्न रह जाते हैं। क्योंकि वे उसमें नहीं हैं। वह स्वयं अपने में शुद्धता के स्वभाव का अन्तर आश्रय करके शुद्ध की प्रतीति, शुद्ध का ज्ञान और शुद्ध में रमणता, ऐसा जो निश्चयमोक्षमार्ग रत्नत्रयरूप परिणाम, उसे शुद्ध उपयोग कहा जाता है। यह शुद्ध उपयोग, वह मोक्ष का सच्चा मार्ग है। कहो, पोपटभाई! कहो, समझ में आया?

जैसे स्फटिकमणि अपने स्वाभाविक निर्मल रंग में परिणमित होता है, तब स्वयं ही शुद्ध होता है... स्फटिकमणि स्वयं ही शुद्ध हुई है। जैसे वह काले, लाल लक्षण से वह स्वयं ही काली-लाल हो गयी थी। पर्याय में, हों! स्फटिक तो शुद्ध ही है, परन्तु उसकी पर्याय में काली, लाल वह हुई थी। इसी प्रकार आत्मा अपने शुद्धरूप से परिणमे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से—इन तीनरूप से परिणमित शुद्ध उपयोगरूप से आत्मा तन्मय हो गया है। उसके परिणाम भिन्न रह जाते हैं और वह परिणामी द्रव्य भिन्न है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? **तब स्वयं ही शुद्ध होता है...** लो!

अब एक बात डालते हैं जयसेनाचार्य की टीका में है वह। इसका बड़ा विवाद इसमें से उठाते हैं। **सिद्धान्त में....** भगवान के आगम में। सिद्धान्त अर्थात् सिद्ध हुए भाव में और सिद्धान्त अर्थात् उनके कहे हुए वचनों में **जीव के असंख्य परिणामों को...** जीव के परिणाम तो असंख्य हैं असंख्य। **मध्यम वर्णन से...** उन असंख्य के एक-एक

परिणाम का वर्णन नहीं किया जा सकता। इससे असंख्य परिणाम, असंख्य पर्याय, असंख्य भाव। द्रव्य-गुण नहीं। द्रव्य-गुण है, वह तो त्रिकाली द्रव्य और गुण त्रिकाली वस्तु। अब उसके जो परिणाम हैं—पर्याय, उसके असंख्य परिणाम। उसे मध्यम वर्णन से... असंख्य परिणाम का वर्णन उत्कृष्ट किस प्रकार से करना एक-एक का? इसलिए संक्षिप्त में उसके असंख्य परिणाम का मध्यम (वर्णन)। जघन्य भी नहीं और उत्कृष्ट भी नहीं। समझ में आया? जघन्य कहें तो उसके परिणाम अकेले हों इतना हुआ। और उत्कृष्ट कहें तो असंख्य प्रकार पड़ते हैं। अब वे असंख्य प्रकार कैसे वर्णन करना?

इसलिए **असंख्य परिणामों को मध्यम वर्णन से...** समझ में आया? जघन्य वर्णन तो यह कि उसके परिणाम, बस। शुद्ध हो, अशुद्ध हो या अशुभ हो। परिणाम इतना आ गया, बस। अब उसके ऐसे भेद करो तो असंख्य प्रकार हैं। अब उसे मध्यम वर्णन से वर्णन करके गुणस्थान का स्वरूप बतलाना है। **चौदह गुणस्थानरूप कहा गया है।** मध्यम स्थिति से असंख्य परिणाम को चौदह गुणस्थानरूप वर्णन में—कहने में आये हैं। **उन गुणस्थानों को संक्षेप से 'उपयोग' रूप वर्णन करते हुए,...** लो! उस मध्यम से परिणामों को चौदह वर्णन किये। अब उन्हीं चौदह **गुणस्थानों को संक्षेप से 'उपयोग' रूप वर्णन करते हुए, प्रथम तीन गुणस्थानों में तारतम्यपूर्वक (घटता हुआ) अशुभोपयोग,...** पहले गुणस्थान में अशुभ उपयोग, दूसरे में उससे थोड़ा अशुभ, तीसरा उससे थोड़ा। परन्तु है तीनों में अशुभ उपयोग ही। मुख्यरूप से अशुभ की प्रधानता है। वहाँ उसके दया, दान, व्रतादि के हों, परन्तु उनकी मुख्य गिनती नहीं है। क्योंकि वहाँ मिथ्यात्व परिणाम का—उल्टी श्रद्धा का जोर है, इसलिए उसके शुभ परिणाम भी यहाँ वास्तव में अशुभ में डाले हैं। क्या कहा?

मुमुक्षु : प्रधानता।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रधानता, मुख्य से। समझ में आया? वरना नौवें ग्रैवेयक में जाये जैनदर्शन का दिगम्बर साधु। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण शुक्ललेश्या ऐसी। परन्तु दृष्टि मिथ्यात्व है, वस्तु के स्वरूप का स्पर्श नहीं, अकेला राग और विकल्प के स्पर्श का अनुभव है। इसलिए उस मिथ्यादृष्टि को शुक्ललेश्या के देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा के परिणाम, पंच महाव्रत के परिणाम, शास्त्र ग्यारह अंग पढ़े, उसकी जाति के

परिणाम, वे हैं तो शुभ, परन्तु मुख्यरूप से मिथ्यात्व के जोर के कारण, उन्हें अशुभ कहा है। समझ में आया?

पूरा दारमदार सम्यग्दर्शन के ध्येय के ऊपर है। मिथ्यात्वी का ध्येय राग और द्वेष तथा पर्याय है। सम्यग्दर्शन का ध्येय अकेला द्रव्यस्वभाव है। समझ में आया? क्योंकि एक अंश के अतिरिक्त पीछे कौनसा रत्न पड़ा है (उसे देखता नहीं परन्तु) ऊपर की भूमिका को देखता है। मिथ्यादृष्टि ऊपर की भूमिका अर्थात् कि एक समय की अवस्था रागादि को देखता है। परन्तु भूमिका के अन्दर दल—चैतन्य हीरा पूरा है, उसकी श्रद्धा और ज्ञान का भान नहीं। इसलिए उसके परिणाम में शुभभाव होने पर भी मुख्यरूप से मिथ्यात्व के जोर की मुख्यता से सब अशुभ ही गिना है। कान्तिभाई! आहाहा! समझ में आया?

यह भूमिका ऊपर की हो न। फल खार पके, घासफूस पके। परन्तु अन्दर हीरा पड़ा है अन्दर में गहरे जमीन की पर्याय के अन्दर में, उस हीरा की जिसे (खबर नहीं), चैतन्यमणि रत्न है, चैतन्य स्फटिकरत्न है, ऐसा भगवान पूरा पूर्ण वस्तु की जहाँ दृष्टि नहीं और एक अंश की वर्तमान भूमि और राग-द्वेष इतने की ओर का जिसे भाव और आश्रय और रुचि है, उसके कषाय के मन्द के परिणाम को भी मुख्यरूप से अशुभ में ही डाला है। कहो, समझ में आया? दूसरे गुणस्थान को भी अशुभ, परन्तु थोड़ा। तीसरा घटता हुआ।

चौथे से छट्ठे गुणस्थान तक... देखो! सम्यग्दर्शन और पाँचवाँ तथा छठवाँ तीन। वे तीन अशुभ में डाले, यह तीन शुभ में डाले। मुख्यरूप से हों! वापस उसमें विवाद उठावे, लो! **तक तारतम्यपूर्वक....** बढ़ता-बढ़ता **शुभोपयोग....** क्योंकि सम्यग्दर्शन के आत्मा के भानवाला भाव है, इसलिए उसे राग की मन्दता में भी एक कषाय का अभाव, दो कषाय का अभाव, तीन कषाय का अभाव—यह तीन गुणस्थान... इसलिए उसके अशुभ कोई साधारण परिणाम हो तो भी उसे शुभ की मुख्यता गिनने में आयी है। चौथे गुणस्थान में शास्त्र में छह लेश्या और अशुभयोग कहा है। छह लेश्या—कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल, तथापि यहाँ उसकी गौणता गिनकर शुद्धस्वरूप का आश्रय है, इसलिए उसका एक कषाय का अभाव हुआ है, इसलिए उसका शुभोपयोग

पहले की अपेक्षा इसका शुभोपयोग विशेष निर्मल है। इसकी अपेक्षा पाँचवें का, इसकी अपेक्षा छठवें का (शुभोपयोग विशेष निर्मल है)। अन्दर शुद्धता तो है। समझ में आया? यह रतनचन्दजी और यह सब इस अर्थ में ऐसा निकालते हैं कि चौथे, पाँचवें और छठवें में शुभ उपयोग ही है। शुद्ध उपयोग जरा भी नहीं। उस शुभ में से शुद्ध (होता) है, शुभ में शुद्ध का अंश है, ऐसा (वे) कहते हैं। आहाहा! बहुत उल्टा-उल्टा कर डाला है। लोगों को खबर नहीं होती। लोग तो बेचारे धर्म की जिज्ञासा तो हो न! कुछ अच्छा करना तो हो न लोगों को! और दसलक्षणी पर्व में मेला इकट्ठा हो। ऊपर वह जो भौंके, वह उनको मानना। भौंके अर्थात् प्ररूपित करे। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात तो पहले कही। आहाहा!

कहते हैं कि शुभयोग में भी कुछ धर्म है। नहीं। यह कहा न! चौथे, पाँचवें, छठवें में शुभ है, तो धर्म तो है। इसलिए शुभ उपयोग स्वयं धर्म है, ऐसा वे कहते हैं। समझ में आया? पोपटभाई! ऐसा नहीं, भगवान! यहाँ तो मुख्यरूप से उपयोग के प्रकार करते हुए शुद्ध परिणति चौथे, पाँचवें, छठवें में तो है, परन्तु उसके अशुभ की अपेक्षा से इसकी शुद्धता (के साथ) एक, दो और तीन कषाय (चौकड़ी) गयी है न, इसलिए उसे शुभ उपयोग की मुख्यता गिनकर शुद्ध परिणति को गौण रखा है। समझ में आया? यह शुभ उपयोग स्वयं धर्म नहीं, शुभ उपयोग स्वयं सम्यग्दर्शन नहीं, शुभ उपयोग स्वयं सम्यग्ज्ञान नहीं, शुभ उपयोग स्वयं चारित्र का अंश नहीं। समझ में आया? बहुत चर्चा चलती है, भाई! क्या करे? अरे... भगवान! उसे स्वयं का स्व आश्रय बैठता नहीं, क्या करे? यह बाहर का एकदम सरल ऐसा लक्ष्य जाये तो शुभ हो। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा और वह अशुभभाव न हो, उस समय उस प्रकार का, परन्तु मिथ्यात्व का अशुभ है, उसकी तो खबर पड़ती नहीं। शुभराग है, उसके ऊपर दृष्टि है और पूरा भगवान अन्दर स्वाश्रय करनेवाला रह गया है, उसकी खबर नहीं। इसलिए उस शुभभाव का नामस्मरण, भक्ति, पूजा, दान, दया, व्रत, वे परिणाम भी शुद्ध का अंश है और उनसे निर्जरा है और संवर है—ऐसा कहते हैं इस बोल में से निकलकर, यह जयसेनाचार्य की टीका में से। यही बोल निकालकर लिखते हैं, लो! कितनी बार लिखते हैं वापस, एक

बार नहीं। पत्रों में यह, वह तुम्हारे क्या कहलाता है वह? खानिया की चर्चा में यह। बारम्बार लिखा ही करते हैं। अरे! भगवान! भाई! तेरा परमेश्वर तो है ऐसा है, भगवान! तू भी भगवान तो है, ऐसा है भाई! तेरी पर्याय में यह मान्यता, शुभभाव से धर्म है और शुभ उपयोग में धर्म है, यह दृष्टि अत्यन्त विपरीत है। यह पर्याय में दृष्टि की विपरीतता है। समझ में आया? ऐसा यहाँ आचार्य नहीं कहना चाहते कि चौथे, पाँचवें, छठवें में अकेला शुभ ही होता है। मुख्यता की शुद्ध परिणति को गौण गिनकर शुभ की प्रधानता गिनकर उसे शुभ कहा गया है। समझ में आया? बड़ी चर्चा करे। जिसे समझना हो, उसे दूसरे क्या उल्टा कहते हैं, क्या सुलटा कहते हैं, यह निर्णय तो करना पड़ेगा या नहीं? व्यक्ति के लिये कुछ नहीं। व्यक्ति तो स्वतन्त्र है। समझ में आया?

मुमुक्षु : गुरु की शरण में जाना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस आत्मा की शरण बिना गुरु की शरण भी सच्ची नहीं कहलायेगी। यह कहलाये, कहलाये, दिक्कत नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

यहाँ आचार्य जयसेनाचार्य की टीका में यह भाव लिया है, वह यहाँ अपने पण्डितजी ने डाला है और इसकी बड़ी चर्चा चलती है। समझ में आया? मूल तो उन्हें सिद्ध करना है कि चौथे, पाँचवें, छठवें में शुभ उपयोग हो, वहाँ भी धर्म है। ऐसा (उन लोगों को) सिद्ध करना है। शुभ उपयोग में सम्यग्दर्शन है, शुभ उपयोग में ज्ञान है और शुभ उपयोग में भी चारित्र का अंश है। भाई! शुभ उपयोग तो अकेला उदयभाव है। परन्तु उदयभाव के पीछे शुद्ध चैतन्यद्रव्य का भान है, उसका ज्ञान है, इसलिए थोड़ी शुद्ध परिणति है। शुद्ध उपयोग वहाँ मुख्यरूप से नहीं है, इसलिए मुख्यरूप से शुभ उपयोग को चौथे, पाँचवें, छठवें में गिना है।

चौथे से छट्ठे गुणस्थान तक... अर्थात् तीन। पहले तीन और दूसरे तीन। **तारतम्यपूर्वक...** अर्थात् बढ़ता-बढ़ता। **शुद्धोपयोग...** कहा गया है। **सातवें से....** यहाँ लो न तो भी विवाद उठता है। **सातवें से बारहवें गुणस्थान तक....** अर्थात् सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह और बारह—छह। छह पहले कहे और छह यह। सातवें से... परन्तु यह

कहा न! यह ऐसा अर्थ करते होंगे। यह तो पहले से आया है कि यह हमारे सातवें से आठवें में जाये, उसकी बात यहाँ कहते हैं। सातवें में से छठवें में वापस आवे, उसे नहीं, उसे शुभ होता है। अरे... भगवान! क्या करता है? सातवें में तो निर्विकल्प उपयोग है। स्वयं ध्यान, ध्याता, ध्यान (का भेद) भूल गया है। साधु आहार लेने के काल में भी अन्दर सातवाँ आवे, तब सब भूल जाता है। अकेला ध्याता, ध्यान और ध्येय एकाकार होकर अनुभव करे, उसे सातवाँ (गुणस्थान) कहा जाता है। समझ में आया? निर्विकल्प है। अबुद्धिपूर्वक भले राग है वहाँ, उसकी यहाँ गिनती नहीं। दर्शनपूर्वक अन्दर स्थिरता जम गयी है। आहार लेता हूँ या नहीं, यह विकल्प भी टूट गया है वहाँ। आहार लेते-लेते, हों! ऐसी दशा है। मुनिदशा अर्थात्... आहाहा! परमेश्वर पद में सम्मिलित हैं वे।

मुमुक्षु : आहार लेते-लेते भी निर्विकल्प हो जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निर्विकल्प हो जाये। चलते-चलते निर्विकल्प हो जाये।

मुमुक्षु : मुख चलता हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुख चलता हो। उसे—दूसरे को खबर भी न पड़े कि क्या है? मुख की क्रिया होती हो ऐसे, अन्दर में जम गये हों। बहुत थोड़ा काल जम जाये। ऐसी बात है। सच्चे मुनि हों, उन्हें छठवाँ-सातवाँ हजारों बार आता है। सातवाँ न आवे तो छठवाँ भी उन्हें हो नहीं सकता। परन्तु यह बात कहाँ है? बहुत महँगी पड़ गयी लोगों को। सस्ता बताया है न सब। सब सस्ता पड़ेगा महँगा। समझ में आया? वह थोड़ी सड़ी हुई हो न शाक-भाजी शाम को बेचता हो और सस्ता दे। परन्तु फिर अन्दर लटें पड़ें, छिद्र पड़े हों, सब महँगा पड़ेगा। थोड़ा सा भाग निकले। आम-बाम सस्ता लेने जाये न, इसलिए वह सस्ता दे। यह अधमण आम ले जाओ। परन्तु अन्दर में दाग हो या वह हो तो सब महँगी पड़े। इसी प्रकार यह सस्ता लेने जाये परन्तु महँगा पड़ेगा भाई! तुझे उसमें ठिकाना नहीं पड़ेगा। समझ में आया?

सातवें में शुद्ध उपयोग गिना है, देखो! यह पुण्य-पाप के विकल्परहित सातवें गुणस्थान में मुनि को (फिर) छठवाँ गुणस्थान आवे। यह तो उससे बात कही है यहाँ

पहले। मुनि स्वयं कहते हैं कि हमको बीच में गुणस्थानक्रमारोहण अर्थात् क्रम में कषाय का कण पंच महाव्रतादि का आता है, परन्तु उसे दूर उल्लंघकर हम उपयोग में—शुद्ध उपयोग में परिणमते हैं। लो, यह तो स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। समझ में आया ?

सातवें से बारहवें गुणस्थान तक... बढ़ता-बढ़ता। तारतम्य अर्थात् बढ़ता-बढ़ता। **शुद्धोपयोग और अन्तिम दो गुणस्थानों में शुद्धोपयोग का फल—**तेरहवाँ और चौदहवाँ शुद्ध उपयोग का फल केवलज्ञान और केवलदर्शन आदि। **ऐसा वर्णन....** अपेक्षा से देखो! **कथंचित हो सकता है।** है न उसमें ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं।

मुमुक्षु : वहाँ विवाद पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विवाद पड़ता है। सच्ची बात है। डाले। है न परन्तु तारतम्य।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा। ऐसे तीन (भेद) पड़ें। ऐसे चौदह पड़े, ऐसे असंख्य पड़े। ऐसा कि उसमें कहाँ है ? गुणस्थान तारतम्य शुद्ध उपयोग : यह पण्डितजी डालते हैं। इन तीन के चौदह में तीन के समाहित किये हैं। कथंचित समाहित किये हैं या नहीं ? या पूरी रीति से समाहित कर दिये हैं ? ठीक है भगवान, बापू है न! वह भी भगवान है न, परमेश्वर है। पर्याय में भूला है, वह पामर है, परन्तु अन्दर तो परमात्मा है न भाई! वह भगवान क्षण में पलटेगा, तब स्वयं पलटकर भगवान होगा। समझ में आया ? बाहर में से कुछ मिले और हो, ऐसा सिद्ध करना है। परन्तु वस्तु अन्तर स्वरूप है परमात्मा। उसे स्पर्श किये बिना, स्वआश्रय बिना सम्यग्दर्शन न प्रगटे, सम्यग्ज्ञान नहीं हो और सम्यक् चारित्र का अंश भी स्व के आश्रय से हो, पर के आश्रय से हो नहीं सकता। समझ में आया ? लो, यह नौ गाथा पूरी हुई।

★ ★ ★

गाथा - १०

अब परिणाम वस्तु का स्वभाव है, यह निश्चय करते हैं:—क्या कहते हैं? वह परिणाम की व्याख्या की न? शुद्ध, शुभ और अशुभ। कहते हैं कि वह परिणाम, वह तो तीनरूप से सामान्य कहे, विशेषरूप से असंख्य, जघन्यरूप से परिणाम (मात्र) और मध्यमरूप से चौदह। उसके यह तीन भेद किये वापस। असंख्य, जघन्यरूप से एक, ऐसे असंख्य, मध्यमरूप से चौदह और मध्यम के चौदह में तीन प्रकार को समाहित कर दिया। शुभ, अशुभ और शुद्ध में। लो, यह तो ठीक कहते हैं पण्डितजी। तीन में उत्कृष्ट असंख्य, जघन्य एक, मध्यम चौदह। अब चौदह को तीन में समाहित किये वापस।

मुमुक्षु : सब कथंचित हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित हो गये। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... समझ लेना।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही समझना न! क्या आया परन्तु? तो यह कहते हैं कि नहीं समझे। शुद्ध में नहीं कहा हो, वहाँ साथ समझ लेना।

मुमुक्षु : यहाँ नहीं लागू पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ऐसा कहते हैं। खबर है न! सब विपरीतता लगाते हैं। भले वहाँ नहीं कहा। सर्वत्र स्यात् लगा देना। परन्तु स्यात् कहाँ? सिद्ध स्वतन्त्र है, वहाँ स्यात् लगाना कि कथंचित् परतन्त्र है। ठीक! ऐसा कहते हैं स्यात् का अर्थ। ऐई! सिद्ध स्वतन्त्र है पूर्ण? या नहीं स्वतन्त्र नहीं। कथंचित् स्वतन्त्र, कथंचित् परतन्त्र।

मुमुक्षु : वरना अनेकान्त रहता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त रहता नहीं, कहते हैं न यह तो, स्थापित किया है न उसमें। अनेकान्त किसे कहना? पूर्ण स्वतन्त्र है और परतन्त्र नहीं इसका नाम यहाँ अनेकान्त है। सिद्ध, वे परतन्त्र होंगे? धर्मास्तिकाय आगे नहीं है, इसलिए परतन्त्र। यह नहीं, नहीं; सुन न! उनका पर्याय धर्म का स्वतन्त्र वहाँ ही रहने का अपनी योग्यता से स्वतन्त्र है, परतन्त्र बिल्कुल नहीं। सिद्ध भगवान है न ऊपर? वे आगे क्यों नहीं जाते? कि धर्मास्तिकाय

नहीं है इसलिए। इसलिए परतन्त्र हैं। नहीं। इतना ही रहने का उनका स्वभाव है। ऊर्ध्वगमन हुआ, वहाँ ही रहने का स्वतन्त्र पूर्ण स्वभाव है। प्रत्येक पर्याय स्वतन्त्र है। परतन्त्र जरा भी सिद्ध को नहीं। परतन्त्र नहीं और स्वतन्त्र है, इसका नाम अनेकान्त है। अस्ति-नास्ति परस्पर विरुद्ध शक्तियाँ का प्रकाशित होना है। कहो, समझ में आया?

परिणाम अर्थात् बदलना अथवा पर्याय अथवा अवस्था, वह वस्तु का स्वभाव है। वस्तु का स्वभाव है परिणमना—बदलना वह। ऐसा निर्णय करते हैं।

नहिं पदार्थ परिणाम बिना, परिणाम पदार्थ बिना न रहे।
गुण-पर्याय-द्रव्यमय ही अस्तित्व रचित नित अर्थ रहे॥१०॥

यह हरिगीत आया पहले। मूल श्लोक।

णत्थि विणा परिणामं अत्थो अत्थं विणेह परिणामो।
दव्वगुणपज्जयत्थो अत्थो अत्थित्तणिव्वत्तो॥१०॥

इसका हरिगीत अपने पहले कहा गया। इसके सामने डाला। दूसरे प्रकार से... उसमें सबमें अपने नीचे डाला है। इसकी टीका। लो, यह तो मूल पदार्थ की स्थिति का वर्णन जरा बराबर ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ के ज्ञान में आया है। उनके सिद्धान्त में, शास्त्र में कहा है, ऐसा उसका—वस्तु का स्वरूप है। ऐसी वस्तु सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त, वीतरागदेव के अतिरिक्त किसी पंथ में—किसी मार्ग में इस प्रकार से वस्तु हो सकती नहीं। समझ में आया? वस्तु की स्थिति है, वैसा ही भगवान ने जाना है और वैसा ही कहा गया है।

टीका :- परिणाम के बिना वस्तु अस्तित्व धारण नहीं करती,... देखो! सिद्धान्त हैं यह सब। परिणाम अर्थात् अवस्था, परिणाम अर्थात् पर्याय, परिणाम अर्थात् अवस्था की दशा। इस **बिना वस्तु अस्तित्व धारण नहीं करती,...** परिणाम न हो तो वस्तु नहीं रहती। परिणाम बिना वस्तु रहती ही नहीं। आत्मा भी परिणाम बिना आत्मा ही टिकता नहीं, ऐसा कहते हैं। प्रत्येक पदार्थ, यह प्रत्येक पदार्थ की व्याख्या है। **परिणाम के बिना वस्तु...** अवस्था जो होती है, वह परिणाम है। परिणाम। तेरा पूरा परिणामी पदार्थ भगवान, वह परिणाम अर्थात् पर्याय में ढल गया है, परिणाम में परिणमा है। समझ में

आया? ऐसे परिणाम न हो तो वस्तु ही अस्ति धरती नहीं। समझ में आया? वस्तु का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता।

क्योंकि वस्तु द्रव्यादि के द्वारा परिणाम से भिन्न अनुभव में नहीं आती;... देखो! ओहोहो! पदार्थ। वस्तु अर्थात् पदार्थ। द्रव्य अर्थात् द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से। **परिणाम से भिन्न अनुभव में नहीं आती;...** वस्तु उसका द्रव्य, उसका क्षेत्र, द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड; क्षेत्र प्रदेश-भूमि; काल—अवस्था; भाव-शक्ति। वस्तु द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से परिणाम से (अर्थात्) द्रव्य से भिन्न नहीं, क्षेत्र से भिन्न नहीं, काल से भिन्न नहीं और भाव से भिन्न नहीं। क्या कहा, समझ में आया? वस्तु है आत्मा या परमाणु कोई भी वस्तु। छह द्रव्य। वह वस्तु है पदार्थ। उसकी वर्तमान परिणाम—पर्याय के बिना वस्तु (होती नहीं)। क्यों? कि वह परिणाम वस्तु के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से भिन्न दिखाई नहीं देते, द्रव्य से भिन्न नहीं, क्षेत्र से भिन्न नहीं, काल से भिन्न नहीं और भाव से भिन्न नहीं। द्रव्य से भी वे परिणाम तन्मय है। क्षेत्र से उसके असंख्य प्रदेश में ही वे परिणाम हैं, काल से उसकी पर्याय इतनी है, भाव से शक्ति का परिणमन भी वही है। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से (अर्थात्) वस्तु, वस्तु की भूमि, वस्तु का काल और वस्तु का भाव, उससे उसके परिणाम चार प्रकार से भिन्न देखने में, देखने में आते नहीं। जेठालालभाई! ऐसे सब ऐसे और ऐसे जैन में जन्मे हुए परन्तु ऐसा का ऐसा काल बिताया सबने बहुतों ने। लो! ऐई! भीखाभाई! क्या चीज़ है, उसे समझना पड़ेगा।

यहाँ तो पदार्थ... कोई भी मनुष्य ऐसा कहे कि मुझे श्रद्धा हुई। परन्तु वह श्रद्धा हुई वह तो परिणाम है। नहीं थी और हुई। नहीं थी अर्थात् मिथ्याश्रद्धा थी और सम्यक्श्रद्धा हुई। तो वह परिणाम में हुई। बदला न? बदलने में श्रद्धा होती है। वस्तु में होती है? वस्तु तो त्रिकाल है, ध्रुव है। और वह परिणाम के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कहीं भिन्न हैं? वह परिणाम—श्रद्धा की पर्याय हुई, वह द्रव्य से भिन्न है? क्षेत्र से भिन्न है उसके असंख्य प्रदेश से? उसके काल से भिन्न है? उसका स्वकाल है, उसमें पूरा काल वह उसका काल। भाव त्रिकाल है उससे पर्याय वह भिन्न है? वह अंश भिन्न है और भाव भिन्न है, ऐसा है? समझ में आया? यह तो सब सिद्धान्त है। दूसरों के साथ मिलाने जाते हैं न? वेदान्त के साथ और फलाना के साथ। वेद में ऐसा कहा है, ढींकणा

में ऐसा कहा है, फलाना ऐसा। कहीं यह बात होती नहीं तीन काल में। समझ में आया? मगनभाई! यह तो पहले की बात थी न जरा (कि) उसमें कुछ है। थी। नहीं यह अभी बहुतों को हो जाता है न बहुतों को। वह रजनीश बोलता है, वे वेदान्ती कहते हैं, दूसरे कहते हैं। कुछ वहाँ भी है सही। धूल भी नहीं सुन न! समझ में आया?

एक-एक वस्तु की अस्ति और उसके परिणाम ऐसे सिद्ध किये बिना किसी प्रकार से वस्तु का स्वरूप ही नहीं हो सकता। ऐसा कोई कहना चाहे कि भाई! तुम विकल्प छोड़ो। यह सिद्धान्त देखो। यह विकल्प छोड़ने का विकल्प है, वह पर्याय थी, परिणमन छोड़ने की दशा हुई और परिणाम होते हैं, वह पर्याय को सिद्ध करते हैं। और छोड़नेवाला अर्थात् जिसमें नहीं, ऐसा तो त्रिकाल तत्त्व होता है। त्रिकाली तत्त्व बिना छोड़ा और हुआ कहाँ से आया? विकल्प छोड़ा और विकल्प निर्विकल्प हुआ, वह तो पर्याय है। उस पर्याय बिना का द्रव्य होगा? समझ में आया? यह जैन में अभी गप्प (मारते हैं)। कितने ही समझते नहीं। वह निश्चय आया न? इसलिए महाराज कहते हैं, ऐसा ही वहाँ है। वहाँ कुछ है। धूल भी नहीं, सुन न! अच्छा पुण्य भी नहीं वहाँ। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि के भाव में जो कुछ कषाय की मन्दता का पुण्य हो, ऐसा पुण्य तो मिथ्यादृष्टि को हो नहीं सकता। धर्म तो नहीं, परन्तु पुण्य भी ऐसा नहीं होता। समझ में आया?

कहते हैं कि यह परिणाम बिना की वस्तु अस्तिरूप से टिक नहीं सकती, अस्ति नहीं धरती, क्योंकि वस्तु प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु, कालाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश छहों द्रव्य, हों! वह सन्तबाल कहे कि और एक ही बस, सब एक ही वस्तु हो। हिन्दुस्तान में एक ही वस्तु स्वीकारने में आयी है, दो को स्वीकारा नहीं। ऐसा उसने बाहर प्रसिद्ध किया। वस्त्र मुख पर रखे यह, पात्र रखे आहार लेने के और माने ऐसा एकदम उल्टा। सुननेवाले को कुछ खबर नहीं होती। भगवान सर्वज्ञदेव परमात्मा वीतराग परमेश्वर ने देखा और वह सर्वज्ञ हुआ, अर्थात् दशा हुई। तब इसका अर्थ कि पहले दशा वह नहीं थी और पश्चात् हुई, वह परिणाम सिद्ध करता है। और किसमें? कि ध्रुव में। ध्रुव के परिणाम पहले मलिन थे और पश्चात् परिणाम शुद्ध हुए, वह तो ध्रुव को सिद्ध

करते हैं। अर्थात् परिणाम बिना की वस्तु हो नहीं सकती। समझ में आया? दृष्टान्त देते हैं, देखो, समझने के लिये। हों!

क्योंकि (१) परिणामरहित वस्तु गधे के सींग के समान है,... क्योंकि गधे के सींग का परिणाम दिखाई नहीं देता, नहीं दिखता। **परिणामरहित वस्तु गधे के सींग के समान है,...** एक बात। इसका दृष्टान्त देंगे, हों! **(२) तथा उसका दिखाई देनेवाले गोरस इत्यादि के परिणामों के साथ विरोध आता है।** क्या कहते हैं? गोरस है न? एक तो गधे के सींग देखने में नहीं आते, इसलिए वह वस्तु है नहीं। परिणाम नहीं, इसलिए वस्तु नहीं। गधे के सींग के परिणाम, परिणाम हैं और कोमल या वे, वे नहीं, इसलिए वस्तु नहीं। दूसरा, दूध, दहीरूप परिणाम गोरस। गोरस इतना कहना है, गाय का रस इतना, हों! पश्चात् दूध, वह तो उसकी पर्याय है। गाय का रस। उस गाय के रस के साथ विरोध आता है। क्योंकि दूध, दही आदि गाय के रस के परिणाम हैं—पर्याय है। दूध परिणाम, दही परिणाम, छाछ परिणाम। छाछ होती है न मठ्ठा? वे गोरस के परिणाम हैं। वे परिणाम न हो और गोरस हो, ऐसा नहीं होता। समझ में आया?

परिणामों के साथ विरोध आता है। नीचे है, देखो! **यदि वस्तु को परिणामरहित माना जावे तो गोरस इत्यादि वस्तुओं के दूध, दही आदि जो परिणाम प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, उनके साथ विरोध आयेगा।** यह दही की अवस्था, यह दूध की अवस्था, यह छाछ की अवस्था, यह मक्खन की अवस्था। यह सब अवस्था है न? इस अवस्था बिना का गोरस होगा? अवस्था दिखती है। यदि परिणाम बिना का हो तो उसे अवस्था बिना का गोरस होना चाहिए। तो अवस्था तो प्रत्यक्ष दिखती है। गोरस की, गोरस की दूध, दही, मक्खन और छाछ—ऐसी अवस्था प्रत्यक्ष दिखती है, इसलिए वह परिणाम बिना का गोरस हो नहीं सकता। दूध की अवस्था बिना का गोरस होगा? दही की अवस्था बिना का गोरस होगा? मक्खन की अवस्था और छाछ की अवस्था बिना का गोरस होगा? इसलिए परिणाम बिना की वस्तु दिखाई नहीं देती। यदि परिणाम बिना की देखने में आवे तो दूध-दही की अवस्था देखने में आवे नहीं। तथापि गोरस है, तो दूध, दही की अवस्था से सिद्ध होता है कि परिणाम बिना की वस्तु हो नहीं सकती। समझ में

आया? सिद्धान्त यह सिद्ध करते हैं भाई यह तो! आहाहा! लॉजिक से है। क्या कहते हैं, समझ में आया?

वस्तु है, वह परिणाम बिना की नहीं होती। क्योंकि गोरस के परिणाम क्षण-क्षण में बदलते हैं, वह तो दिखते हैं। दूध, दही, वे परिणाम हैं, वह तो पर्याय है। और वे परिणाम नहीं, ऐसा कहो तो भी दिखते हैं न प्रत्यक्ष, वे गोरस के परिणाम हैं। गोरस के परिणाम हैं, वे लकड़े के नहीं, शक्कर के नहीं। वे तो गोरस के परिणाम हैं। और परिणाम दिखते हैं प्रत्यक्ष दूध, दही, छाछ आदि, इसलिए परिणाम बिना का गोरस हो नहीं सकता। परिणाम प्रत्यक्ष दिखते हैं। गोरस के परिणाम—पर्याय वर्तमान प्रत्यक्ष दिखती है। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ के परिणाम बिना वस्तु नहीं होती क्योंकि उसके परिणाम भी प्रत्यक्ष दिखते हैं। समझ में आया? प्रवचनसार जरा सूक्ष्म तत्त्व को सिद्ध करता है न!

(जैसे-परिणाम के बिना वस्तु अस्तित्व धारण नहीं करती उसी प्रकार)... अब एक बात हो गयी वहाँ। **वस्तु के बिना परिणाम भी अस्तित्व को धारण नहीं करता,...** जैसे परिणाम-अवस्था बिना वस्तु नहीं होती, वैसे वस्तु बिना परिणाम नहीं होते। वस्तु नहीं और परिणाम हैं, कहाँ से आया? पानी नहीं और तरंग है। समझ में आया? ऐसा हो नहीं सकता। **वस्तु के बिना परिणाम भी अस्तित्व को धारण नहीं करता, क्योंकि स्वाश्रयभूत वस्तु के अभाव में...** देखो भाषा! यह शुभ परिणाम हो या अशुभ हो या शुद्ध हो—तीन का आश्रय ध्रुव द्रव्य है, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। वह वस्तु बिना... जिसे आश्रय नहीं, उसके परिणाम क्या? अर्थात् शुद्ध परिणाम, शुभ परिणाम और अशुभ परिणाम का आश्रय द्रव्य है, उसके आधार से हुए हैं। गोरस के आधार से परिणाम हुए हैं। परिणाम बिना गोरस नहीं और गोरस बिना दूध, दही परिणाम नहीं, दूध-दही की अवस्था बिना गोरस नहीं और गोरस बिना दूध-दही की अवस्था नहीं। समझ में आया? लॉजिक है या नहीं? तुम्हारे वकालत में तो ऐसा आया न हो वहाँ। गप्प आये हों सब बहुत प्रकार के। परन्तु वह तो दिया है न! परीक्षा तो दी। कहो, समझ में आया इसमें?

क्योंकि स्व-आश्रय बिना। देखा! **स्व-आश्रयभूत...** स्व-आश्रयभूत वस्तु। परिणाम

की आश्रयभूत वस्तु, पर्याय की आधारभूत वस्तु। आत्मा के अशुद्ध परिणाम के आश्रयभूत वस्तु, शुभ परिणाम के आश्रयभूत वस्तु, शुद्ध परिणाम के आश्रयभूत वस्तु, तीन के आश्रयभूत वस्तु। यदि वस्तु न हो तो परिणाम हो सकते नहीं। समझ में आया? अब वह कहे कि स्वद्रव्य के आश्रय से शुद्ध परिणाम होते हैं, परद्रव्य के आश्रय से अशुद्ध होते हैं। मगनभाई! यह दूसरी बात सिद्ध करनी है वहाँ। यहाँ तो उसके परिणाम वस्तु बिना, द्रव्य बिना परिणाम (होते नहीं)। इसलिए द्रव्य के आश्रय से परिणाम होते हैं, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? वहाँ कहते हैं कि द्रव्य के आश्रय से तो शुद्ध ही परिणाम होते हैं। '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**'

मुमुक्षु : यह छह द्रव्य की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो छहों द्रव्य और यह आत्मा की भी बात है। यहाँ तो आत्मा की भी बात है कि उसके शुभ परिणाम या अशुभ परिणाम आत्मा के आश्रय से होते हैं। क्या कहा? स्व-आश्रयभूत। देखो! वे परिणाम हों, उनका आश्रयभूत द्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? यह मिथ्यात्व परिणाम हो, राग परिणाम हो, द्वेष परिणाम हो, वह स्व-आश्रय द्रव्यभूत है, उसके आश्रय से होते हैं; निमित्त के आश्रय से नहीं। समझ में आया? क्योंकि उसके अस्तित्व में होते हैं न? वस्तु द्रव्य-गुण-पर्याय तीन में समाप्त होती है। वस्तु की स्थिति की अस्ति द्रव्य, गुण और पर्याय तीन में पूरी होती है। यदि पर्याय उसकी न हो तो द्रव्य किसका? द्रव्य बिना पर्याय कहाँ से आयी? उसकी अर्थात् द्रव्य की और वे द्रव्य के परिणाम न हों तो परिणाम बिना द्रव्य का निर्णय किसने किया? परिणाम न हो तो निर्णय करना तो परिणाम से है। समझ में आया? और द्रव्य न हो तो किसके आधार से परिणाम हुए? समझ में आया? लॉजिक से भाई! बात करते हैं यहाँ तो शास्त्र। इसें समझना पड़ेगा? स्थूल बुद्धि काम नहीं आती अब इसमें, ऐसा कहते हैं। कसनी पड़ेगी। वस्तु कसनी पड़ेगी, समझे? कसौटी-कसौटी करके सूक्ष्म करनी पड़ेगी।

एक बार कहा था, नहीं? (संवत) १९८६ में। रामजी हंसराज। तब दस लाख रुपये थे। अब दो करोड़ हुए। महाराज! तुम्हारी यह बात ऐसी है कि जठर पचा नहीं सकता। करो तैयार जठर। मैसूर खाने के लिये जठर तैयार नहीं करते? रोटी खाने के

समय मैसूर का भाव नहीं होता ? कि मैसूर नहीं पचा सकेंगे, ऐसा करते हो कभी ? करो तैयार। जठर समझते हो ? जठराग्नि। रामजीभाई थे न रामजी हंसराज। करोड़पति, दो करोड़। अभी गुजर गये न! यह (संवत्) १९८६ की बात है। हमारा जठर पचावे, वह यह बात नहीं। हों।

मुमुक्षु : रुचती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : रुचती नहीं। तुम्हारे पैसे-बैसे रुचे और हो-हा। उसमें कुछ पैसा-बैसा खर्च करना हो तो धर्म हो जाये। धूल भी नहीं, कहा। पैसे में धर्म नहीं और पैसा खर्च करनेवाले को भी धर्म नहीं। ऐई! पोपटभाई! ८६ की बात, ८६ की बात।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन खर्चे ? धूल खर्चे ?

मुमुक्षु : रख छोड़ना न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : रखे कौन ? जड़ है, उसे रखे दूसरा ? रखे कौन ? टाले कौन ? रक्षा करे कौन ? सम्हाले कौन ? परचीज़ स्वतन्त्र है, उसके परिणाम स्वतन्त्र होते हैं, वह तो यहाँ चलता है। उसके परिणाम उसके द्रव्य बिना होते नहीं। उसके परिणाम दूसरे द्रव्य के आधार से होते है, ऐसा नहीं। एक पैसा ऐसे गया पैसा, तो वह पर्याय है न पर्याय ? वह पर्याय उसके द्रव्य के आश्रय से हुई है। दूसरे के आधार से और हाथ के कारण और दूसरे की इच्छा के कारण ऐसे गये नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह वीतरागीमार्ग है, भाई! सर्वज्ञ का सर्वज्ञ होने का मार्ग है। सर्वज्ञ का मार्ग सर्वज्ञ होने का है, अल्पज्ञ और राग में रहने का नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं कि **स्व-आश्रयभूत वस्तु के अभाव में...** जो कुछ परिणाम है, उसका यदि आश्रयभूत द्रव्य न हो तो वह परिणाम ही नहीं रह सकते। समझ में आया ? **(अपने आश्रयरूप जो वस्तु है, वह न हो तो) निराश्रय परिणाम को शून्यता का प्रसंग आता है।** जिसे आश्रय न हो, वह परिणाम शून्यता दिखाई देते हैं। दूध-दही दिखाई दे और गोरस न हो तो गोरस के आधार से हो ऐसा परिणाम नहीं, तो परिणाम की भी शून्यता हो जाती है। समझ में आया ? देखो! यह भाषा के परिणाम होते हैं न पर्याय ? वह कहे

कि उदय से निर्जरा होती है। वह आता है न उत्तराध्ययन में आता है। .... ऐसा आता है। अब धर्मकथा में निर्जरा कहाँ थी? सुन न! वह तो वाणी है, जड़ है। जड़ के परिणाम, वह उसके—परमाणु के आश्रय बिना होते नहीं। आत्मा के आश्रय बिना परमाणु के परिणाम नहीं होते, ऐसा यहाँ नहीं है। पोपटभाई! और विकल्प—राग हुआ, वह भी आत्मा-आश्रय बिना नहीं, इतना यहाँ तो सिद्ध करना है। आत्मा न हो और विकल्प कहीं अद्धर से हो जाये? समझ में आया? आहाहा! शुभ-अशुभभाव या अशुद्धभाव पर्याय, उसका स्वद्रव्य जो आश्रय वस्तु है, उसके बिना शून्यपना लगे। ऐसा हो सकता नहीं। आहाहा! महासिद्धान्त है। समझ में आया?

स्व-आश्रयभूत अर्थात् वस्तु का अभाव हो अर्थात् अपने आश्रय से परिणाम, आश्रयरूप जो वस्तु, परिणाम अर्थात् पर्याय, उसके आश्रयभूत-आधारभूत वह वस्तु, वह न हो तो निराश्रय परिणाम को—आश्रय बिना की अवस्था को शून्यपने का प्रसंग आता है। इसलिए परिणाम वस्तु बिना नहीं होते और वस्तु परिणाम बिना नहीं होती। दोनों अभेद है। समझ में आया? उसमें दृष्टान्त सिद्ध का दिया है अन्दर में और संसारी का, दोनों का दिया है। जयसेनाचार्य की (टीका में)। भगवान सिद्ध की—परमात्मा की पर्याय है। उस पर्याय बिना का सिद्ध का द्रव्य होगा? और उस परिणाम का आश्रय न हो सिद्ध को परिणाम होगा? वह परिणाम सिद्ध के जो केवलज्ञान के होते हैं, वह आश्रय द्रव्य न हो तो परिणाम होंगे? द्रव्य न हो तो परिणाम नहीं होते और परिणाम न हो तो द्रव्य नहीं होता। सिद्ध को भी ऐसा है। समझ में आया? लो, उसके परिणाम बिना द्रव्य नहीं, उसके द्रव्य बिना वे (परिणाम) नहीं। ऐसा नहीं कहा धर्मास्तिकाय के परिणाम बिना के यह परिणाम नहीं आगे जाने के, ऐसा नहीं लिया, लो, भाई! ऐसा आया या नहीं? ऐई! उसके परिणाम सिद्ध के जो वहाँ रहने के हैं, उन परिणाम बिना का द्रव्य नहीं होता, परन्तु धर्मास्तिकाय बिना के परिणाम नहीं होते, ऐसा यहाँ नहीं। और उन परिणाम बिना द्रव्य नहीं होता और द्रव्य बिना उसके परिणाम (नहीं होते)। द्रव्य बिना उसके परिणाम नहीं होते, परन्तु धर्मास्ति नहीं है, इसलिए परिणाम आगे (जाने) के नहीं होते, ऐसा कुछ नहीं है। समझ में आया? यह दो बातें सिद्ध की, लो! अब तीसरी बात सिद्ध करेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ५, बुधवार, दिनांक ११-०९-१९६८
गाथा - १०, प्रवचन - ९

दसवीं गाथा चलती है। प्रवचनसार, ज्ञानतत्त्व अधिकार। पहला पैराग्राफ पूरा हुआ। क्या कहा पहले में? वह यह बात चलती है कि आत्मा जो है, वह परिणामी है परिणामी। पलटता-बदलता। त्रिकाल वस्तु रही और पर्याय में बदलती है। इसलिए उस आत्मा के परिणाम शुभ या अशुभ या शुद्ध हों, उसमें वह आत्मा तन्मय होकर परिणमन उसका वह है। समझ में आया? एकेन्द्रिय में हो या सिद्ध में हो, परिणाम बिना की वस्तु होती नहीं और वस्तु के बिना परिणाम होते नहीं। सिद्ध की पर्याय है केवलज्ञानादि, वह द्रव्य बिना होगी? आत्मद्रव्य नहीं और सिद्धपर्याय है—ऐसा होगा? और पर्याय नहीं और अकेला द्रव्य है। केवलज्ञान पर्याय नहीं, वह आत्मद्रव्य है—ऐसा हो नहीं सकता। इसी प्रकार एकेन्द्रिय में ऐसा कि अशुद्ध परिणाम से वह परिणमता नहीं, अशुद्ध परिणाम उसके नहीं और उसके बिना का द्रव्य है निगोद का, ऐसा है नहीं। अशुभ परिणाम बिना का द्रव्य नहीं और अशुभ परिणाम के आश्रयवाले, द्रव्य के बिना परिणाम नहीं। समझ में आया?

निगोद के जीव को भी कर्म के कारण परिणाम है, ऐसा नहीं—ऐसा यहाँ तो सिद्ध करना है। कहते हैं न बहुत? जब तक एकेन्द्रिय है मनरहित, तब तक उसे कर्म का जोर है। अभी आया था अखबार में (पत्रिका में)। समझ में आया? सब पुरुषार्थ और कर्म दो का समन्वय करे। अर्थात् उसे अनादि में जब तक मन न हो, क्षयोपशमभाव नहीं विशेष तो वहाँ तक तो उसे कर्म के कारण से उसके परिणाम होते हैं और ऐसी क्षयोपशमदशा विशेष हो, तब स्वयं के कारण से परिणाम होते हैं।

इसके लिये यह स्पष्ट होता है कि किसी भी काल में, कोई भी द्रव्य सिद्ध हो, निगोद हो, परमाणु हो, स्कन्ध हो, या कालाणु हो या धर्मास्ति हो, उसकी पर्यायरूपी परिणाम बिना वह द्रव्य होता नहीं। पररहित होता है, पररहित होता है परन्तु उसके परिणाम बिना का नहीं होता। यह तो सिद्ध हो गया है कि जो निगोद में भी उस परिणाम का कर्ता आत्मा और परिणाम में तन्मय वह निगोद का जीव है। कहो, मगनभाई! या

निगोद में ऐसा है। अनादि निगोद पड़े हैं बेचारे कर्म के आधीन। लो! अमरचन्दभाई! कैसे होगा? कर्म के वश पड़े चार गति में भटकते हैं। वह यहाँ इनकार करते हैं कि ऐसा नहीं होता। वह पर के कारण परिणाम नहीं होते, द्रव्य के कारण परिणाम होते हैं। समझ में आया? निगोद का आत्मा, वह द्रव्य है, वह परिणाम बिना नहीं होता और उस परिणाम का आश्रय द्रव्य न हो तो परिणाम निराश्रय हो। इसलिए परिणाम का आश्रय वास्तव में तो उसका आत्मा है। परिणाम का आश्रय कर्म और परवस्तु नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कथन नहीं। सुनने का भान नहीं तो क्या करे? दूसरे जो सुनावे वह मान लेना। सेठ! बात तुम्हारी सच्ची, सेठ!

मुमुक्षु : .... उसे मानना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : ....

यहाँ तो कितनी स्पष्टता! कि अनादि-अनन्त द्रव्य जो वस्तु है, चाहे तो निगोद का हो, चाहे तो सिद्ध का हो, चाहे तो साधक का हो, चाहे तो परमाणु हो और चाहे तो परमाणु से बना हुआ स्कन्ध-पदार्थ हो, परन्तु वह पदार्थ वर्तमान में उसकी पर्याय और परिणाम रहित वह पदार्थ नहीं होता। पर बिना का होता है। परिणाम, निगोद का जीव भी उसके परिणाम बिना का नहीं होता, सिद्ध का जीव भी उसके परिणाम बिना का नहीं होता, एक परमाणु है, वह भी अपने परिणाम बिना का नहीं होता। एक रजकण है कि भाई! उसके परिणाम पर में, स्कन्ध में मिले और तब उसके परिणाम हुए, ऐसा नहीं है। परिणाम बिना का पदार्थ होता ही नहीं। समझ में आया? पृथक् परमाणु हो तो उसकी पर्याय बिना का द्रव्य नहीं होता और द्रव्य बिना पर्याय नहीं। इसलिए बहुत से कहते हैं न कि स्कन्ध में परमाणु जब मिले, तब उसमें स्थूलता आ जाती है और स्थूलता आती है, वह उसके संयोग के कारण आती है। यहाँ कहते हैं कि उस स्थूलता के उस समय के परिणाम बिना का वह परमाणु नहीं और परमाणु के आश्रय बिना स्थूलता होती नहीं। परमाणु के आश्रय बिना स्थूलता होती नहीं। स्कन्ध के आश्रय से होती है? कि पर के आश्रय से स्थूलता नहीं होती। समझ में आया? लोगों को बेचारों को खबर नहीं, क्या

करे ? सिद्धान्त तो तत्त्व है, ऐसा रहेगा। समझ में आया ? सबको परिणाम होते हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें ?

महासिद्धान्त है। इस गाथा में तीन सिद्धान्त सिद्ध करेंगे। दो सिद्धान्त तो सिद्ध किये कि कोई भी रजकण हो, स्कन्ध हो, निगोद का अज्ञानी जीव हो या केवलज्ञानी का जीव हो या सिद्ध का हो, वह उस-उस काल में उसके परिणाम उससे वह द्रव्य तन्मय है। पर के साथ तन्मय नहीं। कहो, बराबर है शोभालालजी ? यह तो चार पैसे सेर तो मण के ढाई, मण के ढाई तो चार पैसे सेर। चाबी कहते हैं ? क्या कहते हैं ? चाबी कहते हैं ? हमारे कुंची कहते हैं। इसी प्रकार यह चाबी है कि कोई भी पदार्थ किसी भी काल में जहाँ वर्तता हो, वह वर्तना—परिणाम बिना का वह द्रव्य नहीं होता, वह वर्तना-परिणाम पररहित होते हैं। कहो, बराबर है ? वह परिणाम बिना... कोई कहे कि कर्म का बहुत दबाव पड़ा और उसके कारण यहाँ परिणाम हुए। कोई ऐसा प्रतिकूल आ पड़ा और शरीर में कठोर रोग, तो वे परिणाम हुए। परन्तु कहते हैं न, उन परिणाम बिना का द्रव्य नहीं होता, फिर रोग के कारण परिणाम हुए, यह आया कहाँ ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तुस्थिति तो वर्णन करते हैं, एक-एक पदार्थ की। ऐसा स्वरूप पदार्थ का स्वरूप यह है। ऐसे पदार्थ के स्वरूप की जिसे खबर नहीं, उसे धर्म परिणाम किसके आश्रय से होंगे ? और धर्म परिणाम में आत्मा तन्मय होता है, तब धर्म परिणाम होते हैं। समझ में आया ? यह कहीं भगवान की प्रतिमा में या पर की दया में तन्मय हो तो वे परिणाम होते हैं, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया ? किसी भी काल में भगवान की पूजा में बैठा है, तब उसे वे शुभ परिणाम हुए, उन शुभ परिणाम का आश्रय उसका द्रव्य है। उन शुभ परिणाम का आश्रय भगवान की मूर्ति नहीं। ओहोहो ! कहो, समझ में आया ? यह समवसरण में बैठा हो आत्मा, तो उसे जो परिणाम हुए, उसका आश्रय उसका आत्मा है, उन परिणाम का आश्रय भगवान नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणाम है। अब सेठ धीरे-धीरे आते-जाते हैं थोड़ा। यह सब

समझने के लिये है, भाई! यह वस्तु समझने की है। ऐसे ऊपर-ऊपर से समझे तो उसका कुछ पता लगे, ऐसा नहीं है। मूल उसको पकड़ना चाहिए तो इसे सत्य का लाभ हो, वरना तो अनन्त काल से ऐसा का ऐसा मर गया है। भाई कहते हैं बराबर है।

मेरे परिणाम पर के आश्रय हो। तब तेरे परिणाम-पर्याय बिना का द्रव्य है? समझ में आया? ग्यारहवें गुणस्थान से गिरा तो वहाँ कर्म के कारण परिणाम होते हैं, यह तो इनकार करते हैं। ग्यारहवें से गिरा तो उन परिणाम बिना का द्रव्य है वहाँ? समझ में आया? ग्यारहवें से गिरा, वह दसवें के परिणाम हैं, उन परिणाम बिना का द्रव्य है कि वे परिणाम पर ने कराये? अपने परिणाम हैं। समझ में आया? अमरचन्दभाई! बड़ी गड़बड़ बहुत-बहुत है। लोगों को अभ्यास नहीं, सत्य की शरण क्या है, उसकी खबर नहीं। फिर विवाद... विवाद... विवाद उठावे। बापू! विवाद उठाने जैसी चीज़ नहीं है। यह तो वस्तु का सत् ऐसा है। भगवान के निकट जाये तो यह मिलेगा, यहाँ से कहे तो यह मिलेगा, वस्तु यह है। समझ में आया?

यह वे कहते थे एक बार कि परिणाम निमित्त पाकर होते हैं। न हो तो—निमित्त पाये बिना हो तो भगवान के पास जाओ। ऐसा आया था एक बार तुम्हारे उत्तर दिशा से। उत्तर दिशा कहलाये न? क्या कहलाये तुम्हारी? नहीं तुम्हारा, ईसरी और वह उत्तर कहलाये या नहीं? बिहार। पश्चिम कहलाये? अपने को कुछ खबर नहीं। वह ईसरी में से आया था कि परिणाम निमित्त पाकर होते हैं, निमित्त पाकर होते हैं, कर्म का निमित्त पाकर परिणाम होते हैं। इसके अतिरिक्त तुम्हारे बात हो तो भगवान के पास जाओ। भगवान ने ऐसा कहा है। यहाँ कहते हैं कि निमित्त पाकर नहीं होते। अपने परिणाम का आश्रय द्रव्य, उसके कारण से होते हैं, ऐसा कहते हैं। है इसमें, है या नहीं? देखो न यह पुस्तक। कहो, समझ में आया? आहाहा! इसमें लेख है, उसका अर्थ है। इसमें न्याय से बात है या नहीं? इसमें कहाँ किसी पक्ष की, वस्तु की स्थिति है?

सर्वज्ञ परमेश्वर ने त्रिकाल वस्तु देखी और उस वस्तु के परिणाम बिना की किसी चीज़ को देखा नहीं तो उस परिणाम बिना की चीज़ नहीं। वे परिणाम किसी से हों और किसी के हैं किसी काल में, (ऐसा) तीन काल में है नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तब कोई कहे, परन्तु हम यहाँ बैठे हों और परिणाम...? भगवान के

पास जायें तो परिणाम अच्छे होते हैं, घर में जायें तो खबर होते हैं, यहाँ आयें तो अच्छे हों तो कुछ अन्तर पड़ता है या नहीं पर के कारण से? कहो, सेठ! परन्तु तुम वहाँ बीड़ियों में काम करो, वहाँ के परिणाम और यहाँ के परिणाम में अन्तर रहता है या नहीं? ऐई! अमरचन्दभाई! वहाँ भी अपने परिणाम द्रव्य के आश्रय से हुए हैं, यहाँ भी परिणाम द्रव्य के आश्रय से हुए हैं। कहीं शब्द के आश्रय से और सोनगढ़ के स्वाध्याय मन्दिर के आश्रय से हुए नहीं। बराबर है या नहीं? समझ में आया?

यह बात ऊपर हो गयी है, देखो! यह दो पद की व्याख्या हो गयी। दसवीं गाथा के दो पद। '**णत्थि विणा परिणामं।**' यह महासिद्धान्त। '**णत्थि विणा परिणामं अत्थो अत्थं विणेह परिणामो।**' दो पद की व्याख्या हो गयी। बिना परिणाम अर्थ नहीं होता। अर्थ अर्थात् द्रव्य और द्रव्य बिना परिणाम नहीं होते। यह त्रिकाली सिद्धान्त। अर्थात् कोई भगवान इसके परिणाम बनावे और हो, (ऐसा माननेवाला) मूढ़ है, वस्तु को जानता नहीं। क्योंकि पदार्थ है न स्वयं, उस पदार्थ का परिणमन सिद्ध करना है। वह परिणमता है, वह स्वयं के परिणाम से परिणमता है, उस परिणाम का कर्ता दूसरा कोई है नहीं। कहो, समझ में आया? न्याय से, लॉजिक से, युक्ति से, आगम से तो बात सिद्ध होती है और प्रत्यक्ष में भी सिद्ध होती है। किसी के कारण कोई परिणाम हो, ऐसा दिखाई नहीं देता। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ भान बिना के... यह चश्मा बिना देखने के परिणाम नहीं होते, ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। लो! यह लींबड़ी में अभी आया था न वह? देखो, यह चश्मा बिना नहीं होता। अरे! भगवान! बापू! सूक्ष्म—बारीक बात है। तुम्हारे साथ बात किस प्रकार करना? समझ में आया? स्थूल बुद्धि, पकड़कर बैठे उल्टी विपरीतता। आहाहा! यह बात, चश्मा बिना देखने के परिणाम नहीं होते। तब आत्मा है, उसके देखने के परिणाम हैं, उन परिणाम का आश्रय द्रव्य है या चश्मा है?

मुमुक्षु : चश्मा है तो दिखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ दिखता है? यह भी परिणाम है या नहीं? वह भी एक

परिणाम-पर्याय है या नहीं ? तो उसके परमाणु के आश्रय से वह पर्याय हुई। कहो, समझ में आया ? आहाहा ! मगनलाल का पुत्र था तब वहाँ तुम्हारे लींबड़ी। चन्द्रशेखर (के साथ) यह बात होती थी तब। महासुख था न ? जयन्तीभाई लींबड़ीवाले। प्रभु ! क्या करता है ? आहाहा ! मान के लिये मानो हम बराबर हैं। चश्मा बिना परिणाम नहीं होते, नहीं दिखता। अरे ! प्रभु ! सुन न, भाई ! यह उसके परिणाम की क्षणिक जो जानने की अवस्था है, वे परिणाम परिणामी बिना हुए हैं ? द्रव्य के आश्रय से होते हैं या परिणाम चश्मा के आश्रय से होते हैं ? न्यालभाई !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी... थोथी दलील है। कौन चढ़ावे ? चढ़ावे कौन ? ले कौन ? और छोड़े कौन ? उसके परिणाम का जो स्वकाल है, वह यह रहने का यहाँ। तो उसका स्वकाल यहाँ रहने का था। तो वह परिणाम उसके द्रव्य बिना का हुआ। यह उल्लंघकर लेकर परिणाम हुए हैं, वह तो यहाँ है ही नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। अमरचन्दभाई ! आहाहा ! महासिद्धान्त है। मण के ढाई तो सेर के चार पैसे। साढ़े सात सेर के... ढाई यह उसमें आ गया। साढ़े सात सेर के साढ़े सात आना। क्यों शोभालालजी ! इसी प्रकार यह तो न्याय का एक सिद्धान्त-कायदा हुआ। यह कायदा सब जगह लागू करना। लो ! समझ में आया ? लोहचुम्बक है यहाँ और यहाँ सुई है, तो सुई खिंचकर आती है यहाँ लोहचुम्बक निकट है, देखो ! तो लोहचुम्बक के कारण उसके परिणाम हैं या नहीं ? नहीं। सुई के परिणाम उसके परमाणु के आश्रय से हुए है, चुम्बक के आश्रय से नहीं। सुई ऐसे खिंची न ? वह उसके परमाणु के आश्रय से खिंचने के परिणाम हुए हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। आहाहा ! यह बात आयी थी न पहले ? किस वर्ष सेठ आये वह ? सेठ आये थे न, २००१ के वर्ष में नहीं ? २००१ के वर्ष में आये थे न, जीवनधरजी पण्डित (साथ में थे)। वे कहे, लोहचुम्बक खींचकर आवे। अरे ! भगवान ! वह खींचने के परिणाम ऐसे हुए, उस परिणाम का काल उसके द्रव्य के हुए या वे परिणाम इसके कारण हुए ?

मुमुक्षु : पचास प्रतिशत।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, फिर पचास प्रतिशत डाले थे। तब और भाई थे, एक भाई अपने पण्डितजी नहीं? नाथुलालजी कहे रहने दो पचास-पचास प्रतिशत। यह तो उल्टा। तुमको हाँ कराते हैं। पचास-पचास प्रतिशत रखो। खिंचकर आये न परिणाम, लोहचुम्बक से खिंचकर आया, परन्तु लकड़ी खिंचकर क्यों नहीं आयी? उसके परिणाम की योग्यतावाले हैं, वे परिणाम उसके द्रव्य के आश्रय से हुए, चुम्बई के कारण से नहीं। आहाहा! समझ में आया? महासिद्धान्त है यह तो। आहाहा! कान्तिभाई! है या नहीं बराबर? क्यों यह तुम्हारे चिरंजीवी आये हैं न! बात सच्ची है या नहीं यह? यह उल्टा मारे दूसरे। भगवान के कारण परिणाम हुए, उसके कारण से परिणाम हुए, कर्म के कारण परिणाम हुए। अरे। सुन न! कर्म बिना के परिणाम हुए हैं, यहाँ तो कहते हैं। वे परिणाम द्रव्य के आश्रय से हुए। पाप के परिणाम हों तो भी द्रव्य के आश्रय से हुए हैं, कर्म के आश्रय से नहीं, उदय के आश्रय से नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। कर्म का उदय कर्म के परिणाम हैं। उस परिणाम बिना वे परमाणु नहीं होते। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह अनेकान्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अनेकान्त। स्वयं से परिणाम होते हैं और पर से नहीं होते, यह अनेकान्त। अनेकान्त और क्या? उससे होते हैं, यह अनेकान्त है?

एक ही सिद्धान्त तीनों काल में। अनादि-अनन्त परमाणुओं में या अनादि-अनन्त आत्मा में उस-उस काल में होते परिणाम का आधार वह द्रव्य है। परिणाम बिना द्रव्य नहीं और द्रव्य बिना परिणाम नहीं। महा त्रिकाली सिद्धान्त। जहाँ लागू करना हो, वहाँ लागू करना। ऐसी बात है, भाई! समझ में आया? भगवान के निकट क्षायिक समकित होता है। शास्त्र में गोम्मटसार में आता है। भगवान श्रुतकेवली के समीप होता है। ठीक! वे क्षायिक समकित के परिणाम हुए, वे परिणाम द्रव्य के आश्रय से हुए या भगवान के आश्रय से हुए? बाबूभाई! क्या है? यह कहेंगे। परिणाम द्रव्य बिना नहीं होते और द्रव्य परिणाम बिना का नहीं होता। वह द्रव्य परिणाम बिना नहीं होता। क्षायिक समकित परिणाम द्रव्य बिना नहीं होते और उस परिणाम का आश्रय द्रव्य है। उस क्षायिक

परिणाम का आश्रय भगवान हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? अरे! उपादान-निमित्त की बड़ी गड़बड़ है। लो!

क्योंकि स्वाश्रयभूत वस्तु के अभाव में... देखो! **(अर्थात् आश्रयरूप जो वस्तु...)** अपने को अर्थात्? परिणाम को। जो कुछ द्रव्य के वर्तमान पर्यायरूप परिणाम हों, उसके आश्रयरूप, उस परिणाम के आश्रयरूप, उस परिणाम के आधाररूप जो वस्तु, **(वह न हो तो) निराश्रय परिणाम को शून्यता का प्रसंग आता है।** यह महासिद्धान्त है। कहो, मगनभाई! आहाहा!

अब दूसरा सिद्धान्त। '**दव्वगुणपज्जयत्थो अत्थो**' तीसरा पद है न? इन दो पद की व्याख्या हुई। अब तीसरा पद। '**दव्वगुणपज्जयत्थो अत्थो**' और '**अत्थित्तणिव्वत्तो**' ऐसे दो पद हैं। १०वीं गाथा के दो पद हैं। दो पद पहले हैं, उनकी व्याख्या हो गयी। समझ में आया? मगनभाई! दूसरे पद के दो भाग हैं। '**दव्वगुणपज्जयत्थो अत्थो**' और '**अत्थित्तणिव्वत्तो**' ऐसे दो ले लेना। अब क्या कहते हैं? यह सिद्धान्त पहले कहा। **वस्तु तो...** दूसरा पेराग्राफ है। है सेठ? बोलो देखकर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊर्ध्वता सामान्य। बस, बस लाईन है। ... वह वाँचे, पैसा वाँचना हो तो न ठगाये वहाँ। ऐई सेठ!

देखो! **वस्तु तो...** वस्तु अर्थात् पदार्थ। पदार्थ अर्थात् आत्मा, परमाणु, कालाणु, धर्मास्ति छहों द्रव्य **वस्तु तो...** जिसमें बसे हुए गुण हैं, ऐसी वस्तु तो... पाठ में अर्थ शब्द पड़ा है, भाई! उस अर्थ का अर्थ यहाँ वस्तु किया। '**अत्थो**' अर्थात् पदार्थ। वह **वस्तु तो ऊर्ध्वतासामान्यस्वरूप द्रव्य में,...** अब यह कहीं बहियों में आयेगा नहीं तुम्हारे तम्बाकू में और उसमें। ऊर्ध्वतासामान्य द्रव्य क्या कहते हैं यह? समझ में आया? क्या कहते हैं? अर्थ चलता है, हों! ऐसा का ऐसा नहीं जाये कहीं। **वस्तु तो ऊर्ध्वतासामान्यस्वरूप द्रव्य में,...** अर्थात् क्या? नीचे (फुटनोट में) अर्थ है, देखो!

काल की अपेक्षा से स्थिर होने को... नीचे है न दो? **कालापेक्षित प्रवाह को ऊर्ध्वता अथवा ऊँचाई कहा जाता है।** वस्तु है न वस्तु? आत्मा, परमाणु ऐसे कायम रहे

न ऊर्ध्व ऐसे ऊँचाई। है... है... है... है... है... ऐसे रहे न कायम अनादि-अनन्त। वह काल कहलाये, ऊँचाई कहलाये। प्रवाहरूप से ऐसे रहे, उसे ऊर्ध्वतासामान्य कहा जाता है। समझ में आया? फिर से। ऐसे शब्द भी कभी सुने न हों। दान दो और यह करो, भक्ति करो, पूजा करो और व्रत पालो।

मुमुक्षु : यह सरल बहुत था।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सरल नहीं। यह तो परिणाम उसके कारण से होते हैं, वे किसी के कारण से होते हैं? मान्यता ऐसा अन्तर है। समझ में आया? यह पैसे दिये, देने की क्रिया हुई, इसलिए यहाँ पुण्य परिणाम हुए, ऐसा इनकार करते हैं यहाँ। शोभालालजी! यह पुण्य के परिणाम-शुभभाव यदि किये हों तो वह शुभ परिणाम आत्मा के आश्रय से हुए हैं, पैसे गये और पैसे के कारण हुए नहीं।

अब वस्तु को सिद्ध करते हैं। द्रव्य, गुण, पर्याय... वस्तु में द्रव्य-गुण-पर्याय है, ऐसा कहते हैं। वस्तु जो है, आत्मा वस्तु कहो, या परमाणु कहो एक-एक रजकण या आत्मा कहो, वह एक-एक वस्तु ऊर्ध्वतासामान्यस्वरूप द्रव्य में रही हुई है। अर्थात्? प्रवाहसामान्य, वह ऊर्ध्वतासामान्य। ऐसे कायम रहना प्रवाह उच्चकाल। है... है... द्रव्य है... है... है... है... है... उसे ऊर्ध्वता—ऊँचा प्रवाह सामान्य। ऊर्ध्वता अर्थात् ऊँचा, ऊँचा अर्थात् काल अपेक्षा से ऊँचा। लम्बा, ऐसा नहीं। द्रव्य का रहना, ऐसा का ऐसा रहना। काल। ऊर्ध्वतासामान्य कहो या प्रवाहसामान्य। उसका प्रवाहरूप से ऐसा का ऐसा रहना सामान्य। वह वस्तु-द्रव्य ऐसे द्रव्य में रही हुई है। वस्तु ऐसे द्रव्य में रही हुई है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मूल चीज़ की बात है। अब इस चीज को समझना, क्या उसे दूसरा करना है? कहो, समझ में आया?

तू है या नहीं? ऐसा कहते हैं। तो तू ऐसा का ऐसा ऊर्ध्व अर्थात् काल से ऐसा का ऐसा, ऐसे ऊर्ध्वपने रहता है? ऊँचा अर्थात् काल से ऐसा। है... है... है... ऐसा रहता है? या अभी नाश हो जाता है तू? पानी का प्रवाह ऐसा चलता है तिरछा, वह नहीं। यह

द्रव्य... द्रव्य... द्रव्य... है... है... है... है कायम। यह ऊर्ध्वता ऊँची सामान्य। काल की अपेक्षा से कायम टिकना और एकरूप रहना, उसका नाम ऊर्ध्वता सामान्य कहलाता है। समझ में आया? **काल की अपेक्षा से स्थिर होने को अर्थात् कालापेक्षित प्रवाह को...** काल अपेक्षित ऐसे रहना... रहना वह। **ऊर्ध्वता अथवा ऊँचाई कहा जाता है। ऊर्ध्वता-सामान्य अर्थात्...** अब इसका स्पष्टीकरण। **अनादि-अनन्त उच्च...** ऐसा। वस्तु द्रव्य में अनादि-अनन्त ऊँचा ऐसा का ऐसा रहता है द्रव्य। **(कालापेक्षित) प्रवाह सामान्य द्रव्य है।** काल अपेक्षा से द्रव्य... द्रव्य... द्रव्य... द्रव्य... ऐसे कायम रहे वह द्रव्य, उसे द्रव्य कहा जाता है। यह एक बोल हुआ।

अब वह द्रव्य जो ऐसा प्रवाहरूप से कायम अनादि-अनन्त... अनन्त रहता है। आत्मा भी ऐसा का ऐसा रहता है, परमाणु भी काल अपेक्षा से ऐसा का ऐसा ऊर्ध्वता सामान्य ऊँचाई-प्रवाह रहता है। उसमें **सहभावी विशेषस्वरूप गुणों में...** रहा हुआ है। क्या कहते हैं? यह आत्मा या एक-एक परमाणु, उसमें अनन्त गुण साथ में रहे हुए हैं। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व ऐसे एक आत्मा में अनन्त गुण ऐसे साथ में, गुण साथ में (रहे हुए हैं)। है? सहभावी—साथ में विशेषस्वरूप। वह सामान्य प्रवाह द्रव्य था। उसमें विशेष भेदरूप दर्शन-ज्ञान-चारित्र अनन्त गुण **विशेषस्वरूप (साथ ही साथ रहनेवाले...)** एक साथ सब गुण रहनेवाले। परमाणु में भी रंग, गन्ध, रस, स्पर्श एकसाथ सहभावी—साथ में रहनेवाले विशेष—उसके भेद, जिसका स्वरूप है, ऐसे गुणों में। वह वस्तु ऐसे गुणों में रही हुई है। समझ में आया? आहाहा! कितनी सादी भाषा में है तो बात ऊँची, परन्तु अब इसे मेहनत करनी नहीं और ऐसी की ऐसी समझण हो जाये। नहीं तो यह वस्तु स्वतन्त्र है, उसके परिणाम... उसमें भी परिणाम सिद्ध करना है, हों! जैसे उन परिणाम बिना का द्रव्य नहीं होता, द्रव्य बिना परिणाम नहीं। यह सिद्ध करने में भी उसे द्रव्य है, वह ऊर्ध्वता सामान्यरूप से रहा है और वह वस्तु द्रव्य में रही हुई है। द्रव्य अर्थात् यह कायम रहे उसमें और वह वस्तु गुणों में रही हुई है। उसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द वे गुण। परमाणु में अस्तित्व, वस्तुत्व, रंग आदि गुण, उनमें वह वस्तु रही हुई है।

तथा क्रमभावी विशेषस्वरूप... अब तीसरा बोल। आत्मा में भी समय-समय में

जो होते परिणाम शुभ, अशुभ या शुद्ध। परमाणु में भी समय-समय में होती काली, लाल, कोमल आदि पर्याय, वह सब क्रमभावी पर्यायें, क्रम से होती विशेषस्वरूप। समझ में आया? वे सहभावी—साथ में रहनेवाले भेदरूप विशेषरूप। यह क्रम-क्रम से होनेवाली पर्याय विशेषरूप क्रमभावी। क्रमभावी विशेष, वे (गुण) सहभावी विशेष। कभी यह पढ़ा भी नहीं होगा। कहाँ पढ़े तो समझ में आये ऐसा है तम्बाकू के कारण। कहो, समझ में आया इसमें? ऊर्ध्वतासामान्य, लो। यह क्या? कहते हैं। किस गाँव की ऊर्ध्वता होगी? ऊर्ध्वता कहाँ रहती होगी? भाई! वस्तु तो ऐसी है। वस्तु द्रव्य में रही हुई अर्थात् कायम प्रवाहरूप रही हुई। अब वह वस्तु सहभावी—साथ में रहे हुए अनन्त गुण, वे क्रम से नहीं। एक साथ सब गुण हैं। यह वस्तु में सहभावी विशेष भेद एक द्रव्य के सहभावी गुण, भेद, उन्हें यहाँ गुण कहा जाता है। उन गुणों में द्रव्य रहा हुआ है, ऐसा कहते हैं, वस्तु।

और दूसरा। अब यह सब परिणाम सिद्ध करना है इसमें। **क्रमभावी विशेषस्वरूप...** आत्मा में भी क्रम-क्रम से होती विशेषस्वरूप पर्यायें। क्रमभावी पर्यायें। देखो, इसमें भी क्रमसर ही है, हों! यहाँ क्रमभावी कहो, क्रमबद्ध कहो, क्रमवर्ती कहो, सब एक ही है। आहाहा! समझ में आया? यह आत्मा वस्तु वह द्रव्यरूप से ऐसे कायम, विशेष गुणरूप से कायम और उसके क्रमरूप से परिणमती है पर्याय, क्रमभावी विशेषस्वरूप उसके परिणाम। देखो! सम्यग्दर्शन के परिणाम उसके द्रव्य के आश्रय बिना नहीं होते। मिथ्यात्व के परिणाम, अब वह मिथ्यात्व और सम्यक् क्रमभावी पर्याय है। मिथ्यात्व के समय समकित नहीं। मिथ्यात्व का क्रम आकर फिर समकित हुआ। वह क्रमभावी पर्याय परिणमन उसका है। वह क्रमभावी विशेष परिणाम, विशेष भेद। वह (गुण) सहभावी भेद था, यह क्रमभावी विशेष भेद, उसमें रही हुई चीज़ है। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं?

क्रमभावी विशेषस्वरूप पर्यायों में रही हुई... पर्यायों में रही हुई। आहाहा! कितनी सादी भाषा में कितना सीधा-सरल रखा है! समझ में आया? आत्मा, एक परमाणु या छहों द्रव्य, वे द्रव्यरूप से कायम रहे, उसमें रही हुई वस्तु और गुण सहभावी गुण, भेदरूप गुण एकसाथ रहे हुए हैं, उसमें भी वस्तु रही हुई है और क्रमभावी

पर्यायें—क्रम-क्रम से होनेवाली पर्याय-अवस्था क्रम-क्रम से (होती) अवस्था, वह क्रमभावी भी विशेष, क्रमभावी वे भेद उसमें रही हुई वस्तु है। समझ में आया? कहो, यह घर में नहीं रही, ऐसा कहते हैं। यह वस्तु कर्म में नहीं रही, ऐसा कहते हैं। उसकी पर्याय में रही हुई वस्तु है, ऐसा कहते हैं। ऐई! कहो, यह मकान-बकान बनावे, उसमें नहीं रही हुई वस्तु, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। बराबर है। घर के परमाणु उसकी पर्याय में परमाणु रहे हुए हैं। उसकी जो पर्याय परिणम रही है, वह उसके कारण से परिणम रही है। ....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं... इनकार किया। उसके परिणाम में रहा हुआ है। हाँ। कुछ नहीं, उसके परिणाम में रहा हुआ है, हाँ, ऐसा कहते हैं। यह बैठा है, वह बराबर बैठा है, क्या कहे? यहाँ नहीं। उसके परिणाम में रहा हुआ है वह। आहाहा!

सर्वज्ञदेव परमात्मा ने देखे हुए पदार्थ की कितनी स्थिति की (बात की है)? ऐसी बात कहीं सर्वज्ञ के अतिरिक्त हो नहीं सकती। समझ में आया? और ऐसी स्पष्टता कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने थोड़े शब्दों में सारे चौदह ब्रह्माण्ड का सार भर दिया है। ऐसा करके उसके विचार पर तो इसे लेना पड़े न! इसके बिना यह पकड़ में नहीं आता। ऐसे बिना भान के समझे बिना हाँ... हाँ... करे, वह कहीं हाँ नहीं है। उसके ख्याल में आना चाहिए कि आत्मा है, वह स्वयं ऊर्ध्व रूप से ऐसे द्रव्य कायम रहनेवाला और उसके गुण जितने हैं एक साथ गुणों में रही हुई वस्तु है और उसकी पर्याय क्रम-क्रम से होती है, क्रमभावी विशेष भेद, उसमें वह वस्तु रही हुई है। क्रम से उसमें परिणाम, दूसरे संयोग निमित्त आये और दूसरा निमित्त हुआ और यहाँ परिणाम दूसरा आया, इसलिए उसके कारण रहा हुआ, उसके कारण यह परिणाम रहे हैं—ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? तब निमित्त बदला, तब परिणाम कैसे बदलते हैं? अरे! सुन न, उसकी क्रमभावी पर्याय ऐसी थी, उसमें वह द्रव्य रहा हुआ है। कहो, ...भाई! वापस घर में पढ़ते हो या नहीं घर में? ... सेठ को बहुत समय नहीं मिलता। अकेला समझ में आये नहीं इसमें, हों। ... पढ़ना, ऐसा होगा? पढ़े तो खबर पड़े कि कहाँ समझ में नहीं आता। और फिर... पढ़ना तो चाहिए न, स्वाध्याय करना चाहिए। बहियों की स्वाध्याय कैसे

करते हैं प्रतिदिन सम्हालते हैं। इतने आये और इतने गये। धूल में भी कुछ नहीं उसमें। हैरान... हैरान है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, वस्तु, उसके द्रव्य में कायम रही हुई, उसके गुणों के विशेष भेद में रही हुई और वस्तु उसके क्रमभावी पर्याय में रही हुई है। किसी के निमित्त में रही हुई, संयोग में रही हुई, ऐसी वस्तु नहीं है। समझ में आया? और संयोग की पर्याय भी दूसरे संयोग में रही हुई है, ऐसा है नहीं। आहाहा! कितना सिद्ध करते हैं! भगवान आत्मा अपनी क्रमभावी जो पर्याय है क्रम-क्रम से होनेवाली, क्रमभावी, देखा! क्रम से होनेवाली, क्रमभाव का उसका भाव क्रम से होनेवाला, ऐसी जो पर्यायों में वह द्रव्य है, उसमें वह द्रव्य है। वह क्रमभावी पर्याय ऐसी कैसे? ऐसे कैसा क्या? उसकी पर्याय क्रम में ऐसी है। इसी प्रकार यहाँ द्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? वह पर के कारण क्रमभावी पर्याय में फेरफार लगता है, यह बात ही मिथ्या और झूठी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

क्रमभावी विशेषस्वरूप... अर्थात् क्रम-क्रम से होनेवाली दशायें, उसका जो विशेषस्वरूप है न, सामान्य द्रव्य का? उसमें—पर्यायों में रही हुई, वह द्रव्य का स्वरूप है, वह वस्तु का स्वरूप है। पहले, परिणाम बिना परिणामी नहीं और परिणामी बिना परिणाम नहीं, ऐसा सिद्ध किया। अब वह वस्तु है, वह द्रव्य-गुण और पर्याय में रही हुई है। यह तीसरे पद की व्याख्या की। समझ में आया? यह तो पहले सामान्य व्याख्या की। परिणाम बिना परिणामी नहीं, परिणाम द्रव्य बिना नहीं, द्रव्य परिणाम बिना नहीं। इतना आया। अब वह वस्तु जो है, वह कायम द्रव्य में रही हुई है, ऐसे वस्तुरूप से। विशेषरूप से गुणों में रही हुई है और क्रमभावी पर्यायों में रही हुई है। ऐसे द्रव्य-गुण और पर्याय के भेद किये। एक ही परिणामी को द्रव्य लिया था, अब यहाँ द्रव्य, गुण और पर्याय के तीन भेद किये। समझ में आया?

अब एक बोल रह गया। उसमें भी परिणामीपना सिद्ध करना है। समझ में आया? यह पर्याय क्रमभाव होती है, ऐसा यहाँ परिणामीपना सिद्ध करना है। टिकती चीज़ परिणामी क्रमभाव से परिणमती है, वह स्वयं के कारण से परिणमती है, उसमें रहा हुआ आत्मा है। परमाणु, एक-एक परमाणु भी ऊर्ध्वता सामान्य को ... द्रव्य में रहा

हुआ और उसके रंग, गन्ध, स्पर्श में अनन्त गुणों में वह परमाणु रहा हुआ, विशेष गुण के भेद में और एक-एक परमाणु में काली, कोमल जो पर्याय हो क्रमभावी—क्रम-क्रम से जो पर्याय हो, उसमें वह परमाणु रहा हुआ है, उसका परिणमन सिद्ध करना है। आत्मा का और परमाणु का छहों द्रव्यों का परिणमन सिद्ध करना है। समझ में आया?

अब चौथा पद। '**अत्थित्तणिव्वत्तो**' अस्तित्व सिद्ध किया है। '**उत्पादव्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्**' ऐसा। समझ में आया? **और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय अस्तित्व से बनी हुई है,...** देखा! प्रत्येक वस्तु—आत्मा, परमाणु, स्कन्ध, एक रजकण, कालाणु। ... परमेश्वर परमात्मा ने छह द्रव्य देखे, वे छह द्रव्य, छह द्रव्य परिणाम बिना होते नहीं और ... अपने द्रव्य-गुण में रहे, उत्पाद-व्यय-ध्रुव अस्तित्व से रहा हुआ है। बने हुए का अर्थ रहा हुआ है। समझ में आया? आत्मा अपनी नयी अवस्था से उपजे, पुरानी अवस्था से जाये, ध्रुव रहे। यह उत्पाद-व्यय-ध्रुव से बना हुआ अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप उसका अस्तित्व है। उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप से उसका अस्तित्व है। उसका अस्तित्व वह उपजने, विनसने और ध्रुवपने उसका अस्तित्वपना है। इन तीन में अस्तित्व समाहित होता है। पर के किसी उत्पाद-व्यय में उसका अस्तित्व समाहित होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

यह उपादान और निमित्त के झगड़े करते हैं न! निमित्त निमित्त में हो। निमित्त उत्पाद-व्यय-ध्रुव में नहीं? निमित्त भी अपनी नयी पर्याय से उपजता है, पुरानी पर्याय से जाता है और ध्रुव (रहता है), उसमें वह है। यहाँ अपने उत्पाद से उपजे, व्यय होकर जाये और ध्रुवरूप से रहे। वह वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रुव से बनी हुई अर्थात्... अस्तित्व है। उत्पाद, व्यय और ध्रुव का अस्तित्व उसका है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव का अस्तित्व, उसका अस्तित्व है। कहो, समझ में आया इसमें? बहुत सादी भाषा है, इसमें कहीं बहुत कठिन भाषा नहीं है। तीन बोल हो गये।

इसलिए वस्तु परिणाम-स्वभाववाली ही है। लो, इन्हें सिद्ध यह करना है। '**अतः परिणामस्वभावमेव**' अन्तिम शब्द है न अमृतचन्द्राचार्य का। इस कारण से वस्तु... इस कारण से अर्थात्? परिणाम बिना की वस्तु नहीं, वस्तु बिना परिणाम नहीं। वस्तु द्रव्य में रही हुई, गुण में रही हुई और पर्याय में रही हुई तथा वह वस्तु उत्पाद-

व्यय और (ध्रुवमयी) अस्तित्व में रही हुई है। उसके अस्तित्व में तीन में रही हुई। इस कारण से वस्तु परिणामवाली है। समझ में आया? **इसलिए वस्तु परिणाम-स्वभाववाली ही है।** वाली 'ही' है, ऐसी भाषा है न? **'परिणामस्वभावम एव'** संस्कृत में ऐसा है। **'एव'** यह कूटस्थ मानते हैं न। यह ... निर्णय क्या किया? निर्णय किसमें होता है? पर्याय में होता है। वह परिणाम है। यह... है, मैं एक हूँ, दो नहीं, (ऐसा) किसमें निर्णय किया? परिणाम में। परिणाम द्रव्य बिना नहीं होते। वह परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला है। अर्थात् ध्रुव भी है और उत्पाद-व्यय है। और वह परिणाम क्रमभावी होकर रहे हुए हैं। उसमें वह द्रव्य रहा हुआ है। समझ में आया? गजब बात, ओहोहो! संक्षिप्त में भी कितना समाहित कर दिया! आत्मा का ... लिया, परिणमित आत्मा है। लो! ... शुभ-अशुभपने परिणमता वह ... आहाहा! समझ में आया?

यह प्रवचनसार है। सर्वज्ञ भगवान के मुख में से निकली हुई दिव्यध्वनि। दिव्यध्वनि कहो या प्रधान वचन कहो। प्रधान वचन कहो या प्रवचन कहो, वे वचन यह हैं।.... समझ में आया? **इसलिए वस्तु परिणाम-स्वभाववाली ही है।** बहुत सरस सिद्ध किया। तीन बोल, चार बोल से। परिणाम बिना द्रव्य नहीं, द्रव्य के आश्रय से परिणाम, ऊर्ध्वतासामान्य द्रव्य, विशेष गुणों का भाव उसमें रहा हुआ द्रव्य, क्रमभावी पर्याय में रहा हुआ द्रव्य और उत्पाद-व्यय-ध्रुव का अस्तित्व है, उससे रहा हुआ है। बना हुआ कहो या रहा हुआ है। परन्तु उसे पर का आश्रय कुछ है नहीं। कहो, भीखाभाई! ...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने सेठ कहते हैं न जुगराजजी, नहीं? उसे है न, कारखाना है। यह कारखाना है परमेश्वर बनाने का। समझ में आया? यह बात जिसे अन्दर निर्विकल्परूप से बैठे, वह परमेश्वर हुए बिना रहता नहीं। परमेश्वर कहाँ परमेश्वर बाहर से लाना है? अपना परिणमन है परमेश्वर का, ऐसा कहते हैं। परमेश्वर—परम ईश्वर की पर्याय का परिणमन स्वयं का है। वह परिणाम अपने द्रव्य बिना होता नहीं। पर के कारण कुछ नहीं। और उस परिणाम बिना का स्वयं नहीं होता और द्रव्य बिना वह परमेश्वर की पर्याय नहीं होती। और वह परमेश्वर की जो पर्याय है, उस पर्याय में द्रव्य कायम रहा हुआ है, क्रमभावी में कायम रहा हुआ है। और उत्पाद-व्यय-ध्रुव।

उत्पाद—परमेश्वर केवलज्ञान की उत्पाद, पूर्व की पर्याय का व्यय और ध्रुव। यह उत्पाद, व्यय और ध्रुव में परमेश्वर द्रव्य रहा हुआ है। आहाहा! समझ में आया? तत्त्वदृष्टि ऐसी है कि सूक्ष्म में सूक्ष्म का एक पर्याय का उसका अंश उस काल का वह स्वतन्त्र उसके कारण से है। यहाँ तो द्रव्य के आश्रय से सिद्ध करना है अभी। समझ में आया? आगे फिर आयेगा। उत्पाद उत्पाद के आश्रय से, व्यय व्यय के आश्रय से। यहाँ तो अभी सिद्ध करते जाते हैं। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ, वह इसके स्वीकार में आवे तो संसार का (भ्रमण) रहे नहीं।

भावार्थ :- जहाँ-जहाँ वस्तु दिखाई देती है... जहाँ-जहाँ वस्तु देखने में आती है, **वहाँ-वहाँ परिणाम दिखाई देता है।** वहाँ-वहाँ पर्याय देखने में आती है। **जैसे-गोरस...** गोरस है न, ... **अपने दूध, दही, घी, छाछ इत्यादि परिणामों से युक्त ही दिखाई देता है।** वह सामान्य गोरस है, वह विशेष परिणामसहित ही दिखाई देता है, ऐसा कहते हैं। गोरस, वह सामान्य है, परन्तु उसके छाछ, दही वह पर्याय है, उस परिणाम बिना का गोरस देखने में नहीं आता। **जहाँ परिणाम नहीं होता, वहाँ वस्तु भी नहीं होती।** जहाँ परिणाम नहीं, पर्याय नहीं, वहाँ वस्तु भी नहीं। दृष्टान्त। **जैसे - कालापन, स्निग्धता...** देखो! काली रंग की अवस्था, कोमल स्पर्श की अवस्था। जहाँ ऐसे **परिणाम नहीं है तो गधे के सींगरूप वस्तु भी नहीं है।** काली, कोमल वह पर्याय है। तो काली, कोमल पर्याय नहीं तो गधे के सींग भी नहीं। उसकी पर्याय नहीं तो सींग भी नहीं। गधे को सींग होते हैं न? काली, कोमल पर्याय है? काली, कोमल पर्याय नहीं तो गधे के सींग भी नहीं। मगनभाई! आहाहा! समझ में आया? वस्तु भी नहीं। क्या कहते हैं? जैसे परिणाम बिना गोरस दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार परिणाम बिना वस्तु देखने में नहीं आती। परिणाम अर्थात् दूध, दही, छाछ के परिणाम बिना गोरस दिखाई देता है कभी? उसी प्रकार काला, कोमल परिणाम बिना का गधे का सींग होता है? काला, कोमल नहीं, इसलिए सींग भी नहीं, सींग भी होते नहीं। समझ में आया इसमें?

इससे सिद्ध हुआ कि वस्तु परिणाम रहित कदापि नहीं होती। वस्तु हो और परिणाम न हो, ऐसा नहीं होता। गधे के सींग नहीं, क्यों? कि उसकी काली, कोमल पर्याय नहीं। परिणाम नहीं, इसलिए वस्तु होती नहीं। **जैसे वस्तु परिणाम के बिना नहीं**

होती, उसी प्रकार परिणाम भी वस्तु के बिना नहीं होते... लो! परिणाम का आधार वस्तु न हो और परिणाम हो, ऐसा नहीं होता। **क्योंकि वस्तुरूप आश्रय के बिना...** वस्तुरूप आधार बिना... उसका आधार वह वस्तु कही, हों! उसके परिणाम का आधार कोई परचीज़ नहीं। कर्म का उदय का आधार पाकर विकार होता है, ऐसा इनकार करते हैं। उसके परिणाम का आधार द्रव्य है, इसलिए विकार होता है। समझ में आया?

आश्रय के बिना परिणाम किसके आश्रय से रहेंगे? गोरसरूप आश्रय के बिना... गोरस न हो और दूध, दही दिखाई दे। सामान्य गोरस न हो और दूध, दही दिखाई दे, ऐसा कभी होता है? **इत्यादि परिणाम किसके आधार से होंगे?** इसलिए परिणाम द्रव्य के आधार से होते हैं और द्रव्य परिणाम बिना हो नहीं सकता। कहो, यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! जेठालालभाई! यह तो लॉजिक से—न्याय से बात है। पकड़ तो छोड़... तेरी स्वतन्त्रता। मेरे परिणाम पर से होते हैं और पर के परिणाम मुझसे होते हैं, मैं दूसरे को तिरा दूँ, मेरे तिरने के परिणाम दूसरे से होते हैं।

सम्यग्दर्शन के परिणाम का आधार आत्मा है, ऐसा कहा यहाँ। सम्यग्दर्शन के परिणाम कर्म का क्षयोपशम है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। दर्शनमोह के उदय का अभाव, वह सम्यग्दर्शन के परिणाम उसके आश्रय से होते हैं? नहीं। सम्यग्दर्शन के परिणाम का आधार द्रव्य है। आहाहा! केवलज्ञान का आधार वज्रवृषभसंहनन नहीं, मनुष्यदेह नहीं। समझ में आया? तथा उस केवलज्ञान का आधार पूर्व की चार ज्ञान की पर्याय नहीं। केवलज्ञान का आधार द्रव्य, ऐसा कहते हैं यहाँ। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय—परिणाम द्रव्य बिना नहीं, द्रव्य के आश्रय बिना नहीं और उस द्रव्य बिना परिणाम होते नहीं और परिणाम बिना का द्रव्य रहता नहीं। आहाहा! कहो, पकड़ में आता है या नहीं, जादवजीभाई? यह तो दो ... साथ में आये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धीरे-धीरे तो कहा है। इसमें कहाँ उतावल से कहा है? रात्रि में सेठ नहीं आवे, इसलिए पूछते हैं। ... रखे थोड़ा। करना तो यह है। समाजभूषण, बुन्देलखण्ड के राजा उसमें कुछ दिवालिया नहीं, ऐसा कहते हैं। उसके परिणाम के आधार से द्रव्य और द्रव्य के आधार से परिणाम वहाँ वह है। दूसरा कहीं बाहर में नहीं।

बाहर में कहीं है ही नहीं वह। आहाहा! अन्दर में से बैठना चाहिए, हों! ऐसे का ऐसा ऊपर से नहीं। शरीर में भी नहीं, कर्म में भी नहीं, कहीं नहीं। शरीर की पर्याय का आधार परमाणु शरीर के। आत्मा के परिणाम का आधार अपना द्रव्य। शरीर के आधार से आत्मा है ही नहीं। और इस शरीर के परिणाम ऐसे टिकते हैं, वे आत्मा के कारण से है ही नहीं। आत्मा निकल जाये, फिर ऐसा हो। यह हुआ उसके परिणाम का आधार उसके परमाणु हैं, आत्मा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। ... चढ़ जाता है न? ... नहीं। सुन न! उस परिणाम का आधार उसके परमाणु हैं। ... आधार है? और उसके आधार से ऐसे टिका हुआ है? समझ में आया? वस्तु है न! इसकी तो यह बात है। न्यालभाई! यह तो न्याल होने की बात है। न्याल होने की बात है यह। हैरान हो गया है अनादि से पराधीन मान-मानकर। अपने द्रव्य को देखा नहीं, अपने परिणाम की जाति मुझसे होती है, उसे कभी देखा नहीं। बाहर ही गाड़ियाँ हाँकी। पण्डितों के साथ चर्चा करो। अब इसमें क्या चर्चा करे? किसके साथ करना? अरे! भगवान! क्या करे? इस बात की ... नहीं, है तो बहुत संक्षिप्त। परन्तु इस बात का जहाँ श्रवण ही नहीं आया, समझ में आया? और इसके बिना इसके ख्याल में यह बात आयी नहीं। इसलिए इसे ऐसा लगता है। अरेरे! यह तो एकान्त है। तो कहे भगवान को कि एकान्त है। देखो, अब यहाँ कहते हैं, तेरे परिणाम तेरे द्रव्य के आश्रय से होते हैं, ले। पर के आश्रय से नहीं, ऐसा भगवान कहते हैं। अनेकान्त करो। लो! समझ में आया? अनेकान्त अर्थात् क्या परन्तु? अपने से परिणाम होते हैं और पर से नहीं होते, इसका नाम अनेकान्त है। अपने से होते हैं और पर से होते हैं तो पर ने क्या किया? पर उसके परिणाम बिना का द्रव्य है? और यह अपने परिणाम बिना का था तो उसने इसके परिणाम किये? कहो, हीराभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा कहते हैं। परिणाम का आधार द्रव्य है। वहाँ देख। यहाँ परिणाम द्रव्य आश्रय बिना होते नहीं और अकेला द्रव्य भी परिणाम बिना होता नहीं। आहाहा!

और... अब यह दो पद की व्याख्या की। अब तीसरे पद की। **वस्तु तो द्रव्य-गुण-पर्यायमय है।** तीसरे बोल की। वस्तु तो प्रत्येक वस्तु द्रव्य-गुण-पर्याय है। आत्मा हो, परमाणु हो या कालाणु हो। द्रव्य, गुण और पर्याय। अब द्रव्य की व्याख्या सादी भाषा में (करते हैं)। **उसमें त्रैकालिक ऊर्ध्व प्रवाह-सामान्य द्रव्य है,...** द्रव्य उसे कहते हैं द्रव्य कि त्रिकाली—तीनों काल में ऊर्ध्वता-ऊँचापन रहना, ऐसा प्रवाहसामान्य, प्रवाहसामान्य उसे द्रव्य कहा जाता है। आत्मा... आत्मा... आत्मा... कायम परमाणु भी परमाणु ... कायम रहे। अनादि-अनन्त... अनादि-अनन्त। समझ में आया?

साथ ही साथ रहनेवाले भेद, वे गुण हैं,... आत्मा के और परमाणु के अथवा छहों द्रव्यों के, एक समय में साथ रहनेवाले। गुण एक पहला हो और दूसरा गुण बाद में हो, ऐसा होता नहीं। ज्ञान पहले अन्दर रहे और दर्शन बाद में रहे और चारित्र बाद में रहे गुण के स्वभाव में—ऐसा नहीं होता। एक समय में सभी गुण साथ रहते हैं। द्रव्य के साथ रहते हैं, ऐसा नहीं, हों! उसकी बात नहीं अभी। ये गुण साथ-साथ रहनेवाले भेद, वे गुण हैं विशेष हैं। **तथा क्रमशः होनेवाले भेद वे पर्यायें हैं।** क्रम-क्रम से होती अवस्थायें, परमाणु में या आत्मा में, वे उसकी पर्यायें हैं। **ऐसे द्रव्य, गुण और पर्याय की एकता से रहित कोई वस्तु नहीं होती।** पर्याय अलग हो और द्रव्य-गुण अलग रहे, ऐसा नहीं होता।

दूसरी रीति से कहा जाये तो,... वह चौथा पद का। **वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय है अर्थात् वह उत्पन्न होती है,...** एक समय की पर्याय उपजती है, पूर्व की पर्याय **विनसती है...** और ध्रुवरूप से **स्थिर रहती है। इस प्रकार वह द्रव्य-गुण-पर्यायमय और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय होने से, उसमें क्रिया (परिणमन) होती ही रहती है।** यह सिद्ध करना है। उस-उस द्रव्य में इस कारण से परिणमन हुआ ही करता है। **इसलिए परिणाम वस्तु का स्वभाव ही है।** कहो, समझ में आया इसमें? यह चारित्र समझाते हुए उसके परिणाम में वह परिणमा है उस धर्म से। आत्मा धर्म हुआ, ऐसा बतलाना है। समझ में आया? और यह चारित्र की ... होवे तो मोक्ष होता है और उसमें जरा राग रह जाये तो स्वर्ग होता है। परन्तु वह अपने परिणाम के कारण है, ऐसा सिद्ध करना है। शुभरूप से परिणमा है यह वह और शुद्धरूप से हो तो भी वह। शुद्धपना होने से चारित्र

धर्म हुआ, शुभपने होने से सराग—राग का भाग हुआ। वह तो उसके कारण से (हुआ)। पर के कारण से कर्म का—चारित्रमोह का जरा उदय आया संज्वलन का, इसलिए उसके कारण राग रह गया ? नहीं। ऐसा किसने कहा तुझे ? छठवें गुणस्थान में संज्वलन चार चौकड़ी का तीव्र उदय हो और फिर सातवें में मन्द हो जाये, इसलिए यहाँ परिणाम बदले ? नहीं। ऐसा किसने कहा तुझे ? छठवें में संज्वलन के राग का उदय शुभ है तेरे कारण से। सातवें में जाने पर उसका अभाव हो जाता है अथवा मन्द हो जाये, वह भी तेरे कारण से, पर के कारण से नहीं। समझ में आया ? इसलिए परिणाम बदलना, उत्पाद-व्ययरूप होना, परिणाम द्रव्य बिना नहीं होते, वे परिणाम क्रमभावी होते हैं, ऐसा परिणाम वस्तु का स्वभाव है, लो। यह सिद्ध किया। दसवीं (गाथा हुई)। अब ग्यारहवीं कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ६, गुरुवार, दिनांक १२-०९-१९६८
गाथा - ११-१२, प्रवचन - १०

प्रवचनसार, ज्ञानतत्त्व अधिकार। दस गाथा पूरी हुई। ११वीं। क्या अधिकार चलता है यह ? आचार्य ने पहले सम्यग्दर्शन-ज्ञान मुख्य में, फिर साम्यभाव अंगीकार किया। सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित शुद्ध उपयोगरूपी साम्यभाव ग्रहण किया, यह चारित्र। उस चारित्र को अंगीकार किया है और ऐसा चारित्र का स्वरूप है। ... व्याख्या चलती है। शुद्ध उपयोगरूपी परिणाम, धर्म के परिणाम वे कैसे हैं और वह धर्म परिणाम ... है ... संयोग का भाव कैसा है और उसे क्या होता है, यह वर्णन करते हैं। समझ में आया ?

★ ★ ★

गाथा - ११

जिनका चारित्रपरिणाम... अर्थात् आत्मा के सम्यग्दर्शन और ज्ञानसहित चारित्र के सहित की रमणता के परिणाम तो हैं, उसके **साथ सम्पर्क (सम्बन्ध) है, ऐसे जो शुद्ध और शुभ (दो प्रकार के) परिणाम हैं...** देखो! चारित्र के परिणाम तो हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानसहित स्वरूप का, तीन कषाय के अभाव के चारित्ररूप परिणाम हैं। उसे शुद्ध उपयोग के परिणाम के साथ सम्बन्ध है और शुभ उपयोग के साथ सम्बन्ध है। है ? ऐसा जो सम्बन्ध है, **ऐसे जो शुद्ध और शुभ परिणाम हैं...** अर्थात् शुद्ध उपयोग और शुभ उपयोग। **उनके ग्रहण...** अर्थात् कि चारित्र परिणामसहित का शुद्ध उपयोग, वह ग्रहण करनेयोग्य है और चारित्र के परिणाम के साथ का शुभ उपयोग जो है, वह त्याग करनेयोग्य है। **उनका फल विचारते हैं:- (शुद्ध परिणाम के ग्रहण और शुभ परिणाम के त्याग के लिये) उनका फल विचारते हैं:-** समझ में आया इसमें ? देखो, गाथा।

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपयोगजुदो।
पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो य सग्गसुहं ॥११॥

धर्म परिणमित आत्मा यदि, शुद्धोपयोग से युक्त अहो!।
शिवसुख लहे, किन्तु शुभ-उपयोगी तो सुर-वैभव पायें ॥११॥

टीका :- जब यह आत्मा धर्मपरिणत स्वभाववाला होता हुआ... धर्मपरिणत स्वभाववाला वर्तता हुआ। समझ में आया? यह चारित्र की व्याख्या है। समयसार में दर्शनप्रधान व्याख्या है, इसमें ज्ञानप्रधान में चारित्र की व्याख्या अभी चलती है। मुनि है, उसे आत्मा का ज्ञान है, आत्मा का दर्शन है सम्यक्। एक राग के कण का मैं कर्ता नहीं, देह की क्रिया छोड़ना-ग्रहण करना मुझमें नहीं है, ऐसा अन्तर में सम्यग्दर्शन और ज्ञानसहित स्वरूप की चारित्रदशा भी तीन कषाय के अभाववाली हुई है। **यह आत्मा धर्मपरिणत...** धर्म अर्थात् चारित्र ऐसे **परिणत स्वभाववाला होता हुआ...** जिसे चारित्र के परिणाम हैं। सम्यग्दर्शन के, सम्यग्ज्ञान के और चारित्र के परिणाम हैं, ऐसा वर्तता हुआ, अपने पुरुषार्थ से वर्तता हुआ, ऐसा। समझ में आया?

शुद्धोपयोग परिणति को धारण करता है... देखो, यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानसहित और धर्मपरिणत अर्थात् चारित्र की पर्यायवाला जीव **शुद्धोपयोग परिणति को धारण करता है...** वहन करे अर्थात् शुद्धोपयोग को टिकावे। शुद्ध उपयोग है, अशुभ तो होता नहीं, शुभ है नहीं। चैतन्य के शुद्ध उपयोग में रमे, टिके, वहन करे तब। समझ में आया? कैसे हुई गड़बड़ और? नये आये इसलिए। थोड़े से भी पीछे से आवे। पहले चला जाये। कहो, समझ में आया इसमें? क्या कहा यह?

जब यह आत्मा धर्मपरिणत स्वभाववाला वर्तता हुआ अर्थात् कि दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र के परिणामवाला वर्तता हुआ **शुद्धोपयोग परिणति को धारण करता है...** देखो, उस काल में उसे शुद्ध उपयोग (वर्तता है)। शुभ के रहित शुद्ध आत्मा के आचरणवाला शुद्ध उपयोग में ध्याता, ध्यान और ध्येय (का भेद) भूलकर आत्मा को शुद्ध उपयोग की परिणति को टिकावे, बहे, प्राप्त करे, **तब, जो विरोधी शक्ति से रहित होने के कारण...** चारित्र। समझ में आया? तब चारित्र ऐसा है कि **विरोधी शक्ति से रहित होने के कारण...** शुभभाव है, वह तो विरोधी शक्तिवाला है और जब दर्शन-ज्ञानसहित शुद्ध उपयोग में है, तब विरोधी शक्तिरहित होने के कारण चारित्र। समझ में आया? **अपना कार्य करने के लिये समर्थ है...** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानसहित चारित्र के परिणाम धर्म परिणत है, उसके साथ शुद्ध उपयोग के परिणाम यदि हों तो उस चारित्र से विरुद्ध कार्य होना उसे नहीं है। **अपना कार्य करने के लिये समर्थ है...** अस्ति-नास्ति की। क्या

कहा ? कि चारित्र के परिणाम के साथ शुद्ध उपयोग के यदि परिणाम हों तो वह विरोधी शक्तिरहित होने के कारण। समझ में आया ? एक। और अपना कार्य करने को समर्थ है। विरोधी कार्य करने की शक्ति नहीं, शुभ नहीं, अकेला शुद्ध उपयोग है, तब अपना कार्य करने को समर्थ है। चारित्र का शुद्ध उपयोग अपना मोक्ष कार्य करने को समर्थ है। समझ में आया ?

प्रवचनसार चारित्रप्रधान और ज्ञानप्रधान कथन है। ज्ञान द्रव्य को... दृष्टि द्रव्य की है और ज्ञान भी द्रव्य को ज्ञेय करके उत्पन्न हुआ है, तथापि ज्ञान, चारित्र के परिणाम कैसे हैं, उसे भी ज्ञान जानता है। समझ में आया ? **विरोधी शक्ति से रहित होने के कारण अपना कार्य करने के लिये समर्थ है...** वह चारित्र जो यह चारित्र। चारित्र तो पहले लिया था, धर्म परिणत चारित्र। परन्तु उस चारित्र के साथ शुद्ध उपयोग के परिणामवाला चारित्र होवे तो वह विरोधी कार्य करने में समर्थ नहीं, अपना कार्य करने में समर्थ है। अर्थात् शुद्ध उपयोग से निर्वाण हो, वह शुद्ध उपयोग करने की सामर्थ्यवाला है। समझ में आया ? लो ! शुद्ध उपयोग, वह मोक्ष का कारण है। सम्यग्दर्शन–ज्ञानसहित चारित्र के परिणाम हों, उसके साथ शुद्ध उपयोग के परिणाम यदि हों तो वह मोक्ष करने को समर्थ है। समझ में आया ? आहाहा ! चारित्र के परिणाम (के साथ) शुद्ध उपयोग हो तो मोक्ष होता है। शुभ हो तो मोक्ष होता नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। उस समय शुभ हो तो मोक्ष नहीं होता। वह मोक्ष का कारण नहीं। शुभ तो पुण्यबन्ध का कारण है। दर्शन, ज्ञान और चारित्र की परिणति होने पर भी यदि शुभ उपयोग हो तो चारित्र अपना कार्य मोक्ष का नहीं कर सकता। समझ में आया ? आहाहा !

ऐसा चारित्रवान होने से,... देखो ! **अपना कार्य करने के लिये समर्थ है, ऐसा चारित्रवान होने से,...** ऐसा। चारित्र तो है परन्तु शुद्ध उपयोग में चारित्रवाला होने से, शुद्ध उपयोग के परिणामवाला चारित्रवाला होने से। देखो कहते हैं **(वह) साक्षात् मोक्ष को प्राप्त करता है;...** समझ में आया ? वह शुद्ध उपयोग ही मोक्ष का कारण है और वह शुद्ध उपयोग दर्शन, ज्ञान और चारित्र के परिणाम हों, उसे यह शुद्ध उपयोग होता है। समझ में आया ? **और जब वह धर्मपरिणत स्वभाववाला होने पर भी...** यह विवाद अब यहाँ से था। वापस लिया कि अब **जब वह धर्मपरिणत स्वभाववाला होने पर भी...** है

तो धर्मपरिणत स्वभाववाला। है तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और तीन कषाय के अभाव का चारित्र का परिणमन, परिणति पर्याय है। ऐसा होने पर भी। **शुभोपयोग परिणति के साथ युक्त होता है,...** यदि वह पंच महाव्रत के परिणाम, साधु के अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प (आदि) शुभ के साथ यदि जुडे तो वह चारित्र मोक्ष का कारण हो नहीं सकता। आहाहा! समझ में आया?

शुभोपयोग परिणति के साथ युक्त होता है,... अपने पुरुषार्थ से वापस, ऐसा। **तब जो विरोधी शक्तिसहित होने से...** वह चारित्र। (शुभभाव) विरोधी शक्ति है। शुभभाव से तो पुण्य बँधता है। अबन्ध परिणाम ऐसे मोक्ष के होंगे नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह साधुपना कैसा होता है और मोक्ष का कारण साधुपना उसका यहाँ वर्णन चलता है। समझ में आया? अकेले सम्यग्दर्शन और ज्ञान से तो मोक्ष होता नहीं, परन्तु शुद्ध चारित्र अमुक परिणति होने पर भी शुद्ध उपयोग बिना मोक्ष होता नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। मगनभाई! क्या है? कुछ खाना, पीना और लहर करना और मोक्ष जाना, ऐसा है? कहते हैं कि बहुत कठिन है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, विरोध करनेवाला है, विरोध करनेवाला है। साधु के अट्ठाईस मूलगुण हैं, शुभ पंच महाव्रतादि, वह चारित्र के विरोधी हैं, विरोधी हैं। वह चारित्र के परिणाम नहीं। अभी इसकी बड़ी गड़बड़ है। अभी तो सम्यग्दर्शन नहीं, ज्ञान नहीं और अकेले महाव्रत के परिणाम, वह चारित्र और वह मुक्ति का कारण। ऐई! कान्तिभाई! गाँव में बहुत चला। आर्यिका आवे और यह करे, प्रतिमायें और यह लिये। परन्तु अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं और प्रतिमा कहाँ से आयी? समझ में आया? फिर अभिग्रह धारण करे कि मुझे यहाँ चलता है और यहाँ नहीं चलता। वे सब कर्ताबुद्धि के मिथ्यात्वभाव हैं। समझ में आया? यहाँ तो मिथ्यात्वभाव टला हो, क्रिया त्याग-ग्रहण मुझमें नहीं, मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ऐसा भान होकर, तदुपरान्त स्वरूप की रमणता का चारित्र हुआ हो स्वभाव की जाति का, उसे भी यदि शुभभाव साथ में हो तो वह मोक्ष का कारण नहीं होता। समझ में आया? है? देखो न!

धर्मपरिणत स्वभाववाला होने पर भी शुभोपयोग परिणति के साथ युक्त होता

है, तब जो विरोधी शक्ति सहित होने से... चारित्र। वह चारित्र अभी तो शुभ परिणामवाला है, विरोधी शक्तिवाला है। है नीचे? **दान, पूजा, पंच-महाव्रत, देव-गुरु-धर्म प्रति राग इत्यादिरूप जो शुभोपयोग है...** नीचे है। **वह चारित्र का विरोधी है।** शोभालालजी! अमरचन्दजी! अभी तो दर्शन-ज्ञान का ठिकाना नहीं होता और यह पंच महाव्रत के परिणाम, वह मेरा चारित्र। समझ में आया? **विरोधी है, इसलिए सराग (शुभोपयोगवाला) चारित्र विरोधी शक्ति सहित है...** चारित्र के परिणाम हैं, तथापि शुभ उपयोग है, इससे सरागचारित्र वह विरोधी शक्ति अर्थात् मोक्ष से विरोधी शक्ति है। इसलिए वीतराग चारित्र विरोधी शक्तिरहित है, यह (शुभराग) विरोधी शक्तिसहित है। **और वीतराग चारित्र विरोधी शक्ति रहित है।** समझ में आया?

सम्यक् आत्मा का दर्शन, आत्मज्ञान तदुपरान्त चारित्र की परिणति में स्वरूप की स्थिरता भी जगी है, वीतराग परिणति, उस वीतराग परिणति के साथ यह जो शुद्ध उपयोग यदि हो तो वीतरागभाव सच्चा, तो उससे मुक्ति होती है और वीतराग परिणति तीन कषाय का अभाव हुआ होने पर भी, यदि शुभभाव साथ में हो तो बन्ध का कारण है। मोक्ष, वह अबन्ध है; तब यह (राग) बन्ध है। उससे विरुद्ध है। समझ में आया? आहाहा! मुनि के छठवें गुणस्थान में दान, पूजा आदि या भावपूजा, भगवान के निकट विकल्प हो न पूजा का, पंच महाव्रत, देव-गुरु के प्रति राग शुभ उपयोग है, वह चारित्र का विरोधी है। समझ में आया?

शुभोपयोग परिणति के साथ युक्त होता है, तब जो विरोधी शक्ति सहित होने से स्वकार्य करने में असमर्थ है... कहो, चारित्र के परिणाम दर्शनसहित होने पर भी यदि शुभ उपयोग हो तो चारित्र से जो मुक्ति होनी चाहिए, वह उससे नहीं होती। शुभ उपयोग की दखल बीच में आयी। कहो, समझ में आया? पंच महाव्रत के परिणाम (आदि) शुभ उपयोग, वह चारित्र को दखल है, विरोधी शक्ति है, ऐसा कहते हैं। अब वे कहे, भगवान ने महाव्रत पालन किये थे न! कुन्दकुन्दाचार्य ने पालन किये थे। अरे! पाले क्या? सुन न! वह तो विकल्प आया था। आया था, उसे जानते हैं कि यह विरोधी शक्तिवाला तत्त्व है। मेरे आत्मा को मोक्ष का कार्य करे, ऐसा इसमें कारण नहीं है। समझ

में आया ? साधुपद समझना, प्रगट होना, वह तो अलौकिक बात है, परन्तु साधुपद कैसा होता है, उसे समझना, वह भी अलौकिक बात है। समझ में आया ?

जिसे मोक्ष करना है, उसे चारित्र प्राप्त किये बिना मोक्ष होगा ? समझ में आया ? वह चारित्र कैसा ? कि ऐसा। कहो, सेठ ! कठिन, बठिन और यह लहर करके जाना, ऐसा नहीं मोक्ष होगा, ऐसा कहते हैं। लहर अर्थात् ? यह खाना, पीना और बँगले में रहकर हो, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। होता तो आनन्द से है। चारित्र तो आनन्द है। भगवान आत्मा चारित्र आनन्ददाता है, वह कहीं दु:खदाता नहीं। आहाहा !

वस्तुस्वरूप भगवान आत्मा दर्शन, ज्ञान तो प्रगट हुए हैं, कहते हैं। तथापि चारित्र की परिणति कितनी ही प्रगट हुई है। है, उसमें यदि यह शुभ उपयोग साथ में जुड़े तो विरुद्ध शक्ति का कारण है वह। विरुद्ध अर्थात् ? मोक्ष से विरुद्ध बन्ध। वह बन्ध का कारण है। आहाहा ! समझ में आया ? **स्वकार्य करने में असमर्थ है...** चारित्र का स्वकार्य तो वास्तव में मोक्ष है, ऐसा कहते हैं। चारित्र का वास्तविक कार्य तो मोक्ष है। उसके साथ यदि यह शुभ परिणाम आये, यहाँ चारित्र, दर्शन-ज्ञान होने पर भी यदि शुभ रहा तो चारित्र का मोक्ष कार्य है, उसे करने में असमर्थ है। वह चारित्र मोक्ष नहीं कर सकता। ऐई ! न्यालभाई ! कहो, समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु : हेयभाव से....

पूज्य गुरुदेवश्री : हेय भले परन्तु, हेय भी, तथापि शुद्ध उपयोग मोक्ष का कारण है। यह तो हेय को आदरणीय मानता है। यह तो शुभ उपयोग को आदरनेयोग्य है (ऐसा मानता है), वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? महाव्रत के विकल्प शुभभाव, वे आदरणीय हैं, मुझे लाभदायक हैं, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसकी दृष्टि मिथ्यात्व, उसका ज्ञान मिथ्यात्व। समझ में आया ? और शुभ परिणाम भी वह मिथ्याचारित्र है। समझ में आया ? बाह्य में नग्न मुनि हो, अट्ठाईस मूलगुण भी हो, तथापि वह बन्ध का कारण है। अन्दर में अन्तर दृष्टिसहित में ज्ञान में अन्दर शुद्ध उपयोग का परिणमन हो, वह मोक्ष का कारण है। मोक्ष का कारण वह है और वह कारण कार्य यह है। बीच में जो शुभ है, वह बन्ध का कारण है, अबन्ध से विरुद्ध शक्ति का है। समझ में आया ?

और कथंचित् विरुद्ध कार्य करनेवाला है,... अस्ति-नास्ति की। दर्शन, सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र की परिणतिवाला होने पर भी, यदि शुभ उपयोग वर्तमान में हो तो वह विरुद्ध कार्य करने को समर्थ है, स्वकार्य करने को समर्थ नहीं। एक। परन्तु किसी प्रकार से विरुद्ध करनेवाला है, पुण्यबन्ध का कारण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कथंचित् अर्थात् किसी प्रकार से विरोध करनेवाला है वह। विरुद्ध कार्य अर्थात् बन्ध का कारण है। इतनी अपेक्षा से शुभ परिणाम बन्ध का कारण है। कहो, समझ में आया? अभी नौ तत्त्व में संवर-निर्जरा के परिणाम कैसे होते हैं और आस्रव के परिणाम कैसे होते हैं, उसकी खबर नहीं होती और उसे सम्यग्दर्शन हो, (ऐसा नहीं होता)। कहो, समझ में आया इसमें? सम्यग्दर्शन नहीं होता। उसे संवर-निर्जरा कितनी जाति के कैसे परिणाम हैं और उसमें आस्रव कौनसा भाग है, उसकी जिसे खबर नहीं, हेय-उपादेय की खबर नहीं, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान कहाँ से होगा? सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना चारित्र के परिणाम होते नहीं और चारित्र के परिणाम होने पर भी शुद्ध उपयोग न हो तो भी मुक्ति नहीं होती, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

किसी प्रकार से **विरुद्ध कार्य करनेवाला है,...** ऐसा। अमुक परिणाम तो है, परन्तु वह शुभ है, वह बन्ध का कारण है। **ऐसे चारित्र से युक्त होने से,...** देखा! वह विरुद्ध करनेवाला और अपना कार्य नहीं करनेवाला, ऐसा चारित्र होने से। भाषा देखो! चारित्र तो है। आहाहा! **जैसे अग्नि से गर्म किया हुआ घी...** अग्नि से गर्म हुआ घी। देखो! वह **किसी मनुष्य पर डाल दिया जावे तो वह उसकी जलन से दुखी होता है,...** है तो घी, परन्तु अग्नि से गर्म हुआ, वह छिड़के तो अग्नि का काम करे। जले, ऐसा काम करता है, कहते हैं। **उसी प्रकार वह स्वर्ग सुख के बन्ध को प्राप्त होता है,...** आहाहा! सम्यग्दर्शन, अनुभव का ज्ञान, चारित्र के कितने ही परिणाम (हों), परन्तु यदि उसमें शुभराग और शुभ उपयोग रह जाये तो वह गर्म घी जैसा है। जलेगा। स्वर्ग के सुख से जलेगा, ऐसा कहते हैं। देखो! **स्वर्ग सुख के बन्ध को प्राप्त होता है,...** स्वर्ग के सुख को प्राप्त करेगा, परन्तु वह आकुलता अंगारा है। समझ में आया? आहाहा! कितना मार्ग वीतराग का...!

इसलिए शुद्धोपयोग उपादेय है... यह आत्मा के दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित में

शुद्ध उपयोग वही आदरणीय है, वह ग्रहण करनेयोग्य है, वह प्रगट करनेयोग्य है। शुभ उपयोग हेय है। मुनि के छठवें गुणस्थान में पंच महाव्रत के विकल्प जो उठें, वह भी छोड़नेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! कहो, भगवानभाई! यहाँ तो कुछ खबर नहीं होती दर्शन-ज्ञान की और यह विकल्प उठावे शुभ (और कहे कि) यह है धर्म जाओ। कहो, देखो, कितना स्पष्टीकरण! स्पष्ट तो कहा है इसमें। शुद्ध उपयोग उपादेय है, शुभ उपयोग हेय है। उसके बदले यदि शुभ उपयोग है, उसे आदरणीय माने और शुद्ध का तो ठिकाना न हो तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? वह शुभभाव भी करनेयोग्य है, पालनेयोग्य है, रखनेयोग्य है—ऐसा जो मानता है वह मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : यह तो मुनियों के लिये है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनियों के लिये है न। तो किसके लिये? गृहस्थ को करना सम्यग्दर्शन। यह मुनिपना ऐसा हो और रागादि मुझे हेय है, शुद्ध आत्मा उपादेय है, ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए। हो, हो वह तो सब...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सच्चे मुनि को उसका मार्ग उसका पहला दर्शन में आया है न! सम्यग्दर्शन में गृहस्थाश्रम में राग पुण्य है, वह हेय है, मेरा आत्मा शुद्ध, वह उपादेय है, प्रगट करने के लिये दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह उपादेय है। ऐसा प्रगट करने के लिये यह है। ऐसा पहले सम्यग्दर्शन में हुआ होता है। सम्यग्दर्शन में, ऐसा कि बाद के परिणाम आदरणीय है और मुझे यह शुद्ध उपयोग की कुछ आवश्यकता नहीं, ऐसा है उसमें? वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? वह तो दर्शन में आ गया पहले। सम्यग्दर्शन में शुभ उपयोग वह बन्ध का कारण है, शुद्ध उपयोग वह मोक्ष का कारण है और शुद्ध उपयोग का कारण द्रव्य है। यह तो पहले दर्शन में आ गया है और ऐसा जो दर्शन में हो तो गृहस्थी मिथ्यादृष्टि है। गृहस्थी कैसा? समक्त्वी कैसा? कहो, सेठ!

मुमुक्षु : चौथे काल के लिये है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे के लिये, देखा! ठीक कहा। चौथे काल में नहीं, सेठ! यह तो पंचम काल के मुनि कहते हैं। ठीक भाई ने... चौथे काल का नहीं। ऐसा कि

चौथे काल में मोक्ष होता है, तब यह है, अभी तो मोक्ष नहीं। ऐसा नहीं है, यह पंचम काल के मुनि स्वयं दो हजार वर्ष... समझ में आया? पहले हो गये न कुन्दकुन्दाचार्य? ५००-६०० वर्ष बाद—भगवान के बाद, लो। और वह सनातन पाँचवें काल का मार्ग यह तो वर्णन करते हैं पाँचवें काल के साधु के लिये। अमृतचन्द्राचार्य तो अभी हजार वर्ष पहले हुए, ९०० वर्ष पहले। वे स्वयं कहते हैं कि यह मार्ग है, अभी भी। समझ में आया? हमारे भी यदि शुभराग रहा और बन्ध पड़ा (तो) स्वर्ग में जाना पड़ेगा, तो दु:ख में जाना पड़ेगा—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसकी प्रार्थना धर्मी की शुद्ध उपयोग की होती है, भावना शुद्ध उपयोग की होती है, तथापि बीच में (शुभभाव) रह जाता है, पुण्य बाँधता है, स्वर्ग में जायेगा, दु:ख में जायेगा। दु:ख के अंगारे में सिंकेगा वहाँ। स्वर्ग में कहीं धूल में सुख नहीं।

भगवान आत्मा के आनन्द में से निकलकर जितना इन्द्राणी और फलाना के ऊपर लक्ष्य जायेगा, वह सब आकुलता की अग्नि है। समझ में आया? वह गर्म हुआ घी, आहाहा! जलायेगा। उपदेश तो बहुत अच्छा है गर्म घी जैसा, ऐसा कहते थे। हमारे वहाँ बोटाद, गुलाबचन्दजी थे न। गुलाबचन्दजी ब्रह्मचर्य का बहुत कड़क उपदेश करते थे। एक बार फिर बोले होंगे। उपदेश तो बराबर तुम्हारा गर्म घी जैसा है। ब्रह्मचर्य का उपदेश करते थे गुलाबचन्दजी। तुमने देखा है या नहीं? तुम्हारे यहाँ थे (संवत्) १९६९ में पहले। सुन्दर वोरा के सामने, सुन्दर वोरा के सामने। १९६९ में थे। उपदेश ऐसा दे ब्रह्मचर्य का जब देते हों तब... एक ओर तुम्हारी स्त्री जणे और एक ओर तुम्हारे पुत्र की बहू जणे और एक ओर पुत्री जणे। एक घर में यह क्या तुम्हारा ठिकाना है? ऐसा कहते थे जरा कठिन। वे कहते। एक ओर तुम्हारी स्त्री को पुत्र हो, एक ओर पुत्र की बहू को पुत्र हो, एक ओर पुत्री को पुत्र हो, यह एक घर में तीन, यह क्या तुम्हारे घर में लगायी है? वे फिर दूसरे कहे कि महाराज का उपदेश तो... वह सेठियाओं के घर में लड़के होते हों, स्वयं को होते हों और पुत्र की बहू को—लड़के का लड़का होता हो। ऊँचा हो इसलिए। ऐई! सेठ! शोभालालजी! एक गुलाबचन्दजी साधु थे। साधु थे, साधु थे, साधु थे। चातुर्मास... था वहाँ साधु थे। (संवत्) १९६९ में खबर पड़ी। ७० में गुजर गये राजकोट। मैं ६९ में आया था वहाँ वढवाण। न्यालचन्दभाई थे, उनके सामने था न वहाँ

आया था। पालेज जाना था तो उतरा था वहाँ। समझ में आया? बहुत बार मिले हम। खोडा में मिले थे। दृष्टि की खबर नहीं, तत्त्व की कुछ खबर नहीं। मात्र यह क्रिया ऐसी करना, ब्रह्मचर्य पालना।... नहीं तुम? सुन्दर वोरा का उपाश्रय है न, उसके सामने नहीं भोजनशाला? ६९ का चातुर्मास वहाँ था। संवत् ६९। वहाँ मैं आहार करने बाहर में किसी के घर में गया था। केशवलाल का घर है न उसकी इस ओर खिड़की है डेला बाहर। डेला बाहर घर है। किसी की खिड़की है, वहाँ पहला घार है, वहाँ जीमने गया था। डेला बाहर नहीं यह धोला का? धोला कहलाये न? उसके बाहर। वह खिड़की नहीं? अन्दर घर बहुत है। पहले घर में आहार किया था। संवत् १९६९। वहाँ दर्शन करने आये थे। परन्तु कड़क भाषा भारी। गुलाबचन्दजी की बहुत कड़क भाषा। बगुला जैसा साधु को कहे। सफेद कपड़े पहने हैं बगुलाओं! बगुला समझते हो? यह कपड़ा पहने न सफेद धोकर साधु? न्यालभाई ने देखा नहीं होगा। बगुलाओं! ऐसा कहते थे और साधु फिर खीझते थे। तत्त्व की—वस्तु की खबर नहीं होती।

यहाँ तो कहते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य पंचम काल के साधु हों तो ऐसे हों और चौथे काल के ऐसे हो, ऐसा है? सेठ कहते हैं कि चौथे काल की बात है और पाँचवें काल में नहीं। ऐसा नहीं है। बचाव नहीं करना यहाँ। सेठ! पाँचवें काल के साधु। यह टीका करनेवाले तो अभी नौ सौ वर्ष पहले हुए हैं। वे स्वयं कहते हैं कि भाई! सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र के परिणाम हो, परन्तु यदि शुद्ध उपयोग के परिणाम ऐसे हों तो मोक्ष का कारण होता है। और यदि न रखे और शुभ परिणाम होंगे, स्वर्ग के सुख का गर्म घी है। स्वयं अमृतचन्द्राचार्य अपनी बात करते हैं। समझ में आया? आहाहा! स्पष्ट बात की है। **शुद्धोपयोग उपादेय है और शुभोपयोग हेय है।** सम्यग्दृष्टि को भी ऐसा है। यहाँ तो चारित्रवन्त की व्याख्या की। आहाहा!

भावार्थ :- जैसे घी स्वभावतः शीतलता उत्पन्न करनेवाला है तथापि... घी का स्वभाव तो शीतलता उत्पन्न करता है। नारायण कहते हैं न? घी नारायण कहलाता है। ठण्डा-ठण्डा। घी को हमारे नारायण कहते हैं यहाँ काठियावाड़ में। नहीं सुना? **घी स्वभावतः शीतलता उत्पन्न करनेवाला है, तथापि गर्म घी से जल जाते हैं,...** घी तो शीतल है, परन्तु गर्म घी से जल जाते हैं। **इसी प्रकार चारित्र स्वभाव से मोक्ष दाता है,**

तथापि... चारित्र अर्थात् स्वरूप की रमणता का उपयोग, वह तो मोक्ष करनेवाला है। **तथापि सराग चारित्र से...** देखो! यह अग्नि है कषाय की। आहाहा! घी गर्म हुआ, इसी प्रकार चारित्र के साथ शुभ उपयोग गर्म हो गया। आहाहा! समझ में आया? चारित्र तो शीतल है, घी शीतल है, परन्तु यदि अग्नि का संसर्ग हुआ तो गर्म हुआ। इसी प्रकार चारित्र के परिणाम तो शीतल हैं, परन्तु उसके साथ यह शुभोपयोग का यदि संसर्ग हुआ तो जलायेगा। बन्ध होता है। वह मोक्ष के कारणरूप नहीं रहा। वह तो बन्ध के कारणरूप हुआ। यहाँ तो मोक्ष का कारण सिद्ध करना है।

जैसे ठण्डा घी शीतलता उत्पन्न करता है, इसी प्रकार वीतराग चारित्र साक्षात् मोक्ष का कारण है। स्वरूप का अनुभव, स्वरूप की दृष्टि और स्वरूप का शुद्ध उपयोग चारित्र के परिणामसहित के शुद्ध परिणाम सम्बन्धवाला, वह चारित्र शुद्ध उपयोग के सम्बन्धवाला वह साक्षात् मोक्ष का कारण है। समझ में आया? इसी प्रकार गृहस्थाश्रम में सम्यग्दृष्टि को भी यह निर्णय ऐसा करना चाहिए। समझ में आया? साधु के लिये हेय है और समकिती निचले के लिये उपादेय है, ऐसा है? बन्ध का कारण आदरणीय होगा?

मुमुक्षु : पुरुषार्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ की उग्रता है, चारित्र परिणाम है, उसे भी वह (शुभराग) छोड़नेयोग्य अर्थात् यहाँ पुरुषार्थ मन्द उसे आदरणे योग्य है? पहली दृष्टि में... आया है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में बहुत सरस लिखा है। भाई! शुभभाव हो, परन्तु श्रद्धा में हेय रखना। सम्यग्दृष्टि को कहते हैं। आवे सही, होवे सही, परन्तु श्रद्धा में हेय मानना। यदि उपादेय मानेगा तो तेरी श्रद्धा मिथ्यात्व हो जायेगी। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार वीतराग चारित्र साक्षात् मोक्ष का कारण है। अर्थात् क्या? सराग चारित्र है, तब तक देव होगा, फिर मोक्ष होगा वह राग टलेगा तब और यह तो साक्षात् मोक्ष का कारण है।

★ ★ ★

गाथा - १२

अब चारित्र परिणाम के साथ सम्पर्क रहित होने से... देखो! पहले में ऐसा कहा था कि आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान के साथ चारित्र था, और चारित्र के साथ सम्बन्धवाला शुद्ध उपयोग और शुभ... शुद्ध उपयोग और शुभ सम्बन्धवाला। शुद्ध उपयोग सम्बन्धवाला चारित्र मोक्ष का कारण होता है, शुभ उपयोग सम्बन्धवाला चारित्र स्वर्ग का कारण होता है। परन्तु इस चारित्र को अशुभ उपयोग का सम्बन्ध चारित्र के साथ तो होता ही नहीं। समझ में आया? चारित्र के परिणाम हों और अशुभभाव हो साथ में, यह होता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र के परिणाम तीन कषाय के अभाव के हों, तथापि उसे अशुभ परिणाम के साथ हो, ऐसा हो नहीं सकता। ऐसे चारित्र के साथ शुद्ध उपयोग हो या शुभ हो, यह हो सकता है। समझ में आया? परन्तु अशुभभाव हो, यह नहीं हो सकता।

चारित्रपरिणाम... परिणाम से शुरु किया है देखो न! ओहोहो! कहाँ का कहाँ शुरु किया है। आचार्यों ने गजब किया है न! चारित्तं खलु धम्मो, धम्मो... कहाँ की कहाँ बात ली है! वहाँ से परिणाम को सिद्ध करते हैं और वे परिणाम जीव के आश्रय से होते हैं। वहाँ से शुरु किया है न? देखो न! पाँच गाथा में कहा कि ... निर्वाणसुख को पावे यदि ऐसा हो तो। वरना देव के सुख को—वैभव को पावे। फिर कहा, चारित्तं धम्मो। फिर कहा, चारित्र स्वयं ही आत्मा है। शुभाशुभरूप से परिणमता है, वह आत्मा है। कहो, समझ में आया? परिणाम के ऊपर ही पूरी बात शुरु की है। और यह दसवीं में कहा कि परिणाम बिना का आत्मा नहीं होता, आत्मा बिना परिणाम नहीं होते। उस परिणाम में उसके द्रव्य-गुण-पर्याय में रही हुई वस्तु है, उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला आत्मा है।

यहाँ ऐसा लिया कि यदि चारित्र के परिणाम हो और यदि शुभभाव का सम्पर्क हो, सम्पर्क होता है, कहते हैं। चारित्र में शुभ का सम्पर्क होता है, परन्तु वह सम्पर्क शुभ का बन्ध का कारण है और चारित्र के साथ शुद्ध उपयोग के परिणाम हों तो मोक्ष का कारण है। परन्तु उस चारित्र के साथ अशुभ परिणाम हों, यह तो हो ही नहीं सकता। समझ में आया? सम्यग्दर्शन क्या? सम्यग्ज्ञान क्या? सम्यक्चारित्र क्या? खबर नहीं

होती और ऐसा का ऐसा माने। ऐसा का ऐसा अनादि से उल्टा माना है। उसका फल चार गति में भटकने का है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समकिती की बात नहीं, अभी चारित्र की बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभभाव आवे नहीं। चारित्रवाले को अशुभ परिणाम होते नहीं। सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान में, पाँचवें में अशुभ परिणाम आवे। मुनि को नहीं होते, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं।

मुमुक्षु : समकिती मुनि....

पूज्य गुरुदेवश्री : समकिती मुनि हो उसे अशुभ परिणाम नहीं होते। समकितरहित मुनि होते नहीं। समकित बिना मुनि कैसे? समकित बिना के परिणाम में तो उसे अशुभ परिणाम मिथ्यात्व के हैं। मिथ्यात्व के अशुभ परिणाम तो उसे है। राग मुझे आदरणीय है, राग से लाभ है, (ऐसा मानता है वह) समझ में आया? यह तो पुरुषार्थसिद्धि उपाय में नहीं कहा था? कि आत्मा आस्रव और कर्मरहित है, तथापि सहित माने ऐसी मान्यता बालिश—अज्ञानियों को संसार का कारण है। वह तो अशुभ परिणाम ही है उसे तो। वह समकिती कहाँ है? वह तो अशुभ परिणामवाला मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यात्व के अशुभ परिणामवाला मिथ्यादृष्टि है। इसलिए उसे शुभ परिणाम जरा होते हैं दूसरे, उन्हें गिनती में गिनने में नहीं आया। इसलिए आया था न पहले, दूसरे और तीसरे (गुणस्थान में)। समझ में आया? अशुभ उपयोग की ही उसे प्रधानता है। समझ में आया?

तब कोई कहे, परन्तु मिथ्यादृष्टि है और शुभ परिणामवाला है तो इतना अच्छा या नहीं? परन्तु शुभ परिणाम उसे सच्चे हैं ही नहीं। क्योंकि अशुभ मिथ्यात्व का जोर है वहाँ। पुण्य परिणाम आदरणीय है, कषाय का कण आदरणीय है, वह तीव्र मिथ्यात्व की कषाय है। समझ में आया? वे शुभ परिणाम कषाय का कण है अग्नि का। वह अग्नि आदरणीय है, वह मिथ्यात्व की तीव्र कषाय है। समझ में आया? अभिप्राय में तो कषाय का जोर है। अभिप्राय में तो कषाय का जोर है। कषाय से लाभ माना तो अभिप्राय का

जोर वहाँ गया। चैतन्य का तो अनादर किया है। समझ में आया?

अब चारित्रपरिणाम... भाषा देखो न, स्पष्ट बात। सम्यग्दर्शन परिणाम है; ज्ञान, वह परिणाम है; चारित्र भी एक परिणाम है। आहाहा! **चारित्रपरिणाम के साथ सम्पर्क रहित होने से जो अत्यन्त हेय है,...** अत्यन्त छोड़नेयोग्य है। **ऐसे अशुभ परिणाम का फल विचारते हैं :-** लो, ठीक! विचारते हैं। '**फलमालोचयति**' है न? नया विचारना है आचार्य को? परन्तु लोगों को कहना है न, इस ढंग से कहते हैं।

असुहोदएण आदा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो।
दुक्खसहस्सेहिं सदा अभिद्दुदो भमदि अच्चंतं॥१२॥

अशुभ उदय से जीव, कुनर तिर्यंच और गति नारक में।
दुख-सहस्त्र से पीड़ित होता, जग में नित अत्यंत भ्रमे॥१२॥

समझ में आया? १२ (गाथा) की टीका। **जब यह आत्मा किंचित् मात्र भी धर्मपरिणति को प्राप्त न करता हुआ...** देखो! जरा भी सम्यग्दर्शन और चारित्र के परिणाम प्रगट नहीं करता हुआ, नहीं प्राप्त करता हुआ। **किंचित् मात्र भी धर्मपरिणति...** परिणाम धर्म के चारित्र के **प्राप्त न करता हुआ अशुभोपयोग परिणति का अवलम्बन करता है,...** लो, आया था न सवेरे? अवलम्बता है, ऐसा नहीं आया था? ध्रुव को अवलम्बता है अर्थात् प्राप्त करता है। पहले आया था ध्रुव में। वह अमृतचन्द्राचार्य की टीका है, यह भी अमृतचन्द्राचार्य की टीका है। अशुभ उपयोग परिणति को अवलम्बता है (अर्थात्) वह मिथ्यात्वभाव और पाप के भाव को प्राप्त करता है। समझ में आया?

तब वह कुमनुष्य,... कुमनुष्य—हल्का मनुष्यरूप से। **तिर्यंच और नारकी के रूप में परिभ्रमण करता हुआ हजारों दुःखों के बन्धन का अनुभव करता है;...** आहाहा! अनन्त दुःख। हजार तो एक संख्या बाँधी है। **परिभ्रमण करता हुआ हजारों दुःखों के बन्धन का अनुभव करता है;...** ओहोहो! नारकी में, मनुष्य में देखो न गरीब लोग, तिर्यंच, नारकी, ओहोहो! उनके दुःख। ३३-३३ सागर तक के सातवें नरक में पड़ा। वह मिथ्यात्व और अशुभ परिणाम के फल से वहाँ गया है। समझ में आया? ऐसे **कुमनुष्य, तिर्यंच और नारकी के रूप में...** सबके दुःख लिये हैं, हों! कुमनुष्यपने में भी

हजारों दु:ख हैं, कहते हैं। तिर्यंच में भी हजारों दु:ख हैं। **नारकी के रूप में परिभ्रमण करता हुआ हजारों दु:खों के बन्धन का अनुभव करता है;...** आत्मा के भान बिना, सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना, चारित्र के जरा भी परिणाम बिना अकेले अशुभ परिणाम हैं। समझ में आया?

इसलिए चारित्र के लेशमात्र का भी अभाव होने से... उसे चारित्र का लेशमात्र भी अभाव (अर्थात्) लेश (चारित्र) है नहीं। **वह अशुभोपयोग अत्यन्त हेय ही है।** उसको हेय कहा था और अत्यन्त हेय है। सम्यक् (वन्त) मुनि को शुभ उपयोग वह तो हेय है, परन्तु यह अशुभ उपयोग तो अत्यन्त छोड़नेयोग्य है धर्मी को। **चारित्र के लेशमात्र का भी अभाव होने से वह अशुभोपयोग अत्यन्त हेय ही है।** लो! छोड़नेयोग्य ही है। अति-अति... है न? '**अभिद्दुदो भमदि अच्चंतं**' '**अच्चंतं**' का अर्थ किया। कहो, समझ में आया? चारित्र के शुद्ध उपयोगवाले परिणाम यदि हों तो मोक्ष (होता है), चारित्र के परिणाम शुभ उपयोगवाले हों तो स्वर्ग (मिलता है) और चारित्र के परिणामवाले बिल्कुल नहीं और मात्र अशुभभाव है, उसे यह तीन गति का दु:ख है। स्वर्ग का गिना नहीं यहाँ। समझ में आया?

मिथ्यादृष्टि को यदि अशुभभाव हो और स्वर्ग में जाये, परन्तु वह तो दु:ख ही है। इसलिए उसकी व्याख्या यहाँ की नहीं। अशुभ परिणामवाला दु:खी है, शुभ परिणामवाला समकिती और चारित्रवाला भी दु:खी है। तो यह तो अकेले अशुभ परिणामवाला दु:खी है, लेशमात्र भी उसे चारित्र है नहीं। चौथे गुणस्थान में समकिती हो, उसे अशुभ परिणाम आवे, होवे, परन्तु उसका आयुष्य उसमें नहीं बँधता। समझ में आया? चौथे गुणस्थान में दर्शनशुद्धि का इतना जोर है कि उसे अशुभ परिणाम युद्ध के, भोग के उसे आवे, परन्तु उस काल में आयुष्य नहीं बँधता। ऐसी सम्यग्दर्शन की महिमा है। समझ में आया? चौथे गुणस्थान में लेश्य छह है, तीन बुरी लेश्या भी है, आर्त और रौद्रध्यान भी है। तथापि सम्यक् चैतन्य का भान और अनुभव है दृष्टि (है), इसलिए उसे अशुभ परिणाम के काल में भविष्य का आयुष्य नहीं बँधता। इतना उसका जोर वर्तता है। जब उसे शुभ परिणाम आयेंगे, तब आयुष्य बँधेगा। समझ में आया इसमें?

यहाँ तो अकेला मिथ्यादृष्टि का अशुभ उपयोगवाला लिया है, भाई! समझ में

आया? कोई कहे कि समकिती अशुभ उपयोगवाला इसमें क्यो नहीं लिया? समकिती को अशुभ उपयोग में भविष्य का आयुष्य बँधता ही नहीं। समझ में आया इसमें? यहाँ तो भव का आयुष्य बँधे और परिभ्रमण करे, उसकी बात लेनी है। समझ में आया? जिसे भगवान आत्मा दर्शनशुद्धि नहीं, ज्ञान नहीं और चारित्र के लेश भी परिणाम नहीं, ऐसे जीव मिथ्यात्वभाव में अशुभ परिणाम में, कुमनुष्य, कुयोनि, तिर्यंच में और नरक में जायेंगे। समझ में आया? उसे शुभ उपयोग हो, तब स्वर्ग में जाये उसकी यहाँ गिनती नहीं ली। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि शुभ उपयोगवाला हो और स्वर्ग में जाये उसकी तो यहाँ गिनती नहीं। और सम्यग्दृष्टि को अशुभभाव हो तो वह इस नरक में जाये, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया?

आत्मा का दर्शन और सम्यग्दर्शन है वहाँ रौद्रध्यान आवे, आर्तध्यान हो, युद्ध का भाव हो, समझ में आया? छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द के विषय की वृत्ति हो, कोई चक्रवर्ती स्वर्ग में भी जाये। समझ में आया? तो उसे ऐसे अशुभ परिणाम के समय भविष्य का आयुष्य नहीं बँधता। समझ में आया इसमें? इतनी शुद्धता के स्वीकार की महिमा है, शुद्धस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान की महिमा है कि ऐसे आर्त और रौद्रध्यान परिणाम होने पर भी उसे आयुष्य तो बँधता नहीं उस काल में। समझ में आया? श्रेणिक राजा को आयुष्य बँध गया नरक का, वह मिथ्यात्व में बँधा है, मिथ्यात्व में बँधा है। समकित के पश्चात् नरक का आयुष्य, पशु का आयुष्य बँधता नहीं। आहाहा! देखो न, जोर कितना है!

यह जो लिया है, वह तो मिथ्यादृष्टि के अशुभ उपयोग की बात ली है। समकिती के अशुभ उपयोग हो, उसमें आयुष्य नहीं बँधता; इसलिए उसकी बात है नहीं। और मिथ्यादृष्टि के शुभ उपयोगवाला जीव है, उसे यहाँ गिनने में आया नहीं। अशुभवाले को गिनकर (कथन किया है)। समझ में आया? जैसे सम्यग्दृष्टि के अशुभवाले को गौण किया क्योंकि उससे आयुष्य नहीं बँधता, इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि के शुभ उपयोग को गौण करके निकाल डाला। समझ में आया? ऐसी शैली है यह। यहाँ तो उस सम्यग्दृष्टि चारित्रवन्त को जहाँ शुभ उपयोग भी दु:खरूप है, तो फिर मिथ्यादृष्टि के अशुभ उपयोग को

सुखरूप कहना, वह यहाँ कैसे पोसायेगा? समझ में आया? सुखरूप अर्थात् बाहर के सुखरूप। समझ में आया? और सम्यग्दृष्टि को अशुभ परिणाम आने पर भी युद्ध में—धमाल में पड़ा हो ऐसे। हजारों हाथियों में पड़ा हो, बैठा हो ऐसे राजकुमार पच्चीस वर्ष का होवे, सम्यग्दृष्टि क्षायिक समकिती। (अशुभभाव में उसे) आयुष्य नहीं बँधता।

मुमुक्षु : उसे छूट है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छूट नहीं। यह सेठ भी ठीक कहते हैं। वह सम्यग्दर्शन का इतना जोर है, वहाँ आयुष्य बँधता नहीं, ऐसा स्वभाव है। छूट नहीं। यह सम्यग्दृष्टि मुक्तस्वरूप दृष्टि है, इसलिए छूटा हुआ ही है अन्दर वास्तव में तो। इसलिए उसे अशुभ परिणाम के समय शुभगति का बन्धन उस समय होता नहीं और उसे बन्ध सुगति का ही होता है। सम्यग्दृष्टि पंचम काल का हो या चौथे काल का हो, परन्तु उसे अशुभ परिणाम के समय आयुष्य तीन काल में बँधता ही नहीं। उसे जब शुभभाव आयेगा, स्वर्ग का आयुष्य बँध जायेगा। समझ में आया? अशुभ में दूसरे पाप बँधें, आयुष्य नहीं बँधता, ऐसी उसमें सामर्थ्य है। छूट नहीं दी। ऐई! सम्यग्दर्शन का जोर है। शुद्ध ज्ञानानन्द वस्तु हूँ, रागादि हेय है, इतनी शक्ति में अशुभ लेश्या आने पर भी, रौद्रध्यान के परिणाम आने के काल में भविष्य का आयुष्य नहीं बँधता। भव के अभाववाली दृष्टि हुई है और भव बँधे तो स्वर्ग का बँधता है, वह दूसरा बँधता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मनुष्य है समकिती, उसे मनुष्य का आयुष्य नहीं बँधता। सम्यक्त्व में मनुष्य को मनुष्य का आयुष्य नहीं बँधता। पहले मनुष्य का आयुष्य बँध गया हो और समकित हो तो फिर युगलिया में जाता है। परन्तु सम्यग्दर्शन के पश्चात् मनुष्य का आयुष्य समकिती (मनुष्य) को नहीं बँधता। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन में अशुभ परिणाम आवे तो आयुष्य बँधता नहीं, परन्तु सम्यग्दर्शन में मनुष्य का आयुष्य भी नहीं बँधता। आहाहा! समझ में आया इसमें? शोभालालजी! अमरचन्दभाई!

मुमुक्षु : देव....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे देव की गति ही बँधती है। वह भी वैमानिक। देव में भी भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी या इन्द्राणी स्त्री में वह उपजता नहीं। इतना जोर है दर्शन

का। छूट नहीं दी है। ठीक, परन्तु सेठ बोले उसका स्पष्टीकरण तो करना (रहा)। समझ में आया? चैतन्य को दृष्टि में झेला है। कहते हैं कि अशुभ परिणाम के समय मनुष्य का आयुष्य भी नहीं बँधता, दूसरा तो बँधता ही नहीं अशुभ के समय आयुष्य, परन्तु उसे मनुष्य का आयुष्य भी नहीं बँधता। आहाहा! ऐसे परिणाम उसके नहीं होते कि जो मनुष्य का आयुष्य बँधे। ऐसे ही उसके परिणाम हों, तब स्वर्ग का आयुष्य बँधता है। वह भी वैमानिक का, वह भी पुरुष का। वैमानिक में भी समकिती स्त्री हो, ऐसा नहीं होता। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लोगों को जैनदर्शन क्या है, वीतराग क्या कहते हैं, उसकी कुछ खबर नहीं होती। बिना भान के कूटकर पड़े हैं। समझ में आया सेठ?

लो, यह १२वीं गाथा हुई। **अशुभोपयोग अत्यन्त हेय ही है।** आदरणीय है नहीं। जहाँ समकिती के चारित्रवन्त का शुभ उपयोग हेय है तो वह अशुभ उपयोग तो अत्यन्त हेय है, आदरनेयोग्य है ही नहीं। समकिती को अशुभ आता है परन्तु आदरणीय मानता नहीं, हेयबुद्धि से वर्तता है। शुभ में भी हेयबुद्धि वर्तती है और अशुभ में भी सम्यग्दृष्टि को हेयबुद्धि वर्तती है। इसलिए उसे शुभ परिणाम के काल में ही आयुष्य भविष्य का बँधेगा। उसे दूसरा आयुष्य होता ही नहीं। इसलिए मुनि भी पुकार करते जाते हैं न पहले से। अहो! शुभ उपयोग से तो ऐसा मिलेगा, ऐसा पुकारते हैं। देखो यह पुकार, स्वयं को पुकारते हैं, भाई! आहाहा! शुद्ध उपयोग नहीं रहे, यदि शुद्ध उपयोग लम्बे काल टिके तब तो मोक्ष हो। अरे! इतना पुरुषार्थ नहीं, शुभयोग में जुड़ेगा परन्तु हेय, हेय है। यह नहीं रे नहीं। इसके फल में इन्द्रपद में उपजेगा या देव में। यह नहीं रे नहीं। हम कहाँ आये? आहाहा! यह भट्टी में सुलगने यह क्या? हमारा दोष रह गया शुभ परिणाम का। शुभ परिणाम का दोष रह गया, उसके फल में इस देव की भट्टी में आया। समझ में आया? कहो, उसमें यह व्यापार के धन्धे की भट्टियाँ तो बहुत कठोर, पाप की। शोभालालजी! लो! जुगराजजी पहले कहते थे न एक बार। भट्टी में जायेंगे अब। यहाँ से जाये तब व्यापार। भट्टी है वहाँ। बराबर है। लो यह १२ (गाथा) हुई।

इस प्रकार यह (भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव) समस्त शुभाशुभोपयोगवृत्ति को... देखो! यह शुभ परिणाम और अशुभ वृत्ति अर्थात् परिणाम। है न वृत्ति?

(शुभउपयोगरूप और अशुभ उपयोगरूप परिणति को)... यह वृत्ति अर्थात् परिणति। **अपास्त कर...** तिरस्कार किया। यह शुभ का तिरस्कार... आहाहा! कहो। इसलिए कहा तिरस्कारना, शुभ का झटकना। वे कहते थे न एक बार व्यवहार आवे तो तुम झटक डालते हो और निश्चय हो तो पकड़ते हो। कहते थे न पण्डितजी एक बार। चले चले सब। अपास्त करना—तिरस्कार करना—झटकना। **हेय गिनना...** शुभ-अशुभ दोनों को हेय गिनना। दोनों को **दूर करना...** दोनों को **छोड़ देना।** समझ में आया?

शुद्धोपयोगवृत्ति को आत्मसात्... वृत्ति अर्थात् परिणति। **(आत्मरूप, अपनेरूप) करते हुए शुद्धोपयोग-अधिकार प्रारम्भ करते हैं।** यह शुद्ध उपयोग अधिकार शुरु करते हैं। शुभ और अशुभ को अत्यन्त हेय करके शुद्ध उपयोग, वह प्रार्थनीय है और आदरणीय है। **उसमें (प्रथम) शुद्धोपयोग के फल की आत्मा के प्रोत्साहन के लिये प्रशंसा करते हैं।** शुद्ध उपयोग का फल मोक्ष है, उसे विशेष प्रोत्साहन देने, उत्साह कराने, आत्मा के शुद्ध फल की पहले प्रशंसा करते हैं। यह १३वीं गाथा आयेगी, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ६, शुक्रवार, दिनांक १३-०९-१९६८
गाथा - १३, १४, प्रवचन - ११

गाथा - १३

अइसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धवओगप्पसिद्धाणं॥१३॥

शुद्धोपयोग-निष्पन्न जीव का, सुख है अतिशय आत्मोत्पन्न।
अनुपम विषयातीत अनन्त-रु, अविच्छिन्न है वह आनन्द॥१३॥

इसकी **टीका :- (१) अनादि संसार से जो आह्लाद पहले कभी अनुभव में नहीं आया...** शुद्ध उपयोग, आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित शुद्ध उपयोगरूपी आचरण चारित्र के फलरूप से परम आनन्द की प्राप्ति। आनन्द कैसा है? कि अनादि संसार से निगोद से लेकर **जो आह्लाद पहले कभी अनुभव में नहीं आया...** स्वर्ग में, सेठाई में, नारकी में और पशु में। समझ में आया? चार गति में कहीं अनुभव ऐसा आनन्द का हुआ नहीं। ऐसा **आह्लाद पहले कभी अनुभव में नहीं आया...** समझ में आया? मिथ्यादृष्टि अहमिन्द्र हो या मिथ्यादृष्टि यह सेठिया राजादि हो, वे सब दुखिया हैं, ऐसा कहते हैं। पूर्व में कभी यह आनन्द जाना नहीं, उसने अनुभव किया नहीं, ऐसा कहते हैं।

ऐसे अपूर्व... पूर्व में कभी अतीन्द्रिय आनन्द क्या है, अमृतस्वरूप भगवान, ऐसा अनुपम अपूर्व आनन्द **परम अद्भुत आह्लादरूप होने से...** परम उत्कृष्ट और आश्रयभूत आनन्दरूप होने से उसका क्या कहना! कहते हैं। ओहोहो! आत्मा के शुद्ध उपयोग से प्राप्त हुआ जो आनन्द मुक्ति का, उस आनन्द की क्या बात करना! समझ में आया? **परम अद्भुत आह्लाद...** आह्लाद। तृप्त-तृप्त अमृत से मानो सिंच गया हो पूरा आत्मा, ऐसी जिसकी दशा, वह शुद्ध उपयोग से प्राप्त होती है। **अतिशय...** है। उसके कारण अतिशय-विशेषपना है, ऐसा कहते हैं। ऐसे अपूर्व आनन्द के आह्लाद के कारण उस सुख की विशेषता है। कहो, मगनभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं सुख। कहाँ सुख था? दु:ख में सुलग रहे हैं। शुभभाव भी जहाँ भट्टी है, कषाय है या नहीं? कषाय है या नहीं? तो अशुभभाव तो कषाय अग्नि तीव्र है। सेठ कहा नहीं? दु:खी कहते हैं अभी, अन्दर अभी मानता है या नहीं, यह तो आगे बात है जरा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वहाँ आनन्द, मजा मानता है, यह मान्यता खोटी है—ऐसा कहते हैं। भाई! आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्द की खान है। उसे शुद्ध उपयोग द्वारा आनन्द की प्राप्ति की है अन्दर से खींचकर, उस आनन्द का क्या कहना! आहाहा! अमृत का सरोवर भगवान था, उसके ऊपर दृष्टि, ज्ञान और शुद्ध उपयोग की रमणता करके जिसने परम आनन्द की पर्याय की प्राप्ति की है, वह अनादि संसार में कभी आह्लाद आया नहीं था। समझ में आया? इसलिए उसे अतिशय कहते हैं। खास विशेष सुखरूप दशा। जो सुखदशा अनन्त काल में कभी प्रगट की नहीं थी।

(२) आत्मा का ही आश्रय लेकर (स्वाश्रित) प्रवर्तमान होने से 'आत्मोत्पन्न'... शब्द है देखो! कैसा आनन्द है वह? कि आत्मा का ही आश्रय करके। आनन्द प्रभु है आत्मा, उसका आश्रय करके जिसे आनन्द प्रगट हुआ है। कोई विकल्प या कोई निमित्त या बाहर के साधन से वह हुआ नहीं। **आत्मा का ही आश्रय लेकर...** तो ऐसा कहो न भाई! वह आनन्द कथंचित् पर के आश्रय से और कथंचित् स्व के आश्रय से (प्रगट होता है), तो अनेकान्त हो। अनेकान्त की व्याख्या। अनेकान्त की गड़बड़ी कर दी है तुमने, कहते हैं। अरे! भाई! अनेकान्त ऐसा नहीं होता। अनेकान्त तो यह है। परमात्मा प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा है, नित्यानन्द मूर्ति है, उसका शुद्ध उपयोग का आचरण करके, शुद्ध उपयोग में भी आनन्द आया, परन्तु उसके फलरूप से आनन्द तो अकेले आत्मा के ही आश्रय से होता है। एकान्त आत्मा के आश्रय से होता है, ऐसा। उसमें अनेकान्त नहीं होता, और आत्मा के आश्रय से थोड़ा सिद्ध को आनन्द आया और थोड़ा पर के आश्रय से आया, ऐसा है कहीं? परन्तु विषय का सुख उसे नहीं, इतने तो

दु:खी हैं या नहीं? ऐसा कितने ही कहते हैं। इसलिए कथंचित् सुख और कथंचित् दु:ख। यह किस अपेक्षा से बात है? उन्हें नहीं, ऐसा इस अपेक्षा से कहना है।

मुमुक्षु : दु:ख है इसलिए....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। सुख, यह सुखपना जो दु:ख है, वह उन्हें नहीं, इस अपेक्षा से बात है। समझ में आया?

आत्मा का ही आश्रय लेकर प्रवर्तमान होने से... देखो! भगवान आत्मा शक्तिरूप जो आनन्द है अन्दर, उसकी शुद्ध उपयोग की एकाग्रता द्वारा जिसने आत्मा के आश्रय से उत्पन्न किया है, ऐसा आनन्द है। कहो, जयन्तीभाई! यह पैसे के आश्रय से, पुत्र के आश्रय से, धूल के आश्रय से मानते हैं न? महल के आश्रय से, विशाल मकान बनावे छह लाख का, दस लाख का। फिर वास्तु करे। ओहोहो! बाजा बजे और गाजा बजे। धूल भी नहीं, सुन न अब।

मुमुक्षु : बाजा तो बजते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं, बाजा बजे मानो ऐसे चारों ओर से खाने-पीने का हो एक ओर, एक ओर बाजा बजे, एक ओर हारमोनियम बजे। समझे न? एक ओर फोनोग्राम बजता हो। मानो ओहोहो! क्या है सुख के निमित्त! धूल में भी नहीं सुन न। वह तो सब अग्नि की ज्वाला के निमित्त हैं। क्योंकि वह सब पराश्रयभाव है। यह आत्मा वस्तु पूरी द्रव्य है, पदार्थ है, सत् है, सत् का शरण है। ऐसा सत् का जहाँ शरण लिया, कहते हैं कि उस शरण के कारण आत्मा के ही आश्रय से परमानन्द प्राप्ति होती है। सिद्ध की, मोक्ष की प्राप्ति आत्मा के आश्रय से है। कहो, पुण्य के आश्रय से, विकल्प के आश्रय से, व्यवहार के आश्रय से नहीं। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा के ही... शब्द है न? '**ही**' है न? लो! ... वहाँ डाला ही। '**आत्मानम एव**' ऐसा शब्द है न संस्कृत में? '**आत्मानम एव आश्रित:**' अहो! भगवान आत्मा ज्ञान से लो तो ज्ञान व्यापक है, आनन्द से लो तो पूरा आत्मा आनन्दस्वरूप ही है। अतीन्द्रिय आनन्द का सत्त्व से भरपूर तत्त्व, उसका आश्रय लेकर, उसके आश्रय से ही परम आनन्द शक्ति में से व्यक्तरूप हो गया है। उसे आनन्द कहा जाता है। शुद्ध उपयोग के

फलरूप से ऐसा आनन्द (प्राप्त होता है)। इसलिए शुद्ध उपयोगी को प्रोत्साहन देते हैं, उत्साह देते हैं कि भाई! यह शुद्ध उपयोग करनेयोग्य है। उसके फलरूप से यही वस्तु मिलेगी। शुभ और अशुभ करनेयोग्य नहीं। पहली बात आ गयी, पश्चात् यह बात करते हैं न। समझ में आया?

(३) पराश्रय से निरपेक्ष होने से (स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द के तथा संकल्पविकल्प के आश्रय... देखो! पाँच इन्द्रिय के विषय लिये। पराश्रय से निरपेक्ष है। जो अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा के स्वभाव के आश्रय से प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन में भी आनन्द है, सम्यग्ज्ञान में भी आनन्द है, शुद्ध उपयोग में भी आनन्द है परन्तु उसके फलरूप से आनन्द तो पूर्णानन्द है, ऐसा कहते हैं। कहो, यह शुद्ध उपयोग, वह धर्म है; धर्म, वह चारित्र है; चारित्र, वह साम्यभाव है और उस साम्यभाव का फल यह आनन्द है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

पराश्रय से निरपेक्ष होने से... यह स्पर्श के आश्रय से नहीं। यह कोमल के आश्रय से होती है न कल्पना? वह तो दुःख है। पराश्रय से आत्मा का आनन्द नहीं। रस के आश्रय से नहीं। कहो, दूधपाक और क्या कहलाता है? आम का रस न! समझ में आया? ले, रस से तो, आहाहा! गुल्ला को क्या कहा जाता है? रसगुल्ला। होता है या नहीं? होते हैं तुम्हारे दूध के सफेद? और उसमें बादाम और पिस्ता डाले हों व्यवस्थित पीसकर। ओहो! धूल भी नहीं, कहते हैं, सुन न! वह तो विकल्प है, दुःख है। यह तो रस के आश्रय से नहीं उत्पन्न हुआ, आत्मरस के आश्रय से उत्पन्न हुआ आनन्द है। समझ में आया? उस स्पर्श के आश्रय से नहीं, आत्मा के स्पर्श से ऐसा हुआ है यह। रस के आश्रय से नहीं, आत्मा के रस से उत्पन्न हुआ है।

यह गन्ध नहीं। कोई सुगन्ध आदि हो और यह गजरा और बजरा चारों ओर वृक्ष। वृक्ष क्या कहलाते हैं वे? फूलझाड़। आहाहा! महक... महक... महक... अन्दर होता हो। उसके कारण हो, वह तो दुःख है। यह तो आत्मा के अन्दर की वासना—गन्ध में से सुख आया है। समझ में आया? और रंग—रंग-वर्ण। उस रंग के आश्रय से नहीं। आत्मा के रस के रंग के आश्रय से है। आत्मा अन्तर के आनन्द में रंग गया, उसके कारण निर्वाणपद है। रंग के कारण नहीं। यह रूपवान रंग लगे, सफेद शरीर लगे ऐसे

मक्खन जैसा। धूल भी नहीं, सुन न। कीड़े पड़े हैं वहाँ तो राग के। समझ में आया? राग का कीड़ा सुलगता है, बापू! आहाहा! अन्दर बड़ा फोड़ा हुआ हो और फिर बारीक ईयळ हो न अन्दर में, वे पकड़ में नहीं आये, निकले नहीं, गहरी जहाँ डालने जाये वहाँ समझे न कठोर पड़े। वह क्या कहलाता है? वाट-वाट। आहाहा! और गदगदी गया हो, गहरा गया हो चार-पाँच... उसमें साथळ जैसा शरीर हो इसलिए बीच में स्थूल। इसलिए उसमें गहरा सरिया डाले तो चिल्लाहट मचाये। वह वाट डाले तो चिल्लाहट मचाये। होता है या नहीं? पेट में होता है न, पेट में पीव हो जाये। परु समझे न? खून-खून। परु नहीं? परु नहीं समझते? पित्त होता है अन्दर में से निकाले। हमारे जीवणलालजी को होता था। ऐसे डाले वह साफ करने को। छिद्र पड़ गया हो न छिद्र। डाले। एक तो अन्दर माँस हो, उसमें फोड़ा सड़ गया हो, पक गया हो, उसमें ईयळ पड़ी हो अन्दर। आहाहा! वह निकाली नहीं जाये, चुनी जाये नहीं, वह चमचा डाले तो पीड़ा हो अन्दर। देखो, यह रस की पीड़ा। कहते हैं कि उसके आश्रय से नहीं यह सुख। उसके आश्रय से वहाँ कल्पना दुःख था, वह कहीं उसका वर्णन है नहीं।

शब्द का आश्रय नहीं, लो! यह प्रशंसा शब्द कहे, तुम तो मोटे-बड़े, अभिनन्दन के बड़े पद दे वहाँ, आहाहा! पेट भर जाये उसका। ऊँचा ऐसा हो जाये जरा। मानो बड़ा हो गया, इसलिए अभिनन्दन देते हैं। मर गया है, सुन न अब! वहाँ अभिनन्दन क्या है? उसके लक्ष्य में तो आकुलता है, ऐसा कहते हैं। यह तो शब्द के आश्रय से नहीं। किसी शब्द का आश्रय ही नहीं, ऐसा आत्मा के आश्रय से हुआ। यह पाँच प्रकार के शब्द, रूप, रस, गन्ध (और वर्ण) के आश्रय से नहीं, ऐसा निरपेक्ष—ऐसा कहना है। अन्त में मन की बात ली है। पाँच लिये हैं।

संकल्पविकल्प के आश्रय की अपेक्षा से रहित... अब उस मन में संकल्प-विकल्प करते हैं न कि यह अच्छा है, यह ठीक है और यह धूल है। आहाहा! यह बँगला। यह संकल्प-विकल्प बिना का—पराश्रय बिना का यह तो सुख है।

मुमुक्षु : यह कब की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा की बात करते हैं, कब की क्या? मोक्ष की, शुद्ध उपयोग की, अरे! सम्यग्दर्शन में है, ऐसा कहते हैं, सुन न! यह शुरुआत अंश है। यहाँ

तो पूर्ण बतलाना है न, चारित्र का फल बतलाना है न! समझ में आया? चारित्र, वह संकल्प-विकल्परहित चीज़ है। उसके फलरूप से भी पूर्ण स्वरूप मोक्ष का पराश्रयरहित है। बिल्कुल पराश्रय। अकेला भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप के शुद्ध उपयोग का आचरण करके, जिसे ऐसा स्व-आश्रय पर से निरपेक्ष अपेक्षारहित सुख प्रगट हुआ है।

(संकल्पविकल्प के आश्रय की अपेक्षा से रहित होने से) 'विषयातीत',... है। लो! विषय से अतीत है। पर का विषय उसमें नहीं। उसमें भगवान का विषय है। उस आनन्द में तो आत्मा का विषय है। समझ में आया? देखो! यह मोक्ष के सुख के कारणरूप जो है शुद्ध उपयोग, उसकी प्रशंसा करते हैं। शुद्ध उपयोग है न! अन्दर लिखा है, देखो! निष्पन्न होना आयेगा न! कहाँ आया? अन्वयार्थ में। निष्पन्न है न अन्वयार्थ में, देखो! उसमें **निष्पन्न होना = निपजना; फलरूप होना; सिद्ध होना। (शुद्धोपयोग से निष्पन्न हुए अर्थात् शुद्धोपयोगरूप कारण से कार्यरूप हुए)।** नीचे है। पहले शब्द में है न अन्वयार्थ **शुद्धोपयोग से निष्पन्न हुए...** आत्मा के दर्शन-ज्ञानसहित शुद्ध आचरणरूपी उपयोग, शुद्ध आचरणरूपी उपयोग चारित्र से प्राप्त। शुद्धोपयोग कारण है और आत्मा का पूर्ण आनन्द मोक्ष, वह कार्य है। कहो, शुद्ध उपयोग कारण है मोक्ष के लिये। शुभ उपयोग कारण नहीं है। आहाहा! विषयातीत है।

अब अनुपम है। लो! सवेरे आया था अपने। सिद्धगति अनुपम है, आयी थी न? उसे कोई उपमा नहीं। अनुपम है। '**ध्रुवमचलमणोवमं**' उसकी उपमा उसे। दूसरे की उपमा लागू नहीं पड़ती। ऐसी **अत्यन्त विलक्षण होने से (अन्य सुखों से सर्वथा भिन्न...)** यह इन्द्र के सुख, इन्द्राणी के सुख, भोग के सुख, वासना के सुख, जहर के सुख से विलक्षण सुख है यह। समझ में आया? **अत्यन्त विलक्षण...** अत्यन्त विलक्षण, ऐसा वापस। संसारी के जितने सुख कहो, उनसे अत्यन्त विपरीत लक्षणवाला है। **(अर्थात् अन्य सुखों से सर्वथा भिन्न लक्षणवाला होने से) 'अनुपम',...** है। उस सुख को क्या उपमा देना! आहाहा! आत्मा के आश्रय से पर बिना उत्पन्न हुआ सहजानन्द मूर्ति प्रभु, अपनी दशा को प्राप्त हुआ, जो थी उसकी उपलब्धि की, उस सुख को उपमा क्या देना! कहते हैं। समझ में आया? इसलिए शुद्ध उपयोग के करनेवाले को उत्साह देकर, उत्साह की वृद्धि करते हैं।

अब कहते हैं **(५) समस्त आगामी काल में कभी भी नाश को प्राप्त न होने से 'अनन्त'...** है। लो! **समस्त आगामी काल...** लो! समस्त अर्थात्? आज से जितना काल है, अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त। अनन्त-अनन्त पुद्गलपरावर्तन, भूतकाल से भी अनन्तगुना। जब से आत्मा का आनन्द प्राप्त मुक्ति हुई, वह कितना काल रहनेवाली है? कि **समस्त आगामी काल...** पूरा भविष्यकाल, ऐसा। यह पूरा भविष्यकाल सुख रहनेवाला है, इसलिए अनन्त है। समझ में आया? यहाँ तो एक पाँच-पच्चीस वर्ष कुछ रुपया देखे पाँच, पचास लाख, करोड़, दो करोड़, उसमें जरा माने। और गये वहाँ ऐई! गरीब है बेचारा। हाय... हाय... अरे! जवानी में दुःख आया होता तो सहन होता, परन्तु अब वृद्धावस्था में आये। और ऐसा कहे। अवस्था हो जाये ६०, ६५, ७० (वर्ष)। जवानी में होवे तो हम...

मुमुक्षु : वृद्धावस्था में आये हो तो वृद्धापन में आये, ऐसा ही कहे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ऐसा कहे कि जवानी में आये होते तो सहन होते, वृद्धावस्था में अब सहन नहीं होते, ऐसा कितने ही कहते हैं। पहली ठीक स्थिति हो उसमें यदि ६०-६५ हो तो सब बिखर जाये। पैसा न मिले, स्त्री न हो, पुत्र मर जाये और अकेला रहे। पूरा हो जाये। समझ में आया?

एक व्यक्ति कहा न! बारह व्यक्ति थे। यहाँ से गया था अकेला मुम्बई। ४८ वर्ष में वापस अकेला आया। बारह हो गये थे। भावनगर के थे। वह कामदार के बहनोई नहीं? बहनोई। (संवत्) १९८१ में कहता था, अकेला गया था। उसमें फिर स्त्री, उसके पुत्र, सुपारी की बड़ी दुकान, व्यापार, पैसा सब हुआ। आया तो वापस सब छोड़कर ऐसा का ऐसा अकेला। कुछ नहीं। सब चले गये और दुकान भी समाप्त हो गयी। निर्धन हो गये थे। लाल पगड़ी बाँधते थे, नहीं? ८१ में कहते थे। यह तो बाहर की स्थिति की अवधि है। यह तो आगामी समस्त काल सुख रहेगा। आहाहा!

तू त्रिकाल है या नहीं? और त्रिकाल में से आया हुआ ऐसा का ऐसा द्रव्य कायम रहे तो उसकी पर्याय भी ऐसी की ऐसी रहेगी। आगामी समस्त काल। भाषा कैसी प्रयोग की, देखी! **समस्त आगामी काल...** ऐसा। उसमें कहीं टूट पड़े, ऐसा नहीं है। आहाहा! द्रव्य में टूट पड़े? द्रव्य टूट जाये कहीं? इसी प्रकार द्रव्य में से प्रगट हुआ सुख, वह

कहीं टूट जाये? द्रव्य है, तब तक अनन्त आनन्द की तृप्ति... तृप्ति... तृप्ति... आगामी समस्त काल अनन्त आनन्द को पाता है।

(६) बिना ही अन्तर के प्रवर्तमान होने से... लो यह। यहाँ अन्तराल पड़ जाये। संसार में घड़ीक में आवे, और घड़ीक में चला जाये। पैसा हो तो और शरीर में रोग हो, रोग हो तो... और स्त्री अनुकूल हो और मर जाये, फिर ४० वर्ष में दूसरी हो नहीं। कितने सुख के अन्तराल का पार नहीं होता। कुछ व्यवस्थित हो लड़के-बड़के, वहाँ स्त्री मर जाये ४० वर्ष में। हाय.. हाय.. अब? दूसरी हो नहीं। लड़के दूसरी विवाह करने दे नहीं जवान। वह सब ऐसी है संसार की स्थिति। यह तो आत्मा बीच में टूट न पड़े—टूट नहीं, ऐसा कहते हैं, देखो! **अविच्छिन्न...** आहाहा! **बिना ही अन्तर के प्रवर्तमान होने से...** वह यह सब मोक्ष के सुख की, आनन्द की पर्याय का वर्णन करते हुए उसे चारित्र की प्रशंसा करते हैं। बापू! ऐसे चारित्र के फल तो ऐसे हैं। समझ में आया? और चारित्र ही खास मोक्ष का कारण है। दर्शन-ज्ञान तो उसका कारण है। चारित्र का कारण दर्शन-ज्ञान और मोक्ष का कारण चारित्र। समझ में आया? आहाहा!

बिना ही अन्तर के प्रवर्तमान होने से... प्रवर्तता होने से वापस। अन्तर पड़े बिना ऐसा का ऐसा प्रवर्तता रहता होने से **'अविच्छिन्न' सुख शुद्धोपयोग से निष्पन्न हुए...** लो! नीचे किये था यह। निष्पन्न कहा है न? अर्थ किया था न? **शुद्धोपयोग से निष्पन्न...** शुद्ध उपयोग से प्राप्त। भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप के शुद्ध उपयोग के आचरण से प्राप्त ऐसे **आत्माओं के सुख होता है, इसलिए वह (सुख) सर्वथा प्रार्थनीय है।** लो! कथंचित् सुख प्रार्थनीय है और कथंचित् नहीं, ऐसा अनेकान्त है?

मुमुक्षु : सर्वथा सुख हो तो भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सर्वथा सुख है यह। बिल्कुल सर्वथा सुख। सिद्ध को बिल्कुल सर्वथा सुख है। कथंचित् दुःख बिल्कुल है ही नहीं। समझ में आया? उसमें हो उसका अनेकान्त होगा या उसमें न हो, उसका अनेकान्त होगा? सुख है और दुःख नहीं।

मुमुक्षु : ऐसा अनेकान्त नहीं करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा अनेकान्त है। न करे क्या? वे कहे, थोड़ा फुदड़ीवाद करो थोड़ा अन्दर। इसलिए कहा न! आचार्य ने क्या शब्द कहे, देखो न! 'सर्वथा' शब्द प्रयोग किया है न! देखो! '**सर्वथा प्रार्थनीयम्**' देखो, अमृतचन्द्राचार्य के पाठ में। सर्वथा वह वांछनेयोग्य है। आत्मा का आनन्द पूर्ण मुक्ति, वही वांछनेयोग्य है। दूसरी कोई ईच्छने और प्रार्थना करनेयोग्य है नहीं। समझ में आया? थोड़े स्वर्ग में रहे, सुख भोगें फिर (मोक्षसुख मिलेगा)। वहाँ धूल में भी (सुख) नहीं, कहते हैं। समझ में आया? भव का भाव, वह भव का भाव करने का भाव ही मिथ्यात्व है। भव का अभाव करने का भाव दर्शन, ज्ञान और शुद्ध उपयोग से उसका नाम मोक्ष का मार्ग है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह कोई कहे न कि भाई! दूसरे का भला होता हो तो भले हमारे एक भव बढ़े। मूढ़ है। दूसरे का भला कहीं तुझसे होता होगा? भले हमारे एक अवतार लेना पड़े। क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु दूसरे को कितना अच्छा लगे। अपने लिये भव करे तो अपना उद्धार करने जन्मेगा। अपना उद्धार करने। उन गरीबों का सहायक।

मुमुक्षु : अमर नाम हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमर हो गये नाम। धूल भी नहीं अमर। मर गये हैं सब। नाम किसके अमर हों? धूल के?

यहाँ तो कहते हैं, एक ही आत्मा का आनन्द शुद्ध उपयोग से प्रगट करनेयोग्य है। बाकी मुक्ति प्रगट करो, ऐसा कहते हैं। भव करनेयोग्य नहीं। एक भी भव की भावना हो नहीं सकती। भव का भाव तो राग है और राग की भावना तो मिथ्यादृष्टि की होती है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। **वह (सुख) सर्वथा प्रार्थनीय (वांछनीय) है।** अर्थात् सर्व प्रकार से इच्छा करनेयोग्य है। लो! १३वीं हुई।

★ ★ ★

गाथा - १४

अब उस शुद्ध उपयोग की व्याख्या करते हैं। देखो! उसमें भी विवाद उठाते हैं। शुद्ध उपयोग तो... यह १४वीं गाथा में, शुद्ध उपयोग आठवें में, नौवें में, दसवें में होता है, नीचे नहीं होता। मोक्ष होना उसे होता है, तुरन्त होना हो उसे होता है यह सब। यह १४वीं गाथा का अर्थ उतारते हैं। यहाँ तो शुद्ध उपयोगी मुनि को मोक्षतत्त्व कहा है। बाद में कहा नहीं? २७२। २७२ गाथा में शुद्ध उपयोगी मुनि को मोक्षतत्त्व ही कहा है। २७२ है, आगे आयेगा। पाँच गाथायें हैं न! २७१ संसारतत्त्व, २७२ मोक्षतत्त्व, साधनतत्त्व ऐसा आता है न? वह सब शुद्ध को होता है। दर्शन-ज्ञान शुद्ध को होता है, मोक्ष शुद्ध को होता है, साधुपना शुद्ध को होता है, वह सब आता है। २७४ और २७५ में अन्तिम योगफल आता है।

अब शुद्धोपयोगपरिणत आत्मा का स्वरूप कहते हैं:—यह शुद्ध उपयोग से हुए, शुभ का अभाव करके शुद्धरूप से परिणमित ऐसे सन्त शुद्ध उपयोगी साधु का स्वरूप कहते हैं।

सुविदिदपयत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो।
समणो समसुहदुक्खो भणिदो सुद्धोवओगो त्ति॥१४॥

सूत्र और अर्थों के ज्ञाता, तप-संयमयुत, राग-विहीन।
सुख-दुख में सम रहे श्रमण जो, शुध-उपयोगी कहते जिन॥१४॥

ऐसे जीव को शुद्ध उपयोगी भगवान परमात्मा कहते हैं। लो, यह मुनि की व्याख्या है यह। मुनि ऐसे होते हैं। पंचम काल के मुनि भी ऐसे होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐई! सेठ! सेठ कहते थे न! यह पंचम काल की बात चलती है।

मुमुक्षु : सेठ ऐसा पूछते थे, पाँचवाँ या चौथा? ऐसा पूछते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँचवें काल का वे पूछते थे। तब कहे, यह बात चौथे काल की है, ऐसा कहते थे भाई। यहाँ तो पाँचवें कालवाला ऐसा कहता है।

मुमुक्षु : कहते हैं पाँचवें कालवाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँचवें कालवाले कहते हैं और पाँचवें काल के साधु ऐसे होते हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसा कि चौथे काल में मोक्ष हो और तब ऐसे हों, ऐसा। अभी मोक्ष नहीं। मोक्ष ही है, सुन न! समझ में आया? साधु ही ऐसे होते हैं। शुद्ध उपयोगी को साधु कहा है। ७४ में आता है न! ७४ नहीं अन्तिम—२७४ (गाथा)। शुद्ध को दर्शन कहा, शुद्ध को ज्ञान कहा, शुद्ध को चारित्र कहा, शुद्ध को मोक्ष कहा, शुद्ध को सिद्ध कहा। समझ में आया?

टीका :- सूत्रों के अर्थ के ज्ञानबल से... भाषा देखो! सूत्रों—भगवान के कहे हुए प्रवचन, सूत्रों के अर्थ के ज्ञानबल द्वारा **स्वद्रव्य और परद्रव्य के विभाग के परिज्ञान में...** समर्थ होने से, ऐसा लेना। कैसे हैं मुनि शुद्ध उपयोगी? जिन्हें मुक्ति प्राप्ति हो, उसके कारणरूप शुद्ध उपयोगी जीव की क्या दशा होती है? कि **सूत्रों के अर्थ के ज्ञानबल से स्वद्रव्य और परद्रव्य के विभाग के परिज्ञान में...** देखो! ज्ञान का बल यह आया कि स्वद्रव्य को और परद्रव्य को विभाग कर डालता है। समझ में आया? **पूरा ज्ञान।** है न नीचे? ज्ञान। **परिज्ञान में और विधान में समर्थ होने से...** सूत्रों के अर्थ के। सूत्रों के अर्थ ऐसे होते हैं कि जो ज्ञान स्व-पर का विभाजन करे। स्व-पर का विभाजन करे वह सूत्र का अर्थ है और उस अर्थ का जिसे ऐसा ज्ञान होता है। समझ में आया? सूत्रों में यह कहा गया है। स्व-पर का भाग कर, विभाजन कर, यह सूत्र में कहा है। समझ में आया? रागादि पर है, भगवान आत्मा स्व है, ऐसे सूत्र के अर्थ के, सूत्र के अर्थ के ज्ञानबल द्वारा... उस सूत्र में यह कहा है, उसके ज्ञानबल द्वारा स्वद्रव्य और परद्रव्य का विभाग.. भगवान आत्मा ज्ञायक द्रव्य है, कर्म और शरीरादि परद्रव्य रागादि हैं, उनके विभाग के परिपूर्ण ज्ञान के द्वारा समर्थ होने से... स्वद्रव्य और परद्रव्य का भिन्नपना जाना होने से, ऐसा कहते हैं, देखो अर्थ में। जिसने स्व चैतन्य भगवान, वह स्ववस्तु है। राग, कर्म, शरीरादि परवस्तु है। ऐसा जिसे सूत्र के अर्थ के ज्ञानबल द्वारा ऐसा ज्ञान जिसने किया है। ऐसे शुद्ध उपयोगी मुनि होते हैं। कहो, समझ में आया?

और श्रद्धान में... सूत्र अर्थ के ज्ञानबल द्वारा विभाग के श्रद्धान में... यह विभाग के श्रद्धान में, ऐसा कहते हैं। शुभ उपयोग आदि पर और स्वभाव स्व—ऐसे विभाग के

श्रद्धान में **समर्थ होने से...** भेदज्ञान करने में समर्थ है। वह भेद-श्रद्धा करने में भी समर्थ है। दो का खीचड़ा करने में नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पहले सम्यग्दर्शन-ज्ञान में भी ऐसा होता है। यह तो मुनियों के चारित्र की बात चलती है। चारित्र से पहले दर्शन-ज्ञान में ऐसा होता है। अब उसके साथ शुद्ध उपयोगी को ऐसा ज्ञान-दर्शन होता है और शुद्ध उपयोग न हो, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान में ऐसी श्रद्धा और ज्ञान होता है। समझ में आया? यहाँ तो तीनों अलग लेना है न! ज्ञान, श्रद्धा और चारित्र। तो अब दर्शन-ज्ञान का स्वरूप क्या? दर्शन-ज्ञान का स्वरूप क्या? यह तो चौथेवाले को हो या पाँचवेंवाले को हो या मुनि को हो।

सूत्रों के अर्थ के ज्ञानबल से... जिसने स्व-पर का भाग—निर्णय किया है। स्व-पर के भाग का सच्चा ज्ञान किया है। ऐसा तो समकिती को चौथे गुणस्थान में भी होता है। परन्तु यहाँ तो अब शुद्ध उपयोग आचरण की बात लेनी है न! मोक्ष के कारणरूप तो शुद्ध उपयोग है। समझ में आया? **स्वद्रव्य और परद्रव्य के विभाग के...** विभाग के श्रद्धान में **समर्थ होने से...** विकल्प और निर्विकल्प तत्त्व के विभाग में, श्रद्धान में समर्थ है अन्दर। सम्यग्दृष्टि भी समर्थ है, मुनि भी समर्थ है परन्तु मुनि के उपरान्त कितना है? समझ में आया? विभाग दो है न अमरचन्दजी! दोनों को भिन्न करना।

भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप चैतन्य शुद्ध निर्विकल्प (और) विकल्प आदि पर—उसे भेद करने में जिसका ज्ञान सूत्र के अर्थ के बल द्वारा जिसे प्रगट है। यह भाव समझकर अन्तर से प्रगट किया है और स्वद्रव्य तथा परद्रव्य के विभाग के, विभाग के भेदज्ञान के श्रद्धान को जिसने प्रगट किया है। समझ में आया? दोनों को एक मानता नहीं। शुभराग और देह की क्रिया एक, मैं और यह क्रिया (एक), जड़ की क्रिया मुझसे होती है और मुझसे हाथ ऊँचा होता है। लो, हाथ ऊँचा किया, एक व्यक्ति यहाँ कहता था। ऐसा वहाँ चला था। यहाँ कहता था (संवत्) १९८७ में एक। ... वहाँ कहा था एक ८७ में। वकील। वह नहीं? चिमनलाल। लो, हाथ ऊँचा किया। यहाँ है न, वकील है न वहाँ। यह हाथ ऊँचा किया। कहा, क्या हाथ ऊँचा किया? हाथ ऊँचा कैसे हुआ, यह

देखा है तुमने ? खबर है तुमको ? ज्ञान अन्दर क्या काम करता है ? शरीर क्या काम करता है, उसकी खबर है तुमको कि हाथ मैंने ऊँचा किया ? अन्धी दौड़ की बात है, कहा, यह। समझ में आया ? माँस खाता न हो और कहे कि लो यह। ऐसा तुमने कहा। क्षुधा हो न, क्षुधा। क्षुधा लगी हो और माँस खाये माँस। दुःख मिट जाये। मिटता है या नहीं ? मिटता नहीं ? मिटता है या नहीं ? देखो ! हम कहते हैं मिटता है, देखो ! क्षुधा, परन्तु उस क्षुधा की तृप्ति हुई, भूख मिट गयी या नहीं ? अब तुझे लगा, सुन न ! बड़ा पाप लगा है उसमें तुझे। वह तो साता के उदय के कारण है। साता के उदय के कारण उस जाति का जरा पच गया। तू ऐसा कहता है कि लो, मैंने यह खाया तो दुःख मिट गया। मर जायेगा। मैंने हाथ ऊँचा किया। नहीं किया तूने, सुन न ! समझ में आया ? आहाहा ! कहते हैं कि दो का विभाग कर डाला है मुनियों ने। समझ में आया ? हाथ की क्रिया आत्मा कर नहीं सकता।

राग का भी आत्मा कर्ता नहीं। यह विवाद आया वह ७५वीं गाथा चलती थी न। फूलचन्दजी ! यहाँ तो वह प्रश्न करे, देखो ज्ञानी समकिती राग करता है या नहीं ? व्यवहार करता है या नहीं ? व्यवहार उसे होता है या नहीं ? वह करता है या नहीं ? अब सुन न ! व्यवहार से जिसने भिन्न किया है, ऐसा ज्ञान वह करता है, व्यवहार से भिन्न किया, ऐसी श्रद्धा करता है। व्यवहार होता है परन्तु होवे वह उससे भिन्न करने की श्रद्धा करता है। व्यवहार को करता नही। व्यवहार को करे तो दोनों चीज़ एक हो जाये। निश्चय और व्यवहार दोनों एक हो जाते हैं। समझ में आया ? होता है। होता है तो पूरी दुनिया होती है। समझ में आया ? आहाहा ! उसे अभी ज्ञान-श्रद्धा का ठिकाना नहीं, वह साधुपना मान ले और साधु दूसरे को मान ले कि यह साधु है और यह क्रिया करता है, इसलिए ऐसा है। धूल में भी नहीं। हैरान होकर मर जायेगा चौरासी के अवतार में। बापू ! यह कहीं पोपाबाई का राज नहीं कि चले। यह तो वीतराग का मार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर (का मार्ग है)। ओहोहो !

कहते हैं कि भाई ! शुद्ध उपयोगी मुनि कैसे होते हैं ? चारित्रवन्त सन्त कैसे होते हैं ? कि जिसे स्व-पर के विभाग का बल होता है ज्ञान का, स्व-पर के विभाग का श्रद्धा का बल होता है। विभाग का बल होता है। एक का बल छूट गया है, ऐसा कहते हैं। मैं

शुभ करता हूँ, देह की क्रिया मैं करता हूँ (यह) बल टूट गया है। तब उसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान होता है। समझ में आया? आहाहा! यह मेरे शिष्य हैं, यह मेरे सेवा करनेवाले हैं। कहते हैं कि यह श्रद्धा-ज्ञान में भिन्न पड़ गया है। सेवा-बेवा कुछ नहीं, शिष्य भी हमारे नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : इतने सब शिष्यों को दीक्षा किसलिए दे?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने दिया? कुछ दी नहीं इसने। दे क्या? इसने कुछ दी नहीं, यह तो उसे मिली है, अपने आप उसकी पर्याय में। उसने प्रगट की है, तब इसे निमित्त कहा जाता है। निमित्त का अर्थ कुछ करता नहीं, ऐसा उसका अर्थ है। समझ में आया? कहो, भीखाभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह वस्तु ऐसी है। यह शिष्य किसलिए बनाये? ऐसा कहते हैं। बनाये ही नहीं न! कौन बनावे? आहाहा! विभाग किया है न! किसी द्रव्य से मेरा द्रव्य अत्यन्त भिन्न है। मेरा कोई (नहीं)। शिष्य क्या, कोई गुरु भी मेरा नहीं और शिष्य भी मेरा नहीं, मैं किसी का गुरु नहीं और शिष्य नहीं। ऐई! पोपटभाई! आहाहा! ऐसा तो सूत्र के अर्थ के ज्ञान के बल द्वारा... सूत्र में ऐसा कहा गया है, उसके भाव में उसका उसे ज्ञान हुआ है। भिन्न है। मन भिन्न है, विकल्प भिन्न है, वहाँ और पर तो कहीं रह गया। ऐसे श्रद्धा के—ज्ञान के बल द्वारा समर्थ होने से...

तीसरा। विधान में, अब आया। अब आचरण। चारित्र लेना है न! वह आचरण मुनिपना लेना है न! दर्शन-ज्ञानसहित में पर के विधान में स्व को, पर को भिन्न करके स्व के आचरण में समर्थ होने से। लो! भेद पाड़कर स्व **विधान में समर्थ होने से...** समझ में आया? लो, यह विधान। कहते हैं न विधान करना। विधि-विधान करना। विधि-विधान अर्थात् यह। स्वरूप में आचरणरूप शुद्ध उपयोग, वह उसका विधान है। समझ में आया? विधि-विधान बहुत चलते हैं इसमें। विधि कहते हैं और उसका विधान करना। विधान में अन्तर पड़ने नहीं देना। श्वेताम्बर में बहुत क्रिया और उपधान और क्रिया... कचूमर निकल जाये बेचारे का। लाभ कुछ मिले नहीं। कितने भगवान

को खमासणा देने का और कितनी बार... जगजीवनभाई ने किया है या नहीं? किया हुआ है इन्होंने। प्रमुख व्यक्ति हो, उसने किया हो न! कहो, समझ में आया?

कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्य की मूर्ति आनन्दकन्द जिसने विकल्प और पर से भिन्न किया है ज्ञानबल द्वारा, श्रद्धान बल से और उसका विधान किया है। यह विधान। यह स्वरूप में स्थिर होना, वह आत्मा का मोक्ष का विधान। स्वरूप का अन्तर आचरण करना, वह मोक्ष का आचरण। विधान कहो, आचरण कहो, चारित्र कहो, स्थानक कहो, शुद्ध उपयोग कहो। आहाहा! समझ में आया? उसका इसे ज्ञान और श्रद्धा तो पहले करनी पड़ेगी या नहीं? ऐसा हो तो साधुपना होगा, नहीं तो साधुपना होगा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! इसने वीतराग को सुना नहीं। राग को सुना। अपनी दृष्टि से सब मान लिया कि ऐसा होता है। यह बाहर छोड़ा। स्त्री, पुत्र, हजारों करोड़ छोड़े... क्या छोड़े? धूल छोड़े, सुन न अब। भगवान आत्मा एक विकल्प से भी भिन्न करके ज्ञान किया, भिन्न करके श्रद्धा की और भिन्न करके विधान—स्वरूप में रमता है। स्वरूप में रमे उसे चारित्र और उपशमभाव, साम्यभाव कहा जाता है। विकल्प में भी रमता नहीं, तो निमित्त में कहाँ आवे शरीर की क्रिया में? नग्न हो गये। कौन? वह तो जड़ की अवस्था है। समझ में आया?

(अर्थात् स्वद्रव्य और परद्रव्य की भिन्नता का ज्ञान, श्रद्धान और आचरण होने से)... विधान कहा न? विधि की विधि। अमल में रखा। मल बिना की आचरण विधि, उसे अमल में रखा। **जो (श्रमण)...** ऐसे जो साधु **पदार्थों को और (उनके प्रतिपादक) सूत्रों को जिन्होंने भलीभाँति जान लिया है ऐसे हैं,...** देखा! कैसे हैं मुनि? देखो, यह कहाँ वहाँ आठवें गुणस्थान की बात थी? यहाँ तो नीचे है। पदार्थों को और पदार्थ के कहनेवाले सूत्रों को उन्होंने भली प्रकार जाना है। जैसा शास्त्र को कहना है, उस भाव को उन्होंने जाना है, उसके हार्द को उन्होंने जाना है। जहाँ-तहाँ तोड़-मरोड़कर अर्थ करे, ऐसा है नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पदार्थों को और पदार्थों के कहनेवाले सूत्रों को। सुविदित है न, सुविदित। सुविदित सूत्र पदार्थ। दोनों है न! उसकी व्याख्या की। .... पदार्थ और पदार्थ के कहनेवाले सूत्रों को जिन्होंने भली प्रकार जाना

है। देखो! समझ में आया? और कहे कि उन शिवभूति मुनि ने सूत्रों को नहीं जाना था न? ऐई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जाना था। भाव उनके ख्याल में सब आ गया था। उन्हें कुछ सूत्र का शब्द याद नहीं रहता था न? समझ में आया? क्या कहा? मा-तुष इतना याद नहीं था न? शब्द तो शास्त्र का किसका याद हो। क्या काम है? कहते हैं। उसके भाव हैं, वे उनके भान में आ गये थे। समझ में आया?

देखो! **सूत्रों को जिन्होंने...** यहाँ भाषा ऐसी है। **सूत्रों को जिन्होंने भलीभाँति जान लिया है...** इसमें से निकालते हैं। इसका अर्थ है, भाई! सूत्रों का जो भाव है, उन्होंने बराबर जाने हैं। भले वे शब्द याद न हों या कह नहीं सके, परन्तु उन्हें सूत्रों के कहे हुए भाव 'सब आगम भेद सु उर बसे।' समझ में आया? मुनि के ज्ञान में, श्रद्धा में इस जाति के भाव उन्हें बस गये होते हैं। शब्द हो या न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। **सूत्रों को जिन्होंने भलीभाँति...** वापस अकेले सूत्रों को जाना है, ऐसा नहीं। जिस प्रकार से सूत्र में निश्चय की स्थिति है, उसे निश्चय रीति से, व्यवहार की स्थिति है, उसे व्यवहार रीति से जैसा कहा है, उसे **भलीभाँति जान लिया है, ऐसे श्रमण हैं,...** समझ में आया? आहाहा!

समस्त छह जीवनिकाय के हनन के विकल्प से... यह संयम की व्याख्या है। समझ में आया? संयम की व्याख्या करते हैं पहली। फिर तप की उसके साथ। **समस्त छह जीवनिकाय के हनन के विकल्प से...** समस्त, हों! एकेन्द्रिय से लेकर एकेन्द्रिय का एक जीव। दाने में एक जीव होता है न। एकेन्द्रिय के एक जीव से लेकर एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। एकेन्द्रिय में भी पृथ्वीकाय, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, ये सब जीव हैं। अनन्त काय कोई साधारण... यह छह जीवनिकाय। छह जीव अर्थात् पृथ्वीकाय, अपकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय। वनस्पति में भी निगोद और साधारण, असाधारण। ऐसे छह जीवनिकाय—छह जीव का जत्था, उसे नष्ट करने का विकल्प, धात करने का राग, हों!

और पंचेन्द्रिय सम्बन्धी अभिलाषा के विकल्प से... भाषा देखो! **पंचेन्द्रिय सम्बन्धी अभिलाषा के विकल्प से...** पाँच इन्द्रिय का विषय छूट जाये, यह प्रश्न नहीं। समझ में आया? पाँच इन्द्रियों सम्बन्धी अभिलाषा का विकल्प है। **आत्मा को व्यावृत...** किया है। व्यावृत (अर्थात्) आत्मा को वहाँ से छोड़ा है। विमुख करके, रोककर, अलग करके। संयम है न! छह काय के जीव और पाँच मन के विषय। समझ में आया? उनकी अभिलाषा, उससे विमुख किया है, अन्तर स्वरूप में स्थिर हुआ है, उसे संयम कहते हैं। ऐसा संयम है। कितने ही फिर कहते हैं न! एक जगह आता है, संयम सिद्ध में ऐसा नहीं। एक जगह आता है। उन्हें भी चारित्र है, वह तो ऐसा होता है। धवल में आता है पहले भाग में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं ऐसा। वह तो हेतु यह है न! इसलिए वे फिर कहे न संयम वह चारित्र। चारित्र नहीं। संयम नहीं, वह दूसरी बात है। वह तो ऐसा ऐसा प्रवृत्ति का भाव नहीं। परिणमन... चारित्र है, सिद्ध को चारित्र है। भाई ने निकाला था न! लोगों को वस्तु स्वरूप (पता नहीं)। चारित्र, वह तो त्रिकाली गुण है और गुण है, उसकी शक्ति की प्रगटता सिद्ध को पूर्ण हो गयी है। स्वरूपाचरण सिद्ध को पूरा है, वह चारित्र है। उसमें भी विवाद, वह कहे चारित्र नहीं। संयम का इनकार करते हैं; इसलिए चारित्र नहीं। अब भाई! छोड़ दे न विवाद। पण्डितों को मान मिले कि हमने इतना लिखा, बाहर प्रसिद्ध किया, अब कैसे बदलना? भाई! बदल न अब! भटकता था अनादि से। उसे व्यावृत कर, ऐसा कहते हैं। विमुख हो जा। आहाहा! यह और गया हुआ है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो।

मुनि छह काय के जीव और मन की अभिलाषा इन्द्रियों की... समझे न? है न? अभिलाषा करके आत्मा का अर्थात् बाहर में आ गया इन्द्रियों सम्बन्धी अभिलाषा आया न, इसलिए विकल्प भी आया। छह जीव आये, पाँच इन्द्रियाँ आयी और मन का अर्थ विकल्प आया। बारह संयम है न? बारह अव्रत, ऐसा लिया। छह जीवनिकाय को घातने का विकल्प, पाँच इन्द्रियाँ—ग्यारह और उन सम्बन्धी की मन की अभिलाषा।

यह मन के विकल्प को, आत्मा को व्यावृत करके। आहाहा! यह था सही, परन्तु उससे आत्मा को अलग कर डाला। अलग करके स्थिर हुआ है, उसका नाम...

आत्मा का शुद्धस्वरूप में संयमन करने से,... वह व्यावृत तो नास्ति से लिया। यहाँ अस्ति से लिया। **आत्मा का शुद्धस्वरूप में संयमन करने से,...** रमणता अन्दर है। **संयमन करने से, और...** वह संयम की व्याख्या है। अब तप की। यह मुनि संयमसहित है, तपसहित है। अर्थात् तप कैसा? **स्वरूपविश्रान्त निस्तरंग चैतन्यप्रतपन होने से...** देखो! स्वरूपविश्रान्त—यह स्वरूप में स्थिर हो गया। विश्रान्ति ली विश्रान्ति, विश्राम मिला आत्मा में। **स्वरूपविश्रान्त निस्तरंग...** तरंग बिना का। चंचलतारहित शान्त विकल्प रहित आत्मा का शुद्धस्वरूप। समझ में आया? **चैतन्यप्रतपन होने से...** लो! **प्रतापवान होना, प्रकाशित होना, दैदीप्यमान होना।** उसे यहाँ तप कहा जाता है। यह तप की व्याख्या। रोटियाँ नहीं खाना और अनशन करना, वह तप नहीं, ऐसा कहते हैं।

संयम की वह व्याख्या की यहाँ तक। संयमन किया होने से और स्वरूप विश्रान्त... अपना शुद्ध स्वरूप आनन्द... देखो! उसमें स्वरूप की रमणता कही थी। स्वरूप में रमना, वह चारित्र। भाई! स्वरूप में रमना, वह चारित्र। और स्वसमय की प्रवृत्ति यह उसका अर्थ है। स्वसमय की प्रवृत्ति इसका अर्थ है और यहाँ तप की व्याख्या में स्वरूपविश्रान्त, ऐसा लिया। विशेष विश्रान्त लिया। समझ में आया? चारित्र तो है, संयम तो है, तदुपरान्त स्वरूप में विश्रान्त (हुआ है)। निस्तरंग—विकल्प की तरंग ही न रहे। इच्छा की उत्पत्ति जहाँ नहीं। ऐसा चैतन्य—ऐसा भगवान आत्मा। जैसे सोने को गेरु लगकर ओपता और शोभता है, उसी प्रकार भगवान अन्तर में कान्ति शुद्धता से शोभे, ऐसी दशा को तप कहा जाता है। समझ में आया? ऐई! न्यालभाई! बाकी सबको लंघन कहते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिसमें आत्मा जलहल ज्योति प्रगट हो ऐसे अन्दर, शुद्धता के प्रकाश की पर्यायों से जहाँ शुद्ध हो। विश्रान्त निस्तरंग। विश्रान्त अस्ति से कहा, निस्तरंग नास्ति से कहा और प्रतपता से चैतन्य। ऐसा प्रतपता चैतन्य। प्रतापवन्त होना, जलहलना ऐसी दशा को तप कहा जाता है। उस तपसहित है मुनि। ऐसे तपसहित मुनि होते हैं। समझ में आया? यहाँ तो कहे, दूध छोड़ा, रस खाते नहीं, ढींकणा किया, भारी तप है। वह तप नहीं, ऐसा कहते हैं। अन्दर का विकल्प छोड़कर,

निस्तरंग होकर, अन्दर स्थिर हो दर्शन-ज्ञानसहित, चारित्रसहित। दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित विशेष विश्रान्ति अन्तर में ले और तपे जीव ऐसे शोभे, ऐसी दशा को तप कहा जाता है। मुनि ऐसे संयम और तपसहित होते हैं। समझ में आया? अभी तो क्या है, यह सुना न हो और मान बैठे कि हम संयमी और तपी हैं। बहुत हो गया ऐसा।

अब 'वीतराग' कहते हैं। '**सुविदिदपयत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो**' इतना अर्थ किया। '**विगदरागो**' अब। पहले पद का तीसरा शब्द है। '**विगदरागो' सकल मोहनीय के विपाक से...** सकल मोहनीय के विपाक से **भेद की भावना की उत्कृष्टता से...** यहाँ निकाले कि मोह बिल्कुल नहीं, उसके लिये बात है। परन्तु यह समस्त मोहरहित ही है। शुद्ध उपयोगी सातवें में समस्त मोह से रहित ही है। समझ में आया? **सकल मोहनीय के विपाक से भेद की भावना की उत्कृष्टता से (समस्त मोहनीय कर्म के उदय से भिन्नत्व की उत्कृष्ट भावना से)...** भावना द्वारा। है? कहो, भेद की भावना। भावना का अर्थ उल्टा करते हैं, ले। श्रावक की भावना होती है सामायिक में। नहीं? शुद्ध उपयोग होता है न, उसे भावना गिनी। भावना अर्थात् कि वह तो भाव... हो। यहाँ तो भावना में उत्कृष्ट भाव अपना स्वरूप हो गया है।

विपाक से भेद की भावना की उत्कृष्टता से (समस्त मोहनीय कर्म के उदय से भिन्नत्व की उत्कृष्ट भावना से)... परिणमन है यहाँ तो भावना का अर्थ। **निर्विकार आत्मस्वरूप को प्रगट किया...** है। निर्विकार भगवान आत्मा के स्वरूप को शक्तिरूप था उसे पर्याय में प्रगट किया है। वीतरागपना था, वीतराग-विज्ञानस्वरूप था, वीतरागस्वरूप था उसे विगतवार—पर्याय में वीतरागपना प्रगट किया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **निर्विकार आत्मस्वरूप को प्रगट किया होने से...** ऐसे कारण से **जो वीतराग है,...** मुनि इस कारण से वीतराग है। धवल में आता है न? पुष्पदन्त और भूतबली। वीतराग मुनि हैं, ऐसा कहा है। पुष्पदन्त और भूतबली जो यह अंग रचे। क्या? यह षट्खण्डागम रचे। षट्खण्डागम धरसेनस्वामी ने दिये यहाँ गिरनार की गुफा में। मुनि दिगम्बर महा धरसेनाचार्य थे। वृद्धावस्था हो गयी, अन्तिम स्थिति थी, मुनि को बुलाया। स्वयं को कण्ठस्थ था, वह दिया। षट्खण्डागम। और महामुनि ब्रह्मचारी महादशा! दिया और वहाँ भूतों ने पूजा की फिर। पुष्प द्वारा दो मुनियों की (पूजा की)। एक का नाम भूतबली

दिया, एक का नाम पुष्पदन्त। ऐसे मुनि महा वीतरागी सन्त थे। गिरनार की गुफा में। है न वह गुफा क्या कहलाती है? चन्द्र। चन्द्र गुफा। है न छोटी। वहाँ गये थे अन्दर में बैठे थे। (संवत्) १९९५ में। वनेचन्द सेठ थे।

कहते हैं, ओहो! निर्विकारस्वरूप, वीतरागस्वरूप मुनि वीतराग सातवें गुणस्थान में। यह पुष्पदन्त आदि पंचम काल के साधु हैं, लो न! भूतबली। उन्हें वीतराग कहा है। वीतरागी साधु। कुन्दकुन्दाचार्य वीतरागी साधु, अमृतचन्द्राचार्य वीतरागी साधु हैं। समझ में आया? यह वीतरागपना, वह शुद्ध उपयोग और वह चारित्र है। आहाहा! जरा राग रहा, उसकी गिनती नहीं है। नियमसार में कहा है, अरे! हम जड़ हैं कि जरा राग बाकी है, इसलिए उन्हें वीतराग से अलग करते हैं? नहीं। वे वीतराग जैसे ही हैं। आया है न नियमसार में? ... बतलाया। वीतराग मूर्ति है। ओहोहो! शान्तरस का बिम्ब हो गये हैं वे तो। मुनि अर्थात्? उपशमरस के ढाले में, जैसे बर्फ की शिला शीतल... शीतल... शीतल... शीतल... उसी प्रकार पूरे आत्मा में शान्तरस का परिणमन बिम्ब हो गया वीतराग, उसे साधु कहा जाता है और उस साधुपने का जो उपयोग चारित्र का, वह मोक्ष का कारण है। समझ में आया?

वीतराग है, 'समणो समहुहदुक्खो भणिदो' लो! **और परमकला के अवलोकन के कारण...** देखो! यह **परमकला के अवलोकन के कारण सातावेदनीय तथा असातावेदनीय के विपाक से उत्पन्न होनेवाले जो सुख-दुःख उन सुख-दुःख जनित परिणामों की विषमता का अनुभव नहीं होने से...** लो! समझ में आया? आहाहा! परमकला का अवलोकन। स्वरूप भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप का अवलोकन करता है वह। परमकला केवलज्ञान आनन्द की कला स्वयं की, ऐसे कला के अवलोकन द्वारा, अन्तर अवलोकन द्वारा, कहते हैं कि बाहर का जो संयोग मिला, साता-असाता उसके **विपाक से उत्पन्न होनेवाले...** लो, यहाँ तो कहा सुख-दुःख। ऐई! इसमें स्पष्ट बात कही है। ... है न, वह तो आया था न! थे न वे? आया था ७५-७६ नहीं आया था? विपाक से प्राप्त विषय। साता से यह बाह्य के संयोग मिले, असाता से प्रतिकूल मिले। यह चीज़ है। समझ में आया? अमरचन्दभाई! जरा सा इनकार करते हैं न, फूलचन्दजी इनकार करते हैं। खोटी बात है। उन्हें पहले से बात बैठ गयी है। ऐसा कि यह पैसा मिले, वह

साता के कारण नहीं, निरोग हो वह साता के कारण नहीं, असाता के कारण रोग नहीं, ऐसा सब बहुत लम्बा है। यहाँ तो स्पष्ट कहते हैं आचार्य। अमृतचन्द्राचार्य, वीरसेनस्वामी, ऐसे हजारों शास्त्रों में कहते हैं।

विपाक से उत्पन्न होनेवाले... है ? सुख-दुःख अर्थात् सामग्री, हों! और सुख-दुःखजनित परिणाम, वे अलग लिये, भाई! उसके **परिणामों की विषमता का अनुभव नहीं होने से (परम सुखरस में लीन निर्विकार स्वसंवेदनरूप परमकला के अनुभव के कारण...)** परम कला आनन्द के अनुभव के कारण **(इष्टानिष्ट संयोगों में हर्ष-शोकादि विषय परिणामों का अनुभव न होने से)...** लो, समझ में आया? देखो! यहाँ अर्थ किया न? अनुभव होने से उसमें परम सुख में लीन होने से (ऐसा) अर्थ किया। **(परमकला के अनुभव के कारण इष्टानिष्ट संयोगों में हर्ष शोकादि विषय परिणामों का अनुभव न होने से) जो समसुखदुःख हैं,...** समसुख-दुःख है। अर्थात् जिन्हें परिणाम में समसुखदुःख है। विश्रान्तता अकेली वीतरागता है। सुख-दुःख के परिणाम की जिसे कल्पना नहीं, इसलिए समसुख-दुःख, ऐसा। वीतरागभाव से रहते हैं, उन्हें समसुख-दुःख है। सुख और दुःख, इष्ट तथा अनिष्ट संयोग, देखा! दोनों जिन्हें समान हैं। बाघ खाता हो या कोई मक्खन चुपड़ता हो शरीर को, साता-असाता के उदय के कारण वह सब है। उन्हें समभाव है। **ऐसे श्रमण शुद्धोपयोगी कहलाते हैं।** लो! ऐसे साधु को शुद्धोपयोगी कहा जाता है और वे मुक्ति के अधिकारी हैं, उन्हें मुक्तिदशा मिलती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ७, शनिवार, दिनांक १४-०९-१९६८
गाथा - १५, १६, प्रवचन - १२

प्रवचनसार, ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन। १४ गाथा पूरी हुई। ... १५वीं गाथा। आत्मा चैतन्य ज्ञानानन्दस्वरूप की दर्शनशुद्धि और ज्ञान की प्राप्ति उपरान्त शुद्ध उपयोग के आचरण की साम्यता प्रगट करके उसके फलरूप से केवलज्ञान प्राप्त होता है, इसकी व्याख्या करते हैं। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - १५

अब, शुद्धोपयोग की प्राप्ति के बाद तत्काल ही... है न? '**भावि**' है न '**भावि**' '**अनन्तर भावि**'। **शुद्ध आत्मस्वभाव प्राप्ति की प्रशंसा करते हैं:**—केवलज्ञान की पर्याय की प्रशंसा करते हैं।

उवओगविसुद्धो जो विगदावरणंतरायमोहरओ।
भूदो सयमेवादा जादि परं णेयभूदाणं॥१५॥

जो उपयोग-विशुद्ध हुआ, मोहान्तराय-आवरण-रहित-
होता हुआ, स्वयं ही पाता, पार ज्ञेय का वह सर्वज्ञ॥१५॥

... कहते हैं। समझ में आया? .... मुक्ति का लाभ अथवा केवलज्ञान का लाभ मिलता है।

टीका :- जो (आत्मा) चैतन्य परिणामस्वरूप उपयोग के द्वारा... यह तो बाहर उपयोग है, वह चैतन्य का परिणाम है। यह है, वह दूसरी बात है। समझ में आया? उसमें ऐसा आता है कि चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोग। आता है न? पाँच ज्ञान, तीन अज्ञान, चार दर्शन, वे भी चैतन्य को अनुसरकर होते परिणाम हैं। यह तो जानने-देखने की बात है। यहाँ आचरण की अपेक्षा की बात है। **जो (आत्मा) चैतन्य परिणामस्वरूप...** अर्थात् चैतन्य के परिणामस्वरूप उपयोग अर्थात् कि शुद्ध उपयोग, वे

चैतन्य के परिणाम हैं। शुभ और अशुभ, वे चैतन्य के परिणाम नहीं। समझ में आया? शुद्ध ज्ञान चैतन्यस्वभाव का जो उपयोग शुद्ध, वह शुद्ध चैतन्य परिणामस्वरूप कहा है, लक्षण कहा है उसमें। परिणाम लक्षण, ऐसा है न! चैतन्यपरिणामस्वरूप आत्मा। देखो! उसमें विकल्प आदि नहीं, पंच महाव्रतादि का विकल्प नहीं। अकेला चैतन्यस्वरूप ऐसा जो परिणामस्वरूप उपयोग द्वारा, उसके द्वारा **यथाशक्ति विशुद्ध होकर वर्तता है,...** देखो! स्वयं उसके पुरुषार्थ द्वारा शुद्ध उपयोग द्वारा यथाशक्ति विशुद्ध होकर... यह विशुद्ध अर्थात् पुण्य-शुभभाव के अर्थ में नहीं। निर्मलता के अर्थ में है। समझ में आया? अपने स्वरूप में आरूढ़ हुआ, शुद्ध उपयोग में रमता हुआ **यथाशक्ति विशुद्ध होकर वर्तता है,...** उस-उस प्रकार के पुरुषार्थ की योग्यता प्रमाण निर्मल होकर वर्तता है। देखा! यथाशक्ति विशुद्ध होकर वर्तता है, ऐसा कहा है। कर्म मन्द पड़े तो होकर वर्तता है, ऐसा कहा नहीं। समझ में आया? स्वयं ही अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप महान आनन्द का गोला-गोटा, उसके ऊपर आरूढ़ हुआ शुद्ध उपयोग के आचरण से यथाशक्ति वर्तता है। अपनी शक्ति प्रमाण निर्मलता की धारा शुद्ध उपयोग की वर्तती है।

वह (आत्मा),... उस आत्मा को **जिसे पद पद पर (प्रत्येक पर्याय में)...** उस आत्मा का पगला अर्थात् पर्याय। समय-समय में पर्याय में **विशिष्ट विशुद्ध शक्ति प्रगट होती जाती है,...** लो! **विशिष्ट=विशेष; असाधारण; खास।** देखो, यह सर्वज्ञ परमेश्वर होने की यह विधि। इस विधि से सर्वज्ञ और केवलज्ञानी होता है। इसके अतिरिक्त दूसरा कहता हो कि हम केवलज्ञानी और सर्वज्ञ और परमेश्वर (हैं), वे सब खोटे हैं। समझ में आया? बाह्य में नग्न दिगम्बर हो, अभ्यन्तर में दर्शन-ज्ञान और शुद्ध उपयोग का आचरण हो, ऐसे शुद्ध उपयोग के आचरण की बढ़ती धारा द्वारा जिसे पर्याय-पर्याय में खास विशुद्ध शक्ति प्रगट होती जाती है। पहले क्षण में जो निर्मलता है, उसकी अपेक्षा दूसरी पर्याय में विशेष निर्मलता बढ़ती जाती है, धारा शुद्धता बढ़ती जाती है। ध्यान में शुद्ध उपयोग द्वारा पर्याय-पर्याय में अनन्त शुद्धि बढ़ती जाती है। समझ में आया? वस्तु है पूरी शुद्ध चैतन्यज्योति, उसका उपयोग लागू पड़ा है अन्दर, उसके कारण समय-समय में शुद्धि की वृद्धि होती जाती है, प्रगट होती जाती है। शक्ति में जो है, वह पर्याय में शुद्धता वीतरागता बढ़ती जाती है।

ऐसा होने से,... ऐसा होने के कारण, ऐसा। समझ में आया? कितने ही कहते हैं न कि केवलज्ञान तो... भाई वह ऊपर ऐलचीकुमार और आते हैं न? नाचते-नाचते केवलज्ञान हुआ। परन्तु आता है या नहीं तुम्हारे? ऐलचीकुमार नहीं आता? आता है न, उसका गायन आता है। नटनी के साथ नाचता था। ऐसा करते-करते मुनि की दीक्षा, ओहो! धन्य अवतार! यह मुनि के सामने देखते नहीं, उसे देते हैं आहार और मैं कहाँ... होता होगा ऐसा केवलज्ञान? मरुदेवी को हाथी के हौदे केवलज्ञान हुआ, ऐसा (वे) कहते हैं। कहो, भगवान के दर्शन करने गये, ऐसा कि अरे! मेरा वृषभ क्या होगा? क्या होता होगा? अरेरे! जहाँ ऐसा देखे वहाँ तो ओहोहो! समवसरण में। इसलिए ऐसे आँख में आँसू रो-रोकर वह हो गया। ऐसे ले जाते जाओ केवलज्ञान। सेठ!

मुमुक्षु : ....केवलज्ञान ही हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे केवलज्ञान नहीं होता, ऐसा केवलज्ञान होता नहीं। इस धारा से हो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आर्जिका का आता है। आर्जिका उसकी गोराणी थी और वह पैर दबाती थी रात्रि में। दबाते... दबाते... दबाते... उसे केवलज्ञान हो गया। अब उसमें सिर के नीचे सर्प आया। सर्प आया तो ऐसे हाथ फिरा दिया। केवलज्ञान हुआ न। देखो न सर्प को। इसलिए ऐसे हाथ फिराया। कैसे अन्धेरे में दिखाई दिया? कि ज्ञान हुआ है? हाँ। किया? अप्रतिहत? हाँ, ठीक! केवलज्ञान। लो, ऐसे को केवलज्ञान। लिखा है उसमें, हों! आत्मसिद्धि के अर्थ में भी मनसुखभाई ने लिखा है। मनसुखभाई ने लिखा है। आत्मसिद्धि के अर्थ किये हैं न, उसमें लिखा है। श्रीमद् राजचन्द्र के भाई। सब गप्प-गप्प है। कुछ खबर नहीं होती केवलज्ञान किसे कहना? सर्वज्ञ परमेश्वर हो, परमात्मा कैसे होते हैं, उसकी खबर नहीं होती। समझ में आया? खाते-पीते केवलज्ञानी। समझ में आया? काम करते हुए केवलज्ञानी। धूल भी नहीं होता सुन न! अभी मुनिपना ऐसा होता है कि जिसे बाह्य नग्नदशा हो जाती है। अत्यन्त अकेले दिगम्बर और अन्तर में तीन कषाय का नाश होकर शुद्ध उपयोग की लीनता से अन्दर में रमता होता है। समझ में आया? वह पद-पद में बढ़ता हुआ अन्दर में पर्याय-पर्याय में शुद्धि की वृद्धि होती है। समझ में आया? उसमें आता है न सौभागभाई में। सोते-सोते केवलज्ञान होगा, मैं तुझे कहूँगा। ऐई! सौभागभाई का आता है, उसमें लेख।

परन्तु अभी खाट में है, रोग है, वस्त्र पहनकर सो रहा है। और मैं केवलज्ञान का पुरुषार्थ करूँ। केवलज्ञान होगा तो मैं तुझे कहूँगा। ऐसा केवलज्ञान होगा? आता है उसमें। श्रीमद् की पुस्तक प्रकाशित हुई है न अभी, उसमें आया है। लोग सर्वज्ञपद को समझते नहीं। परमेश्वर पद किसे प्रगट हो और किस दशा में होता है, इसकी उसे खबर नहीं।

इसलिए यह आचार्य महाराज स्पष्ट (करते हैं)। प्रवचनसार—वीतराग की दिव्यध्वनि का सार। साधुपद कैसा होता है और उसके उपयोग से केवलज्ञान किस क्रम से प्राप्त होता है, यह वर्णन किया है। सर्वज्ञ की सिद्धि है, अन्दर है न मूल तो। कहते हैं कि उसके कारण... देखा! भगवान आत्मा अन्तर शक्ति का चैतन्यपिण्ड प्रभु, उसकी दृष्टि, ज्ञान की क्रीड़ा से अन्दर में चढ़ता हुआ पर्याय में अर्थात् क्षण-क्षण में उसकी अवस्था निर्मल होती जाती है। **ऐसा होने से,...** ऐसा कहते हैं। इसी निर्मलता के कारण से **अनादि संसार से बँधी हुई दृढ़तर मोहग्रन्थि छूट जाने से...** लो! अनादि संसार से बँधी हुई दृढ़तर। देखा! दृढ़ नहीं परन्तु दृढ़तर, विशेष। **मोहग्रन्थि छूट जाने से...** मोह का नाश हुआ। बाहर का लिया यह। समझ में आया? यहाँ तो अमुक मिथ्यात्व तो गया था, तीन कषाय (चौकड़ी) तो गयी थी, जो थोड़ी कषाय है, उसे मोहग्रन्थि कहा है। थोड़ा अन्दर है न संज्वलन का। **दृढ़तर मोहग्रन्थि छूट जाने से...** देखो! समझ में आया? शुद्ध उपयोग में तो वर्तता है। उसे संज्वलन का जरा अबुद्धिपूर्वक अन्दर है, परन्तु उसे मोहग्रन्थि कहा। ऐसे अनादि की है न, इतना अंश। अनादि का है न वह? भले मुनि हुए, वे हुए परन्तु राग का अंश जो पड़ा है, वह अनादि है। वह यदि छूट गयी हो, तब तो बारहवाँ गुणस्थान हो जाये। समझ में आया?

अनादि संसार से बँधी हुई दृढ़तर मोहग्रन्थि छूट जाने से अत्यन्त निर्विकार चैतन्यवाला... वीतराग हुआ अन्दर। अत्यन्त विकाररहित चैतन्यवाला **और समस्त...** फिर जब स्वरूप की शुद्धि बढ़ी, तब मोह की गाँठ गली, वीतराग हुआ यहाँ। फिर **समस्त ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय के नष्ट हो जाने से...** पश्चात् तीन कर्म का फिर नाश हुआ। पहले मोह का नाश होता है, फिर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय का—इन तीन कर्म का फिर नाश होता है। **निर्विघ्न खिली हुई...** जिसे विघ्न नहीं, ऐसी केवलज्ञानधारा एक समय में तीन काल—तीन लोक देखे, जाने—ऐसी

निर्विघ्न विकसित आत्मशक्तिवान... खिली हुई आत्मशक्ति, हों! यहाँ पर्यायवाला कहना है। शक्ति तो त्रिकाल है, उसकी यहाँ बात नहीं है। **निर्विघ्न विकसित आत्मशक्तिवान...** पर्याय में शक्ति पूर्ण खिल गयी। समझ में आया? **स्वयमेव होता हुआ...** अपने पुरुषार्थ से। स्वयं-ऐव अपनी जागृति से केवलज्ञान को प्राप्त होता हुआ **ज्ञेयता को प्राप्त (पदार्थों) के अन्त को पा लेता है।** लो! ज्ञेयपने को प्राप्त अर्थात् जितने पदार्थ ज्ञेय हैं, ऐसा। जितने ज्ञेय जगत में तीन काल-तीन लोकादि हैं, उनके अन्त को पाता है। ऐसे ज्ञेय के ज्ञान को पा जाता है। तीन काल-तीन लोक के ज्ञेय जितने हैं, उनके अन्त को अर्थात् उनका ज्ञान हो जाता है। समझ में आया?

अन्तराय के नष्ट हो जाने से निर्विघ्न विकसित... विघ्न नहीं अब, कहते हैं। केवलज्ञान प्राप्त होता है। ऐसे जीव को सर्वज्ञपद प्राप्त होता है। दूसरे कहें कि हमने खाते-पीते केवलज्ञान लिया, सोते हुए केवलज्ञान लिया, नाचते हुए लिया न। समझ में आया? त्रिकाल ज्ञानी थे मेरे देव। सब गप्प-गप्प झूठ। पोपटभाई! भान बिना के प्राणी, उनके पास भान बिना की बातें करे। ऐसा आत्मा भगवान एक समय में सर्वज्ञस्वभावी, उसकी जहाँ अन्तर में प्रतीति अपनी पूर्ण की हुई, अनुभव हुआ, ज्ञान हुआ और फिर शुद्ध उपयोग की रमणता से बाह्य में... यहाँ, बाहर की बात इसमें की ही नहीं, नग्न ही होते हैं वे मुनि, दिगम्बर ही होते हैं और जंगल में ही होते हैं वे, ऐसे अन्तर में रमते हुए क्रम-क्रम से शुद्धि बढ़कर मोह का नाश होता है, फिर तीन कर्म का नाश होता है। **आत्मशक्तिवान स्वयमेव होता हुआ...** देखो! किसी के साधन बिना, दूसरे की मदद बिना, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कर्म नष्ट हुए तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु नष्ट किये स्वयं ने न। नष्ट होने से कहा न! इस कारण से निर्विघ्न शक्तिवाला, उसे नष्ट होने से... यहाँ ऐसा हुआ तो वहाँ नष्ट होते हैं, ऐसा कहा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा कहते हैं। पहले तो यहाँ लिया कि ऐसा प्रगट होता जाये, ऐसा होने के कारण... है न मगनभाई! **(प्रत्येक पर्याय में) विशिष्ट विशुद्ध शक्ति**

प्रगट होती जाती है, ऐसा होने से, अनादि संसार से बँधी हुई दृढ़तर मोहग्रन्थि छूट जाने से...

मुमुक्षु : यहाँ तक तो बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, यहाँ से तो कहा।

अब अत्यन्त निर्विकार चैतन्यवाला ऐसा। अब अत्यन्त निर्विकार चैतन्यवाला उपयोग हो गया वीतराग। **और समस्त ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय के नष्ट हो जाने से...** अत्यन्त निर्विकार चैतन्यवाला होने के कारण। **समस्त ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय के नष्ट हो जाने से निर्विघ्न विकसित आत्मशक्तिवान स्वयमेव होता हुआ ज्ञेयता को प्राप्त...** अर्थात् क्या? जितने जगत में ज्ञेय अर्थात् प्रमेयपने ज्ञात हो, ऐसे हों, जितने जगत में तीन काल-तीन लोक, छह द्रव्य-गुण-पर्याय ज्ञेय अर्थात् ज्ञात होनेयोग्य जो चीज़ है, उन सबके अन्त को पा गये। ज्ञात होनेयोग्य जितने, उन सबके अन्त को प्राप्त हुए, कोई बाकी रहा नहीं। लोक के अन्त को जाने, लोक के अन्त को जाने, अलोक के अनन्त को जाने। लोक का अन्त है न! अलोक के अनन्त को जाने। समझ में आया? लोक का अन्त ज्ञेयपने को अकेला पाते हैं, ... अन्त बिना का ज्ञेयपने को पाते हैं।... इस प्रकार अनादि-अनन्त... समझ में आया? **ज्ञेयता को प्राप्त (पदार्थों) के अन्त को पा लेता है।** लो!

यहाँ (यह कहा है कि) आत्मा ज्ञानस्वभाव है,... भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है **और ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है;...** ज्ञान, जितने ज्ञेय हैं, उतने ज्ञेय को जाने उतने प्रमाण हैं। **इसलिए समस्त ज्ञेयों के भीतर प्रवेश को प्राप्त...** है? '**ज्ञेय अन्तर्वर्ति**' है न। संस्कृत में '**अन्तर्वर्ति।**' क्या कहते हैं? ज्ञानस्वरूप आत्मा अपने स्वरूप के आचरण द्वारा जहाँ शुद्ध होकर वर्ता अर्थात् उसे केवलज्ञान हो जाये। जिस केवलज्ञान में तीन काल-तीन लोक के कोई पदार्थ उसे ज्ञात हुए बिना रहते नहीं। इसलिए मानो ज्ञेय में प्रवेश कर गया, ज्ञान ज्ञेय में प्रवेश कर गया, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? **समस्त ज्ञेयों के भीतर प्रवेश को प्राप्त (ज्ञाता)...** समझ में आया?

ज्ञान जिसका स्वभाव है, ऐसे आत्मा को आत्मा शुद्धोपयोग के ही प्रसाद से

प्राप्त करता है। लो आया। भगवान आत्मा अपने शुद्ध उपयोग, शुद्ध आचरण, वीतरागी रमणता अन्दर में रमते हुए उससे शुद्ध उपयोग के प्रसाद से ही, ऐसा कहते हैं, केवलज्ञान को प्राप्त होता है। देखो! यह सर्वज्ञपना सिद्ध करते हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर अनन्त हुए हैं, और होते हैं और होंगे, इस प्रकार से होंगे। दूसरी पद्धति उनकी हो नहीं सकती। कहो, समझ में आया?

भावार्थ :- शुद्धोपयोगी जीव... आत्मा के शुद्ध आचरण के परिणाम में चढ़ा हुआ जीव **प्रतिक्षण अत्यन्त शुद्धि को प्राप्त करता रहता है;...** क्षण-क्षण में निर्मलता शक्ति में से प्रगट होती जाती है। **और इस प्रकार मोह का क्षय करके निर्विकार चेतनावान होकर,...** (इस प्रकार) मोह का नाश करके... उसकी पद्धति तो इसे जाननी पड़ेगी या नहीं? देव कैसे होते हैं और देव की दिव्यता कैसे उसे प्रगटे? उस देव की भी जिसे खबर नहीं, उसे आत्मा की खबर नहीं पड़ती। देव-गुरु-शास्त्र सच्चे कैसे हैं, उसका इसे ज्ञान चाहिए। समझ में आया? जिसे-तिसे परमेश्वर मान ले, जिसे-तिसे गुरु माने और जिसे-तिसे शास्त्र मान ले, उसकी श्रद्धा में मिथ्यात्व है। समझ में आया? ऐसे परमेश्वर हों, उन्हें ज्ञान में पहले जानकर निर्णय करना चाहिए। समझ में आया? कोई कहे, पंचम काल के प्राणी लो, वे मोक्ष गये। ऐसा और कह दिया, लो। समझ में आया? झूठी बात है। इसमें कहा है न? शुद्ध उपयोगवाले मोक्ष जाते हैं और शुद्ध उपयोग अंगीकार किया है कुन्दकुन्दाचार्य ने।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध उपयोग में... परन्तु ऐसा कि प्राप्त तो किया है न! शुद्ध उपयोग का फल तो यह है। यहाँ तो वस्तु की स्थिति बतलाते हैं। मुनिपना है, वह शुद्ध उपयोग ही है। मुनि तो शुद्ध उपयोग को ही अंगीकार करे, परन्तु उन्हें आगे बढ़ने की श्रेणी जो है पुरुषार्थ की, उसमें कचाश है, इसलिए आगे नहीं बढ़ सकते। इसलिए पंचम काल के भी शुद्ध उपयोगी मुनि स्वर्ग में ही जाते हैं। समझ में आया? ऐसा तो लिया कि शुद्ध उपयोगवाले मोक्ष में जाते हैं और शुभवाले स्वर्ग में, ऐसा कहा है न? ऐई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु यह नहीं। शुद्ध योग से परिणमित है तो मोक्ष जाता है। चारित्ररूप है भले, परन्तु शुभ उपयोग से, ऐसा कि अभी स्वर्ग में जाता है इसलिए शुद्ध उपयोगी नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा नहीं। यहाँ तो बात कहते हैं कि भाई! शुद्ध उपयोग तो है और वह शुद्ध उपयोग मुक्ति का कारण है। परन्तु अपने पंचम काल में अपने पुरुषार्थ की कमी के कारण से वह वहाँ शुद्ध उपयोग में, भले उस काल (देह परिवर्तन) शुद्ध उपयोग में कर जाये कदाचित्, समझ में आया? तथापि उसकी मर्यादा केवलज्ञान प्राप्त करने की नहीं है। शुद्ध उपयोग हट जायेगा, स्वर्ग में जायेगा, चौथा (गुणस्थान) रहेगा। ऐ.. मगनभाई! क्या कहा? प्रश्न है न मगनभाई का कि शुद्ध उपयोग से चढ़ा हुआ, चारित्र की दशा में आया हुअ, अब वह वापस कैसे गिरे? शुद्धि की वृद्धि हो ऐसा तो होता है। एकन्दर रूप से शुद्धि की वृद्धि है परन्तु इस प्रकार से शुद्धि की वृद्धि नहीं। दो बात है। समझ में आया? शुद्ध उपयोग जो है, उसमें भी काल करे मुनि। शुद्ध उपयोग में देह छूट जाये, तथापि वह पंचम काल के मुनि तो स्वर्ग में ही जाये। मुक्ति हो नहीं, केवलज्ञान है नहीं। समझ में आया? वह शक्ति बढ़कर पर्याय-पर्याय में शुद्धि बढ़ना चाहिए, बढ़कर मोह का नाश होना चाहिए, वह दशा अभी किसी भी मुनि—कुन्दकुन्दाचार्य जैसे को भी नहीं होती। परन्तु उसका वर्णन करे, तब तो उत्कृष्ट बात करे न! वर्णन में तो उत्कृष्ट बात हो या नहीं? बड़ा व्यापार करता होगा या छोटा करता होगा भाव में?

बारहवें गुणस्थान के अन्तिम समय में... लो! **निर्विकार चेतनावान होकर, बारहवें गुणस्थान के अन्तिम समय में ज्ञानावरण; दर्शनावरण और अन्तराय का युगपद् क्षय करके...** देखो! युगपद क्षय करके।

मुमुक्षु : यह तो अपने लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने लिखा है परन्तु है न अन्दर, नष्ट करके। समझ में आया?

समस्त ज्ञेयों को जाननेवाले... तीन काल-तीन लोक के ज्ञेय प्रमेय जितने हैं, उन्हें जाननेवाला। स्वयं भी आये और सब आये। **इस प्रकार शुद्धोपयोग से ही**

शुद्धात्मस्वभाव का लाभ होता है। लो! समझ में आया? सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसहित शुद्ध उपयोग की रमणता... देखो! भाई! यह किये बिना छुटकारा नहीं। इसे शान्ति चाहिए हो तो शुद्ध के आलम्बन बिना कहीं शान्ति नहीं। पहले से शान्ति चाहिए हो। समझ में आया? भगवान शुद्धस्वरूप चैतन्य का आलम्बन करने से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है। उसके आलम्बन बिना बाहर के किसी उपाय से होता नहीं। समझ में आया? यहाँ उसकी—आचरण की बात करते हैं।

कैसा है भगवान? चैतन्य वस्तु परमशान्ति से भरपूर, उसका स्पर्श होने से, उसकी प्रतीति हो कि यह आत्मा ऐसा, ज्ञान में ज्ञेय ज्ञात हो और शुद्धता के उपयोग में वह ज्ञात हुआ, तब उसे प्रतीति हुई। परन्तु वह शुद्ध उपयोग लम्बे काल टिकता नहीं। समझ में आया? फिर आगे बढ़कर स्वरूप में रमणता करते हुए विशेष कषाय टलने से चारित्र होता है। उसमें शुद्ध उपयोग की शान्ति बढ़ने से एकाकार हो तो केवलज्ञान होता है। यह आत्मा के अवलम्बन के सब कदम हैं। समझ में आया? बाहर के आश्रय और विकल्प और पर्याय का आश्रय लेकर कुछ नहीं होता, ऐसा सिद्ध करते हैं। कहो, जेठालालभाई! तब हमारे गृहस्थाश्रम को अभी यह इतना (है, उसमें कैसे करना?) परन्तु तुझे आत्मा की पूर्ण शक्ति का विकास किस विधि से होगा, किस प्रकार से होगा, उसका ज्ञान तो करना पड़ेगा या नहीं इसे? शोभालालभाई! कहो। क्या करना है तुझे? देव कैसे होते हैं? सर्वज्ञ परमेश्वर कैसे होते हैं? समझ में आया? और उन्हें सर्वज्ञपद किस विधि से, किस रीति से, किस क्रम से प्राप्त हुआ, उनका संवर-निर्जरा का उपयोग कैसे था—उसे समझे बिना देव को माने, वह कहाँ उन्हें मानता है? समझ में आया? सूक्ष्म बात, भाई! सर्वज्ञ की सिद्धि इसमें तो है।

शुद्धोपयोग से ही... अब उसमें अनेकान्त करो, कहते हैं, लो! शुद्ध उपयोग से भी केवलज्ञान होता है, संहनन से भी होता है, मनुष्यदेह से भी होत है। कहो, आता है या नहीं? वज्रनाराचसंहनन चाहिए या नहीं केवलज्ञान होने में? वज्रनाराचसंहनन, मनुष्यदेह, पर्याप्तपना, बादरपना यह होता है या नहीं? इसलिए कथंचित् शुद्ध उपयोग से और कथंचित् मनुष्यपने से (होता है)। यह प्रतिशत तो सामनेवाला कहे तब खबर पड़े। कहो, समझ में आया? ऐसा यहाँ प्रतिशत ही नहीं। यहाँ तो **शुद्धोपयोग से ही**

शुद्धात्मस्वभाव का लाभ होता है। एक ही बात है। सम्यक् एकान्त यह है। समझ में आया? अब उसके लिये देखो १६वीं गाथा बहुत ऊँची है। यह हेमराजजी ने पहले षट्कारक डाले हैं मंगलाचरण में। वह तो फिर अपने निकाल दिये न! प्रवचनसार में पहले शुरुआत मांगलिक किया है न, उसमें यह डाला है पहला। उनके अर्थ में कहा है। यह क्या है? गुजराती। उन्होंने जो अर्थ किया है, उसमें पहले षट्कारक ही डाले हैं, उनके पहले मांगलिक में।

देखो, 'श्री पाण्डे हेमराजजीकृत बालावबोध भाषाटीका।' अपने तो यहाँ स्पष्ट सब संस्कृत अक्षर-अक्षर हुआ है परन्तु हेमराजजी ने पहले यह डाला है। 'स्वयं सिद्ध करतार करे निजकर्म शर्म निधि।' मंगलाचरण में यह डाला है। 'स्वयं सिद्ध करतार करे निजकर्म शर्म निधि।' आनन्द की निधि। 'आप ही कारणस्वरूप होय साधन साधे विधि, सम्प्रदान का करे आप को आप समर्थ, अपादान ते आप आपको करी फिर तप कहे।' पहला मंगलाचरण में यह डाला है। वह यह सोलहवाँ है न मूल। 'अधिकरण होय आधार निज, वर्ते पूर्ण ब्रह्म पर, षट् विधि षट्कारकमयरहित विविध एक विधि अज अमर।' षट्कारक, यह के यह, फिर भेदरहित है। षट्कारक के भेद भी नहीं। अकेले अपने स्वरूप के आचरणरूप हो गये। फिर दूसरा। परन्तु अपने यहाँ षट्कारक यह है। उन्होंने चार दोहे कहे हैं। अभी आता है न! यह पहले से कहा है।

★ ★ ★

गाथा - १६

अब, शुद्धोपयोग से होनेवाली शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अपने चैतन्य के समुद्र के सागर में स्थित, शुद्धोपयोग में रमता, उसकी जो प्राप्ति, शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति—लाभ। समझ में आया? शुद्धात्मस्वभाव लाभ। लाभ है न ऊपर। प्राप्ति का (अर्थ) लाभ किया है। यदि भगवान आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप के रमणता में उपयोग से उसे शुद्ध स्वभाव का लाभ होता है, वह **अन्य कारकों से निरपेक्ष होने से...** लो! यह दूसरे राग और निमित्त के कारण से यह हो, ऐसा इसमें है नहीं। व्यवहार के कारण की इसमें आवश्यकता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। **अन्य**

कारकों... कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण—छह का विस्तार बहुत आयेगा इसमें। समझ में आया?

अन्य कारकों... अर्थात् क्रिया के कारक—कर्ता, कर्म इत्यादि। दूसरा कोई कर्ता हो, दूसरा कोई साधन हो, दूसरा कोई निमित्त हो तो केवलज्ञान हो या आत्मा का लाभ हो—ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया? जैसा पंचास्तिकाय की गाथा ६२ में जीव के विकार के लिय अन्य कारकों की अपेक्षा बिना विकार स्वतन्त्र स्वयं निरपेक्षरूप से करता है। पंचास्तिकाय-६२ (गाथा)। विकार को करने के लिये पर कारक की आवश्यकता नहीं। अपने कारक से विकार करता है। समझ में आया? अमरचन्दभाई! विकार-विकार। मिथ्यात्व, अज्ञान, राग-द्वेष के परिणाम भी दूसरे कारक की अपेक्षा बिना निरपेक्षरूप से जीव करता है। वह पंचास्ति(काय) की ६२वीं गाथा। यह चर्चा वहाँ... क्या कहलाता है वह? मधुवन में... मधुवन में बहुत हुई थी। एक घण्टे और दस मिनिट। सेठ थे या नहीं? परन्तु उन्हें कहाँ खबर हो उसकी? उन्हें रुपये देना हो और लेना हो, इस बात में पड़े हों। भाई! था न कुछ पाँच हजार और ग्यारह हजार कुछ था। रात्रि में बात होती थी न! सागर पहुँचते-पहुँचते ग्यारह हजार हो जायेगा। ऐसी बातें सुनीं। सेठ बैठे थे ऐसे। यह तो सब हो, संसार में सब चलता है। यहाँ कहते हैं... यह विकार की बड़ी चर्चा हुई थी। सब थे। वर्णीजी थे, बंसीधरजी थे, फूलचन्दजी थे। विकार कैसे होता है? विकार निरपेक्ष होता है। अपनी पर्याय में पर की अपेक्षा बिना आत्मा को विकार स्वयं से होता है। ऐई! खलबलाहट। नहीं... नहीं... नहीं... नहीं... अभिन्न कारक है। अभिन्न कारक का ही अर्थ हुआ (कि) पर की अपेक्षा नहीं। अरे! अभी विकार कैसे होता है, इसकी खबर नहीं होती, वह विकार टालने की खबर तो कहाँ से लावे? समझ में आया? यहाँ अब विकार टलता है, परमात्मपद पाता है आत्मा, उसमें भी पर कारक और पर कर्ता की आवश्यकता नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। कहो, समझ में आया?

अन्य कारकों से निरपेक्ष (स्वतंत्र) होने से अत्यन्त आत्माधीन है... देखी भाषा! समझ में आाय? **अत्यन्त आत्माधीन है...** है, पाठ में है, संस्कृत है, देखो! अत्यन्त आत्माधीन है। कथंचित् आत्मा-आधीन है और कथंचित् राग के आधीन और व्यवहार

के आधीन, निमित्त के आधीन, ऐसा है ही नहीं। आत्मा को धर्म की परिणति में भी पर के कारक की आवश्यकता नहीं और केवलज्ञान प्राप्त करने में भी पर के कारणों की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। दो कारण से कार्य होता है, ऐसा कहते हैं न? आहाहा! फलाना ने ऐसा लिखा है, दो कारक (होते हैं)। सर्वत्र लिखा है, सुन न! वह तो व्यवहार का ज्ञान कराया है। एक ही कारण वास्तव में है। अपने स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह अपने कारण से ही केवलज्ञान होता है। दूसरा कोई कारक-फारक है नहीं। देखो! है पाठ में, है या नहीं? **अन्य कारकों से निरपेक्ष...** अर्थात् अन्य कर्ता हो, दूसरे की सहायता मिले, रहने का साधन हो, संहनन ठीक हो, मनुष्यदेह हो, ऐसा हो तो आत्मा को केवलज्ञान होता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

अत्यन्त आत्माधीन है... भगवान आत्मा अपने आधीन ही सम्यग्दर्शन प्रगट करता है, अपने आधीन ही सम्यग्ज्ञान प्रगट करता है, अपने आधीन ही चारित्र प्रगट करता है, अपने आधीन ही शुक्लध्यान प्रगट करता है, अपने आधीन केवलज्ञान प्रगट करता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो, तो उसके घर में रहा। यहाँ कहाँ है? जगत में लोकालोक है। लोकालोक है या नहीं? तो लोकालोक है, इसलिए केवलज्ञान होता है? लोकालोक तो सबमें पड़ा है, केवलज्ञान क्यों नहीं होता? अपने पुरुषार्थ से होता है। ...की इनकार करते हैं इसमें। देखो!

अन्य कारकों से निरपेक्ष... कोई भी संहनन, शरीर, मन, विकल्प, देव-गुरु-शास्त्र, बाहर की सामग्री हो तो तुझे केवलज्ञान होगा, यह बात छोड़ दे। भीखाभाई! आहाहा! भगवान आत्मा स्वयंसिद्ध कर्ता। अपने सम्यग्दर्शन का कर्ता भी वह, साधन भी वह, सम्प्रदान भी वह, दे-लेकर करके दे स्वयं रखे वह। यहाँ तो केवलज्ञान में तो प्रत्येक गुण की पर्याय को ऐसे ले लेना। समझ में आया? अपने धर्म की पर्याय... विकारी पर्याय में पर की अपेक्षा नहीं कही फिर... मगनभाई! विकार करने में भी जीव स्वतन्त्र कर्ता होकर और स्वयं अपने विकार को पहुँचता है। कर्म, अर्थात् पहुँचना।

अपने विकार को आत्मा स्वयं पर की अपेक्षा बिना पहुँचता है। लोग नहीं कहते कि इस काम को पहुँच गया। इसी प्रकार आत्मा भी पर की अपेक्षा बिना राग-विकार को स्वयं पर की अपेक्षा बिना पहुँचता है। इसी प्रकार धर्म की पर्याय को भी पर की अपेक्षा बिना धर्मरूपी कर्म, धर्मरूपी कर्म, उसे पर की अपेक्षा बिना आत्मा पहुँचता है। समझ में आया? आहाहा! इसे विश्वास नहीं आता। मानो पामर हो गया हो, ऐसा लगे न! भिखारी हो गया। अरे! तीन लोक का नाथ है, भाई! आहाहा! अनन्त सिद्ध को पेट में-गर्भ में रखा। बापू! वहाँ से प्रसव होगा। उसमें होगा वह आयेगा। बाहर से ऐसा आनेवाला है? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की कथनी अनादि केवलज्ञानियों का कथन, उसके साथ कथन है। समझ में आया? लोग तकरार-तकरार विवाद उठावे, ऐसे विवाद उठावे। दो कारण से होता है, एक कारण से एकान्त है। यहाँ कहते हैं कि एक ही कारण से होता है, यह सम्यक् एकान्त है। सुन न, यहाँ तो निमित्त को इनकार किया, देखो न!

अन्य कारकों से निरपेक्ष (स्वतंत्र) होने से... भगवान आत्मा अपनी जागृति होने में पर की अपेक्षा है ही नहीं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन होने में भी पर की अपेक्षा जरा भी नहीं। आहाहा! यह तो अब इसे बैठता नहीं। स्वतन्त्र भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति है, उसके स्वभाव का अनादर करे तो वह कर्ता होकर करेगा और आदर करेगा तो कर्ता होकर करेगा, कोई करानेवाला है नहीं। थोड़ा सहारा चाहिए न! सेठ कहे, ऐसा वज्रनाराचसंहनन तो है या नहीं? संहनन है, इसलिए केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। तब तो संहनन सबको होता है। मच्छ को होता है। मच्छ देखा? तन्दुल मच्छ सातवें नरक में जाता है। उसे वज्रनाराचसंहनन होता है। समझ में आया? सातवें नारक में जाता है। इतना अंगुल का असंख्य भाग हो बारीक। बड़ा हजार योजन का मच्छ हो, उसकी आँख में होता है या कान में होता है। ऐसे आँख करने से हजार योजन का मच्छ हो वह मुख फाड़े तो कितनी ही मछलियाँ आवे और चली जाये। वह (तन्दुल मच्छ) विचारता है कि यदि (मैं) इतना बड़ा होता तो मछलियों को आवे उन्हें पेट में से जाने नहीं देता। इतना, हों! और संहनन वज्रनाराचसंहन, वज्रनाराचसंहनन। ऐसे परिणाम होते हैं कि सातवें नरक का आयुष्य बाँधता है। तैतीस सागर का रव रव नरक। शरीर भी

बड़ा नहीं। परिणाम बड़े कठोर किये। भगवान स्वयं पड़ा है न बड़ा। अनादर करके उल्टे परिणाम। संहनन पड़ा रहा। संहननवाला गया नरक में सातवें में। और यह संहननवाला मोक्ष प्राप्त करे। वह अपने कारण से या संहनन के कारण से? आहाहा! पुरुषार्थ से ही है न! यहाँ अब षट्कारक स्थापित करते हैं न, देखो न! आहाहा!

इतनी बात की है कि **शुद्धोपयोग से होनेवाली शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति...** एक बात। वह **अन्य कारकों से निरपेक्ष (स्वतंत्र) होने से...** दो बात। **अत्यन्त आत्माधीन है।** ऐसा अधिक स्पष्ट (किया)। अत्यन्त आत्माधीन है। भगवान आत्मा... मारे उसकी तलवार, ऐसा कहते हैं। बाँधे उसकी नहीं। बाँधे समझते हो? रखते तो बहुत रखते हैं क्या करे? झपट बुलावे। इसी प्रकार आत्मा अपने जागृत स्वभाव से झपट बुलावे अन्दर से। पर का आश्रय ... देव-गुरु-शास्त्र, संहनन, मनुष्यपना संहनन इत्यादि विकल्प व्यवहार था तो केवलज्ञान हुआ, यह पूर्व के चार ज्ञान थे साधकपने की पर्याय, वह साधकपने की पर्याय थी तो केवलज्ञान हुआ?—कि नहीं। समझ में आया? सीधा आत्मद्रव्य से केवलज्ञान पाता है। समझ में आया?

अरे! इसकी शक्ति क्या है, उसका माहात्म्य क्या है आत्मा का (इसकी) इसे खबर नहीं होती। रंक होकर घूमे और फिर परमेश्वर को कहे कि तुम हे भगवान! बड़े हो, हों! परन्तु भगवान कहते हैं कि तू बड़ा है। आया था न अपने यह पहले? पडघो-पडघो—प्रतिछन्द। समयसार की पहली गाथा। हे परमात्मा! पूर्णानन्द पूर्णस्वरूप आप हो। यह कहते हैं। सामने आवाज है, कि हे परमात्मा! पूर्णस्वरूप पूर्णानन्द तू स्वयं है। मेरे सामने क्या देखता है तू? तेरे सामने देख न! तुझमें सब पड़ा है। समझ में आया? विश्वास आता नहीं, बैठता नहीं और बैठे बिना कल्याण का मार्ग हाथ आता नहीं।

पश्चात् अपने आत्माधीन कहा न, इसलिए स्पष्टीकरण किया। **(लेशमात्र पराधीन नहीं है)...** जरा भी केवलज्ञान प्राप्त होने में, अरे! सम्यग्दर्शन प्राप्त होने में, सम्यग्ज्ञान प्राप्त होने में, सम्यक्चारित्र प्राप्त होने में, यह विकार प्राप्त होने में लेशमात्र पर का साधन नहीं। ले। समझ में आया? **यह प्रगट करते हैं:-** १६ गाथा भी, ओहोहो! लो, समझ में आया? सोलह कला से खिल गया केवलज्ञान।

तह सो लद्धसहावो सव्वण्हू सव्वलोगपदिमहिदो।
भूदो सयमेवादा हवदि सयंभु त्ति णिद्दिट्ठो॥१६॥

भगवान ऐसा कहते हैं। आहाहा!

वह स्वभाव को प्राप्त आत्मा, होता है सर्वज्ञ अहा।
त्रिभुवन-पतियों से पूजित, स्वयमेव स्वयंभू उसे कहा॥१६॥

यह स्वयंभू आया, भाई! वे कहते हैं न स्वयं अर्थात् ऐसे स्वयं परिणमे वह, स्वयं अर्थात् अपने से कर्ता होकर (परिणमे), ऐसा नहीं। यह बड़ी चर्चा चली है उसमें। खानियाचर्चा। यह परिणमे वह, परन्तु स्वयमेव स्वयं से हो जाये पर की अपेक्षा बिना, ऐसा नहीं। आया है या नहीं उसमें? परिणमे वह, ऐसा कहे। अपनेरूप परिणमे स्वयं अर्थात् अपनेरूप। पररूप न परिणमे। परन्तु पर की बात ही कहाँ है यहाँ? आहाहा! कठिन भगवान उल्टा पड़ा परन्तु (विपरीतता) करता है न! आहाहा!

टीका। लब्धस्वभाव है न, अर्थात् स्वभाव को प्राप्त। मूल पाठ में है न लब्धस्वभाव। लब्ध अर्थात् प्राप्त स्वभाव, लब्धि प्रगट हुई है उसे। भगवान आत्मा केवलज्ञान का कन्द है। वह पर्याय में लब्ध स्वभाव है। पर्याय में स्वभाव की तीन ज्ञान की प्राप्ति, 'धन्य काल।' समझ में आया? वह अपने पुरुषार्थ से होता है। टीका। किसमें डाला यह? सर्व। '**सर्वलोकपतिमहितः**' है न?

अन्वयार्थ :- इस प्रकार वह आत्मा स्वभाव को प्राप्त... कैसा है? कि **सर्वज्ञ... 'सर्वलोकपतिमहितः' सर्व (तीन) लोक के अधिपतियों से पूजित...** ऐसा। **सर्वलोक के अधिपति=तीनों लोक के स्वामी—सुरेन्द्र, असुरेन्द्र और चक्रवर्ती।** ऐसे तीन लोक के पति हैं न, सर्वलोकपति—यह सर्वलोक के अधिपति, उनसे परमेश्वर महित—पूजनीक है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा तीर्थंकरदेव और केवलज्ञानी इत्यादि। समझ में आया? आहाहा! **सर्व लोक के अधिपतियों...** पाठ में तो पति है न? सर्वलोकपति—सर्वलोक के धनी अर्थात् सर्वलोक के अधिपति सुरेन्द्र, नरेन्द्र, असुरेन्द्र से पूजित है। ऐसे परमेश्वर होते हैं। समझ में आया?

स्वयमेव हुआ होने से... यह आत्मा स्वयं से हुआ होने से, ऐसा। **स्वयमेव हुआ**

होने से... ऐसा। अपने रूप से हुआ, इसका अर्थ क्या? परन्तु वह तो स्वयं अपने से हुआ होने से '**स्वयंभू' है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।** ऐसा त्रिलोकनाथ परमेश्वर परमात्मा केवलज्ञानी ने यह उपदेश कहा है। स्वयं कहते हैं, वह तो बराबर है परन्तु यहाँ तो '**त्ति णिद्दिट्ठो**' परमात्मा केवलज्ञानी ने तो ऐसा कहा है, भाई! उन्हें तू पहिचान और मान कि वस्तु का स्वरूप ऐसा है। प्राप्त हो, वह अपने पुरुषार्थ से प्राप्त होता है। दूसरे की कोई सहायता की आवश्यकता नहीं है। यह रंक नहीं कि दूसरे का सहारा ले, ऐसा कहते हैं। रंक हो वह पर का सहारा ले। समझ में आया?

मुमुक्षु : आपने सबको बलवान बनाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक न! आया वापस। बलवान में भी यह आया। ऐई! आहाहा!

टीका :- शुद्ध उपयोग की भावना के प्रभाव से... देखो शब्द! वह भावना कहते हैं न, भाई! भावना अर्थात् चिन्तवन, विकल्प। शुद्ध उपयोग, वह ऐसा कि सामायिक में श्रावक को भावना होती है शुद्ध उपयोग की। इसलिए लिखते हैं कि भावना अर्थात् शुद्ध उपयोग नहीं, उसकी भावना होती है। ऐसा नहीं। यहाँ देखो भावना अर्थात् भावरूप परिणमा, उसे भावना कहा है। समझ में आया? शुद्ध उपयोग, आत्मा के शुद्धस्वभाव की एकाग्रता, वीतरागता ऐसे उपयोग की भावना अर्थात् एकाग्रता। **प्रभाव से...** लो, उसके प्रभाव से... उसके प्रभाव से **समस्त घातिकर्मों के नष्ट होने से...** देखो! उसके प्रभाव से कर्म नष्ट हुए। यह कहते हैं कि कर्म नाश होता है तो ऐसा प्राप्त होता है, ऐसा कहो। कहो, समझ में आया? यह है न अमरचन्दभाई! खानिया चर्चा में। खानिया चर्चा में यह लिया। तुम कहते हो कि पुरुषार्थ से ऐसा हो तो कर्म का नाश होता है। हम कहते हैं कि कर्म का नाश हो तो ऐसा होता है। ऐसा लो। वरना तुम्हारी गतिफेर है। गतिफेर अर्थात् अर्थ करने का अन्तर, ऐसा। तुम्हारी पद्धति में अन्तर है। ऐसा नहीं, यह पद्धति है, सुन न! अब अपने आप कर्म नाश होते होंगे?

शुद्ध उपयोग की भावना के प्रभाव से... है न? अनुभावो। **समस्त घातिकर्मों के...** ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय **नष्ट होने से...** नष्ट होने के कारण। देखा! **जिसने शुद्ध अन्तशक्तिवान चैतन्यस्वभाव को प्राप्त किया है,...** जिसने

शुद्ध अनन्तशक्तिवाला चैतन्यस्वभाव (प्राप्त किया) पर्याय में, हों! शुद्ध चैतन्यशक्तिवाला चैतन्यस्वभाव पर्याय में प्राप्त किया है। यह शक्ति पर्याय की है। **ऐसा यह (पूर्वोक्त) आत्मा,...** बस, इतनी बात है अब। समझ में आया? अब इसे षट्कारक लागू करते हैं। क्या कहा? **शुद्ध उपयोग की भावना के प्रभाव से...** कहो, इसने इतने अपवास किये और इतना किया, वह कुछ नहीं इसमें। यह शुद्ध उपयोग के प्रभाव के बल से...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपवास कहाँ? अपवास किसे कहना? रोटियाँ छोड़ी, उसे अपवास कहना? उप अर्थात् आत्मा के स्वभाव समीप बसते हुए उसके शुद्ध उपयोग की भावना से। लो! यह उपवास। समझ में आया?

शुद्ध उपयोग की भावना के प्रभाव से समस्त घातिकर्मों के नष्ट होने से... एक तो घातिकर्म थे, यह सिद्ध किया, निमित्तरूप से घातिकर्म थे। पुरुषार्थ के प्रभाव से उन्हें नष्ट होने की योग्यता से वे नष्ट हुए। यह निमित्त से कथन तो ऐसा ही आवे न! घातिकर्म नष्ट हुए होने से... देखो, ऐसा कहा न? प्रभाव से नष्ट हुए होने से... यह निमित्त का कथन है। क्या कहा? **शुद्ध उपयोग की भावना के...** यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है, इसलिए दोनों का ज्ञान साथ में कराते हैं। **भावना के प्रभाव से समस्त घातिकर्मों के नष्ट होने से...** समझ में आया? क्या कहा? घातिकर्म का—जड़ का नाश जीव के प्रभाव द्वारा हुआ। सच्ची बात होगी? यह तो लिखा है ऐसा। परन्तु यह तो लिखा है न, देखो! **भावना के प्रभाव से समस्त घातिकर्मों के नष्ट होने से...** यह निमित्त का कथन है। यहाँ जहाँ शुद्ध भावना की भावना हुई, तब कर्म में नाश होने की पर्याय की योग्यता होती ही है। न हो, ऐसा नहीं हो सकता। अरे! शब्द-शब्द में विवाद।

है न? **समस्त घातिकर्मों के नष्ट होने से...** वापस वहाँ जोर देते हैं वे। परन्तु यह प्रभाव से नष्ट हुए होने से, ऐसा कह न पहले निमित्त और फिर जिसने शुद्ध उपयोग प्राप्त किया है। नष्ट हुए होने से, यह भी निमित्त है। यह अनन्त शक्तिवाला चैतन्यस्वभाव केवलज्ञानरूप से प्राप्त हुआ है। सर्वज्ञपने की लब्धि प्रगट हो गयी है। आहाहा! देखो! शुद्ध उपयोग की फल दशा। **ऐसा यह (पूर्वोक्त) आत्मा,...** बस, इतनी बात साधारण है। अब छह कारक लेंगे।

(१) शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञायक स्वभाव के कारण स्वतन्त्र होने से जिसने कर्तृत्व के अधिकार को ग्रहण किया है... क्या कहते हैं? यह शुद्ध अनन्त शक्तिवाले ज्ञायकस्वभाव के कारण स्वतन्त्र होने से। स्वयं स्वतन्त्र। कर्ता स्वतन्त्र होता है न! कर्ता की व्याख्या स्वतन्त्र होती है। **कर्तृत्व के अधिकार को ग्रहण किया है...** केवलज्ञान प्राप्त करने के लिये **शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञायक स्वभाव के कारण स्वतन्त्र होने से...** कर्ता का अधिकार अपना है। केवलज्ञान प्राप्त करने में कर्ता का अधिकार स्वयं का है। समझ में आया? अधिकार ग्रहण किया होने से। है न ऐसा? '**स्वतन्त्रत्वाद्गृहीतकर्तृत्वाधिकारः**' '**स्वतन्त्रत्वाद्गृहीतकर्तृत्वाधिकारः**' ओहो! स्वतन्त्ररूप से करे, वह कर्ता। भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वभाव का आश्रय लेकर स्वतन्त्ररूप से कर्तापने केवलज्ञान को प्राप्त करने में स्वतन्त्र अधिकार कर्ता का है। उसमें किसी का अधिकार है नहीं। दूसरा कर्ता-फर्ता है नहीं। समझ में आया? लो, यह एक ही कर्ता कहा, दो कर्ता नहीं। तो कहे, यह निश्चय का अधिकार है, इसलिए (ऐसा कहा है)। अष्टसहस्री में दो आते हैं—दो कारण। सुन न, वह तो दूसरी चीज़ होती है, उसका ज्ञान वहाँ कराया है, परन्तु वस्तु तो ऐसी होती है। समझ में आया? नय का अधिकार हो, प्रमाण का, निश्चय का सब अधिकार हो, परन्तु वस्तुस्थिति यह है। समझ में आया? निश्चय से जो जाना, उसे फिर व्यवहार कैसा होता है, उसका ज्ञान होता है। एक साथ प्रमाण से कहे तो दोनों का कहे एक साथ। समझ में आया? आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र ये यदि न हो तो गड़बड़ करते हैं सब। है तो भी गड़बड़ करते हैं। इतनी स्पष्ट सत्य बात ऐसे प्रसिद्ध ढिंढ़ोरा पीटकर रखते हैं। शुद्ध उपयोग से स्वतन्त्र स्वयं केवलज्ञान को प्राप्त करने में स्वतन्त्र है, कहते हैं। उसकी स्वतन्त्रता में किसी की दखल नहीं और किसी की मदद है और कर्ता होता है केवलज्ञान, इसलिए ऐसा नहीं है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन में भी स्वतन्त्ररूप से स्वयं कर्ता है और सम्यग्दर्शन है, ऐसा ले लेना। समझ में आया? **शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञायक स्वभाव के कारण स्वतन्त्र होने से जिसने कर्तृत्व के...** वर्तमान पर्याय का प्रगटपने का, कर्तापने का अधिकार ग्रहण किया है। ऐसा यह कर्ता हुआ कर्ता।

(२) शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव के कारण... वर्तमान पर्याय की बात है यह सब, हों! **शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित**

होने के स्वभाव के कारण... शुद्ध अनन्त शक्ति वर्तमान पर्यायवाला ज्ञानरूप परिणमना होने के कारण **स्वयं ही प्राप्य होने से (स्वयं ही प्राप्त होता होने से) कर्मत्व का अनुभव करता हुआ,...** स्वयं ही केवलज्ञान की पर्याय को स्वयं पहुँचता है। समझ में आया? यह उसका इष्ट है। कर्ता का इष्ट, वह कर्म अथवा कर्ता जिसे पहुँचता है, वह कर्म। कर्ता जिसे पहुँचे, वह कर्म अथवा कर्ता जिसे (पहुँचे) इष्ट कर्ता का, वह कर्म। केवलज्ञानी कर्ता का इष्ट केवलज्ञान कर्म है। समझ में आया? कर्म अर्थात् कार्य। वह कार्य स्वतन्त्ररूप से जीव करता है। उस कार्य में किसी के—दूसरे की सहायता नहीं है। कहो, समझ में आया?

यहाँ तो एक ही कारण लिया। ज्ञानरूप से परिणम वह स्वयं ही प्राप्त होने से, स्वयं प्राप्त करता होने से कर्मपने को अनुभवता हुआ। लो, अपना कार्य स्वयं का है वह तो। समझ में आया? तब पूरा स्वयं ही स्वयं से कार्य करता है। वह कार्य करने में कोई पर्याय पूर्व की मदद नहीं, निमित्त की नहीं, संहनन की नहीं, बिल्कुल नहीं। ऐसा वह स्वतन्त्र भगवान आत्मा अपनी पर्याय के कार्य को करता है। समझ में आया? यह कर्ता और कर्म दो कारक हुए। दो कारक क्रिया के। छह हैं, उसमें से चार, विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ८, रविवार, दिनांक १५-०९-१९६८
गाथा - १६, प्रवचन - १३

१६वीं गाथा। शुद्ध उपयोग से प्राप्त होता मोक्ष अथवा सर्वज्ञपना। शुद्ध उपयोग से प्राप्त होता ... ज्ञानस्वभाव, ज्ञ स्वभाव, सर्वज्ञस्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और शुद्ध उपयोगरूपी आचरण (होने से) उसे सर्वज्ञपद जो शक्तिरूप से है, वह प्रगटरूप से प्राप्त होता है। वह प्रगट होने में दूसरे कोई कारण, कारकों की अपेक्षा नहीं रहती। यह यहाँ सिद्ध करते हैं। यहाँ तो केवलज्ञान को सिद्ध करते हैं। परन्तु प्रत्येक—कोई भी निर्मल पर्याय (प्रगट होने में पर कारक की अपेक्षा है नहीं)। समझ में आया? विकार होने में भी वास्तव में पर की अपेक्षा नहीं है। विकार ... जो होता है, वह भी अपने अंश के षट्कारक के स्वतन्त्र परिणमन से, पर की अपेक्षा बिना निरपेक्षरूप से अंश में विकार होता है। समझ में आया? ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय प्रगट होने में षट्कारक स्वयं से प्रगट होते हैं, पर की अपेक्षा उसमें नहीं। यहाँ तीन की बात है अभी।

शुद्ध उपयोग की भावना के प्रभाव से... देखो, यहाँ शुभ और अशुभभाव नहीं। क्योंकि वह तो मलिन और विकारी परभाव है। भगवान आत्मा... यहाँ पर्याय सिद्ध करते हैं। वस्तु तो शुद्ध ध्रुव है। द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है, उसकी शुद्ध उपयोग की पर्याय द्वारा उसके प्रभाव से। देखो, द्रव्य-गुण-पर्याय तीन सिद्ध करते हैं। समझ में आया? **शुद्ध उपयोग की भावना के प्रभाव से...** भगवान आत्मा ज्ञायक चैतन्यमूर्ति की दृष्टि, ज्ञान और शुद्ध भावना के बल से **समस्त घातिकर्मों के नष्ट होने से...** उसके बल से घातिकर्म नष्ट हुए, यह निमित्त का कथन है। समझ में आया? घातिकर्म उस काल में स्वयं की पर्याय में उस प्रकार से नष्ट होने के योग्य थे। परन्तु निमित्तपना यह है, इसलिए यहाँ हुआ, इसलिए वहाँ हुआ, ऐसा बतलाने को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बताया है। समझ में आया?

शुद्ध उपयोग की भावना... शब्द से एकाग्रता। भावना अर्थात्? ऐसे शुद्ध भाना, ऐसे भाना—ऐसा नहीं। भावना शब्द से एकाग्रता, रमणता। उसके **प्रभाव से...** अनुभाव से, ऐसा पाठ है। अनुभाव अर्थात् प्रभाव। देखो! उसके प्रभाव से कर्म नष्ट हुए। आत्मा

के शुद्ध उपयोग के प्रभाव से कर्म में प्रभाव पड़ा और कर्म नष्ट हुए। (ऐसा) नहीं लिखा इसमें। लिखा है या नहीं? ज्ञानप्रधान कथन है न? तो उपादान का यहाँ भाव और निमित्त का वहाँ—दोनों भाव को साथ में ज्ञान कराया है। प्रमाणज्ञान कराया है। समझ में आया?

यह **होने से जिसने शुद्ध अन्तशक्तिवान चैतन्य स्वभाव को प्राप्त किया है, ऐसा यह (पूर्वोक्त) आत्मा,...** अब ऐसा कहना है। शुद्ध अनन्तशक्तिवाला चैतन्यस्वभाव पर्याय में—पर्याय में... शुद्ध अनन्त शक्तिवाला चैतन्यस्वभाव पर्याय में प्राप्त किया, ऐसा यह आत्मा। समझ में आया? ऐसा यह आत्मा। अब इस आत्मा पर षट्कारक लागू करते हैं। ऐसा आत्मा यह। समझ में आया? अब पहला कर्ता। कहते हैं कि जैसे वस्तु की सत्ता स्वतन्त्र है, उसके गुण स्वतन्त्र हैं, इसी प्रकार उसकी पर्याय का कर्ता आत्मा स्वतन्त्र है। केवलज्ञान प्राप्त होने में (स्वतन्त्र है)। सेठ! संहनन कहा था या नहीं? संहनन हो, मनुष्यदेह हो, फलाना हो, ढींकणा हो। होवे तो उसके घर में रहा। कारण-फारण नहीं। होवे तो उसके (घर में) रहा।

स्वयं **शुद्ध अन्तशक्तिवान...** ज्ञानस्वभाव के कारण। वर्तमान, हों! वर्तमान उसका कर्तापना है। त्रिकाल तो ज्ञायकस्वभाव है, वह नहीं। वर्तमान शुद्ध अनन्तशक्तिवाले ज्ञायकस्वभाव के कारण स्वतन्त्र होने से... वर्तमान केवलज्ञान प्रगट करने को स्वतन्त्र ज्ञायकस्वभाव होने से... वर्तमान। समझ में आया? **जिसने कर्तृत्व के अधिकार को ग्रहण किया है...** वर्तमान पर्याय में सर्वज्ञपद प्राप्त आत्मा ने कर्तापन का अधिकार स्वयं ग्रहण किया है। वह कर्ता स्वतन्त्ररूप से करता है, वह कर्ता। उसके कर्तापने में दूसरे की अपेक्षा नहीं हो सकती। समझ में आया?

(कोई) कहे, ज्ञानावरणीय कर्म हटे तो ज्ञान, केवलज्ञान हो, लो! मोहनीय क्षय हो तो वीतरागता हो। ऐसे सूत्र आते हैं शास्त्र में। वे सब निमित्त के कथन हैं। व्यवहार का ज्ञान कराना हो तो ऐसा होता है। निश्चय के ज्ञान में ऐसा है। दोनों साथ में ज्ञान कराना हो तो प्रमाणज्ञान करावे।

शुद्ध अनन्तशक्तिवाले ज्ञायक भगवान आत्मा, जैसा ज्ञायकस्वभाव, सर्वज्ञस्वभाव था, वैसा पर्याय में स्वतन्त्ररूप से, स्वतन्त्ररूप से होने से कर्तापने का अधिकार ग्रहण

किया है। स्वयं ही कर्तापनेरूप परिणमता है। ग्रहण अधिकार अर्थात् किसी से ग्रहण किया है अधिकार? यह कहते हैं न नौकरी बदले, तब यह नौकरी सब, अधिकार सौंपा, ऐसा नहीं कहते? चार्ज सौंपा। चार्ज कहो या अधिकार कहो। ऐसा यहाँ होगा किसी से चर्चा लेना होगा? अधिकार ग्रहण किया है न! स्वयं स्वतन्त्ररूप से केवलज्ञान प्राप्त होने में कर्तापने का अधिकार उसका ही है, किसी का है नहीं। समझ में आया? तब कहे, पाँचवें काल में केवलज्ञान होता नहीं। उसमें कुछ कारण है या नहीं पर का? कहते हैं न, काल के कारण से केवलज्ञान नहीं होता। ऐसा नहीं है। वह कर्तापने केवलज्ञान प्राप्त करे, तब वह कर्ता स्वतन्त्र है, उसे काल-बाल अवरोधक नहीं। अभी नहीं होता, वह कर्तारूप से कर्ता नहीं इसलिए (नहीं होता)। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....न करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब ही न करे। तो क्या है? कर्ता स्वतन्त्र है न! समझ में आया? केवलज्ञान प्रगट न करे, वह भी कर्तापने का अधिकार, उसका उस जाति का हीनपने के कर्तापने का परिणमन करनेवाला स्वतन्त्र है। काल के कारण से, फलाने के कारण से, ऐसा है नहीं। कहो, सेठ! समझ में आया? सुनानेवाले ऐसे मिले, इसलिए हमको अनुकूल... ऐसा इनकार करते हैं यहाँ। इनकार करते हैं।

मुमुक्षु : पंचम काल है इसलिए....

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल उसके घर में रहा। यहाँ कहाँ घुस गया है? काल कर्ता होकर काम कराता है? काल कर्ता होकर काम कराता है? समझ में आया? स्वयं कर्ता होकर अपनी हीन पर्यायरूप से परिणमे, (उसमें स्वयं) स्वतन्त्र कर्ता है। समझ में आया? इसी प्रकार केवलज्ञानरूप से स्वतन्त्र होने से जिसने कर्तापन का वर्तमान अधिकार ग्रहण किया है, हों! कर्तापना त्रिकाल द्रव्य, ऐसा नहीं, द्रव्य तो है, परन्तु द्रव्य ने वर्तमान कर्म का कर्तापना पर्याय में ग्रहण किया सीधे। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य क्या है? द्रव्य तो त्रिकाल है। उसका कर्तापना वर्तमान पर्याय में स्वतन्त्र होता है, ऐसा कहते हैं। कर्तापन का कारक है यह, वर्तमान कारकरूप

से परिणमता है, ऐसा कहते हैं। त्रिकाली तो ध्रुव है। समझ में आया?

शुद्ध अनन्त शक्तिवाला भगवान ज्ञायकस्वभाव के कारण वर्तमान स्वतन्त्र होने से उसने कर्तापने का अधिकार ग्रहण किया है। केवलज्ञान की प्राप्ति में स्वतन्त्र अधिकार आत्मा का है। समझ में आया? आहाहा! उसे पूर्व की पर्याय की आवश्यकता नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। यह अपादान में डालेंगे। ध्रुव कहते हैं न, ध्रुव। सर्वज्ञ से जो सिद्ध है, उसे रखने की पद्धति सन्तों की ऐसी है कि अलौकिक! देखो न, सवेरे आया था न उत्पाद-व्यय-ध्रुव। सर्वज्ञ ने एक समय में तीन देखे। इसलिए पहला बोल यह रखा। सर्वज्ञस्वभाव में एक समय और वस्तु तीन। ऐसी चीज़ है, उसे कोई विचार से मनुष्य आवे कि भाई मुझे समझना है तो इसका अर्थ हुआ कि कुछ अनसमझ टालनी है, समझ करनी है और ध्रुव स्वयं टिकनेवाला ऐसा का ऐसा रहना है। इसलिए इस चीज़ की सत्ता बिना और उस सत्ता के जाननेवाले बिना उस सत्ता का कोई स्पष्टीकरण नहीं कर सकता। समझ में आया? वे कहते हैं न कि लो, भाई! यह विकल्प तोड़ो, विकल्प तोड़ो। परन्तु क्या विकल्प तोड़कर फिर रहे क्या? विकल्प टूटकर जाये क्या? और हो क्या? और रहे क्या?

मुमुक्षु : ....पूर्ण प्राप्त हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किस प्रकार से? विकल्प टूटे और उस स्थान में निर्विकल्पता आवे और ध्रुव कायम रहे, तब यह बात सिद्ध हो, वरना बात सिद्ध नहीं होती। समझ में आया? विकल्प जो संसारपर्याय है, यहाँ यह कहा न नष्ट, स्वभाव से नष्ट किये, तब अशुद्धता नष्ट की। नष्ट उसके कारण हुए कर्म। यहाँ अशुद्धता नष्ट हुई, शुद्ध प्रगट हुआ, ध्रुवपना कायम रहा। समझ में आया? यह वस्तु की स्थिति ऐसी है। सर्वज्ञ से ... यह सर्वज्ञ एक समय के जाननेवाले और वस्तु में एक समय में तीन भाग। एक समय में तीन भाग। तीन भाग को एक समय में जाने। ऐसा सूक्ष्म ज्ञान, उसे उत्पाद-व्यय और ध्रुव ख्याल में आवे प्रत्यक्ष। समझ में आया? और उनके कहे हुए तत्त्व वे यथार्थ हैं। इसके अतिरिक्त कोई अज्ञानी ने कहे हुए तत्त्व यथार्थ नहीं हो सकते। गप्प मारे आड़े-टेढ़े। समझ में आया? ऐसा करो, फलाना करो, विकल्प तोड़ो।

मुमुक्षु : विकल्प तोड़ो और शून्य हो जाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : शून्य हो जाओ। शून्य हो जायेगा जड़। समझ में आया?

सत्ता कितनी है, वह यहाँ सिद्ध करते जाते हैं, देखो न! शुद्ध उपयोग की भावना द्वारा सत्ता जो थी, वह प्रगट वर्तमान पर्याय में कर्ता होकर हुई है। समझ में आया? यह कर्ता। ऐसा आत्मा ऊपर कहा था न पूर्वोक्त ऐसा **(२) शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव के कारण...** शुद्ध अनन्त शक्तिवाला ज्ञान। वर्तमान की बात है यह, हों! शुद्ध अनन्त शक्ति प्रगट हुई है केवलज्ञान, ऐसा ज्ञानरूप से परिणमने के स्वभाव के कारण, परिणमने के भाव के कारण **स्वयं ही प्राप्य होने से (स्वयं ही प्राप्त होता होने से)...** स्वयं ही प्राप्त हुआ है। अपना कर्म स्वयं प्रगट किया है। उस केवलज्ञानरूपी कार्य को स्वयं पहुँचा है। समझ में आया? एक काम हो और फिर दो-पाँच व्यक्ति इकट्ठे होकर काम को पहुँचे, ऐसा नहीं, कहते हैं। आत्मा ही अपने केवलज्ञान की पर्यायरूपी कार्य को स्वयं ही पहुँचता है। ऐसा जिसका कर्म का अर्थ स्वभाव है। कर्म अर्थात् कार्य, कर्म अर्थात् कार्य। लो! यह कार्य-कार्य की बातें करते हैं न! कार्य के दो कारण। समझ में आया? वह तो निमित्त का ज्ञान कराने हो तब। यहाँ तो एक ही अभी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नष्ट हुआ फिर। यह पहले समझा दिया।

यहाँ तो **ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव के कारण स्वयं ही प्राप्य होने से कर्मत्व का अनुभव करता हुआ,...** अपना ही कार्य स्वयं ने किया। उसमें निमित्त का अभाव हुआ यह बात यहाँ नहीं। वह तो पहले बतलाया कि इस भाव से वहाँ निमित्त नष्ट हुआ इतना। समझ में आया? निमित्त नष्ट होने के कारक भी कर्म के पर्यायरूप से उसके स्वतन्त्र होकर नष्ट होता है। यह तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का ज्ञानप्रधान कथन है न, ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन। प्रमाणज्ञान का ज्ञान कराया है।

यहाँ स्वयं अपने केवलज्ञान को प्राप्त करता हुआ कर्मपने को अनुभवता हुआ ऐसा आत्मा। अपने कार्य को करता हुआ, अनुभवता हुआ। लो, यह केवलज्ञानरूपी

कर्म कहो, कार्य कहो। ऐसे सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूपी कर्म कहो, कार्य कहो, उसे आत्मा पहुँचता है। समझ में आया? जीव को स्वतन्त्रता बैठती नहीं। ऐसी सामर्थ्य मुझमें! अनन्त आनन्द का घन है वह। परमानन्द परमात्मा का पिण्ड है आत्मा। अनन्त परमात्मा का पिण्ड है वह। समझ में आया? परमात्मा होना चाहता है तो पर्याय सब पड़ी है, उसमें से प्रवाह आता है। बाहर से कहीं से आता था? समझ में आया?

ऐसा ज्ञानरूप से... सर्वज्ञ सिद्ध करना है न यहाँ तो। इसलिए अनन्त शक्तिवाला ज्ञान है, ऐसा। ऐसे **परिणमित होने के स्वभाव के कारण स्वयं ही प्राप्य होने से...** स्वयं ही प्राप्य है। अर्थात् स्वयं ही प्राप्त होता होने से **कर्मत्व का अनुभव करता हुआ,...** अपने कार्य को स्वयं अनुभवता हुआ, अपने कार्य को स्वयं करता हुआ और अपने कार्य को स्वयं अनुभवता हुआ। यह उसका कर्म, कर्म अर्थात् कार्य। समझ में आया? उसके कार्य को दूसरा अनुभवे? जड़ अनुभवे? उसका वास्तविक कारण हो तो वह भी इकट्ठा अनुभवे। समझ में आया? दो बोल तो कल आये थे।

तीसरा। अब कारण कहते हैं। करण–करण साधन। वह केवलज्ञान होने में साधन क्या साधन? आता है न निश्चय होने में व्यवहार हेतु। छहढाला में नहीं आता? कारण, हेतु। देखो। दूसरा क्या आता है? नियत का हेतु, कारण–हेतु, दोनों आ गये। नियत का हेतु, नियत का कारण, उपचार व्यवहार। समझ में आया? वे सब कारण कहे व्यवहानय से जानने के लिये। वास्तव में तो **(३) शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव से स्वयं ही साधकतम (उत्कृष्ट साधन) होने से करणता को धारण करता हुआ,...** साधकतम शब्द पड़ा है न, इसलिए उत्कृष्ट साधन का अर्थ साधन ही वह, ऐसा कहते हैं। और उत्कृष्ट साधन अर्थात? कोई साधन जघन्य और कोई साधन उत्कृष्ट, ऐसा नहीं। साधन ही यह है, ऐसा कहना है। साधकतम अर्थात् साधन ही यह, ऐसा सिद्ध करना है। साधकतम अर्थात् दूसरा साधक, यह साधकतकर दूसरा और साधकतम यह, ऐसा नहीं। भाषा तो ऐसी है या नहीं? समझ में आया? कहते हैं स्वयं ही साधनरूप है बस अकेला भगवान आत्मा। वर्तमान पर्याय में, हों!

केवलज्ञान होने में **शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव से स्वयं ही साधकतम होने से...** साधकतम अर्थात् एक स्वयं एक ही साधन होने से,

ऐसा। साधकतम होने से अर्थात् यह ही साधन होने से, ऐसा इसका अर्थ है। समझ में आया? **करणता को धारण करता हुआ,...** उस साधनपने को ग्रहण करता हुआ, साधन स्वयं अपना है। अपने साधन के लिये दूसरे साधन की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भाई! ॐ... ॐ... जपना, नाम जपना, यह करना, ऐसा करते-करते केवलज्ञान होगा। कहते हैं कि नहीं, उस साधन की आवश्यकता है ही नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। यह तो सब विकल्प है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ करता था? विकल्प करता है, दूसरा क्या करता है वहाँ? ॐ... ॐ... ॐ... लगाते हैं ध्यान। याद करो राम... राम... राम... राम... राम... राम... राम... जाप में से साक्षात्कार होगा। कहते थे न एक वह नहीं? आये थे वे साधु।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : टिके आत्मा, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। है, कि तू बड़ा है या नहीं? या वह ही है? राग ही है? ऐसा कहते हैं। अपना अस्तित्व बड़ा है या नहीं कुछ? या वही है? राग, वही अस्तित्व है? ऐसा कहते हैं। खबर नहीं। शोभालालजी!

भगवान आत्मा महाचैतन्य का साधन भी उसमें शक्तिरूप से पड़ा है। समझ में आया? साधन नाम का उसमें गुण है अनादि-अनन्त। जैसे कर्ता नाम का गुण है... यह अपने आ गया है (आत्म) वैभव। कर्ता नाम का गुण है, उसका परिणमन कर्ता होकर स्वतन्त्र करता है। कर्म नाम का गुण है, उस कार्य नाम के गुण द्वारा कार्यरूप स्वयं पहुँचता है। करण नाम का गुण है कि साधन द्वारा अपनी दशा को सर्वज्ञपने को स्वयं प्राप्त करता है। चौथा काल हो, इसलिए प्राप्त होता है; भगवान के समीप जाये तो केवलज्ञान प्राप्त होता है, महाविदेह हो तो प्राप्त होता है और भरत में नहीं होता।

मुमुक्षु : ऐसा हो तब तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। कहो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, स्वयं से होता है, पर से बिल्कुल नहीं। ऐसे साधन हों।

आता है सर्वत्र। नहीं (आता) इष्टोपदेश में? द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की सामग्री हो। आता है या नहीं? मूल गाथा में आता है। आता है या नहीं आता? वह तो निमित्त का ज्ञान कराते हैं। परन्तु उसमें भाव आया या नहीं इकट्ठा? द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में भाव आया या नहीं? वे तीन निमित्त कहे और वह भाव आया। समझ में आया? इष्टोपदेश में है न पहले। ... निमित्त का ज्ञान कराते हैं। उसका भाव स्वयं का है। अपने भाव के कारण द्वारा स्वयं केवलज्ञान को पाता है। निमित्त और क्षेत्र और द्रव्य अनुकूल है इसलिए पाता है, ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : साधन का अभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर के साधन का अभाव, अपने साधन का भाव। पर का साधन है ही नहीं उसमें। बिल्कुल नहीं। भगवान-भगवान करना कि... समझे न? वे कहते हैं न कि भगवान, भगवान की प्रतिमा को देखा और मिथ्यात्व का नाश हुआ, निद्धत का नाश हुआ। नहीं, ना करते हैं यहाँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो ज्ञान कराया है। जिनबिम्ब वह तो बाहर। यह जिनबिम्ब अन्दर है। वहाँ कहाँ जिनबिम्ब था? जिनबिम्ब तो उपचार जिनबिम्ब है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बोलने की बात है। आत्मा स्वयं गुरु, उसके पास मिले, ऐसा कहते हैं यहाँ। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वयं ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही होता है न! स्वयं अपने को समझावे, वह गुरु। समझावे वह गुरु। वह समझावे परन्तु वह समझे नहीं, समझावे नहीं अपने को तो गुरु कौन हो? ऐसा कहते हैं। स्वयं समझे, तब अपना गुरु हुआ स्वयं। तब उसको निमित्त कहा जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न! वह देखे, तब उसे मार्गदर्शन कहा जाता है। देशनालब्धि की बात हुई थी न कल ... देशनालब्धि। भाई! देशनालब्धि हुई। परन्तु देशनालब्धि का कब कहलाये? प्राप्त करे, तब देशनालब्धि निमित्त कहलाती है। इसलिए देशनालब्धि मिली, इसलिए प्राप्त होता है, ऐसा नहीं। देशनालब्धि तो अनन्त बार मिली, ग्रहण भी की। परन्तु वह प्राप्त हो, तब देशनालब्धि निमित्त कहलाये। तब देश्नालब्धि हो इतना। समझ में आया? बात ऐसी है। देशनालब्धि तो पर निमित्त है और उसमें ख्याल आया। उस ख्याल से कहीं अन्दर में जाया जाता है? उस ख्याल द्वारा जाया जाता है अन्दर? ऐ भीखाभाई! यह तो भीखाभाई के साथ विवाद उठा। यह ख्याल आया, तब ऐसा आया न? ऐसा। कहा, नहीं। यह तो ऐसे गया, तब ख्याल करे, तब उस ख्याल को निमित्त कहा जाता है। ऐसी बात है। वस्तु ऐसी स्वतन्त्र स्वयंसिद्ध स्वतन्त्र वस्तु है। स्वयमेव परिणमने को द्रव्य में से प्रवाह निकालकर परिणमता है। उसे पर की अपेक्षा है ही कहाँ? समझ में आया? ऐसा इसे श्रद्धा और ज्ञान तो करे पहले कि वस्तु ऐसी है। जैसी है, वैसा ज्ञान नहीं करे तो असत् काम नहीं आता। समझ में आया? पहले से लगाये कि इससे ऐसा होगा... इससे ऐसा होगा... गड़बड़ करेगा। तेरा खोटा ज्ञान कुछ काम नहीं आयेगा। समझ में आया?

(उत्कृष्ट साधन) होने से करणता को धारण करता हुआ,... करता है। देखा? उसमें ऐसा कहा है कि जिसने कर्तापने का अधिकार ग्रहण किया, ऐसा लिया। उसमें कर्मपने को अनुभवता था ऐसा लिया। प्रत्येक में शब्द बदल डाला है। पण्डितजी! कर्तापने का अधिकार ग्रहण किया है, कर्तपने को अनुभवता हुआ और करणपने को धारता, धरता हुआ। अमृतचन्द्राचार्य। समझ में आया? स्वयं कारणपने को करता हुआ। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में या विकार में और या केवलज्ञान में। यहाँ तो केवलज्ञान की व्याख्या उत्कृष्ट ली है, ऐसी प्रत्येक में बात ले लेना। उस-उस कारणपने को धरता हुआ। त्रिकाल में अंश में आयेगा। समझ में आया?

(उत्कृष्ट साधन) होने से करणता को धारण करता हुआ,... 'सब साधन बन्धन हुए।' आता है न? ... आवे तो वे नहीं ... में 'निश्चय रखकर लक्ष्य में साधन करना सोय।' तो यहाँ तो कहते हैं कि निश्चय से परिणमन स्वयं ही होता है, उसमें

साधन-फाधन है नहीं। कहो, समझ में आया? पंचास्तिकाय में आता है लो! व्यवहार साधन, निश्चय साध्य—नहीं आता? ऐई! वजुभाई! इनकार करते हैं यहाँ, इसमें इनकार किया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, अन्दर अर्थ में भी इनकार किया है। जब उसे (निश्चय को) अवलम्बकर, (व्यवहार को) छोड़कर परिणमे, तब स्वतन्त्र होता है। उसी और उसी में है, टीका में है। विकल्प को छोड़कर स्वतन्त्र परिणमे, उसे पर का आधार बिल्कुल नहीं। है न अन्दर? टीका में ही है। है न! होवे वह वस्तु हो, ऐसा हो न! समझ में आया? व्यवहार का ज्ञान कराना हो, तब बोले कि अन्दर साधन ऐसा विकल्प होता है। साधन नहीं, उसे साधन कहना, यह व्यवहारनय का लक्षण है। समझ में आया?

करणता को धारण करता हुआ, साधनपने का धरता हुआ, धार रखता हुआ। स्वयं अपने कारण से सर्वज्ञपने को धारण करता है। लो, यह करण-करण—कारण। समझ में आया? निमित्तकारण के कारण से और फलाना के कारण के कारण, भगवान के कारण, समवसरण के कारण—इस कारण से क्षायिक समकित हो और इस कारण से फलाना हो, यहाँ सब इनकार करते हैं। तुझे कहाँ खजाने में कमी है कि पर को शोधने जाता है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ओहो! भगवान भी तुझे विश्वास न आवे? यह तो वस्तु है न! एक समय की पर्याय की भूमिका ऊपर इसकी नजर है, परन्तु पर्याय के पीछे पूरा बड़ा पिण्ड पड़ा है, पूरी वस्तु ही वह है। पर्याय तो एक अंश है। समझ में आया? भूमिका की पर्याय जो है एक समय की, वह तो एक समय की अवस्था है, परन्तु उस भूमिका के पीछे ऐसा बड़ा कन्द पड़ा है, वस्तु का स्वभाव है, दल है, उस दल में तो अनन्त-अनन्त-अनन्त सामर्थ्य पड़ा है। समझ में आया? दृष्टि द्रव्य को स्पर्शने से द्रव्य स्वयं स्वतन्त्र होकर परिणमन करता है। उसमें पर की कोई अपेक्षा नहीं है। समझ में आया? बहुत कठिन! गाथा ऐसी। सर्वज्ञ केवलज्ञान ... यहाँ आया था न! कुचामन का एक पण्डित आया था। ऐई! तुम तो नहीं हो तब। था न कोई? घासीलालजी थे कोई। कुचामन का था, बहुत वर्ष पहले आया था। २०-२२-

२५ वर्ष हो गये। वह कहे, मनुष्यपने बिना केवलज्ञान नहीं होता, फलाने बिना नहीं होता। ऐसा बोलता था यहाँ। यहाँ कहते हैं कि अपने पुरुषार्थ के करण—साधन बिना केवलज्ञान नहीं होता। कहो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्य अकेला नहीं, अकेला आत्मा काम करे। वापस अकेला मनुष्यपना और दोकला आत्मा, दो नहीं। ऐसा भी नहीं। मनुष्यपना तो जड़ है, वह बाहर और अन्दर की गति चेष्टा है। अकेला मनुष्यपना अर्थात् कोई दूसरा है नहीं, देखो! ऐसा नहीं। अकेला आत्मा काम करे, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। बनिया है न ढीले। थोड़ा सा यह और थोड़ा सा यह, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया?

शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त... अब चौथा। **अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव के कारण स्वयं ही कर्म द्वारा समाश्रित होने से...** देखो! शुद्ध अनन्त शक्ति सर्वज्ञपने की प्रगट है, उसरूप से परिणमने के स्वभाव के कारण, अपने बदलने के—होने के स्वभाव के कारण। **स्वयं ही कर्म द्वारा समाश्रित होने से (अर्थात् कर्म स्वयं को ही देने में आत्मा होने से)...** जो सर्वज्ञपद प्रगट किया, वह स्वयं ने रखा है। किया स्वयं ने, कर्म स्वयं, साधन स्वयं और स्वयं ने करके स्वयं ने रखा। किसी को देना है नहीं। देखो, यह सम्प्रदान। यह दान दिया। ऐई! सेठ! पैसे दिये। धूल भी देता नहीं पैसा। कौन देता था? यहाँ कहते हैं। समझ में आया? राग की मन्दता हो, वह शुभभाव उसने स्वयं ने दिया। यहाँ तो शुद्धभाव का साधन करके शुद्धभाव जो प्रगट किया, वह दान स्वयं ने अपने को दिया। केवलज्ञान प्रगट करके स्वयं दाता और स्वयं पात्र। केवलज्ञान रखने के योग्य और केवलज्ञान लेने के योग्य, सर्वज्ञ पर्याय रखने के योग्य। वह का वह समय, हों! समय दो नहीं। देने के योग्य, दान देने के योग्य आत्मा स्वयं। आहाहा! अकेला चैतन्यगोला पूरा घन है न भगवान आत्मा। ... नहीं एकदम स्वयं ने जो पर्याय प्रगट की, वहाँ रही है अखण्डित। उत्पादरूप से प्रगट होकर वहाँ रही है। उत्पादरूप से प्रगट होकर वहाँ रही है, उसका नाम सम्प्रदान। कहो, सेठ! कोई दान दे सकता नहीं बाहर का, ऐसा कहते हैं। पैसा-बैसा दिया, वह मिथ्या अभिमान है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : दान नहीं देना न अब?

पूज्य गुरुदेवश्री : दे कौन, ले या दे सके? विकल्प उठे, राग की मन्दता हो। समझे? परन्तु उसके कारण से वह पैसे दिये, ऐसा तीन काल में है नहीं। पैसे में सम्प्रदान शक्ति है। पैसे में, हों!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसमें परिणमन होकर वहाँ रहने की, जाने की शक्ति उसमें है। जाने की शक्ति वहाँ रही है, वह उसमें है। शोभालालजी देते हैं, इस बात में माल है नहीं। ऐसा कहते हैं, लो! यह लेते हैं, यह इनकार करते हैं यहाँ तो। वे ... ऐई! अमरचन्दभाई! लेने का इनकार करते हैं यहाँ तो। वह ले सकता ही नहीं। उसने विकल्प लिया, अशुभ विकल्प लिया, पैसा नहीं।

यहाँ तो आत्मा भगवान स्वयं अपने सर्वज्ञपद को प्राप्त करके स्वयं ने वहाँ रखा, सर्वज्ञपद स्वयं ने रखा। उसका रखनेवाला आत्मा और उसका लेनेवाला भी आत्मा। समझ में आया? भगवान आत्मा... जेठालालभाई नहीं? कहाँ गये? दूर बैठते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? **शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने...** सर्वज्ञ है न! स्वभाव को स्वयं ही कर्म द्वारा—अपने कार्य द्वारा, स्वयं आश्रित होता हुआ। अपने कार्य द्वारा स्वयं कार्य का आश्रित होता हुआ। समझ में आया? **(अर्थात् कर्म स्वयं को ही देने में आत्मा होने से) सम्प्रदानता को धारण करता हुआ,...** उसमें करणपने को धरता, यहाँ सम्प्रदानपने को धारण करता हुआ। दोनों में बदला है। समझ में आया? ओहोहो! सम्प्रदान समझ में आया? सम्यक् प्रकार से प्र—विशेष देना। स्वयं ने ज्ञानानन्द की पर्याय स्वयं ने दी अपने को। दाता, वह जीव पर्याय का दाता, यहाँ कहाँ अभी देना है, लो! एक जगह जीव पर्याय के दाता की ना करते हैं। परन्तु यहाँ तो अभी सिद्ध करना है न ज्ञानस्वभाव। समझ में आया? पर्याय सर्वज्ञपद की दशा का दाता आत्मा है। वर्तमान पर्याय का, हों! परिणमन है, आत्मद्रव्य ऐसा नहीं, वर्तमान पर्याय की बात है। .... कारक की बात है न! कारक तो वर्तमान पर्याय के। समझ में आया? आहाहा! कितना पर्याय का सामर्थ्य है! कहते हैं कि आत्मा स्वयं का सर्वज्ञ जो स्वभाव, ज्ञ-

स्वभाव उसे स्पर्शता हुआ, स्वयं केवलज्ञानरूप से रखता हुआ, स्वयं वहाँ पर्याय रखता है। उसका दान स्वयं अपने को देता है, ऐसा कहते हैं। कहो, पोपटभाई! ध्रुवपने को धारण करता हुआ।

अब अपादान पाँचवाँ। **शुद्ध अनन्तशक्तिमय ज्ञानरूप से परिणमित होने के समय...** परिणमने के समय में। जब भगवान आत्मा अनन्त ज्ञानशक्तिरूप से परिणमने का काल है, सर्वज्ञपने में उसका काल है होने का। तब **पूर्व में प्रवर्तमान विकलज्ञानस्वभाव का नाश होने पर भी...** पूर्व में रहे हुए चार ज्ञान। विकल है न नीचे? **अपूर्ण (मति-श्रुतादि) ज्ञान।** पूर्व में मति-श्रुत और अवधि आदि हो, वह अपूर्ण है, उनका नाश होने पर भी, नाश होने पर भी केवलज्ञान की उत्पत्ति में ध्रुवपना कायम रहता है। समझ में आया? उनका नाश होने पर भी परिणमने के समय। देखो! वह नाश हुआ न? **शुद्ध अनन्तशक्तिमय ज्ञानरूप से परिणमित होने के समय पूर्व में प्रवर्तमान...** प्रवर्तित अर्थात् थे, पूर्व में थे। विकलज्ञान स्वभाव का व्यय होने पर भी, व्यय होने पर भी—अभाव होने पर भी, **सहज ज्ञानस्वभाव से स्वयं ही ध्रुवता का अवलम्बन करने से...** लो! अपनी वर्तमान पर्याय में अपादान ध्रुव को अवलम्बता हुआ, वह अपादान। गया तो भी यहाँ निकले, ऐसा ध्रुव अन्दर पर्याय में अवलम्बन है। गया तो भी पर्याय में ध्रुव का अवलम्बन है। समझ में आया? अल्पज्ञ का नाश हुआ और सर्वज्ञपना प्रगट हुआ, उस सर्वज्ञपने को ध्रुव का अवलम्बन है। ध्रुव को रहा क्या? रहा न पूरा ध्रुव है न! केवलज्ञान में भी अपादानरूप से जिसमें से निकले उसका आधार ध्रुव है, उसका कारण ध्रुव है। 'से' है न? थी—थकी। केवलज्ञान ध्रुव से रहा है। गया उसके कारण से रहा नहीं, गया तो गया, परन्तु ध्रुव से रहा है, उससे हुआ है। थी—थकी। समझ में आया? इसके गीत भी इसने सुने नहीं व्यवस्थित। सर्वज्ञस्वभाव की प्राप्ति और सर्वज्ञ कैसे होते हैं? उसका जो पूरा रूप जीव का है, सर्वज्ञ तो जीव का पूरा रूप है। वह तो स्वरूप ही उसका पूरा है। वह पूरा प्राप्त होने में जो स्वयं ही आत्मा अन्दर में पूर्व की पर्याय का नाश होने पर भी वर्तमान पर्याय को अवलम्बन ध्रुवपने रहा हुआ है। सर्वज्ञ को अवलम्बन ध्रुव का है, ऐसा कहते हैं। गयी, इसलिए अवलम्बन बिना का नहीं, ध्रुव का अवलम्बन है। उससे हुआ है।

अवलम्बन करने से अपादानता को धारण करता हुआ,... लो ! समझ में आया ? उसरूप से सम्प्रदान करता हुआ, यह यहाँ शब्द है। अलग है। बदला क्यों ? यह क्यों आया ? '**शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनसमये पूर्वप्रवृत्तविकलज्ञानस्वभावपगमेऽपि सहजज्ञानस्वभावेन ध्रुवत्वालम्बनादपादानत्वमुपाददानः**' ऐसा है। क्या इसका अर्थ ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धारण करे उपादानपने को। अपादान। '**अपादानत्वमुपाददानः**' ठीक ! अपादानपने को धारण करता है। धारण किया है। ध्रुवपने को धारण करता है। गयी वस्तु, तथापि सर्वज्ञपने को, ध्रुवपने को धारण करता है। समझ में आया ? यह अपादान।

छठवाँ (६) **शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव का...** यह शुद्ध अनन्तशक्ति यह पर्याय की बात है, यह सब। **शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूप से...** होने का, सर्वज्ञरूप होने का, केवलज्ञानरूप से होने का **स्वभाव का स्वयं ही आधार होने से...** वर्तमान केवलज्ञान होने का आधार आत्मा ही है। पूर्वोक्त आत्मा कहा था न ऊपर। उसका आधार पूर्व की पर्याय नहीं, निमित्त नहीं, संहनन के आधार से केवलज्ञान हो, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? षट्कारक तो मूल चीज़ है यह। इसलिए भाई ने तो पहले से डाला है न, प्रवचनसार में हेमराजजी (ने)। पहले हिन्दी में मंगलाचरण में भी षट्कारक डाले हैं। पहले मंगलाचरण में ही डाले हैं। फिर अपने यहाँ किये इसलिए निकाल दिया। हेमराज पण्डित, प्रवचनसार। अर्थ किया न पहले ? कल कहा था न !

पूरी वस्तु को सिद्ध करने का पहले यह डाला है हेमराजजी ने। वहाँ अर्थ किये हैं शुरुआत में मांगलिक मांगलिक। यह डाला है। कल बताया था। 'स्वयंसिद्ध कर्ता' यहाँ से ही शुरु किया है उन्होंने मंगलाचरण। श्रीमद् के उसमें। 'स्वयंसिद्ध करतार करे निज कर्म शर्मनिधि।' कर्म अर्थात् कार्य आनन्द की निधि। आनन्द की निधि को स्वयं करे, ऐसा कहते हैं। आनन्दरूपी निधि के कार्य को आत्मा स्वयं अपने से करता है। 'आप ही करण स्वरूप होय साधन साधे विधि, सम्प्रदानता धरे आपको आप समर्पे।'

सम्प्रदान। आपको आप। 'अपादान ते आप आपको करे तसे।' पहले यह बोल मंगलाचरण में ही डाले हैं। मंगलाचरण यह किया है। 'अधिकरण होय आधार निज, वर्ते पूर्ण ब्रह्म पद, षट्विधि कारक भावरहित विविधि एक विधि अज अमर।' यह छह प्रकार से भेद है, कहते हैं। अभेदरूप से परिणमता है, एक समय में, ऐसा भगवान आत्मा है, छह प्रकार के भेद भी नहीं। यहाँ तो भेद से समझाते हैं इतना। समझ में आया? भेद से समझाते हैं न! पर से नहीं, इतना समझाने को छह भेद से समझाते हैं। पर से नहीं, इतना कहने... समझाते हैं, बाकी है अभेदस्वरूप एक साथ है। एक समय में एक साथ सब परिणमन है। क्रम से कुछ होता नहीं। पहले कर्ता, फिर कर्म, फिर करण और फिर सम्प्रदान, ऐसा है? भेद है कहीं? सब एक ही समय में छहों है। सेठ! यह ज्ञान करना पड़ेगा, हों! अभी तक सब समय मुफ्त में गया है। दवायें कितनी करते हैं, एक शरीर के लिये सवेरे से। यह दवायें लेनी पड़ेंगी पहले। वह दवा सधेगी, लागू पड़ेगी। यहाँ तो पड़े। वह तो पुण्य हो तो रहे। कितनी दवा करे तो अन्दर श्वास चढ़ जाये, दम चढ़ जाये, ढींकणा हो जाये। वह तो पड़े ही। निरोगता आये बिना रहे नहीं। समस्त भाव निरोग है, उसका भान करे और न हो, ऐसा तीन काल में बने?

कहते हैं कि ... यह पाँचवाँ बोल हुआ। आधार का हुआ न छठवाँ? **शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव का स्वयं ही आधार होने से...** स्वयं ही। उसके लिये कोई संहनन, शरीर, आधार, पाँचवाँ काल, चौथा काल, महाविदेह, भगवान का समवसरण, कोई आधार केवलज्ञान होने के लिये, कोई अधिकरण—आधार—सहारा, मदद बिल्कुल नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु मेहनत कहाँ करनी है? मेहनत इसके कारण से होती है। यहाँ क्या है? मेहनत और वहाँ... वह तो यह मेहनत करे, तब मिले, तब कहते हैं। यह मेहनत से मिलती होगी बाहर की चीज़? समझ में आया? यह तो उसके कारण से आवे, परन्तु उसके कारण से आयी हुई यहाँ मदद करती नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तो व्यवहार के षट्कारक रागादि के, परन्तु अपने स्वरूप की प्राप्ति में व्यवहार साधन आधार नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! मोक्ष का मार्ग

वर्तमान पर्याय, वह भी केवलज्ञान होने में आधार नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? व्यवहार तो आधार नहीं, परन्तु निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय सर्वज्ञपने के प्राप्ति के लिये स्वयं द्रव्य सीधा आधार है तो पर्याय परिणमकर होती है। मोक्षमार्ग के कारण से नहीं। ऐसी वस्तु है। समझ में आया? यह वस्तु की ऐसी स्थिति है। सर्वज्ञदेव को पहिचानने के लिये यह चीज़ है। देव ऐसे होते हैं और उन्होंने तीन काल-तीन लोक देखे हों, उन्होंने कहे हुए जो आगम, वे प्रमाण हैं। अज्ञानियों ने देखे नहीं और जाने बिना अपनी कल्पना से कहते हैं, वे आगम प्रमाण नहीं हैं। समझ में आया? अथवा... है न?

परिणमित होने के स्वभाव का स्वयं ही आधार होने से अधिकरणता को आत्मसात् करता हुआ... स्वयं ही आधार होने से अधिकरणता को आत्मसात् करता हुआ... यहाँ बदला देखो! आधारपने को एकरूप करता हुआ, ऐसा। अपना बनाता हुआ। सर्वज्ञपना वीतरागदशा सर्वज्ञ होने में आत्मसात्, आधार की पर्याय को अपने में एकाकार करता हुआ। **स्वयमेव छह कारकरूप होने से,...** स्वयमेव, स्वयं-ऐव। लो! अपने आप, अपने कारण से। उसमें अपनेरूप से, ऐसा कहते हैं अर्थ में। वह नहीं लेना। स्वयमेव अपने कारण से नहीं लेना, अपने रूप से परिणमे, ऐसा कहते हैं इसका अर्थ। अरे! भगवान! उसमें आता है न खानिया चर्चा में। उसमें बहुत लिया है यह स्वयमेव का। स्वयमेव का ऐसा नहीं लेना, अपने आप, ऐसा नहीं लेना, स्वयं परिणमता है अपनेरूप से बस। ऐसी चर्चा। आहाहा! देह की क्रिया धर्म का कारण हो, यह माननेवाले...

अभी ... हाथ ऊँचा कौन करे? लो! दिल्ली में। दिल्ली में? सहारनपुर। यह हाथ ऊँच किया। आत्मा और हाथ दो इकट्ठे होकर... ... तत्त्व जहाँ अनन्त भिन्न है, उस भिन्न की पर्याय का भिन्न कर्ता? गजब है! पर्यायवाला द्रव्य, उस काल का, उस पर्याय का उस काल का उस पर्याय का द्रव्य, ऐसा नहीं माना। उस काल में उस पर्याय का कर्ता दूसरा हुआ। वह तो पर्याय के कार्य बिना का निकम्मा रहा। कहो, समझ में आया? तू कौन और वह कौन? उसकी पर्याय उससे होती है, तेरी पर्याय तुझसे होती है। उसकी पर्याय तुझसे हो तो उसकी पर्याय बिना का वह द्रव्य है? ऐसा हुआ यह तो उसकी पर्याय से हुआ है। एकत्वबुद्धि ऐसी कि उसे भिन्न हूँ, ऐसा मानना, यह पसीना

उतरता है। समझ में आया ? पर से, हों! उस विकल्प से भिन्न—पर बाद में, यह तो पर से भिन्न। यहाँ तो विकल्प से भिन्न (कहते हैं)। राग है, वह तो रागस्वभाव है, आस्रव है। वहाँ कहाँ था ?

उसकी भिन्नता के भान द्वारा स्वयं छह कारकरूप से होता होने से। देखो! **स्वयमेव छह कारकरूप होने से,...** हुआ। यह सर्वज्ञपद हुआ नया, ऐसा कहते हैं। **अथवा उत्पत्ति-अपेक्षा से...** वे छह कारक कहे न! अब उपजा, इस अपेक्षा से। **द्रव्य-भावभेद से भिन्न घातिकर्मों को दूर करके...** निमित्त से। नष्ट किये कहा न? वे दूर किये, कहते हैं। **द्रव्य-भावभेद से भिन्न घातिकर्मों को...** द्रव्य और भाव ऐसे दो भेदवाले घातिकर्म। द्रव्यघातिकर्म और भावघातिकर्म। घातिकर्म में भी दो प्रकार—द्रव्य और भाव उसका। और अन्दर में हीनता की दशा अपने में हुई, वह भी भावघातिकर्म। जड़कर्म, वह भी घातिकर्म और उसमें भाव जो है अनुभाग, वह भी भावघातिकर्म। इस ओर में पर्याय में अपनी हीनता का परिणमन, वह भावघातिकर्म जीव का। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही है। यहाँ तो एक ही आया, भाव पूरा है न। उसमें द्रव्य और उसकी पर्याय, उसमें द्रव्य और उसकी पर्याय, ऐसा आया। द्रव्य त्रिकाल है। पर्याय में हीन पर्याय का कार्य, वह भावघातिकर्म है। उस भावघातिकर्म का नाश करके और भाव केवलज्ञान प्रगट किया। मूलचन्दभाई! आहाहा! इसे ख्याल में तो ले, इसकी पद्धति क्या है ? विधि क्या है ? समझ में आया ? परमात्मा होने की, मोक्ष होने की विधि की पद्धति यह है। कोई कहे कि यह बहुत करते हैं, करते रहो, क्रिया करो, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तप किया करो, एक दिन बेड़ा पार हो जायेगा। धूल में भी नहीं होगा बेड़ा पार, मनुष्यपना चला जायेगा। समझ में आया ?

द्रव्य-भावभेद से भिन्न घातिकर्मों को... देखो! यहाँ तो द्रव्य-भावभेद से भिन्न—पृथक्, ऐसा लिया है। **घातिकर्मों को दूर करके...** यह भी भिन्न है और यह भी भिन्न है। जड़कर्म भिन्न है, जड़ का भाव भी भिन्न है और अपने में जो भाव घातने का, वह भी

वास्तव में तो भिन्न ही है। उसे **दूर करके स्वयमेव आविर्भूत होने से,...** भगवान स्वयं प्रगट हुआ। धर्म में प्रगट हुआ स्वयं। पर्याय में भगवान जगा। स्वयं आविर्भाव (हुआ)। (प्रगट) शक्तिरूप से जो तिरोभाव था, वह पर्याय के परिणमन से आविर्भूत हुआ होने से **स्वयंभू कहलाता है।** उसे स्वयंभू (कहते हैं)। वे परमेश्वर स्वयंभू, वह नहीं। यह तेरा केवलज्ञान तूने उत्पन्न किया, वह तू स्वयंभू। स्वयंभू स्वयं हुआ, स्वयं स्वयंभू हुआ। पोपटभाई! स्वयंभू का अर्थ।

यहाँ यह कहा गया है कि - निश्चय से... वास्तव में **पर के साथ आत्मा का कारकता का सम्बन्ध नहीं है,...** संस्कृत टीका है।

मुमुक्षु : व्यवहार से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से है, इसका अर्थ (कि) खोटे कथन से है। असद्भूत व्यवहारनय से कहते हैं कि ऐसा है, निमित्त है और फलाना ढींकणा है। वास्तव में नहीं। समझ में आया? साथ में निमित्त का अभाव हुआ, उसका ज्ञान कराने को कहे। उत्पन्न होने का है, इसलिए ऐसा कि सत् है। व्यवहार तो उपचार से कथन है। उसका ज्ञान कराने को ऐसा भी कहे। यह निश्चय से समझे, उसे व्यवहार का सच्चा ज्ञान होता है। समझ में आया?

वास्तव में पर के साथ, राग के साथ, शरीर के साथ, संहनन के साथ, काल के साथ, भरतक्षेत्र के साथ, समवसरण के साथ या भगवान साक्षात् परमात्मा विराजें, उनके साथ आत्मा को कारणता का सम्बन्ध नहीं है। वे भगवान कर्ता हों और भगवान का कारण मिले तो यहाँ (कार्य) हो, ऐसा आत्मा को कुछ है नहीं, ऐसा कहते हैं। साक्षात् केवलज्ञानी परमात्मा समवसरण में विराजते हों तो भी आत्मा के कार्य में वह कारण हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? सत्य तो यह है।

कारकता का सम्बन्ध... देखो! **नहीं,...** यह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। व्यवहार की बात है। महा सामर्थ्य से भरपूर भगवान, जिसकी नजर में निधान पड़े, उस निधान में से निकालना, वह तो उसके स्वयं के पुरुषार्थ का कार्य है। व्यवहार करे क्या परन्तु? समझ में आया? **कि जिससे... सम्बन्ध नहीं है, कि**

जिससे शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति के लिये... सर्वज्ञपद की प्राप्ति या सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति के लिये **सामग्री (बाह्य साधन) ढूँढ़ने की व्यग्रता से जीव (व्यर्थ ही) परतन्त्र होते हैं।** व्यर्थ परतन्त्र होता है। कहो, समझ में आया इसमें ? यह सम्यग्दर्शन से लेकर केवलज्ञान के कारकों की बात है यह सब। क्योंकि आत्मा में षट्कारक की शक्तियाँ अनादि-अनन्त पड़ी हैं, उसके कारण सब कार्य शुद्धता, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वीतरागता, केवलज्ञान (होता है)। अरे, जीवो! स्वयं के कारण से स्वयं यह होता है, तो उसे बाह्य के साधन की सामग्री खोजने में अनावश्यक व्यर्थ काल गँवाते हो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? भाई! ऐसे देव मिले तो हो, गुरु मिले तो हो, शास्त्र मिले तो हो। ऐसा काल मिले तो हो। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव चार।

अरे! **निश्चय से पर के साथ आत्मा का कारक...** अर्थात् कर्ता, दूसरा कर्ता, दूसरे से कार्य, दूसरा साधन, दूसरा दे, दूसरे से हो, दूसरे के आधार से—यह सब सम्बन्ध है ही नहीं। इसलिए सामग्री शोधने की व्यग्रता से वह खोजता है। निमित्त खोजो, निमित्त मिलाओ, निमित्त मिलाओ नहीं कहते ? अमरचन्दभाई! यह निमित्त मिलाओ। अरे! क्या करना परन्तु तू किसलिए व्यर्थ हैरान होता है ? निमित्त तो परद्रव्य है। निमित्त मिलाओ, निमित्त प्राप्त, निमित्त प्राप्त करके होता है, निमित्त पाकर होता है। व्यर्थ का हैरान हो गया है, व्यर्थ हैरान होता है। **व्यग्रता से जीव (व्यर्थ ही) परतन्त्र होते हैं।** व्यर्थ होते हैं, ऐसा कहते हैं, लो! समझ में आया ? **'शुद्धात्मभावलाभाय सामग्रीमार्गणव्यग्रतया'** सामग्री शोधने की व्यग्रता। **'परतंत्रैर्भूयते'।**

अब भावार्थ में षट्कारक का स्वरूप वर्णन करते हैं। यह तो हेमराजजी ने वर्णन किया है, वह है न ? हेमराजजी ने वर्णन किया है, हेमराजी ने। यह तो टीका का अर्थ हुआ अभी तक। यह ... हेमराजजी ने खास वर्णन किया। **कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण नामक छह कारक हैं।** यह कार्य क्रिया के षट्कारक के नाम। आत्मा की निर्मल पर्याय होने में या मलिन पर्याय होने में षट्कारक हों क्रिया के, बदलने की क्रिया के। उसे षट्कारक कहा जाता है। क्रिया के कारक हैं यह। पर्याय बदले उसके कारण। समझ में आया ?

जो स्वतन्त्रतया-स्वाधीनता से करता है, वह कर्ता है... यह व्याख्या। जो

स्वाधीनरूप से करे, वह कर्ता। स्वाधीन—स्वाश्रय, उसमें दूसरे का आश्रय नहीं, उसका नाम कर्ता। **कर्ता जिसे प्राप्त करता है...** अथवा कर्ता का इष्ट वह **प्राप्त करता है, वह कर्म है;....** कर्ता जिसे प्राप्त करे। अर्थ में आता है न उसमें अर्थ नहीं ? प्रवचनसार में। द्रव्य प्राप्त करे पर्याय को, पर्याय द्रव्य को प्राप्त करे। यह तो सामान्य व्याख्या है, हों! कर्ता जिसे पहुँचे, उसे प्राप्त करे, वह कर्म। प्रत्येक में, हों! जड़ में, चैतन्य में, विकार में, अविकार में, प्रत्येक में यह छह लागू पड़ते हैं।

साधकतम अर्थात् उत्कृष्ट साधन को करण कहते हैं... अर्थात् वास्तविक साधन वह करण, ऐसा। वास्तविक साधन, वह करण। वास्तव में उस-उस द्रव्य का वास्तविक साधन, उसे करण कहा जाता है। **कर्म जिसे दिया जाता है....** कार्य करके जिसे दिया जाये, **अथवा जिसके लिये किया जाता है,...** स्वयं दे और स्वये के लिये करता है वह। केवलज्ञान भी स्वयं के लिये करे और स्वयं को दे और अपने में से करता है। कहीं किसी के लिये कोई करता नहीं। वह कहे, भाई! हम तुम्हारे लिये करते हैं। नहीं, नहीं, यह खोटी बात है। समझ में आया ? ऐई! रतिभाई! यह लड़के के लिये कमाते हैं, फलाने के लिये कमाते हैं, तुम्हारे लिये रुके हैं, बापू! हमारे तो कुछ नहीं। हम तो उदास हैं। यह छोटे लड़के, छोटी लड़की हो उसमें रुके थे। और तुम धर्म प्राप्त करो तो भाई हमारे एकाध भव करना पड़े, उसके लिये रुके थे। कहते हैं या नहीं। **जिसके लिये किया जाता है,...** वह तो स्वयं के लिये करने में उसे सम्प्रदान कहा जाता है।

जिसमें से कर्म किया जाता है, वह ध्रुववस्तु अपादान है... अपने में से होता है और थी-थकी। थी-थकी। थी—उससे, उससे, उससे। **जिसमें अर्थात् जिसके आधार से कर्म किया जाता है, वह अधिकरण है।** लो! **यह छह कारक व्यवहार और निश्चय के भेद से दो प्रकार के हैं।** लो! इन दो की व्याख्या करेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ९, सोमवार, दिनांक १६-०९-१९६८
गाथा - १६, प्रवचन - १४

प्रवचनसार। ज्ञानतत्त्व अधिकार, उसमें १६वीं गाथा का भावार्थ चलता है। क्या कहते हैं यह ? छह कारण, छह कारक है। प्रत्येक द्रव्य में कार्य होने के छह कारण हैं, उन कारणों के छह प्रकार हैं। अब कहते हैं कि वे छह कारक व्यवहार और निश्चय दो प्रकार के हैं। मूल पाठ में आ गया है न कि आत्मा अपने केवलज्ञान को कर्तारूप से करके केवलज्ञान प्राप्त करता है। उसमें कर्तापना आत्मा ही है केवलज्ञान में। अथवा धर्म की पर्याय का कर्ता आत्मा है। उस पर्याय का कर्ता कोई राग या निमित्त कोई चीज़ है नहीं।

मुमुक्षु : राग का अभाव तो करे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव भी करता नहीं। वह तो स्वयं करता है, उसमें अभाव हो जाता है। करे क्या ? समझ में आया ? राग के अभाव का भी कर्ता आत्मा नहीं।

आत्मा अपना ज्ञायक चैतन्यस्वरूप कर्तारूप से सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि अपनी पर्याय को, अपूर्ण या पूर्ण उसे स्वयं करता है। और अपना वह कार्य है और अपने साधन द्वारा होता है। स्वयं अपने से करके, बदलकर ध्रुव के आधार से वह काम लेता है। और स्वयं करके अपने को देता है, और अपने आधार से होता है। कहो, समझ में आया इसमें ? इसमें तो विकल्प और निमित्त से कुछ होता नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। व्यवहार से आत्मा में कार्य होता नहीं, व्यवहार कर्ता नहीं, व्यवहार कर्ता का साधन नहीं। कार्य का वह व्यवहार साधन नहीं, उसे व्यवहार के कारण से हो, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? स्वतन्त्र भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड... यह यद्यपि षट्कारक तो प्रत्येक द्रव्य में है परन्तु अभी तो आत्मा में घटित करते हैं। यह दो प्रकार के हैं। **जहाँ पर के निमित्त से कार्य की सिद्धि कहलाती है,...** समझ में आया ? जैसे कि कुम्हार ने घड़ा बनाया, ऐसा कहने में आवे **'वहाँ व्यवहार कारक है।'** उसे व्यवहार कारक कहा जाता है। **और जहाँ अपने ही उपादानकारण से कार्य की सिद्धि कही**

जाती है, वहाँ निश्चय कारक हैं। वे व्यवहार कारक कहने में आवे परन्तु है खोटे, ऐसा कहेंगे अभी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निमित्त का ज्ञान कराते हैं। साथ में है न चीज़। समझ में आया?

देखो! **व्यवहार कारकों का दृष्टान्त इस प्रकार है—कुम्हार कर्ता है;...** यह कुम्हार कर्ता कहना, वह व्यवहार है। बात सच्ची है नहीं। **घड़ा कर्म है;...** उस कुम्हार का घड़ा कार्य कहना, वह झूठा है। परन्तु व्यवहारनय ऐसा बोलता है। समझ में आया? **दण्ड, चक्र, चीवर इत्यादि करण हैं;...** साधन है। दण्ड, चक्र होता है न घड़ा बनाने में? वह साधन। वह व्यवहार से बोलने में आता है। वास्तव में साधन-फाधन है नहीं। निमित्तपने का ज्ञान कराने को यह बात करते हैं। इसमें अभी बड़ा विवाद है पूरा। **कुम्हार जल भरनेवाले के लिए घड़ा बनाता है,...** कुम्हार जल भरनेवाले के लिये करता है। यह व्यवहार है। वास्तव में पर के लिये नहीं करता। **इसलिए जल भरनेवाला सम्प्रदान है;...** ऐसा। उसमें जल भरा जाता है। भरनेवाला है न, भरनेवाला? वह सम्प्रदान है। **टोकरी में से मिट्टी लेकर घड़ा बनाता है,...** टोकरा अलग, मिट्टी अलग और घड़ा (अलग)। **टोकरा में से...** से—उससे, अपादान। यह व्यवहार है। वास्तव में टोकरा में से नहीं, मिट्टी में से मिट्टी का घड़ा हुआ है। समझ में आया? **इसलिए टोकरी अपादान है,...** टोकरा अपादान है। **पृथ्वी के आधार पर घड़ा बनाता है,...** नीचे आधार चाहिए न! किसके आधार से बनाता है? यह खोटा है, कहते हैं। **इसलिए पृथ्वी अधिकरण है। यहाँ सभी कारक भिन्न-भिन्न हैं। अन्य कर्ता है;...** कुम्हार अन्य कर्ता। **अन्य कर्म है;...** कर्म-कार्य अन्य। **अन्य करण है;...** डोरी आदि। **अन्य सम्प्रदान;...** लेनेवाला, **अन्य अपादान...** जिसमें से हुआ। **अन्य अधिकरण...** जमीन। **परमार्थतः कोई द्रव्य किसी का कर्त्ता-हर्ता नहीं हो सकता,...**

मुमुक्षु : यह तो विवाद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विवाद यही है। वास्तव में कोई पदार्थ कोई बननेवाले का

कर्ता और हर्ता-उत्पादक और व्यय करनेवाला कोई द्रव्य किसी का है नहीं, ऐसा कहते हैं। कुम्हार घड़े को करे, ऐसा नहीं और लकड़ी घड़े को फोड़े, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? घड़ा स्वयं से उत्पन्न होता है, और व्यय होता है मिट्टी का अथवा फूटे तो वह स्वयं से होता है।

मुमुक्षु : स्वयं से फूटे घड़ा?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं से फूटता है, पर्याय का व्यय होता है। कहो, समझ में आया? लकड़ी से फूटता है, ऐसा कहना और कुम्हार से घड़ा होता है, ऐसा कहना, वह असद्भूतव्यवहारनय के झूठे कथन हैं। कहो, रतिभाई! यह दुकान का धन्धा यह सेठिया करते हैं, ऐसा कहना झूठा है, ऐसा कहते हैं। धन्धा करता नहीं, वह तो विकल्प करता है। पोपटभाई!

मुमुक्षु : धन्धा करे वह.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : झूठा अर्थात्? वह कार्य करता नहीं, ऐसा झूठा है। वह कार्य करता नहीं। किसी को माल देना या यह लेना या बही में लिखना, यह कार्य वह करता ही नहीं। वह कार्य तो पर के—परमाणु से होते हैं। कहो, पोपटभाई!

मुमुक्षु : सुनने...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं से होकर वह हल्का नहीं होगा। भारी बोझा रखे सब सिर पर। हमने किये, हमने किया। धूल भी किया नहीं, सुन न! दुकानें हमने चलायीं, आमदनी इकट्ठी की, पैसा इकट्ठा किया। समझ में आया न? पिता के पास नहीं थे और संग्रह किये। धूल भी नहीं किये, सुन न! मुफ्त का हैरान हो गया है मूढ़ होकर, कहते हैं।

मुमुक्षु : बाप के पास नहीं थे और हमारे पास हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके पास थे? कुछ नहीं थे। तुम्हारे पास कहाँ थे और माणेकचन्दभाई के पास कहाँ थे? दोनों के पास कहाँ थे? परमाणु, परमाणु में है। परमाणु उनके कारण से आते-जाते हैं, उनके कार्य का कर्ता परमाणु है। उसमें आत्मा कहाँ आया उसका कर्ता? समझ में आया? जैसे जगत का कर्ता कोई ईश्वर नहीं और

स्वतन्त्र चीज़ है, उसी प्रकार यह भी एक-एक पदार्थ स्वतन्त्र कार्य करने में दूसरा कर्ता माने तो ईश्वरकर्ता और यह कर्ता (दोनों) मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया? क्या यह किया अभी तक यह सब टाईल्स बदली कहते हैं। नहीं। ऐसा इनकार करते हैं यहाँ। जाधवजीभाई! वह लेन-देन का धन्धा आत्मा कर नहीं सकता, ऐसा कहते हैं। धारधीर समझते हो? पैसा देना-लेना। पाँच हजार ब्याज से देना, एक प्रतिशत ब्याज लेना-देना कुछ कर नहीं सकता। विकल्प करता है। विकल्प का कर्ता (होता है)। पर का कर्ता कहना, वह असद्भूत—झूठे व्यवहारनय से कहने में आता है। है?

परमार्थतः कोई द्रव्य किसी का... कोई द्रव्य किसी का, किसी का—एक आत्मा दूसरे आत्मा का या यह स्त्री-पुत्र को अच्छे... सबका विवाह करा दें, व्यवस्थित करें, यह कर सकते हैं। तीन काल में नहीं, ऐसा कहते हैं। कहो, क्या है रतिभाई?

मुमुक्षु : आप कहो वह बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु करता है कहाँ? यही यहाँ तो लगायी है। करता नहीं। अभिमान करता है। अभिमान करता है। करे क्या? धूल पर का करे? जगत के पदार्थ स्वतन्त्र हैं। उनका कार्य उनसे होता है। पर की दया करना, कहते हैं कि आत्मा से होती नहीं, ऐसा कहते हैं। परद्रव्य कोई किसी का कर्ता-हर्ता नहीं, इसका अर्थ यह है। आत्मा पर जीव को उस पर्याय को बचा सके, ऐसा आत्मा है नहीं और दूसरे को मार सके, शरीर को छोड़ सके—वियोग कर सके, (ऐसा) है नहीं। अभिप्राय करे मिथ्यात्व। समझ में आया?

मुमुक्षु : धर्म का लोप हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म प्रगट होगा। सच्चा समझेगा तो पर का अभिमान टल जायेगा। 'मैं करूँ, मैं करूँ, यही अज्ञान है।' आता है न? 'गाड़ा का भार ज्यों...' जहाँ-तहाँ हम होशियार, हम चतुर, हम व्यापार ऐसे उथल-पुथल कर डालते हैं, रात्रि को रात में पूरे... समझ में आया? गोदाम को बदल डालते हैं। धन्धा किया किसी का ज्वार बतायी हो, दूसरे पूरे गोदाम में २५-५० समझे न, क्या कहलाता है? बीस मण। ज्वार दूसरी बतावे सवेरे। अरे! परन्तु बतायी तुमने यह। परन्तु देखो यह है या नहीं? यह

बतायी (थी)। होवे दूसरी। ऐसा धन्धा। यह कर सकता नहीं, कहते हैं, इसने परिणाम किये कपट के और माया के। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : आपका सिद्धान्त... कोई व्यापार किस प्रकार करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यापार कौन करता था? करता है कौन? तम्बाकू-बम्बाकू का कुछ कर नहीं सकता। जीप को भेजकर इतनी भेजी पचास लास बीड़ियाँ भेजी हैं, एक करोड़ भेजी हैं। लाओ उसके पैसे। कुछ करता नहीं। हराम है, कहते हैं। ऐसा कहते हैं। विकल्प करता है। विकल्प करे बस। विकल्प करे, दूसरा कुछ नहीं। उस क्रिया का कर्ता आत्मा है नहीं। आहाहा! देखो!

कोई द्रव्य किसी का कर्ता... रचनेवाला, **हर्ता...** छोड़नेवाला है नहीं। कोई द्रव्य किसी द्रव्य का रचनेवाला और छोड़नेवाला है नहीं। उसका नाश भी करता नहीं और उसे उपजाता भी नहीं। क्योंकि उपरोक्त अपने पहले से बात आ गयी है (कि) उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं वस्तु है। पहले नम्बर में तो भगवान ने यह डाला, देखो अमृतचन्द्राचार्य ने। वस्तु की स्थिति रखी पहली जगत की। तत्त्व ही ऐसा है। ऐसा न हो तो, उसे अहित टालना है, हित करना है और दोनों में कायम रहना है, यह बात सिद्ध नहीं होती। अधर्म टालना है, धर्म करना है और दोनों में कायम स्वयं को रहना है, वह कब सिद्ध होगा? इसका—वस्तु का ऐसा स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रुव होवे तो (ऐसा सिद्ध होगा)। जेठालालभाई! समझ में आया?

इसलिए कहते हैं कि **कोई द्रव्य किसी का कर्ता...** मान्य नहीं कितनों को। नहीं, व्यवहार से कर्ता है। परन्तु व्यवहार से कर्ता बोला जाता है, ऐसा कहते हैं, देखो! **इसलिए यह छहों व्यवहार कारक असत्य हैं।** झूठे हैं। समझ में आया? इसने इसे बचाया, इसने रोटी बनायी, इसने इसे सम्बन्ध कराया, इसके साथ इसने विवाह किया, यह सब झूठे बोल हैं, कहते हैं।

मुमुक्षु : यह तो निश्चय से असत्य है, व्यवहार से तो सत्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु व्यवहार अर्थात् क्या? बोलने का झूठा। झूठा बोलो भाषा बोले। (ऐसा) हो सकता नहीं। कहो, समझ में आया? इसने इतने पैसे पैदा किये,

इसने इतनी दुकानें कीं, इसने इतना संग्रह किया, इसने इतना संग्रह छोड़ा, सब बात झूठी है, कहते हैं। कोई द्रव्य किसी द्रव्य का कर्ता-हर्ता तीन काल में है नहीं। स्वतन्त्र अपने उत्पाद-व्यय से काम किया करता है।

यह छहों व्यवहार कारक असत्य हैं। झूठे हैं। देखो! पण्डित हेमराजजी ने स्वयं लिखा है। समझ में आया? भाई! दुकान में ध्यान रखा पैड़ी पर व्यवस्थित तो यह सब आमदनी फली। झूठ है, कहते हैं—ऐसा कहते हैं। तुम्हारे अधिक है। वहाँ कानपुर जाते हैं न अधिक? अमरचन्दभाई! ध्यान रखे और पैसा कितना है। महीने में आवे दो-चार दिन तो ले जाये रुपये। ध्यान रखे किसने दिया, कितने दिये। हराम है, कुछ एक रजकण एक छिलका यहाँ से ऐसे करना, वह आत्मा का अधिकार नहीं है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : छह कारक पड़े। एक परमाणु स्वयं से काम जड़ का आने का करता है। रहना, जाना, आना, टिकना, हटना, वह अपने कारण से प्रत्येक परमाणु काम करता है। एक नोट ऐसे जाता है, कहते हैं नोट ऐसे (जाता है), वह हाथ से नहीं। वह नोट हाथ से नहीं, इच्छा से नहीं, आत्मा के ज्ञान से नहीं। इस नोट की पर्याय उस प्रकार की कर्ता स्वयं से हुई और कर्म उसका जाने का स्वयं से काम करता है। समझ में आया? एक रोटी का टुकड़ा आत्मा तोड़ सकता नहीं, दाँत तोड़ सकता नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : चबा तो सकता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दाँत से रोटी टूटती है, यह बात झूठी है। असत्य व्यवहार के कथन हैं। उस रोटी का एक-एक रजकण उस समय पृथक् होनेयोग्य स्वयं से पृथक् होता है और इकट्ठा होता है, (वह) स्वयं से इकट्ठा होता है। दूसरा द्रव्य उसे इकट्ठा करे या छोड़े, यह तीन काल में होता नहीं।

मुमुक्षु : चावल कहीं पानी बिना सीझे?

पूज्य गुरुदेवश्री : चावल पानी बिना सीझते हैं। एक-एक चावल में अनन्त रजकण, एक-एक रजकण स्वयं के कारण से कच्चे से पक्का परिणमने के काल में

अपना कर्म अर्थात् कार्य करता है। उसमें परमाणु कर्ता और वह पकने की पर्याय उसका कार्य, उसका साधन, उसमें उसका साधन, उससे हुआ और उसने करके पक्कापन रखा, उसके आधार से हुआ। दूसरे परमाणु के कारण नहीं, पानी के कारण नहीं, अग्नि के कारण नहीं। समझ में आया? आहाहा! वस्तु स्वतन्त्र है, उसमें करे कौन? आहाहा! समझ में आया? इतना बड़ा शरीर मिट्टी का ऐसे चले। मैं चलता हूँ। भाई! वह तो अनन्त परमाणु हैं। मैंने इच्छा की तो पैर उठाया, इच्छा की तो पैर धीरे से चलता है। एकदम झूठी बात है, ऐसा कहते हैं। ऐई! रतिभाई! ऐसा कि अपने को शीघ्र पहुँचना है चार कोस। शीघ्र चलो। एक घण्टे में दो कोस कटे, ऐसे चलो, चार कोस कटे ऐसे चलो। कहते हैं कि इच्छा की, इसलिए शीघ्रता से चला गया, यह बात तीन काल में सच्ची नहीं। उस परमाणु की पर्याय का कर्ता आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह भाषा से बोला अवश्य जाता है (कि) इसने यह किया, इसने ऐसा किया। परन्तु वह बोलने की बात अत्यन्त झूठी है, कहते हैं।

वे मात्र उपचरित असद्भूतव्यवहारनय से कहे जाते हैं। लो, ठीक! 'मात्र' वापस शब्द। वैसा भी उपचार से—आरोप से वह भी झूठे **व्यवहारनय से कहे जाते हैं।** आहाहा! इसने इसे खाया, इसने इसे उल्टी की, इसने इसका कर्म बाँधे, इसने कर्म तोड़े, भगवान ने कर्म बाँधे, अज्ञानी कर्म बाँधता है, ज्ञानी कर्म तोड़ता है, यह सब उपचारिक मात्र असद्भूत व्यवहारनय का कथन है। आहाहा! समझ में आया? अनन्त द्रव्य को मानता नहीं। अनन्त द्रव्य है और अनन्त द्रव्य में समय-समय में स्वयं के कारण से उत्पाद-व्यय होता है। इसलिए तो पहला सिद्धान्त डाला महासिद्धान्त। समझ में आया? उत्पाद-व्यय-ध्रुव, ऐसा सिद्धान्त करके, जीव को फिर उसका खास क्या? कि दर्शन-ज्ञान खास वस्तु है। दूसरे धर्म सब धर्म का आधार द्रव्य है, ऐसा कहा। फिर गुण-पर्याय अंगीकार किये। .... क्रम और अक्रम से प्रवर्तते स्वयं अपनी मूल शक्ति से। पश्चात्? उसका ऐसा एक गुण है कि सबको अपने को और पर को जानने की सामर्थ्यवाला ऐसा उसका गुण है। दूसरे के गुण उसमें नहीं। वापस वह गुण ऐसे उसमें हैं, दूसरे में गुण हैं, ऐसा उसमें नहीं। असाधारण चैतन्यस्वभाव। ओहोहो! कैसी शैली! समझ में आया? और अनन्त द्रव्यों में एक साथ रहा होने पर भी अपने स्वरूप से हटा नहीं। टंकोत्कीर्ण

ऐसा का ऐसा अनादि-अनन्त ऐसा का ऐसा है। स्पर्शा नहीं साथ में सबको। वह पर का कर्ता-हर्ता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहार, शरीर, इन्द्रिय, भाषा, मन बाँधे आत्मा ने, गर्भ में आया, फिर ऐसा फलाना किया, आहार लिया, फिर शरीर बना, फिर इन्द्रियाँ हुईं।

मुमुक्षु : उसके तो महोत्सव करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : महोत्सव करे भगवान जन्मे इसलिए, लो! कहते हैं कि सब व्यवहारनय के झूठे कथन हैं। आत्मा पर के रजकण को ग्रहे, छोड़े, ऐसा कुछ है नहीं। समझ में आया? देखो, यह भाषा की पर्याय में आत्मा कर्ता नहीं, ऐसा कहते हैं। भाषा की पर्याय का कर्ता आत्मा नहीं, भाषा की पर्याय आत्मा का कार्य नहीं, भाषा की पर्याय में आत्मा साधन नहीं, आत्मा से भाषा हुई नहीं, आत्मा के आधार से हुई नहीं, आत्मा ने भाषा करके आत्मा ने रखी नहीं। भाषा तो जड़ ने रखी है। आत्मा वहाँ अन्दर है? तत्त्व की खबर नहीं होती और असत्य को सत्य माने। अब असत्य को सत्य माने वह कब ऊँचा आवे?

मुमुक्षु : यहाँ के कथन हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ के हैं? या वस्तु के हैं? ऐसा कि अन्यत्र नहीं, ऐसा। वह स्वयं ऐसा कहते हैं। दूसरी जगह ऐसा चलता नहीं। यह बात बराबर है। यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा ने कहे हुए हुकम, भगवान की आज्ञा का हुकम है कि कोई द्रव्य किसी द्रव्य का कर्ता माने, (वह) मूढ़ मिथ्यादृष्टि आत्मा का खून करता है, अपनी हिंसा करता है, ऐसा कहते हैं। पर की हिंसा कर सकता नहीं, परन्तु पर की हिंसा करूँ, पर को जिलाऊँ, ऐसा भाव वह जीव हिंसा स्वयं की वहाँ करता है। समझ में आया? चिल्लाहट मचाये वे। दया, वह हिंसा है या नहीं? अब सुन न! दया तो किसे कहना? राग की अनुत्पत्ति होना, ऐसा आत्मा का भाव, उसे दया कहा जाता है। वह दया हिंसा होगी? राग की उत्पत्ति हो, वह हिंसा है। समझ में आया? और उसे माने कि मैंने धर्म किया। मिथ्याश्रद्धा है। आहाहा! भारी कठिन काम। समझ में आया? अलौकिक कार्य है यह। कठिन की अपेक्षा अलौकिक कार्य है।

वे मात्र उपचरित असद्भूत... देखो! मात्र आरोप से झूठे व्यवहारनय से कहे जाते हैं। कहो, समझ में आया? कि इसने इतने पैसे इकट्ठे किये, यह बाई ऐसी होशियार थी तो ऐसा पकना अच्छा हुआ, घर में संगठन रखा इसने, ऐसी बाई मिठबोली। ऐसा बोले इसलिए सबको... सब बात झूठी है, ऐसा कहते हैं। जाधवजीभाई!

मुमुक्षु : इस घर को सम्हाले, यह नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यही कहते हैं। कौन सम्हाले? तू उसे सम्हाले या इसे सम्हाले तू? बाहर कहाँ घुस गया तू? कहो, समझ में आया इसमें? मगनभाई गये? ठीक, परन्तु इस बार रहे।

निश्चय से किसी द्रव्य का अन्य द्रव्य के साथ कारणता का सम्बन्ध है ही नहीं। सेठ! है? क्या?

मुमुक्षु : निश्चय कारकों का दृष्टान्त इस प्रकार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह बाद में। अन्तिम शब्द ऊपर की लाईन है। ऊपर लाईन।

निश्चय से किसी द्रव्य का अन्य द्रव्य के साथ कारणता... अर्थात् करने-करने सम्बन्धी आदि का सम्बन्ध है ही नहीं। कर्ताकर्म का सम्बन्ध है ही नहीं। एक द्रव्य के साथ दूसरे को कर्ता का, कार्य का, साधन का, लेने का, देने का, आधार का कोई सम्बन्ध है ही नहीं। समझ में आया? भगवान ने कहे ऐसे छह द्रव्य माने, तब तो छह द्रव्य के कार्य भिन्न-भिन्न माने। किसी द्रव्य का कार्य कोई द्रव्य करे तो छह द्रव्य उसने माने नहीं। छह द्रव्यों को भिन्नरूप से माने, तब तो उसकी ज्ञान की एक समय की पर्याय मानी। ज्ञान की एक पर्याय में ऐसे छह द्रव्य का जैसा स्वरूप है, उस प्रकार से माने, तब एक समय की पर्याय मानी। यहाँ तो अभी छह द्रव्यों में एक द्रव्य दूसरे का करे... उसका करे... उसका करे... तो उसकी ज्ञान की पर्याय में छह द्रव्य जैसे हैं, वैसा उसने माना नहीं। वह पर्याय भी सच्ची मानी नहीं, तो द्रव्य तो कहीं रह गया। समझ में आया? कहो, दूसरे की सेवा कर दे, दूसरे का यह कर दे। कौन करे? भाई! श्वास को भी आड़ा-टेढ़ा कर सकता नहीं। देख तो सही, खबर नहीं पड़ती? श्वास की क्रिया एक क्षण में जिस प्रकार से होती है... आहाहा! ऐसे हो जाये। और नीचे आवे, और ऊँचा

जाये। ओ... लो, देखो डकार आती है, वह कहाँ से आयी? आत्मा ने की है? वह तो रजकण की पर्याय है। समझ में आया? आहाहा! वास्तव में **किसी द्रव्य को...** अर्थात् किसी वस्तु को **अन्य वस्तु के साथ...** कर्ता का, कार्य का, साधन का, उससे हो उसका या आधार का या कोई किसी को द्रव्य को स्वयं रखे कि भाई मैंने पैसे संग्रह किये, मैंने करके ऐसे सम्हालकर रखा—सम्प्रदान। नहीं। सम्हालकर रह सकते नहीं, ले सकता नहीं, रख सकता नहीं।

मुमुक्षु : पैसा तो सम्हालकर रखना पड़े न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं। भाई! ऐसा सादा भोजन लिया, इसलिए शरीर को मैंने इस प्रकार से रखा है। सादा भोजन लिया, इसलिए ठीक रहता है नहीं, ठीक रखा। ठीक रहता है तो अपने आप। परन्तु मैंने ठीक रखा। सादा भोजन है, सादा भोजन है। यह बात ही खोटी है, कहते हैं।

मुमुक्षु : यह तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कौन खाता-पीता है? वह तो उसकी—जड़ की क्रिया है। परमाणु आवे-जाये, परमाणु बदले, वह तो जड़ का काम है। आत्मा करता है उसे? कहो, मोहनभाई! कौन करता होगा उसमें? मोहनभाई पूछते थे न! परमेश्वर आते होंगे बीच में करने? लोगों को तत्त्व की खबर नहीं। आहाहा! रजकण रजकण यह परमाणु मिट्टी है, देखो न! यह श्वास आड़ा-टेढ़ा करने की सामर्थ्य नहीं, क्षेत्रबदली करने की सामर्थ्य नहीं, कालबदली करने की सामर्थ्य नहीं, भावबदली करने की सामर्थ्य नहीं। बापू! तू तो आत्मा है, भाई! वह (परमाणु) तो स्वतन्त्र जड़ है जगत के।

मुमुक्षु : स्वयं अपने को जाने कि ऐसा पर का काम करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करे? वह तो जाने नहीं तो भी करे कौन? भले न जाने परन्तु इससे करे? राग को जाने, राग का कर्ता माने, परन्तु इससे कहीं कर सकता है? माने, वह स्वतन्त्र है अज्ञानी।

निश्चय कारकों का दृष्टान्त इस प्रकार है... पहले व्यवहार का दृष्टान्त दिया था। कुम्हार करनेवाला, घड़ा बनावे—वह व्यवहार का दृष्टान्त। यह बात सच्ची है नहीं।

मिट्टी स्वतन्त्रतया घटरूप कार्य को प्राप्त होती है, इसलिए मिट्टी कर्ता है... उस घड़े के कार्य को मिट्टी पहुँचती है। कुम्हार का हाथ नहीं, कुम्हार की इच्छा नहीं, कुम्हार नहीं। कुम्हार उसे पहुँचता नहीं। पहुँचे तो उसमें घुस जाना चाहिए। मिट्टी उसमें—घड़े में घुसी है। समझ में आया? आटा स्वतन्त्ररूप से रोटी के कार्य को करता है, ऐसा कहते हैं। स्त्री की इच्छा से, स्त्री के हाथ से या क्या कहलाता है नीचे? तवा। तवा से वह रोटी होती नहीं।

मुमुक्षु : .... रखे या न रखे?

पूज्य गुरुदेवश्री : रख सके... कोई रखता नहीं। कहा सम्प्रदान... रख सकता नहीं।

मुमुक्षु : चकला-बेलन सब है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चकला, चकले के घर रहा। वहाँ रोटी चकले के कारण से होती नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! चकला चकले से रहता है, रोटी रोटी से होती है। अनन्त द्रव्य भिन्न हैं या नहीं? या एक हो गये हैं? आहाहा! लोगों को कुछ खबर नहीं। क्या करे? वीतरागमार्ग में जन्मे, परन्तु वापस अनन्त वस्तुएँ भिन्न-भिन्न हैं, वह किसी का कर्ता नहीं, यह बात अभी बैठती नहीं। ईश्वरकर्ता है, उसे निकाल डाले, परन्तु यह वापस कर्ता घुसावे। वह की वह विपरीतता हुई वापस। समझ में आया? भाई हम ध्यान रखते हैं तो काम अच्छे होते हैं दूसरी व्यवस्था। देखो, रामजीभाई ध्यान रखते थे तो कैसे काम हुए, देखा! व्यवस्थित करते थे या नहीं? फिर वहाँ गये तो गड़बड़ हो गयी। कौन करे? वह तो निमित्त हो और व्यवस्थित हो, तब ऐसा कहा जाता है झूठे कारक से। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

स्वतन्त्ररूप से मिट्टी स्वयं से, दूसरे की सहायता बिना, दूसरे के आश्रय बिना **घटरूप कार्य को प्राप्त होती है,...** और घड़े को स्वयं मिट्टी प्राप्त करती है। **इसलिए मिट्टी कर्ता है...** कुम्हार नहीं। **घड़ा कर्म है।** किसका? मिट्टी का। घड़ा मिट्टी का कार्य है, कुम्हार का नहीं। रोटी आटे का कार्य है, बाई—स्त्री का नहीं। समझ में आया? **अथवा घड़ा मिट्टी से अभिन्न है, इसलिए मिट्टी स्वयं ही कर्म है;...** अभिन्न कहा। मिट्टी

से घड़ा एकरूप है। पर्याय अभिन्न है न अभिन्न? इसलिए मिट्टी स्वयं ही कार्य है, यह कहा जाता है। मिट्टी स्वयं कार्य है, ऐसा कहा जाता है। मिट्टी स्वयं कार्यरूप से परिणमी है तो मिट्टी स्वयं कार्य है, ऐसा कहा जाता है। वहाँ कुम्हार कार्यरूप परिणमा है, ऐसा है नहीं। कहो, यह मकान-बकान किससे होते हैं, ऐसा कहते हैं यह तो। उस बड़े पण्डित का विवाद आया था। बड़ा पण्डित आया था न एक? क्या कहलाये अमरावती का? हीरालाल प्रोफेसर। यहाँ लकड़ी थी। देखो, यह बना किससे? यह बना। किससे बने? कहा, किसी से बना नहीं, स्वयं से बना है। तो फिर बना न ... बना है यदि उससे बना हो तो ... फिर वस्तु तो ऐसी की ऐसी रह जाये। देखो, यह यहाँ लकड़ी थी न वह दूसरी।

मुमुक्षु : वह तो बनने के पश्चात रही न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु रही न ऐसी की ऐसी। वह निकल गया तो रही है। उस समय तो उससे हुई तो उससे रही।

मुमुक्षु : बनानेवाला....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही। उससे हुई और उससे रही। दूसरे से हुई है, ऐसा कहे। दूसरे से ... वरना वह निकल जाये तो टूट जाये यह। यह मकान हुआ तो ... यह कहते हैं। क्या कहा? आपत्ति। मेरी आपत्ति तो ख्याल में आयी। आपत्ति ख्याल में आती है। ऐसे के ऐसे सब पण्डित। ... ऐसा कि मुझे यह क्या बाधक है विवाद यह अपने ख्याल में है। ख्याल में है, कहा। अवरोधक क्या? सूक्ष्म असंख्यगुणे स्कन्ध हैं, उन्हें कौन इकट्ठा करके करे? स्वतन्त्र है। ... सुतार ने... समझ में आता है? गाड़ी बनायी, यह बात खोटी है, कहते हैं। सुतार भिन्न और गाड़ी की पर्याय भिन्न, उसे करे कौन? लड़का गेंद ऐसे फैंकता है, यह बात खोटी है, कहते हैं। समझ में आया? गेंद गेंद की पर्याय के कार्य का करता गेंद है। गेंद उसकी पर्याय के कार्य को पहुँचता है। कहो, समझ में आया इसमें? दो बोल हुए।

तीसरा। **अपने परिणमन स्वभाव से मिट्टी ने घड़ा बनाया...** मिट्टी के बदलने के कारण से पहली पर्याय बदलकर खड़ा हुआ। परिणमने के कारण से हुआ। किसी के

कारण से हुआ नहीं। समझ में आया? **अपने परिणमन स्वभाव से मिट्टी ने घड़ा बनाया इसलिए मिट्टी स्वयं ही करण है;...** घड़ा का साधन मिट्टी है। और उस डोरी को क्या कहा जाता है? चाक और साधन नहीं। कहो, चाक बिना घड़ा हुआ, ऐसा बताओ, एक व्यक्ति कहे। अरे! सुन न अब। तेरी दृष्टि सम्यक् है? सभी है, अपने द्रव्य से पर्याय हुई है, पर से हुई नहीं। उसमें क्या? उसके बिना हुई है। आहाहा! तत्त्व की खबर नहीं होती, अभिमान जहाँ हो वहाँ करे। मैंने किया, यह किया और यह किया। मिथ्यात्व को पोषण कर, अरे! नीचे हल्का होकर जाये। निगोद में जाये निगोद में। आहाहा! अधोगति। त्यागी नाम धराकर भी मैंने ऐसा किया, मैंने यह पालन करके मैंने दूसरों को सुधारा, मैं दूसरों के लिये ऐसा उपकार करता हूँ। यह सब मान्यता मिथ्यात्व है। देवानुप्रिया! कहाँ गये जुगराजजी? भाई! स्वतन्त्र आत्मा, स्वतन्त्र परमाणु, अनन्त आत्मायें स्वतन्त्र, अनन्त परमाणु स्वतन्त्र। चार द्रव्य तो अरूपी है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल। प्रत्येक अपनी पर्याय का कर्ता, अपनी पर्याय उसका कार्य। दूसरा कर्ता-कर्म कैसे हो? समझ में आया? महावीर भगवान ने ऐसा किया, भगवान ने यज्ञ बन्द कराये। यज्ञ चलते थे हिंसा (होती थी)। बिल्कुल झूठ बात है।

मुमुक्षु : .... हल्का किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्त्री हल्की थी। वेदान्त ने निकाल दिया... दिया। स्त्री को मोक्षपद दिया, स्त्री को साधुपद दिया और ऐसा कहते हैं वे लोग। कौन दे? सुन न! जिस द्रव्य की जिस योग्यता की जिस काल में जो पर्याय है, उसका कर्ता वह द्रव्य है और वह उसका कार्य है और वह-वह परिणमता है, इसलिए वह उसका करण है। आहाहा! ... चश्मा बिना सूझता नहीं। अब सुन न! चश्मा का ऐसे ऊपर-नीचे जाना, उसका कर्ता क्या अँगुली है? उसका कर्ता आत्मा है? और आत्मा में ज्ञान की पर्याय हीन दिखाई दी पहली और फिर अधिक दिखाई दी, उसका कर्ता यह चश्मा है? उस ज्ञान की पर्याय का कर्म आत्मा पहुँचता है, उसे स्वयं करता है। चश्मा पहुँचता है? वहाँ पहुँचे तो कर्म हीन पड़ गया? समझ में आया? द्रव्य की स्वतन्त्रता का सत्य है, वह बात बैठती न, इसलिए विपरीत मान्यता मिथ्यात्व की (करता है)। फिर पंच महाव्रत

पाले बाहर के (और) मिथ्यात्व को सेवन करे। क्षण-क्षण में मिथ्या-झूठे भाव को सेवे और माने कि हम धर्म करते हैं।

मिट्टी ने घड़ारूप कर्म अपने को ही दिया, इसलिए मिट्टी स्वयं सम्प्रदान है;... घड़ारूपी कार्य करके स्वयं ने दिया स्वयं को और स्वयं ने रखा, स्वयं के लिये बनाया था। समझ में आया? घड़ा मिट्टी में रहा है या नहीं? या बाहर गया? बस, स्वयं सम्प्रदान है। स्वयं अपने को दान दिया। वह घड़े का कार्य करके स्वयं मिट्टी ने दान स्वयं को दिया। किसी को दान कोई दे सकता नहीं। ओहोहो! **मिट्टी ने अपने में से पिण्डरूप अवस्था नष्ट करके...** पिण्ड था न पहला? **नष्ट करके घटरूप कर्म किया और स्वयं ध्रुव बनी रही...** कहीं मिट्टी चली गयी नहीं। पर्याय गयी वह पिण्ड की, परन्तु स्वयं तो रही, उसमें से उत्पन्न हुई। घड़ा उसमें से उत्पन्न हुआ। **इसलिए वह स्वयं ही अपादान है;...** मिट्टी अपादान, वह उपादान (ऐसे) बहुत अर्थ डालते हैं।

मिट्टी ने अपने ही आधार से घड़ा बनाया,... जमीन के आधार से नहीं। कहो, सोने का गहना... समझ में आया? नीचे होता है न, क्या कहलाता है सोनी का? ऐरण। ऐरण के आधार से गहना नहीं गढ़ा जाता है, स्पर्शा भी नहीं, ऐरण उसे छूता नहीं। हथौड़ी पड़ती है न? कि नहीं। हथौड़ी उसे—गहने को छूती नहीं। गहना उसके कारण से—स्वयं के कारण से पर्यायरूप से परिणमकर स्वयं ने रखा है। हथौड़ी से हुआ ही नहीं। कहो, समझ में आया?

मोरडी में गये थे न मोरडी में। एक कहे कि... महाराज वहाँ आये हैं। मोरडी में नहीं? (संवत्) १९९९ या कौन से वर्ष? ९९ के बाद, हों! अभी बाद में। मोरडी। अभी २००५ में। गये तब एक लुहार होगा। कहे कि भाई महाराज आये हैं। भाई! यह महाराज ऐसे हैं कि हथौड़ी से गढ़ा नहीं जाता, ऐसा कहनेवाले हैं। एक लुहार था लुहार। होशियार था। फिर आया। परन्तु व्याख्यान हो गया हमारे। ऐसा सुनकर, हम सुनने आये हैं। मैंने कहा, व्याख्यान तो पूरा हो गया। बात सच्ची कहा, हथौड़ी से गहना होता नहीं। हथौड़ी समझते हो न? उससे होता नहीं। आहाहा! संयोगी देखनेवाला संयोग को देखता है। आत्मा को भी संयोग से देखता है और राग तथा पर से देखता है।

इससे उसे ऐसा लगता है। समझ में आया ? आत्मा को रागरहित देखे तो सब पदार्थ को संयोगरहित की पर्यायवाला देखे। समझ में आया ?

भगवान आत्मा राग की पर्याय और संयोगरहित है। राग होने पर भी स्वभाव में उसका सम्बन्ध नहीं। ऐसी दृष्टि में राग का कर्ता नहीं और राग का सम्बन्ध नहीं, राग उसका कार्य नहीं। इस दृष्टि से पूरे द्रव्य सब कोई द्रव्य का किसी का कर्ता नहीं, ऐसा उसे अन्दर में स्व से बैठा, ऐसा पर में भी बैठ जाता है। समझ में आया ?

आधार से घड़ा बनाया, इसलिए स्वयं ही अधिकरण है। अधिकरण अर्थात् आधार। **इस प्रकार निश्चय से...** अर्थात् वास्तव में **छहों कारक एक ही द्रव्य में हैं।** एक ही पदार्थ के छह कारक—छह कारण हैं। **परमार्थतः एक द्रव्य दूसरे की सहायता नहीं कर सकता...** वहाँ सहाय (शब्द) रखा वापस, देखा! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को सहारा नहीं दे सकता होने से, **सहायता नहीं कर सकता...** लो! यह गाड़ा फँसा है, कहते हैं, वेळु में। वेळु समझते हो ? रेत। तो ऐसे सहारा देकर ऊँचा हो। नहीं। ऐसा कहते हैं। फँस जाता गाड़ा है न। गाड़ा नहीं समझते ? मदद करे तो ऊँचा हो। नहीं। वह तो उसकी पर्याय उससे ऊँची होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

परमार्थतः एक द्रव्य दूसरे की सहायता नहीं कर सकता और द्रव्य स्वयं ही, अपने को,... देखो! सहायता नहीं कर सकता (होने से)। वहाँ इतना डाला। सहायता ही कर नहीं सकता, कहते हैं। परन्तु कहाँ से करे ? स्वतन्त्र पर्याय कार्य हो, उसमें और दूसरा सहायता क्या करे ? दूसरा वापस सहायता करे तो दूसरा तीसरे को सहायता, तीसरा चौथे को, चौथा पाँचवें को... अनन्त की सहायता चल ही गयी ऐसी की ऐसी। कहीं मेल रहा नहीं। आहाहा! अभी यह बड़ी गड़बड़ चलती है सम्प्रदाय में। जहाँ तहाँ हम करते हैं, हम करते हैं। संस्था हम चलाते हैं, पत्रिका हम चलाते हैं, हम पत्र के लेख चलाते हैं, उसके कारण हमारा प्रचार होता है। सब ही मिथ्यात्व अभिमान है।

मुमुक्षु : अपने तो प्रचार बहुत करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता था ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उसके कारण से होता है। किसके कारण से होता है? वह पर्याय का काल उसका हो, इसलिए होता है। किसी की इच्छा से होता है वहाँ? समझ में आया? काम अलौकिक कार्य है भाई यहाँ तो। आहाहा! लोकोत्तर बात है। समझकर समाने की बात है यहाँ। समझ में आया? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

एक द्रव्य दूसरे की सहायता नहीं कर सकता और द्रव्य स्वयं ही,... स्वयं अर्थात् कर्ता। **स्वयं को,...** उसका कार्य। **स्वयं से...** वह करण **स्वयं के लिये,...** सम्प्रदान, **स्वयं में से...** अपादान **स्वयं में करता हुआ...** आधार। यह छह बोल लिये। है न? स्वयं अर्थात् कर्ता। प्रत्येक परमाणु, प्रत्येक आत्मा। अपने लिये अपना कार्य। अपने में से उसका करण-साधन, अपने लिये रखा दान, अपने में से अपादान, अपने में से करता होने से आधार। **इसलिए निश्चय छह कारक ही परम सत्य हैं।** भाषा ... **निश्चय छह कारक ही...** छह कारक 'ही' ऐसा वापस। परम सत्य है। बाकी सब खोटे कथन हैं। आहाहा! भगवान ने जगत को तारा। यह बात भी खोटी है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। ऐई! तीर्थंकर प्रकृति का उदय बहुत जीवों को तारे।

मुमुक्षु : प्रकृति का उदय तारे?

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय आवे, वाणी निकले, लोग दिव्यध्वनि सुनें, तिरे। कहते हैं, वे सब व्यवहार के कथन हैं, भाई! वह जीव ही स्वयं उस समय अपनी पर्याय करने के कार्य का कर्ता है। वाणी-बाणी कर्ता नहीं। भीखाभाई! उसमें कुछ चले ऐसा नहीं। आहाहा! यह सब परमाणु ढीले पड़ें, वे पड़े। तब यदि उससे काम होता है तो तेरा काम करना कब? भाई, यह शरीर ठीक है, इन्द्रियाँ ठीक है, यह सब ठीक है तो उसके कारण अपने काम होता है, तो फिर अठीक हो, तब फिर अपना काम करना पड़ा रहे? उसके कारण होता ही नहीं। समझ में आया? ऐसा इसे बैठे, अन्दर गहरा बैठना चाहिए। गहरे-गहरे कहे, यह सब साधन है, यह साधन है तो अपने को काम ठीक होता है। इसका अर्थ हुआ कि उससे कार्य होता है, ऐसा माना। समझ में आया? यह पुस्तक-बुस्तक साधन है तो अपने को ज्ञान होता है, यह खोटी बात है, ऐसा कहते हैं। ऐई! रतिभाई! ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : बाहर में दिखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। देखता-देखनेवाला अन्धा होकर देखता है। अन्धी नजर से देखता है। जैसा वस्तु का स्वरूप है, उस प्रकार से देखता नहीं। अपनी आँख में संयोग की दृष्टि रखकर देखता है। आहाहा!

मुमुक्षु : पूरे इण्डिया में साहेब! यह वस्तु कहीं नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह है या नहीं ? परन्तु यह तो मार्ग वीतराग का यह मार्ग है। यह वीतरागस्वरूप है। सर्वज्ञ परमेश्वर ने छह द्रव्य देखे, तो छह द्रव्य देखे तो किये हैं भगवान ने ?

मुमुक्षु : कहीं सुनने को ही नहीं मिलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे परन्तु ? सेठ! जुगराजजी! तुम्हारे मित्र कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गति-फति कैसी ? आहाहा! भगवान! बापू! मार्ग का स्वरूप ऐसा है। उसका कर्ता होने जायेगा तो बहिर्‌दृष्टि में खड़ा रहेगा। दृष्टि में खड़ा रहेगा, पर का कर सकता तो नहीं। विकल्प भी नहीं जहाँ, विकल्प (का) भी कर्ता (नहीं), दया, दान का विकल्प भी मेरा स्वरूप नहीं। वह विकार है। विकार को करूँ तो मैं विकारी हो जाऊँ। समझ में आया ? मैं तो ज्ञान चैतन्यस्वरूप हूँ, ऐसा जानकर चैतन्य की परिणति खड़ी करे, उसका कर्ता आत्मा है। वह राग है, इसलिए यह कर्ता होता है, यह कार्य होता है, व्यवहार का कार्य यहाँ खड़ा है, इसलिए यहाँ धर्म की पर्याय होती है, ऐसा बिल्कुल नहीं है। समझ में आया ? आहाहा!

पंच महाव्रत के परिणाम खड़े हुए दया आदि के, इसलिए यहाँ चारित्र और धर्म हुआ। वे परिणाम स्वयं धर्म हैं, बिल्कुल नहीं। ऐसी बात है, भाई! परमात्मा सर्वज्ञ नायक हैं जिसके, उनका कहा हुआ तत्त्व यह है। यह कहीं पक्ष नहीं, वाड़ा नहीं कि हमारे सम्प्रदाय में यह है। सम्प्रदाय नहीं, वस्तु ऐसी है, वस्तु ऐसी है। जैन सम्प्रदाय कोई नयी चीज़ नहीं। निजपद... 'जिनपद निजपद एकता, भेदभाव नहीं कांई। लक्ष थवाने तेहनो कह्या शास्त्र सुखदायी।' मात्र लक्ष्य बदलने के लिये बात की है, बदले तो।

समझ में आया? आहाहा! यह तो पूरे दिन हमने किया, हमने किया। उस काम में कौन था? हम। बहुत अच्छा भाई!

मुमुक्षु : हमारे बिना होता नहीं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी (नहीं)। तुम्हारे बिना होता है सब। क्या नहीं होता? उसके बिना होता नहीं, जो है उसके बिना होता नहीं। तेरे बिना तेरा होता नहीं, उसके बिना उसका होता नहीं। पोपटभाई! यह तो सबको—छह लड़कों को सँभालना, टाईल्स को सँभालना, क्या कहलाता है? कारखाना को सँभालना, रुपयों को व्यवस्थित सँभालना। एक लड़का अलग पड़े और सब खर्च कर डाले तो वापस वह... जरा पूछे बिना कैसे खर्च किया? गजब भाई! पोपटभाई! यह तो दृष्टान्त। आहाहा!

भाई! तू तो तत्त्व है न, प्रभु! तू आत्मतत्त्व है न, वह कहीं परतत्त्व है तू? और पर कहीं तेरे तत्त्व में आ जाता है? मिल जाता है? तो वह भिन्न रहकर काम करता है, उसमें तुझे क्या है? तुझे उसमें क्या आया? समझ में आया? भाई! दो हाथ से ताली बजती है। एक हाथ से नहीं बजती, ऐसा कहते हैं, लो! दो हाथ से ताली बजती नहीं। वह आवाज तो शब्द की स्वतन्त्र निकलती है, ऐसा कहते हैं। हाथ के कारण से नहीं। एक हाथ से कहीं ताली बजे? दो हाथ से बजती है। इनकार करते हैं। भगवान तो दो हाथ से ताली का इनकार करते हैं। अन्दर के शब्द की पर्याय एकसाथ परिणमने की स्वयं के कारण से निकलती है। यह स्पर्शने के कारण से (नहीं)। स्पर्शा ही नहीं न उसे। स्पर्शे क्या? यह आयेगा तीसरी गाथा में, समयसार। 'ऐसा मार्ग वीतराग का भासित श्री भगवान।' आहाहा! समवसरण के मध्य में इन्द्रों के समक्ष में, गणधरों की उपस्थिति में ऐसा मार्ग परमात्मा ने वर्णन किया है। तीर्थंकर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने यह वस्तु का स्वरूप कहा है। था ऐसा कहा। समझ में आया? कितनी (बातें) रखी हैं देखो पण्डित हेमराजजी ने! उनको पण्डितों का मान्य नहीं।

उपरोक्त प्रकार से द्रव्य स्वयं ही अपनी अनन्त शक्तिरूप सम्पदा से परिपूर्ण है,... देखो! **उपरोक्त प्रकार से द्रव्य...** अर्थात् वस्तु। **स्वयं ही अपनी अनन्त शक्तिरूप सम्पदा से परिपूर्ण है, इसलिए स्वयं ही छह कारकरूप होकर...** आहाहा! स्वयं ही छह

कारकरूप से होकर **अपना कार्य करने के लिए समर्थ है,...** समझ में आया? **उसे बाह्य सामग्री कोई सहायता नहीं कर सकती।** उसे निमित्त कुछ सहायता और मदद नहीं कर सकते, ऐसा कहते हैं। **इसलिए...** अब उस मूल बात के ऊपर आया। **केवलज्ञान प्राप्ति के इच्छुक आत्मा को...** केवलज्ञान अर्थात् परमात्मा मुक्त और पूर्ण आनन्द, पूर्ण आनन्द की प्राप्ति करने के (इच्छुक) जीव को **बाह्य सामग्री की अपेक्षा रखकर परतन्त्र होना निरर्थक है।** बाह्य सामग्री की अपेक्षा परतन्त्र संहनन हो, मनुष्य हो, यह हो, वाणी हो,... बिल्कुल तुझे आवश्यकता नहीं। समझ में आया? अन्दर नजर डाले तेरे निधान में सब सम्पदा पड़ी है, ले, कहते हैं। स्वयं ही भगवान निर्मलानन्द स्वयं अन्तर दृष्टि करने से स्वयं ही परिणमन का कर्ता, अपना परिणमन धर्म का कार्य, अपना करण स्वयं, अपने से रखकर स्वयं किया और स्वयं के आधार से हुआ। समझ में आया?

हम दुनिया को समझा दें, इसलिए सामनेवाले समझें, उनके कार्य के कर्ता हम। भाई! ऐसा नहीं है। समझ में आया? वह भी एक मिथ्या अभिमान है। समझ में आया? हम उसे जाते हुए रोकें, यहाँ जाये उसे रोकें। तेरा मिथ्या अभिप्राय है। कौन रोके? भाई! जो जिसकी पर्याय जाने की हो, वह होने की है। होने की है, वह नहीं होने की नहीं और नहीं होनेवाली, वह होने की नहीं है। तू किसे रोकेगा? भाई! तेरे में तू रोक। विकल्प छोड़कर अन्दर में जा। बाकी दूसरी कोई बात है नहीं।

अहो! अनन्त काल का अनजाना पंथ, नजर डालकर काम न करे और उलटे रास्ते जाये, उसे आत्मा कहाँ से हाथ आवे? मिथ्या अभिमान के भँवर में चढ़ा, मिथ्या अभिमान के भँवर में चढ़ा, आत्मा गड़बड़ में अनादि से चढ़ा। धर्म के नाम से भी गड़बड़ में चढ़ा। उसमें फिर वाद-विवाद करो, इससे यह होता है। भाई! वाद कौन करे? भाई! वाणी कौन निकाले? और दूसरे को समाधान कौन करे? दूसरे का समाधान तो उसका उससे होता है। कान्तिभाई! ऐसी बात है। लो, तुम्हारा चलता हो तो हमको समझा दो। सेठ! बापू! दूसरे को कौन समझावे? भाई! तेरी पर्याय का कर्ता तू है, उसे दूसरा समझावे वह किस प्रकार बने? समझ में आया? परन्तु मिथ्या अभिमान के चक्र में चढ़ा, बाहर निकलता नहीं। कहते हैं, स्वयं ही अपनी सामग्री से परित है, तुझमें पूरी

सम्पदा पड़ी है। तुझमें शक्तियाँ पूरी पड़ी हैं भाई! तू उस शक्ति को खोल। दूसरी सामग्री की तुझे आवश्यकता नहीं।

शुद्धोपयोग में लीन आत्मा स्वयं ही छह कारकरूप होकर केवलज्ञान प्राप्त करता है। लो! भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप अपने शुद्ध उपयोग का आचरण वस्तु में लीन होने से, शुद्धता प्रगट होने पर उसमें आत्मा स्वयं ही कर्ता, कर्म, सम्प्रदान, करण—साधन (अपादान, अधिकरण) आदि होकर केवलज्ञान प्राप्त करता है। कहो, वह केवलज्ञान प्राप्त करने में अपने ही कारक सहायता करते हैं। दूसरे के कारक हैं नहीं। समझ में आया? देखो! सर्वज्ञपद हो, उसमें पुरुषार्थ है। आता है न? कर्म है। उसमें नहीं आता? पुरुषार्थ और कर्म के बोल नहीं आते? आत्ममीमांसा। दैव। वहाँ तो दैव का निमित्तपना वहाँ कहा। वह उसकी योग्यता है। वह केवलज्ञान की प्राप्ति स्वयं की योग्यता से होती है। एक समय में इतना बड़ा ज्ञान! ज्ञानावरणीय कर्म हटे तो हो। कहते हैं कि नहीं। अपने शुद्ध उपयोग में लीन होने से होता है। समझ में आया? उसके छह कारकों का वर्णन जो आया है, उसका विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १०, मंगलवार, दिनांक १७-०९-१९६८
गाथा - १६, १७ प्रवचन - १५

प्रवचनसार, ज्ञान अधिकार, १६वीं गाथा का भावार्थ चलता है। २८वें पृष्ठ पर पहली लाईन। **शुद्धोपयोग में लीन आत्मा...** क्या अधिकार है यह? धर्म प्राप्त धर्म के कारण से केवलज्ञान को प्राप्त करता है। समझ में आया? धर्म वह कि आत्मा आनन्द और ज्ञान-दर्शनस्वभावस्वरूप, उसकी अन्दर दृष्टि, ज्ञान और साम्य—समतारूपी शुद्ध उपयोग की दशा, वह धर्म। कहो, समझ में आया? उस धर्म के फलरूप से केवलज्ञान प्राप्त करता है, वह बात चलती है। लोग कहते हैं न कि भाई धर्म... धर्म। धर्म अर्थात् क्या? 'चारित्तं खलु धम्मो'। चारित्र, वह धर्म। अर्थात् क्या? आत्मा चिदानन्द ज्ञानस्वरूप पूर्णानन्द की अन्तर्मुख का अनुभव करके, ज्ञान करके और दृष्टि करके और स्वरूप में शुभ-अशुभ परिणाम का अभाव करके शुद्ध आचरणरूप शुद्ध उपयोग को प्रगट करे, उसे चारित्र कहो या उसे धर्म कहो। समझ में आया? उस धर्म के फलरूप से... यह शुद्ध उपयोग कहो या धर्म कहो। समझ में आया?

देहादि शरीर की क्रिया, वह धर्म नहीं; पाप के परिणाम धर्म नहीं; अन्दर दया, दन, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प उठे, वह भी धर्म नहीं। धर्म, चैतन्य को अवलम्बकर शक्ति का जो दर्शन-ज्ञान पूरा तत्त्व प्रभु, उसे अलम्बकर होनेवाली निर्विकल्प-निर्विकारी शुद्ध आचरणरूपी दशा को धर्म कहते हैं। कहो, समझ में आया? उस धर्म में लीन आत्मा, धर्म में कहो या शुद्ध उपयोग में लीन कहो। है? पहली लाईन है न? अपने शुद्ध स्वभाव का उपयोग अर्थात् अन्तर व्यापार, उसमें लीन आत्मा **स्वयं ही छह कारकरूप होकर केवलज्ञान प्राप्त करता है।** अपने स्वभाव की शक्तियों में षट्कारक कर्ता, कर्म आदि गुण पड़े हैं। वह स्वयं शुद्ध उपयोग में लीन होकर कर्ता, कर्म आदि से स्वयं ही केवलज्ञान को शुद्ध उपयोग द्वारा प्राप्त होता है। कोई संहनन या मनुष्यदेह या व्यवहार अथवा (दूसरा कोई) वहाँ कोई सहायक नहीं है। समझ में आया?

शुद्धोपयोग में लीन आत्मा स्वयं ही छह कारकरूप... छह कारक अर्थात् कर्ता, स्वयं ही कर्ता शुद्ध उपयोग का होकर, शुद्ध उपयोग का कार्य प्राप्त करके, शुद्ध उपयोग

का साधन स्वयं ही प्राप्त स्वयं से करके, शुद्ध उपयोग स्वयं से करके, शुद्ध उपयोग अपने में रखकर, शुद्ध उपयोग को स्वयं अपने आधार से करके। कठिन धर्म ऐसा। यह षट्कारकरूप होकर, स्वयं होकर केवलज्ञान को प्राप्त करता है। यह बात करते हैं अब, देखो छह बोल। **वह आत्मा स्वयं अनन्तशक्तिवान ज्ञायकस्वभाव से...** अपरिमित अनन्त ऐसी शक्ति ज्ञायकस्वभाव द्वारा वर्तमान पर्याय में **स्वतन्त्र है, इसलिए स्वयं ही कर्ता है;...** वीतरागी पर्याय का आत्मा स्वयं ही कर्ता है अथवा वीतरागी पर्याय द्वारा केवलज्ञान को प्राप्त करनेवाला स्वयं ही है। समझ में आया?

स्वयं अनन्तशक्तिवाले केवलज्ञान को प्राप्त करने से... भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य के परिणमन से स्वयं ही अनन्त शक्तिवाला केवलज्ञान... अनन्त शक्तिवाला केवलज्ञान-सर्वज्ञपर्याय को **प्राप्त करने से...** अन्तर की पर्याय की शक्ति को स्वयं पहुँचता होने से, केवलज्ञान की अवस्था को स्वयं कर्ता होकर परिणमन होकर पहुँचता होने से, प्राप्त करता हुआ, उस पर्याय को अभिन्नरूप से परिणमता हुआ **स्वयं ही कर्म है...** वह केवलज्ञान आत्मा का कार्य है। समझ में आया? **अथवा केवलज्ञान से स्वयं अभिन्न होने से...** प्रत्येक (पर्याय)। यह तो उत्कृष्ट बात ली है। सम्यग्दर्शन के लिये भी ऐसा है। धर्म की शुरुआत सम्यग्दर्शन की पर्याय में भी आत्मा कर्ता स्वतन्त्र होकर और उस सम्यग्दर्शनरूपी पर्याय को—कर्म को अर्थात् कार्य को प्राप्त करता है। कहो, समझ में आया इसमें? उसे दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम बिल्कुल सहायक नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्योंकि दया, दान, विकल्प, वह कहीं आत्मा नहीं, वह तो अनात्मा है।

आत्मा स्वयं ही अपने परिणाम से अपनी पर्याय को प्राप्त करता हुआ, उसमें अभिन्नरूप से होता हुआ, उस अपने कार्य को करता है। आत्मा पर का कार्य करता नहीं, आत्मा राग का कार्य करे, वह अज्ञानी है, वह आत्मा नहीं। समझ में आया? शरीर, वाणी, मन, यह सब काम चलते हैं, उन्हें तो वह (आत्मा) करता नहीं, परन्तु अन्दर में राग-द्वेष के विकल्प उठें, वह कर्म मेरा है, वह भी अज्ञानभाव अनात्मा है। उसके—रागरहित आत्मा के ज्ञान-दर्शन-चारित्र के परिणाम के कर्म को करे, वह आत्मा। कहो, समझ में आया इसमें? केवलज्ञान से स्वयं एक होने से स्वयं ही कर्म है।

अपने अनन्त शक्तिवाले परिणमन स्वभावरूप उत्कृष्ट साधन से... स्वयं ही साधन है। शुद्ध उपयोग में वह साधन स्वयं और केवलज्ञान में भी साधन स्वयं। विकल्प और राग और शरीरादि कुछ भी साधन है ही नहीं। समझ में आया? **केवलज्ञान को प्रगट करता है, इसलिए आत्मा स्वयं ही करण है;...** कारण है, करण है, साधन है। वह केवलज्ञान की पर्याय आत्मा के करण से की जाती है। समझ में आया? अपने करण के कारण से केवलज्ञान की पर्याय होती है। कोई व्यवहार के विकल्प, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, उससे केवलज्ञान होता नहीं।

अपने को ही केवलज्ञान देता है, इसलिए आत्मा स्वयं ही सम्प्रदान है;... स्वयं परिणमकर शुद्ध उपयोगरूप से होकर केवलज्ञान की पर्याय को प्राप्त करे, वह स्वयं रखता है, स्वयं दाता और स्वयं लेनेवाला। कहो, समझ में आया? दान अपने को दे, ऐसा कहते हैं। किसी को दे सकता नहीं। सम्प्रदान, स्वयं सम्प्रदान है। पैसा दूसरे को दे सकता नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : तो नहीं देंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं दे, वह कब देता था, वह दे? देता था कब? उसके रजकण जगत के परमाणु हैं, जहाँ बदलकर जानेवाले हों, वहाँ जाते हैं। उसमें आत्मा का अधिकार बिल्कुल नहीं। आहाहा! राग हो अन्दर कषाय की मन्दता का, समझ में आया? वह भी स्वयं रखे दान, तो वह भी मिथ्यात्वभाव है। अपने को कषाय का भाव दे, रखे, पुण्य परिणाम दया, दान, भक्ति, व्रत के, दान के परिणाम स्वयं करके रखे, (वह) मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? रखे क्या धर्मी? अपने शुद्ध परिणाम को परिणमकर अपने में रखे। और उस शुद्ध परिणाम द्वारा केवलज्ञान परिणमकर स्वयं को रखे। अथवा साधकभाव रखे अथवा साध्यभाव रखे। कहो, समझ में आया? गजब!

अपने में से मति श्रुतादि अपूर्ण ज्ञान दूर करके केवलज्ञान प्रगट करता है, इसलिए और स्वयं सहज ज्ञान स्वभाव के द्वारा ध्रुव रहता है, इसलिए स्वयं ही अपादान है,... केवलज्ञान प्राप्त काल में, सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्त पद की प्राप्त काल में, पूर्व की अधूरी चार ज्ञानदशा को व्यय करता—नाश करता हुआ, नयी पर्याय को उत्पन्न होने में

ध्रुव साधन ध्रुव है। उस ध्रुव में से केवलज्ञान आता है। समझ में आया?

अपने में ही अर्थात् अपने ही आधार से केवलज्ञान प्रगट करता है, इसलिए स्वयं ही अधिकरण है। बात यह (कि) वस्तु का पूरा तत्त्व, सत्त्व ऐसा है (कि) षट्कारक की शक्तियाँ उसमें पड़ी ही हैं। समझ में आया? उसके आधार से उस केवलज्ञान की पर्याय का आधार स्वयं आत्मा है। पूर्व की पर्याय नहीं, व्यवहार दया, दान, वह नहीं, संहनन, मनुष्यपना नहीं। वह भगवान आत्मा शुद्ध उपयोग का आधार भी आत्मा, शुद्ध उपयोग का आधार आत्मा और शुद्ध उपयोग के फलरूप केवलज्ञान का आधार भी आत्मा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

आत्मा के आधार से राग हो तो वह आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह दया, दान के परिणाम आत्मा के आधार से हों, द्रव्य के आधार से, हों! पर्याय के आधार से पर्याय हो अंश से, वह स्वतन्त्र है पर्यायबुद्धि में। पर्यायबुद्धि में रागादि स्वयं करे और स्वयं रखे पर्यायबुद्धि में। परन्तु वस्तु के आधार से राग हो, त्रिकाल ज्ञायक चैतन्यमूर्ति है, उसके आधार से राग हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। राग पर्यायबुद्धि में, मिथ्याबुद्धि में होता है सीधे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ओहो!

अपने ही आधार से प्रगट करता है, इसलिए स्वयं ही अधिकरण है। इस प्रकार स्वयं छह कारकरूप होता है,... छह कारकरूप से भगवान आत्मा परिणमता, बदलता होने से **वह 'स्वयंभू' कहलाता है।** स्वयंभू। केवलज्ञानी को स्वयंभू। परमेश्वर अरिहन्त परमात्मा को स्वयंभू (कहा जाता है क्योंकि) स्वयं—अपने से प्रगट हुए। कहते हैं न यह परमेश्वर प्रगट हुए। समझ में आया? कौन परमेश्वर? तू स्वयं परमेश्वर। तेरी पर्याय में अन्तर में दृष्टि करके, शुद्धरूप से परिणमन करके स्वयं भगवान आत्मा केवलज्ञान को प्राप्त करे, वह स्वयंभू है। आत्मा स्वयं स्वयंभू है। उसके होने के लिये दूसरे की आवश्यकता नहीं। स्वयंभू। दूसरा कोई परमेश्वर स्वयंभू इस आत्मा का कर्ता है, ऐसा है नहीं। इस प्रकार इस केवलज्ञान की पर्याय का कर्ता दूसरा कोई है रागादि, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

यह **छह कारकरूप होता है, इसलिए वह 'स्वयंभू' कहलाता है। अथवा, अनादिकाल से अति दृढ़ बँधे हुए (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायरूप) द्रव्य तथा भाव घातिकर्मों को...** जड़ घातिकर्म, उसमें भाव अनुभाग आदि और पर्याय में जो घात होने की योग्यता का भाव, उन सबको **नष्ट करके स्वयमेव आविर्भूत हुआ...** स्वयं ही प्रगट हुआ। **किसी की सहायता के बिना अपने आप ही स्वयं प्रगट हुआ, इसलिए 'स्वयंभू' कहलाता है।** लो, यह केवलज्ञान प्राप्त करने की पद्धति। अर्थात् मोक्ष। यहाँ ज्ञान अधिकार है न? इसलिए ज्ञान की बात ली है। बाकी तो केवलज्ञान अर्थात् मोक्ष। यहाँ ज्ञान अधिकार है, इसलिए ज्ञान से बात (ली है)। अन्तर में ज्ञान सत्त्व तो पड़ा ही है पूरा, उसके अवलम्बन से शुद्ध परिणमन होने से उसे केवलज्ञान की प्राप्ति स्वयं अपने से होती है। बाहर के निमित्त की कोई आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। लो, उसमें निमित्त की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। सेठ!

मुमुक्षु : आप कहो वह सब प्रमाण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमाण है। उसमें है या नहीं? आहाहा! स्वतन्त्र... स्वतन्त्र... स्वतन्त्र... संसार करने में वह स्वतन्त्र, धर्म करने में वह स्वतन्त्र, यह मोक्ष करने में भी वह स्वतन्त्र। उसकी स्वतन्त्रता में कोई व्यवधान कर सके, ऐसी कोई चीज़ जगत में है ही नहीं। कहो, समझ में आया? लो, यहाँ तो केवलज्ञान की बात की, हों! परन्तु तत्प्रमाण सबमें समझना।

धर्म की पहली दशा सम्यग्दर्शन का कर्ता भी आत्मा ही है। समझ में आया? उस सम्यग्दर्शन के कर्म को आत्मा ही प्राप्त करता है। सम्यग्दर्शन में आत्मा ही साधन है। सम्यग्दर्शन स्वयं से ही होता है, ध्रुव में (से) और सम्यग्दर्शन करके स्वयं रखता है और सम्यग्दर्शन का आधार आत्मा है। कहो, समझ में आया? प्रथम में प्रथम धर्म की शुरुआत सम्यग्दर्शन, वह भी स्वयं षट्कारक स्वयं से स्वयं परिणमता है। बिल्कुल दूसरे निमित्त की आवश्यकता नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? कहो, भीखाभाई! ऐसा स्वरूप है। आहाहा! बादशाह हो, तीन लोक का नाथ है न, नाथ! तुझमें कहाँ खजाने में कमी है कि अन्यत्र खोजने जाता है? ऐसा कहते हैं। तेरे खजाने

में कहाँ कमी है तो अन्यत्र खोजने जाता है। समझ में आया? परन्तु इसे विश्वास बैठता नहीं। इतना मैं? इतना? समझ में आया?

मुमुक्षु : शक्ति के बल से शक्ति प्राप्त होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्ति के बल से ही शक्ति होती है। आत्मा में शक्ति है, उसके बल से शक्ति प्रगट होती है।

★ ★ ★

गाथा - १७

अब १७वीं गाथा में ऐसा कहते हैं कि जो परमात्मपद सर्वज्ञपद प्रगट हुआ, वह प्रगट हुआ, उत्पन्न हुआ, वह अब नाश नहीं होगा और जो नाश हुई संसार पर्याय उसकी अब उत्पत्ति फिर से नहीं होती। अब यह बात करते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा... आज एक कोई आया था। बेचारा बहुत प्रसन्न हुआ। कौन, नहीं था? संघवी था कोई। लींबड़ी के थे न। अन्दर आये थे। व्याख्यान में भी कल दोपहर में आये थे। ओहोहो! श्रीमद् का सब दिया। कहे, गजब बात यह तो। सुनते ही रहें (ऐसा लगता है)। लोगों को मिला नहीं। समझ में आया? कोई लींबड़ी के थे, नहीं? रतिभाई के घर में आये थे न, होलकर। विसाश्रीमाली थे न, विसाश्रीमाली लींबडी के। बात गजब! भगवान आत्मा (सुनते हुए) ऐसा कुछ हो जाता था अन्दर से। लींबड़ी के थे। भगवान आत्मा अपने परिणाम को स्वयं करे तब... यहाँ तक बोलते थे, भाई! ओहोहो! दया, दान, भक्ति के परिणाम वे अनात्मा। आहाहा! बहुत प्रसन्न होते थे। दया, दान, भक्ति परिणाम, वह अनात्मा; आत्मा नहीं। भाई! आत्मा नहीं। समझ में आया? आत्मा हो तो आत्मा की पर्याय उससे भिन्न पड़े नहीं। वह तो विकल्प-राग है। आहाहा! दया, दान, पूजा, भक्ति, व्रत, तप का राग, वह तो विकल्प है, उपाधि है, मैल है। वह आत्मा नहीं। आत्मा तो दर्शन-ज्ञान का पिण्ड चैतन्य पूरा। आहाहा! दृष्टा-ज्ञाता—ऐसा उसका स्वभाव... स्वभाव, उसका सत्त्व, उसका तत्त्व अपरिमित भाव, वह आत्मा, वह आत्मा। और उस आत्मा की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह मोक्षमार्ग। समझ

में आया? बापू! यह तो वीतरागमार्ग है अलौकिक मार्ग! लोगों को बेचारों को हाथ आता नहीं, सुनने को मिलता नहीं। बेचारे भटक मरते हैं। ऐसा परमेश्वर का, परमात्मा का प्रगट प्रसिद्ध किया हुआ मार्ग है।

अब कहते हैं, **इस स्वयंभू के शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति के...** भगवान आत्मा अपने शुद्ध उपयोग द्वारा जो केवलज्ञान और मोक्ष की पर्याय सिद्ध की प्राप्त की, उसका **अत्यन्त अविनाशीपन...** वह पर्याय प्रगट हुई, वह हुई, अब नाश होगी नहीं। समझ में आया? केवलज्ञान और सिद्ध पर्याय हुई (वह) अत्यन्त अविनाशी है, ऐसी की ऐसी रहनेवाली है। **और कथंचित् (कोई प्रकार से) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुकतता का विचार करते हैं:**—केवलज्ञान एक समय में शुद्ध उपयोग के धर्म द्वारा प्रगट किया तो उस पर्याय में भी तीन बोल सिद्ध करते हैं। उत्पाद, व्यय और ध्रुव। समझ में आया? दो बोल। प्रगट जो दशा हुई, (वह) अत्यन्त अविनाशी, अत्यन्त अविनाशी। देखो! द्रव्य-गुण अविनाशी, ऐसी पर्याय अविनाशी। उसमें उत्पाद, व्यय और ध्रुव किसी प्रकार से होते हैं, वह सिद्ध करते हैं। समझ में आया? (गाथा) १७।

भंगविहूणो य भवो संभवपरिवज्जिदो विणासो हि।
विज्जदि तस्सेव पुणो ठिदिसंभवणाससमवाओ॥१७॥

नीचे हरिगीत।

व्यय-विहीन उत्पाद और उत्पाद-विहीन विनाश लहा।
किन्तु उन्हें उत्पाद-विनाश-रु स्थिति का समवाय रहा॥१७॥

आहाहा! देखा! **उत्पादहीन विनाश है...** तथापि **और उत्पाद-ध्रौव्य विनाश का समवाय है।**

व्यय-विहीन उत्पाद और उत्पाद-विहीन विनाश लहा।
किन्तु उन्हें उत्पाद-विनाश-रु स्थिति का समवाय रहा॥१७॥

सम्बन्ध है। विनाशहीन है, उसे भी विनाश का सम्बन्ध है। किसी प्रकार से कहते हैं, वह सब स्पष्टीकरण करेंगे, हों!

टीका :- वास्तव में इस (शुद्धात्मस्वभाव को प्राप्त) आत्मा के... देखो! क्या

पाया, कहते हैं। जैसा शुद्धस्वभाव था, वैसा ही पर्याय में प्राप्त हुआ। जैसा शुद्धद्रव्य ज्ञायक दर्शन, ज्ञान, आनन्द आदि स्वभाव था, वस्तु स्वभाव था, ऐसा ही पर्याय में प्राप्त हुआ। **वास्तव में इस (शुद्धात्मस्वभाव को प्राप्त)...** ऐसा। शुद्धात्मस्वभाव को प्राप्त... वस्तु जो शुद्ध चैतन्य दर्शन, ज्ञान, आनन्द आदि शुद्धस्वरूप, ऐसा शुद्धात्मा का जो स्वभाव, उसे पर्याय में प्राप्त... था, वह प्रगट हुआ, प्राप्त की प्राप्ति (हुई)। भगवान शुद्धस्वभाव को पर्याय में शुद्धस्वभाव की प्राप्ति हुई। समझ में आया?

प्राप्त **आत्मा के शुद्धोपयोग के प्रसाद से हुआ...** भगवान आत्मा अपने शुद्ध, पवित्र, वीतरागी उपयोग के आचरण के प्रसाद से हुआ **शुद्धात्मस्वभाव से उत्पाद...** शुद्धात्मस्वभाव से उत्पाद, **(शुद्धात्मस्वभावरूप से)...** उत्पन्न हुआ। क्या कहा? केवलज्ञानरूपी शुद्धात्मपर्यायरूप से उत्पाद हुआ, उपजा। **पुनः उसरूप से प्रलय का अभाव होने से...** वह उत्पन्न हुआ, सो उत्पन्न हुआ, अब उसका नाश होनेवाला नहीं है। समझ में आया? भाई! नजर डालना। बाहर की नजर अन्तर में रखना और अन्तर के निधान को खोलना, उसकी यह सब बात है। समझ में आया? कहते हैं, भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप पवित्रस्वरूप आनन्दस्वरूप अकेला पवित्र धाम आत्मा है, उसे पर्याय में उसी प्रकार की पवित्रता के शुद्धता को प्राप्त पर्याय उत्पन्न हुई, उत्पन्न हुई; परन्तु हुई, वह हुई, अब विनाशरहित उत्पाद है। उत्पन्न हुई, वह हुई, अब उसका विनाश नहीं। समझ में आया?

(शुद्धात्मस्वभावरूप से)... उत्पन्न हुआ, प्रगट हुआ प्रभु, उसकी प्रभुता की पर्याय का अब नाश नहीं। **पुनः उसरूप से प्रलय का अभाव होने से विनाश रहित है;...** क्या कहा समझ में आया? यहाँ तो ऐसा कहते हैं। द्रव्य-गुण है न द्रव्य-गुण, वस्तु ध्रुव, ऐसे ध्रुव में से प्रगट हुई पूर्ण द्रव्य, पूर्ण गुण, पूर्ण पर्याय। अब पूर्ण पर्याय प्रगट हुई, वह प्रगट हुई, वह प्रगटी, उसका नाश नहीं है। जैसे यहाँ द्रव्य-गुण का नाश नहीं, उसी प्रकार उसकी प्रगट हुई पर्याय का अब नाश नहीं। समझ में आया? वे कहे न, परमेश्वर हो, और वापस अवतार धारण करे। दुःखी को देखकर भक्तों का कष्ट मिटाने (के लिये अवतार ले)। भाई! ऐसा नहीं होता। वह स्वयं द्रव्य और गुण से भरपूर भगवान, वह अपनी पूर्ण पर्याय को पूर्ण-पूर्ण जैसी शक्ति में पूर्ण ऐसी पर्याय को प्राप्त हुआ, अब

उसमें से गिरे कैसे? उसका नाश कैसे हो? समझ में आया? (वह गिरे) तो द्रव्य-गुण का नाश हो। प्रगट हुई ध्रुव पर्याय है एक न्याय से। आहाहा! ऐसी की ऐसी रहनेवाली है सादि-अनन्त। सादि-अनन्त परमेश्वरपद, अरिहन्तपद, केवलज्ञानपद सादि-अनन्त है। समझ में आया? द्रव्य, गुण अनादि-अनन्त है, तब उसकी प्रगट हुई पर्याय, वह सादि-अनन्त है। प्रगट हुई है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्याय-अवस्था। आता है न बहुत बार।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ? वहाँ कुछ नहीं मिलता रजनीश में, गप्प है। आहाहा! यह वीतरागमार्ग के अतिरिक्त सर्वत्र गप्प ही गप्प है। विपरीत-विपरीत विपरीतता, मार डालेगी जगत को। आहाहा! क्या करे? वस्तु... आहाहा!

अरे! भाई! यहाँ तो कहते हैं, तू है या नहीं प्रभु? तू है या नहीं? है की तो बात ही नहीं मिलती। तू है या नहीं? है तो। अब फिर बात (कि) उसमें क्या है? वह है तो उसमें क्या है? है ज्ञान, दर्शन और आनन्द। तो है उसमें यह है और यह है। तो अब उसकी दशा में क्या है? दशा में अज्ञान के कारण अनादि से राग और पुण्य मेरा ऐसा माना है, वह संसार है पर्याय, वह संसारपर्याय है। उसी पर्याय के स्थान में त्रिकाली द्रव्य और गुण विद्यमान है, उसका आश्रय करके जो पर्याय प्रगट हुई, वह धर्मपर्याय है। वह धर्मपर्याय अवस्था है। इसके कारण से पूर्ण जो प्रगट हुई, वह पूर्ण पर्याय है। केवलज्ञान और सिद्ध, वह पर्याय है, वह कहीं गुण नहीं। इसलिए तो उत्पन्न कहो। उत्पन्न हुई है अवस्था वह। आहाहा! जैनदर्शन की एकड़ा की बात को लोग सम्प्रदाय में जन्मे हुए को खबर नहीं होती। द्रव्य-गुण-पर्याय क्या? सेठ! द्रव्य किसे कहना? गुण किसे कहा जाता है? पर्याय किसे कहना? भगवान जाने। भगवानदास को भगवान जाने, ऐसा। जैन, वह कोई सम्प्रदाय नहीं; जैन, वह वस्तु का—तत्त्व का त्रिकाली स्वभाव, उसका नाम जैन है। समझ में आया?

'जिनपद निजपद एकता, भेदभाव नहिं कांई।' भगवान आत्मा, आत्मा है वह तो

बात नहीं। विकल्प छोड़ो, शून्य होओ। क्या धूल शून्य हो ? जड़ हो जायेगा। समझ में आया ? देखो न शुरुआत की वहाँ जीव में से उत्पाद-व्यय-ध्रुव वहाँ से शुरु किया है। पर्याय और ध्रुव दो होकर—द्रव्य और पर्याय होकर वस्तु है। एक-एक आत्मा द्रव्य अर्थात् कायम रहनेवाला, गुण अर्थात् कायम रहनेवाला, अवस्था क्षण-क्षण में बदले, द्रव्य-पर्यायस्वरूप है। उस पर्याय में जब तक राग और पुण्य की एकताबुद्धि है, तब तक उसमें स्वभाव नहीं था, उसे एकता की, उसका नाम मिथ्यात्व और संसार है। (वह) उसमें नहीं और उसमें है शुद्ध चैतन्यमूर्ति, रागादि नहीं। ऐसे शुद्ध चैतन्य को अवलम्बकर पर्याय प्रगट हो, वह रागरहित होती है, उसका नाम धर्म। धर्म, वह पर्याय है। सिद्ध भी एक पर्याय है, केवलज्ञान भी एक पर्याय है। खबर नहीं होती। पर्याय का लफन्दर अभी वहाँ तक रहा। तुम्हारे कहते थे वे दाढ़ीवाले। कुछ अभ्यास ही नहीं होता। क्या कहें ? कौन ? भोपाल में बँगला है न। क्या कि वह देशसेवा की बातें करे। आहाहा ! बैठे-बैठे। अभी पर्याय या सिद्ध में क्या कुछ कहते थे ? पीछे पड़ी है ? सिद्ध में भी पीछे पड़ी है ? अरे ! भगवान ! क्या परन्तु खबर नहीं होती। परन्तु पर्याय अर्थात् ? वस्तु जो कायम है, उसकी बदलने की अवस्था का कार्य, उसका नाम पर्याय। समझ में आया ? अरे ! वस्तु का मूलरूप यह तो, वस्तु का मूल पाया (नींव), वस्तु का मूल पाया। समझ में आया ?

कोई भी प्राणी कहे कि भाई, लो हम तुमको समझाते हैं। तब वह कहे कि हम समझे नहीं तब समझते हैं, ऐसा हुआ या नहीं ? समझे नहीं, उसका नाश होकर समझना, वह क्या है ? वह पर्याय है और यह पर्याय कहाँ से आती है ? बाहर से आती है ? वस्तु है भगवान आत्मा अन्दर आनन्दकन्द प्रभु, उसके आश्रय से, उसमें से पर्याय आती है। पर्याय का काल एक समय है, द्रव्य-गुण का काल त्रिकाल है। समझ में आया ? यह वस्तु है। इसके बिना कोई वस्तु कहे, (वह) रण में चिल्लाना है। समझ में आया ? यह तो सर्वज्ञ, सर्वज्ञ... साधारण से सिद्ध हो, ऐसा है। सर्वज्ञ परमेश्वर ने तो कहा हुआ है, परन्तु न्याय से भी इस प्रकार से न हो तो कोई वस्तु सिद्ध नहीं होती। समझ में आया ?

भाई ! तुम भूल में हो। लो ! ऐसा कहते क्या हुआ ? कि भूल है, वह दशा है। वह

यदि शाश्वत् चीज़ हो तो भूल टालने का कैसे हो? तुम भूल में हो और हमको भूल में भटकाया जगत ने। परन्तु तुझे भूल टालनी है या नहीं? तो इसका अर्थ हुआ कि भूल शाश्वत् चीज़ नहीं, क्षणिक है। तो क्षणिक है, इसका अर्थ पर्याय है और भूल टालना है या नहीं? तो उसके स्थान में कुछ वापस लाना है या नहीं? निर्भूल। तो भूल टलकर निर्भूल हो, वह भी एक दशा है। वह आयेगी कहाँ से? प्राप्त की प्राप्ति है या अप्राप्त की अप्राप्ति? द्रव्य-गुण में सिद्ध हो गया उसमें। ज्ञान की प्राप्ति पर्याय में आयी, अज्ञान गया, पर्याय आयी, वह ज्ञान में से आयी। ऐसे एक-एक गुण की पर्याय उसमें आयी तो उन सब गुण का पिण्ड, वह द्रव्य है। तीनों सिद्ध हुए। है ऐसी वस्तु है। इसलिए तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव से शुरु किया। जैन में जन्मे उसे भी खबर नहीं होती। ऐसा का ऐसा गाड़ा जोड़ दिया अन्ध अन्ध। गाड़ी मुख के सामने और घोड़ा पीछे। तत्त्व की कुछ खबर नहीं होती। कहो, समझ में आया इसमें?

२८वें अध्ययन में यह बात है उत्तराध्ययन में भी। बहुत पहले से शुरुआत से कहा था। क्या करते हो यह? कि भाई! २८वें अध्ययन में वह गाथा है, उसका यह स्पष्टीकरण है। ....लो! बाबरा में ७८ में थे न! समयसार वांचन के पश्चात् पूछा यह क्या वांचते हो? कहा, यह द्रव्य-गुण-पर्याय वांचते हैं। द्रव्य-गुण-पर्याय। क्या करे? उसे तो उत्तराध्ययन का बोलें तब। कहा, यह उत्तराध्ययन की गाथा नहीं आती? छठवीं आती है। ... गुण का आधार द्रव्य है। ... द्रव्य के आश्रित गुण रहते हैं, गुण का आधार द्रव्य है। ... उसकी पर्यायें जो है अवस्था उसका लक्षण ... दोनों के आश्रय से होती है। द्रव्य-गुण के आश्रय से हो, वह पर्याय। समझ में आा? अभ्यास नहीं होता। दो घड़ी मिले और यदि कुछ ऊपर से भी हो जाये। कहनेवाले को खबर नहीं होती, सुननेवाले को खबर नहीं होती। अन्ध अन्ध खाता। ऐई! रतिभाई! आहाहा! समझ में आया इसमें?

पर्याय अर्थात् अवस्था और द्रव्य अर्थात् अवस्थायी। पर्याय अर्थात् वर्तमान अंश और द्रव्य-गुण अर्थात् त्रिकाली अंश। आहाहा! आनन्दघनजी ने कहा, 'स्थिरता एक समय में ठाने, उपजे विणसे गुण से तबही। उलटपलट ध्रुव सत्ता राखे, या हम सुनी न

कबही, अबधु नटनागर की बाजी। स्थिरता एक समय में...' एक समय में ध्रुव भी रहे। यह 'स्थिरता एक समय में ठाने, उपजे-विनसे तबही' और पर्याय में उपजे नयी, पुरानी अवस्था से जाये (व्यय हो)। 'उलट पलट।' उलट पलट हुआ न? उत्पाद-व्यय। 'उलट पलट ध्रुव सत्ता राखे, या हम सुनी न कब ही। अबधु नटनागर की बाजी। क्या जाने बामन काजी रे।' ब्राह्मण अर्थात् वेद और काजी अर्थात् कुरान, उसे क्या खबर पड़े कि यह क्या है? समझ में आया? सेठ! इन सेठियाओं ने ऐसा का ऐसा सब समय बिताया है प्रमुख होकर। स्वयं को कुछ ज्ञान नहीं और दूसरे को कुछ ज्ञान नहीं। सच्ची बात है न सेठ?

द्रव्य किसे कहते हैं? गुण किसे कहते हैं? पर्याय किसे कहते हैं? यह वस्तु का पहला पाया (नींव) का एकड़ा। अभी तो अज्ञान घूँटने में, हों! क्या है यह? एक-एक यह तत्त्व... जब मैं ऐसा कहूँ कि भाई! मुझे धर्म करना है। तो उसका अर्थ क्या हुआ? कि इसकी दशा में धर्म नहीं। इसकी दशा में धर्म नहीं और अधर्म है। इसका अर्थ यह कि धर्म करना है, तब यह दशा नशा हो सकती है। बस, वह पर्याय हो गयी। समझ में आया? यह द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान नहीं तो फिर उल्टे रास्ते चढ़ा दिया। आहाहा!

यह तो सर्वज्ञ का प्रवाह है। परमेश्वर ने कहा हुआ और वस्तु का स्वरूप है यह। स्वयं को भी ख्याल करे तो समझ सकता है। ऐसा न हो तो दूसरी चीज़ किस प्रकार से होगी? भूल है, धर्म करना है, ऐसा कहते ही अधर्म है और अधर्म टल सकता है। तो टल सकता है, इसका अर्थ कि यह क्षणिक है। और उसके स्थान में धर्म का सच्चा स्वरूप प्रगट हो सकता है। प्रगट हो सकता है। उसका व्यय हो और इसे प्रगट हो। परन्तु प्रगट कहाँ से हो? वस्तु है उसमें से। अद्धर से होता है? एक पानी की तरंग गयी और एक उत्पन्न हुई, वह गयी और एक उत्पन्न हुई, परन्तु किसके आधार से? पानी के आधार से। समझ में आया? यहाँ की बात ऐसी लगे न कितनों को ऐसा लगे कि ऐसी निश्चय की बातें अन्यत्र भी हैं। वहाँ कहीं। ऐसा करके दिशा ... जाये उल्टे विपरीतता में फिर। अरे, भगवान! भाई! यह तो सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ, परमेश्वर वीतरागदेव केवलज्ञानी परमात्मा अरिहन्त तीर्थंकरदेव, जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक

देखे। उनके मुख में से (आयी हुई बात है)। और यह है, ऐसा बैठता है अन्दर विचार करे तो। परन्तु विचार कब करे? जहाँ-तहाँ, जहाँ-तहाँ भटका भटक करता है। 'भटकत द्वार द्वार लोकनके कुकर आशा धारी।' कुत्ते की भाँति जहाँ-तहाँ भटका करता है। वह टुकड़े खाये और टुकड़े लाओ। घर में परमेश्वर विराजता है अन्दर। आहाहा! अरे! परमेश्वर होकर (भी) तू भिखारी होकर कहाँ जहाँ-तहाँ भटकता है? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, आत्मा में... यहाँ तो देखो ने उसकी बात! ओहोहो! परन्तु उठायी है कहाँ से? उस साम्य से? चारित्र, वह धर्म का अंगीकार करना है। वहाँ शुरु किया है। साम्य को अंगीकार करता हूँ। पंच परमेष्ठी को वर्तमान हाजिर लक्ष्य में रखकर, भूतकाल में हो गये तीर्थंकर, केवली और सिद्ध, पंच महाविदेह में वर्तमान भगवान विराजते हैं, सबको मैं वर्तमान में सामूहिक आमन्त्रण से वर्तमान में इकट्ठे करके एक साथ सबको नमन करता हूँ। प्रत्येक-प्रत्येक को वन्दन करके मैं साम्यभाव को अंगीकार करता हूँ। आहाहा! स्वयं बहुत बड़ी जाति में मिलना चाहता है। समझ में आया?

कहते हैं, उस **(शुद्धात्मस्वभाव को प्राप्त) आत्मा के शुद्धोपयोग के प्रसाद से...** शुद्ध उपयोग पर्याय है। द्रव्य और गुण तो त्रिकाल ध्रुव है। उसकी अन्तर एकाग्रता, स्वभाव का सत्पना जो है, उसे अवलम्बित पर्याय, वह अवस्था है। जो वस्तु है, वह दर्शन, ज्ञान, आनन्द आदि स्वभाव, उसे उपयोगरूपी पहले लेकर फिर अनन्त गुण धर्म लिये। आत्मा दर्शन, ज्ञान त्रिकाल। ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव त्रिकाल और उसके साथ दूसरे अनन्त धर्म, गुण, उनका जो पिण्ड आत्मा, उसके अस्तित्व-विद्यमानपने को पर्याय से अवलम्बकर निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान में शुद्ध उपयोग की पर्याय प्रगट हुई, वह प्रगट हुई पर्याय है। गुण-द्रव्य प्रगट नहीं होते, द्रव्य-गुण तो त्रिकाल हैं। समझ में आया?

इस **आत्मा के शुद्धोपयोग के प्रसाद से हुआ जो शुद्धात्मस्वभाव से उत्पाद...** देखो! **वह, पुनः उसरूप से प्रलय का अभाव होने से...** उसरूप से। भले बदले-परिणमे। उत्पाद हुआ, वह अब उसका नाश हो, ऐसा नहीं। इसलिए वह **विनाशरहित है...** केवलज्ञान, वह पर्याय है, सिद्ध भी एक पर्याय है। समझ में आया? द्रव्य-गुण है,

वह त्रिकाल है। जैसे सोना और सोने की पीलाश, चिकनाहट वह त्रिकाल है। परन्तु उसके गहने हों नये-नये, वह उसकी पर्याय है। इसी प्रकार आत्मा त्रिकाल है, वस्तु हुई वह तो। वस्तु का ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि स्वभाव, वह त्रिकाल है। उसकी वर्तमान अवस्था का बदलना होता है, वह पर्याय है। पर्याय द्वारा नित्य का निर्णय होता है न? कहीं नित्य द्वारा नित्य का निर्णय नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया?

अरे! इसे अपनी दया नहीं। अरे! मैं कहाँ जाऊँगा? समझ में आया? मेरा क्या होगा? चौरासी के अवतार के इन दुःखों के पर्वत में फँसा हुआ दुःखी है। उसे दुःख भासित नहीं होता। समझ में आया? वह दशा में मिथ्या भ्रान्ति और राग-द्वेष महा दुःख है। भगवान आत्मा आनन्द और निर्भ्रान्त वस्तु स्वयं, उससे उल्टी दशा, जैसा है उससे न मानकर उल्टी मान्यता (यह कि) या द्रव्य ही है, या पर्याय ही है, या अकेला अशुद्ध ही है, या शुद्ध है ही नहीं, या पुण्य से धर्म होता है, विकल्प से यह होता है, पर का कर सकता हूँ—ऐसी मिथ्या भ्रान्ति के पाप के भाव में वह दुःखी है। दुःख के पर्वत में दब गया है। समझ में आया? वह दुःख के पर्वत में दबा हुआ है, भाई! एक ईयळ जैसी चीज़ बड़ी लम्बी हो और एक दो ... में यदि पत्थर उसके ऊपर पाँच सेर का पड़ा हो तो सरसराहट... सरसराहट... सरसराहट... करके निकलना चाहे। ईयळ समझते हो कीड़ा? कीड़ा नहीं समझते? भाषा नहीं समझते। यह ईयळ नहीं होती ईयळ पतली? ईयळ नहीं कहते तुम्हारे? बहुत लम्बी लट होती है। वह निकले उसमें और पाँच सेर का पत्थर ऊपर आवे इतने में खुल्ला रह जाये। आहाहा! निकलने का करे, परन्तु पाँच सेर पत्थर ऊपर, निकले कैसे? वह भी निकलने को ऐसा करती है। वह तो जड़ की पर्याय। इसी प्रकार पर्याय में मिथ्यात्व और राग-द्वेष के दुःख के बड़े पर्वत हैं। उसमें से उसे दुःख लगे तो निकलने का (प्रयत्न) करे। समझ में आया? पर में दुःख नहीं, पर को दुःख नहीं, पर के कारण दुःख नहीं। आहाहा!

भगवान आनन्दस्वरूप है। अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द सर्वज्ञपद है, वैसा ही पद आत्मा का है। उस आनन्द को भूलकर, जिस प्रकार वस्तु की मर्यादा (है, उसे) भूलकर अमर्यादा को अपना मानकर दुःखी हो रहा है। उससे कहते हैं कि भाई! हमने

तो साम्यपना अंगीकार किया है। तू भी उसे अंगीकार कर, ऐसा कहते हैं। साम्यपना अर्थात् आत्मा, शुद्ध वीतरागमूर्ति है, उसकी दृष्टि करके ज्ञान तो जिसमें प्रधान है। साम्य अर्थात् चारित्र और धर्म में तो जिसमें दर्शन-ज्ञान की मुख्यता है। इसके बिना तो साम्य और चारित्र होता नहीं। तदुपरान्त जब तुझे दुःख से मुक्त होना हो तो साम्य अंगीकार कर। यह इसकी रीति और विधि है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

स्वरूप का वीतराग शुद्ध उपयोग अंगीकार किया है। उसके फलरूप से केवलज्ञान प्राप्त हुआ है, वह उत्पन्न हुआ है। वह उत्पन्न हुआ। हुआ है न! तो हुआ तो अब जाये या नहीं? आवे, वह जाये या नहीं? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह तो उत्पन्न हुआ। केवल (ज्ञान) तो नया उत्पन्न हुआ, तो उत्पन्न हो तो जाये भी सही। नहीं। यह उपजे, वह उपजे; वह जाये नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि **शुद्धोपयोग के प्रसाद से हुआ जो शुद्धात्मस्वभाव से उत्पाद...** वह पर्याय हुई। परन्तु वह पर्याय हुई क्षायिकभाव से हुई। **वह, पुनः उसरूप से प्रलय का अभाव होने से विनाशरहित है;...** वह पर्याय विनाशरहित है। समझ में आया? सिद्धपद की पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय अब नाश नहीं होती। **और (उस आत्मा के शुद्धोपयोग के प्रसाद से हुआ) जो अशुद्धात्मस्वभाव से विनाश है,...** लो! क्या कहते हैं? भगवान आत्मा समता के शुद्धस्वरूप दर्शन-ज्ञानसहित के वीतरागी परिणाम द्वारा जिसे अशुद्ध स्वभाव से विनाश हुआ, पहली संसार पर्याय, **अशुद्धात्मस्वभाव से विनाश...** अशुद्ध आत्मस्वभाव से विनाश। भाषा देखो! समझ में आया? वह अशुद्ध भी आत्मपर्याय थी। ऐसा 'स्वभाव' शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! क्या कहा?

शुद्धात्मस्वभाव से उत्पाद... यह पर्याय है, हुई वह। और **अशुद्धात्मस्वभाव से विनाश...** वह भी पर्याय थी। उसे भी अशुद्ध आत्मस्वभाव, ऐसा कहा है। क्योंकि स्वस्थ भवनं—उसमें था। मिथ्यात्व, राग-द्वेष, उदयभाव, संसारपर्याय उसमें थी, पर्याय उसमें थी। समझ में आया? वह शुद्ध उपयोग के प्रसाद से जो अशुद्ध आत्मस्वभाव जो था पर्याय में, उसका विनाश, **वह पुनः उत्पत्ति का अभाव होने से,...** नाश हुआ, वह हुआ, अब फिर से उत्पाद होगा नहीं। समझ में आया? प्रवचनसार की शैली वास्तविक तत्त्व को स्पष्ट करके पूर्णता की प्राप्ति का स्वरूप बताता है। आहाहा! ओहोहो!

कहते हैं, भगवान आत्मा अपना शुद्ध ध्रुव चैतन्य द्रव्यस्वभाव, गुणस्वभाव तो शाश्वत् है। उसे अवलम्बकर अन्तर्मुख का शुद्ध उपयोग प्रगट करके उसके प्रसाद से केवलज्ञान की उत्पत्ति हुई, वह विनाशरहित उत्पाद है और उसे शुद्ध उपयोग के प्रसाद से अशुद्ध आत्मस्वभाव (रूप) जो उदयभाव था, उसका नाश हुआ, वह उत्पादरहित है। वह नाश अब उत्पन्न होगा नहीं। समझ में आया? कहो, समझ में आता है या नहीं इसमें?

मुमुक्षु : ....खजाना है।...

पूज्य गुरुदेवश्री : खजाना है। हमारे सेठ कहते हैं। सुनानेवाले (मिले नहीं)। बात ऐसी है। त्रिकाली परमात्मा के घर की बात है, भाई! समझ में आया?

वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ, जिन्होंने एक समय में तीन काल—तीन लोक देखे, उनकी वाणी में जो स्वरूप आया, वह यह है। परन्तु क्या हो? घर में जाये नहीं, बाहर घूमा करे और यहाँ मिले नहीं, ऐसा कहते हैं। भाई! तेरे घर में सब है, भाई! तेरे खजाने में कमी नहीं है, प्रभु! तू तो आनन्द का कन्द है न! देखो न! दृष्टा, ज्ञाता, आनन्द, शान्ति, चारित्र, स्वच्छता, प्रभुता, उन सब शक्ति की अस्तिवाला तत्त्व तू है। वह तत्त्व है। शक्ति, शक्तिवान अर्थात् द्रव्य-गुण हो गये। अनन्त शक्तियों (रूप) स्वभाव है न! स्वभाव को क्षेत्र की विशालता की आवश्यकता नहीं। उसका स्वभाव है बेहद ज्ञान, दर्शन और शान्ति, आनन्द—ऐसे अनन्त स्वभाव को धरनेवाला स्वभाववान, उसका आश्रय करके जो शुद्ध पर्याय प्रगट हुई, वह धर्म। और वह शुद्ध उपयोगरूपी चारित्र की दशा प्रगट होने पर उसके फलरूप से केवलज्ञान हुआ। वह हुआ, सो हुआ। हुआ, वह जाये नहीं; यह गया, वह आवे नहीं। यह आया वह जाये नहीं और गया वह आवे नहीं, ऐसा कहते हैं। कहाँ गये सेठ? जुगराजजी! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो, क्या करे? यह तो वस्तुस्थिति ही ऐसी है न! उसमें दो और दो = चार जैसी बात है। उसमें कोई बहुत विशेष...

वस्तुस्थिति यह है, पदार्थ ऐसा है। जैसा भगवान ने कहा है, वैसा तुझे ख्याल में आना चाहिए। समझ में आया? कहते हैं, भाई! आहाहा! वह चीज़ तो लक्ष्मी आये

और जाये, निर्धनता आये और जाये, सधनता आये और जाये, रोग आये... यह साधक अवस्था भी किसी समय आये और जाये अज्ञानी को तो। परन्तु यह दशा आकर उत्पन्न हुई, वह हुई। समाप्त हो गया। अब जो गयी सो गयी। गयी वह आवे नहीं और हुई वह जाये नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा यह **अशुद्धात्मस्वभाव से विनाश...** भाषा तो देखो आचार्य की। आहाहा! पर्याय को अशुद्ध आत्मस्वभाव कहा, हों! पर्याय को। वह भी शुद्धात्मस्वभाव पर्याय को कहा है। शुद्धात्मस्वभाव उत्पाद वह पर्याय है, वह भी और अशुद्धस्वभाव, वह भी पर्याय है। शुद्धस्वभाव की पर्याय प्रगट हुई, अशुद्धस्वभाव की पर्याय नाश हुई। **वह पुनः उत्पत्ति का अभाव होने से, उत्पादरहित है। इससे (यह कहा है कि)...** यह कहेंगे अब, लो! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ११, बुधवार, दिनांक १८-०९-१९६८
गाथा - १७, १८, प्रवचन - १६

(प्रवचनसार) १७वीं गाथा चलती है। इसकी टीका थोड़ी हो गयी। आधी आयी देखो। यह क्या चलता है? कि आत्मा अपने स्वभाव का शुद्धपना जो त्रिकाल आनन्द और शुद्ध ध्रुव है, उसका आश्रय करके, वस्तु स्वभाव है अपना ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि, ऐसा पूर्ण स्वभाव है, उसके अन्तर सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र के परिणाम जो प्रगट करे, उसे साम्यभाव कहते हैं। उस साम्यभाव के फल में उसे मोक्ष प्राप्त होता है। समझ में आया?

मोक्ष अर्थात् पूर्ण शुद्धता। आत्मा वस्तु से एक समय की वर्तमान अवस्था के अतिरिक्त पूरा स्वरूप जो है उसका, वह तो महा अतीन्द्रिय महान पदार्थ है। यह इन्द्रियगम्य पदार्थ है, तो वह अतीन्द्रिय है। वह अन्तर में सम्यक् अनुभव करके पुण्य-पाप के राग विकल्प हैं, उसे भिन्न करके और शुद्ध चैतन्यद्रव्य ज्ञायक परमात्मा स्वयं स्वरूप है, उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता को प्रगट किया कि जो मोक्ष का मार्ग है, उससे उसे मोक्ष अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त होता है। कहो, समझ में आया? वह केवलज्ञान प्राप्त हुए परमात्मा उत्पन्न हुए, केवलज्ञानरूप से उत्पन्न हुई दशा। समझ में आया? परन्तु वह उत्पन्न हुई दशा विनाशरहित हुई अब। वह उत्पन्न हुई सो हुई, अब उसका विनाश नहीं (होगा)। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध उपयोग के प्रसाद से... पुण्य-पाप के विकल्प व्रतादि, वे विकल्प हैं, वह बन्ध का कारण है, वह कहीं आत्मा के मोक्ष का कारण नहीं है। समझ में आया? वह अपना आत्मा जो परमानन्द, उसका जो शुद्ध व्यापार, आचरण अन्तर्मुख होकर, उसके प्रसाद से प्राप्त हुई केवलज्ञानदशा उत्पन्न हुई, वह हुई, कहते हैं। वह हुई, वह अब जाये नहीं। हुई, वह विनाशरहित है और शुद्ध उपयोग के प्रसाद से, आया था न अन्दर? अशुद्ध आत्मस्वभाव का विनाश हुआ। रागादि भाव या उदयभाव जो था, वह शुद्ध उपयोग के प्रसाद से उसका नाश हुआ। वह नाश उत्पादरहित है अब। वह नाश हुआ, वह अब उत्पाद होगा नहीं। समझ में आया?

इससे (यह कहा है कि) उस आत्मा के सिद्धरूप से अविनाशीपन है। यह पाँचवीं लाईन है। इससे ऐसा कहा कि जो आत्मा सिद्धपद की पर्याय को प्राप्त हो, वह अविनाशी है। उसका अब नाश होगा नहीं। समझ में आया? कितने ही कहते हैं न कि भाई! परमात्मा हो, परन्तु फिर से और अवतार धारण करे, भक्तों का कष्ट मिटाने और विरोधियों का नाश करने (के लिये अवतार धारण करे)। यह नहीं, कहते हैं। यहाँ तो अशुद्ध... अशुद्ध जो पर्याय थी, वह विरोध था, उसका नाश किया और शुद्ध जो पर्याय पूर्ण थी, उसे प्रगट किया। समझ में आया? अब वह परमात्मदशा वापस बदलती नहीं।

इससे (यह कहा है कि) उस आत्मा के... देखो! यह चार गति में तो गति बदलती है एक गति में से दूसरी। यह गति हुई, सो हुई। फिर उसे परमानन्द का अनुभव सादि-अनन्तकाल रहे, वह शुद्ध उपयोग के फलरूप से है। समझ में आया? **इससे (यह कहा है कि) उस आत्मा के सिद्धरूप से अविनाशीपन है। ऐसा होने पर भी...** ऐसा होने पर भी **उस आत्मा को...** अर्थात् सिद्ध के आत्मा को, परमात्मा को भी **उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का समवाय विरोध को प्राप्त नहीं होता,...** देखो, पूरी वस्तु की स्थिति। सिद्ध में भी ध्रुवपना है, उत्पाद भी है, विनाश भी है। वह सिद्ध में एक समय में तीनों हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा होने पर भी... भगवान आत्मा को ध्रुवपना, उत्पाद और विनाश का एकपना विरोध को प्राप्त नहीं होता। **क्योंकि वह विनाशरहित उत्पाद के साथ,...** विनाशरहित उत्पाद के साथ। है न? पहले आ गया, उसकी बात कही। आत्मा में आत्मा से जो केवलज्ञान पर्याय प्रगट हुई, उस विनाशरहित उत्पाद के साथ, **उत्पादरहित विनाश के साथ...** जो विनाश हुआ, वह उत्पादरहित है अब। **और उन दोनों के आधारभूत द्रव्य के साथ...** दोनों का आधार ध्रुव द्रव्य के साथ **समवेत (तन्मयता से युक्त एकमेक) है।** सिद्ध का आत्मा है। समझ में आया? सिद्ध भगवान शुद्ध उपयोग के प्रसाद से प्राप्त हुई दशा, वह विनाशरहित है, अशुद्धता का नाश, वह उत्पादरहित है। ऐसा उसका अविनाशीपना होने पर भी, वह विनाश और उत्पाद और ध्रुवपना उसके एक समय में सम्भवित है। समझ में आया?

भावार्थ :- स्वयंभू सर्वज्ञ भगवान के... सिद्ध परमात्मा स्वयंभू स्वयं अपने से

प्रगट हुए। अन्दर स्वभाव जो भगवान आत्मा में सर्वज्ञ पूर्णानन्द, ऐसा जो उसका शाश्वत् असली स्वभाव, उसे अवलम्बकर स्वयं शुद्ध उपयोग प्राप्त करके और स्वयंभू हुए। अपने आप सर्वज्ञपद को प्राप्त हुए। वे स्वयंभू। दूसरा कोई ईश्वर स्वयंभू है और उसने बनाया, ऐसा नहीं है। समझ में आया? स्वयंभू भगवान आत्मा अपनी निर्मल पूर्ण शुद्ध आनन्द पर्याय को, केवलज्ञान पर्याय को प्रगट करता हुआ **स्वयंभू सर्वज्ञ भगवान के जो शुद्धात्म स्वभाव उत्पन्न हुआ,...** जो निर्मल परमात्मदशा, सिद्धदशा—अवस्था उत्पन्न हुई। सिद्ध एक अवस्था है, सिद्ध कोई गुण नहीं। समझ में आया? गुण है, वह त्रिकाल रहे; द्रव्य है, वह त्रिकाल रहे वस्तु; अवस्था, वह एक समय रहे। समझ में आया?

वे सिद्ध भगवान **शुद्धात्म स्वभाव उत्पन्न हुआ,...** पहले नहीं था, वह पर्याय में—अवस्था में उत्पन्न हुई परमात्मदशा। **वह कभी नष्ट नहीं होता, इसलिए उनके विनाशरहित उत्पाद है;...** विनाश उस दशा का नाश होकर कुछ होता है, उत्पन्न हुआ वह नाश होता है, वह है नहीं। विनाशरहित उत्पाद है। **और अनादि अविद्या जनित विभाव परिणाम...** देखो! अनादि, हों! यह रागादि उदयभाव अनादि था न! **अनादि अविद्या जनित विभाव परिणाम...** विकारपरिणाम, दोषपरिणाम **एक बार सर्वथा नाश को प्राप्त होने के बाद...** भगवान आत्मा अपने अप्रतिहतभाव को अवलम्बकर एकबार भी अशुद्धता का नाश हो, (वह) **फिर कभी उत्पन्न नहीं होते,...** वे रागादि या उदयभाव फिर से आते नहीं। **इसलिए उनके उत्पादरहित विनाश है।** विनाश हुआ अवश्य अशुद्धता का, परन्तु फिर से उपजे, ऐसा है नहीं। लो! वे कहते हैं न, उन्हें कर्म नहीं है, इसलिए उन्हें विकार उत्पन्न नहीं होता, ऐसा कहते हैं। यहाँ कहते हैं कि विकार का नाश किया, इसलिए अब विकार उत्पन्न नहीं होता। समझ में आया? यहाँ हमारे तो भाई! कर्म है, इसलिए विकार होता है। उन्हें कर्म नहीं, इसलिए विकार होता नहीं। एकदम झूठी बात है। समझ में आया? तत्त्व की बिल्कुल उल्टी दृष्टि है उसकी। यहाँ विकार करता है जीव स्वयं स्वतन्त्र, तब कर्म को निमित्त कहा जाता है। वहाँ विकार होने की योग्यता नहीं, इसलिए विकार का नाश हुआ, इससे विकार नया होता नहीं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं न कि भाई! हमारे देखो विकार होता है, कर्म का उदय आवे

(इसलिए विकार होता है)। मूढ़ है, तुझे कुछ भान नहीं। विकार तू करे और कर्म के ऊपर डाले। कर्म तो परवस्तु है। कर्म तो जड़ है, मिट्टी-धूल है और विकार का उत्पाद, विकार की उत्पत्ति तो तुझमें, तेरे कारण से, तेरी दशा में होती है। समझ में आया? और यह कहे कि कर्म हो तो विकार होता है। सिद्ध को कर्म नहीं तो विकार होता नहीं। बात झूठी है, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया? ईडर में बड़ा प्रश्न आया था एकबार रात्रि में। सिद्ध को विकार क्यों नहीं होता? खबर है न चेतनजी? वह थे न तुम्हारे विकासचन्दजी। कर्म नहीं, इसलिए विकार नहीं, ऐसा बोले सभा में। बेचारे लोगों को खबर नहीं होती। सम्प्रदाय के लोग अन्ध जैसे कुछ खबर नहीं होती। वाडा में पड़े हैं।

मुमुक्षु : वाडा में तो बकरे होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बकरे जैसे ही हैं, क्या है वहाँ? भेड़ जैसे, कुछ भान नहीं होता। क्या वीतराग कहते हैं? मार्ग क्या है? यह हम जैन हैं, हम भगवान को माननेवाले। क्या परन्तु भगवान को मानता है? भगवान है कौन तू, तुझे खबर है? कर्म नहीं थे इसलिए विकार नहीं वहाँ। ऐसी आवाज की रात्रिचर्चा में? यहाँ कर्म है, इसलिए यहाँ विकार है। भाई! कर्म तो जड़ परवस्तु है, वह तो अजीवतत्त्व है, उस अजीव की उत्पत्ति-उत्पाद अजीव में है और तेरा विकार का उत्पाद तुझमें है। वह तेरा विकार का उत्पाद अजीव के कारण हो तो उत्पाद की स्वयं की पर्याय कहाँ गयी? समझ में आया?

मुमुक्षु : मानते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानते नहीं। परन्तु भान बिना तुम सब इकट्ठे थे न उसमें, सेठ! यह कहते हैं।

इस प्रकार यहाँ यह कहा है कि वे सिद्धरूप से अविनाशी है। इस प्रकार अविनाशी होने पर भी वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त हैं;... ले! गजब बात भाई! अभी इसने सिद्ध भगवान को पहिचाना नहीं। सिद्ध भगवान णमो सिद्धाणं के अर्थ की खबर नहीं होती। णमो अरिहंताणं। नमस्कार करते हैं जिन्होंने कर्मरूपी शत्रुओं को जीता। वे कर्म तो जड़ हैं, उसे आत्मा जीतता होगा? तो क्या अर्थ किया अभी तक? णमो

अरिहंताणं। नमस्कार हो अरि—कर्मरूपी शत्रु को नष्ट करनेवाले। अरे! सुन न! कर्म तो जड़ है। जड़ को घात करे आत्मा?

मुमुक्षु : शास्त्र में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह लिखा है किस नय से? वह तो स्वयं अपने स्वभाव के भान द्वारा अशुद्धतारूपी भावकर्म शत्रु का नाश हुआ और कर्म उसके कारण से नाश हुए निमित्त से, ऐसा कहा गया है। जड़ को आत्मा नाश करे? जड़ का स्वामी है आत्मा? समझ में आया? आत्मा कर्म को बाँधे? रजकणों को बाँधे? आत्मा द्रव्य जड़ को बाँधे? अपने भान को भूले हुए अज्ञानी राग-द्वेष को बाँधे। मिथ्यात्व को बाँधे अर्थात् उसे करे। तब कर्म उसके कारण से बँधते हैं। और आत्मा के भान द्वारा अज्ञान और राग-द्वेष को टाले, तब कर्म उसके कारण से टलते हैं। (कर्म) जड़ है। वरना एक-दूसरे का स्वामी हो जाये। समझ में आया? समझ में आता है?

मुमुक्षु : अरिहन्त ने चार कर्म किये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कर्म करे? वह बात यह है। वह तो अजीव है। अजीव परमाणु है या नहीं? तो परमाणु में कर्म की उत्पत्ति है, वह तो अजीव की उत्पत्ति है। उसका उत्पाद आत्मा करे? और उस कर्म की पर्याय का नाश हो, वह तो कर्म में उसमें होता है। आत्मा उसका नाश करता है? वह भी उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला तत्त्व है। यह बड़ी गड़बड़ एक-एक शब्द में। पहले अर्थ में ही पूरा अन्तर है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि सिद्ध भगवान भी स्वयं के कारण से उपजे, स्वयं के कारण से पूर्व का व्यय हो और ध्रुव (रहे), ऐसा उसका एक समय में स्वयं के कारण से स्वरूप है। कर्म का अभाव हुआ, इसलिए सिद्ध हुए, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। कर्म का सद्भाव था तो अशुद्धता थी, ऐसा नहीं है। अशुद्धता अपने में थी, वह शुद्धस्वभाव के उपादान के आश्रय से अशुद्धता टली, कर्म उसके कारण से टला। वह तो निमित्त सम्बन्ध है, कर्म तो जड़ है। ऐसा वापस बोले (कि) अजीव को जीव माने तो मिथ्यात्व। पच्चीस मिथ्यात्व आते हैं न भाई? अजीव को जीव माने... वापस माने अजीव का आत्मा करता है। तो यह क्या हुआ तेरा?

मुमुक्षु : परन्तु उसमें तो कहाँ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अजीव को जीव माने तो क्या अर्थ हुआ? अजीव की अवस्था आत्मा करे तो अजीव को जीव माना। कहो, भीखाभाई! क्या है? यह सब सीखा था।

इस प्रकार अविनाशी होने पर भी वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त हैं; क्योंकि शुद्ध पर्याय की अपेक्षा से उनके उत्पाद है,... अपनी पर्याय की अपेक्षा से उत्पाद है, ऐसा सिद्ध किया है। कर्म का अभाव हुआ, इसलिए केवलज्ञान का उत्पाद हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया? **शुद्ध पर्याय की अपेक्षा से उनके उत्पाद है,...** भगवान आत्मा अपने सन्मुख के शुद्ध उपयोग के प्रसाद से जो केवलज्ञान की उत्पत्ति हुई, वह शुद्ध पर्याय का उत्पाद स्वयं से हुआ। **उनके उत्पाद है, अशुद्ध पर्याय की अपेक्षा से व्यय है...** समझ में आया? कर्म के कारण व्यय है, इसलिए अशुद्ध पर्याय व्यय हुई, ऐसा नहीं है। अशुद्ध अवस्था जो थी, उसका शुद्ध उपादान के व्यापार से व्यय हुआ, नाश हुआ। कर्म तो उसके कारण से नाश हुए। वे तो जड़ हैं। कर्म का आत्मा कर्ता-हर्ता नहीं। जड़ का कर्ता-हर्ता होगा? समझ में आया? **और उन दोनों के आधारभूत आत्मत्व की अपेक्षा से ध्रौव्य है।** लो! सिद्ध में भी तीन हैं। उत्पाद, व्यय और ध्रुव। न्यालभाई! सिद्ध भी उपजते होंगे? यह तो पहला बोल रखा समयसार में। '**उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्**' पहला ही आया समयसार में। जीवो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अब कहते हैं, देखो!

अब उन सिद्ध के उत्पाद-व्यय सिद्ध करके, अब प्रत्येक पदार्थ में उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभाव है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - १८

अब, उत्पाद आदि तीनों (उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य) सर्व द्रव्यों के साधारण है,... अर्थात् ? प्रत्येक वस्तु में वह होते हैं। एक-एक परमाणु में, आत्मा में, निगोद के जीव में, स्कन्ध में और धर्मास्ति आदि भगवान ने छह द्रव्य देखे, परमात्मा ने—तीर्थंकर ने छह वस्तुएँ देखी, उन छह वस्तुओं में प्रत्येक में समय-समय में उत्पाद, पूर्व का व्यय, नयी अवस्था उत्पन्न (होना) और ध्रुव (रहना), प्रत्येक वस्तु का स्वभाव साधारण धर्म है। समझ में आया ? **सर्व द्रव्यों को...** अर्थात् परमाणु को, आत्मा को, निगोद को और सर्व को, ऐसा। **सर्व द्रव्यों के साधारण है,...** अर्थात् क्या ? जगत के जितने पदार्थ भगवान ने अनन्त देखे, भगवान केवलज्ञानी ने अनन्त पदार्थ देखे। उस प्रत्येक पदार्थ का उत्पाद-व्यय-ध्रुव, यह साधारण अपना स्वतः स्वभाव है। पर के कारण से उपजे, पर के कारण से विनाश हो, ऐसा उसमें है नहीं। समझ में आया ? आहाहा! क्या कहते हैं यह! सुना न हो। हम इन सबको उपजाते हैं, हम इनका नाश करते हैं। किसे उपजावे ? सुन न! समझ में आया ? प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में प्रत्येक में नयी-नयी अवस्था उपजे, पुरानी अवस्था का उसी समय में व्यय—अभाव हो, ध्रुवपने रहे, वह तो छहों द्रव्यों का अपना स्वतः स्वयंसिद्ध स्वरूप है। समझ में आया ?

सर्व द्रव्यों के साधारण है, इसलिए शुद्धआत्मा के भी... ऐसा। **(केवली भगवान और सिद्ध भगवान) के भी...** अरिहन्त भगवान के आत्मा को, केवलज्ञानी परमात्मा को और सिद्ध भगवान को—उन्हें **भी अवश्यम्भावी है,...** अवश्य होनेवाला—अपरिहार्य, उन्हें भी है। क्या कहते हैं यह ? प्रत्येक परमाणु अनन्त है, अनन्त आत्मा हैं उसमें, असंख्य कालाणु हैं उसमें, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और आकाश—ऐसे छह पदार्थ है जाति से, संख्या से अनन्त। वह प्रत्येक पदार्थ समय-समय में उत्पाद, व्यय और ध्रुव साधारण प्रत्येक का स्वभाव है। पर के कारण से उसमें अवस्था उपजे, ऐसा उसमें है नहीं। समझ में आया ? आत्मा में राग की उत्पत्ति हो, वह कहते हैं कि उसका गुण का उस काल में उसके उत्पाद का उसका स्वभाव है। पर के कारण से उत्पाद हो,

ऐसा है नहीं। समझ में आया? इसी प्रकार सम्यग्दर्शन का उत्पाद हो, सम्यग्दर्शन अर्थात् शुद्ध चैतन्यमूर्ति अखण्ड आनन्दकन्द मैं हूँ, ऐसी उसकी प्रतीति की उत्पत्ति हो, वह अपने उत्पाद के कारण से है, पर के कारण से वह नहीं। दर्शनमोह टला, इसलिए उत्पाद (हुआ) तो उत्पाद तो तेरा स्वभाव है। समझ में आया? खबर नहीं होती एक भी तत्त्व की और हम धर्म करते हैं। धूल में भी धर्म नहीं। पुण्य भी अच्छा नहीं तेरा ठिकाना (बिना का)। शोभालालजी!

मुमुक्षु : उसमें भी घोटाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें भी घोटाला है।

यहाँ तो कहते हैं, प्रत्येक पदार्थ को जब, जितने भगवान ने देखे अनन्त पदार्थ, शुद्ध या अशुद्ध, शुद्ध सिद्ध, केवली शुद्ध और अशुद्ध निगोदादि या अनन्त परमाणु या अनन्त स्कन्ध, यह रजकण का पिण्ड यह—इन प्रत्येक में द्रव्यों को साधारण होने से। क्या? उत्पाद-व्यय-ध्रुव। इस रजकण में भी उसके कारण से जो यह हिलता है, वह उसके कारण से। यह हिलने की अवस्था उत्पन्न हुई, पूर्व की अवस्था व्यय हुई, रजकण ध्रुवरूप से रहे। ऐसा उसका परमाणु का स्वयं का स्वभाव है। आत्मा के कारण से चलते हैं, ऐसा तीन काल में नहीं है। कहो, समझ में आया? पैर को देखकर चलना, पैर देखकर रखना। कहते हैं कि पैर का एक-एक रजकण उसका साधारण स्वभाव है कि समय-समय में अवस्था उत्पन्न हो, पूर्व की व्यय हो और ध्रुव (रहे) वह आत्मा की इच्छा के कारण से नहीं। इच्छा के कारण से पैर यहाँ पड़ें या पैर यहाँ पड़ें, इस बात में कुछ दम नहीं है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह तो वीतराग का तत्त्व है। मूल वीतराग क्या, जगत का तत्त्व (कहते हैं)। सर्वज्ञ परमात्मा ने तो जगत के तत्त्व देखे हैं, ऐसे देखे, वैसे कहे। कुछ किया नहीं। किसी तत्त्व को भगवान ने किया नहीं। वह तो है, कोई करता नहीं। यहाँ तो इतना सिद्ध करते हैं... प्रवचनसार है यह, ज्ञान अधिकार। तो ज्ञान ऐसा जाने कि प्रत्येक पदार्थ अपनी वर्तमान अवस्था से उपजे, पूर्व की अवस्था से व्यय हो और ध्रुव (रहना), वह पदार्थ का स्वतः स्वयंसिद्ध स्वभाव है। जुगराजजी! आहाहा!

मुमुक्षु : यह बैठ जाये तो मुक्ति का फैसला हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुक्ति का पंथ ही यह है। समझ में आया?

पर की पर्याय पर से उपजती है, मेरी पर्याय मुझसे उपजती है। मेरी पर्याय मुझसे उपजती है, उसे देखना रहा द्रव्य में। यह वाणी के कारण पर्याय उपजती नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सेठ! वाणी के कारण अन्दर ज्ञान की पर्याय उपजती नहीं। क्योंकि उसके अनन्त गुण हैं, आत्मा वस्तु, उसके अनन्त गुण। उस प्रत्येक गुण की एक समय में उत्पाद पर्याय होती है, ऐसा तो उसका स्वभाव ही है। वह पर के कारण से हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! गजब बात! देखो, एक व्यक्ति ने आम का ऐसा ... होवे बालक पहला हो न बालक। केरी—आम-आम। केरी, आम—केरी, ऐसा कहे तब उसे आम का ज्ञान होता है। सही है या नहीं? इसके बिना होगा? वह कहते हैं यहाँ कि नहीं। उसके ज्ञानगुण की उस समय की उत्पाद की पर्याय में ज्ञान हुआ है, शब्द के कारण नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... माँगना या नहीं माँगना?

पूज्य गुरुदेवश्री : माँगे कौन? वह तो परमाणु की पर्याय जड़ है। परमाणु की अवस्था है भाषा हो वह। उसे आत्मा करता है? भाषा आत्मा करे? वह तो जड़ है। यह कहा न जड़ में उत्पाद-व्यय-ध्रुव है। प्रत्येक द्रव्य में है। यह परमाणुओं में जो सामान्य परमाणु भाषारूप से है शब्दरूप से, उसकी यह भाषारूप पर्याय होती है। शब्द की पर्याय का व्यय होता है, भाषारूप से उत्पन्न होती है, परमाणु कायम रहते हैं। यह उत्पाद, व्यय और ध्रुव प्रत्येक पदार्थ का साधारण अर्थात् सबका यह स्वभाव है। समझ में आया? आहाहा! यह तो अभी जहाँ-तहाँ हमने ऐसा किया, हमने ऐसा किया। यहाँ तो बीज डालते हैं। फिर आगे करते निकाल डालेंगे। किसे करे? सुन न! यह जगत के तत्त्व उनके उत्पाद-व्यय-ध्रुववाले नहीं? उनकी अवस्था को उपजानेवाले नहीं कि उनकी अवस्था को तू उपजा दे? समझ में आया? हमने ऐसे मन्दिर बँधाये, इतने पैसे डाले, इतने पैसे दान में दिये। तूने क्या किया? तुझमें विकल्प का उत्पाद हुआ। वह जड़ की पर्याय का उत्पाद उसके कारण से हुआ है। समझ में आया? आहाहा! जगत को तत्त्व की वस्तु की खबर नहीं होती। जिन्दगी ऐसी की ऐसी चली गयी ५०-५०, ६०-६० वर्ष। क्या चीज़ है? वीतराग क्या कहते हैं और वस्तु क्या है? खबर बिना अज्ञान

में कहता है कि हमने ऐसा किया, हमने उसका ऐसा किया। क्या करे धूल ? सुन न! कोई भी पदार्थ अपनी उत्पाद अवस्थारहित है कि तू उसे करे ? और तेरी अवस्था के उत्पादरहित तू है कि तेरी अवस्था पर से हो ? सत्य वस्तु ऐसी है। ऐसी मिथ्या श्रद्धा मिट जाये। समझ में आया ?

हम समाज सुधार करते हैं, हम ऐसा करते हैं, मण्डल बाँधा है, मण्डल बाँधकर ऐसा प्रचार करेंगे। तू कौन ? तू कौन ? तू आत्मा। आत्मा में तेरी पर्याय का उत्पाद तुझसे होता है या पर की पर्याय तुझसे होती है ? समझ में आया ? जीवदया मण्डली। अमरचन्दभाई ! है न सब संघ, फलाना। अपने अब ऐसा प्रचार करना, संघ बाँधकर ऐसा करना। अरे भगवान ! तू कौन है, भाई ? तू और वे दोनों भिन्न हैं तो प्रत्येक पदार्थ का जब समय-समय अवस्था की उत्पत्तिवाला स्वभाव है, तो उस अवस्था को तू कर दे, यह कहाँ से आया ? समझ में आया ?

सर्व द्रव्यों के साधारण है,... भगवान केवली को भी। क्योंकि द्रव्य का स्वरूप ही ऐसा होने से, ऐसा कहते हैं। परमात्मा केवली को, अरिहन्त को भी और सिद्ध भगवान को **भी अवश्यंभावी...** उत्पाद-व्यय-ध्रुव है, ऐसा कहते हैं। है न ? यह १८ (गाथा)।

उप्पादो य विणासो विज्जदि सव्वस्स अट्ठजादस्स।
पज्जाएण दु केणवि अट्ठो खलु होदि सब्भूदो॥१८॥

व्यय एवं उत्पाद-ध्रौव्य, कोई पर्याय अपेक्षा से -
सर्व पदार्थों में होते हैं, अतः अर्थ सद्भूत कहे॥१८॥

यह मूल श्लोक है, ऊपर उसका यह गुजराती (का हिन्दी अनुवाद) है। इसका अन्वयार्थ पहले लेते हैं। **किसी पर्याय से उत्पाद...** प्रत्येक वस्तु परमाणु और आत्मा **किसी पर्याय से उत्पाद और किसी पर्याय से...** उसकी पूर्व की अवस्था का **विनाश सर्व पदार्थमात्र के होता है;...** सर्व पदार्थमात्र को होता है। कैसे ? **'केन अपि पर्यायेण' और किसी पर्याय से पदार्थ वास्तव में ध्रुव है।** पर्याय से ऐसा। ध्रुवपना अंश से है, अंश से उत्पाद है, अंश से विनाश है और अंश से ध्रुव है। प्रत्येक वस्तु अनादि-अनन्त ऐसी टिक रही है।

दृष्टान्त देते हैं। **जैसे उत्तम स्वर्ण की...** भाषा वापस उत्तम सुवर्ण—सोना, जिसका गहना अपने आप शीघ्र हो। **बाजूबन्दरूप पर्याय से उत्पत्ति दिखाई देती है,...** क्या कहते हैं? उत्तम सोना हो उत्कृष्ट चिकना। बाजुबन्ध कड़ा-कड़ा। कड़ा की अवस्था से उत्पत्ति दिखाई (देती है)। उस सोना में से कड़ा हो, वह उत्पत्ति सोना से होती है, सोनी से नहीं। हथौड़ा की पर्याय हथौड़ा में उत्पन्न होती है। हथौड़ा समझते हो? क्या कहते हैं? वह हथौड़ा। वे रजकण हैं या नहीं? परमाणु है हथौड़ा। वह रजकण एक-एक परमाणु में अनन्त रंग, गन्ध आदि गुण हैं और उसकी अवस्था का उत्पाद भी परमाणु में उसके कारण से है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। आधार किसे? क्या कहे? ऐरण। ऐरण कहा था न? समझ में आया? भाई! वस्तु जहाँ सत् है और सत् है, वह उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् है। वस्तु सत् है। है, उसका कोई कर्ता-हर्ता नहीं। और है तो उसके तीन अंश सत् हैं। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। और सत्, वह द्रव्य का लक्षण है। यह तो पूरा वीतराग का मार्ग नहीं, परन्तु वस्तु का स्वभाव ऐसा है। समझ में आया?

उत्तम स्वर्ण की बाजूबन्दरूप पर्याय से उत्पत्ति दिखाई देती है,... ऐसा कहा देखा! बाजुबन्ध पर्याय से सोना पर्याय में उत्पन्न होता है, ऐसा देखने में आता है। सोनी से होता है, ऐसा देखने में नहीं आता। ऐसा कहते हैं देखो! ऐई! चिमनभाई! क्या कहते हैं? ऐसा देखने में आता है। सोना, वह कड़ारूप होता है। कड़ा की बाजुबन्ध अवस्था। सोना उसे बाजुबन्ध की पर्यायरूप उपजता है, ऐसा देखने में आता है, ऐसा कहा। समझ में आया? **स्वर्ण की बाजूबन्दरूप पर्याय से...** अवस्था से **उत्पत्ति दिखाई देती है,...** आहाहा! कितना सिद्धान्त सिद्ध किया है! वह कहे कि सोना का जो कड़ा हुआ, वह सोनी से हुआ, ऐरण के घड़कर हुआ, हथौड़ा लगा उससे हुआ। बिल्कुल झूठ बात है, कहते हैं। तुझे तत्त्व की खबर नहीं। मिथ्यादृष्टि है। दृष्टि में मिथ्यात्व है, इसलिए जो वस्तु का स्वरूप (है, वैसा देखता नहीं)। यहाँ ज्ञान का अधिकार है न! जैसा होता है, वैसा है, वैसा ज्ञान जानता है। ज्ञान ऐसा जाने कि सोना से यह बाजूबन्ध पर्याय होती है,

यह बराबर है। परन्तु ज्ञान ऐसा जाने कि हथौड़ा से होती है, वह ज्ञान खोटा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? गजब! पागल को तो पागल जैसा लगे, ऐसा है, हों! ऐई! न्यालभाई! दुनिया पागल। ज्ञानी की बात को पागल (कहे)। वह कहे, यह पागल जैसा क्या कहते हैं? एक व्यक्ति कहता था कि इसे भेजो हॉस्पिटल में। सोनगढ़वालों को हॉस्पिटल में भेजो। ऐई! कहे, किसी का कुछ कर सकता नहीं। यहाँ कर सकते हैं प्रत्यक्ष और (कहते हैं कि) कर सकते नहीं। अरे! सुन न मूर्ख! तेरे अभिमान में तुझे भान नहीं। आहाहा! समझ में आया? एक बात आयी थी पहले कि इन लोगों को भेजो हॉस्पिटल में। ये पागल हैं। भगवान को कहे पागल। भगवान ऐसा कहते हैं। द्रव्य को कह पागल। द्रव्य ऐसा होता है अपनी पर्याय से उपजता है।

क्या कहते हैं? **बाजूबन्दरूप पर्याय से उत्पत्ति...** सुवर्ण को **दिखाई देती है,...** ऐसा कहा है। **और पूर्व अवस्थारूप से वर्तनेवाली अँगूठी...** अँगूठी थी पहली वींटी—अँगूठी। वह अँगूठी पूर्व की अवस्था जो थी, उसका व्यय हुआ, बाजुबन्धरूप से उत्पन्न हुआ, वह सोना स्वयं उत्पन्न होकर व्यय हुआ, स्वयं के कारण से है। समझ में आया? आहाहा! सत् का स्वरूप ही ऐसा है न! उत्पाद-व्यय-ध्रुव, वह तो प्रत्येक पदार्थ का स्वयंसिद्ध स्वभाव है न! उसे—दूसरे को क्या तू उपजावे? तो वह उत्पादरहित है, उत्पादरहित है कि उसे तू उत्पाद करे? समझ में आया? **पूर्व अवस्थारूप से वर्तनेवाली अँगूठी इत्यादिक पर्याय से विनाश देखा जाता है...** देखो! यह अँगूठी इत्यादि पर्याय से विनाश उत्तम सुवर्ण को, ऐसा लेना। उत्तम सुवर्ण को, पूर्व अवस्थारूप से वर्तती अँगूठी आदि से विनाश, वह सुवर्ण के कारण से देखने में आता है। उस अँगूठी का व्यय हथौड़ा पड़ा इसलिए हुआ, ऐसा देखने में आता नहीं। अमरचन्दभाई! आहाहा! समझ में आया?

देखो, यह हाथ है, यह रजकण का पिण्ड है हाथ। वह ऐसे होता है। कहते हैं कि पहली अवस्था का व्यय, इस अवस्था का उत्पाद और परमाणु का ध्रुव (पना), वह स्वयं से होता है, ऐसा देखने में आता है। आत्मा से ऐसा होता है, यह मूढ़ माननेवाले हैं। गजब बात, भाई! कहो, बड़े पर्वत के पर्वत तोड़े, रेल का मार्ग निकाले, पर्वत तोड़े...।

मुमुक्षु : विशाल नदियाँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : नदियों को मोड़े। क्या कहलाता है? बाँध। बाँध-बाँध। सुन न अब। बाँध अर्थात् क्या और तू अर्थात् कौन? वह तो रजकणों की पर्याय है, उस-उस काल की उस काल में उत्पन्न होती (पर्याय है)। उसके उत्पाद से वह उत्पन्न हुई, उसकी पूर्व की अवस्था से वह व्यय हुई, ध्रुवपने वह रहा है। तेरे कारण से वहाँ उत्पाद हुआ है?

मुमुक्षु : इंजीनियर बिना हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : इंजीनियर रहा उसके घर में। ऐई! रामजीभाई बिना वहाँ दलील की कुछ? कोर्ट में दलील... दलील जड़ ने की। रामजीभाई का आत्मा पड़ा वहाँ अन्दर? क्या जड़ की अवस्था आत्मा करे? माने कि मैं ऐसा करता हूँ। जादवजीभाई! यह भारी बातें भाई!

परमेश्वर जैन वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान (वर्तता है), उन्होंने देखे हुए तत्त्व और प्रत्येक तत्त्व अपनी अवस्था से उपजे, ऐसा भगवान ने देखा और यहाँ आचार्य कहते हैं कि हमको देखने में आता है। ऐसा यहाँ कहते हैं। तुझे देखने में आवे कि पर से होगा? यह तेरी दृष्टि अन्धी कहाँ से लाया ऐसी? भगवानजीभाई! यह बड़े अब थाणे में कारखाना डाला। पोपटभाई का कारखाना, भगवानजीभाई का कारखाना। दोनों का आग्रह आया है थाणे का। वहाँ है न बड़ा पोपटभाई का है थाणे में। मेरे यहाँ महाराज जीमे। भगवानजीभाई की पहली प्रार्थना हो गयी है, कहे अब। क्या हो, वह अगल बात है। पोपटभाई गये न? वह वहाँ उनका है। अभी क्या अभी तो बहुत महीने हैं। किस जगह कौन सी पर्याय उपजे, यह कहीं किसी के अधिकार की बात है आत्मा की? आहाहा! अरे! तत्त्व, वह तत्त्व। भगवान! तुझे खबर नहीं, भाई! एक-एक रजकण की पर्याय—अवस्था उस समय में उत्पन्न हो उससे, ऐसा देखने में आता है। उसकी पूर्व की अवस्था नाश हो, वह उससे, (ऐसा) देखने में आता है। है? आहाहा!

और सोना **पीलापन इत्यादि पर्याय से दोनों में उत्पत्ति-विनाश को प्राप्त न होने**

से ध्रौव्यत्व दिखाई देता है। सोना का पीलापन और चिकनापन शाश्वत् है, उसमें कुछ उपजना-विनशना है नहीं। पीलापन और चिकनापन वह ध्रुव है और अँगूठीरूप से नाश है, बाजुबन्धरूप से उत्पाद है, पीलापन-चिकनापनरूप से ध्रुव है। आहाहा! समझ में आया? **उत्पत्ति-विनाश नहीं...** पीलेपन और चिकनेपन की उत्पत्ति और विनाश है? पीलापन-चिकनापन तो उसका शाश्वत् स्वभाव है सोना का। ध्रुव। पीलापन-चिकनापन तो शाश्वत् ध्रुव स्वभाव है। वह ध्रुवस्वभाव उपजता और विनशता है? समझ में आया?

इस प्रकार सर्व द्रव्यों के... यह तो दृष्टान्त कहा। सोना का दृष्टान्त दिया। लोगों को ख्याल होता है न अँगूठी टूटकर कड़ा बनावे, यह करे अधिक सोना डालकर फिर। भाई! अँगूठी निकाल दो, इसकी अपेक्षा कड़ा बनाओ, फलाना बनाओ। कहते हैं कि जिस प्रकार उत्तम सुवर्ण की वर्तमान कड़ा की अवस्थारूप से वह सोना उत्पन्न हुआ है, अँगूठी की अवस्था से सोना स्वयं व्यय को प्राप्त हुआ है और पीलापन और चिकनाई में उत्पाद-व्यय रहित रहा है। वह एक समय में अपने में उत्पाद, व्यय और ध्रुव है। कहो, बराबर है? यह समझ में आये ऐसी बात है। यह कहीं बहुत ऐसी (कठिन) नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्धान्त अर्थात्? यह निर्णय इसे करना चाहिए। सिद्धान्त का अर्थ यह सत्य है, उस सत्य का निर्णय उसे करना चाहिए। उसके लिये तो यह बात चलती है। किसलिए चलती है यह?

मुमुक्षु : निर्णय करने के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे निर्णय करने के लिये है। निर्णय कर। परपदार्थ की अवस्था का उत्पाद उससे उसका स्वभाव है। तेरे उत्पाद अनन्त गुण की पर्याय का उत्पाद तेरा स्वभाव है। पर के कारण तुझमें नहीं और तेरे कारण पर में नहीं। अभिमान करता हो कि मैं पर को ऐसा कर दूँ। छोड़ दे। मिथ्याश्रद्धा है। समझ में आया? जैन साधु होकर भी ऐसा कहे कि हम यह शरीर की पर्याय को रखते हैं, शरीर को ऐसा रखते हैं, दूसरे की दया पाल सकते हैं। मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टि है, अज्ञानी है, अधर्म को सेवन करनेवाला है। आहाहा! कान्तिभाई!

कहो, पुत्र तो उपजावे सही या नहीं उसका बापू? फिर पुत्र उपजे, पश्चात् उसे रख सकता है या नहीं? शिक्षा दे सकता है या नहीं प्रत्यक्ष देकर? यह रामजीभाई ने नहीं दिया सुमनभाई को वहाँ? अमेरिका में पढ़ाया और फिर कितने पैसे खर्च किये। धमाल। परन्तु तुम्हारे चिरंजीवी को तो किया होगा या नहीं तुमने हीराभाई को तो। पहले तेजहीन जैसा लगता था। यह कहे, यह मुझसे तो तेजहीन लगता है। ऐसा लगता था इसे।

यहाँ तो कहते हैं कि यह आत्मा है या नहीं दूसरा? उस आत्मा में अनन्त गुण हैं या नहीं? उन गुण की वर्तमान अवस्था उत्पाद बिना गुण रहे? और पूर्व की अवस्था व्यय बिना गुण रहे? और अपने ध्रुव बिना वह टिका रहे? स्वयं के कारण से है। आहाहा! समझ में आया? देखकर शरीर को चलना। शास्त्र में ऐसा आवे, लो! साढ़े तीन हाथ। क्या कहलाता है? धुरी प्रमाण नजर रखकर साधु को चलना चाहिए। लो! इसका अर्थ यह है कि उसे राग का प्रमाद नहीं करना इतना। बाकी चलने की क्रिया आत्मा कर सके, यह तीन काल में है नहीं। शास्त्र में ऐसा आवे, लो! धुरी प्रमाण नजर रखना और जहाँ जीव देखे वहाँ पैर ऊँचा रखना, अन्त में पैर ऐसा न रहे तो ऐसा आड़ा करना तो बीच में जीव हो वे बच जाये। यहाँ कहते हैं कि एक रजकण की अवस्था का उत्पाद उससे होता है, वह आत्मा की इच्छा से होता नहीं। आहाहा!

उसी प्रकार... यह सोना के दृष्टान्त से। **सर्व द्रव्यों के किसी पर्याय से उत्पाद, किसी पर्याय से विनाश और किसी पर्याय से ध्रौव्य होता है, ऐसा जानना चाहिए।** प्रत्येक द्रव्य में ऐसा है। समय-समय में ऐसा हो रहा है। समझ में आया? यह मोटर की जो पर्याय है रजकण की, वह उसके कारण से ऐसे चलती है, ऐसा कहते हैं। पेट्रोल के कारण से नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। इसमें तो बड़ा विवाद उठा है। वस्तुविज्ञानसार। दस हजार प्रकाशित किये थे न, दस हजार। पाँच हजार हिन्दी-गुजराती। हो गया। फिर हिन्दी यहाँ प्रकाशित किये। मोटर का एक-एक रजकण पहिया का, टायर का वह अपनी वर्तमान अवस्था से उपजे, पूर्व की अवस्था से व्यय हो, ध्रुवरूप से कायम जाति से रहे। दूसरे परमाणु से वहाँ गति करे, यह वस्तु में नहीं।

मुमुक्षु : दुनिया इस प्रकार से मानती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया अन्ध है। अन्ध तो अन्ध ही माने न! समझ में आया? यहाँ तो ज्ञाननेत्र की बात चलती है या नहीं? सम्यग्ज्ञान ऐसा मानता है, जानता है। मिथ्याज्ञान ऐसा मानता है कि उसकी पर्याय मैंने की, मेरी पर्याय उसने की। मिथ्याश्रद्धा—मिथ्यादृष्टि है। उसे जैन की श्रद्धा नहीं, वीतरागमार्ग की उसे श्रद्धा ही नहीं। समझ में आया? गजब! यह सब मल्हारगढ़ में किया था, वह किसने किया था तब यह? यह सब भाई करे, ऐसा कहते थे लोग। रास्ता साफ किया, ऐसा सब किया, ऐसा सब। डेढ़ सौ तो पुलिस, बन्दूकें, उसमें कितने दस-दस हजार लोगों की रसोई। बड़े-बड़े हांडे। क्या कहा जाता है हंडों को बड़े? तपेला। आहाहा! कितना इकट्ठा किया जंगल में। कहते हैं कि हराम कोई पर की पर्याय आत्मा करे तो। ऐसा कहते हैं। थे या नहीं तुम? दस-दस हजार लोग, लो! यह सवेरे फिर यह गोविन्दजी हैं न। नहीं था... ? वह बोलता था जल्दी सवेरे उठकर। इन गोविन्दजी को नहीं भेजा था? गोविन्दराम। दिल्ली भेजा था न अभी। वह सवेरे जल्दी उठकर साढ़े चार बजे बोले। दोपहर में व्याख्यान हुआ हो और यह उसमें बोलता लाउडस्पीकर में, रात्रि में वहाँ। खबर है। हमारा तम्बू तो आगे था न, वहाँ सुनाई देता था। वह गोविन्दराम नहीं? एक है। दिलली गये थे, वाँचने भेजा था। वह बोलते थे। ऐसा कहते हैं, ऐसा मार्ग है। जल्दी सवेरे पाँच बजे उठकर। कठिन बात, भाई! कहते हैं कि वह भुंगला (स्पीकर) की पर्याय जो होती है, वह रजकण के कारण से है। वह हवा के कारण से, मुख के कारण से नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : वहाँ कौन बोलता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बोले? रजकण की पर्याय होती है। आत्मा बोले? आत्मा में रजकण है? जेठालालभाई! रजकणों का जत्था है अनन्त परमाणु यह तो। आवाज, वह तो परमाणुओं की पर्याय है। वे परमाणु भी समय-समय में उत्पन्न होते हैं पर्याय से, पूर्व पर्याय से व्यय होते हैं, ध्रुवरूप से कायम रहते हैं। प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव है। आत्मा उसे करे? आत्मा में प्रविष्ट होते हैं? उन्हें स्पर्श करे तो करे? समझ में आया? गजब भाई! वीतराग का मार्ग पूरी दुनिया से अलग प्रकार का है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए सुनकर यह समझे, तब सुना कहलाये। यह बात किसलिए होती है?

भाई! तेरा आत्मा भिन्न है, उसके रजकण-रजकण भिन्न है। उनकी अवस्था का होना उनसे होता है। दाल-भात के परमाणु यहाँ आना, वह उसकी उत्पाद पर्याय के कारण से आते हैं। कच्चा चावल पक्का होता है, वह चावल के रजकण ही अपनी कच्ची पर्याय का व्यय करके, पक्की पर्याय से उपजते हैं और रजकणरूप से ध्रुव रहते हैं। वे पर से पकते हैं और कच्चापन जाता है, यह बात एकदम झूठी है।

मुमुक्षु : पानी डालना या नहीं डालना?

पूज्य गुरुदेवश्री : पानी कौन डाले? पानी के रजकण भिन्न हैं। पानी के रजकण में भी स्वयं के कारण से समय-समय में नयी अवस्था होती है। ठण्डी थी उसकी गर्म हो और ध्रुवरूप से कायम रहे। ठण्डी अवस्था का नाश होकर, गर्म अवस्था की उत्पत्ति पानी में और पानी रजकण है। अग्नि के कारण से पानी गर्म हुआ, यह बात एकदम झूठ है। मिथ्यादृष्टि ऐसा मानता है।

यह ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन अधिकार है या नहीं? सम्यग्ज्ञान जैसा हो, वैसा जानता है। यथार्थ जाने या सम्यग्ज्ञान विपरीत जाने? समझ में आया? साधुओं में विवाद। आया था, कहे, लो चश्मा से ऐसा होता है। भाई! बात सूक्ष्म, बापू! क्या कहें? किसके साथ बात करें? चर्चा करो। लींबड़ी। चर्चा करो। भाई! हम किसी के साथ बात नहीं करते। क्योंकि यह बात तुमको कहीं बैठे, ऐसा नहीं है। सुनने को मिली नहीं और बैठे कहाँ से तुझे? चर्चा करो, लो! लोग ऐसा कहते हैं कि कानजीस्वामी व्यवहार से धर्म मानते नहीं, तुम कुछ कहते हो। इसलिए क्या है, उसके लिये हम (चर्चा करते हैं)। किसके साथ चर्चा करना इसमें? समझ में आया? एक एकड़ा की बात की खबर न हो, उसके साथ चर्चा?

यहाँ तो कहते हैं कि यह चश्मा है, इसकी यह पर्याय, वे परमाणु हैं, ये रजकण। उनकी समय-समय में पर्याय उत्पन्न हो, ऐसा आवे और ऐसी थी, उसका व्यय हो, वह उसके परमाणु के कारण से है, आत्मा के कारण से नहीं। आत्मा ने ऐसा किया, इसलिए ऐसा होता है, चश्मा चढ़ता है, यह बात झूठ है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : नाक की दांडी ऊपर तो रहा है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दांडी ऊपर भी रहा नहीं। वे रजकण अपनी पर्याय में अपने आधार से रहे हैं। एक-एक रजकण में आधार नाम की शक्ति है। वह अपनी पर्याय अपने आधार से वहाँ रही है, उसके आधार से नहीं। ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : अभिमान को गलाने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गलाने की नहीं, असत्य-झूठ छोड़ने की बात है। झूठी दृष्टि है।

मुमुक्षु : मैंने किया, मैंने किया सब अभिमान है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अभिमान है। झूठी मान्यता है, मान्यता झूठी है, मिथ्या श्रद्धा है। मैंने ऐसा किया, मैंने ऐसा किया... आहाहा! मैं बहुत दया पालता हूँ, बहुत रक्षा करता हूँ, मैं ऐसा खाता हूँ, ऐसा मैं पीता हूँ, ऐसा भोजन नहीं चलता, ऐसा नहीं चलता है। क्या है? मिथ्यादृष्टि है। पर की पर्याय चले, न चले, यह लाया कहाँ से? क्योंकि उन परमाणुओं में भी समय-समय में अवस्था उत्पन्न होती है, (वह) उसके कारण से है। वे परमाणु उनके कारण से यहाँ आते हैं, और जाये तो उनके कारण से जाते हैं। तू कहे कि मैंने आज आहार छोड़ दिया। मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। रजकणों की अवस्था वहाँ आने की नहीं थी स्वयं के कारण से, उसे तूने कहा कि मैंने छोड़ दिया। पर का—जड़ का स्वामी होता है। मिथ्यात्व को सेवन किया और कहे, मैंने अपवास किया। ऐई! आहाहा! लंघन किया है। समझ में आया?

देखो न, यह पर्यूषण में थोक के थोक मिथ्यात्व सेवन किया है। अपवास किया है। यहाँ चार मासखमणा, यहाँ धूल मासखमणा, धूल... किसका मासखमणा सुन न अब। जड़ की पर्याय उससे होती है, उससे उपजे, उसकी तो तुझे खबर नहीं। और तू कहे कि मैंने अपवास किया है। किसका अपवास तेरा? समझ में आया? दृष्टि मिथ्यात्व तो है कि परमाणु—मैंने आहार नहीं छोड़ा, मैंने छोड़ा, इसने छोड़ा नहीं। परद्रव्य की पर्याय मैंने की, मैंने छोड़ी। तू परद्रव्य का स्वामी होता है। समझ में आया? जो तेरे

अधिकार की बात नहीं, उसका तू अधिकार हाथ में लेता है। समझ में आया?

इससे (यह कहा गया है कि) शुद्ध आत्मा के भी... वह बाजूबन्ध का सिद्ध करके। उत्तम सुवर्ण बाजूबन्ध से उत्पन्न होता है, अँगूठी से नाश होता है, पीलापन—चिकनाई से टिकता है। इसी प्रकार **सर्व द्रव्यों के उत्पाद-व्यय से...** तीनोंरूप से जानना। इससे ऐसा कहा, शुद्धात्मा को, केवली को भी और सिद्ध भगवान को भी **उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप अस्तित्व...** लो, आया। **द्रव्य का लक्षणभूत उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप अस्तित्व अवश्यम्भावी है।** आहाहा! कहो, समझ में आया? परमात्मा केवलज्ञानी भी समय-समय में अपनी नयी अवस्था से उपजे, वह केवलज्ञान की पहली (पूर्व) पर्याय से व्यय हो, पहली पर्याय से व्यय हो, दूसरी पर्याय में केवलज्ञान से उपजे और गुणरूप से ध्रुव रहे। गजब भाई! केवलज्ञान उपजे और विनसे, वह पर्याय है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १२, गुरुवार, दिनांक १९-०९-१९६८
गाथा - १८, १९, प्रवचन - १७

प्रवचनसार, ज्ञानतत्त्व अधिकार। अर्थात् कि ज्ञान का स्वभाव ऐसा है कि जैसे जगत के तत्त्वों का स्वरूप है, उस प्रकार से जाने। उससे विरुद्ध जाने तो वह ज्ञान नहीं। तो यहाँ अस्तित्व सिद्ध करते हैं। जगत में जाति से छह द्रव्य हैं, संख्या से अनन्त हैं। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक (-एक) धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश। इन सब द्रव्यों का लक्षण अस्तित्व है। इन वस्तुओं का लक्षण होनापना—अस्तित्व नाम की उनकी शक्ति है, वह उनका अस्तित्व। 'सत् द्रव्य लक्षणं' यह पहला सूत्र बाँधा है। पाँचवाँ अधिकार है न तत्त्वार्थसूत्र का। 'सत् द्रव्य लक्षणं' पहले कहा है और फिर 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' कहा है।

यहाँ से यह बात उठायी है कि यह आत्मा और यह परमाणु यह जगत की चीज़ है, वह उसे द्रव्य कहा जाता है। द्रव्य अर्थात्? द्रवति इति द्रव्यं। अपनी पर्याय को, अवस्था को द्रवता है, करता है, परिणमता है; इसलिए उसे द्रव्य कहा जाता है। वह कोई दूसरे के द्रव्य को करे... यहाँ तो अस्तित्व सिद्ध करना है कि एक द्रव्य अपने द्रव्य में परिणमे—द्रवे, परन्तु दूसरे के द्रव्य को परिणमावे, उसका अस्तित्व खड़ा करे, ऐसा हो नहीं सकता। इससे **द्रव्य का लक्षण अस्तित्व है और अस्तित्व उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप है।** देखो! यह दो सूत्र आ गये इसमें तत्त्वार्थसूत्र के। पाँचवाँ अध्याय है न उसमें सूत्र है। कितना है वह? समझे न? है न? यह रहा। पाँचवाँ अध्याय है। सूत्र है २९वाँ। 'सत् द्रव्य लक्षणं'। उमास्वामी, वे कुन्दकुन्दाचार्य के शिष्य थे। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में हुए दिगम्बर सन्त। उनके शिष्य यह पूरे जैनदर्शन के सार को तत्त्वार्थसूत्र में रच दिया है। उसमें २९वाँ सूत्र 'सत् द्रव्य लक्षणं।' महासिद्धान्त। यह द्रव्य का लक्षण अस्तित्व है। अस्तित्व कहो या सत् कहो।

प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु, उसमें सिद्धान्त है कि प्रत्येक वस्तु स्वयं से अस्तित्व अर्थात् हयाति धराती है। और वह अस्तित्व ३०वाँ सूत्र यह है, 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्।' यह उसके पश्चात् आया, देखो! समझ में आया? आत्मा,

अनन्त आत्मायें और अनन्त परमाणु, वह प्रत्येक द्रव्य है और द्रव्य का लक्षण अस्तित्व है, और वह अस्तित्व तीन प्रकार से है। उत्पाद अवस्था से उपजे, वह स्वयं के कारण उपजता है और स्वयं के कारण से अपनी अवस्था का व्यय होता है और ध्रुवरूप से रहे—अपनी जाति को कायम टिकाये। **इसलिए किसी पर्याय से उत्पाद है,...** प्रत्येक आत्मा और कोई भी परमाणु और सिद्ध प्रत्येक को कोई अवस्था से उसमें उत्पाद होता है वर्तमान अवस्था से, **किसी पर्याय से विनाश और किसी पर्याय से ध्रौव्यत्व प्रत्येक पदार्थ के होता है।** समझ में आया? जैसे यह रजकण हैं इस शरीर के, देखो यह रजकण हैं, यह द्रव्य है। एक-एक पॉईन्ट भिन्न, वह अस्तित्व है और उस अस्तित्व के तीन अंश हैं उसमें। यह नयी-नयी अवस्था ऐसी हो, पुरानी अवस्था जाये, ध्रुवपना (रहे)। यह उसका अस्तित्व उसके परमाणु के कारण से है, आत्मा के कारण से नहीं। समझ में आया?

यह शरीर की अवस्था टिक रही है, बदल रही है, उत्पन्न हुई है, वह उसके अपने अस्तित्व के कारण से है। आत्मा के कारण से उसमें कुछ है, ऐसा नहीं है। यह सिद्ध करना है। ज्ञान ऐसा जाने तो वह ज्ञान सच्चा कहलाये। परन्तु ज्ञान ऐसा जाने कि दूसरे की अवस्था है, वह मुझसे हुई, मुझसे है, वह ज्ञान मिथ्या है—असत् ज्ञान है—झूठा ज्ञान है, वह ज्ञान पापज्ञान है। समझ में आया?

प्रत्येक वस्तु स्वयं से है। रजकण रजकण स्वयं से है; आत्मा आत्मा स्वयं से है। वे प्रत्येक हैं, उनमें तीन अंश स्वयं से है। प्रत्येक क्षण में, प्रत्येक क्षण में उस-उस वस्तु का उत्पाद अर्थात् वर्तमान अवस्था से उपजे, वह स्वयं से है। समझ में आया? यह होंठ हिलते हैं। कहते हैं कि इन होंठ का हिलना, वह उत्पाद परमाणु का अस्तित्व है, उससे यह हिलने की उत्पत्ति होती है। आत्मा से नहीं, आत्मा के ज्ञान से नहीं, आत्मा की इच्छा से नहीं। समझ में आया? कुछ समझ में आया? क्योंकि उसका अस्तित्व तीन प्रकार से ही है। अवस्था क्षण-क्षण में नयी होना, पुरानी जाना, जाति का सदृशपना-ध्रुवपना टिके रहना। यह तीन प्रकार से उसका अस्तित्व है। उसके अस्तित्व में दूसरे का अधिकार अस्तित्व का लो दे, यह मान्यता अज्ञान और मूढ़ता तो है, बहिर्दृष्टि है। समझ में आया?

आत्मा दूसरे का भला कर सके तो भला की अवस्था का उत्पादक तो वह सामनेवाला आत्मा है। उसके बदले दूसरा आत्मा कहे कि इस भला की उत्पत्ति का करनेवाला मैं हूँ अर्थात् मेरे कारण यह अस्ति-उत्पत्ति हुई। वह भ्रमणा है। समझ में आया? और उसके अज्ञानादि का नाश उसके अस्तित्व से उसमें हुआ। यह कहे कि मैंने उसका अज्ञान का नाश कराया, मेरे अस्तित्व से उसकी अवस्था का नाश हुआ। समझ में आया? वह मिथ्याज्ञान है। वह श्रद्धा मिथ्या है, ज्ञान मिथ्या है और उसमें राग की एकताबुद्धि है, इसलिए वह ऐसा मानता है। समझ में आया?

यहाँ प्रश्न सम्भव है कि : द्रव्य का अस्तित्व... वस्तु का अस्तित्व **उत्पादादिक तीनों से क्यों कहा है?** वस्तु जो है, उसके अस्तित्व में तीन प्रकार कैसे कहे? अस्तित्व तो उसे ध्रुवपने में अस्तित्व सम्भव है। समझ में आया इसमें? प्रश्न क्या कहते हैं? वस्तु का अस्तित्व उत्पाद-व्यय इत्यादि तीन से कैसे कहा? अस्तित्व तो **एकमात्र ध्रौव्य से ही कहना चाहिए;...** अस्तित्व है... है... है, तो ध्रुव से कहना चाहिए 'है' ऐसा। और उपजे, विनसे तथा ध्रुव (पना) इन तीन से अस्तित्व, यह क्या? उपजे तो भी अस्तित्व, व्यय हो तो भी अस्तित्व और ध्रुव (रहे) तो भी अस्तित्व। समझ में आया? समझ में आता है या नहीं?

मुमुक्षु : कर्म में भी होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब परमाणुओं में होता है। कर्म क्या? सभी चीज़ों में होता है। देखो, यह इसमें समय-समय में होता है। उसमें होता है, उसमें भी होता है। समय-समय में होता है।

यहाँ तो शिष्य का प्रश्न दूसरा है कि अस्तित्वरूप यदि कहे तो ध्रुवपना, होनापना सम्भवे, परन्तु अस्तित्व में और उपजे, वह अस्तित्व, व्यय हो वह अस्तित्व, ध्रुव भी अस्तित्व में तीन कहाँ डाले इसमें? समझ में आया? है, है। बस है तो है ध्रुव। और है वह उपजे, वह भी है, व्यय हो, वह भी है, ध्रुवपने है। तो है में तीन कैसे डाले? ऐसा (शिष्य) पूछा है। समझ में आया? **तीनों से क्यों कहा है? एकमात्र ध्रौव्य से ही कहना चाहिए;...** है ध्रुव है, वस्तु है ऐसा कहना है। उसमें तीन... उपजे तो भी कहे कि है, नाश हो तो कहे कि है। लो! नाश, तो भी कहे कि है। समझ में आया? तीन का

अस्तित्व, तीन को अस्तित्व में कैसे डाला? एक को डालो न (कि) ध्रुव है। ऐसा प्रश्न है। **क्योंकि जो ध्रुव रहता है, वह सदा बना रह सकता है?** जो कायम रहे, वह कायम टिक सकता है।

इस प्रश्न का समाधान इस प्रमाण है : यदि पदार्थ ध्रुव ही हो... यदि पदार्थ टिकता अकेला ध्रुव ही हो, निश्चय टिकता अकेला ध्रुव ही हो **तो मिट्टी...** दृष्टान्त। **सोना, दूध इत्यादि समस्त पदार्थ एक ही सामान्य आकार से रहना चाहिए;...** उसमें परिवर्तन होगा नहीं। यदि ध्रुव ही हो तो मिट्टी मिट्टी में मिट्टीरूप रहना चाहिए, मिट्टी का घड़ा हो, ऐसा नहीं होना चाहिए। ध्रुव ही हो तो मिट्टी मिट्टीरूप से रहे। परन्तु मिट्टी घड़ेरूप से होती है, वह भी उसका अस्तित्व है। ध्रुवपने रहकर मिट्टी घड़ेरूप होती है, वह भी उसका अस्तित्व है। घड़ेरूप अस्तित्व है उसका। उसके कारण से, हों! कुम्हार के कारण से नहीं। समझ में आया? और सोना। सोना एकरूप रहना चाहिए। उसके बदले सोना कुण्डलरूप से दिखता है। कड़ा, कुण्डलरूप से। सोना का एक सादा आकार नहीं दिखता। सोना ध्रुवरूप से अकेला हो तो सोना सादा अकेला दिखना चाहिए, परन्तु सोना कुण्डल के आकार दिखता है। कुण्डल के आकार अस्तित्व से दिखता है। कुण्डल के आकार से अस्तित्वरूप दिखता है। मिट्टी घड़े की अवस्थारूप अस्तित्व से दिखती है। समझ में आया? यह महासिद्धान्त हैं यह तो जैन वीतरागदेव के, उस वस्तु के। वीतरागदेव के घर का कहाँ है यह? समझ में आया? सोना तो कुण्डल आकार (होता है)। यह सोना है, वह एकरूप रहना चाहिए। सादा सोना बस। यह तो कुण्डल के आकार दिखता है। कुण्डलरूप होना, होना वह भी एक उसका स्वभाव है। अस्तित्व में कुण्डलपना भी आ जाता है। मिट्टी के अस्तित्व में घड़ारूप से होनापना आ जाता है, सोना के अस्तित्व में ध्रुव रहकर कुण्डलरूप होना, ऐसा आ जाता है। तब ही उसका अस्तित्व सिद्ध होता है। समझ में आया?

दूध का दहीपना। देखो! है या नहीं? दूध की दही अवस्था होती है। दूध, दही अवस्थारूप से उपजता है, वह भी उसका एक अस्तित्व है। गोरस का गोरसरूप से रहकर, दही अवस्था (होती है)। दूध की अवस्था का व्यय, दही अवस्था का उत्पाद, वह भी अस्तित्वरूप से है। है, उसमें है। है, उसमें तीन हैं। पर के कारण से वह है

नहीं। समझ में आया? आहाहा! मूल सिद्धान्त महासिद्धान्त।

भेद कभी न होना चाहिए। तो मिट्टी में घड़ा, सोना में कुण्डल, दूध का दही, ऐसी भेद प्रकार की दशा, एकरूप ध्रुव हो तो यह सम्भव नहीं हो सकता। इसलिए भिन्न है। भिन्न-भिन्न अवस्थारूप से वह रहता है। वह रहता है ध्रुवरूप से, तथापि भिन्न-भिन्न अवस्था होकर रहता है। इसलिए तीनोंरूप उसका अस्तित्व है। समझ में आया? **किन्तु ऐसा नहीं होता अर्थात् भेद तो अवश्य दिखाई देते हैं।** परन्तु ऐसा अर्थात् सादापन देखने में नहीं आता। **भेद तो अवश्य दिखाई देते हैं। इसलिए पदार्थ सर्वथा ध्रुव न रहकर किसी पर्याय से उत्पन्न और किसी पर्याय से नष्ट भी होते हैं। यदि ऐसा न माना जाये तो संसार का ही लोप हो जाये।** आत्मा में भी वर्तमान अवस्था जो है ज्ञान की, उस अवस्था के उत्पादरूप से आत्मा देखने में आता है और पूर्व की अवस्था के व्ययरूप से देखने में आता है। पहले ख्याल थोड़ा था। समझ में आया? उस ख्याल का व्यय हुआ, विशेष ख्याल का उत्पाद हुआ और ज्ञानरूप भगवान ध्रुव रहा। वह स्वयं के कारण से तीन तत्त्व हैं। समझ में आया? अकेला ज्ञान और आत्मा सादा अकेला देखने में नहीं आता। उसकी वर्तमान अवस्था जो कुछ हीन है, उसका व्यय देखने में आता है, विशेष ज्ञान की उत्पत्ति की पर्याय, उसरूप से अस्तित्व है, ऐसा देखने में आता है और ध्रुवरूप से कायम देखने में आता है। पर के कारण से नहीं। समझ में आया? कर्म के कारण से नहीं। आहाहा!

ज्ञान की हीन अवस्थारूप से जो उपजा, वह उत्पादरूप से देखने में आता है। अकेला ज्ञान और अकेला आत्मा सादा अर्थात् एकरूप देखने में नहीं आता। एकरूप ज्ञान और आत्मा देखने में नहीं आता। उसकी अवस्था हीन वह है, उसरूप से देखने में आता है। और हीन का अभाव होकर विशेषरूप से उत्पाद हो, वह देखने में आता है और ध्रुवरूप भी देखने में आता है। समझ में आया इसमें? कहो, भीखाभाई! यह शब्द से नहीं, ऐसा कहते हैं। शब्द से नहीं। उसका स्वयं का तीनरूप से अस्तित्व देखने में आता है।

भगवान आत्मा वस्तु है, उसके तीन अंशों से वह देखने में आता है। एक अवस्था से उपजे, सादापना / ध्रुवपना अकेला न रहकर एक अवस्था से उपजता है, पूर्व

अवस्था से व्यय होता है, ध्रुवरूप से रहता है। एक समय में तीन अंश से उसका अस्तित्व दिखाई देता है। समझ में आया? इसी प्रकार राग की एकतापने की जो उत्पत्ति थी, उसे चैतन्य के ध्रुव के स्वलक्ष्य से एकता टूटकर भिन्नता हुई, उस राग की एकता का व्यय हुआ, वीतरागता की पर्याय की एकता की उत्पत्ति हुई, ध्रुवरूप से कायम रहा। समझ में आया?

भगवान आत्मा वस्तु है अनन्त गुण का पिण्ड। उसकी एक समय की पर्याय में 'राग, वह मैं'—ऐसी जो एकत्वबुद्धि / मिथ्याभ्रान्ति, उसरूप से जो उपजता था, वह दिखता है, उस चैतन्य का स्वलक्ष्य करके उसका व्यय (भ्रान्ति का) व्यय होता है और उसकी शुद्धि की श्रद्धा, ज्ञान की उत्पत्ति होती है। वह एकरूप न दिखकर उसके ज्ञान की और श्रद्धा की पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसा दिखता है। उत्पन्नरूप से अस्तित्वरूप से दिखता है। अकेला ध्रुवरूप भी नहीं। उसकी श्रद्धा-ज्ञान की पर्याय के शुद्धपने के उत्पादरूप देखने में आता है, पूर्व की (पर्याय के) व्ययरूप से देखने में आता है, ध्रुवरूप से देखने में आता है। भगवानजीभाई! कठिन बातें, भाई! आहाहा! समझ में आया?

ऐसा न हो तो संसार का लोप हो। अर्थात्? यह विकृत भाव दिखता है और विकृत भाव का अभाव होता है, ऐसा नहीं हो सकेगा। अकेला आत्मा-आत्मा रहे। समझ में आया? संसार की विकृत अवस्थायें भिन्न-भिन्न, भिन्न-भिन्न होती है, वह अस्तिरूप से है, वे अस्तिरूप से हैं। पुण्य-पाप के भाव, राग के भाव, वे मेरे आदि उस अस्तिरूप से एक भाव है, अस्तिरूप से है। एकदम नहीं, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या, अर्थात् राग की एकता अर्थात् मिथ्यात्वभाव उत्पादरूप से नहीं, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और उस आत्मा में अवस्था का बदलना और दूसरे प्रकार से होना, ऐसा उत्पाद देखने में आता है। भगवान आत्मा ऐसे स्व के ज्ञान के लक्ष्य में चढ़ा, (तब) उसकी पर्याय की शुद्धता की उत्पत्तिरूप से देखने में आता है, अशुद्धता के व्ययरूप से देखने में आता है। उसके अस्तित्व में इस प्रकार से देखने में आता है। दूसरे के अस्तित्व में ऐसा है, यह बात यहाँ है नहीं। समझ में आया? लो!

वे कहे कि भाई, कम के कारण ज्ञान का क्षयोपशम होता है। कर्म का कठोर

उदय आवे तो उसका क्षयोपशम ढँक जाये और उघाड़ हो तो क्षयोपशम हो। यह यहाँ इनकार करते हैं। ऐसा है ही नहीं। वस्तु के स्वरूप में ऐसा है ही नहीं। समझ में आया ? भगवान आत्मा का ज्ञानगुण वह त्रिकाल ध्रुव, स्वयं ध्रुव, उसकी वर्तमान अवस्था, उसरूप से उसका उत्पाद देखने में आता है। सर्वज्ञरूप से है, ऐसा देखने में नहीं आता। भाई ! क्या कहा ? सर्वज्ञपर्याय है, ऐसा देखने में नहीं आता। हीन पर्याय है, ऐसा देखने में आता है। हीनरूप से अस्तित्व है, ऐसा देखने में आता है। सर्वज्ञस्वभाव से ध्रुव भले हो, परन्तु पर्याय में हीन पर्याय देखने में आती है। समझ में आया ? वह अपना अस्तित्वरूप से ऐसा है, यह कहते है। पर के कारण से उसमें कुछ नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? बड़ा विवाद इसमें जगत को। कर्म के नाम से आत्मा में बात घुसा डाली। कर्म का उदय आवे तो आत्मा उसमें दब जाये, उसके—कर्म के कारण से। कहते हैं तो अपना वर्तमान में अपनी अवस्था का अस्तित्व जो अस्ति है, वह किसके कारण से हुआ ? अपना वर्तमान अवस्था का अस्तित्व किसके कारण हुआ ? पर के कारण ? तो अपने अस्तित्व का अस्तित्व कहाँ गया ? अमरचन्दभाई ! यह तो सूक्ष्म सिद्धान्त हैं, भाई !

सर्वज्ञ परमेश्वर.... और वस्तु ऐसी है। सर्वज्ञ परमेश्वर ने तो कहा है। परन्तु वस्तु यह दिखती है न ऐसी। एकरूप रहकर भी रूपान्तर होता है, वह दिखता है। वह रूपान्तरपना उसके अस्तित्व में रूपान्तरपना है। पर के अस्तित्व के कारण रूपान्तर है, ऐसा नहीं। कहो, हीराभाई ! क्या है यह ? कोई कहे कि यहाँ अवस्था दूसरी होती है और अन्यत्र जायें वहाँ दूसरी होती है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....एक प्रकार की।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक प्रकार की, अन्यत्र दूसरे प्रकार की होती है। भाई ! जो यहाँ होती है, उसमें भी उसका उत्पादरूप से, अस्तिरूप से वह स्वयं होती है, ऐसा दिखता है कि उसके कारण से होती है, ऐसा दिखता है ? यह कहते हैं। आहाहा ! वह श्लोक रखा है न जयसेनाचार्य का, नहीं ? सर्वज्ञ का। सर्वज्ञ की श्रद्धा करे, उसके दु:ख का नाश होता है। श्लोक है अन्दर। उसका अर्थ सर्वज्ञपर्याय उत्पन्न हो सकती है, ध्रुवरूप से सर्वज्ञस्वभाव है, ध्रुवरूप से ज्ञ—स्वभाव है, ज्ञ—स्वभाव है, ज्ञातास्वभाव

है, एकरूप स्वभाव है, उसके आश्रय से अल्पज्ञ अवस्था का व्यय होता है, सर्वज्ञ अवस्था उत्पन्न होती है, ऐसा देखने में आता है। ऐसा आत्मा जिसे इस प्रकार से सर्वज्ञ स्वभाव और उससे उत्पत्ति सर्वज्ञपर्याय की (होती है), ऐसी जो श्रद्धा करे, उसे द्रव्य के ऊपर दृष्टि जाकर आत्मा की श्रद्धा होती है। क्या कहा, समझ में आया?

सर्वज्ञ की श्रद्धा करे अर्थात्? सर्वज्ञ की पर्याय का उत्पाद वह जीव में जीव के कारण देखने में आता है। क्योंकि जो उसका निधान सर्वज्ञस्वभाव ध्रुव, सर्व अर्थात् (पूर्ण) ज्ञ स्वभाव, ज्ञ अर्थात् एकरूप स्वभाव, ध्रुवस्वभाव, वस्तु का ज्ञ स्वभाव पूर्ण स्वभाव, वह ध्रुव है और उसकी वर्तमान अवस्था में अल्पज्ञ अवस्था, वह उत्पाद है। अब उस उत्पाद का व्यय होकर सर्वज्ञस्वभाव के लक्ष्य से जो पर्याय सर्वज्ञ की उत्पाद हो, वह उत्पाद अस्तित्व अपने से देखने में आता है। सर्वज्ञ हुए, वे स्वयं से हुए, ऐसा देखने में आता है। स्वयं से हुए, ऐसा देखने में आता है। आहाहा! देखो न, इससे यह बात ली है न! यह अरिहन्त हुए, वे स्वयं से हुए, ऐसा देखने में आता है, ऐसा कहते हैं। कर्म के कारण, पर के कारण और क्षेत्र अनुकूल तथा काल अनुकूल के कारण, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : .... कारण से नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई किसी के कारण से नहीं। स्वयं ही उत्पादरूप से परिणमे, उसका अस्तित्व ही इस प्रकार से है। भगवान ज्ञानस्वभाव वस्तु, वस्तु और उसका जो ज्ञान एकरूप, एकरूप स्वभाव ध्रुव, उसका आश्रय करने से अर्थात् पर्याय ने आश्रय किया। पर्याय में उत्पादरूप से सर्वज्ञपर्यायरूप से उत्पाद है। अकेला ज्ञानपना, ध्रुवपना देखने में नहीं आता। सर्वज्ञ की पर्याय सर्वज्ञरूप से आयी, हुई, उपजी, वह ज्ञान अकेला सादा देखने में नहीं आता। समझ में आया? वह सर्वज्ञ की पर्यायरूप से उपजता है, उत्पाद अस्तिरूप से भासित होता है और पूर्व की अल्पज्ञ अवस्था के अभावरूप से भासित होता है, शक्तिरूप से ध्रुव है, वह भासित होता है। ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया?

ऐसा जो माने, उसे सर्वज्ञ का उत्पादरूप से उपजता है। कहाँ से उपजा? कि ध्रुव में से। इसलिए उसकी दृष्टि ध्रुव के ऊपर जाती है। वस्तु है, ऐसी ध्रुव अकेली नित्य

ज्ञायकभाव, उसमें से सर्वज्ञरूप से उपजता है। यह द्रव्य में दृष्टि जाने पर सम्यग्दर्शनरूप से उपजता है, वह सर्वज्ञ की श्रद्धा का कारण है। वह सर्वज्ञ कौन? स्वयं, हों! समझ में आया? उसकी क्रीड़ा तीन में है—उत्पाद, व्यय और ध्रुव में। बाहर को स्पर्शता भी नहीं और बाहर से उसमें कुछ होता नहीं। कहो, यह बाल-बाल बीड़ी कोई करता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

ऐसा यदि न माना जाये, तब तो यह विकृत अवस्था का रूप देखने में आता है, उसका अस्तित्व देखने में, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। विकृत अवस्था, दु:खरूप अवस्था जीव में दिखती है न! वह अस्तिरूप से दिखती है या न अस्तित्वरूप से? अस्तिरूप से दिखती है। यदि ऐसा अस्तित्व उत्पाद-व्यय का न हो और अकेला ध्रुव हो तो यह विकार का अस्तित्व दिखता है, उसका नाश हो जाये। वह रहे नहीं और उसका अभाव करना भी नहीं रहे। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर के न्याय सूक्ष्म हैं, भाई! भगवान आत्मा एकरूप देखने में नहीं आता, कहते हैं। जैसे मिट्टी, सोना और दूध-गोरस एकरूप देखने में नहीं आता, उनकी भिन्न-भिन्न अवस्थारूप से देखने में आता है। इसी प्रकार आत्मा एकरूप देखने में नहीं आता, एकरूप देखने में नहीं आता। और यदि एकरूप देखने में नहीं आता और भिन्न-भिन्न न माने तो एकरूपता है नहीं और भिन्न-भिन्नता न माने तो संसार का नाश हो जाता है। संसार रहता नहीं और संसार की विकृत अवस्था जगत में है, यह बात सिद्ध नहीं होती। और ऐसा सिद्ध होने से संसार की अवस्था का अभाव होकर मोक्ष की अवस्था का उत्पाद हो, ऐसा भेदपना भी रहता नहीं। इसलिए संसार का भी अभाव होता है, सिद्ध पर्याय का अभाव होता है, ध्रुव अकेला रहे, उस ध्रुव का निर्णय करनेवाला ही नाश हुआ। क्योंकि निर्णय तो पर्याय में होता है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : निर्णय पर्याय में होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में निर्णय होता है न, क्या द्रव्य में होता है? वह तो ध्रुव है ध्रुव। निर्णय बदलना, निर्णय करना, वह सब पर्याय में होता है। यदि भेद-भेद न हो तो यह निर्णय करना आदि का नाश हो जाता है। समझ में आया? यह तो प्रवचनसार तो सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि में से नितरा हुआ तत्त्व अकेला सार रखा है। ऐसे सादा लगे

मानो, सत् और उत्पाद-व्यय-ध्रुव सादा नहीं, महा सत् को सिद्ध करनेवाली चीज़ है। समझ में आया?

इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय है,... ध्रुवमय। प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु वह अवस्था से उपजे, एक अवस्था से बदले, ध्रुवरूप से रहे, ऐसा होने से **मुक्त आत्मा के भी...** सिद्ध को भी **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अवश्य होते हैं।** सिद्ध में भी उत्पाद, व्यय और ध्रुव अवश्य होते हैं। आहाहा! सिद्ध को भी लागू पड़े यह तो उत्पाद-व्यय तो। पर्याय ने तो वहाँ भी पल्ला नहीं छोड़ा। परन्तु पर्याय का अस्तित्व अर्थात् कि वह है। अरे! जैनदर्शन नहीं, वस्तुदर्शन क्या है? लोगों ने सुना नहीं, सुना नहीं। ऐसे का ऐसा है, आत्मा है, फलाना है। परन्तु वह क्या है? समझ में आया? वह तीन अंश से है।

इसलिए **मुक्त आत्मा के भी...** अवस्था का एक अवस्था के होनेरूप उपजे, एक अवस्था के अभावरूप हो, अभावरूप हो वापस, हों! और एकपने, ध्रुवपने हो। अवश्य होता है। **स्थूलता से देखा जाये तो, सिद्ध पर्याय का उत्पाद हुआ...** सिद्धदशा की अवस्था। वह अवस्था है सिद्धपना, वह कोई द्रव्य-गुण नहीं। द्रव्य है, वह त्रिकाली है; गुण है, वह त्रिकाली है; अवस्था जो केवलज्ञान, परमानन्द सिद्ध मोक्षदशा, मोक्षदशा वह पर्याय है। वह तो समकित की पर्याय कहते हैं उसे गुण कहो, पर्याय कैसे कहते हो? क्षुल्लक कैसे? सिद्धसूरी कैसे? तुम समकित को पर्याय कैसे कहते हो? गुण कहो। तुम आत्मधर्म में लिखो। अरे! भगवान! यहाँ तो सिद्ध स्वयं पर्याय है, सुन न! गुण नहीं। गुण तो त्रिकाली होते हैं। सिद्धदशा, संसारदशा, मोक्षमार्गदशा, वह सब पर्याय है, अवस्था है, होती है, नयी होती है। आहाहा! खबर नहीं होती। जैन के वाडा में जन्मे, उसे भी खबर नहीं होती। सच्ची बात है न, भाई? जैन परमात्मा... यह जैन नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप यह है। इस प्रकार से न हो तो कोई बात सिद्ध नहीं होती। जब ऐसा कहो कि कुछ मुझे समझना है। इसका अर्थ यह कि असमझण की अवस्था बदल सकती है, समझण की अवस्था हो सकती है और दोनों में कायम रह सकता है। यह तो वस्तु का स्वभाव है। समझ में आया?

सिद्ध पर्याय का उत्पाद और संसार पर्याय का व्यय हुआ... यह संसार उदयभाव

था चौदहवें गुणस्थान तक, उसका व्यय हुआ। **तथा आत्मत्व ध्रुव बना रहा। इस अपेक्षा से मुक्त आत्मा के भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है।** इस अपेक्षा से सिद्ध की पर्याय में भी उत्पाद-व्यय-ध्रुव है। **अथवा, मुक्त आत्मा का ज्ञान...** पर की अपेक्षा से समझाते हैं, हों! कहीं निमित्त पदार्थ के कारण ज्ञान परिणमता है, ऐसा नहीं है। **मुक्त आत्मा का ज्ञान ज्ञेय पदार्थों के आकाररूप हुआ करता है,...** ज्ञेय, सर्वज्ञ का ज्ञान भी जैसे ज्ञेय परिणमते हैं, तत्प्रमाण यहाँ परिणमता है। **इसलिए समस्त ज्ञेय पदार्थों में जिस जिस प्रकार से उत्पादादिक होता है,...** सर्व ज्ञात होनेयोग्य पदार्थ में **जिस जिस प्रकार से उत्पादादिक होता है, उस-उस प्रकार से ज्ञान में उत्पादादिक होता रहता है,...** उस-उस प्रकार से ज्ञान में स्वयं के कारण से उत्पाद-व्यय हुआ करता है। समझ में आया? देखो! यह अवस्था ज्ञान में भगवान ने, वर्तमान अवस्था ऐसी है—ऐसी भगवान ने ज्ञान में देखी है। तत्पश्चात् ऐसे हुई वह अवस्था भूत में गयी, वर्तमान में यह हुई। इस प्रकार से जैसे वहाँ पलटा हुआ है, वैसा ज्ञान ने वर्तमान में ऐसा था, ऐसा जाना था और भविष्य में ऐसा हो गया, ऐसा ज्ञान ने जाना। वह अपने ज्ञान का ही ऐसा उत्पाद स्वभाव है।

अनन्त पदार्थों की वर्तमान अवस्था ज्ञान ने जानी कि वर्तमान यह है। भूत की यह है, ऐसी जानी। अब वह वर्तमान अवस्था बदलकर गयी भूत में और भविष्य की अवस्था आयी वर्तमान में। ऐसा पलटा हुआ न? तो ज्ञान में भी ऐसा ज्ञात हुआ कि यह अवस्था वर्तमान थी, वह गयी, यहाँ ज्ञान भी ऐसा परिणम गया स्वयं के कारण से। समझ में आया? जेठालालभाई! उसके कारण से नहीं, हों! सर्वज्ञ की पर्याय में एक समय की अवस्था में तीन काल देखे। तो वर्तमान अवस्था को वर्तमानरूप से देखा, भूत को भूतरूप से, भविष्य को भविष्यरूप से। वापस वर्तमान अवस्था भूत में गयी और भविष्य की जो अवस्था वर्तमान में आयी, वैसा ज्ञान बदला तत्प्रमाण। जो वर्तमान था, उसे वर्तमान जाना था, वह वर्तमान गया, तब उसे भूतरूप से ज्ञान में जाना। वह ज्ञान भी अपने कारण से वह बदलता है। अरे! कठिन बात, भाई! समझ में आया?

आत्मा का ज्ञान ज्ञेय पदार्थों के आकाररूप हुआ करता है, इसलिए समस्त ज्ञेय पदार्थों में... सर्व, हों! तीन काल-तीन (लोक) समस्त। **जिस जिस प्रकार से उत्पादादिक होता है, उस-उस प्रकार से ज्ञान में उत्पादादिक होता रहता है,...** स्वयं के कारण से,

हों! **इसलिए मुक्त आत्मा के समय-समय पर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है।** इसलिए सिद्ध भगवान के आत्मा में भी समय-समय में ज्ञान की अवस्था भिन्न-भिन्न होती है और ध्रुवरूप से रहते हैं। आहाहा! अरिहन्त के स्वरूप को इसने जाना नहीं। णमो अरिहंताणं, जाओ।

अथवा... तीसरा बोला। **अधिक सूक्ष्मता से देखा जाये तो अगुरुलघुगुण में होनेवाली षटगुनी हानि-वृद्धि के कारण...** अगुरुलघुगुण हैं न जीव में? उसके कारण पर्याय में षट्गुण हानि-वृद्धि का परिणमन हुआ करता है। सूक्ष्म ज्ञान द्वारा (ज्ञात होता है)। एक-एक समय की पर्याय में, केवलज्ञान की एक समय की पर्याय में भी षट्गुण हानि-वृद्धि, ऐसा ही कोई पर्याय का स्वभाव है कि एक समय में षट्गुण हानि-वृद्धि का परिणमन होता है। एक पर्याय में षट्गुण हानि-वृद्धि। **हानि-वृद्धि के कारण मुक्त आत्मा में समय-समय पर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वर्तता है।** ओहोहो! समझ में आया? तीन प्रकार से उत्पाद-व्यय-ध्रुव सिद्ध में सिद्ध किये, केवलज्ञानी परमात्मा में। एक तो सिद्धपर्याय से उत्पन्न हुए, संसारपर्याय से व्यय हुए, ध्रुवरूप से रहे। दूसरे प्रकार से, ज्ञेय जिस प्रकार से परिणमते हैं, उस प्रकार से ज्ञान का परिणमन स्वयं के कारण से बदलता है, उस प्रकार से भी उत्पाद-व्यय-ध्रुव सिद्ध होता है। तीसरा प्रकार से, एक-एक गुण की एक-एक पर्याय में अगुरुलघु के कारण से षट्गुण हानि-वृद्धि का परिणमन है, इसलिए भी उत्पाद, व्यय और ध्रुव सिद्ध होते हैं। समझ में आया? आहाहा!

यह बड़ा यज्ञ है। अभी सिहोर में कुछ करनेवाले थे न! नवरात्रि आती है न! बड़ा यज्ञ करनेवाले थे। कितने लाखों खर्च करनेवाले थे। कोई लड़के बातें करते थे। नौ लाख ... दे, दस लाख राजा देंगे। सत्रह सौ ब्राह्मणों में यह सब। आहाहा! अरे! यज्ञ तो भगवान का तेरा यज्ञ। भगवान ज्ञानस्वभाव में दृष्टि होम—उसमें डाल, वह यज्ञ है। यह सब धुँए के बाचका है। ध्रुव में पर्याय को डाल। समझ में आया? या होम स्वाहा। शोभालालजी! ऐसा भगवान आत्मा ध्रुवरूप से विराजमान, उसे वर्तमान पर्याय को अन्तर में एकाकार होने से शुद्धपर्याय की उत्पत्ति हो, वह महायज्ञ अज्ञान को जलाकर राख कर डालता है। समझ में आया? यह नवरात्रि आती है न नवरात्रि, इसलिए मानो...

यह लोगों को भ्रमणा का पार नहीं होता। आहाहा! ऐसा का ऐसा अनादि से भटका करता है जीव।

कहते हैं, **यहाँ जैसे सिद्ध भगवान के उत्पादादि कहे हैं, उसी प्रकार केवली भगवान के भी यथायोग्य समझ लेना चाहिए।** तेरहवें गुणस्थान में परमात्मा केवलज्ञानी विराजते हैं, उन्हें भी केवलज्ञान की एक समय की पर्याय है, वह उत्पन्न होती है, दूसरे समय में उसका व्यय होता है और नयी अवस्था (का उत्पाद) उत्पन्न होती है, अपने उत्पाद के कारण से। पूर्व की अवस्था का व्यय और नयी अवस्था। ज्ञेय के बदलने के कारण से, अगुरुलघु के कारण से पर्याय में होता है। समझ में आया? लो, १८ गाथा हुई।

★ ★ ★

गाथा - १९

अब, शुद्धोपयोग के प्रभाव से स्वयंभू हुए इस (पूर्वोक्त) आत्मा के... स्वयं मुनि है न! साम्यभाव अंगीकार किया है। वीतरागभाव की पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसा कहते हैं और उस उत्पन्न के कारण से आगे सिद्धपर्याय को प्राप्त होंगे। उसे यहाँ स्वयंभू कहकर मैं स्वयं उसमें उत्पन्न होऊँगा। ऐसी सिद्ध की जो पर्याय, उसका यहाँ वर्णन करते हैं। जिसके फलरूप से सिद्धपद आयेगा, उत्पादरूप से सिद्धपद होगा। समझ में आया? ऐसे **शुद्धोपयोग के प्रभाव से स्वयंभू हुए इस (पूर्वोक्त) आत्मा के इन्द्रियों के बिना ज्ञान और आनन्द कैसे होता है?** यह ऐसा आत्मा अकेला ज्ञान और आनन्द किस प्रकार रहे? यह इन्द्रियाँ नहीं मिले न। यह इन्द्रियाँ हो, तब तो ज्ञान हो, ऐसा मानते हैं। इन्द्रियाँ जहाँ है तो वहाँ ज्ञान होता है और वह है तो कुछ सुख होता है। कहते हैं कि इन्द्रिय बिना उन्हें—सिद्धपद को ज्ञान? अर्थात् कि आत्मा के शुद्धस्वभाव के, शुद्ध उपयोग के प्रसाद से प्राप्त हुई सिद्धदशा को इन्द्रियों का अभाव और ज्ञान के आनन्द का सद्भाव किस प्रकार? कहते हैं। जगत को तो ऐसा है न कि यह इन्द्रियाँ हैं तो ज्ञान होता है।

मुमुक्षु : हाँ, परन्तु आँख न हो तो नहीं दिखता।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं आँख से। यह दिखता है स्वयं से। आँख से कहाँ देखे? वह तो जड़ है। समझ में आया? ज्ञान की पर्याय स्वयं से जानती है, कहीं आँख से जानती है? आँख में है ज्ञान? वह तो जड़ है, मिट्टी है। यह जड़ के रजकण हैं। उनके उत्पाद-व्यय-ध्रुव उनमें हैं। उसके रजकणों का उत्पाद-व्यय समय-समय का आँख का जड़ में है। आत्मा में है उसका? आत्मा में ज्ञान का उत्पाद और पूर्व की अवस्था का व्यय, वह आत्मा में है। वह ज्ञान का उत्पाद इन्द्रिय से होता है यहाँ? समझ में आया? आहाहा!

कोई कहे, लो सिद्ध हुए। नहीं लड्डू, नहीं वाडी, गाड़ी नहीं, घोड़ी नहीं, पैसा नहीं, लड्डू नहीं, कुछ नहीं मिलता। उन्हें ज्ञान और आनन्द है, लो! अब सुन न! तुझे भी यह लाड़ी, वाड़ी, घोड़ी के कारण कब सुख था? वह तो माना था कि यह मुझे ठीक है। वह तो तेरी कल्पना का दुःखभाव था। समझ में आया? वह ज्ञान अज्ञान था और वह दुःखभाव था। वह दुःखभाव गया और ज्ञान रह गया, वह आनन्द और ज्ञान रह गया। उसे कहीं इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं। आहाहा! निमित्त का अभाव हुआ न, ज्ञान का विकास हुआ अन्दर। निमित्त का अभाव हुआ इन्द्रियों का, तो ज्ञान पूर्णता को प्राप्त हुआ, आनन्द पूर्णता को परिणमा। वह तो इन्द्रियों बिना ही अपने उत्पादरूप से परिणमता है। यह **आनन्द कैसे होता है? ऐसे सन्देह का निवारण करते हैं:-**

पक्खीणघादिकम्मो अणंतवरवीरिओ अहियतेजो।
जादो अदिंदिओ सो णाणं सोक्खं च परिणमादि॥१९॥

घातिकर्म विनशे हैं जिसके, तेज अधिक अरु वीर्य अनन्त।
स्वयं अतीन्द्रिय आत्मा भोगे, ज्ञान और आनन्द अनन्त॥१९॥

इसका अन्वयार्थ। **जिसके घातिकर्म क्षय हो चुके हैं,...** क्षय को प्राप्त हुए हैं चार घाति। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय। **जो अतीन्द्रिय हो गया है,...** भगवान आत्मा अतीन्द्रियरूप से दशा हुई है जिसकी। यहाँ भी इन्द्रिय से पार ही है, परन्तु वह निमित्तपना था, इसलिए उसे इन्द्रियवाला कहा गया। यहाँ तो अतीन्द्रियरूप से परिणमन हो गया। **अनन्त जिसका उत्तम वीर्य है...** अतीन्द्रिय हुआ, वहाँ अनन्त जिसका

वीर्य। उसका बल, उसका बल अनन्त प्रगट हुआ है। जहाँ स्वभाव का विघात ही नहीं और स्वभाव की पूर्ण दशा जहाँ प्रगट हुई, उसका अनन्त तेज, अनन्त वीर्य है। **और अधिक जिसका तेज है,...** अधिक अर्थात् **(केवलज्ञान और केवलदर्शनरूप) तेज है,... उत्कृष्ट; असाधारण; अत्यन्त।** नीचे (फुटनोट में) लिखा है। जिसके केवलज्ञान का तेज है, जिसके केवलदर्शन का तेज है। उत्कृष्ट, असाधारण जिसे—सर्वज्ञ को दशा प्रगट हुई है। यह ज्ञान अधिकार है न! आहाहा! समझ में आया?

असाधारण ऐसा जो भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावी, उसमें आश्रय लेकर जो केवलाान प्रगट दशा हुई, वह अतीन्द्रियरूप से और अनन्त ज्ञान-दर्शन के तेजरूप से, अनन्तवीर्यरूप से **ऐसा वह (स्वयंभू आत्मा) ज्ञान और सुखरूप परिणमन करता है।** ज्ञान और आनन्दरूपी अवस्था उसकी हो जाती है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान और आनन्द की अवस्थारूप हो जाता है। उसे वहाँ सुख मिलता है, ऐसा नहीं। ज्ञान मिले नहीं, वह ज्ञान और सुखरूप हो जाता है। समझ में आया? जैसा उसका ज्ञान और आनन्द स्वभाव था, उस प्रकार से पर्याय में ज्ञान और आनन्दरूप जिसकी पर्याय परिणम गयी है। समझ में आया? उसे इन्द्रियाँ और दूसरे निमित्तों की आवश्यकता नहीं है। ऐसा आत्मा स्वयंभू होकर ज्ञानरूप, आनन्दरूप परिणमा, उसका ऐसा स्वरूप है, कहते हैं।

टीका :- शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से जिसके घातिकर्म क्षय को प्राप्त हुए हैं,... ऐसा लिया है, देखो! पाठ में '**पक्खीणघादि**' है।

मुमुक्षु : घातिकर्म नहीं लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ नहीं लिया। पाठ में लिखा। वहाँ तो संक्षिप्त लेना है न!

शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से जिसके घातिकर्म क्षय को प्राप्त हुए हैं,... यह भी निमित्त का कथन है। शुद्ध उपयोग के सामर्थ्य से जिसे केवलज्ञान हुआ है, तब कर्म की पर्याय अकर्मरूप परिणमने के कारण से घातिकर्म क्षय हुए, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! कर्म की पर्याय का जो परमाणु का उत्पाद था, उस कर्म के परमाणु के कर्म की पर्याय का व्यय हुआ, अकर्मरूप परिणमे, उसका नाम घातिकर्म का क्षय किया, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? वे कहे, कर्म हटे तो केवलज्ञान हो। परन्तु तू यहाँ

कर तो हटे बिना रहे नहीं। यह उल्टे से लेता है। उल्टे माणे। उल्टे माणे भरे। माणु समझते हो? पाली नहीं होती? पाली। पाली नहीं होती यह अनाज भरने की? सीधा भरे तब तो ठीक, आड़े भरे तो थोड़ा रहे, आड़े माणे भरे आड़ा। (उल्टे) एक दाना भी न रहे। आड़ो समझते हो? तिरछा, टेढ़ा। ऐसा होता है न! सीधा भरे तो रहे, आड़ा भरे तो थोड़ा भी रहे, उल्टे में एक दाना भी न रहे। ऐसे उल्टे से अज्ञानी लेता है। कर्म टले तो यह होता है। ऐसा नहीं। आहाहा! तेरी सामर्थ्य के बल से तेरा उपयोग जहाँ काम करे, वहाँ कर्म उसके कारण से टले बिना रहते नहीं। कर्म का क्या कर्ता-हर्ता तू है? समझ में आया?

शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से जिसके घातिकर्म क्षय को प्राप्त हुए हैं, क्षायोपशमिक ज्ञान-दर्शन के साथ असंपृक्त (सम्पर्करहित) होने से जो अतीन्द्रिय हो गया है,... अतीन्द्रिय की व्याख्या की है। प्रक्षीण घातिकर्म की व्याख्या की, अतीन्द्रिय की व्याख्या की। क्या अतीन्द्रिय अर्थात्? **क्षायोपशमिक ज्ञान-दर्शन...** यह अल्प विकासवाले ज्ञान-दर्शन की जो पर्याय थी, उसके साथ जो सम्पर्क था, उस सम्पर्करहित हो गया, इसलिए अतीन्द्रिय हुआ। अल्प ज्ञान और अल्प दर्शन का विकास जो था, उसके सम्पर्करहित हो गया। अकेला अतीन्द्रिय ज्ञान-दर्शन हुआ। समझ में आया? 'हुआ' ऐसा कहा, देखा! **(सम्पर्करहित) होने से जो अतीन्द्रिय हो गया है,...** इन्द्रिय के निमित्त के लक्ष्य में क्षयोपशम ज्ञान जो अल्प था, उसका सम्पर्क टला। स्वभाव का आश्रय हुआ तो अतीन्द्रिय ज्ञान परिणमित हुआ।

समस्त अन्तराय का क्षय होने से अनन्त जिसका उत्तम वीर्य है,... समस्त अन्तराय कर्म है न? **शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से जिसके घातिकर्म क्षय को प्राप्त हुए हैं,...** पहले यह सिद्धान्त लेकर यह सब बात है। पहला शीर्षक लेकर। **अन्तराय का क्षय होने से...** यह तो एक-एक में क्या हुआ, यह (कहते हैं)। **अनन्त जिसका उत्तम वीर्य है,...** उत्तम वीर्य। अनन्त शान्ति और आनन्द की रचनावाला वीर्य। भगवान आत्मा अपनी पूर्णता, शुद्धता को रचे, ऐसा उत्तम वीर्य। समझ में आया? अज्ञान में राग को रचता था, वह उत्तम वीर्य नहीं। समझ में आया? पर को तो रच सकता नहीं, परन्तु अज्ञान में राग और अज्ञान को रचता था, वह वीर्य नहीं, ऐसा कहते हैं। वीर्य—

आत्मबल तो अपने शुद्ध परिणमन को जो रचे, परमात्मदशा को रचे, ऐसा जिसका उत्तम वीर्य प्रगट हुआ है। आहाहा! लो! यह वीर्य का काम! समझ में आया?

समस्त ज्ञानावरण और दर्शनावरण का प्रलय हो जाने से अधिक जिसका केवलज्ञान और केवलदर्शन नामक तेज है... सब निमित्तरूप से ज्ञानावरण, दर्शनावरण प्रलय हुआ होने से... भाषा तो अलग-अलग है। अन्तराय (क्षय) हुआ तो अनन्तवीर्य, **'कृत्स्नज्ञानदर्शनावरणप्रलयादधिककेवलज्ञानदर्शनाभिधानतेजाः'** ठीक! अलग-अलग भाषा करके स्पष्ट करते हैं। **अधिक जिसका केवलज्ञान और केवलदर्शन नामक तेज है—ऐसा यह (स्वयंभू) आत्मा,...** ऐसा स्वयंभू प्रगट हुआ परमात्मा पर्यायरूप से उत्पन्न हुआ वह स्वयंभू—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **समस्त मोहनीय के अभाव के कारण अत्यन्त निर्विकार शुद्ध चैतन्यस्वभाववाले आत्मा का (अत्यन्त निर्विकार शुद्ध चैतन्य जिसका स्वभाव है, ऐसे आत्मा का) अनुभव करता हुआ...** उसे अनुभव करता हुआ, पूर्ण आनन्द को और शान्ति को वेदता हुआ। **स्वयमेव स्व-परप्रकाशता लक्षण ज्ञान और अनाकुलता लक्षण सुख होकर परिणमित होता है।** लो! इसकी व्याख्या आयेगी विशेष। स्वयमेव स्व-परप्रकाशतालक्षण ज्ञान। स्व-परप्रकाशलक्षण ज्ञान और अनाकुलतालक्षण सुख, यह होकर आत्मा परिणम जाता है। यह व्याख्या आयेगी.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १३, शुक्रवार, दिनांक २०-०९-१९६८
गाथा - १९ से २१, प्रवचन - १८

१९वीं गाथा। टीका का थोड़ा अन्तिम भाग है। प्रवचनसार। यहाँ आया, देखो। शुद्ध उपयोग के सामर्थ्य से जिसे मोहकर्म का अभाव हुआ है। अन्तिम आया था। **समस्त मोहनीय के अभाव के कारण अत्यन्त निर्विकार शुद्ध चैतन्य स्वभाववाले आत्मा का...** शुद्ध चैतन्यस्वभाववाले आत्मा को **अनुभव करता हुआ...** आत्मा स्वयं को शुद्ध त्रिकाली चैतन्य आनन्द और शुद्धस्वभाव के अन्तर्मुख शुद्ध उपयोग के आचरण द्वारा मोह का नाश होने से शुद्धस्वभाव को अनुभवता हुआ **स्वयमेव स्व-परप्रकाशता लक्षण ज्ञान...** स्वयं ही ज्ञानरूप परिणम जाता है, कहते हैं। ज्ञानरूप से सर्वज्ञपदरूप से आत्मा ज्ञान की शक्ति जो पूर्ण है, ऐसी व्यक्तरूप से पूर्ण स्वयं परिणम जाता है। सर्वज्ञपना, वह पर्याय में पूर्ण हो जाता है। समझ में आया?

सर्वज्ञ जो स्वभाव आत्मा का त्रिकाल, उसे शुद्ध उपयोग अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्परहित शुद्ध उपयोग के आश्रय द्वारा मोह, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय का नाश होने से आत्मा ही स्वयं अपनी ज्ञान की पूर्ण अवस्थारूप से परिणम जाता है। केवलज्ञानरूप से आत्मा परिणम जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देखो, स्व-परप्रकाशकलक्षण ज्ञान है वह। ज्ञान कैसा है? कि स्व को जाने और पर को जाने। तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसी अपनी पर्याय का स्व-परप्रकाशक पर्याय का स्वभाव है। समझ में आया? देखो! यह ज्ञानतत्त्व अधिकार है। अर्थात् आत्मा ज्ञानस्वरूप त्रिकाल है, उसका अन्तर आश्रय करने से शुद्ध उपयोग के आचरण द्वारा चार कर्म का नाश होने से आत्मा स्वयं निर्विकारी चैतन्य के परिणमनरूप से ज्ञानरूप से परिणम जाता है। स्व-परप्रकाशक ज्ञान की अवस्थारूप से हो जाता है। जो जिसका साध्य था, वह पूर्ण हो जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

और अनाकुलता लक्षण सुख होकर परिणमित होता है। लो! आनन्द जो पूर्ण आनन्द का ध्येय था, धर्मी का ध्येय तो पूर्ण आनन्दरूप से परिणमना, (वह) उसका साध्य और ध्येय है। वह अपने भगवान आत्मा को ज्ञान और आनन्द ऐसे स्वभाव का

आश्रय लेकर जो पर्याय में अनाकुलतालक्षणरूप आनन्दरूप परिणम गया। उस आनन्द के लिये, उस ज्ञान के लिये इन्द्रियादि निमित्तों की आवश्यकता नहीं है।

मुमुक्षु : तो दूसरे को निमित्त की आवश्यकता है, ऐसा हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे को होता है। आवश्यकता नहीं, दूसरे को होता है। इसे होता नहीं। होता है दूसरे को। होता है तो भी काम तो स्वयं से ही करता है। ऐसा कि इन्द्रिय हो तो ज्ञान होता है, इन्द्रिय गयी और अब ज्ञान कैसे रहा? ऐसा प्रश्न है यहाँ तो। पहले से इन्द्रियाँ थीं, तब ज्ञान तो स्वयं से ही था। समझ में आया? तो ऐसा कहे, इन्द्रियाँ गयीं, तब अब ज्ञान कैसे रहा? कि ज्ञान तो अतीन्द्रिय ज्ञान स्वयं अपना परिणमन कर डाला, इसलिए रहा। आनन्दरूप से कैसे हुआ? ऐसा कहे। इन्द्रियाँ हों तब तो और जरा ऐसा लक्ष्य करके ऐसा... परन्तु आनन्द उसमें है ही कहाँ? अनाकुल आनन्द अपना स्वरूप है। ज्ञानतत्त्व है, इसलिए ज्ञान में ज्ञानशक्ति पूर्ण है अन्दर, आनन्द है, उसके आश्रय से अन्दर ज्ञान और आनन्द की पर्यायरूप आत्मा परिणम गया। उसे इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं। देखो!

इस प्रकार आत्मा का, ज्ञान और आनन्द स्वभाव ही है। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञान की अनुभूति करे, आनन्द का अनुभव करे। वह तो उसका स्वभाव है। समझ में आया? **ज्ञान और आनन्द तो स्वभाव ही है।** जो अन्दर ज्ञान और आनन्द स्वरूप जो वस्तु थी, उसरूप से पर्याय में परिणम गया। ज्ञान और आनन्द उसका स्वभाव था, वह प्रगट हो गया। कहो, समझ में आया? वह धर्मी को प्राप्त करने का, वह प्राप्त किया, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : प्राप्त की प्राप्ति हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गयी।

और स्वभाव पर से अनपेक्ष होने... देखो! स्वभाव को पर की अपेक्षा नहीं होती। **इन्द्रियों के बिना भी आत्मा के ज्ञान और आनन्द होता है।** लो! यहाँ तो ऐसा कि ऐसा ज्ञान हुआ, उसे इन्द्रियाँ नहीं मिले और ऐसा कैसे? परन्तु यों ही इन्द्रियों के कारण ज्ञान यहाँ भी नहीं था। समझ में आया? विशेषरूप से ज्ञान सामान्य था, वह विशेषरूप से

होता था, वह कहीं इन्द्रियाँ हैं, इसलिए होता था, ऐसा है ? वही सामान्य ज्ञान शक्तिरूप से—अनहद स्वभावरूप से था, वह पर्याय में पूर्णरूप से ज्ञान और आनन्दरूप परिणम गया। कहो, समझ में आया ? उसका नाम केवलज्ञान और उसका नाम मोक्षदशा। वह मोक्षदशा शुद्ध उपयोग द्वारा होती है, ऐसा कहते हैं। और वह शुद्ध उपयोग अन्तर में आश्रय करे, तब प्रगट होता है। समझ में आया ?

कहते हैं कि ज्ञान और आनन्द तो तेरा स्वभाव ही है, ऐसा कहते हैं। वह आनन्द कहीं बाहर से लाना नहीं पड़ता। आनन्द और ज्ञान तेरा स्वभाव है। उसमें एकाग्र होने से पर्याय में (प्रगट होता है)। द्रव्य-गुण में था, पर्याय में पूर्ण ज्ञान और आनन्द हो जाता है। जो स्वभाव था, वह प्रगट हो गया, इस नाम मोक्ष। कहो, समझ में आया ? कहाँ भटकाभटक करता हे बाहर! कहीं से मानो बाहर से ज्ञान आयेगा, बाहर से सुख आयेगा।

मुमुक्षु : केवलज्ञान हो तब की बात है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! यहाँ अभी की बात है। अभी ही कहते हैं, तेरा स्वरूप जो ज्ञान और आनन्द है, उसमें एकाग्र हो तो ज्ञान और आनन्द आयेगा। पूर्ण एकाग्र हो तो पूर्ण होगा। यह बात करते हैं यहाँ। समझ में आया ? अपना स्वभाव ही ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। तो स्वरूप, स्वभावभाव भाव उसका है। उसकी सन्मुखता होकर जो ज्ञान-दर्शन और आनन्द प्रगट हो, उसका नाम धर्म। समझ में आया ? उसका नाम धर्म। और उस धर्म के फलरूप से उत्कृष्टरूप से हो केवलज्ञान आनन्दरूप परिणम जाये, वह धर्म का फल। धर्म कहा न शुद्ध उपयोग ? शुद्ध उपयोग अर्थात् धर्म, ऐसा। समझ में आया ?

भावार्थ :- आत्मा को ज्ञान और सुखरूप परिणमित होने में इन्द्रियादिक पर निमित्तों की आवश्यकता नहीं है;... समझ में आया ? ऐसा है कि यहाँ तो निमित्त (था, इसलिए ज्ञान हुआ), परन्तु यह ज्ञान बढ़ा, उसके लिये कोई निमित्त की आवश्यकता है ? ऐसा कहते हैं। बढ़ा न बहुत! कि उसके लिये कुछ ? नहीं। वह तो शक्ति थी, वह प्रगटरूप से हुई, स्वयं परिणमकर स्वयं खड़ा हुआ, उसमें इन्द्रियों की आवश्यकता

नहीं। परन्तु इसे विश्वास नहीं आता। यह मैं एक पूरा भगवान हूँ और परिपूर्ण परमेश्वर की शक्ति का पिण्ड ही मैं हूँ। समझ में आया ?

सम्यग्दृष्टि, सम्यग्दृष्टि पर्याय, वह द्रव्य को पूजती है। समझ में आया ? उस द्रव्य को पूजने से उसे अन्तर में आनन्द और ज्ञान प्रगट होता है। और वह ज्ञान और आनन्द, शान्ति आदि समभाव प्रगट हुआ, उसके द्वारा... चारित्र की बात ली थी न! चारित्तं खलु धम्मो अर्थात् साम्यभाव। अन्तर में वीतरागरूप से परिणति प्रगट होना, आत्मा के सम्यग्दर्शन, शुद्ध चैतन्य वस्तु की प्रतीति, अनुभव करना और उसका ज्ञान और उस पूर्वक वीतरागी परिणति-पर्याय, उसका नाम चारित्र कहा जाता है। उस चारित्र के फलरूप से ज्ञान और आनन्दरूप से परिणम जाये, वह उसका फल है। समझ में आया ?

आत्मा को ज्ञान और सुखरूप परिणमित होने में... अर्थात् होने में **इन्द्रियादिक (इन्द्रिय-मन आदि) पर निमित्तों की आवश्यकता नहीं है;...** समझ में आया ? **क्योंकि जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप स्व-परप्रकाशकता है, ऐसा ज्ञान...** स्व-पर का प्रकाशपना, ऐसा तो उसका—जीव का स्वयं का स्वभाव है, ऐसा जो ज्ञान। **और जिसका लक्षण अनाकुलता है, ऐसा सुख आत्मा का स्वभाव ही है।** कहो, समझ में आया ? यह तो ज्ञान अधिकार है। ज्ञानस्वरूप से स्वयं परिणमकर आनन्द और ज्ञानरूप हो जाता है, ऐसा ज्ञान बराबर जानता है। समझ में आया ?

★ ★ ★

गाथा - २०

अब अतीन्द्रियता के कारण ही शुद्ध आत्मा के (केवली भगवान के) शारीरिक सुख दु:ख नहीं है, यह व्यक्त करते हैं:- इस आत्मा को केवलज्ञान और केवलदर्शन हो, उसे आहार नहीं होता, कवलाहार नहीं होता, ऐसा सिद्ध करते हैं। आनन्दरूप स्वयं हुआ, जहाँ इन्द्रियाँ नहीं, फिर अब क्या हुआ? समझ में आया? भगवान अपने आनन्द के स्वरूप में आरूढ़ होकर आनन्दरूप परिणम गया, ऐसे भगवान केवली को आहार नहीं होता, क्षुधा नहीं, तृषा नहीं, इसलिए उन्हें कवलाहार, आहार भगवान को होता नहीं, ऐसा कहते हैं। आता है न? ...अणगार लाये आहार। नहीं आता? (श्वेताम्बर के) भगवती (सूत्र) में आता है। ऐई! रोग हुआ भगवान को छह महीने। महावीर भगवान को छह महीने रोग हुआ, ... एक था, उसने तेजोलेश्या मारी... रोग हुआ, फिर दवा लाये। समझे न? फिर खाया और रोग मिट गया। लो! ऐसा श्वेताम्बर में आता है। ...भाई! सुना है न? बहुत सुना है। भगवानभाई! तुम तो परदेश में बहुत रहे न, सुना नहीं होगा। कहो, समझ में आया? भाई! ऐसा नहीं होता।

जहाँ आत्मा की आनन्ददशा अन्दर स्वरूप है आत्मा का, ऐसे आनन्द का जहाँ सम्यग्दर्शन और ज्ञान और चारित्र प्रगट हुआ, और उसके फलरूप से केवलज्ञान प्रगट हुआ, उसे फिर आहार कैसा? पानी कैसा? रोग कैसा? उसे नहीं होता। उसे देव की खबर नहीं। समझ में आया? अच्छन्न आहार ऐसा और कहते हैं। आहार ले सही, परन्तु लोगों को दिखता नहीं। ऐसा अतिशय आता है उसमें। न्यालभाई! अच्छन्न आहार। अरे! भाई! केवलज्ञान, बापू! तुझे खबर नहीं। भगवान आत्मा अकेला ज्ञान और आनन्द का समूह इकट्ठा, उस ज्ञान और आनन्द का समूह-पुंज प्रभु है। उसमें अन्तर में एकाग्र होकर जहाँ पूर्ण शक्ति की प्रगट दशा व्यक्त-प्रगट हो गयी, उसे फिर आहार कैसा? वह रोग कैसा शरीर में? उसे पानी कैसा? समझ में आया? वह कवलाहार ले और क्षुधा मिटे, वह तो सब छद्मस्थ की बातें हैं। समझ में आया? उसे देव के स्वरूप की खबर नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। सम्प्रदाय पड़े, भंग पड़े भंग, भाग पड़ गये। विवाद झगड़ा-झगड़ा खड़ा किया।

यह बात यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव २०वीं गाथा में कहते हैं, लो!

सोक्खं वा पुण दुक्खं केवलणाणिस्स णत्थि देहगदं।
जम्हा अदिंदियत्तं जादं तम्हा दु तं णेयं॥२०॥

केवलज्ञानी को नहिं होते, दैहिक सुख या दुक्ख अहो!।
क्योंकि प्रभु अब हुए अतीन्द्रिय, इसीलिए ऐसा जानो॥२०॥

समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा त्रिलोकनाथ महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं सीमन्धर भगवान, उनके पास कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। वहाँ आठ दिन रहे थे, मुनि थे, ज्ञानी थे, वहाँ से आकर यह सब शास्त्र रचे हैं। कहते हैं, भाई! आत्मा में जहाँ अनाहारीस्वरूप ही आत्मा का है, ऐसी जहाँ दशा केवल (ज्ञान) और आनन्द जहाँ प्रगट हुआ, उसे फिर आहार लेने की वृत्ति, आहार लावे और आहार खाये और क्षुधा मिटे—(यह वस्तु नहीं)। केवलज्ञान के स्वरूप को विकृत कर डाला है। समझ में आया? सच्चे अरिहन्त सर्वज्ञदेव... जादवजीभाई! सुना है या नहीं सब वहाँ? कलकत्ता, सब सुना होगा, फलाना है और ढींकणा है सब। जयसेनाचार्य में बहुत लिखा है, अन्दर टीका में बहुत बातें लिखी हैं। २०वीं गाथा।

अन्वयार्थ :- केवलज्ञानी के शरीर सम्बन्धी सुख या दुःख नहीं है,... शरीर में क्षुधा लगे, इसलिए दुःख हो और आहार मिलने के पश्चात् उन्हें साता हो, ऐसा है नहीं। समझ में आया? उसमें बहुत डाला है, अन्दर लिखा है, देखो! '**अथोच्यते—तस्यातिशय-विशेषात्प्रकटा भुक्तिर्नास्ति प्रच्छन्ना विद्यते।**' एक शब्द है, लाईन में है। यह खोटी बात है, ऐसा कहते हैं। '**तर्हि परमौदारिकशरीरत्वाद्भुक्तिरेव नास्त्ययमेतातिशयः किं न भवति।**' परमौदारिकशरीर हो गया है। सर्वज्ञदशा जहाँ हुई, वहाँ शरीर के रजकण परमौदारिक हो जाते हैं। उन्हें रोग नहीं होता, क्षुधा नहीं होती, तृषा नहीं होती, ऐसी दशा परमात्मा पूर्ण परमेश्वर हुए। चार घातिकर्म का नाश हुआ। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य (प्रगट हुए)। समझ में आया? ऐसे भगवान किसी को वन्दन नहीं करते, वे भगवान आहार नहीं करते।

केवलज्ञानी के शरीर सम्बन्धी सुख या दुःख नहीं है, क्योंकि अतीन्द्रियता

उत्पन्न हुई है, इसलिए... यह सिद्धान्त रखा। अतीन्द्रिय हुए, उन्हें इन्द्रिय सम्बन्धी का आहार और साता, वह हो कहाँ से? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अनन्त-अनन्त अमृत के स्वाद के भोगी भगवान। आहाहा! केवलज्ञानी परमात्मा अर्थात् अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द के भोगी। उन्हें फिर आहार हो और... समझ में आया? यह भगवती (सूत्र) में आता है। छह महीने तक भगवान को रोग रहा। पश्चात... समझे? एक शिव अणगार थे। उन्हें ऐसा लगा कि अरे रे...! भगवान को यह रोग? भगवान मरण कर जायेंगे। ऐसी सब बातें। फिर शिव अणगार एक वाडी में आगे चले गये गहरे-गहरे। जाकर रोये, बहुत रोये मुनि। रोने लगे। फिर भगवान ने कहलवाया, जाओ बुलाओ सिंहा को। हे सिंहा! मैं तो अभी सोलह वर्ष गन्धहस्तिरूप से रहनेवाला हूँ। समझ में आया? और फिर उसने आहार बनाया है मेरे लिये, वह लायेगा नहीं, घोड़ा के लिये बनाया है कोळापाक, वह लाना। ऐसा भगवान कहते हैं। यह सब बातें।

मुमुक्षु : बिजोरापाक।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिजोरापाक, ऐसा है। भाई! यह बात नहीं होती, प्रभु! भाई! उसे देव के स्वरूप की ही खबर नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम भी अन्दर थे या नहीं? तुम और सेठ थे। ऐई! न्यालभाई! यह उपाश्रय के प्रमुख। आहाहा! कुछ मध्यस्थ की वीतरागी बात है, बापू! आहाहा!

यहाँ आत्मा वीतरागी विज्ञानघन का पिण्ड ही आत्मा है। 'जिनपद निजपद एकता।' ऐसा वीतराग विज्ञानघन स्वरूप ही प्रभु है। उसका आश्रय करके वीतराग विज्ञान की पर्यायरूप से पूर्ण दशा परिणमित हुई, उसे अब आहार क्या? उसे पानी क्या? उसे रोग क्या? समझ में आया? वह देव के स्वरूप को विपरीत कर दिया है। समझ में आया? गुरु के स्वरूप को भी वस्त्र और पात्रसहित मुनिपना, वह गुरु के स्वरूप को वीतरागमार्ग से विपरीत कर दिया। समझ में आया? यह समझाने के लिये यहाँ भगवान अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि भाई! केवलज्ञानी को तो अतीन्द्रिय आनन्दपना हुआ है न! इन्द्रिय सम्बन्धी का आहार और इन्द्रिय सम्बन्धी की

साता, वह तो उन्हें होती नहीं। जगत के तीन काल-तीन लोक के ज्ञेय जिसमें—ज्ञान में ज्ञात होते हैं, ऐसी इन्द्रियाँ ज्ञान में ज्ञेयरूप से जानते हैं। समझ में आया? **इसलिए ऐसा जानना चाहिए।** है न? '**णेयं**' '**अदिंदियत्तं जादं तम्हा दु तं**' ऐसा। अतीन्द्रियदशा जहाँ प्रगट हुई भगवान आत्मा को... अतीन्द्रियस्वरूप तो है, परन्तु उसकी सम्यग्दर्शन पहली अनुभव में प्रतीति होने पर, यह भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञानमूर्ति ही है, ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर उसके भान में आ जाता है कि यह तो केवलज्ञान की मूर्ति यह है। उसमें से केवलज्ञान प्रगट होगा और उसमें पूर्ण आनन्द प्रगट होगा। कोई दूसरी क्रिया से नहीं, वह इसमें से होगा, ऐसी प्रतीति और ज्ञान जहाँ सम्यक् होने पर होता है, उसे साम्यभाव जहाँ प्रगट हुआ चारित्र का वीतरागी दशा... समझ में आया? बात अध्यात्म की है न निश्चय की, इसलिए बाह्य ली नहीं। अन्तिम अधिकार में लेंगे कि मुनि की दशा तो जिनवर ने कही हुई निर्ग्रन्थ नग्नदशा होती है। समझ में आया? यह वहाँ चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में स्पष्ट करेंगे।

यहाँ तो ज्ञानतत्त्व निश्चय अधिकार है न, इसलिए उसका ज्ञानस्वरूप है, ऐसी समभाव की प्रगट दशा होने पर उसके फलरूप से केवलज्ञान हुआ, उसे अब आनन्द और ज्ञान है, उसे इन्द्रियाँ नहीं, इसलिए उसे क्षुधा और तृषा और रोग नहीं अथवा दुःख है नहीं अथवा दुःख का अभाव करने का साता सुख भी है नहीं। अनन्त आनन्द—आनन्द प्रगट हुआ, अब फिर दुःख कहाँ और सुख कहाँ बाहर में? समझ में आया? वहाँ तो (श्वेताम्बर में) ऐसा लेख है, चन्दना महासती का। आहार लिया, निरोग हुए। मजबूत शरीर और इन्द्र प्रसन्न हुए, सब प्रसन्न हुए, पुण्य... रोग मिट गया भगवान को। प्रसन्न हो न, पिता को रोग मिटे तो पुत्र प्रसन्न होता है। लोक जैसी बात है, बापू! समझ में आया? आहाहा! परमेश्वर दशा। केवलज्ञानी को फिर आहार कैसा? पानी कैसा? रोग कैसा? लो, यहाँ तो भगवान हो, भगवान घोड़ी पर चढ़े। और फिर भगवान लेने आवे मरे तब। एक जगह तो ऐसा आया था कि भगवान आये सही लेने, फिर उनका घर कहाँ, ऐसा पूछा। बड़ा .... अरेरे! यह भगवान को तूने कहाँ चित्रित कर डाला! आहाहा! समझ में आया?

यह सर्वज्ञ परमेश्वर स्वयं ही परमात्मारूप से परिणम गया आत्मा, उस परमात्मा

का शरीर ही परमौदारिक होता है। स्फटिक जैसा शरीर हो जाता है। उसे रोग नहीं होते, क्षुधा नहीं होती, तृषा नहीं होती। समझ में आया? आत्मा की पूर्ण दशा होने पर क्या होता है, उसकी खबर नहीं, इसका अर्थ कि देव के स्वरूप की खबर नहीं। बहुत फेरफार।

टीका :- जैसे अग्नि को लोहपिण्ड के तप्त पुद्गलों का समस्त विलास नहीं है... क्या कहते हैं? **(अर्थात् अग्नि लोहे के गोले के पुद्गलों के विलास से-उनकी क्रिया से भिन्न है),...** अग्नि भिन्न हो न अकेली पृथक्। लोहखण्ड के गोले में प्रविष्ट नहीं, ऐसी अग्नि भिन्न है। **अग्नि को लोहपिण्ड के तप्त पुद्गलों का समस्त विलास...** क्रिया उससे भिन्न है। **उसी प्रकार शुद्ध आत्मा के...** शुद्ध आत्मा, भगवान आत्मा जहाँ चौथे गुणस्थान से सम्यक् आनन्द के अंश का स्वाद आया... समझ में आया? सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा के आनन्द का स्वाद आया और उस स्वाद का परिपूर्ण परिणमन हो गया, उसका नाम परम आनन्द और केवलज्ञान। समझ में आया? कहते हैं कि ऐसे शुद्ध आत्मा को... शुद्ध आत्मा अर्थात् यहाँ केवली भगवान पर्याय प्राप्त, उन्हें लेना है, केवलज्ञानी भगवान को (लेना है)। जैसे अकेली अग्नि को घन की चोट नहीं पड़ती। समझ में आया? 'अग्नि सहे घनघात' आता है न! 'लोह की संगति पायी। कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पायी।' अग्नि यदि लोहे में प्रविष्ट करे तो घन पड़ते हैं। अकेली रहे, उसे पड़ते हैं? इसी प्रकार भगवान आत्मा राग और दया, दान के विकल्प से भिन्न पड़कर जिसने आत्मा का दर्शन और श्रद्धा सम्यग्दर्शन प्रगट किया और पश्चात् वीतरागी साम्यभाव प्रगट करके जिसने केवलज्ञान प्रगट किया, ऐसे शुद्धात्मा को... समझ में आया?

इन्द्रियसमूह नहीं... ऐसा कहते हैं। जैसे लोहे का गोला नहीं, और उसे इन्द्रियसमूह नहीं। आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा हुए आत्मा, उन्हें इन्द्रिय का समूह है ही नहीं। वह तो अतीन्द्रिय स्वरूप हो गये। समझ में आया? जैसे जगत के आकाश के प्रदेश भिन्न जाने, वैसे यह इन्द्रियाँ है, ऐसे ज्ञेयरूप से, भिन्नरूप से, ज्ञान उसकी पर्याय को परिपूर्ण जानने से उसे जानता है। समझ में आया? **इन्द्रियसमूह नहीं...**

शुद्धात्मा भगवान आत्मा अतीन्द्रियदशा की पर्याय पूर्ण हो गयी। अतीन्द्रिय आया था न उसमें? १९ में आया था। **'अतीन्द्रियः जातः'** उसे इन्द्रियसमूह नहीं।

इसीलिए जैसे अग्नि को घन के घोर आघातों की परम्परा नहीं है... कैसे? जैसे अग्नि अकेली पृथक् अग्नि हो, उसे घोर घन की चोट, उसकी मार, उसकी परम्परा। लगातार पड़ती नहीं यह अग्नि? लोहे में अग्नि डाले न। दो आमने-सामने हो। धड़ाक... धड़ाक... धड़ाक... बोलते हों। अग्नि हो न अग्नि? लोहे में घुस गयी हो उसे और एकदम स्थिर हो जाये वापस तो नरम न हो। बड़े घन पड़े। एक घन उसकी ओर लेकर बैठा हो, एक ओर इसका जहाँ घन उठे वहाँ वह मारे, घन पड़े। हमारे पालेज में था। दुकान के पीछे था। सुतार। वोरा का सुतार था। धमाधम करे।

कहते हैं, **अग्नि को घन के घोर आघात...** लगातार। **आघातों की परम्परा...** वापस। एक के बाद एक, एक के बाद एक ऊपर पड़े। समझ में आया? उस अग्नि को जैसे अकेली को नहीं, उसी प्रकार शुद्धात्मा को इन्द्रिय के समूह का दुःख-सुख है नहीं। **(लोहे के गोले के संसर्ग का अभाव होने पर घन के लगातार आघातों की भयंकर मार...)** लगातार चोट की मार। **(अग्नि पर नहीं पड़ती) इसी प्रकार शुद्ध आत्मा के शरीर सम्बन्धी सुख-दुःख नहीं हैं।** भगवान शरीर से भिन्न पड़ गया है, केवलज्ञान पूर्ण दशा हो गयी है, ऐसे परमेश्वर परमात्मा वीतराग देह में रहे होने पर भी उन्हें शरीरसम्बन्धी सुख-दुःख नहीं है। समझ में आया? जब तक देह छूटे नहीं, तब तक देह में हो, तथापि देहगत सुख-दुःख है नहीं। आहाहा! परमेश्वरदशा केवलज्ञानदशा आत्मा का पूरा रूप। केवलज्ञान और केवलदर्शन अर्थात् आत्मा का पूरा रूप। पूरा रूप, आगे आयेगा। ज्ञान ही उसका पूरा रूप कहा जाता है। अल्पज्ञान को ज्ञान कौन कहता है? समझ में आया? ऐसी पूरी दशा जहाँ साम्यभाव के प्रताप से प्रगट हुई, कहते हैं उसे इन्द्रिय का समूह ही नहीं, तो शरीरगत, शरीर के अवयव हैं इन्द्रियाँ, तो शरीर ही जहाँ नहीं, इन्द्रियों का समूह नहीं, इसलिए शरीरसम्बन्धी सुख-दुःख की दशा उन्हें नहीं। अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होता है। आहाहा! समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव केवलज्ञानी परमात्मा महावीर भगवान जब यहाँ

विराजते थे, वहाँ भी यही था। भगवान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं श्री सीमन्धर परमात्मा, वे भी ऐसा ही केवलज्ञानी अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में हैं। उन्हें भी शरीर सम्बन्धी रोग, क्षुधा, आहार-पानी है नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह ज्ञानतत्त्व की पूरी दशा ऐसी होती है, ऐसा बतलाना है, भाई! ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन है न? आत्मा ज्ञानतत्त्व है और उस ज्ञानतत्त्व की प्राप्ति जहाँ पूर्ण हुई, वहाँ आत्मा ऐसा होता है। उसने आत्मा बराबर जाना, माना कहलाये, परन्तु जिसे क्षुधा और तृषा लगे वह आत्मा जानता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार शुद्ध आत्मा के शरीर सम्बन्धी सुख-दुःख नहीं हैं। सुख-दुःख कैसे? आहाहा! तब कहे, असाता का उदय हो। उदय तो शरीर के रजकणों में हो, उसमें उसे क्या? समझ में आया? वह तो सब तर्क रखते हैं। भाई! यह वस्तु आग्रह करनेयोग्य नहीं। ज्ञानतत्त्व अधिकार है न, तो ज्ञानस्वरूप वह आत्मा, ज्ञानस्वरूप वह आत्मा और उस ज्ञानस्वरूप से जहाँ परिणमन पूर्ण ज्ञान का हो गया, अब उसे क्या रहा? उसे क्षुधा-तृषा रही, यह क्या? वह तो छद्मस्थ को होता है। अल्पज्ञानी को क्षुधा, आहार की इच्छा हो और आहार आवे। ... इच्छा। वह तो छद्मस्थ को होती है, सर्वज्ञ को नहीं हो सकती। तो जैसे आहार-पानी है, वह तो छद्मस्थ जैसे सर्वज्ञ को ठहराया। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि को, अतीन्द्रिय आनन्द में स्थित है, उसे आहार नहीं। अतीन्द्रिय आननद अनुभव करता है जहाँ। आहाहा! और विकल्प उठे छठवें गुणस्थान में, आहार लेने की वृत्ति मुनि को आवे। जंगल में बाघ की भाँति स्थित होते हैं मुनि! मुनि किसे कहना? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में लवलीन होते हैं अन्दर। दुनिया देखे कि यह दुःख में है और कुछ आहार नहीं, पानी नहीं और हवा नहीं, धूप है, छाया नहीं। तुझे खबर नहीं। समझ में आया? भगवान अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु है, उसकी दृष्टि-ज्ञान होकर उसमें रमते हैं, उन्हें मुनि कहते हैं। ऐसे मुनि को भी जहाँ आहार-पानी का विकल्प नहीं सातवें (गुणस्थान में)। समझ में आया? तो जहाँ केवलज्ञान हुआ, उन्हें

फिर आहार और पानी, पात्र (लेकर) लेने जाये। केवली जाते होंगे आहार लेने ? निकलते होंगे ? सब वस्तु की स्थिति विपरीत कर डाली है। मार्ग का स्वरूप, देव का, गुरु का पूरा बदल डाला है। परन्तु अपनी मान्यता पर चोट पड़ती है, उसे कठोर लगता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कठोर लगता है। भाई! यह तो हित की बात है। बापू! आत्मा ज्ञानस्वरूप है, वह ज्ञान का गंज प्रभु है, और उसके साथ आनन्द का पुंज है वह प्रभु आत्मा अर्थात् ? उसकी दशा जहाँ जैसी है, वैसी स्वभाव की पूर्णता हुई, ऐसे परमात्मा, ऐसे अरिहन्त भले देह में हो, पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान है, भाई! उन्हें आहार और पानी नहीं होता। समझ में आया ? बात में बहुत अन्तर है। भीखाभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या सुना है ? और कितने ही अभी सबको इकट्ठा करते हैं, मिलाते हैं। वह भी सच्चा और यह भी सच्चा, ऐसा कहते हैं।

भावार्थ :- केवली भगवान के शरीर सम्बन्धी क्षुधादि का दुःख... क्षुधादि दुःख नहीं, तृषा का दुःख नहीं, **या भोजनादि का सुख नहीं होता, इसलिए उनके कवलाहार नहीं होता।** कवल (ग्रास) कहाँ से लाये ? केवलज्ञानी परमात्मा को कवलाहार हो नहीं सकता। कर्म के रजकण आवें, समझ में आया ? यह शरीर के रजकण के साथ इकट्ठे (रहें), उसे—आत्मा को कुछ है नहीं। यह २० (गाथा) हुई। यह ज्ञानतत्त्व (अधिकार) है न, अर्थात् ज्ञानतत्त्व, वह ज्ञानतत्त्व ही आत्मा है। ज्ञानप्रधान ज्ञानगुण परमभाव से लो तो आत्मा ज्ञानस्वरूप ही, चैतन्यस्वरूप ही है और उस चैतन्यस्वरूप की अन्तर दृष्टि, ज्ञान और साम्यभाव से जहाँ प्रगट दशा पूर्ण हो, उसे अन्तर में वह अनाहारदशा है, अमृत का आहार अन्दर है। ऐसा अमृत का आहार... समझ में आया ?

★ ★ ★

गाथा - २१

२१ (गाथा)।

परिणमदो खलु णाणं पच्चक्खा सव्वदव्वपज्जया।
सो णेव ते विजाणदि उग्गहपुव्वाहिं किरियाहिं॥२१॥

इन्द्रियाँ नहीं तो मन नहीं, अवग्रह या ईहा से उन्हें जानना नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। एक समय में भगवान तीन काल-तीन लोक जानते हैं। इतना आत्मा उस पर्याय से पूर्ण हुआ, वही आत्मा। यहाँ आत्मा की श्रद्धा कराते हैं कि ऐसा आत्मा। समझ में आया? ज्ञानस्वरूपी भगवान वह ज्ञान की पर्यायरूप से पूर्ण परिणमे, ऐसा वह केवलज्ञान है। उसे क्रम-क्रम से विचार और अवग्रह, ईहा होते नहीं। यह कहते हैं, देखो!

सभी द्रव्य-पर्याय लखें प्रत्यक्ष, जिन्हें है केवलज्ञान।
अवग्रह-ईहा आदि पूर्वक, नहीं जानते हैं भगवान॥२१॥

यह आत्मा का ज्ञान पूरा रूप कैसा होता है, ऐसा बताते हैं। इसे आत्मा को पहिचानना है या नहीं? है, ऐसी इसे श्रद्धा करनी है या नहीं? समझ में आया? तो कहते हैं।

अन्वयार्थ :- वास्तव में ज्ञानरूप से (केवलज्ञानरूप से) परिणमित होते हुए केवलीभगवान के सर्व द्रव्य-पर्यायें प्रत्यक्ष हैं;... ज्ञान की पूरी दशा परमात्मा केवली को प्रगट हुई, उसे एक समय में तीन काल-तीन लोक के द्रव्य-पर्याय प्रत्यक्ष हैं। इसमें अभी बड़ा विवाद है।

मुमुक्षु : दिगम्बर में पड़े हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिगम्बर में विवाद। वे कहे कि यह पर्याय जहाँ हो तब जाने। क्योंकि निमित्त कैसा आवे और कैसे हो (कैसे खबर पड़े)? अरे! परन्तु भगवान के ज्ञान में तो एक समय में तीन काल के द्रव्य, उनके गुण और उनकी पर्याय, उसमें वह कौन निमित्त यह सब एक समय में भगवान जानते हैं। ऐसा पूरा आत्मा, उसकी पूरी दशा का स्वरूप ही इतना है। आहाहा! भाई! यह तेरी जाति की पूर्णता ही इतनी है, ऐसा

कहते हैं, भले केवली की बात करे। समझ में आया ? भाई ! आत्मा पर्याय से अपूर्ण हो, वह कहीं उसका पूरा रूप है ? द्रव्य से पूरा, गुण से पूरा और पर्याय से पूर्ण दशा हो, वह आत्मा का पूर्ण स्वरूप है। समझ में आया ?

कहते हैं कि **वास्तव में ज्ञानरूप से (केवलज्ञानरूप से) परिणमित...** होनेवाला-होनेवाला। परिणमा अर्थात् परिणमा, हुआ। ऐसे **केवलीभगवान के सर्व द्रव्य-पर्यायें प्रत्यक्ष हैं;...** लो, यह विवाद उठे फिर। सर्व द्रव्य प्रत्यक्ष है तो भगवान ने देखा वैसा होगा, तो फिर हमारे करना क्या रहा ? और ऐसा कहे। अरे ! भाई ! केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक के द्रव्य-पर्याय जाने, ऐसे अस्तित्व का स्वीकार जहाँ हो, उसका स्वीकार द्रव्य के सन्मुख होकर ही होता है। जिसमें सर्वज्ञपद पड़ा है, उसके लक्ष्य से ही होता है। समझ में आया ? उसमें स्वसन्मुख का पुरुषार्थ आ गया।

मुमुक्षु : .... ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा ! पुरुषार्थ क्या बाहर कूदना है ?

भगवान आत्मा वस्तु ऐसा चैतन्य मांडला है पूरा सूर्य। समझ में आया ? चैतन्य का... मांडला से क्या याद आया ? वह चक्रवर्ती जाता है न ? वह खण्ड साधने। तीन खण्ड साधने जाता है। यहाँ भरत की ओर के खण्ड में है। फिर बीच में पचास योजन का आता है लम्बा वैताकपर्वत। घोर अन्धेरा। फिर मणिरत्न का मांडला भरे ऐसा। जैसे खड़ी से किया न खड़ी से। खड़ी से जैसे यह बनावे, वैसे मणिरत्न का बनावे। एक हजार देव सेवा करें। मणिरत्न से ऐसे मांडला बनावे। प्रकाश एक-एक योजन के अन्तराल में तो सेना चल जाये। समझ में आया ? उसी प्रकार यह पूरा मणिरत्न का मांडला चैतन्य मणिरत्न है पूरा। समझ में आया ?

भगवान आत्मा... कहते हैं, **सर्व द्रव्य-पर्यायें प्रत्यक्ष हैं;...** केवलज्ञान में पूर्ण स्वभाव में। भाई ! ऐसी आस्था भी प्रगट होने पर उसे सम्यग्दर्शन होता है। वह आ गया पहले जयसेनाचार्य में। समझ में आया ? ओहो ! जिसे यह पर्याय ऐसी पूर्ण तीन काल-तीन लोक के द्रव्य-गुण की पर्याय को जाने, ऐसी एक पर्याय, ऐसी अनन्त पर्यायों का पिण्ड गुण और ऐसे अनन्त गुणों का पिण्ड द्रव्य, ऐसी जिसे पर्याय में इतनी श्रद्धा करने

जाता है, वहाँ उसे द्रव्य-सन्मुख हुए बिना यह श्रद्धा होती नहीं। यह सर्वज्ञ की प्रतीति होने पर तुझे सम्यग्दर्शन हो जाता है। समझ में आया? ओहो! मैं तो अकेला ज्ञान का पुँज ही हूँ। मुझमें पुण्य-पाप के विकल्प या शरीर कुछ है नहीं। समझ में आया?

सर्व द्रव्य-पर्यायें प्रत्यक्ष हैं;... सर्व में कुछ बाकी रहता होगा? सामान्य को जाने, विशेष को न जाने, और ऐसा कितने ही कहते हैं। इस समय में यह पर्याय इसकी होती है और होगी, ऐसा भगवान नहीं जानते। सामान्य सब जानते हैं। लो! और ऐसा कहते हैं। कितने तर्क उठावे! परन्तु सर्व जानते हैं और अनन्त—सब एक ही है, सुन न! आत्मा की जहाँ शक्ति का पूर्ण पर्याय परिणमन हुआ, अग्नि किसे न जलाये? इसी प्रकार ज्ञान किसे न जाने? पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण। समझ में आया? भगवान परमेश्वर केवलज्ञानी सर्व द्रव्य-पर्यायें प्रत्यक्ष हैं। **वे उन्हें अवग्रहादि क्रियाओं से नहीं जानते।** क्रम-क्रम से जो जानना, वह उन्हें है नहीं। क्रम से कहाँ? अक्रम ज्ञान ही पूरा पूर्ण हो गया न।

टीका :- केवली भगवान इन्द्रियों के आलम्बन से अवग्रह-ईहा-अवाय पूर्वक क्रम से नहीं जानते,... आहाहा! अभी देव—परमेश्वर किसे कहना (इसकी खबर नहीं)। वह दिव्य अर्थात् आत्मा की दिव्य शक्ति का पूर्ण विकास, वह देव। समझ में आया? यह **इन्द्रियों के आलम्बन से अवग्रह...** अर्थात् पहले पकड़े, फिर विचार करे, फिर निश्चय करे, ऐसे **क्रम से केवली भगवान नहीं जानते,...** एक समय में अक्रम से तीन काल-तीन लोक को जानते हैं। अरे! ऐसा आत्मा पर्याय में प्रतीति करना, आहाहा! भाई! यह तो वस्तु की स्थिति यह है। समझ में आया? नौ तत्त्व में मोक्षतत्त्व है या नहीं? तो मोक्षतत्त्व में केवलज्ञानी आये या नहीं? तो मोक्ष की श्रद्धा करने से केवलज्ञान की श्रद्धा होती है। केवलज्ञान की श्रद्धा होने से आत्मा की श्रद्धा होती है, ऐसा कहते हैं। यह केवलज्ञान की एक समय की पर्याय की श्रद्धा करने जाये तो द्रव्य की श्रद्धा हो, तब पर्याय की श्रद्धा होती है। समझ में आया?

भगवान को इन्द्रिय के अवलम्बन से क्रम से जानना नहीं। **(किन्तु) स्वयमेव समस्त आवरण के क्षय के क्षण ही,...** परन्तु अपने स्वयमेव। स्वयं-एव। अपने से, अपने में **समस्त आवरण के क्षय के क्षण ही,...** जहाँ आवरण का क्षय हुआ, उस क्षण

ही... अब कैसे प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं। यह क्षय तो क्षणिक निमित्त की बात की। अब यहाँ कारण क्या लिया है? **अनादि अनन्त, अहेतुक और असाधारण ज्ञानस्वभाव को ही कारणरूप ग्रहण करने से...** कैसे केवल (ज्ञान) प्रगट हुआ? केवलज्ञान कैसे प्रगट हुआ? वैसे तो साम्यभाव का फल बताया पहले। चला आता है। यहाँ वापस कारण रखा ठेठ। अनादि-अनन्त। आदि नहीं, अन्त नहीं। भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु आत्मा ज्ञान। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान कहो या आत्मा कहो। अनादि-अनन्त। आदि नहीं। ज्ञानस्वरूप जो है आत्मा का, उसे आदि नहीं, वह ज्ञानस्वरूप है, उसका अन्त नहीं और सत् है उसे हेतु नहीं। है, उसे हेतु क्या? है, ऐसा जो ज्ञानस्वरूप वस्तु आत्मा का और कैसा? असाधारण। एक ही गुण ऐसा है कि दूसरे में नहीं और दूसरे गुण ऐसे नहीं। समझ में आया? यह असाधारण है। यह ज्ञानगुण अनादि-अनन्त अहेतुक वस्तु। एक गुण है, वैसा दूसरा गुण नहीं और यह गुण दूसरे में नहीं। समझ में आया?

ऐसे **असाधारण ज्ञानस्वभाव को ही कारणरूप ग्रहण करने से...** देखो! ऐसा जो भगवान ज्ञानस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, अहेतु नित्य स्वभाव, ऐसा ज्ञानस्वभाव त्रिकाली भाव, उसे ही कारणरूप से ग्रहण करने से। देखो! उसे—ध्रुव को कारणरूप से ग्रहण करने से ही **तत्काल ही प्रगट होनेवाले केवलज्ञानोपयोगरूप होकर परिणमित होते हैं;...** वह ज्ञानस्वरूप भगवान त्रिकाल उसे कारणरूप से ग्रहण करने से कार्य का केवलज्ञानरूप से कार्य प्रगट होता है। देखो, यहाँ ठेठ लिया। समझ में आया? इन्द्रियाँ नहीं, पूर्व की ज्ञान की पर्याय नहीं, ऐसा वापस। सिद्ध की दशा... पूर्व में चार ज्ञान थे, इसलिए केवलज्ञान हुआ है, ऐसा भी नहीं है। यहाँ तो त्रिकाल ज्ञान सत्... सत्... सत्... ज्ञान सत्... सत्... सत्... वस्तु। उसे **कारणरूप से...** अर्थात् दृष्टि उसमें देने से, एकाकार होने से। उसे कारणरूप से ग्रहण करने से **तत्काल ही प्रगट होनेवाले...** उस क्षण ही प्रगट होने से।

केवलज्ञानोपयोगरूप होकर परिणमित होते हैं;... आत्मा अपने केवलज्ञान के उपयोगरूप होकर परिणमता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह साम्य को शुद्ध उपयोग कहा था। यहाँ केवलज्ञान उपयोग होकर परिणमे, ऐसा कहा। कोई दूसरा

कारण नहीं, ऐसा कहते हैं, केवलज्ञान होने में। वह परमात्मा होने में इन्द्रिय नहीं, संहनन नहीं, वाणी नहीं, विकल्प नहीं, पूर्व की पर्याय नहीं। (कारण एक) त्रिकाल वस्तु। अरे! त्रिकाल अर्थात् ज्ञानमूर्ति अहेतुक अनादि-अनन्त वस्तु को ही आश्रय करने के कारण को ग्रहण करने से, उसी कारण को पकड़ने से एक क्षण में केवलज्ञान उपयोगरूप से होकर परिणमता है। कहो, समझ में आया? कितने अपवास से यह केवलज्ञान होता होगा? बेचारे अपवास करके, लंघन करके मर जाये। कहाँ तेरे अभी भन नहीं होता, कौन है तू? किसे ग्रहण करना चाहिए? किसे कारण बनाकर कार्य कैसे प्रगट करना चाहिए? उसकी खबर बिना... समझ में आया?

प्रगटता अर्थात्? शक्तिरूप से ज्ञानमूर्ति तो है, ध्रुव को पकड़ा तो दशा प्रगट हुई। समझ में आया? जैसे चौंसठ पहरी चरपराई तो जैसे छोटी पीपर में पड़ी ही है। चौंसठ पहरी चरपराहट बाहर आयी। एकाग्र होने से बाहर आयी। वह चौंसठ पर्यायरूप से परिणम गयी। चौंसठ अर्थात् पूरी। इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप, जो स्वभाव त्रिकाली अहेतुक अनादि-अनन्त, उसे ग्रहण करने से अर्थात् उसे कारण बनाने से केवलज्ञानरूपी कार्य की उपयोगदशा प्रगट हो जाती है। आहाहा! कहो, समझ में आया? भाईसाहेब! परन्तु इतनी अधिक बड़ी बात केवलज्ञान की (करते हो)। हमको धर्म की बात करो। इतनी बड़ी बात? यह धर्म की बात करते हैं, बापू! तुझे खबर नहीं।

तू त्रिकाल ज्ञानानन्द है, वह आत्मा। उसे कारण(रूप) ग्रहे तो तुझे सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो। एकधारा से कारण ग्रहे तो केवलज्ञान हो जाये। समझ में आया? केवलज्ञान वापस तुरन्त ही शक्ति का विकास होकर प्रगट होने से पर्याय में केवल अकेला ज्ञान व्यापार होकर हो गया, परिणम गया। देखो! यह चारित्रधर्म और धर्म के फलरूप से केवलज्ञान कैसा होता है, उसका वर्णन है। आहाहा! समझ में आया?

उन्हें... अर्थात् भगवान परमात्मा केवलज्ञानी को **समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का अक्रमिक ग्रहण होने से...** जगत के सभी अनन्त आत्मायें, अनन्तगुणे परमाणु, क्षेत्र अनन्तगुना आकाश आदि, काल—तीन काल और प्रत्येक की पर्याय और भाव प्रत्येक की शक्ति अक्रम से है। भगवान के ज्ञान में सब एक साथ दिखाई देता है। पहले

यह जाने और बाद में यह जाने, ऐसा है नहीं। आहाहा! देखो! पहले केवलज्ञान का उपयोग परिणमे, पश्चात् केवलदर्शन हो, उपयोग समयांतर होता है। खोटी बात है। वस्तु के स्वरूप को जाना नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि **समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का अक्रमिक...** एकसाथ जानना होने से **समक्ष संवेदन की...** समक्ष संवेदन को। समक्ष अर्थात् **(प्रत्यक्ष ज्ञान की)...** वेदन का अर्थ ज्ञान करेंगे। **(प्रत्यक्ष ज्ञान की) आलम्बनभूत...** यह निमित्तभूत। **समस्त द्रव्य-पर्यायें प्रत्यक्ष ही हैं।** भगवान के ज्ञान में... परमेश्वर वह आत्मा, उस आत्मा का पूरा रूप। समझ में आया? एक आत्मा ऐसा हुआ, कहते हैं। उसके अवलम्बन से जो जगत के लोकालोक पदार्थ **समस्त द्रव्य-पर्यायें प्रत्यक्ष ही हैं।** कुछ बाकी स्वरूप है नहीं। ऐसी दशा को केवलज्ञान परमात्मा कहते हैं, ऐसा यहाँ बतलाते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १४, शनिवार, दिनांक २१-०९-१९६८
गाथा - २१, २२, प्रवचन - १९

२१वीं गाथा। क्या कहते हैं? यह ज्ञानतत्त्व का कथन है। अर्थात् क्या? कि आत्मा, वह ज्ञानस्वरूप है। उसका स्वभाव ही ज्ञान है और उस ज्ञान की पूर्णता की प्राप्ति उसके त्रिकाली ज्ञान के आश्रय से होती है। समझ में आया? यह पहला बोल। यहाँ ज्ञानस्वरूप आत्मा ही है। आत्मा अर्थात् ज्ञ स्वभाव, ज्ञानस्वभाव। जिसका स्वभाव है, वह तो अनन्त बेहद ज्ञान है जिसकी शक्ति। ऐसा जो आत्मा, उसे अन्तर में, पहली तो परिपूर्ण वस्तु ज्ञायक है, ऐसी अन्तर्मुख होकर दृष्टि—सम्यग्दर्शन करना, वह धर्म की पहली सीढ़ी है। फिर साम्यभाव अंगीकार करना, वीतरागभाव शुद्ध उपयोग। शुभ-अशुभ परिणामरहित शुद्ध उपयोग ग्रहण करके, यह शुद्ध उपयोग, यह चारित्र है। यह शुद्ध उपयोग है, वह ज्ञान की विशेष निर्मल दशा है। उसमें एकाग्र होने से, वह वस्तुस्वरूप ही जहाँ ज्ञानस्वभाव है, उसकी दृष्टि है, शुद्ध उपयोग है और विशेष त्रिकाली ज्ञायक के आश्रय से जहाँ एकाकार हुआ तो क्षण में उसे केवलज्ञान होता है। यह आत्मा की स्थिति ही ऐसी है, ऐसा वर्णन करते हैं। समझ में आया?

आत्मा द्रव्य है, उसमें ज्ञान है—गुण है, उसमें ज्ञान है, वह ज्ञान से ही भरपूर तत्त्व है। उसमें पुण्य-पाप के विकल्प, शरीर, वाणी, मन है ही नहीं। उसे पूर्ण दशा की प्राप्ति करनी हो तो, वह पूर्ण स्वरूप चिदानन्द ज्ञानमूर्ति है, उसके अन्दर एकाग्र होने से आत्मा स्वयं ही अपने से केवलज्ञानदशारूप से परिणम जाता है। कहो, समझ में आया? ऐसा आत्मा है, ऐसा सिद्ध करते हैं।

भावार्थ। जो आत्मा वस्तु है, एक... एक... एक... एक... आत्मा हों यह, उसके अन्दर जो उसका ज्ञानस्वभाव, जानना उसका गुण है, उसकी **आदि नहीं।** जिसका स्वभाव है, उसे आदि क्या हो? ज्ञान जानना... जानना... जानना... वह जाननेवाला, वह आत्मा और जानना, वह गुण। परन्तु वह गुणस्वभाव, उसकी आदि नहीं, है अनादि से। आदि नहीं **तथा अन्त नहीं....** उस ज्ञानस्वभाव का अन्त—छोर नाश नहीं। **जिसका कोई कारण नहीं...** है उसका कारण क्या होगा? ज्ञान सच्चिदानन्द प्रभु सत् ज्ञानस्वरूप, ऐसा

सत् है ज्ञान, उसे कारण क्या? है उसका कोई कारण नहीं हो सकता।

और जो अन्य किसी द्रव्य में नहीं है,... चौथा बोल। ऐसा जो ज्ञानस्वभाव, वह दूसरे जड़ द्रव्यों में ऐसा ज्ञान नहीं। चार बोल कहे। यह ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है न, तो ज्ञान की पूर्ण प्राप्ति केवलज्ञान है और वह ज्ञान का पूर्ण रूप है और पूरा रूप हुआ, तब आत्मा पूर्ण दशा को प्राप्त हुआ। समझ में आया? उसे परमात्मा कहा जाता है, उसे केवली कहा जाता है, उसे जो कहो वह (कहा जाता है)। कहते हैं कि **ऐसे ज्ञानस्वभाव को ही...** जो आत्मा का ज्ञानस्वभाव, उसे आदि नहीं, अन्त नहीं और है, उसे कोई कारण नहीं और है, ऐसा ज्ञानस्वभाव, वह अन्य द्रव्य में नहीं। शरीर, कर्म, जड़ में नहीं। **ऐसे ज्ञानस्वभाव को...** ऐसा जो ज्ञानस्वभाव है, उसे **उपादेय करके...** अन्तर में आदरणीय को आदर करके। समझ में आया?

केवलज्ञान की उत्पत्ति के बीजभूत... आत्मा की पूर्ण दशा की प्राप्ति के कारणभूत **शुक्लध्यान नामक स्वसंवेदनज्ञानरूप से जब आत्मा परिणमित होता है,...** उसका दर्शन-ज्ञान तो लिया था। सम्यग्दर्शन-ज्ञान तो प्रधान। तदुपरान्त साम्यभाव चारित्र। अब कहते हैं कि शुक्लध्यान यहाँ तो लिया। एकरूप त्रिकाली ज्ञायक का जहाँ आश्रय लिया, कारण बनाया, उसे अर्थात् उस शुक्लध्यान नाम की स्वसंवेदन दशा, स्वसंवेदनज्ञान प्रगट हुआ विशेष। देखो, यह सब दशाओं का वर्णन है। वस्तु तो वस्तु है। उसका ज्ञान तो कायमी असली पूर्ण एकरूप स्वभाव है। उसकी सम्यग्दर्शन की प्रतीति, वह भी ज्ञानस्वरूप की प्रतीति निर्विकल्प, वह सम्यग्दर्शन है। उसके साथ सम्यग्ज्ञान का अंश जो प्रगट हुआ स्व के अनुभव करने का, वह स्वसंवेदनज्ञान है। आगे बढ़ते हुए स्थिरता हुई चारित्र की, वह भी ज्ञानस्वरूप में स्थिर हुआ, वह चारित्र है। आगे जाकर एकाकार होकर अकेले चैतन्य का आश्रय लेकर शुक्लध्यानरूपी स्वसंवेदनज्ञान दशा—अवस्था प्रगट हुई।

जब आत्मा (इस प्रकार) परिणमित होता है,... स्वसंवेदनज्ञान के ज्ञानरूप अन्तर रूप होता है, परिणमता है, **तब उसके निमित्त से सर्व घातिकर्मों का क्षय हो जाता है...** लो! समझ में आया? तब उसे सर्व घातिकर्म चार जो हैं, वे नाश हो जाते हैं। हो जाते हैं उनके कारण से। यह तो निमित्त लिया न? स्वरूप की अन्तर की एकाग्रता

स्वसंवेदन की, वह तो घाति को नाश में निमित्त है। परन्तु वे घातिकर्म ही स्वयं उस समय कर्म की अवस्था के व्ययरूप से होने के भाव से व्यय हो जाते हैं। उस **समय ही आत्मा स्वयमेव केवलज्ञानरूप परिणमित होने लगता है।** लो! ज्ञान का पूरा रूप, पूरा स्वभाव, उसका आश्रय लेकर जहाँ स्वसंवेदनज्ञान विशेष प्रगट हुआ, उसके कारण से कर्म का नाश होकर, आत्मा केवलज्ञान पूर्ण अवस्थारूप से हो जाता है। परिणमने लगता है अर्थात् परिणमता है, ऐसा। समझ में आया?

वे केवलज्ञानी भगवान... यह आत्मा... आत्मा करते हैं न लोग? क्या कहते हैं? आत्मा कितना और कैसा है, यह लोगों को ख्याल नहीं। ऐसे तो यह आत्मा अर्थात् कि ज्ञान का पूरा रूप और उसका आश्रय लेने से जिसकी दशा में पूरा रूप प्रगट हो जाये, उसे वास्तविक आत्मा कहा जाता है। समझ में आया? ऐसा आत्मा जब तक उसकी प्रतीति और ज्ञान में न आवे, तब तक उसकी श्रद्धा सच्ची होती नहीं। समझ में आया? **वे केवलज्ञानी भगवान क्षायोपशमिक ज्ञानवाले जीवों की भाँति अवग्रह-ईहा-अवाय और धारणारूप क्रम से नहीं जानते...** उन्हें क्रम से जानना नहीं। नीचलेवाले तो क्रम से जानते हैं। कुछ पहले पकड़े, फिर विचार करे, फिर ग्रहण करे। ऐसा केवलज्ञानी को होता नहीं।

किन्तु सर्व द्रव्य,... तीन काल के जितने द्रव्य, जितने **क्षेत्र...** जितना **काल, जितने भाव को युगपद् जानते हैं...** एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानते हैं। ऐसा ही केवलज्ञान के परिणमन के पर्याय का स्वभाव है। कहो, समझ में आया? यह पर्याय आयी है द्रव्य में से। द्रव्य इतना बड़ा है, भगवान आत्मा इतना बड़ा है कि जिसमें एकाग्र होने से केवलज्ञान की पर्याय उसमें शक्तिरूप थी, वह प्रगट होती है। समझ में आया? उसे यह दया, दान, व्रत और भक्ति और फलाना-फलाना करे तो होती है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। उसका स्वभाव है, उसमें एकाग्र होने से शक्ति की व्यक्तता पूर्ण हो जाती है, ऐसा कहते हैं। यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त अर्थात् ज्ञान के पूरे रूप को जिसने प्रगट किया है, उनके अतिरिक्त ऐसे आत्मा हों, ऐसा दूसरा कोई जान सकता नहीं। समझ में आया?

जिसे केवल अर्थात् सर्वज्ञस्वभाव ही स्वरूप है न यह तो, ज्ञानस्वरूप ही

चैतन्यमूर्ति है, एकरूप अखण्ड अभेद ज्ञानमूर्ति अर्थात् कि उसका स्वभाव ही पूर्ण है, उसकी अन्तर एकाग्र होने पर दशा में पूर्णता प्रगट हो, वह सर्वज्ञ, वह केवलज्ञानी। उसके ज्ञान में जो तीन काल-तीन लोक में आत्मा ऐसा आया, वह सच्चा। इसके अतिरिक्त जो आत्मायें बात करे, वे सब मिथ्यादृष्टि अपनी कल्पना से करते हैं, ऐसा कहते हैं। अमरचन्दभाई! आहाहा!

ज्ञानतत्त्व में देखो न, पूरा ज्ञानस्वरूप ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप, ज्ञानस्वभाव। राग, पुण्य, विकल्प, दया, दान, भक्ति यह उसका स्वभाव नहीं। वह तो विकृत है। शरीर, वाणी, मन तो पर है। उसका—भगवान आत्मा का स्वभाव ही ज्ञान है, पूर्ण है, एकरूप है। उसकी अन्तर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है, स्थिरता करने से साम्यता होती है, विशेष एकाग्रता करने से शुक्लध्यान होता है और शुक्लध्यान होने से केवलज्ञान का परिणमन हो जाता है। इन पर्यायों के—अवस्थाओं के भेद किये, समझाये। सब एकरूप अवस्था होती नहीं। साधक को बहुत प्रकार पर्याय की निर्मलता बढ़ती जाती है। कहो, समझ में आया?

किन्तु सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को युगपत्... एक समय। इसका अर्थ ही यह कि भगवान आत्मा का स्वभाव तीन काल-तीन लोक को जानने-देखने का है। किसी का विकल्प और किसी का करना, यह उसका स्वभाव नहीं। समझ में आया? **इस प्रकार उनके सब कुछ प्रत्यक्ष होता है।** तीन काल-तीन लोक के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भगवान के ज्ञान में, उस पर्याय में-अवस्था में सब प्रत्यक्ष वर्तता है। ऐसा आत्मा ज्ञानरूप से परिणमता है, वह साम्यभाव के प्रताप से होता है, ऐसा कहना है। साम्य अर्थात् चारित्र। उस चारित्र की मुख्यता दर्शन-ज्ञान बिना होती नहीं। इसलिए दर्शन-ज्ञान प्रधानसहित जो ऐसी वीतरागता प्रगट हो, तब उसे केवलज्ञान होता है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - २२

(गाथा) २२। **अब, अतीन्द्रिय ज्ञानरूप परिणमित होने से ही...** भगवान आत्मा, इन्द्रियों को और मन को कुछ सम्बन्ध नहीं। अकेला ज्ञानस्वभाव स्वयं से परिणमित अतीन्द्रिय है, ऐसे **इन भगवान को कुछ भी परोक्ष नहीं है,...** कुछ जानना बाकी नहीं अथवा परोक्षता नहीं। कुछ रह गया परोक्ष और कुछ हो गया प्रत्यक्ष, ऐसा है नहीं। २२ (गाथा)।

णत्थि परोक्खं किंचि वि समंत सव्वक्खगुणसमिद्धस्स।
अक्खातीदस्स सदा सयमेव हि णाणजादस्स॥२२॥

सदा अतीन्द्रिय सर्व प्रदेशों, से सब इन्द्रिय-गुण-समृद्ध।
स्वयं ज्ञानमय केवलि प्रभु को, कुछ भी होता नहीं परोक्ष॥२२॥

देखो! यह धर्मरूप से परिणमित के फलरूप से केवलज्ञान की व्याख्या है यह। धर्मरूप से परिणमित को स्वर्ग मिले या इन्द्रपद मिले, ऐसा है नहीं। ऐसा कहते हैं। वह तो पुण्य के फल हैं, वे कहीं धर्म के फल नहीं। समझ में आया? धर्म अर्थात् आत्मा चारित्रधर्म रूप से परिणमते सम्यग्दर्शन की मुख्यतासहित उसके फलरूप से अकेला आत्मा पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान में हो जाता है और उस ज्ञान में अब तीन काल-तीन लोक की कोई चीज़ परोक्ष नहीं रहती। कहो, समझ में आया?

अन्वयार्थ :- जो सदा इन्द्रियातीत हैं,... भगवान केवलज्ञानी परमात्मा इन्द्रियातीत है। इन्द्रियाँ तो हैं। केवली होते हैं, चार कर्म नाश हुए, उन्हें इन्द्रियाँ तो हैं। है या नहीं? आँख, कान नहीं? वह तो जड़ में है। आत्मा में कहाँ हैं वे? केवलज्ञानी परमात्मा विराजते हों तो दिखे क्या? उनका शरीर, उनकी आँख। वह केवली नहीं। दिखे, वह केवली नहीं। केवली तो अन्दर आत्मा ज्ञानरूप से परिणमित आत्मा, वह शरीर से भिन्न है, वह इन्द्रियातीत है, वह आत्मा है। समझ में आया? इन्द्रियातीत। पाँच इन्द्रियाँ तो अजीव के अस्तित्व में है। केवलज्ञान के अस्तित्व में इन्द्रियाँ नहीं। समझ में आया? स्वयं इन्द्रियातीत है। पाँच इन्द्रियों से पार अतीन्द्रिय ज्ञान का परिणमन है, वह आत्मा

केवली है। वे कहीं शरीरवाले, इन्द्रियवाले हैं केवली? हैं ही नहीं। वे (इन्द्रियाँ) तो जड़ हैं। समझ में आया?

'समन्ततः सर्वाक्षगुणसमृद्धस्य'। जो सर्व ओर से (सर्व आत्मप्रदेशों से) सर्व इन्द्रिय गुणों से समृद्ध हैं... यह इन्द्रियों के जितने शब्द आदि हैं, उन सबको जानने की सामर्थ्यवाले हैं। एक-एक इन्द्रिय को एक-एक से जानना, यह उन्हें रहा नहीं। **सर्व इन्द्रिय गुणों से समृद्ध हैं...** अर्थात्? इन्द्रियगुणों द्वारा समृद्ध हैं अर्थात्? जितने इन्द्रिय के विषय और मन के विषय हैं, उन सबको एक साथ जानने को शक्तिवान है। अर्थ में आयेगा। **और जो स्वयमेव ज्ञानरूप हुए हैं,...** ओहो! ज्ञानपद को प्राप्त हुए हैं, कहते हैं। जो निजपद ज्ञानस्वरूप था, उसे पर्याय में स्वयमेव—अपने आप ज्ञानरूप हुए हैं। उन्हें कोई इन्द्रिय और लोकालोक है, इसलिए ज्ञानरूप हुए हैं? लोकालोक है या यह इन्द्रियाँ हैं, इसलिए ज्ञानरूप हुए है, ऐसा नहीं है। अपने आप ज्ञानरूप हुए हैं। लोकालोक उसमें ज्ञात हो, (परन्तु) लोकालोक है, इसलिए ज्ञानरूप हुए हैं, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

स्वयमेव ज्ञानरूप हुए हैं, उन केवलीभगवान को कुछ भी परोक्ष नहीं है। उन अरिहन्त का आत्मा ऐसा है। केवलज्ञान प्राप्त इस कारण से है, अन्दर साधन है। ऐसी उनकी पहिचान हो तो उसे सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? आगे आयेगा न, **'जो जाणदि अरहंतं...'** ८०वीं गाथा। **'दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं'** भगवान की पर्याय इतनी है, उनका द्रव्य है, उनका गुण है, उनकी पर्याय ऐसी है। इतनी पर्याय की सत्ता को ख्याल में विकल्पसहित लक्ष्य में ले, फिर आत्मा के साथ उसे मिलान करे अन्दर कि मैं भी ऐसा ही हूँ द्रव्य से और गुण से। ऐसी पर्याय में प्रतीति द्रव्य और गुण के आश्रय से हो, उसे क्षायिक समकित (होता है), उसे मोह का नाश हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया?

टीका :- समस्त आवरण के क्षय के क्षण ही... देखो! यहाँ से यह लिया। **समस्त आवरण के क्षय के क्षण ही...** परन्तु वह तो पहले से ले गये हैं कि शुद्ध उपादान के बल से क्षय हुआ है। वह तो पहले से वर्णन किया है, कहा है। समझ में आया?

कथन की पद्धति किसी समय स्व से हो, किसी समय निमित्त के अभाव से हो। उसमें क्या है? अपने... बतलाना है न। निमित्तपना था, वह हट गया है। **समस्त आवरण के क्षय के क्षण ही जो (भगवान) सांसारिक ज्ञान को उत्पन्न करने के बल को कार्यरूप देने में हेतुभूत...** देखो! क्या कहते हैं? यह इन्द्रियाँ हैं न पाँच, यह पाँच जड़, वे **सांसारिक ज्ञान को उत्पन्न करने के बल को कार्यरूप देने में...** निमित्त थी इन्द्रियाँ। संसारी पर सम्बन्धी का जानने में इन्द्रियाँ निमित्त थीं। समझ में आया? क्या कहते हैं? संसारी ज्ञान अर्थात् इन्द्रियाँ जहाँ निमित्त हैं, ऐसा जो ज्ञान स्वयं से होता है, वह संसारी ज्ञान है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह संसारी ज्ञान है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्या कहा? संसारी। देखो न यह कथन की पद्धति! यह इन्द्रियाँ जो हैं पाँच, कहते हैं कि यहाँ ज्ञान होता है, ऐसे (नैमित्तिक) में, वह सब (नैमित्तिक) में ज्ञान हो गया, परन्तु वह सब संसारी ज्ञान होने में वे इन्द्रियाँ निमित्त हैं। आत्मा का ज्ञान होने में वे इन्द्रियाँ निमित्त हैं नहीं। समझ में आया? देखो! शब्द का ज्ञान हो, उसमें कान भले निमित्त है। परन्तु वह निमित्त है, वह शब्द का ज्ञान संसारी ज्ञान है।... परसन्मुख के लक्षवाले ज्ञान में वे इन्द्रियाँ निमित्त हैं। समझ में आया?

सांसारिक ज्ञान... अर्थात् पर्याय उसका बल अर्थात् उपजना, उसको अमल में लाना अर्थात् उपजना। उसका हेतु अर्थात् निमित्त। **ऐसी अपने-अपने निश्चित विषयों को ग्रहण करनेवाली...** कान है, वह ज्ञान में कान निमित्त है। वह शब्द को ग्रहण करे ज्ञान। समझ में आया? वह (आत्मा) जाने स्वयं, परन्तु घ्राण है, वह ज्ञान में निमित्त है, वह गन्ध को जाने। ऐसा एक-एक इन्द्रिय को एक-एक विषय निमित्तरूप से जाने, परन्तु वह जानने का ज्ञान संसारी ज्ञान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वह भगवान की वाणी सुने कान से, वह ज्ञान कान के निमित्त से होता है, वह संसारी ज्ञान है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : संसारी ज्ञान है, पर इन्द्रिय से हुआ है वह। स्वलक्षीज्ञान निमित्त से होता नहीं, उसमें निमित्त की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : इन्द्रिय संसारी ज्ञान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संसारी ज्ञान, इन्द्रिय निमित्त संसारी ज्ञान में निमित्त है। आत्मा के ज्ञान में निमित्त होता नहीं। ... भीखाभाई! वह तो ऐसी शैली है कुन्दकुन्दाचार्य की। ऐसी शैली है। स्व और पर की भिन्नता की इतनी बात करते हैं। ओहोहो!

कहते हैं कि भगवान! तेरी ज्ञान की पर्याय में एक-एक इन्द्रिय के निमित्त में उस-उस जाति का जाने—ज्ञान हो, वह ज्ञान संसारी ज्ञान है, परलक्षीज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? हीराभाई!

मुमुक्षु : सब आ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आ गये?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जब वह समझ में आया, स्व के लक्ष्य से समझ में आया तब यह रहा नहीं। तब उसके लक्ष्य से न समझ में आये। यह कहते हैं कि ज्ञान में इन्द्रियाँ निमित्त हुई, वह ज्ञान संसारी है। ऐसा कहते हैं। उस संसारी ज्ञान से आत्मा का ज्ञान होता नहीं। ...भाई! ऐसा वहाँ पोपाबाई का राज नहीं यह कहीं। आहाहा! ... ज्ञान अपना और इन्द्रिय के निमित्त के लक्ष्य से हो, वह ज्ञान अपना कहाँ से आया? कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? किस ढंग से बात करते हैं न! आहाहा!

भाई! तेरा स्वरूप ही ज्ञान है न! यहाँ ज्ञानतत्त्व अधिकार है न! तो तेरे स्वभाव का भाव ही ज्ञानस्वरूप है और तेरा धर्म ही ज्ञान है। वह तो अपने में पड़ा है, उसके आश्रय से ज्ञान की दशा प्रगट होती है। समझ में आया? उसमें इन्द्रियाँ निमित्त। है क्षयोपशम स्वयं का, परन्तु जिसमें वह निमित्त है, उस ज्ञान को यहाँ संसारी ज्ञान कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : उत्कृष्ट भेदज्ञान की बात चलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्कृष्ट नहीं, मूल। आहाहा!

भगवान! तू तो ज्ञानस्वरूप है न! वहाँ से तो बात शुरु की है। तेरा ज्ञान जिसमें इन्द्रियाँ निमित्त है, वह उपादान भले तेरा, परन्तु उसमें निमित्त है, वह ज्ञान कहीं तेरा ज्ञान है? स्वभावज्ञान है? ऐई! वजुभाई! ऐसी बात!

मुमुक्षु : .... संसारी ज्ञान।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तुम्हारे चिरंजीवी तो हाँ करते हैं, लो! आहाहा!

परन्तु क्या पद्धति है! सन्तों की कथन की पद्धति में पराधीन ज्ञान और स्वाधीन ज्ञान का विभाजन करते हैं। भगवान आत्मा जहाँ ज्ञानस्वरूप ही है, उसका रूप ही ज्ञान है, उसका भाव ही ज्ञान है अथवा ज्ञान स्वयं ही है। ऐसे ज्ञान के लिये निमित्त के लक्ष्य में उपादान अपना और वह ज्ञान, यह हो नहीं सकता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा कि भगवान आत्मा स्वयं अतीन्द्रियस्वरूप है। ज्ञान अपना स्वभाव, वह अतीन्द्रिय-स्वरूप है। उस अतीन्द्रियस्वरूप को अतीन्द्रिय के ज्ञान के लिये ज्ञान की पर्याय स्वयं की और निमित्त इन्द्रिय, यह हो ही नहीं सकता, कहते हैं। समझ में आया? ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं।

भगवान आत्मा... ऊपर ले गये थे न, अतीन्द्रिय आ गया था न पहले? २१ में, नहीं? हुआ, वह आया था ऊपर। वह २० में आया था। देखो! '**अदिंदियत्तं जादं**' २० में। '**जम्हा अदिंदियत्तं जादं तम्हा दु तं णेयं**' अतीन्द्रिय। भगवान स्वयं अतीन्द्रिय है, ऐसा कहते हैं अथवा उसका ज्ञानस्वभाव ही अतीन्द्रिय है। उस अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव का ज्ञान... निमित्त इन्द्रिय हो, उसे जानने का ज्ञान हो, वह अतीन्द्रिय ज्ञान ही नहीं, वह आत्मा का ज्ञान ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

सांसारिक ज्ञान को उत्पन्न करने के बल को कार्यरूप देने में हेतुभूत... इन्द्रियाँ यह। **ऐसी अपने-अपने निश्चित विषयों को ग्रहण करनेवाली इन्द्रियों से अतीत हुए हैं,...** भगवान उनसे अतीत हैं। प्रथम ज्ञान हुआ है, तब भी इन्द्रियातीत हुआ। इन्द्रियातीत स्वयं है, इसलिए इन्द्रियातीत का अतीन्द्रिय से ज्ञान हुआ है। प्रथम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, वह अतीन्द्रिय से हुआ है। समझ में आया? वाणी—दिव्यध्वनि सुने त्रिलोकनाथ

परमात्मा की, परन्तु वह कान जिसमें निमित्त है और क्षयोपशम जो ज्ञान है, वह ज्ञान संसारी ज्ञान है। ऐई! सेठ!

मुमुक्षु : चैतन्यराज की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, चैतन्यराज की बात है। वाणी, वाणी करती है न। वाणी से ज्ञान हो, वाणी से ज्ञान हो। चैत्यालय में पुस्तक रखी है न सब? यहाँ तो कहते हैं कि वाणी का लक्ष्य जाता है, वह इन्द्रिय है। उसके ज्ञान की पर्याय में इन्द्रियाँ निमित्त हैं, वह ज्ञान संसारी है। आहाहा! यह तो वीतराग...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वाणी निकले तो उसकी कहाँ है? वह तो अतीन्द्रिय है।

मुमुक्षु : सुननेवाले को तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : सुननेवाला सुनता है तो कान का निमित्त है और ज्ञान का उघाड़ है। क्या है, कहो?

मुमुक्षु : .... सुनता तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, सुनता नहीं। वह संसारी ज्ञान है। परद्रव्य का आश्रय है। ऐसी बात है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उनका केवलज्ञान अतीन्द्रिय पूर्ण है।

यहाँ तो कहते हैं, उसे ऐसा संसारी ज्ञान उनको नहीं। समझ में आया? उससे अतीत हुए हैं, ऐसा कहते हैं। उसमें यह न्याय रख दिया है बीच में। ज्ञानी स्वयं ज्ञानस्वरूप भगवान चैतन्यमूर्ति है, उसे कहते हैं कि ज्ञान होने की पर्याय में इन्द्रियाँ निमित्त, वह आत्मा का ज्ञान ही नहीं। ओहोहो! क्या वस्तु की स्थिति, वस्तु की हद की मर्यादा! भाई! तेरी जाति तो है न, वस्तु तो ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानतत्त्व है। उस ज्ञानतत्त्व को इन्द्रियाँ निमित्त और ज्ञान हो, वह कहीं आत्मतत्त्व है? वह आत्मज्ञान है? वह आत्मशान्ति है? धर्म है? नहीं। आहाहा! हीराभाई!

अपने-अपने निश्चित विषयों को ग्रहण करनेवाली इन्द्रियों से... तो अलग हो गये हैं। कोई कहे कि यह तो केवली की बात है। परन्तु यहाँ बात पहली की न! संसारी ज्ञान उत्पन्न कराने में इन्द्रियाँ निमित्त, यह बात की या नहीं? समझ में आया? सम्यग्ज्ञान हुआ है, वहाँ वह अतीन्द्रियज्ञान के अन्तर अतीन्द्रिय ज्ञान के आश्रय से अतीन्द्रिय ज्ञान हुआ है। यह सुना है, इसलिए ज्ञान, सम्यग्ज्ञान है, ऐसा ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। सुना और ज्ञान का क्षयोपशम स्वयं से पर्याय में स्वयं से हुआ, परन्तु वह ज्ञान आत्मा का ज्ञान नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा का स्वरूप है तो आत्मा का ज्ञान न?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वरूप नहीं। नहीं। इन्द्रिय निमित्त से हुआ ज्ञान आत्मा का स्वरूप नहीं। अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप, वह आत्मा का स्वरूप है। ...भाई! ऐसा है बापू यह तो। ओहोहो!

भगवान बादशाह चैतन्य स्वयंसिद्ध चैतन्य वस्तु है। यहाँ तो केवली की बात की है, परन्तु पहले से इन्द्रियाँ जिसमें निमित्त हैं, वह ज्ञान ही आत्मा का नहीं, कहते हैं। बन्ध का ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो अभी कितने ही कहते हैं कि भगवान में से ज्ञान आवे, वे कहे कि वाणी में से ज्ञान आवे। वाणी, वाणी है न? उसमें भगवान का ज्ञान भरा है उसमें। सेठ! जिनवाणी है न, तो वाणी में ज्ञान भरा है भगवान का। यह तो झूठ है, परन्तु उस वाणी की ओर का लक्ष्य करके जिसमें इन्द्रियाँ निमित्त हैं, ऐसा ज्ञान हो, वह भी एक संसारी ज्ञान है।

मुमुक्षु : बन्ध का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्ध का कारण है, परलक्ष्यी है। भगवान अबन्धस्वरूप ज्ञानस्वरूप है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक, सेठ ने कहा। उसमें है या नहीं? सोनगढ़ का कहाँ है भाई, देखो! यह छपे भी कहाँ? घर में क्या आया? यह तो पहले से है ही। उसमें है, यह है, यह है। प्रवचनसार पहले से है। यह टीका पहले से है।

ओहोहो! सर्वज्ञस्वरूप ही है न प्रभु तेरा, ऐसा कहते हैं। तेरा ज्ञान होने में निमित्त तुझे ज्ञान हो, वह कहीं तेरा ज्ञान कहलाये भाई? भले अशुद्ध उपादान से हुआ है स्वयं से, समझ में आया? परन्तु उसमें निमित्तपना आया, वह ज्ञान तेरा नहीं, भाई! तू अतीन्द्रिय है। अतीन्द्रिय भगवान आत्मा को अतीन्द्रिय को अवलम्बकर जो ज्ञान की पर्याय स्वयं के अनुभव करने की प्रगट हो, उसे ज्ञान कहा जाता है। वह ज्ञान आनन्द का कारण है। ज्ञान और आनन्द दो आगे लेंगे न! वह ज्ञान और आनन्द दो वर्णन करने हैं मूल तो। आत्मा ज्ञानस्वरूप है और आनन्दस्वरूप है। वस्तुस्वभाव आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। इसलिए ज्ञानस्वरूप से जहाँ पूर्ण होता है, तब आनन्दरूप से भी पूर्ण हो जाता है। ऐसे दोनों साथ में ज्ञान और सुख का अधिकार आगे लेंगे। समझ में आया? उसके ज्ञान को जैसे निमित्त इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं, निमित्त हों! ऐसे आत्मा के सुख के लिये इन्द्रियों की, पर की आवश्यकता नहीं। समझ में आया? आहाहा! ज्ञान-सुख दो अधिकार लेंगे न! है न!

बात तो, ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र केवली के पेट (अभिप्राय) खोलकर रखे हैं। वस्तु की स्थिति डंके की चोट मारकर बात की है। दुनिया मानो, न मानो, उसके साथ सम्बन्ध है नहीं। फिर सोनगढ़ का है, ऐसा कहे। सेठ ने ऐसा कहा। सोनगढ़वाले ऐसा अर्थ करते हैं, ऐसा। दूसरे, दूसरा अर्थ करते हों। बात तो सच्ची। दूसरे दूसरा करते हों। यहाँ तो कहते हैं न प्रत्यक्ष।

भगवान आत्मा अपना अतीन्द्रियस्वभाव ज्ञान और सुखरूप है, ऐसी अन्तर में पर की अपेक्षा बिना अन्तर ज्ञानस्वरूप चैतन्य घुलता है पूरा आनन्द, ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि निर्विकल्प करना और उसका ज्ञान करना, उसका नाम धर्म है। वह धर्मस्वरूप पर्याय स्व के आश्रय से प्रगट होती है, उसमें निमित्त की आवश्यकता नहीं। कहो, समझ में आया? यद्यपि यह संसारी ज्ञान भी कहीं निमित्त से हुआ नहीं। आहाहा! हुआ है तो उस समय की उसकी योग्यता के क्षयोपशम के कारण से। समझ में आया? समझ में आया? इन्द्रिय से हुआ नहीं, शब्द से हुआ नहीं। हुआ है उससे। परन्तु उसमें निमित्तपना आया न सामने, (इसलिए) संसारी ज्ञान है, पराधीन ज्ञान है।

यह ज्ञानतत्त्व अधिकार है न! अकेला ज्ञानस्वभाव वस्तु। आत्मा ही ज्ञानस्वरूप

चैतन्यपुंज है। चैतन्य का पुंज और वह चैतन्यपुंज जो स्वभाव है, वही स्वयं अन्तर में एकाग्र होकर परिणमता है, तब सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है, चारित्र होता है और एकाग्र होकर परिणमे, तब केवलज्ञान हो जाता है। उसे किसी निमित्त की कोई अपेक्षा है नहीं। समझ में आया?

ऐसी अपने-अपने निश्चित विषयों को... निश्चित विषय है न? कान में शब्द विषय है, नाक का गन्ध। वह भी विषय है, देखो! उन **विषयों को ग्रहण करनेवाली...** ग्रहण अर्थात् जाननेवाली **इन्द्रियों से अतीत हुए हैं,...** भगवान। **जो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द के ज्ञानरूप सर्व इन्द्रिय—गुणों के द्वारा सर्व ओर से समरसरूप से समृद्ध हैं...** क्या कहते हैं? स्पर्शों जितने जगत के, रस, गन्ध, रंग और शब्द। यह शब्द के **ज्ञानरूप सर्व इन्द्रिय—गुणों के द्वारा सर्व ओर से समरसरूप से समृद्ध हैं (अर्थात् जो भगवान स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण तथा शब्द को सर्व आत्मप्रदेशों से समानरूप से जानते हैं)...** ऐसा कहते हैं। भेदरूप नहीं अब। एकसाथ ऐसा जानते हैं। वह तो अतीन्द्रिय से जानते हैं। देखो, शब्द ऐसा है, हों! **ज्ञानरूप सर्व इन्द्रिय—गुणों के द्वारा...** सर्व इन्द्रियगुणों द्वारा सर्व ओर से। परन्तु एक साथ ऐसे जानते हैं, सब, बस। भगवान का ज्ञान सब शब्दों, सब रूपों, सब गन्ध, रस, स्पर्श और शब्द आदि सबको एक समय में सर्व आत्मप्रदेश से निमित्त की अपेक्षा बिना स्वयं से स्वयं अपने को जानते हैं। आहाहा! यह सर्वज्ञ परमेश्वर। समझ में आया? धर्म करके प्रगट हुआ परमात्मा इस रूप से, उसकी यह व्याख्या करते हैं।

यहाँ तो बाहर की धमाधम, बाहर से यह हुआ और यह हुआ और यह हुआ। कर्म का ज्ञान, वह ज्ञान। यह तो फलाने शास्त्र को पढ़े, वहाँ ज्ञान किया है, बस ऐसा हो जाये अपने ज्ञान किया। शास्त्र पढ़े और जाना, वहाँ अपने को ज्ञान हो गया। सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! अब यह किसके साथ चर्चा करे? वे कहे, चर्चा करते नहीं। क्योंकि अपनी बात हो तो चर्चा करनी चाहिए न! कहाँ तुम्हारे आये नहीं। आये हैं? छोटाभाई आये हैं न! हाँ, हाँ, है। बैठे हैं। किसके साथ? ... साथ चर्चा करे। यह बात ही पूरी अलग प्रकार ही है। दुनिया को सुनने को मिली नहीं बेचारों को, क्या करे? साधु हुए, मुंडाकर बैठे भान नहीं होता कुछ। सम्यग्ज्ञान किसे कहना, सम्यक्त्व किसे कहना,

उसका भान नहीं होता। समझ में आया? आहाहा!

त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा की वाणी में ऐसा आया कि जो हमारी वाणी तू सुनता है और जो ज्ञान—श्रोत होने में निमित्त होता है, उस ज्ञान को हम संसारी ज्ञान कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान साक्षात् समवसरण में विराजते हैं, महाविदेह में विराजते हैं। यहाँ भी भगवान महावीर आदि थे। उस समय, कहते हैं कि जो सुननेवाले, जिसे कान निमित्त है और उपादान तो उसकी ज्ञान की पर्याय है। तथापि उस ज्ञान को हम आत्मज्ञान नहीं कहते, उसे आत्मधर्म नहीं कहते, ऐसा कहते हैं। ऐई! कठिन बात, भाई! कहो, जमुभाई! क्या कहते हैं यह?

मुमुक्षु : ....ऐसी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात है। बात सच्ची। परन्तु यह कहीं दुनिया के साथ मिलान खाये, ऐसी नहीं है। क्योंकि पहले से उसकी भूल है। स्वतन्त्र भगवान आत्मा ज्ञान का समुद्र भगवान स्वयं है, उसके अन्तर में एकाग्र होने से अन्तर में अतीन्द्रिय ज्ञान के होते ही उसे सम्यग्ज्ञान-दर्शन होता है, और चारित्र भी उसे अन्तर के अनुभव में आनन्द में रहने से और शान्ति की दशा प्रगट होती है, उसे चारित्र कहते हैं। चारित्र यह वस्त्र-बस्त्र के, पंच महाव्रत के विकल्प, वह चारित्र नहीं। आहाहा! अज्ञानी को नहीं खबर चारित्र की, नहीं खबर दर्शन की, नहीं खबर ज्ञान की।

मुमुक्षु : जीव की ही खबर नहीं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव कितना, उसकी खबर नहीं।

यहाँ तो यही भगवान कहते हैं। आत्म इतना और उसे आत्मा कहते हैं। भगवान सर्वज्ञ के ज्ञान में आया है, अनन्त सर्वज्ञ हुए, तो उसे हम आत्मा कहते हैं कि वह आत्मा पुण्य-पाप के, दया, दान के विकल्प से भिन्न और अपने ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण स्वभाव से अभिन्न है। आहाहा! वर्तमान में अपने पूर्ण ज्ञान, आनन्द के स्वभाव से अभिन्न एकरूप और पुण्य-पाप तथा शरीर-वाणी, मन की अजीव क्रियाएँ, पुण्य-पाप के दया, दान के परिणाम आस्रवतत्त्व से भगवान भिन्न है। और उनसे भिन्न होने पर भी अपने स्वभाव से परिपूर्ण है। आहाहा! ज्ञान से परिपूर्ण, आनन्द से परिपूर्ण, शान्ति से

परिपूर्ण, स्वच्छता से परिपूर्ण—ऐसे अनन्त गुणों से परिपूर्ण आत्मा, ऐसे परिपूर्ण आत्मा की अन्तर दृष्टि करने से, सम्यग्दर्शन में आत्मा को आश्रय बनाने से दर्शन हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। पहली गाथा है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वादविवाद करे सो अन्धा।' सुन न! तुझे वस्तु की (खबर नहीं)। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा तीर्थंकरदेव की वाणी में ऐसा आया कि भाई! यह हमको तू कान द्वारा सुनता है वाणी को और हमको देखता है भगवान साक्षात् को, हों! वह आँख द्वारा भगवान यह है, ऐसा तू देखता है समवसरण में विराजते और कान द्वारा सुनता है, उस ज्ञान को हम संसारी ज्ञान कहते हैं। आहाहा! ऐई! भीखाभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : सब चिल्लाहट मचा जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : चिल्लाहट मचाये। यह चीज़ ऐसी है। सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा तीर्थंकर हैं, वे कहीं कोई सम्प्रदाय की चीज़ नहीं। वह वस्तु का—आत्मा का स्वभाव ही ऐसा है। जैन, वह कोई सम्प्रदाय नहीं। समझ में आया? भैयाजी! वस्तु ही ऐसी है। सवेरे आया नहीं था? वीतराग विज्ञानता। आत्मा का स्वभाव ही उसे खबर नहीं। वस्तु है या नहीं? तो है, उसका स्वभाव हो न शाश्वत्। तो शाश्वत् स्वभाव तो वीतरागी विज्ञानघन उसका स्वभाव है। यहाँ ज्ञानस्वरूप कहा अकेला। अकेला ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... जिसमें से केवलज्ञान अनन्त प्रगट दशा हो, ऐसा वह आत्मा है। केवलज्ञानरूप से कहाँ से हो? बाहर से आवे, ऐसा है? समझ में आया? अभी आत्मा कितना, इसकी खबर नहीं और कहे कि हम धर्म करते हैं। धूल में भी धर्म नहीं। कहो, सेठ!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु आत्मा दिखता नहीं, ऐसा दिखता है या नहीं? ऐसा निर्णय करनेवाला कौन है? आहाहा! 'ना ना नास्ति विचार' आता है न श्रीमद् में? 'करी कल्पना दृढ़ करे, ना ना नास्ति विचार, पण अस्ति ते सूचवे ए ज खरो निर्धार।' भगवान आत्मा सर्व को न जान सके, ऐसा बोलनेवाला, उसे सर्व को न जान सके,

इसका अर्थ कि मैं सर्व को जाननेवाला हूँ, ऐसा इसका अर्थ है। आहाहा! ऐसी शक्ति है, परन्तु उसकी खबर नहीं होती। समझ में आया?

ओहोहो! ज्ञानतत्त्व अधिकार, ज्ञेयतत्त्व अधिकार और चरणानुयोग (सूचक चूलिका) अधिकार गजब बात है! साक्षात् भगवान के पास गये थे। कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। यहाँ लेकर आये थे। आहाहा! भगवान परमात्मा का ऐसा कथन है, परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं इन्द्रों के समक्ष में। समझ में आया? ओहोहो! गजब काम किया है न! निमित्तरूप द्रव्य है, परन्तु वाणी की रचना भी उस समय अनुरूप ही होती है न! ज्ञान जिस जाति का है, वह तो निमित्त है और वाणी है, वह तो अनुरूप, उस निमित्त को अनुरूप है और उस वाणी को अनुकूल वह ज्ञान है, बस इतना। इससे एक-दूसरे कर्ता-हर्ता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... नया धर्म निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : नया धर्म नहीं। सच्ची बात है। बेचारे को कुछ खबर नहीं होती। रंक जैसा बेचारा गरीब है। तत्त्व का अनजान, खबर नहीं होती क्या सर्वज्ञ का तत्त्व है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहे हुए तत्त्व कैसे, उसकी खबर नहीं होती और बातें करे किसी के घर की, वह कहीं उसका चले? आहाहा!

यहाँ तो यह अधिकार है, देख बापू! ज्ञानस्वभाव तेरा है या नहीं? अन्दर आत्मा... आत्मा। अब आत्मा, वह तो वस्तु हुई, परन्तु अब उसका स्वरूप क्या? स्वभाव क्या? शक्ति क्या? सत्त्व क्या? तत्त्व क्या? और भाव क्या? कि उसका ज्ञानभाव, आनन्दभाव, शान्तिभाव, वह त्रिकाली है। त्रिकाली है अर्थात् परिपूर्ण है। उसकी शक्ति का आश्रय करने से, पर्याय में अन्तर द्रव्य का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन हो, उसे धर्म की पहली सीढ़ी और दशा कहते हैं। इसके बिना थोथे थोथा है। समझ में आया? आहाहा! यह तो तीन लोक के नाथ की वाणी में यह आवे ऐसा, हों! कहते हैं। इन्द्रियों के निमित्त से संसारी ज्ञान को निपजने में निमित्त भगवान! क्या कहते हैं? आहाहा! क्या कहते हैं यह? समझ में आया? वह कहे या नहीं, वह वाणी थी, वह ज्ञान हुआ, सुना तो ज्ञान हुआ। अब वह तो एक ओर रख। ऐई! न्यालभाई! वाणी थी तो ज्ञान हुआ, ज्ञान इससे

पहले क्यों नहीं हुआ? अब सुन, वह तो नहीं, ज्ञान तो हुआ है अपने जानने की योग्यता के कारण से। उसमें इन्द्रियाँ निमित्त और वह वाणी निमित्त है। समझ में आया? वहाँ तो तेरी पहली भूल है कि वाणी के कारण ज्ञान हुआ, यह तो और अज्ञान में तेरी बड़ी भूल है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपना उस क्षण का क्षयोपशम अपनी योग्यता है, तब इन्द्रिय निमित्त और वाणी निमित्त कही जाती है। उपादान तो स्वयं का उस काल में ज्ञान है। तथापि अभी वह भी निमित्त से हो और वाणी हो तो हो, यह तो संसारी ज्ञान की पराधीनता में भूले हुए हैं। भाई! ऐई! न्यालभाई!

मुमुक्षु : यह तो भूल की भूल हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूल की भूल। आहाहा! उसे खबर नहीं। कहो, समझ में आया? ऐ...! सेठ! सेठ तैयार हो गये हैं। आहाहा!

भगवान! तू तो ज्ञानस्वरूप है न, प्रभु! और तेरे ज्ञानस्वरूप में क्या कमी है? ओहोहो! केवलज्ञान की पर्याय जो है, वह तो एक समय की है। केवलज्ञान है, वह एक समय का है। वह तो बहुत छोटा। छोटा वह कितना? इतने-इतने केवलज्ञान सादि-अनन्त नया-नया हुआ ही करे। केवलज्ञान एक समय की अवस्था है। केवलज्ञान कहीं गुण नहीं। दूसरे समय में दूसरा, तीसरे समय में तीसरा। केवलज्ञान पर्याय है, गुण नहीं। तो कहते हैं कि ऐसी केवलज्ञान की अनन्त पर्याय की शक्ति का रखनेवाला एक ज्ञानगुण अन्दर है। ऐसे ज्ञानगुण का आधार वह आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, कितनी शैली निकाली इन्होंने! स्पष्ट तो भाई ने किया है न अमृतचन्द्राचार्य ने। उसमें से निकाला है। आहाहा! भाई! परमात्मा सर्वज्ञ किसे कहना? केवलज्ञानी णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... रटे जाये। या तो कर्मरूपी शत्रु को घात करनेवाला वह भगवान। यह कहाँ से लाया? कहते हैं, यह तेरी खोटी बात है, ले। कर्म तो जड़ है। जड़ को आत्मा घात करे? जड़ का स्वामी है? तब रटकर मारा है यह। अभी तो मूल अज्ञान में भूल है, अज्ञान की तीव्रता। हीराभाई! बापू! उनके—भगवान के घर की बातें

कुछ अलग प्रकार की है। यह बात इसे सुनने को मिली नहीं इसलिए कुछ का कुछ मानकर बेचारे पड़े हैं, ऐसे के ऐसे। समझ में आया? ऐई! जादवजीभाई! ओहोहो!

कहते हैं कि भगवान का ज्ञान... जो इन्द्रियाँ निमित्त थी जिस ज्ञान में—जानने की पर्याय में, वह संसारी ज्ञान है। उससे तो भगवान केवलज्ञानी अतीत हो गये हैं। यद्यपि सम्यग्दृष्टि भी इन्द्रिय से होनेवाले ज्ञान से अतीत हुए तब सम्यग्दर्शन हुआ है। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ सिद्धस्वरूप शक्तिरूप से सत्त्व प्रभु है। ऐसे अनन्त आत्मायें भगवान ने देखे हैं। ऐसा जो पूर्ण आत्मा, उसे अन्तर का आश्रय करके अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप और अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा अवलम्ब कर जो प्रतीति हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। उस सम्यग्दर्शन में इन्द्रिय का ज्ञान निमित्तरूप से था, इसलिए हुआ—ऐसा भी है नहीं। पहले भगवान की वाणी सुनी थी कि सम्यग्दर्शन स्व के आश्रय से होता है। ऐसा इन्द्रिय के निमित्त से ज्ञान स्वयं की योग्यता से सुना था, वह ज्ञान वहाँ सहायता नहीं करता, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....निर्णय तो करावे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। ऐसा कहते हैं। भाई! अभी उसे...

मुमुक्षु : तिनके के आड़ में पर्वत, पर्वत कोई देखे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखे नहीं। आहाहा! भगवान का केवलज्ञान इन्द्रियातीत हो गया है, सम्यग्दृष्टि का ज्ञान भी इन्द्रियातीत ही होता है, ऐसा कहते हैं। जहाँ पूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञान उसे अंश जो ज्ञान प्रगटे, वह भी अतीन्द्रिय ज्ञान ही होता है। उसे धर्म और ज्ञान और श्रद्धा कही जाती है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १५, रविवार, दिनांक २२-०९-१९६८
गाथा - २२, २३, प्रवचन - २०

ज्ञानतत्त्व अधिकार। २२वीं गाथा। अधिकार केवलज्ञानी परमात्मा का चलता है। यह केवलज्ञान जो हुआ, वह कैसे हुआ? और उस केवलज्ञान का स्वरूप क्या है? पहले से लिया है कि आत्मा... यह ज्ञानतत्त्व चलता है न? तो आत्मा अन्तर ज्ञानस्वभावभाववाला है, ज्ञानस्वभावभाव। उसमें अनन्त गुण भले हों। मुख्यरूप से ज्ञानस्वभावभाव की अन्तर्मुख दृष्टि करके ऐसे पूर्ण ज्ञान की प्रतीति और पूर्ण ज्ञान का ज्ञान में वेदन, ऐसा सम्यग्दर्शन और ज्ञान, वह पहली धर्म की दशा। समझ में आया? पूर्ण स्वरूप चैतन्य वस्तु है न? यहाँ तो ज्ञानतत्त्व अधिकार है न! ज्ञानभाव स्वभाव, वह वस्तु का अपना ज्ञानभाव पूर्ण है। उसे राग-द्वेष, पुण्य-पाप उसमें है ही नहीं। तथा अपूर्ण ज्ञान भी नहीं। यहाँ तो पूर्ण वस्तु लेनी है। समझ में आया?

भगवान चैतन्यबिम्ब चैतन्यरत्नाकर पूर्ण ज्ञान सर्वज्ञस्वभावी वस्तु, उसे सर्वज्ञपर्याय कैसे प्रगट हुई, उसकी यहाँ बात चलती है। समझ में आया? सर्वज्ञस्वभावी आत्मा की अन्तर अनुभव की प्रतीति और उसका ज्ञान और उसमें साम्यभाव—रागरहित शुद्ध उपयोग की रमणतारूप चारित्र, उससे केवलज्ञान होता है। यह बात चलती है। समझ में आया? उन केवलज्ञानी को इन्द्रिय का ज्ञान नहीं, इन्द्रियाँ होती नहीं, ऐसा कहते हैं। वे अतीन्द्रिय हैं। समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

भावार्थ :- इन्द्रिय का गुण तो... भावार्थ है न? **स्पर्शादिक एक-एक गुण को ही जानना है,...** स्पर्श, शब्द, रूप, गन्ध, उसकी—आत्मा की पर्याय में इन्द्रिय का निमित्त हो, तब इतना जानने का पर्यायधर्म है। तथापि वह ज्ञान आत्मा का नहीं। क्योंकि इन्द्रिय के निमित्त से जो ज्ञान हो; होता है स्वयं से, तथापि वह आत्मा का ज्ञान नहीं और वह आत्मा नहीं। समझ में आया? इन्द्रिय के निमित्त से होता ज्ञान, वह आत्मा नहीं—ऐसा कहते हैं। यदि हो, वह तो उससे अतीन्द्रिय ज्ञान की प्राप्ति हुई, उसमें इन्द्रिय के ज्ञान की सहायता चाहिए, तो वह तो है नहीं। सूक्ष्म बात है, प्रभु!

यहाँ तो भगवान आत्मा अतीन्द्रियस्वरूप ही है। सर्वज्ञ परमेश्वर को पर्याय में—

अवस्था में प्रगट हुआ। वस्तु स्वयं अतीन्द्रिय ज्ञानमूर्ति चैतन्यबिम्ब है। उसका अन्तर में स्वीकार दृष्टि में होकर और उसका ही ज्ञान का वेदन होकर उसके स्वरूप में रमणतारूपी वीतरागीचारित्र प्रगट करे, वह धर्म है। और उस चारित्रधर्म के फलरूप से उसे केवलज्ञान प्राप्त होता है। समझ में आया? उस इन्द्रियों के ज्ञान से वह होता नहीं। क्योंकि वहाँ अतीन्द्रियपना अकेला रह गया है, भगवान परमात्मा अरिहन्त को। समझ में आया? 'णमो अरिहंताणं' की व्याख्या चलती है यह तो। अरिहन्त के आत्मा को अतीन्द्रिय ज्ञान की दशा का परिणमन है। इसलिए उन्हें इन्द्रिय के ज्ञान का परिणमन है नहीं। इन्द्रियज्ञान ही नहीं। क्यों? कि—

इन्द्रिय का गुण तो स्पर्शादिक एक-एक गुण को ही जानना है, जैसे चक्षुइन्द्रिय का गुण रूप को ही जानना है... जाने ज्ञान की अवस्था, परन्तु उसमें निमित्त यह चक्षु है। वह कहीं वास्तविक ज्ञान नहीं। समझ में आया? क्योंकि आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय है। उस अतीन्द्रिय ज्ञान को पकड़कर जो ज्ञानदशा हो, उसे आत्मा का ज्ञान और उसे आत्मा का धर्म और स्वभाव कहा जाता है। सूक्ष्म बात है। समझ में आया? जेठालालभाई!

वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर सर्वज्ञ का मार्ग इतना अधिक उत्तम और सच्चा है कि साधारण व्यक्ति को ऐसा लगे कि यह तो बहुत सूक्ष्म! वस्तु सूक्ष्म ही है न भाई! आत्मा स्वयं सूक्ष्म अतीन्द्रिय पिण्ड आत्मा है। अतीन्द्रिय, वह इन्द्रिय द्वारा कैसे ज्ञात हो? और वह पुण्य—दया, दान के विकल्प राग है, उसके द्वारा कैसे ज्ञात हो? उसके द्वारा ज्ञात नहीं होता, उसके द्वारा धर्म नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बहुत बात! भगवान परमात्मा स्वयं ही आत्मा है। है, वह प्रगट हुआ है, प्रगटता है। केवलज्ञानरूप से प्रगट होता है, वह तो है, उस प्राप्त की प्राप्ति है। है, उसमें से प्राप्ति आती है। वह कहीं शरीर में, पुण्य और पाप में कुछ नहीं था कि केवलज्ञान प्रगट हो। समझ में आया? इसी प्रकार इन्द्रिय के निमित्त से होते ज्ञान में से भी केवलज्ञान हो, ऐसा है नहीं। क्योंकि वह तो परावलम्बी, परसत्तावलम्बी ज्ञान है।

और इन्द्रियज्ञान क्रमिक है। इन्द्रिय के निमित्त से होता ज्ञान क्रम-क्रम से होता है। भगवान को वह होता नहीं। **केवलीभगवान इन्द्रियों के निमित्त के बिना...** केवली परमात्मा अरिहन्त परमेश्वर **इन्द्रियों के निमित्त के बिना समस्त आत्मप्रदेशों से...** पूर्ण

असंख्य प्रदेश भगवान आत्मा के हैं, उन असंख्य प्रदेश में ज्ञानस्वरूप व्याप्त है, उसके अवलम्बन से जो ज्ञानदशा प्रगट हुई है, वह असंख्य प्रदेश में व्याप्त है वह दशा। **स्पर्शादि सर्व विषयों को जानते हैं,...** भगवान तो स्पर्शादि सर्व विषयों को जानते हैं। कहीं स्पर्श, रस इतनों को (नहीं), पूरे तीन काल-तीन लोक को जानते हैं।

और जो समस्तरूप से स्व-परप्रकाशक है... कैसा है ज्ञान? स्वयं को प्रकाशित करता है और लोकालोक जगत की चीज़ है, उसे भी भगवान का ज्ञान प्रकाशित करता है। है? **ऐसे लोकोत्तर ज्ञानरूप (लौकिकज्ञान से भिन्न केवलज्ञानरूप)...** ऐसा। भगवान चैतन्यबिम्ब परमात्मस्वरूप, वह अन्तर के अनुभव की एकाग्रता द्वारा लौकिक ज्ञान से भिन्न केवलज्ञानरूप से **स्वयमेव परिणमित हुआ करते हैं;...** परमात्मा अरिहन्त को केवलज्ञान स्वयमेव परिणमन हुआ करता है। **इसलिए समस्त द्रव्य...** जगत के जितने पदार्थ हैं, उतने सब **क्षेत्र...** जितना क्षेत्र लोक-अलोक है उतना। सब **काल और भाव को...** उसे **अवग्रहादि क्रमरहित जानते हैं,...** भगवान उसे अवग्रह (आदि के) क्रम से नहीं जानते। एक साथ एक समय में (जानते हैं)। देखो! यह ज्ञान की दशा इतनी, उसे पूरा आत्मा कहा जाता है। समझ में आया?

केवली भगवान के कुछ भी परोक्ष नहीं है। परमात्मा केवलज्ञानी हुए, वे शुद्ध उपयोग के प्रसाद द्वारा (हुए)। शुद्ध उपयोग अर्थात्? आत्मा के ज्ञानानन्दस्वरूप में उपयोग का आचरण अन्तर एकाग्र वीतरागी उपयोग द्वारा केवलज्ञान हुआ, अब उसे कुछ भी परोक्ष नहीं रहा। सूक्ष्म बात है, नौतमभाई! यह सब जरा अभ्यास करे तो समझ में आये ऐसा है। ऊपर-ऊपर से कुछ हाथ आये, ऐसा नहीं। आहाहा! अभी तो केवलज्ञानी, केवलज्ञान कैसे हो? कि चारित्रधर्म से। वह चारित्रधर्म अर्थात् क्या? कि भगवान चैतन्य वीतरागबिम्ब आत्मा है, उसकी निर्विकल्प अनुभव की प्रतीति और उसका ज्ञान और उसमें वीतरागी परिणति की रमणता, वह चारित्र। चारित्र कहीं वस्त्र और क्रिया और महाव्रत का विकल्प उठे तो यह करूँ और यह करूँ—यह सब विकल्प, वह चारित्र नहीं। वह तो राग है, अचारित्र है। समझ में आया?

आत्मा (में) चरना। स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन है, उसमें चरे। चरे अर्थात् रमे, रमे अर्थात् वीतरागपर्याय से आनन्द की रमणता में रहे, ऐसी दशा को भगवान चारित्र कहते

हैं। उस चारित्र के फलरूप से केवलज्ञान प्राप्त होता है। समझ में आया? आत्मा इतना बड़ा कि जिसमें अनन्त-अनन्त केवलज्ञान की पर्याय जिसमें पड़ी है, इतना आत्मा द्रव्यस्वरूप, इतना गुणस्वरूप, उसकी प्रतीति इतने पूरे आत्मा की, वह तो बड़ी सम्यग्दर्शन दशा और उसमें रमणता (अर्थात्) ऐसा आत्मा अखण्ड आनन्द पिण्ड प्रभु है, उसमें रमना या जमना, उसका नाम चारित्र है। उस चारित्र के फलरूप से मोक्ष होता है। दुनिया मानती है कि यह क्रिया की और दया पालन की और व्रत पालते हैं और यह करते हैं, उससे धर्म होगा, यह तीन काल में नहीं। समझ में आया?

केवली परमात्मा अर्थात् उसका अर्थ हुआ कि पहले से ही आत्मा अतीन्द्रियस्वरूप है, उसका ज्ञान अतीन्द्रियरूप से इन्द्रिय के अवलम्बन बिना अतीन्द्रिय ज्ञान किया, उसमें अतीन्द्रिय ज्ञान करके, उसमें स्थिर हुआ, वह भी अतीन्द्रिय वीतरागपर्याय है। स्थिर होने से वीतरागी पूर्ण ज्ञान एक समय में प्रगट हो जाता है। यह २२ गाथा हुई।

★ ★ ★

गाथा - २३

२३ (गाथा)। **अब, आत्मा का ज्ञानप्रमाणपना और ज्ञान का सर्वगतपना उद्योत करते हैं :-** आत्मा ज्ञान प्रमाण है। जैसे शक्कर मिठास प्रमाण है, वैसे आत्मा अन्दर ज्ञान प्रमाण है और ज्ञान सर्वगतपना बतलाता है। वह ज्ञान तीन काल-तीन लोक को एक समय में जानता है, उसे व्यवहार से सर्वगतपना कहा जाता है। अधिकार बहुत सरस है। उसका तत्त्व है आत्मा, उसका सत्त्व इतना बड़ा है, वह यहाँ सिद्ध करना है। भगवान आत्मा... यह तो सब जड़, मिट्टी, पर धूल है। कर्म जड़ पर है। दया, दान, व्रत के परिणाम उठें, वह शुभराग पर विकार है। हिंसा, झूठ, चोरी के भाव, वे भी पाप विकार पर है। उसके पीछे भगवान आत्मा जिसे आत्मतत्त्व कहते हैं, उसे यहाँ ज्ञानतत्त्व कहा है।

एक तो अकेला ज्ञान ज्ञानस्वभावरूप आत्मा, उसके द्रव्य में पूरा ज्ञान व्याप्त गया है। उस ज्ञान से आत्मा कम-अधिक हो नहीं सकता। शक्कर की मिठास जो है,

उससे—मिठास से शक्कर कम-अधिक नहीं हो सकती। तथा शक्कर में मिठास भी उसके क्षेत्र से कम-अधिकपना हो नहीं सकता। इसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्य भगवान असंख्यप्रदेशी वस्तु, उसमें ज्ञान आत्मा प्रमाण व्याप्त है और वह ज्ञान ज्ञेय प्रमाण अर्थात् जितना लोकालोक है, उतने को जानने की सामर्थ्यवाला ज्ञान है। कहो, समझ में आया? २३ (गाथा)।

आदा णाणपमाणं णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं।
णेयं लोयालोयं तम्हा णाणं तु सव्वगयं॥२३॥

नीचे इसका हरिगीत।

आत्मा ज्ञान-प्रमाण कहा है, ज्ञान ज्ञेय-जितना जानो।
लोकालोक-प्रमाण ज्ञेय हैं, अतः सर्वगत ज्ञान कहो॥२३॥

देखो! सर्वज्ञ परमात्मा ने ऐसा कहा है, ऐसा कहते हैं। त्रिलोकनाथ परमात्मा ने **जीवद्रव्य ज्ञानप्रमाण कहा...** इसका **अन्वयार्थ :- आत्मा ज्ञान प्रमाण है; ज्ञान ज्ञेय प्रमाण कहा गया है।** देखा, '**उद्दिष्टं**'। भगवान परमात्मा सर्वज्ञदेव की वाणी में ऐसा आया है और ऐसा है। समझ में आया? और '**ज्ञेय लोकालोक**' जाननेयोग्य वस्तु तो लोकालोक है। तीन काल-तीन लोक, क्षेत्र, अलोक, वह सब जानने की वस्तु है। आत्मा ज्ञानप्रमाण और ज्ञान ज्ञेयप्रमाण। जितना ज्ञेय है, उसे जानने की सामर्थ्यवाला है। आत्मा के अतिरिक्त (जो) कोई अनन्त ज्ञेय हैं, उनके किसी ज्ञेय को करना, रचना, तोड़ना, फोड़ना, छोड़ना, ऐसा ज्ञान में है नहीं। आहाहा! ज्ञान जगत के तीन काल-तीन लोक के पदार्थों को जाने, ऐसा उसका ज्ञान है। समझ में आया?

टीका :- 'समगुणपर्यायं द्रव्यं (गुण-पर्यायें अर्थात् युगपद् सर्वगुण और पर्यायें ही द्रव्य हैं)'... अर्थात् क्या कहते हैं? आत्मा वस्तु है। एक-एक आत्मा की बात चलती है यह। यह परमाणु जड़, शरीर, कर्म, वह तो पुद्‌गल भिन्न है, परचीज़ है। वह कहीं आत्मा की नहीं, आत्मा में नहीं। समझ में आया? आत्मा वस्तु है, उसमें समगुण (अर्थात्) जितने गुण हैं, वे एक साथ रहे हुए हैं और पर्यायें, वह द्रव्य है। वस्तु उसे कहते हैं आत्मा कि जितने गुण हैं व्यापक एकसाथ और पर्यायें, उन गुण और पर्याय का

पिण्ड, वह द्रव्य है। समझ में आया? उस शरीर को और कर्म को स्पर्शता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! स्वयं अपने समगुण-पर्याय में है। भगवान वस्तु परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा का आत्मा और उन्होंने कहा हुआ आत्मा सब, समगुण पर्याय है। आत्मा है, वह अपने जितने गुण हैं, शक्तियाँ अनन्त और उनकी पर्याय, उन समगुण-पर्याय। युगपद गुण और पर्याय, वह आत्मा। समझ में आया?

(युगपद् सर्वगुण और पर्यायें ही द्रव्य हैं)' इस वचन के अनुसार आत्मा ज्ञान से हीनाधिकतारहितरूप से परिणमित होने के कारण ज्ञानप्रमाण है,... क्या कहते हैं? आत्मा ज्ञानगुण और उसकी पर्याय। ऐसा कहा न? ज्ञानगुण है, वस्तु आत्मा का ज्ञानगुण और उसकी पर्याय। उस ज्ञानगुण प्रमाण स्वयं परिणमकर गुण में परिणमकर पर्यायरूप से परिणमता है। **ज्ञान से हीनाधिकतारहितरूप से परिणमित होने के कारण ज्ञानप्रमाण है,...** क्या कहा? भगवान आत्मा ज्ञान से हीन भी नहीं, ज्ञान से अधिक नहीं। इस प्रकार ज्ञान परिणमता होने से ज्ञानप्रमाण है। आहाहा! अभी तो विस्तार करेंगे, हों! पुण्य-पाप, राग-द्वेषादि तो उसमें है ही नहीं। यहाँ तो ज्ञानतत्त्व व्यापक सिद्ध करना है न? (रागादि), वह तो परवस्तु है।

भगवान आत्मा ज्ञानप्रमाण... यह तो पूरे की बात है, परन्तु नीचे भी ऐसा ही है। वस्तु स्वयं आत्मा पदार्थ है तो उसका स्वभाव ज्ञान है। तो ज्ञानप्रमाण वह है। उस ज्ञानप्रमाण उसका परिणमन है। उसकी पर्याय में उसके ज्ञानप्रमाण उसकी पर्याय है— परिणमन है। उस ज्ञान से आत्मा अधिक-हीन हो नहीं सकता। समझ में आया?

यह आत्मा की स्थिति वर्णन करते हैं कि आत्मा कैसा है और उसका पूर्ण स्वरूप प्रगट हो, तब कैसा होता है, यह बात करते हैं। समझ में आया? यह सब देखो न गड़बड़ करते हैं न कितने ही। एक ही आत्मा है, सर्वव्यापक है, या... समझ में आया? अकेला जड़ है, या एक अँगूठे प्रमाण है, ऐसा आता है। समझ में आया? इतना छोटा है और या चावल जितना है, या फलाना जितना है। आता है न उसमें? जयसेनाचार्य में आता है। जयसेनाचार्य की टीका में आता है, जयसेनाचार्य की टीका में आता है। है न उसमें है। है उसमें देखो! यह २५वीं गाथा में है। **'केचनात्मानमङ्गुष्ठपर्वमात्रं, श्यामाकतण्डुलमात्रं, वटककणिकादिमात्रं वा मन्यते'** जगत में बहुत मत हैं। टीका

है। उसमें नहीं, उसमें टीका नहीं होगी। संस्कृत टीका है जयसेनाचार्य की। ४३ पृष्ठ पर है इसमें। तीसरी लाईन है। इसमें है, उसमें नहीं। पुराने में नहीं। पुराने में संस्कृत नहीं। कोई कहता है कि आत्मा सर्वव्यापक पूरे लोकालोक प्रमाण एक ही आत्मा सर्वव्यापक कहते हैं। यह खोटी बात है। कोई कहे कि इतना छोटा इतने वड के बीज जितना, अँगूठे जितना—यह सब बात कल्पना की अज्ञानियों की है। भगवान सर्वज्ञ से देखा हुआ, जाना हुआ आत्मा शरीर से भिन्न ज्ञानप्रमाण स्वयं है। समझ में आया?

कहते हैं कि आत्मा अपने गुण से और उसका परिणमन, उससे हीनाधिकता रहितरूप परिणमता होने से। उससे हीन—कम और अधिकरूप से रहित होता हुआ, परिणमता होने से **ज्ञानप्रमाण है...** समझ में आया? तुझे आत्मा का निर्णय करना हो तो, कहते हैं, ज्ञानप्रमाण आत्मा का निर्णय कर। समझ में आया? **ज्ञान ज्ञेयनिष्ठ होने से,... ज्ञेयों का अवलम्बन करनेवाला; ज्ञेयों में तत्पर।** ज्ञेय को जानता होने से **दाह्यनिष्ठ दहन की भाँति,... जलाना; अग्नि।** अग्नि की भाँति... दाह्यनिष्ठ दहन की भाँति। अग्नि लकड़ी को जलाते हुए लकड़ी के आकाररूप हो जाती है न? वह स्वयं का ही आकार है। अग्नि का—दाह्य का आकार वह जलनेयोग्य स्वयं का आकार है। इसी प्रकार आत्मा ज्ञानप्रमाण है और जितने ज्ञेय हैं, उतने प्रमाण में ज्ञेय का ज्ञान अपने में परिणम जाता है। आहाहा!

ज्ञेय तो लोक और अलोक के विभाग से विभक्त,... लो! अब ज्ञेय कितना है? कि लोक और अलोक का जितना ज्ञेय है। लोक चौदह ब्रह्माण्ड और अलोक खाली। खाली... खाली... खाली... खाली... यह सब ज्ञान में ज्ञात हो ऐसा ज्ञेयनिष्ठ... वह ज्ञान उसमें निष्ठ अर्थात् ज्ञान उसमें व्याप्त हो गया है। जितने ज्ञेय हैं, उन्हें जानने में व्याप्त हो गया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? गजब! ऐसा सब सीखने की अपेक्षा तो दया पालना, व्रत पालना, ऐई! ...! तपस्यायें कर डालना आठ, दस अपवास और सोलह अपवास। क्यों भगवानजीभाई! एक साधु कहता था, भाई को मिला था वहाँ जामनगर। महाजन साधु है न! कि हमारे साधु आठ अपवास करे। तुम जिसे लंघन कहते हो न, ऐसा करके (कहा)। बाहर बात तो आ गयी है न! तुम्हारे लंघन भी नहीं मिथ्यात्व है, सुन न अब! अभी आत्मा कौन है, वह क्या करता है, उसके भान बिना यह मैंने

अपवास किये, शरीर को आहार छोड़ा है, राग इतना रखा है, यह ग्रहण किया, वह सब मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? वह तो ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा किसे ग्रहे और किसे छोड़े? समझ में आया? जितने ज्ञेय हैं, उन्हें जानने का उसका स्वभाव है। उसके बदले, मैंने यह छोड़ा और यह रखा, वह तो मिथ्यात्वभाव है, वह मिथ्यात्व की पुष्टि करता है। भगवानजीभाई! इसलिए बाहर यहाँ की बात आ गयी है न कि यह लोग हमारे अपवास को लंघन कहते हैं। थे कब? सुन न! आहाहा!

ऐसा भगवान ज्ञानस्वरूप चैतन्यबिम्ब है, उसमें अन्तर में एकाकार होकर शुद्धता प्रगट करना, उसका नाम धर्म और उसका नाम तपस्या और उसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान, चारित्र है। समझ में आया? अरे! जगत को वीतराग का मार्ग कहाँ और कहाँ मानकर बैठे अनादि काल से। यहाँ तो कहते हैं कि तेरा ज्ञान धर्म स्वभाव है और उस स्वभाव का परिणमन तुझमें तेरे ज्ञान प्रमाण होता है। यहाँ भले पूर्ण की बात की है, परन्तु तेरा ज्ञानस्वभाव है वस्तु स्व। स्वभाववान आत्मा और स्वभाव ज्ञान, उसके प्रमाण में, उसके क्षेत्र प्रमाण ज्ञान का परिणमन है। उस ज्ञान से आत्मा कम भी नहीं, अधिक भी नहीं। समझ में आया? उस ज्ञेय का जितना स्वरूप है, उसे जाननेवाला उसका (आत्मा का) स्वभाव है।

लोक और अलोक के विभाग से विभक्त,... विभागवाला। (षट्द्रव्यों के समूह में लोक-अलोकरूप दो विभाग है)। ऐसा कहते हैं। उन सबको जानने का स्वभाव है, ऐसा कहना है। **अनन्त पर्यायमाला से आलिंगित स्वरूप से सूचित...** भाषा देखो! जगत—लोक छह द्रव्य (रूप), लोक-अलोक की अनन्त पर्यायमाला। देखो! पर्यायमाला। माला के मणके होते हैं न एक के बाद एक, एक के बाद एक। इसी प्रकार अनन्त द्रव्यों की समय-समय की जो पर्यायमाला (अर्थात्) क्रमसर जो पर्याय होती है, उन सबको ज्ञान जान जाता है। समझ में आया? देखो! यहाँ पर्यायमाला कहकर क्रमबद्ध सिद्ध किया। आहाहा!

आलिंगित स्वरूप से सूचित (प्रगट, ज्ञान),... है? **अनन्त पर्यायें द्रव्य को आलिंगित करती हैं (द्रव्य में होती है) ऐसे स्वरूपवाला प्रत्येक द्रव्य ज्ञात होता है।** लो! क्या कहते हैं? आत्मा के अतिरिक्त दूसरे आत्मायें और उसके अतिरिक्त के

रजकण—यह परमाणु जड़-मिट्टी, उनमें जितनी पर्यायें क्रमसर अनादि-अनन्त होती है... समझ में आया? देखो! ऐसा अनन्त पर्यायस्वरूपवाला जो द्रव्य है, ऐसे अनन्त द्रव्य जो हैं, उन्हें केवलज्ञान की पर्याय जान लेती है। परन्तु पर्यायमाला है, उसे उस प्रकार से जानती है। अमरचन्दभाई! आड़ी-टेढ़ी नहीं। माला होती है न माला ऐसे देखो! माला में जिस स्थान में मोती, उस स्थान में मोती, दूसरा, तीसरा जिस स्थान (में है), उसी प्रकार यह जगत के द्रव्य परमाणु और आत्मायें भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं, उन छहों द्रव्यों की पर्यायमाला (अर्थात्) क्रमसर जिस अवस्था की पर्याय हो, धारावाही द्रव्य की पर्यायें अनन्त हों, उतना वह द्रव्य है। उस द्रव्य को केवलज्ञानी जान लेते हैं। आहाहा! एक समय की पर्याय। केवलज्ञान किसे कहे? समझ में आया? और ऐसी केवलज्ञान की ऐसी पर्याय का, अनन्त केवलज्ञान की पर्याय का पिण्ड वह ज्ञानगुण है। और उस ज्ञानगुण, ऐसे अनन्तगुण का पिण्ड वह तो आत्मा है। उसे आत्मा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

देखो न, बाहर में धमाल-धमाल। आत्मा को मानो ऐसे शान्ति मिलेगी, ऐसे मिलेगी, ऐसे करूँगा (तो मिलेगी)। क्या परन्तु चीज़ कहाँ है और कितनी है, इसकी नजर तो करता नहीं। जहाँ जितनी चीज़ है, उसकी नजर करता नहीं और नजर किये बिना उसकी प्रतीति होती नहीं और प्रतीति हुए बिना उसमें रमणता हो सकती नहीं और रमणता बिना उसे केवलज्ञान हो नहीं सकता। सूक्ष्म बातें भारी, भाई! लोगों को ऐसे चढ़ा दिया है न! लोग ऐसा कहते हैं, यह सोनगढ़वालों का है। परन्तु सोनगढ़वालों का है या यह उन भगवान का है? यह तो प्रवचनसार है। आहाहा! कहो, समझ में आया? सोनगढ़ का नाम पड़े वहाँ कितने ही भड़कते हैं बेचारे। आहाहा!

भाई! यह तो भगवान परमात्मा परमेश्वर केवलज्ञानी कहते हैं, वह बात है यह। यह तो प्रवचनसार है। प्रवचन। प्र अर्थात् प्रधान, वचन अर्थात् भगवान की दिव्यध्वनि। त्रिलोकनाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि। परमात्मा महावीर और यहाँ परमात्मा विराजते हैं, महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर परमात्मा त्रिलोकनाथ परमात्मा वर्तमान विद्यमान विराजते हैं। जिन्हें जीवन्तस्वामी—जीवतास्वामी कहते हैं। है न वर्तमान विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में सर्वज्ञ परमेश्वर सीमन्धर परमात्मा आदि बीस तीर्थंकर विराजते हैं, भाई! उन्होंने

कही हुई यह बात है प्रवचनसार। समझ में आया? उनके पास भगवान कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। आठ दिन वहाँ रहे थे। संवत् ४९। दिगम्बर मुनि सन्त, भावलिंगी, आत्मध्यानी, आनन्द में मस्त। ऐसा विकल्प हुआ और पुण्ययोग (ऐसा था)। भगवान के पास गये थे। साक्षात् महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान विराजते हैं, वे ही प्रभु तब थे। क्योंकि उनका आयुष्य लम्बा करोड़ पूर्व का है। भगवान परमात्मा सीमन्धर प्रभु समवसरण में अभी वर्तमान विराजते हैं। उनका आयुष्य करोड़ पूर्व का है और देह पाँच सौ धनुष का है— दो हजार हाथ ऊँचा। वह केवलज्ञान तो पूर्व में मुनिसुव्रत भगवान यहाँ हो गये, तब से केवलज्ञान प्राप्त हुए है। अभी विराजमान हैं, अभी आगामी चौबीसी में यहाँ बारहवें, तेरहवें तीर्थंकर जब होंगे, तब परमात्मा विदेहमुक्त होंगे। देह मुक्त होकर सिद्ध होंगे। अभी अरिहन्तरूप से विराजते हैं। समझ में आया? यह उनके कहे हुए वचनों का यह सार है। आहाहा!

कहते हैं, उस **अनन्त पर्यायमाला से आलिंगित स्वरूप से सूचित...** ऐसा द्रव्य जगत का। पूरा लोकालोक। **नाशवान दिखाई देता हुआ भी ध्रुव ऐसा षट्द्रव्य-समूह,...** देखो! यह पर्याय से बदलता हुआ दिखने पर भी। वस्तु बदलती है न? पर्याय बदलती है। पर्याय से यह देखो, यह अवस्था बदलती है, आत्मा की अवस्था बदले, रजकणों की (बदलती है)। अवस्था से बदलता नाशवान अवस्था से दिखता होने पर भी **ध्रुव ऐसा षट्द्रव्य-समूह,...** षट्द्रव्य भगवान ने केवलज्ञान में देखे षट्द्रव्य। आहाहा! अभी तो जिसे षट्द्रव्य की खबर नहीं होती। समझ में आया? वह षट्द्रव्य अनन्त हैं। षट्द्रव्य जाति से छह हैं, परन्तु संख्या से (अनन्त हैं)। एक आत्मा जाति एक, परन्तु आत्मा की संख्या अनन्त है। परमाणु यह पुद्गल की जाति एक, परन्तु परमाणु संख्या से अनन्त है। समझ में आया? आहाहा! देखो! उसमें अनन्त सिद्ध भी आ गये। यह षट्द्रव्य में अनन्त सिद्ध आ गये, भगवान प्रत्येक केवली लाखों महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं, वे भी षट्द्रव्य में आ गये, तीर्थंकर भी आ गये, अनन्त निगोद के जीव आलू, शक्करकन्द... समझ में आया? एक राई जितने टुकड़े में असंख्यात शरीर और एक शरीर में सिद्ध से अनन्तगुने जीव। नौतमभाई! कितनों को तो परिचय न हो, इसलिए (ऐसा लगे) यह क्या होगा? यह क्या होगा? यह तो मूल वस्तु है भगवान की। इतने सब जितने द्रव्य हैं,

उनकी जितनी पर्यायमाला—धारावाही दशायें हैं, उसका पूरा समूह जो द्रव्य है, उसे भगवान ज्ञेयरूप से ज्ञान में जानते हैं। आहाहा! समझ में आया ? इतना आत्मा ऐसा सिद्ध कराते हैं। उसे हीन-अधिक माने, वह आत्मा जानता नहीं। आहाहा!

नाशवान दिखाई देता हुआ... कौन ? षट्द्रव्य लोक, समझे न ? **सब कुछ है।** जो है, वह है। **(ज्ञेय छहों द्रव्यों का समूह अर्थात् सब कुछ है)** इसलिए भगवान आत्मा अपने शुद्ध उपयोग के अन्तर के आचरण द्वारा आवरण का नाश करता हुआ, अपने केवलज्ञानरूप से परमात्मा परिणमते हैं, वे इन सब षट्द्रव्यों को एक समय में जानते हैं। ज्ञान ज्ञेय प्रमाण, षट्द्रव्य है उतना ज्ञान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? एक समय की ज्ञान की पर्याय, ज्ञेय इतना—लोकालोक जितना, तो एक पर्याय है, कहते हैं। आहाहा!

आत्मा... यह आत्मा... आत्मा किसे कहना ? कितना कहना ? कैसे कहना ? उसकी बात चलती है यह। ऐसे सब आत्मा... आत्मा करे। आहाहा! भगवान आत्मा का ज्ञानस्वभाव इतना अपने में समगुण-पर्याय से व्याप्त है, अर्थात् ज्ञानप्रमाण आत्मा है और वह ज्ञान, ज्ञेय प्रमाण है। ज्ञेय तो षट्द्रव्य है। उन षट्द्रव्य की पर्यायमालावाला नाशवन्त दिखाई देने पर भी ध्रुव है। ऐसे षट्द्रव्य में सब है। वह ज्ञान की पर्याय सबको एक समय में जानती है। समझ में आया ? वह ज्ञान कहीं षट्द्रव्य को करता नहीं, कर्ता नहीं, रचनेवाला नहीं, बनानेवाला नहीं। है, उसे ज्ञान जानता है। समझ में आया ? ऐसा धर्मी का ज्ञान, धर्मी का ज्ञान—राग और पुण्य से भिन्न पड़ा आत्मा का सम्यग्ज्ञान, वह जगत के पदार्थ को जानता है। वह शुभ को रचे और पुण्य को रचे, ऐसा ज्ञान में नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

जैसे सर्वज्ञ, जितने द्रव्य हैं, उन्हें जानते हैं। वह भी एक समय की पर्याय का इतना धर्म है वह तो। आहाहा! ऐसे जो बदलती पर्यायवाले और टिकते द्रव्य, ऐसे अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु सब जो ज्ञेय, उसे तो ज्ञान की एक समय की अवस्था... एक समय की अवस्था में जान लेते हैं। जिन्होंने षट्द्रव्य को इस प्रकार से जाना, उन्होंने एक समय की पर्याय मानी अभी तो। आहाहा! समझ में आया ? ऐसे ज्ञान की पर्यायरूप से परिणमित आत्मा को केवली कहा जाता है। आहाहा!

इसलिए निःशेष आवरण के क्षय के समय ही... भगवान आत्मा अपने अन्तर्मुख शुद्ध उपयोग के आचरण द्वारा आवरण को टालता हुआ **निःशेष आवरण के क्षय के समय ही...** ऐसा। पूर्ण स्वरूप ऐसा भगवान आत्मा के अन्तर में रमणतारूप शुद्ध उपयोगरूपी आचरण के द्वारा आवरण के क्षय के क्षण ही, आवरण के क्षय के क्षण ही **लोक और अलोक विभाग से विभक्त समस्त वस्तुओं के आकारों के पार को प्राप्त करके...** जाता है वह। आहाहा! देखो! यह केवलज्ञानी परमात्मा अरिहन्त का स्वरूप। समझ में आया?

यह अरिहन्त होने की योग्यता प्रत्येक (जीव) द्रव्य में है। 'सर्व जीव है सिद्धसम।' 'सर्व जीव है ज्ञानसम।' ऐसा आता है न भाई उसमें। योगसार। वह यह है। 'सर्व जीव है ज्ञानसम।' सब भगवान आत्मायें—अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु जड़... अनन्त आत्मायें जितने हैं लोकालोक में—लोक में पूरे, वे सब ज्ञानमय हैं, ज्ञानमय हैं। रागमय, पुण्यमय, शरीरमय नहीं आत्मा। आहाहा! समझ में आया? 'सर्व जीव है ज्ञानमय।' फिर क्या आता है? 'जाने समता धार।' वह समता भाव यह। आहाहा! वीतरागी पर्याय द्वारा समता से जाने उसे समता के... यह समता, हों! ऐसे समता कषाय मन्द होओ, वह समता-बमता नहीं। कषाय की मन्दता से समता करता है, मानो समतावाला है। धूल भी नहीं, सुन न! भगवान आत्मा एक समय में पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धस्वरूप, जिसकी पर्याय में केवलज्ञान प्रगट हुआ—ऐसी अनन्त केवलज्ञान की पर्यायें जिसमें पड़ी हैं, ऐसा महा भगवान आत्मा जिसे अन्तर में अनुभव में, प्रतीति और रमणता में आवे, तब उसे समता कहा जाता है। समता कहो, शुद्ध उपयोग कहो, चारित्र (कहो), सब एक ही भाषा है। समझ में आया?

जिसे अन्दर पुण्य परिणाम आवे तो ठीक है और पाप अठीक है, ऐसा है नहीं। ऐसी वीतरागता चारित्र की प्रगट हो, उसे समता परिणाम कहा जाता है। समझ में आया? गजब! सूक्ष्म ऐसा न! कोई स्थूल हो न, झट समझ में आ जाये ऐसा। भगवान! तू तो ज्ञानस्वरूप है न, प्रभु! तू तो जगत के... जगत के तत्त्व जितने जैसे, सबको जाननेवाला जितना है न तू। जाननेवाला जितना तू है। समझ में आया? उतना तो तेरा रूप और स्वरूप है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **लोक और अलोक विभाग से विभक्त...** भिन्न **समस्त वस्तुओं के आकारों के...** अर्थात् विशेष **पार को प्राप्त करके...** भगवान। **इसी प्रकार अच्युतरूप रहने से ज्ञान सर्वगत है।** सबको जाना न, इस अपेक्षा से। लोकालोक ज्ञात हो गये उसमें। इससे ज्ञान को सर्वगत (अर्थात्) सर्व को पहुँच गया, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे आत्मा की तो खबर नहीं होती और ऐ... तूफान... तूफान... तूफान। कहो, समझ में आया? यज्ञ करो, वह कहे व्रत करो, वह कहे तप करो। सब एक जाति के हैं। कान्तिभाई! आहाहा! किसका यज्ञ? यज्ञ तो स्वरूप भगवान है अखण्डानन्द, उसमें या होम करके दृष्टि का स्थिर होना, उसमें अज्ञान के लकड़े जलकर राख हों, उसका नाम यज्ञ कहा जाता है। किसी के कुछ लकड़े हलके मूढ़ता के और कहे कि हम यज्ञ करते हैं। समझ में आया? शशीभाई! आहाहा!

या होम किया, कहते हैं, देखो न! उसी क्षण आवरण (क्षय होता है)। जहाँ आचरण में अन्तर भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ जहाँ दृष्टि में निधानरूप से लिया और उसमें जहाँ स्थिर हुआ, स्थिर होने से जिस काल में उसे कर्म का आवरण क्षय होता है, उसी काल में वह छह द्रव्य का समूह है, उसके पार को पा जाता है। आहाहा! इतना बड़ा आत्मा उसे कैसे (बैठे)? रंक होकर बैठे। एक बीड़ी बिना चले नहीं, उसके बिना चले नहीं, कीर्ति बिना चले नहीं। कहाँ भिखारी होकर (भटकता है)।

मुमुक्षु : पैसे बिना....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे बिना ही चलता है। आना हो तो उसके कारण से आवे। लोग नहीं कहते कि भाई! खानेवाले का नाम दाने-दाने पर है। इसका अर्थ वह दाना आनेवाला, वह आनेवाला है। तेरे प्रयत्न से क्या आवे? धूल आवे? सुन न! समझ में आया? तब एक व्यक्ति और विवाद करता था कि लो कुछ कमाये बिना होगा? ... अपने आप नहीं होगा। वे कहे, नहीं कमाना पड़ता, कमावे तो हो। यह विवाद उठा है। कहो, समझ में आया? गाँव में चर्चा उठी होगी, गया होगा वह। वे कहे कि भाई! ऐसे के ऐसे पैसे तो आनेवाले हों तो आवे। चिल्लाहट मचाये। ऐसे बैठे-बैठे आ जाते होंगे? ऐई! भीखाभाई! किसे आये और जाये? भाई! तू तो चैतन्यमूर्ति प्रभु है न, नाथ! तू तो जाननेवाला है। तेरे पास रजकण होंगे? वह तो जड़ है, पर है। आहाहा! अरे! तेरे पास

राग आवे ? अरे ! राग कैसी चीज़ तेरे में है ? आहाहा ! समझ में आया ? वह तो अपने स्वरूप का रक्षण करनेवाला नाथ है आत्मा तो। वह राग का रक्षण करे और पर का रक्षण करे और पर को लावे, छोड़े, वह है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? परन्तु अब हमारे पूरे दिन धन्धा करना, उसे क्या करना ? नौतमभाई ! यह बिजली के धन्धे, फलाना ऐसा करना। जयन्तीभाई !

भगवान ! वह तो जगत के रजकणों का, कहा न यहाँ कि परमाणु की पर्यायमाला जो होती है, उसका समूह वह परमाणु है। ऐसे अनन्त द्रव्यों को ज्ञान जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया ? उस सम्यग्दर्शन में भी वह जाने, ऐसा उसका स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। पूर्ण कहाँ से प्रगट हुआ ? यहाँ जाना, जानना... जानना... जानने का ही मेरा स्वभाव है। ऐसी प्रतीति, अनुभव हुआ, स्थिर होने पर पूर्ण ज्ञान प्रगट हो गया। आहाहा ! विवाद यह व्यवहार के। व्यवहार हो तो होता है। अब धूल भी नहीं। सुन न ! व्यवहार तो यहाँ ज्ञान का ज्ञेय है। व्यवहार वह ज्ञान का ज्ञेय है। वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। जानता है। वह ज्ञान की दशा नहीं। समझ में आया ? अन्दर विकल्प आवे दया, दान, पूजा, विकल्प वृत्तियाँ, वह कहीं ज्ञान नहीं, वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। आहाहा ! केवली भी जगत के उन विकल्पों को ज्ञेयरूप से जानते हैं। ऐसे ज्ञान भी उस राग को विकल्परूप से, ज्ञेयरूप से जाने और ज्ञानस्वरूप वह मैं, ऐसा अनुभव करे, तब उसे धर्मी और समकिती कहा जाता है। समझ में आया ? आहाहा !

इसी प्रकार अच्युतरूप रहने से ज्ञान सर्वगत है। (एक) समय में जितना ज्ञानप्रमाण ज्ञान और ज्ञेयप्रमाण ज्ञान प्रगट हो गया, बस ऐसा का ऐसा रहता है। ऐसा का ऐसा रहता है। समझ में आया ? भले केवलज्ञानी ज्ञान पर्याय से परिणमते हैं। पर्याय है न वह तो। पर्याय है परिणमते हैं। परन्तु वह परिणमते-परिणमते यह सर्वगतरूप है, उस प्रकार से ही परिणमते है। समझ में आया ? सर्व को जानने की पर्यायरूप से परिणमते हैं, वह केवलज्ञानी परमात्मा है। उन्हें देव कहा जाता है, उन्हें अरिहन्त कहा जाता है, उसे मोक्ष कहा जाता है, उसे उस आत्मा की दशा पूर्ण प्रगट हुई, ऐसा कहा जाता है। आहाहा ! वह जीव पूरा पड़ा वहाँ पूरा हुआ। भगवान आत्मा ऐसे ज्ञानस्वभाव से पूरा था, उसकी

अन्तर की रमणता की वीतराग पर्याय द्वारा, वह पर्याय में पूरा हो गया। पूरा हुआ, वह परमेश्वर। समझ में आया?

जैन के वाडा में जन्मे, उसे इसकी कुछ खबर नहीं होती और बिना भान के जहाँ कुछ दूसरी बात सुने न, वह यहाँ आत्मा की बात है, चलो सुनने। कहाँ थी सुन न अब! समझ में आया? आत्मा की बात है। विकल्प छोड़ो, शून्य हो जााओ। किसका शून्य हो? जड़ हो जायेगा, सुन न! आत्मा इतना है, ऐसी प्रतीति और ज्ञान बिना विकल्प टूटते नहीं तीन काल में। अस्तिरूप से आत्मा इतना है, उसकी प्रतीति में अन्दर में पैर रखे बिना विकल्प का नाश कभी तीन काल में होता नहीं।

मुमुक्षु : मासखमण करना...

पूज्य गुरुदेवश्री : मासखमण, वह बाद में, यह तो सब विकलप है। किसका मासखमण?

मुमुक्षु : भगवान ने किये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ने क्या किया था, इसे खबर नहीं। भगवान तो आत्मा के ध्यान में रहते थे इच्छा उत्पन्न हुई नहीं थी, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में स्थित थे उसे तप कहा जाता है। यह तो सब लंघन है। मिथ्यात्व के पोषण की क्रियायें हैं सब। ऐई! जुगराजजी!

मुमुक्षु : .... मिथ्यात्व घट्ट (गाढ़ा) करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : घट्ट करता है।

भावार्थ :- गुण-पर्यायों से द्रव्य अनन्य है,... क्या कहते हैं? वस्तु जो है, वह अपने गुण अर्थात् भाव और पर्याय अर्थात् अवस्था। वस्तु है, उसका जो गुण, अर्थात् शक्ति और पर्याय अर्थात् अवस्था—यह गुण-पर्यायों से द्रव्य अनन्य है, अन्य नहीं। उसकी अवस्था और उसके गुण से वह वस्तु अन्य नहीं, अनन्य है। शक्कर द्रव्य है, मिठास स्वभाव है और उसकी पर्याय की मिठास, इतने से वह शक्कर अनन्य है, अन्य नहीं। इतने में है वह। समझ में आया? **गुण-पर्यायों से द्रव्य...** अर्थात् पदार्थ। **अनन्य है...** अर्थात् एकमेक है।

इसलिए आत्मा ज्ञान से हीनाधिक न होने से... भगवान का ज्ञानगुण, आत्मा का ज्ञानस्वभाव, उससे हीन और अधिक नहीं। **ज्ञान जितना ही है;...** आत्मा ज्ञान जितना ही है। शक्कर मिठास के स्वभाव जितनी ही है। शक्कर इतनी ही है। इसी प्रकार आत्मा... यह तो ज्ञान की व्याख्या, प्रधान ज्ञानगुण है न, इसलिए ज्ञान जितना ही आत्मा है। **और जैसे दाह्य (जलनेयोग्य पदार्थ) का अवलम्बन करनेवाला दहन...** लकड़ा **दाह्य के बराबर ही है,...** अग्नि के बराबर है। जलनेयोग्य जो दाह्य अर्थात् लकड़ा। अग्नि दाह्य जलनेयोग्य के बराबर ही है। जितने जलनेयोग्य है न चीज़? उसके योग्य दहन अर्थात् अग्नि है ऐसी। ऐसा ज्ञात होनेयोग्य जितने ज्ञेय हैं, उतना ज्ञान उसे जानता है।

उसी प्रकार ज्ञेय का अवलम्बन करनेवाल ज्ञान ज्ञेय के बराबर ही है। अवलम्बन करनेवाला निमित्त है। जितने जाननेयोग्य जगत के पदार्थ हैं, उन्हें भले ज्ञान में निमित्त कहो, अवलम्बन कहो, परन्तु वह ज्ञान ज्ञेय के बराबर है। जितना ज्ञेय है, उतना ज्ञान है। यहाँ तो नीचे सम्यग्दर्शन में भी, सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में जो आत्मा चैतन्यमूर्ति भगवान ने कहा, वैसा आत्मा अन्तर में अस्तित्व की प्रतीति और अनुभव करके ज्ञान हुआ, वह ज्ञान अपना ज्ञान है और जितना राग उठता है, उसका उसे ज्ञान है। समझ में आया? राग सम्बन्धी का ज्ञान, अपने सम्बन्धी का ज्ञान, वह ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है। अथवा ज्ञेय को अवलम्बन करनेवाला ज्ञान ज्ञेय के बराबर है। जैसा राग है, जैसी शरीर की क्रिया होती है, ऐसा यहाँ ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

धर्मदास क्षुल्लक तो एक बार ऐसा कहते हैं कि सिद्ध भगवान से एक पल भी यदि भिन्न रहा तो मिथ्यादृष्टि संसारी है। अर्थात् क्या? अर्थात् क्या? कि जैसे सर्वज्ञ परमेश्वर जाननेवाले हैं, वैसे तू जाननेवाला है। वह जाननेवाले के अतिरिक्त एक भी विकल्प और राग को अपना माना तो मिथ्यादृष्टि संसारी सिद्ध से भिन्न पड़ गया। शुकनचन्दजी! चिल्लाहट मचाये वे तो। ऐसा कि व्यवहार में पड़े हैं। धूल में भी नहीं पड़े, सुन न! व्यवहार सम्बन्धी के ज्ञान में तू पड़ा है, वह है। मानता है कि व्यवहार में पड़ा है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भान नहीं, मिथ्यादृष्टि को भान नहीं। वस्तु स्वयं ज्ञानमूर्ति प्रभु है और वह ज्ञान, वह जिस प्रकार का राग आवे—दया, दान, विकल्प

का, उसे जानने जितना वह ज्ञान है। अपने को जानता हुआ और उसे जानता हुआ वह ज्ञान है। उस ज्ञान में आत्मा है, उस ज्ञेय में आत्मा है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

सर्वज्ञ को पूर्ण षट्द्रव्य ज्ञेय है। साधक को उस प्रकार के ज्ञान की अवस्था में स्व-परप्रकाशकपना, जितना रागादि शरीर की क्रिया, उस क्षण में होती है, उस सम्बन्धी का ज्ञान ज्ञेय प्रमाण यहाँ होता है, उतना ज्ञान अपने में अपने से है। इतना वह आत्मा है, इतने में वह गुण और पर्याय में व्याप्त वह आत्मा है। समझ में आया? गजब बात! कहते हैं तो यह कहना चाहते हैं। ऐसे छह द्रव्य ज्ञेयरूप से हैं, उतना ज्ञान है। यहाँ भी ज्ञान भगवान आत्मा, ज्ञानस्वरूपी आत्मा, ऐसा जहाँ अन्तर सम्यग्ज्ञान हुआ, बस! उस ज्ञान जितना जिस प्रकार से वहाँ ज्ञेय अल्प है उसे, उनको पूर्ण है, तो उस ज्ञेयप्रमाण यहाँ ज्ञान का प्रमाण स्वयं से परिणमता हुआ, स्वयं से उत्पन्न होता है। उसे आत्मा समगुण-पर्यायवाला आत्मा कहते हैं। समझ में आया? वह पूर्ण था आत्मा यहाँ अधूरी दशा में। आहाहा! ऐसा तत्त्व है, ऐसा वस्तु का स्वरूप ही है। इस प्रकार से सत् है, दूसरे प्रकार से सत् है नहीं। समझ में आया?

ज्ञेय का अवलम्बन करनेवाल ज्ञान ज्ञेय के बराबर ही है। ज्ञेय तो समस्त लोकालोक अर्थात् सब ही है। केवलज्ञानी है न यहाँ तो? लोकालोक में कोई बाकी है नहीं। क्षेत्र की मर्यादा बाहर है तो भी उसे अमर्यादित को भी ज्ञान जानता है। आकाश कहीं अन्त नहीं फिर। लोक चौदह ब्रह्माण्ड के पश्चात् खाली आकाश है। है... है... है... है... है... है... है... वह आकाश चलता जाता है, ऐसा का ऐसा है... है... वह है... है... है... उसका यहाँ ज्ञान है। और काल भी है... है... भूत काल है... है... है... और भविष्य भी है... है... उसका ज्ञान में ज्ञान की पर्याय में इतना ज्ञेय है, इतना ज्ञान हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? अवसर आया, बापू! साहेबा! तू चूकना नहीं, कहते हैं। तेरा ज्ञानदौर चूकना नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भगवान तो ज्ञानमूर्ति प्रभु है न! उसे ही यहाँ आत्मा कहा है न, उसके प्रमाण में। और उसकी पर्याय प्रमाण और उसके गुण प्रमाण, वह समगुण-पर्याय, वह आत्मा। समझ में आया? इससे दूसरी चीज़ जो ज्ञात हो, उस सम्बन्धी का ज्ञान तुझमें है। वह

ज्ञान भी तेरा है उस सम्बन्धी का। उस ज्ञान के गुण और पर्याय में व्यापक है, उसे आत्मा कहते हैं। समझ में आया? यह साधक का आत्मा इतना है, ऐसा कहते हैं। और उसके फलरूप से केवलज्ञान आया और लोकालोक को जाने, इतना ज्ञान है, ऐसा उसे कहते हैं। समझ में आया?

ज्ञेय तो समस्त लोकालोक अर्थात् सब ही है। इसलिए, सर्व आवरण का क्षय होते ही... सर्व को जानता हुआ। **सर्व आवरण का क्षय होते ही (ज्ञान) सबको जानता है और फिर कभी भी सबके जानने से च्युत नहीं होता, इसलिए ज्ञान सर्वव्यापक है।** पूरा हो गया है भगवान को। समझ में आया? ऐसा केवलज्ञान का पर्यायधर्म, वह आत्मा का पूरा स्वभाव है। ऐसी जिसे अन्तर में प्रतीति हो कि ऐसा केवलज्ञान जाने, ऐसे केवलज्ञान का पिण्ड आत्मा मैं हूँ, उसे स्व-सन्मुख झुकने से सम्यग्दर्शन होता है। तब उसे धर्म की शुरुआत हुई कहने में आती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १, सोमवार, दिनांक २३-०९-१९६८
गाथा - २४ से २६, प्रवचन - २१

प्रवचनसार। यह ज्ञानतत्त्व अर्थात् आत्मा ज्ञान प्रमाण है, यह बात सिद्ध करते हैं। कोई ऐसा कहे कि भाई! यह ज्ञान है। आत्मा कहीं इतना छोटा होगा? लोकव्यापक होगा? ऐसे बहुत मत हैं। तो उसके सामने कहते हैं कि भाई! ज्ञान जो यहाँ है ज्ञान, उस ज्ञान जितने में व्यापता है, उतने में आत्मा है। उसका क्षेत्र ज्ञान में व्यापे जितने में, उतना उसका—आत्मा का क्षेत्र है। समझ में आया? कोई कहता है न कि भाई! यहाँ से छूटे तो फिर अनन्त में मिल जाये, दूसरा आत्मा उसमें मिल जाये। जैन में और कितने ही (मानते हैं कि) ज्योति में ज्योति मिल जाती है। सिद्ध हो न, इसलिए ज्योति में ज्योति मिल जाती है। ऐसा नहीं। तथा कोई छोटा आत्मा अँगूठामात्र को ऐसा कहे, वैसा नहीं है। अन्दर आत्मा, जितने में ज्ञान है, उतने में ही वह आत्मा है। ज्ञान के गुण से आत्मा हीनाधिक नहीं है। समझ में आया? यह कहते हैं।

★ ★ ★

गाथा - २४-२५

अब, आत्मा को ज्ञान प्रमाण न मानने में दो पक्ष उपस्थित करके दोष बतलाते हैं:—

णाणप्पमाणमादा ण हवदि जस्सेह तस्स सो आदा।
हीणो वा अहिओ वा णाणादो हवदि धुवमेव॥२४॥
हीणो जदि सो आदा तण्णाणमचेणंद ण जाणादि।
अहिओ वा णाणादो णाणेण विणा कहं णादि॥२५॥जुगलं॥

नीचे हरिगीत।

जो आत्मा को ज्ञान-प्रमाण न माने तो उसके मत में।
आत्मा होगा हीन ज्ञान से अथवा होगा अधिक अरे!॥२४॥

यदि आत्मा हो हीन, अचेतन ज्ञान कहो कैसे जाने?।
आत्मा अधिक ज्ञान से हो तो, ज्ञान बिना कैसे जाने?॥२५॥

अन्वयार्थ आ जायेगा टीका में। **यदि यह स्वीकार किया जाये कि यह आत्मा ज्ञान से हीन है...** आत्मा ज्ञान से हीन है अर्थात् कि आत्मा छोटा है और ज्ञान कुछ बढ़ गया है। समझ में आया? आत्मा के क्षेत्र से ज्ञान का क्षेत्र बढ़ गया है और ज्ञान के क्षेत्र से आत्मा घट गया है, हीन है। समझ में आया? यह शरीर, वाणी, रजकण, वह तो परवस्तु है, वह तो आत्मा है ही नहीं, इसलिए उसकी बात ही नहीं। वह तो परवस्तु है। पुण्य-पाप के विकल्प, वे भी आस्रवतत्त्व हैं, वे कहीं आत्मतत्त्व नहीं। वह आत्मा जो है, वह ज्ञानप्रमाण व्यापक है। यदि आत्मा ज्ञान से हीन हो, **ऐसा स्वीकार किया जाये तो आत्मा से आगे बढ़ जानेवाला ज्ञान (आत्मा के क्षेत्र से...)** ज्ञान का गुण आगे बढ़ गया। क्योंकि ज्ञान से हीन हुआ न आत्मा?

आगे बढ़ जानेवाला ज्ञान (आत्मा के क्षेत्र से आगे बढ़कर उससे बाहर व्याप्त होनेवाला ज्ञान)... समझ में आया? आत्मा का जो क्षेत्र है, उससे ज्ञान बाहर गया, क्षेत्र से आगे गया तो ज्ञान से आत्मा हीन हो गया। ऐसा यदि हो तो **अपने आश्रयभूत चेतनद्रव्य का समवाय (सम्बन्ध) न रहने से...** तो ज्ञान को ज्ञान का आधार जो आत्मा, उसका ज्ञान को आधार नहीं रहने से, आत्मा के क्षेत्र से ज्ञान बढ़ गया होने से, उस ज्ञान को आत्मा के क्षेत्र का आधार नहीं रहने से **अचेतन हुआ...** उस ज्ञान को आत्मा का आधार नहीं। ज्ञान बढ़ गया आगे। क्षेत्र तो रह गया हीन। तो वह ज्ञान अधिक हो गया तो उसे आत्मा का आधार नहीं रहा, इसलिए चेतन नहीं रहा, अचेतन रहा। समझ में आया?

बाहर व्याप्त होनेवाला ज्ञान अपने आश्रयभूत... अर्थात् ज्ञान का आधार, वह तो आत्मा है। अब वह ज्ञान तो आत्मा से आगे बढ़ गया, क्षेत्र से बाहर गया। बाहर अधिक आगे गया; इसलिए उस ज्ञान को आधार—आश्रय आत्मा का तो रहा नहीं। ज्ञान को आत्मा का आधार (नहीं) रहा, इसलिए ज्ञान तो अचेतन हुआ। समझ में आया? **चेतनद्रव्य का समवाय (सम्बन्ध) न रहने से अचेतन होता हुआ रूपादि गुण जैसा होने से नहीं जानेगा;...** लो! रूप। रंग, गन्ध जैसे गुण हैं, उन्हें चैतन्य का आधार नहीं। रंग, गन्ध, रस जो गुण है वर्ण (पुद्गल) के, उन्हें चैतन्य का आधार नहीं। इसी प्रकार

इस ज्ञान को आत्मा का आधार नहीं तो रूप गुण जैसा हो गया। रूप, रंगगुण जैसे जानते नहीं, वैसे यह ज्ञान भी जानता नहीं। क्योंकि ज्ञान को जाननेवाला चैतन्य का आधर तो रहा नहीं। भगवानजीभाई! समझ में आया इसमें?

आत्मा का जो ज्ञानगुण है, उसका क्षेत्र, आत्मा के क्षेत्र से ज्ञान का क्षेत्र यदि ऐसे बढ़ जाये, आगे जाये तो उस ज्ञान का आधार जो आत्मा, वह तो उसे रहा नहीं। तो जैसे रूप, गन्ध, रस को चैतन्य का आधार नहीं तो वे गुण जानते नहीं। इसी प्रकार यह ज्ञान आत्मा के क्षेत्र से आगे गया, आत्मा रह गया अन्दर हीन, तो उस ज्ञान को इसका आधार नहीं रहा, तो रूप, रस, गन्ध जैसे जानते नहीं, वैसे यह ज्ञानगुण भी आत्मा के आधार बिना जानता नहीं। वह तो अचेतन हो गया। न्याय समझ में आता है कुछ? न्याय से बात की है।

यह सब विवाद बहुतों को है न कि आत्मा तो ऐसे व्यापक है, या यह है या तो अन्दर एक जरा अँगूठामात्र है, छोटा इतने में रहता होगा। भाई! तुझे आत्मा के क्षेत्र की खबर नहीं। जितना ज्ञान का क्षेत्र चौड़ा है, उतना ही आत्मा का है। उस आत्मा के क्षेत्र से ज्ञान का क्षेत्र बढ़ जाये, ऐसा होता नहीं। ऐसे बढ़ जाये तो रूप गुण जैसे ज्ञान बिना, चैतन्य बिना का है, रंग, गन्ध, रस, स्पर्श जैसे चेतन बिना के हैं, तो वह रूप गुण, रस गुण कहीं जानते नहीं, उसी प्रकार ज्ञान को यदि चेतन का आधार न रहे और उसके क्षेत्र से ज्ञान आगे बढ़ जाये तो उस क्षेत्र ज्ञान को आत्मा का आधार नहीं रहा। तो जैसे रूप और रस नहीं जानते, क्योंकि उन्हें चेतन का आधार नहीं। इसी प्रकार इस ज्ञान को आत्मा का आधार नहीं रहने से ज्ञान भी नहीं जानेगा, अचेतन हो जायेगा। समझ में आया?

रूपादि गुण जैसा होने से नहीं जानेगा;... कितना न्याय है! युक्ति से तो सिद्ध किया है इसे। सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा हुआ आत्मा। वह तो ज्ञानप्रमाण आत्मा है और आत्माप्रमाण ज्ञान है। अज्ञानी कल्पे कुछ का कुछ ऐसे व्यापक और फलाना। समझ में आया? एक बार आया था वह संतबाल में एक लेख। खड़ा रखा आत्मा ऐसे व्यापक हो गये। बड़ा प्रकाश होकर ऐसे सब व्याप गया। ऐसा आया था नहीं एक में? फोटो में। शरीरप्रमाण ... ऐसे फिर ऐसा रखा। लम्बा चैतन्य। खबर

नहीं, कहते हैं। भाई! गुण जितने में है, उतने में गुणी है। जितने में वह गुणी आत्मा, उतने में गुण है। एक गुण लम्बा होकर आगे चला जाये तो चेतन बिना आगे रहे तो उसे ज्ञान—जानने की शक्ति काम करे नहीं। कहो, समझ में आया? यहाँ तो रूपादि की बात की। परन्तु रागादि जैसे जानते नहीं, वैसे ज्ञान को आत्मा का आधार न हो तो वह ज्ञान जाने नहीं। समझ में आया?

और यदि यह आत्मा ज्ञान से अधिक है... क्या कहा? आत्मा ज्ञान से अधिक। ज्ञान रह गया छोटा और आत्मा हो गया अधिक। आगे बढ़ गया क्षेत्र। आत्मा का क्षेत्र बढ़ गया और ज्ञान का क्षेत्र हो गया छोटा। आत्मा ज्ञान से अधिक है, **ऐसा पक्ष स्वीकार किया जाये तो अवश्य (आत्मा) ज्ञान से आगे बढ़ जाने से...** आत्मा ज्ञान से आगे बढ़ गया। ज्ञान रह गया यहाँ, आत्मा गया आगे। **(ज्ञान के क्षेत्र से बाहर व्याप्त होने से) ज्ञान से पृथक् होता हुआ...** क्योंकि ज्ञान से तो आत्मा भिन्न पड़ गया। आत्मा ज्ञान से आगे बढ़ गया, इसलिए ज्ञान से आत्मा भिन्न रह गया। तो जैसे घटपटादि... वहाँ द्रव्य लिया, उसमें गुण लिये थे। समझ में आया? आत्मा से ज्ञान यदि हीन हो, हीन, ज्ञान से आत्मा हीन हो तो वह ज्ञान रूप, गन्ध, रस नहीं जानते, वैसे ज्ञान भी नहीं जाने। अब यहाँ कहते हैं कि ज्ञान आत्मा छोटा हो, (आत्मा) बढ़ गया ऐसा हो, तो घटपट जैसे जानते नहीं, वैसे आत्मा भी जानेगा नहीं। समझ में आया?

(ज्ञान के क्षेत्र से बाहर व्याप्त होने से) ज्ञान से पृथक् होता हुआ... ज्ञान से आत्मा आगे अन्दर गया, ज्ञान बढ़ गया पूरा। **घटपटादि जैसा होने से...** घटपट में जैसे ज्ञान नहीं, वैसे आत्मा ज्ञान से आगे बढ़ गया तो उस आत्मा में ज्ञान रहा नहीं। जैसे घटपट में ज्ञान नहीं, वैसे आत्मा में ज्ञान नहीं रहा। समझ में आया? युक्ति से आगम बात करता है। जगत में आत्मा में अन्तर है न बहुतों को? क्षेत्रअन्तर माननेवाले बहुत हैं न! जैन को समझनेवाले भी कितने ही उसे विभु है, और व्यापक है, ऐसा बहुत सब मानते हैं। निश्चय की बात आवे न! बापू! वेदान्त जैसी बात है, यह तो जैन की, हों! एक ही है, सब एक ही है।

एक बार कहा था न २००५ के वर्ष में। मगनलाल दफ्तरी। अलिंगग्रहण चलता था। और फिर आये नानालालभाई के मकान में। कहे, यह वेदान्त और इन दोनों में कुछ

अन्तर नहीं, एक ही बात है। कहा, इसे कुछ खबर नहीं होती। वे मगनलाल दफ्तरी थे न? रतिभाई नहीं आते थे? क्यों मगनलाल दफ्तरी नहीं, वे मोरबीवाले। नहीं पहिचानते। वे पहले पीछे से आये थे सब। पहले उसमें भिन्न पड़ा था वाँचने में भिन्न किया था। उन नरभेरामभाई के मकान में वाँचने का शुरु किया था। वे मगनभाई सामने थे वहाँ। शनिवार को वाँचते थे। नानालाल। फिर कहे। ऐ ... वहाँ सुन्दरलाल। बहुत जमा था, हों! क्यों चले गये? ऐसा बोलते थे मगनलाल दफ्तरी, सुन्दरलाल क्यों चले गये? ... बहुत अच्छा था। ऐसे के ऐसे कौन जाने? बुद्धि के जरा खां माने न स्वयं को बुद्धिवाला परन्तु दीवार भूले बड़े। यहाँ ... मैंने कहा सुनना कल सवेरे। मौके से वहाँ दोनों थे... पाखण्डियों का... ज्ञान सर्वव्यापक है, ऐसा माननेवाले पाखण्डी हैं। अलिंगग्रहण में आता है। समझ में आया? वही बोल आनेवाला था दूसरे दिन। कहा, सुनना तब वेदान्त और इस जैन में (क्या अन्तर है)। बापू! जैन सम्प्रदाय पूरी चीज़ स्वतन्त्र वस्तु है, उसे वह स्वीकारता है। किसी के साथ उसका मिलान नहीं। निश्चय की बातें आवे न वेदान्त में? निर्विकल्प आत्मा है, ऐसा है, शुद्ध है, ध्रुव है, फलाना है। वह तो वस्तुस्वरूप उसका जो है शाश्वत्, वह शुद्ध चैतन्य निर्विकल्प है, परन्तु उसकी पर्याय में अशुद्धता अनादि की है। समझ में आया? अशुद्धता नहीं, ऐसा नहीं। यह लिखा करता है अन्दर दिल्लीवाला। देखो, अशुद्धता वे मानते नहीं। ऐसा आया है जैनशासन में। पहले लेख आया है। अशुद्धता वे मानते ही नहीं। जीव त्रिकाली, वह शुद्ध ही मानते हैं। वेदान्त जैसी श्रद्धा हो गयी। वेदान्त को ... नास्ति जैसी। ... जैसी श्रद्धा।

पर्याय में अशुद्धता अनादि की न हो तो फिर धर्म करना किसे रहे? अशुद्धता न हो तो दुःख किसे? वह तो द्रव्यदृष्टि से अशुद्धता व्यवहार से है, निश्चय से नहीं। ऐसी बात है। परन्तु पर्याय में तो वास्तव में है। पर्याय में अशुद्धता स्वयं में स्वयं के कारण से है। परन्तु द्रव्य की दृष्टि होने से वह अशुद्धता द्रव्य और गुण में है नहीं। ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर वह अशुद्धता पृथक् हो जाती है। उस अशुद्धता का स्वामी ज्ञानी है नहीं। ऐसा है। समझ में आया?

जब तक पर्यायदृष्टि है, अशुद्धता के परिणाम और विकार पर रुचि और दृष्टि है, तब तक तो वह बराबर ही है। उसका आत्मा अशुद्धता है, मलिन है, दुःखी है, संसारी

है। समझ में आया ? परन्तु दृष्टि बदलने से पर्यायबुद्धि छूटकर वस्तु चैतन्यमूर्ति ज्ञानानन्द परमात्मा स्वयं द्रव्य-ध्रुव चीज़ की जहाँ दृष्टि होने से, वह अशुद्धता स्वयं में है नहीं। वह द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है, और पर्याय की शुद्धता दृष्टि में हुई। इसलिए शुद्धता का भाग वहाँ आत्मा में रहा और अशुद्धता, वह आत्मा में नहीं। ऐसी बात है। परन्तु लोग कुछ का कुछ खींचते हैं, कुछ की कुछ खींचतान करते हैं।

यहाँ कहते हैं, **(ज्ञान के क्षेत्र से बाहर व्याप्त होने से)...** ज्ञान से आत्मा आगे बढ़ गया होने से **ज्ञान से पृथक् होता हुआ घटपटादि...** जैसे घड़ा और वस्त्र आदि **जैसा होने से...** जैसे घट-पट में ज्ञान नहीं, घट-पट में ज्ञान नहीं, उसी प्रकार आत्मा से आगे बढ़ गया, इसलिए ज्ञान आत्मा में रहा नहीं। इसलिए **घटपटादि जैसा होने से ज्ञान के बिना नहीं जानेगा।** आत्मा में ज्ञान नहीं, इसलिए ज्ञान के अतिरिक्त जाने नहीं। कहो, समझ में आया ? बढ़ गया आत्मा आगे, ज्ञान रह गया ऐसे। **घटपटादि जैसा होने से ज्ञान के बिना नहीं जानेगा। इसलिए यह आत्मा ज्ञानप्रमाण ही मानना योग्य है।** लो ! जितने में ज्ञान है, उतने में आत्मा है। आत्मा और ज्ञान दोनों समान हैं क्षेत्र से-क्षेत्र से। वह द्रव्य है, वह उसका भाव है। भाव का व्यापकपना क्षेत्र प्रमाण है। कहो, समझ में आया ? और इसे ध्यान करना पड़े (तो) ऐसे अन्दर में एकाग्र होता है न या ऐसे एकाग्र करना पड़ता है, उसे बाहर में ? जहाँ है, उस ओर में एकाग्र होता है। तो उसका क्षेत्र और ज्ञान, आत्मा और ज्ञान दोनों आगे वस्तु एकाग्र अन्दर में होता है वह। जितने में है, उतने में एकाग्र होता है। समझ में आया ? ज्ञान की पर्याय आत्मा के साथ व्याप्त है। ज्ञानपर्याय ऐसे अन्दर में है यहाँ इतने में। अन्दर में एकाकार होती है। समझ में आया ? वस्तु स्वभाव ध्रुव में वह ज्ञान की पर्याय झुकती है तब इतने ही क्षेत्र में वह पर्याय एकाग्र होती है। कहो, समझ में आया ?

भावार्थ :- आत्मा का क्षेत्र ज्ञान के क्षेत्र से कम माना जाये... आत्मा का क्षेत्र ज्ञान के क्षेत्र से कम माना जाये। **तो आत्मा के क्षेत्र से बाहर वर्तनेवाला ज्ञान...** आत्मा के भान से ज्ञान बाहर वर्तता होने से **चेतनद्रव्य के साथ सम्बन्ध न होने से...** उस ज्ञान को चेतनद्रव्य का तो सम्बन्ध रहा नहीं। **अचेतन गुण जैसा ही होगा,...** वह गुण तो अचेतन जैसा रहा। **जानने का काम नहीं कर सकेगा,...** चेतन के आधार बिना अकेला

ज्ञान जानने का काम (नहीं करता, इसलिए) अचेतन हुआ, वह जान नहीं सकता। समझ में आया? यह मकान का क्षेत्र बाँधते हैं न? भाई! कहाँ तुम्हारा मकान है? चार दिशा नहीं बाँधते? इस जगह हमारा मकान। पूर्व में फलाने का, पश्चिम में फलाने का, उत्तर में फलाने का, दक्षिण में फलाने का। चतुर्सीमा लिखते हैं या नहीं? वह यह चीज़ यहाँ है। यह चारों ओर के बीच में यह है, ऐसा लिखते हैं न! इसी प्रकार आत्मा शरीर, वाणी, कर्म आदि बाहर से सबसे अन्दर भिन्न ज्ञानप्रमाण में आत्मा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : शरीर में आत्मा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर में नहीं, राग में नहीं, कर्म में नहीं और पुण्य में भी नहीं। समझ में आया? यह तो चतुर्दिशा चारों ओर रह गयी। शरीर ऐसे रह गया, यह शरीर ऐसे रह गया, सिर ऐसे रह गया। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप वह ज्ञान प्रमाण क्षेत्र है, उसका क्षेत्र बाहर है ही नहीं। लो! वास्तव में तो ज्ञान, राग में भी व्यापता नहीं तो शरीर में कहाँ से व्यापे? इसी प्रकार आत्मा। जब ज्ञान व्यापता नहीं तो आत्मा भी राग में और शरीर में व्यापता नहीं। समझ में आया?

जैसे कि वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श... परमाणु के रंग, गन्ध, रस, स्पर्श गुण, उस गुण को चैतन्य का आधार नहीं होने से वह गुण जानने का काम नहीं कर सकते। **इत्यादि अचेतन गुण जानने का काम नहीं कर सकते। यदि आत्मा का क्षेत्र ज्ञान के क्षेत्र से...** उसी प्रकार। वह आ गया। इसी प्रकार आत्मा के क्षेत्र से आगे बढ़ा हुआ ज्ञान कुछ काम नहीं कर सकता। आत्मा का आधार नहीं, इसलिए गुण काम नहीं कर सकता। एक बोल। **यदि आत्मा का क्षेत्र ज्ञान के क्षेत्र से अधिक माना जाये...** आत्मा का क्षेत्र ज्ञान से अधिक आगे बढ़ गया। **तो ज्ञान के क्षेत्र से बाहर वर्तनेवाला...** ज्ञान के क्षेत्र से बाहर वर्तता आत्मा **ज्ञानशून्य आत्मा ज्ञान के बिना जानने का काम नहीं कर सकेगा,... जैसे कि ज्ञानशून्य घड़ा, ज्ञानशून्य घड़ा, ज्ञानशून्य वस्त्र इत्यादि पदार्थ जानने का काम नहीं कर सकते।** उसी प्रकार ज्ञानरहित आत्मा जानने का कुछ काम नहीं कर सकता। कहो, समझ में आया?

इसलिए आत्मा न तो ज्ञान से हीन है और न अधिक है, किन्तु ज्ञान जितना ही है। लो! तेरा क्षेत्र और तेरा भाव तेरे द्रव्यप्रमाण है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ज्ञानभाव, वह द्रव्यप्रमाण है और आत्मा द्रव्य ज्ञानप्रमाण है। सर्वज्ञ हुए तो भी ज्ञान की पर्याय तो आत्मा प्रमाण ही है। समझ में आया? पर को जानने से कहीं पर के क्षेत्ररूप हो नहीं गया। समझ में आया? ज्ञान का स्वभाव वह गुण है, वह द्रव्यप्रमाण है। तो उसकी पर्याय भी उसके द्रव्यप्रमाण ही व्याप्त है। भले पर्याय का समय एक हो, गुण का समय त्रिकाल। समझ में आया? ज्ञान की पर्याय का समय एक, परन्तु समय एक होने पर भी पूरे आत्मा में व्याप्त है। पूरे असंख्य प्रदेश में व्याप्त है। वह पर में व्याप्त नहीं। तीन काल-तीन लोक को जाने, इसलिए ज्ञान की पर्याय पर में व्याप्त हो, ऐसे पर को जाने, लो! इसलिए ज्ञान वहाँ व्याप जाये, ऐसा है नहीं, कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पर्श नहीं करता, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। यह वे कहते थे न, कहा न हमारे वहाँ (संवत्) १९८४ में प्रश्न हुआ था। खत्री थे खत्री। राणपुर के खत्री वेदान्ती। परमाणु पुद्गल में अन्दर प्रविष्ट हुए बिना ज्ञान कैसे जाने? जो चीज़ है, उसमें प्रविष्ट करे (तो जाने)। परन्तु प्रविष्ट करे तो जाने (तो) वह वस्तु ही कहाँ रही? यह मिर्च चरपरी है, उस चरपराई में ज्ञान प्रविष्ट करे, तब चरपराई को जानता है? ज्ञान तो ज्ञान में रहकर यह चरपरा जानता है। चरपरेरूप हुए बिना, ज्ञानरूप रहकर चरपराई को जानता है। प्रत्यक्ष वस्तु है या नहीं? यदि चरपरेरूप होकर जाने तो जड़ हो जाये, ज्ञान जड़ हो जाये। कहो, समझ में आया? ज्ञानस्वरूप है, वह यह चरपराई है, यह खट्टा है, उस खट्टे और चरपरेरूप होकर ज्ञान जानता है? ज्ञान ज्ञानरूप में रहकर यह चरपरा, खट्टा—ऐसा जानता है। यह चरपरे-खट्टेरूप होकर नहीं जानता। ज्ञान ज्ञानरूप होकर चरपरे-खट्टे को जानता है। आहाहा! इसे ख्याल भी नहीं आता कि वह चरपरा है, मीठा है, प्रविष्ट हुआ है अन्दर? उसके मीठे के रजकण में प्रविष्ट है जड़ में? समझ में आया? इस शरीर के रजकण को जाने तो रजकण में प्रविष्ट है ज्ञान? यह तो मिट्टी है। तथापि यह शरीर है, माँस है, हड्डियाँ हैं, अन्तरड़िया हैं, चमड़ा है, रक्त है—ऐसा ज्ञान ज्ञान में रहकर, ज्ञान पररूप नहीं होकर, ज्ञान पर को पररूप हुए बिना, ज्ञान ज्ञानरूप होकर जानता है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - २६

अब, ज्ञान की भाँति आत्मा का भी सर्वगतत्व न्यायसिद्ध है, ऐसा कहते हैं :- जैसे ज्ञान सबको जानता है न, उसे सर्वगत कहा न व्यवहार से? ज्ञान तीन काल-तीन लोक को जानने को समर्थ है। उसका विषय है न उतना? परिच्छिन्न जितना है, उन सबको जानता है। उन सबको जानता है ज्ञान, इसलिए उस ज्ञान को सर्वगत कहा गया है। व्यवहार से, हों! समझ में आया? तो कहते हैं कि आत्मा को भी सर्वगतपना सिद्ध है। क्योंकि ज्ञानप्रमाण आत्मा है और आत्माप्रमाण ज्ञान है। जब ज्ञान को सर्वगत कहा, ज्ञान को सर्व को जाननेवाला कहा, सर्वगत सबको जाने, इसी प्रकार आत्मा भी सर्वगत है। समझ में आया? कहो, कितनी बात ज्ञानतत्त्व की सिद्ध करते हैं!

'**सव्वगदो जिणवसहो**' यहाँ तो साम्यपने के प्रताप से शुद्ध उपयोग के प्रसाद से प्राप्त हुआ केवलज्ञान, उसे यहाँ स्पष्ट व्यक्त करते हैं। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन है, उसके आश्रय होकर जो पर्याय में शुद्ध उपयोग होकर, शुद्ध उपयोग की रमणता होकर, वह चारित्र है। उस चारित्र की रमणता से केवलज्ञान की प्राप्ति सर्वज्ञ की हुई, वह ज्ञान सर्व को जाने। सर्वज्ञ कहा न! सर्व को जाने, कहा न? तो सर्वज्ञ है तो सर्वगत कहा जाता है उसे। सबको जानता है, इसलिए सर्वगत कहा जाता है। प्रविष्ट हो जाता है—ऐसा कुछ नहीं। आहाहा! तो जैसे ज्ञान को सर्वगत कहा जाता है, सर्व को जाननेवाला है, इस अपेक्षा से और उसका विषय सर्व है, इतनी अपेक्षा से, तो आत्मा भी ज्ञान को सर्वगत कहा जाने पर आत्मा भी (सर्वगत है)। '**जिनवृषभः**' है न?

सव्वगदो जिणवसहो सव्वे वि य तग्गया जगदि अट्ठा।
णाणमयादो य जिणो विसयादो तस्स ते भणिदा॥२६॥

उसके विषय जितना ज्ञान हो गया तो आत्मा भी उतना ही हो गया, ऐसा कहते हैं। जितना आत्मा प्रमाण ज्ञान और ज्ञान ज्ञेय प्रमाण। यह आया था न पहले। १५वीं गाथा में आया था। ज्ञान ज्ञेय के अन्त को पा जाता है। १५वीं गाथा में आया था। भगवान आत्मा का ज्ञान अन्तर शुद्ध उपयोग के प्रसाद द्वारा... समझ में आया? लो, यह विवाद वे करते हैं न कि यह व्यवहार करने से शुद्ध उपयोग होता है। पहला शुभ उपयोग ही

(होता है) । यह बात ही एकदम झूठी है । उसे खबर नहीं । समझ में आया ? सोनगढ़वाले व्यवहार का निषेध करते हैं । अरे... भाई ! भगवान कहते हैं । सोनगढ़वाले की बात कहाँ है ? परन्तु सुनी नहीं न ! ऐई ! व्यवहार से कुछ नहीं होता (ऐसा नहीं), व्यवहार से होता है, ऐसा भगवान कहते हैं, वे ऐसा कहते हैं । भाई ! व्यवहार तो राग है न, राग तो उसके स्वरूप में नहीं तो उससे ही स्वयं कैसे प्राप्त होगा ? उसमें ज्ञान और आनन्द है तो उस ज्ञान और आनन्द की रमणता द्वारा ज्ञान और आनन्द की पूर्णता होती है । खबर नहीं । समझ में आया ? इस ज्ञान की भाँति आत्मा का भी सर्वगतपना यह । सूक्ष्म विषय है ।

जिनवरवृषभ सर्वगत जानो, जिनगत जग के सभी पदार्थ ।
क्योंकि जिनेश्वर ज्ञानमयी हैं, ज्ञान-विषय हैं सभी पदार्थ ॥२६ ॥

जैसे ज्ञान का विषय जैसे पूर्ण सर्व है, वैसे आत्मा का विषय भी पूर्ण सर्व ही है । क्योंकि ज्ञान जैसे सर्व को जानता है, वैसे आत्मा भी सर्व को जानता है । ज्ञान को जैसे सर्व विषय है, वैसे आत्मा को भी सर्व विषय है, ऐसा सिद्ध करते हैं । समझ में आया ? आहाहा !

इसका अर्थ । **जिनवर सर्वगत हैं...** वह ज्ञान सर्वगत सिद्ध किया पहले । अब उस ज्ञान का धारक परमात्मा, आत्मा जिनवर । समझ में आया ? जिन तो चौथे (गुणस्थान) से कहलाता है । जिनवर, वह तो प्रधान । गणधर को जिन कहें, उनसे भी प्रधान केवली तीर्थंकर । जिनवर जिनवृषभ । ... अर्थ जिनवर कहा । **सर्वगत है...** भगवान आत्मा भी, जैसे ज्ञान में, ज्ञान में लोकालोक जिसका विषय है, उतना है, इससे ज्ञान को सर्व में, सर्व को जाननेवाले की अपेक्षा से सर्वगत कहा गया है । इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान का धारक जिनवर आत्मा, ऐसा । वह आत्मा भी सर्वगत है । **और जगत के सर्व पदार्थ जिनवरगत हैं...** समझ में आया ? आहाहा ! ... स्वरूप है यह तो । लोकालोक जिसमें आ गये, कहते हैं और स्वयं मानो लोकालोक में प्रविष्ट हो जानने की अपेक्षा से, ऐसा उसे सर्वगत कहा जाता है । आहाहा !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो एक-एक भगवान इतना है ।

मुमुक्षु : देहप्रमाण आत्मा।

पूज्य गुरुदेवश्री : देहप्रमाण आत्मा और ज्ञानप्रमाण उसका क्षेत्र, वापस देहप्रमाण उसका क्षेत्र नहीं, ऐसा। समझ में आया? ज्ञानप्रमाण उसका क्षेत्र और आत्मा प्रमाण उसका ज्ञान का क्षेत्र। यह तो जिसके प्रमाण... यह तब कहते हैं न, देखो! शरीर प्रमाण उसे रहना पड़े न! रहने की उसकी योग्यता ही पर्याय की इतनी है।

मुमुक्षु : ज्ञानप्रमाण आत्मा और आत्मा प्रमाण ज्ञान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा यहाँ है। पर की अपेक्षा की बात है ही नहीं। यह तो कहते हैं न, लो, सिद्ध को भी (अन्तिम) शरीर प्रमाण रहना पड़ा उतना भी वहाँ पराधीन है। लो! अरे! ऐसा नहीं, भगवान! तू क्या करता है? वह तो ज्ञानप्रमाण आत्मा। अनन्त गुण है, यह बाद में लेंगे। ज्ञान वह आत्मा, आत्मा तो ज्ञान और आननद इत्यादि है, ऐसा कहेंगे। ज्ञान वह आत्मा और आत्मा तो ज्ञान और आनन्द इत्यादि है। अनन्त गुणसम्पन्न है, परन्तु शरीरसहित है और परक्षेत्रसहित है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? लो! सिद्ध भगवान को भी ऐसा अन्तिम शरीर प्रमाण रहना पड़ा या नहीं? कि नहीं, भाई! तुझे खबर नहीं। समझ में आया? वह स्वयं ज्ञानप्रमाण ही है। वे परक्षेत्ररूप वहाँ रहे हैं, वहाँ वापस उन्हें इतने प्रमाण में रहना पड़ा और धर्मास्ति आगे नहीं है, (इसलिए आगे नहीं जाते), इतने अधिक पराधीन। अरे! भगवान क्या करता है तू यह? समझ में आया?

भगवान पूर्ण सर्वज्ञ जिनवर ज्ञानप्रमाण है। उस ज्ञान का विषय जैसे पूर्ण है, वैसे आत्मा का विषय भी पूर्ण है। सर्वज्ञ सिद्ध करना है न यहाँ? आहाहा! '**सव्वण्हू**' स्वयंभू, ऐसा सिद्ध किया है न १६वीं गाथा में। स्वयंभू सर्वज्ञ हुए। भगवान आत्मा अन्दर शक्ति का समूह, उसके सामने देखने से पुण्य-पाप के विकल्प से पृथक् होने से, अपने स्वरूप में रगड़ते, रमते, चरते शुद्ध उपयोग वह, उसे केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। स्वयंभू हो जाता है, स्वयं से प्राप्त होता है। समझ में आया? वह स्वयंभू। इस जगत में स्वयंभू वे परमात्मा हैं और स्वयंभू ने यह बनाया है। वह कुछ है नहीं। समझ में आया? इसलिए स्वयंभू शब्द है। स्वयं अपने से है। ईश्वर का कर्ता कौन? तो स्वयंभू कहते हैं। तो ईश्वर उसका कर्ता। यह बात ही खोटी है।

कहते हैं न वे लोग कि भाई! उसका कर्ता कौन? कि वह तो स्वयंभू है। वह

दूसरे का कर्ता, इसके लिये यहाँ स्वयंभू शब्द प्रयोग किया है। कोई किसी का कर्ता है नहीं। वस्तु ही स्वयं ज्ञायकमूर्ति चिदानन्द प्रभु है। अनन्त-अनन्त शक्ति का सत्त्व वह स्वयं ही स्वयंभू। स्वयं है, वह हो गया। है, वस्तु स्वयं ज्ञान, आनन्द के अनन्त अपरिमित स्वभाव से भरपूर भगवान है, वह स्वयं ही अपनी पर्याय में—अवस्था में परिणमन करके स्वयंभू सर्वज्ञ हुआ। दूसरा कोई परमात्मा का आधार भी नहीं और दूसरे किसी कारणों का भी आधार नहीं। ऐसा एक-एक आत्मा स्वयंभू होने के योग्य है। आहाहा! समझ में आया?

निगोद में ऐसे अनन्त आत्मा पड़े हैं, वे सब आत्मायें... आहाहा! स्वयं स्वतः तत्त्व है। आप स्वयं ज्ञानानन्दस्वभाव से स्वतः तत्त्व है वह। और इससे वह अपने तत्त्व के स्पर्श से, एकाग्रता से स्वयं आप ही अपनी पर्याय को प्राप्त करता है। कितनी कैसी पर्याय? कि केवलज्ञान जितनी, सर्वज्ञ को जाने इतनी। तो सर्वज्ञ कहा न? '**सव्वण्हू**' कहा न उसे? तो सर्वगत। कहते हैं कि ज्ञान जानता है इस अपेक्षा से। उसके विषय सब हैं न, इस अपेक्षा से उसे सर्वगत कहा है। इस प्रकार आत्मा का भी विषय सर्व है इसलिए आत्मा को भी सर्वगत कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

जिनवर सर्वगत हैं और जगत के सर्व पदार्थ जिनवरगत हैं... अर्थात् भगवान आत्मा में वे आ गये, ज्ञात होते हैं, ऐसा। '**जिनः ज्ञानमयत्वात्**' **क्योंकि जिन ज्ञानमय हैं...** भगवान आत्मा जिनवर का—परमात्मा का तो ज्ञानमय है **और वे सब पदार्थ ज्ञान के विषय होने से...** देखा! उस ज्ञान के विषय होने से वे आत्मा के विषय हैं, ऐसा कहना है। ज्ञान के विषय होने से ही '**तस्य भणिताः**' '**तस्य**' अर्थात् जिन के अर्थात् आत्मा के। समझ में आया? ओहोहो! प्रवचनसार। यह ज्ञानस्वरूप है, वह सबको जानता है। जाने, वह जाननेवाले को न जाने, ऐसा कैसे हो? जाने वह पूर्ण को, सबको जाने। तो कहते हैं कि जैसे ज्ञान का विषय पूरा सब है, वैसे जिनवर अर्थात् आत्मा का विषय भी पूर्ण है। समझ में आया?

'**भणिताः**' लो! भगवान से कहा गया है। सर्वज्ञ परमेश्वर ने इस प्रकार से आत्मा और ज्ञान, ज्ञान जब सर्व को जानता है, ऐसा जो ज्ञान का सर्व विषय है, सर्व विषय है... ओहो! देखो न विवाद पूरा सर्वज्ञ से उठा है। यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञान का सर्व विषय

ही है। निमित्त, वह सब सर्व पूरा विषय है। स्वयं अपने से सर्वज्ञ हुआ है, इसलिए आत्मा सर्वगत कहा गया है, इसलिए आत्मा भगवान जिनवर अर्थात् वीतराग आत्मा, उसे भी इस प्रकार से इस ज्ञान का विषय इतना सर्व है तो आत्मा का विषय भी इतना ही है। आहाहा! समझ में आया? देखो! इसकी महत्ता और इसका स्वरूप! ऐसे आत्मा... आत्मा करे, ऐसा नहीं होता। यह आत्मा ऐसा ज्ञात हो, उसने आत्मा जाना कहलाता है। समझ में आया? यह तो सब कहे आत्मा... आत्मा सब बातें तो बहुत चली है। आहाहा!

सर्व पदार्थ... 'विषयत्वात् तस्य भणिताः' भगवान सर्वज्ञ परमात्मा के ज्ञान का जब सब विषय है तो उनके आत्मा का भी सब विषय है। समझ में आया? क्या कहा? ज्ञान का जब सर्व विषय है तो आत्मा का भी सर्व विषय है, द्रव्य का भी सर्व विषय है, ऐसा कहते हैं। अन्तर है एक-एक बात में। समान-समान लगे, ऐसा नहीं। समझे? समझ में आया? आहाहा! आत्मा जैसे ज्ञान से व्यापक... गुण की व्याख्या नहीं? क्या है? उसमें नहीं आती? गुण किसे कहते हैं? जो द्रव्य के सम्पूर्ण भाग और द्रव्य की प्रत्येक अवस्था में रहे, उसे गुण कहते हैं। यह जैनसिद्धान्त प्रवेशिका का बोल है। गुण उसे कहते हैं कि (द्रव्य के) प्रत्येक भाग में अर्थात् अपने प्रत्येक क्षेत्र में। बस प्रत्येक क्षेत्र में, अपने क्षेत्र में गुण है। ज्ञान अपने स्वक्षेत्र में है। आत्मा के क्षेत्रप्रमाण ज्ञान है। और प्रत्येक हालत में—उसकी पर्याय में रहे वह ज्ञान। उस क्षेत्र में रहे, पर्याय में रहे। गुण तो भाव है। भाव का द्रव्य आधार है। द्रव्य हुआ, द्रव्य का भाव, भाव क्षेत्र प्रमाण और पर्याय में होता है। चार में व्याप्त हो गया है। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव। जैनसिद्धान्त प्रवेशिका में समझाते हैं यह मास्टर। मास्टर बहुत समझाते थे। हीराचन्द मास्टर थे न। लेख लिखते थे। सब चला जाता है अवसर तो। अब दूसरे पके। ऐसा का ऐसा चला ही जाता है संसार। समझ में आया?

कहते हैं कि गुण की व्याख्या क्या? गुण की व्याख्या अर्थात् गुण अर्थात् क्या? कोई भी गुण, हों! ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि। गुण अर्थात् क्या? कि द्रव्य के पूरे क्षेत्र में, पूरे भाग में (रहे) अर्थात्? द्रव्य अर्थात् वस्तु के पूरे क्षेत्र में और वस्तु की प्रत्येक दशा में। यह तो साधारण सिद्धान्त प्रश्नोत्तर के जैनसिद्धान्त में आ गये हैं। समझ में आया? यह ज्ञान उसे कहते हैं कि आत्मा के सर्व क्षेत्र में व्याप्त है। समझ में आया?

और प्रत्येक भाग अर्थात् क्षेत्र। यह हालत उसकी वर्तमान दशा है, उसमें वह है। यह ज्ञान की पर्याय अपने क्षेत्र में व्यापकर पर्याय में जो हुई एक समय की, उस ज्ञान का विषय पूर्ण है। वह ज्ञान कैसे प्रगट हुआ, उसे यहाँ से शुरु किया है। शुद्ध उपयोग के प्रसाद से वह केवलज्ञान होता है। कोई दूसरे क्रियाकाण्ड व्यवहार आदि के विकल्प से, वह तो सब बन्ध के कारण हैं। अबन्ध ऐसा द्रव्य का स्वरूप, अबन्ध ऐसा गुण का भाव, अबन्ध ऐसी केवलज्ञान की पर्याय—अबन्ध पर्याय, वह अबन्ध द्रव्य-गुण के अन्दर रमणता शुद्ध परिणाम जो शुद्ध उपयोग जो अबन्ध है, उससे वह अबन्ध परिणाम केवलज्ञान होता है। समझ में आया? आहाहा! अबन्ध कहो या मोक्ष का मार्ग कहो, एक ही है। समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव से व्यापक। वह आत्मा भी अबन्धस्वरूप है और ज्ञान भी अबन्धस्वरूप है। ऐसे आत्मा को अन्तर्मुख होकर। इस ज्ञानतत्त्व में यहाँ से शुरु किया है, देखो! अन्तर्मुख होकर जिसकी दृष्टि और ज्ञान ऐसे आत्मा को झेलकर प्रतीति और ज्ञान हुआ है, ऐसा आत्मा आगे बढ़कर शुद्ध उपयोग को ग्रहण करता है, तब भी वह अबन्ध परिणाम ही है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह भी अबन्ध परिणाम है। अबन्ध के द्रव्य-गुण के आश्रय से प्रगट हुए, वे अबन्ध परिणाम हैं, मोक्ष के मार्ग के परिणाम हैं। और उसके अवलम्बन में स्थिर होने से शुद्ध उपयोग की चारित्रदशा (हो), उसे चारित्र कहते हैं। वह भी अबन्धपरिणामी चारित्र है। उस अबन्ध परिणाम के फलरूप से अबन्ध ऐसा केवलज्ञान प्रगट होता है। कहो, समझ में आया? यह तो समझ में आवे, ऐसी बात है, सादी है। लोगों को ऐसा अन्दर आग्रह हुआ होता है न लोगों को, इसलिए उन्हें ऐसा होता है (कि) यह क्या? यह तो इसमें अकेला इससे होता है, इससे होता है। व्यवहार से तो कुछ आया नहीं। अब सुन न! व्यवहार से नहीं होता, इसलिए नहीं आया। क्या हो?

स्वयं आचार्य तो पुकार करके बीच में यह कहते हैं। बीच में छठवें गुणस्थान का विकल्प आ गया, कषाय का कण, परन्तु हम तो उसे उल्लंघ जाते हैं, उल्लंघकर हम शुद्ध उपयोग को अंगीकार करते हैं और शुद्ध उपयोग, वही मुनिपना है। मुनिपना, शुद्ध उपयोग वह मुनिपना है। देह की क्रिया नग्नपना, पंच महाव्रत, वह कहीं मुनिपना

नहीं। वह कहीं मुनिपना नहीं, वह वन्दनीक नहीं, वह आदरणीय नहीं। आहाहा! वन्दनीक जो मुनिपना है, उस मुनिपने का शुद्ध उपयोग वन्दनीक है। समझ में आया? यह मुनिपना वह चारित्र है। अब अभी उसकी खबर भी नहीं होती। आहाहा! क्या हो? अरे! लुटाया है न परन्तु जगत भरी दोपहरी, ऐसा मनुष्यपना मिला, उसमें भी और लुटता है, वह वापस उत्साह से लुटता है। माने हर्ष करके। अरे! भगवान! भाई! ऐसा अवसर—काल मिलना मुश्किल है, भाई!

भगवान आत्मा... कहते हैं, ओहोहो! कैसी शुरुआत की है न! शुद्ध उपयोग, वह मुनिपना। इससे मोक्षमार्गप्रकाशक में ऐसा ही कहा है कि मुनि शुद्ध उपयोग को ग्रहण करते है, ऐसा लिया है। व्यवहार को ग्रहण करे और सावद्ययोग का त्याग करे, भाई! यह बात ली ही नहीं। ऐई! ऐसा कहते हैं। पहले सावद्ययोग का त्याग करते हैं न, ऐसा आता है न। मुनि श्रावक। वह तो व्यवहार की बात है। वास्तविक तो शुद्ध उपयोग को ग्रहण करते हैं। ऐसी बात ली है। प्रवचनसार में यह कहा है, वही वहाँ उन्होंने—टोडरमलजी ने कहा है। वह तो एक पण्डित थे। ऐसे बहुत पण्डितों को हम सबके जाननेवाले हैं। इसलिए उस पण्डित का उसका सच्चा कहाँ आया? भाई! सच्ची बात पण्डित हो या छोटा बालक हो। समझ में आया? आत्मा होकर जानकर बोलता हो तो उसका सच्चा है। भगवान बोलते हैं, सुन न अब। समझ में आया? इसके लिए ऐसा नहीं होता कि आठ वर्ष का बालक हो और केवलज्ञान प्राप्त करता है, लो! आठ वर्ष का बालक। आहाहा! छोटी उम्र, ऐसे एक मोरपिच्छी, कमण्डल। शुद्ध उपयोग ग्रहण किया है जिसने। समझ में आया? ऐसे मुनि। भाई! हम यहाँ ... धर्म का लोप हो और क्रिया का लोप हो तो मुनि... गये आत्मा को। अरे! भगवान! क्या करता है तू यह? ऐई! भीखाभाई! बापू! यह वह अभी पूरा पड़े हों बात जगत में। परन्तु न्याय से सत् से विरुद्ध नहीं चलता। आहाहा! कहो, ऐसे मुनि आवश्यकता पड़े तो तलवार ले हाथ में। अरे! भगवान! क्या करता है तू? कहो, समझ में आया? ... युगप्रधानपुरुष थे। उन्होंने भी अपनी बहिन का शील रखने के लिये युद्ध किया। साधु होकर साधु को... समझे न, क्या कहलाता है उसके संग्राम के लोग? वे लोग सब योद्धाओं के साथ नाम दिये हैं न! सेना... सेना। सेना के साथ लड़ने गये। अरे! भगवान! यह क्या कहता है तू प्रभु? इस

मार्ग में ऐसा नहीं होता, भाई! समझ में आया? अरेरे! कोई पूछनेवाला नहीं मिलता। समझ में आया? उसे यह अन्दर क्या करता हूँ? क्या करता हूँ? भाई! आहाहा! देखो न, यहाँ क्या कहते हैं?

जिसके प्रताप से केवलज्ञान हुआ ऐसी जो दशा। आहाहा! प्रगट करने को तो समकिती को केवलज्ञान मोक्षतत्त्व प्रगट करना है न! प्रगट करने के लिये तो उपादेय मोक्षतत्त्व है। ध्रुव उपादेय है, वह तो दृष्टि के विषय के लिये है। परन्तु प्रगट करने की केवलज्ञानदशा मोक्ष है। साधकदशा रहकर इतने ही रहना, ऐसा नहीं। समझ में आया? उस केवलज्ञान के होने पर, कहते हैं कि ज्ञान में सब (जाने)। ज्ञान को सर्वज्ञ कहा न! ज्ञान को सर्वज्ञ कहा न! अर्थात् जितना है, उतना जाने ज्ञान कि इतना विषय पूरा है। तो फिर द्रव्य का? कि द्रव्य का विषय पूरा है। समझ में आया? भगवान आत्मा स्वयं वस्तु है, उसका विषय पूरा—सम्पूर्ण है। तो उसे सर्वगत क्यों न कहें? जिनवर को सर्वगत क्यों न कहें? जिनवर अर्थात् जिनवर का आत्मा, ऐसा। जिनवर के ज्ञान को जब सर्वगत कहें तो जिनवर के आत्मा को सर्वगत क्यों न कहें? आहाहा!

इसकी **टीका : ज्ञान...** देखो! यहाँ तो आत्मा की ज्ञानशक्ति की प्रगटता का सामर्थ्य कितना है! समझ में आया? और वह सामर्थ्य प्रगट हुआ है शुद्ध उपयोग के प्रसाद से। और शुद्ध उपयोग प्रगट हुआ है द्रव्य के प्रसाद से—द्रव्य के आश्रय से। समझ में आया? भगवान पूरा केवलज्ञान का कन्द है, स्वयं परमात्मा है, उसे स्पर्श कर शुद्ध उपयोग आया है। आहाहा! समझ में आया? उससे प्राप्त होता ऐसा ज्ञान, वह जैसे सबको जानता है, इसीलिए उसे सर्वगत कहते हैं। भगवान आत्मा को भी सर्वगत कहते हैं। अकेला आत्मा ही है जगत में सर्वगत, ऐसा भी कहते हैं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्योंकि सब सम्बन्धी का ज्ञान अपने में आ गया है। स्वयं अकेला ही आत्मा वस्तु है बस। समझ में आया? इतना बड़ा आत्मा है, ऐसा बताते हैं।

मुमुक्षु : आलम्बन छुड़ाया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आलम्बन है ही कहाँ उसमें? आलम्बन आत्मा का। पर्याय को आलम्बन आत्मा का, द्रव्य का। जिसमें हो, उसके समीप जाये या जिसमें न हो, उसके समीप जाये? भगवान आत्मा में सब पड़ा है। उसमें कहाँ अपूर्ण है? अनन्त-

अनन्त सिद्ध भगवान का सामर्थ्य उसमें पड़ा है। समझ में आया? लोगों को मिलने जाये पैसेवाले को। देखो न, उसके लिये जाते हैं या नहीं? कुछ देगा। बड़ा हो न। गरीब के पास जाते होंगे? भगवान पूरा भरा है न!

कहा था एक बार। भावनगर दरबार। अरबी थे अरबी (व्यक्ति)। खानदानी व्यक्ति थे। अरबी-अरबी है न। वह पहरेदार थे। फिर और चूक गया होगा कुछ, नौकरी चली गयी होगी। बहुत रूपवान था। हमको मिला था वहाँ। ... व्यक्ति बहुत नरम है। व्याख्यान में आये थे। नजदीक आवास था और व्याख्यान में आये थे। शान्त.. शान्त... साधारण। नौकरी चली गयी। भावनगर दरबार के पास गये। क्यों... ! क्यों आये थे? कि अन्नदाता! सरोवर हो वहाँ पक्षी और मनुष्य आते हैं। ऐसा उसने कहा। ऐई! सरोवर हो वहाँ पक्षी और मनुष्य आते हैं। क्या है? क्या कहना है? नौकरी नहीं है। दरबार ने हुकम किया, व्यवस्थापक होने का... आये हैं। कहो, समझे? व्यवस्थापक। ... जवाब इतना ... हों! सरोवर हो, वहाँ पक्षी और मनुष्य आते हैं। इसी प्रकार आप होओगे, वहाँ हम आ जायेंगे। इसी प्रकार यह समुद्र भरा है भगवान ऐसा कहते हैं। भावनगर का बादशाह आत्मा है। समझ में आया? भावसिंह... भावनगर आत्मा। अनन्त-अनन्त गुण का नगर बादशाह स्वयं है। पर्याय उसके समीप जाने पर उसे क्या कमी रहे? उसका उसे अवलम्बन है, बाकी अवलम्बन है नहीं। उस अवलम्बन से प्रगट हुआ ज्ञान, उसे इस लोकालोक का निमित्त कहो या अवलम्बन कहने में आता है। समझ में आया?

ज्ञान त्रिकाल के सर्व द्रव्य-पर्यायरूप प्रवर्तमान... सर्व द्रव्य-पर्यायरूप वर्तती है। **समस्त ज्ञेयाकारों को पहुँच जाने से (जानता होने से) सर्वगत कहा गया है;...** ओहो! भगवान आत्मा की ज्ञानदशा जो शुद्ध उपयोग के प्रसाद से प्राप्त हुई, वह ज्ञान की पर्याय तीन काल के सर्व द्रव्य-पर्यायरूप वर्तते **समस्त ज्ञेयाकारों को...** जितने ज्ञेय हैं, उनके विशेषों को पहुँचते अर्थात् जानती हुई। **ज्ञेयाकारों को पहुँच जाने से...** अर्थात् जितने ज्ञेय हैं, उन्हें जानती हुई। **सर्वगत कहा गया है;...** इसलिए उस ज्ञान को, सर्व को जानता है, इसलिए सर्वगत कहा गया है।

और ऐसे (सर्वगत) ज्ञानमय होकर रहने से... ऐसे सर्वगत ज्ञानमय होकर रहे हुए होने से **भगवान भी सर्वगत ही हैं।** वीतराग परमात्मा भी जब ज्ञान से सर्वगत हैं तो

भगवान का आत्मा भी सर्वगत ही है। समझ में आया? **ज्ञानमय होकर रहने से...** पर्याय में ज्ञानमय होकर रहे हुए होने से। ज्ञान जब सर्व को जानता है तो आत्मा भगवान का आत्मा ज्ञानमय होकर रहा हुआ होने से **भगवान भी सर्वगत ही हैं।** लो! यह अरिहन्त परमात्मा की व्याख्या। समझ में आया?

इस प्रकार सर्व पदार्थ भी सर्वगत ज्ञान के विषय होने से,... सर्व पदार्थ अब ऐसा लिया। **भी सर्वगत ज्ञान के विषय होने से, सर्वगत ज्ञान से अभिन्न उन भगवान के वे विषय हैं...** आहाहा! देखो, कितनी बात की है! समझ में आया? **इस प्रकार सर्व पदार्थ भी सर्वगत ज्ञान के विषय होने से,...** ज्ञान जो सर्वगत है, सर्व को जाने, उसका वह विषय होने से **सर्वगत ज्ञान से अभिन्न उन...** जो सर्व को जाननेवाला ऐसा ज्ञान, उससे अभिन्न ऐसा भगवान आत्मा, भगवान आत्मा उस **भगवान के वे विषय हैं...** वह सब लोकालोक सर्व उन भगवान के विषय हैं। निमित्त हैं, ऐसा। **ऐसा (शास्त्र में) कहा है;...** समझ में आया? देखो! यह ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन की यह व्याख्या चलती है। आहाहा!

इसलिए सर्व पदार्थ भगवानगत ही हैं। लो, समझ में आया? विषय हैं, ऐसा शास्त्र में कहा है। भगवान के सब विषय हैं, ऐसा कहा है। जैसे ज्ञान के विषय सब हैं, ऐसा कहा, उसी प्रकार आत्मा के भी सब विषय हैं, ऐसा कहा है। **इसलिए सर्व पदार्थ भगवानगत ही हैं।** मानों पदार्थ भगवान के ज्ञान में और आत्मा में आ गये, ऐसा कहते हैं। उपचार से—व्यवहार से कहा जाता है। उपचार समझ में आया? **(भगवान में प्राप्त ही) हैं।**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो जानने की अपेक्षा से बात है। ज्ञान का स्वभाव ही जहाँ प्रगट हो गया चारित्र से, वह क्या न जाने? सब जाने। विषय है। जैसे ज्ञान का वह विषय है, वैसे आत्मा का वह विषय है। तो जैसे ज्ञान को सर्वगत कहा, वैसे आत्मा को—भगवान आत्मा को भी शास्त्र में सर्वगत कहा है। उसमें गुण को जब गुण की पर्याय को सर्वगत कहा तो उसके धारक द्रव्य को भी सर्वगत कहा जाता है। क्योंकि गुण और आत्मा दो अभिन्न है। कहो, समझ में आया? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल २, मंगलवार, दिनांक २४-०९-१९६८
गाथा - २६ - २७, प्रवचन - २२

जगत के जितने पदार्थ—ज्ञेय हैं, वे भगवान आत्मा—जिनवर ऐसा आत्मा, उसमें सब हैं। क्योंकि उनका ज्ञान है न उन्हें! वह ज्ञान है अपना, परन्तु उस ज्ञान में लोकालोक के ज्ञेय ज्ञात होते हैं, इसलिए मानो भगवान का आत्मा भी मानो सर्वगत हो, अर्थात् ज्ञेय मानो उसमें हों अथवा आत्मा ज्ञान सर्व ज्ञेयों में गया हो, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। इसका विशेष स्पष्ट करते हैं।

वहाँ (ऐसा समझना कि)—निश्चयनय से अनाकुलतालक्षण सुख... देखो, अब सुख के वेदन से उसका क्षेत्र कितना, ऐसा सिद्ध करते हैं। आत्मा वस्तु शुद्ध आनन्द और ज्ञान, उसका भान होने पर, स्वसन्मुख की दृष्टि और अनुभव करने से जो आनन्द के स्वभाव का स्वाद आवे, कहते हैं कि उस सुख का संवेदन, उस संवेदन में विश्रामपना जितना ही आत्मा है। उस आनन्द का जो वेदन आवे, उतने क्षेत्र में उसके आधारभूत आत्मा है। समझ में आया? यहाँ तो साधक की आनन्ददशा से सिद्ध किया है आत्मा को। आत्मा ज्ञानप्रमाण, ज्ञान ज्ञेयप्रमाण। इसलिए उस ज्ञेयप्रमाण से उसे जाननेवाला कहा जाता है कि ज्ञान सर्वगत है। इसी प्रकार भगवान का आत्मा भी सर्वगत है, द्रव्य भी सर्वगत है, ऐसा कहा जाता है।

अब उस क्षेत्र में भी, क्षेत्र तो वह कहा, परन्तु वह आनन्द का स्वाद है जितने क्षेत्र में, ज्ञान भी उतने क्षेत्र में है आत्मा। ज्ञान में यहाँ सिद्ध तो यह किया, परन्तु उसके साथ अधिक स्पष्ट करने के लिये, कि भाई! सुख का वेदन जो है, निश्चयनय से... वह तो व्यवहार से ज्ञेयप्रमाण कहा था लोकालोक अथवा सर्वगत। समझ में आया? अब यहाँ निश्चय से सिद्ध करते हैं। यहाँ अपने आनन्द के स्वाद का जो अनुभव है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में... समझ में आया?

वह **निश्चयनय से अनाकुलतालक्षण सुख का जो संवेदन, उस सुखसंवेदन के अधिष्ठानता जितना...** उस आनन्द के अनुभव के आधार जितना। आनन्द के अनुभव के आधार जितना आत्मा है। समझ में आया? क्या कहा? भीखाभाई! अनुभव कहा

आनन्द का। यह हो जाये... यहाँ तो आत्मा ज्ञान प्रमाण है और ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है, यह तो सिद्ध किया। अब उसे विशेष सिद्ध करने के लिये ज्ञेयगत सर्वगत मानो ज्ञान हो, ऐसा कहा, परन्तु वह तो व्यवहार से कहा। अब निश्चय से सिद्ध करते हैं कि जहाँ आत्मा है, वहाँ आनन्द है। उस आनन्द का वेदन जो है... देखो! यहाँ आत्मा को सिद्ध करने के लिये यह कहा। पुण्य-पाप के विकल्प हैं, वे कहीं आत्मा नहीं। देहादि, वह तो पर है पूरी वस्तु। और आत्मा में राग, पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न पड़कर जो आत्मा के लक्ष्य से जो आत्मा का आनन्द का, शान्ति का स्वाद आया, उस स्वाद के आधार जितना अधिष्ठान आधार जितना आत्मा है। समझ में आया? इसलिए आनन्द जितने में है, उतने का आधार आत्मा है वहाँ। आनन्द आत्मा में है और आत्मा फिर दूसरा आगे है, ऐसा है उसमें? आहाहा!

जितना ही आत्मा है और उस आत्मा के बराबर ही ज्ञान स्वतत्त्व है;... अब उसके साथ—ज्ञान के साथ सिद्ध करते हैं। निश्चय से तो... निश्चय से सिद्ध करना है और वह तो व्यवहार (से) सर्वगत कहा था। भगवान आत्मा वस्तु है, असंख्यप्रदेश, वह ज्ञान, आत्मा ज्ञानप्रमाण है। अब वह ज्ञान लोकालोक को जानता है, इसलिए उसे सर्वगत कहा। परन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं। क्योंकि आनन्द का जो स्वादे—अनुभव है, धर्मी जीव को आत्मा का भान है... समझ में आया? धर्मी को आत्मा का भान है कि यह आत्मा आनन्द से वेदन में जो आया सम्यग्दृष्टि को चौथे से, पाँचवें में, छठवें (गुणस्थान) में इत्यादि। ...चन्दजी! यह माल अलग प्रकार का है, दुकान अलग है। आहाहा!

जहाँ से आनन्द मिलता है, उस आनन्द में व्यापक जो आधार है, उतना ही आत्मा है, उतने में आत्मा है, ऐसा कहते हैं। आनन्द राग में नहीं, पुण्य में नहीं, निमित्त में नहीं। वह तो है ही नहीं यहाँ यह बात ही (नहीं)। यह तो पहले कही थी। उसमें है नहीं आत्मा। उसमें आत्मा नहीं तो आनन्द उसमें है नहीं। समझ में आया? व्यवहार जितने विकल्प उठते हैं—महाव्रत के, दया, दान के, सब विकल्प राग, उसमें आत्मा नहीं और उसमें आत्मा नहीं, इसलिए उसमें सुख नहीं। समझ में आया?

इसलिए **निश्चयनय से अनाकुलतालक्षण सुख का जो संवेदन उस सुखसंवेदन के...** आधारभूत जितना। है नीचे, देखो आधार दिया। **(आत्मा सुखसंवेदन का आधार**

है। जितने में सुख का वेदन होता है, उतना ही आत्मा है।) और उस आत्मा के बराबर ही ज्ञान स्वतत्त्व है;... अब वहाँ वापस उतना क्षेत्र सिद्ध करना है। उस सर्वगत से व्यवहार तो कहा था। वह तो ज्ञान तो स्वक्षेत्र प्रमाण ही है। आत्मा के क्षेत्र प्रमाण ही है। आनन्द जैसे उसके आधारभूत आत्मा... है, उसका ज्ञान भी स्वतत्त्व आधार आत्मा के प्रमाण है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **और उस आत्मा के बराबर ही ज्ञान स्वतत्त्व है;...** देखा! जितना ज्ञान स्वतत्त्व है। वह आत्मा का ज्ञानतत्त्व स्व ज्ञान आत्मा जितना है।

उस आत्मप्रमाण ज्ञान... वह ज्ञान जो आत्मा के प्रमाण में है **कि जो निज स्वरूप है...** स्वतत्त्व कहा था न? ज्ञान, वह निजस्वरूप है। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... वह निजस्वरूप है। **उसे छोड़े बिना,...** उस ज्ञान के निजस्वरूप को छोड़े बिना **समस्त ज्ञेयाकारों के निकट गये बिना,...** ज्ञान को छोड़े बिना और ज्ञेय के आकार में गये बिना। आहाहा! ज्ञान अपना अपने में रहकर पर को जाने, वह भी रहता है तो अपने में, ऐसा कहते हैं। वह ज्ञान कहीं ज्ञेय में गया नहीं। लोकालोक को जानता हुआ ज्ञान कहीं ज्ञेय में गया नहीं। वह तो सर्वगत व्यवहार से कहा था। समझ में आया? जैसा आत्मा सर्वज्ञ ने देखा, वह आत्मा। ऐसा आत्मा उसे निर्णित होना चाहिए। दूसरे जीव की अपनी कल्पना से आत्मा... करे। समझ में आया? आत्मा... आत्मा तो सब बहुत करते हैं, परन्तु आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने सर्वज्ञपने में जो देखा, वह ज्ञानप्रमाण आत्मा और आनन्द भी आत्माप्रमाण है। इसलिए आनन्द का आधार आत्मा उतने प्रमाण में, इसलिए ज्ञान का आधार आत्मा उतने प्रमाण में स्वतत्त्व है। ऐसा जो स्वतत्त्व जो ज्ञान, वह आत्मा अपने ज्ञान को छोड़े बिना और ज्ञेय के आकार को ग्रहण किये बिना अर्थात् उसमें प्रविष्ट हुए बिना... है न? **समस्त ज्ञेयाकारों के निकट गये बिना,...** ज्ञान अपना अपने में व्याप्त रहा हुआ है। वह ज्ञान कहीं शरीर, वाणी ये जगत के सब पदार्थ, उनमें गया नहीं। परन्तु जाये किसका? अपने क्षेत्र में व्यापता है, वह पर में कैसे जाये? समझ में आया?

समस्त ज्ञेयाकारों के निकट गये बिना,... नीचे है। **ज्ञेयाकारों=पर पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्याय...** आत्मा के अतिरिक्त दूसरे अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, उनका द्रव्य-वस्तु, उनके गुण-स्वभाव, उनकी पर्याय—अवस्था। अनन्त आत्मायें और अनन्त परमाणु और जितने कालाणु तथा धर्मास्ति (आदि) उनके द्रव्य-गुण-पर्यायें **जो कि**

ज्ञेय हैं। उनके द्रव्य-गुण-पर्यायें जो ज्ञान में ज्ञेय है। **(यह ज्ञेयाकार परमार्थतः आत्मा से सर्वथा भिन्न है।)** ज्ञान में वे ज्ञेय हैं, उन सम्बन्धी का ज्ञान अपने में है और ज्ञान अपने क्षेत्र में, आत्मा के क्षेत्र में व्याप्त है। वह कहीं अन्य क्षेत्र में व्याप्त नहीं है। कहो, समझ में आया? देखो, आचार्यों ने आत्मा को सिद्ध करने की कितनी युक्ति से सिद्ध किया है! आहाहा! उसका अपना ज्ञान क्षेत्र प्रमाण व्याप्त है। वह ज्ञान अपने स्वतत्त्व को छोड़े बिना और ज्ञेयों में समीप में अन्दर में गये बिना, उन्हें जानता है यहाँ। समझ में आया?

उसे छोड़े बिना, समस्त ज्ञेयाकारों के निकट गये बिना, भगवान (सर्व पदार्थों को)... यहाँ द्रव्य लेना है न? आत्मा लेना है न? भगवान का आत्मा, परमात्मा स्वयं। उनका आत्मा **भगवान (सर्व पदार्थों को) जानते हैं।** क्या कहा? यह आत्मा अपने ज्ञानक्षेत्र में व्यापक है। वह ज्ञान अपने स्वरूप को आत्मा ज्ञान को, सत्त्व को, सत्त्व को, स्वरूप को छोड़े बिना और वे ज्ञान ज्ञेय अनन्त हैं, उनके समीप में—नजदीक में गये बिना। **समस्त ज्ञेयाकारों के निकट गये बिना, भगवान (सर्व पदार्थों को) जानते हैं।** ज्ञान की दशा भगवान सबको जानते हैं। कहो, समझ में आया?

निश्चयनय से ऐसा होने पर भी... ऐसा कहते हैं। निश्चय से तो ऐसा ही है। क्योंकि आनन्द के वेदन जितना आधारवाला आत्मा, इससे ज्ञान का आधार भी आत्मा, ऐसा स्वतत्त्व होने से आत्मा अपने ज्ञान को छोड़े बिना और अनन्त ज्ञेयों को नजदीक में गये बिना सबको जानता है। समझ में आया? यहाँ भी ऐसा है, हों! साधक में भी। ज्ञान अपने में व्याप्त क्षेत्र है। वह ज्ञान पुण्य-पाप के राग में व्याप्त हुए बिना, उनमें गये बिना, अपने क्षेत्र में रहकर ज्ञान राग को जानता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी ऐसा है। मिथ्यादृष्टि की बात कहाँ है? यहाँ तो साधक की बात है न! मिथ्यादृष्टि को भान कहाँ है ज्ञान का? उसे तो भान नहीं। यहाँ तो ज्ञानस्वरूप आत्मा व्यापक है ज्ञान में और आनन्द से व्याप्त है, ऐसा जहाँ भान हुआ है, ऐसे साधक को भी जैसे भगवान आत्मा में ज्ञान अपना अपने क्षेत्र को, सर्व भाव को छोड़े बिना, ज्ञेय को छुए बिना, समीप गये बिना जानता है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि का आत्मा भी, उसकी ज्ञान की पर्याय ज्ञान आत्मा में व्याप्त होने से, आनन्द उसमें ऐसा

व्याप्त उतने क्षेत्र में और ज्ञान उतने क्षेत्र में है। वह ज्ञान अपने तत्त्वस्वरूप को छोड़े बिना और राग के समीप गये बिना जानता है। ऐसा मार्ग है।

आत्मा... आत्मा करते हैं न! आत्मा कितना, कहाँ कैसे है, कैसी शक्तिवाला है और उसे जानने का कितना विषय अनन्त है, उस अनन्त को जानने पर भी अपने ज्ञानस्वरूप के क्षेत्र को छोड़ते नहीं। समझ में आया? थोड़ा ज्ञान हो या विशेष हो, वह अपने असंख्य प्रदेश में अपने क्षेत्र में ही व्यापकर काम करता है। पर के क्षेत्र में जाकर काम करता है, ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? ऐसा स्वतत्त्व है, ऐसा इसे दृष्टि में और अनुभव में आना चाहिए। समझ में आया? तब वह आत्मा जाना कहलाये और तब उस आत्मा का अनुभव किया कहलाये, तब उस आत्मा का आश्रित हुआ कहलाये, ऐसा कहते हैं। इस प्रकार से आत्मा को माने, अनुभव करे, तब आत्मा आश्रित हुआ। समझ में आया? उससे विपरीत, उल्टा, अधिक या कम, जो यह स्वरूप कहलाता है, उससे दूसरा कम, अधिक, विपरीत, उस प्रकार से माने, वह आत्मा नहीं, आत्मा जाना नहीं, आत्मा मानता नहीं और आत्मा का आश्रित नहीं। समझ में आया? ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है न! ज्ञान का अस्तित्व तत्त्व (सिद्ध करते हैं)। आहाहा! कठिन बात, भाई!

निश्चयनय से ऐसा होने पर भी व्यवहारनय से यह कहा जाता है कि भगवान सर्वगत हैं। ज्ञानस्वरूप सर्व को जानता है, इससे व्यवहार से सर्वगत कहा जाता है। **और नैमित्तिकभूत ज्ञेयाकारों को आत्मस्थ देखकर...** अब क्या कहते हैं? जितने ज्ञेय हैं अनन्त, उन सम्बन्धी का ज्ञान अपने में परिणमित हुआ है, वह नैमित्तिक। लोकालोक, (उसके) द्रव्य, गुण और पर्याय, वह निमित्त और ज्ञान में उस सम्बन्धी का ज्ञान हो, वह नैमित्तिक। समझ में आया? **नैमित्तिकभूत ज्ञेयाकारों को आत्मस्थ देखकर...** अर्थात् नीचे (फुटनोट में)। **नैमित्तिकभूत ज्ञेयाकारों=ज्ञान में होनेवाले (ज्ञान की अवस्थारूप) ज्ञेयाकारों।** आत्मा की ज्ञानपर्याय जितने ज्ञेय हैं, उस प्रकार से ज्ञानाकार ज्ञेयाकार ऐसा ज्ञानाकार परिणमता है। अपनी ज्ञान अवस्था, वह ज्ञेयाकार होने में परिणमती है।

(इन ज्ञेयाकारों को ज्ञानाकार भी कहा जाता है,... है वह ज्ञान की अवस्था। उसे ज्ञेयाकार कहा, परन्तु है ज्ञान की अवस्था। **क्योंकि ज्ञान इन ज्ञेयाकाररूप परिणमित होते हैं।** जितने ज्ञेय हैं, उस प्रकार से आत्मा का ज्ञान उस प्रकार से परिणमता है। ज्ञान

की अवस्था उसरूप से होती है। **यह ज्ञेयाकार नैमित्तिक हैं...** ज्ञान की अवस्था, वह नैमित्तिक है **और परपदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्यायें उनके निमित्त हैं। इन ज्ञेयाकारों को आत्मा में देखकर 'समस्त परपदार्थ आत्मा में हैं' इस प्रकार उपचार किया जाता है।** उन ज्ञेय सम्बन्धी का ज्ञानाकार हुआ न, इसलिए मानो ज्ञेय उसमें हैं, ऐसा कहा जाता है। व्यवहार से है। **यह बात ३१वीं गाथा में दर्पण का दृष्टान्त देकर समझायी गयी है।**

देखो! दर्पण है न दर्पण। शीशा—दर्पण। अब यहाँ आम, कोयला आदि या पानी आदि या बर्फ या जो हो। यहाँ उसकी अवस्था वैसा जो है, उस प्रमाण यहाँ परिणमता है। तथापि वह दर्पण की अवस्था अपने क्षेत्र को और भाव को छोड़कर उस बर्फ में और कोयला में गयी नहीं। वह बर्फ और कोयला तो निमित्त है और यहाँ दर्पण में होनेवाली अवस्था नैमित्तिक है। नैमित्तिक अवस्था दर्पण में है; निमित्त है, वह पर में है। समझ में आया? नैमित्तिक अवस्था दर्पण में है, निमित्त पर में है। इसी प्रकार भगवान चैतन्य दर्पण को ज्ञेयाकार जो अनन्त हैं पर, उन सम्बन्धी का ज्ञान वह आत्मा में है, वह आत्मा में है। उसमें वे सब निमित्त हैं। निमित्त सम्बन्धी के ज्ञेयाकारों को यहाँ जानने में—देखने में आने पर, है ज्ञेयाकार अपने, परन्तु उन्हें जानता है अथवा उसमें यह है, ऐसा कहना व्यवहार है। समझ में आया? गजब!

उसमें अस्तिपना मर्यादा कितनी? और पर का अस्तित्व है। पर का अस्तित्व है, परद्रव्य है, परन्तु उस सम्बन्धी का जो ज्ञान ज्ञानाकार स्वयं परिणमा, वह आत्मा की दशा है। और सामने जो द्रव्य-गुण-पर्याय है, वह पर की वस्तु है। समझ में आया? आहाहा! इसी प्रकार आत्मा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान होने पर, वह राग और विकल्प और शरीर, वाणी की क्रियायें जड़—उससे पर, आत्मा का भान होने पर ज्ञानस्वरूप से परिणमन हुआ, उस ज्ञान की पर्याय में स्व का ज्ञान भी है और राग और देह की क्रिया जो सामने हो, उसका भी ज्ञान है। उस ज्ञान की अवस्था में वे निमित्त हैं। निमित्त हैं और यहाँ ज्ञान की पर्याय नैमित्तिक है। नैमित्तिक अवस्था अपने में है, निमित्त पर में है। समझ में आया?

ज्ञानस्वभाव आत्मा... यहाँ तो साधक को सिद्ध की बात करते साधक का साथ ही बताते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवान ज्ञानप्रमाण है न। वह कहीं ज्ञेयप्रमाण

नहीं। कहा था, आत्मा ज्ञानप्रमाण और ज्ञान, ज्ञेयप्रमाण, ऐसा कहा था। उसका यह स्पष्टीकरण अधिक स्पष्ट करते हैं। भाई! ज्ञेयप्रमाण का अर्थ ऐसा नहीं कि ज्ञेय में प्रविष्ट करता है और वे ज्ञेय यहाँ आ जाते हैं। उसका—ज्ञान का माप करना हो तो जितने ज्ञेय हैं, उन्हें जानने का स्वभाव है, इसलिए उसे ज्ञेयप्रमाण कहा जाता है। उसका—ज्ञान का माप कितना है? कि जितने ज्ञेय हैं, उन्हें जानने जितना ज्ञान है। इसलिए ज्ञान को ज्ञेयप्रमाण कहा गया है। समझ में आया?

ऐसा उपचार से कहा जाता है; कि 'सर्व पदार्थ आत्मगत (आत्मा में) हैं';... दर्पण में मानो सब कोयला और आम हो। है तो वह दर्पण की अवस्था नैमित्तिक, वे तो निमित्त हैं आम और कोयला। केरी समझते हो? आम। वह कहीं आम और आंबा यहाँ आये नहीं और यह अवस्था वहाँ गयी नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने ज्ञान के अस्तित्व में, अपने क्षेत्र में है। उस ज्ञान का ऐसा स्वभाव है कि स्व और पर जितने हैं, उन्हें जाननेरूप परिणमे, ऐसा अपने अस्तित्व में रहकर परिणमता है। ऐसा नैमित्तिक ज्ञान अपने में रहा है और ऐसे ज्ञेयाकार वहाँ हैं। परन्तु उन ज्ञेयाकार सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान है, इसलिए मानो ज्ञेय यहाँ होते हैं, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा! कितना एक ज्ञानतत्त्व को सिद्ध करने के लिये वास्तविक सत् इस प्रकार से है, ऐसा साबित करने के लिये गाथायें ली हैं। समझ में आया? अज्ञानी कुछ का कुछ आत्मा कल्पे, उसके गुण को कुछ का कुछ कल्पे, उसकी अवस्था में कुछ का कुछ कल्पे, पर के कारण यह होता है, पर के कारण यह होता है।

परन्तु परमार्थतः उनका एक-दूसरे में गमन नहीं होता,... वास्तव में—परमार्थ से उनका एक-दूसरे में... अर्थात् ज्ञान की पर्याय में ज्ञेयाकार जैसे ज्ञेय हैं, वैसे जानने में अपने अस्तित्व में आने पर भी, वह ज्ञान की पर्याय निमित्त में गयी नहीं और निमित्त ज्ञेय ज्ञान में आये नहीं। दोनों अपने-अपने अस्तित्व में रहे हुए हैं अथवा अपने-अपने क्षेत्र में रहे हुए हैं। समझ में आया? **परन्तु परमार्थतः उनका एक-दूसरे में गमन नहीं होता, क्योंकि सर्व द्रव्य स्वरूपनिष्ठ हैं।** देखो, यह सिद्धान्त पूरा। **सर्व द्रव्य स्वरूपनिष्ठ (अपने-अपने स्वरूप में निश्चल अवस्थित) हैं।** कहो, समझ में आया? तब ऐसा कहे, आत्मा यहाँ है? भाई! आत्मा, आत्मा में है, आत्मा पर में नहीं। स्वचतुष्टय में आत्मा है और पर

में नहीं। कर्म के कारण यहाँ नहीं ? कि कर्म के कारण यहाँ रहा है या नहीं ? ऐसा पूछा था। यहाँ से जाये तब कर्म के कारण (जाता है) ? नहीं। जाये तब तो कर्म लेकर जाये न यहाँ से ? नहीं, नहीं। वह अपने स्वरूप में है, (स्व)द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अपने में है और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव उसमें नहीं।

लोगों को यह अभ्यास नहीं होता। बाहर का अभ्यास। यह देखो न, मुंडाकर बैठे वस्त्र बदलकर कि यह करो। तत्त्व की—वस्तु की खबर नहीं होती। समझ में आया ? और तत्त्व की दृष्टि अन्तर में यथार्थ आये बिना लाभ का कारण कुछ है नहीं। थोथे थोथा मरकर सूख जाये बेचारे। बालतप और बालव्रत। वस्तु की स्थिति क्या है ? और यह तो वह भी कहाँ ? परन्तु यह तो कोई ऐसे तपस्या करे, अपवास करे बेचारे, कोई ऊनोदरी करे और यह करे। बापू! तूने तुझमें क्या किया ? वह सब हुआ, उसमें तुझमें क्या हुआ, यह देखा किसी दिन ? तुझमें तो तूने ऐसा माना कि मैंने यह छोड़ा। इससे मुझे कुछ लाभ नहीं। मुझे अर्थात् तुझे। तुझे क्या हुआ तेरी पर्याय में ? समझ में आया ? उसकी पर्याय में क्या हुआ, इसकी उसे खबर नहीं। पर्याय में तो यह मैंने छोड़ा और मुझे कुछ लाभ हुआ, यह तो मिथ्यात्व है। क्योंकि द्रव्यस्वभाव जो वस्तु है ज्ञानप्रमाण और आनन्द प्रमाण, वह तो दृष्टि में आयी नहीं। दृष्टि में आयी नहीं तो तेरी स्थिरता कहाँ जमे ? समझ में आया ? वह तो सब क्रिया है राग की, पुण्य की, पाप की, व्रत की, वहाँ स्थिर हो गया है, उस तत्त्व में स्थिर हुआ है। उल्टे तत्त्व में चढ़ गया पूरा। सेठी ऐसा कहते थे, क्या करें ? हमको सुनानेवाले ऐसे मिले। ऐसा कहते हैं। परन्तु अपनी पात्रता न हो, इसलिए सुना नहीं न! वास्तव में तो ऐसा है न! आहाहा! अपूर्व बात है, भाई! और सुना तो उसे कहते हैं कि जो पद्धति है, वह उसे ख्याल में, अनुभव में आ जाये। समझ में आया ?

कहते हैं कि प्रत्येक द्रव्य तो स्वरूपनिष्ठ है। उसने वापस सिद्धरूप पूछा कि सिद्ध को उत्पाद-व्यय ? कहा, सिद्ध को होते हैं। केवलज्ञान के दो-चार प्रश्न किये थे। तब लिखकर दिये थे पाँच। परन्तु नरम व्यक्ति था नरम। उससे नहीं। जीव अनेक हैं बेचारे। आहाहा! ऐसी बात है और यहाँ की बात जरा प्रतिष्ठा आ गयी है न बाहर में। कुछ है वहाँ कुछ। सबसे कुछ अलग है। भाई! कि मैं उसमें कहाँ आया ? स्वयं अपने में है। समझ में आया ? जहाँ जाये वहाँ स्वयं अपने में है और पर में है ही कहाँ ? कर्म

के कारण आत्मा और आत्मा के कारण कर्म (हो) तो कर्म के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव आत्मा में आ गये?

प्रत्येक वस्तु स्वरूपनिष्ठ है। यहाँ तो परमात्मा के स्वरूप की बात करनी है। समझ में आया? परन्तु उसका सिद्धान्त तो वापस योगफल ऐसा लिया कि **सर्व द्रव्य स्वरूपनिष्ठ हैं।** एक-एक निगोद का आत्मा, अनन्त जीव साथ में रहे होने पर भी और अनन्त कार्माणशरीर साथ में रहे होने पर भी, वह स्वयं जिस द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में वह स्वयं आत्मा अपने में है। कर्म के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में निगोद का आत्मा भी नहीं। समझ में आया? और यहाँ से वहाँ जाता हो स्वर्ग में, तो भी वह तो आत्मा कहीं कर्म में है, इसलिए ऐसे जाता है, ऐसा नहीं। वह तो उस काल में अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल—अवस्था और भाव में है। ऐसा का ऐसा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में है, ऐसा जाता है। कर्म उसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में है और चला जाता है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहने से यहाँ पृथक् चीज़ का ज्ञान कराते हैं। फिर यह प्रश्न करे कि निमित्त नहीं? परन्तु निमित्त का अर्थ तब कि कर्ता नहीं, इसलिए निमित्त। उसके कारण से जाता नहीं, इसलिए निमित्त। उसके कारण से जाये तो निमित्त कहने में नहीं आता। तब तो दोनों एक हो गये। आहाहा! अरे! समझ में आया? कहो, वह प्रश्न करते हैं न, श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती नरक में जाये, वह क्या स्वयं से जाते हैं? कर्म के कारण से जाते हैं।

मुमुक्षु : नरक में जाने की किसी को इच्छा होगी? किसी को भाव होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! भाव नहीं, वह पर्याय की योग्यता उस गुण की प्रत्येक की इतनी योग्यता है, उसमें वह रहा हुआ है। उसमें यहाँ से जीव जाता है वहाँ। कर्म में रहा हुआ है निमित्त में, वह है ही नहीं। कर्म के कारण से श्रेणिक नरक में गये। ऐई! शुकनचन्दजी! यह सब सुना हो इसने।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ने कहा न, ऐसा कहते हैं। परन्तु भगवान ने क्या कहा, उसकी इसे खबर नहीं। भगवान तो ऐसा कहते हैं कि अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में

प्रत्येक चीज़ है। भगवान ने तो ऐसा कहा है। प्रत्येक एक-एक परमाणु, एक-एक आत्मा अपना द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड, क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई, काल अर्थात् उसकी—गुण की अवस्था और भाव अर्थात् शक्ति-गुण, उसमें वह रहा हुआ है। पर के रजकण को स्पर्शा भी नहीं न आत्मा, छूता नहीं। एक रजकण दूसरे रजकण को छूता नहीं। उसे साथ में कहाँ से ले जाये? आहाहा! नरक का आयुष्य उदय आया, इसलिए ले गये। आयुष्य उदय आवे तुरन्त, छूटा इसलिए। परन्तु कौन ले जाये? सुन न! आनुपूर्वी। तो आनुपूर्वी की पर्याय उसमें रह गयी।

मुमुक्षु : सिखाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सिखाते हैं। जैसे बैल को नाथ होता है न। नाथ समझते हैं न? छिद्र करके डाले तो ऐसे खींचे तो एकदम चले। खींचता है न। नाथ, उसी प्रकार आनुपूर्वी नाम की प्रकृति खींचकर नरक में ले जाये। जहाँ जिस गति में हो वहाँ। ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? प्रत्येक पदार्थ प्रत्येक पल में और प्रत्येक क्षण में अपने स्वरूप के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में है, पर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में नहीं। कहो, समझ में आया?

'सर्वद्रव्याणां स्वरूपनिष्ठत्वात्' यही क्रम ज्ञान में भी निश्चित करना चाहिए। क्या कहा? वह द्रव्य की बात की आत्मा की, कि आत्मा अपने ज्ञान में और आनन्द में है। वह ज्ञान ज्ञेयों को जानने पर भी ज्ञेय का स्पर्शता नहीं। ज्ञेयसम्बन्धी का नैमित्तिक ज्ञान, उसमें वह आत्मा है। यह ज्ञान की बात की थी, उस ज्ञान में एक द्रव्य की बात की थी। द्रव्य अर्थात् आत्मा की। जिनवर आत्मा, ऐसा इसे ज्ञान में भी ले लेना। **यही क्रम ज्ञान में भी निश्चित करना चाहिए। (आत्मा और ज्ञेयों के सम्बन्ध में निश्चय-व्यवहार से कहा गया है,...** आत्मा को ज्ञेयों में निश्चय-व्यवहार से कहा। **उसी प्रकार ज्ञान और ज्ञेयों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए।)** कहो, समझ में आया? २६ (गाथा) हुई।

★ ★ ★

गाथा - २७

२७ (गाथा)।

णाणं अप्प त्ति मदं वट्टदि णाणं विणा ण अप्पाणं।
तम्हा णाणं अप्पा अप्पा णाणं व अण्णं वा॥२७॥

जिनमत में है ज्ञान आत्मा, आत्मा-बिन नहिं ज्ञान रहे।
अतः ज्ञान है आत्मा, आत्मा ज्ञानरूप है अन्य सभी॥२७॥

उसमें आत्मा लिया है न पहला। और फिर जीव लिया अपने यहाँ समझने के लिये। उन शब्दों की तुलना के लिये। बाकी है न आत्मा सब।

मुमुक्षु : मूल में तो आत्मा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा ही है वह तो फिर ... होने के लिये।

इसका **अन्वयार्थ :- ज्ञान आत्मा है,...** ज्ञान जो यह जानने का भाव, उतना आत्मा और वह आत्मा है। ज्ञान, वह आत्मा है **ऐसा जिनदेव का मत है।** ऐसा वीतराग देव (का मत है)। लो, केवली पण्णंतो धम्मो, यह। **ज्ञान आत्मा है, ऐसा जिनदेव का मत है।** अर्थात् क्या इन्द्रियाँ और ज्ञान अलग और आत्मा अलग? ऐसा मानते हैं, ऐसा नहीं। ज्ञान आत्मा है, ऐसा जिनदेव कहते हैं। **आत्मा के बिना (अन्य किसी द्रव्य में) ज्ञान नहीं होता,...** आत्मा बिना समझण ज्ञानस्वभाव भाव, वह आत्मा बिना अन्यत्र कहीं होता नहीं। **इसलिए ज्ञान आत्मा है;...** इसलिए ज्ञान, वह आत्मा है। देखो! यहाँ पुण्य, पाप, राग, शरीर, वाणी सब निकाल दिये। ज्ञान, वह आत्मा है, ज्ञान वह आत्मा है।

और आत्मा तो... अब ज्ञान वह आत्मा। परन्तु **आत्मा तो (ज्ञानगुण द्वारा) ज्ञान है अथवा (सुखादि अन्य गुण द्वारा) अन्य है।** ज्ञान, वह आत्मा। परन्तु आत्मा तो ज्ञान भी है, दर्शन भी है और आनन्द भी है। समझ में आया? ज्ञान वह आत्मा, परन्तु अकेला ज्ञान वह आत्मा हो तो एक ही गुण हो गया। फिर गुण स्वयं ही गुणी हो गया। समझ में आया? ज्ञान, वह आत्मा। गुण, वह आत्मा लिया है। अब यदि आत्मा अकेला ज्ञान ही हो तब तो वह तो फिर द्रव्य हो गया, गुण रहा नहीं। समझ में आया?

ज्ञान आत्मा है; और आत्मा तो... ज्ञान भी है और सुख भी है, आनन्द भी है आत्मा। कहीं आत्मा एक ज्ञानमय ही है, ऐसा है नहीं। ज्ञान, वह आत्मा भले, परन्तु आत्मा, वह अकेला ज्ञान है, ऐसा हो तो उसमें आनन्द और सुखादि शक्तियाँ हैं, उनका नाश हो जाये। समझ में आया? किस प्रकार आत्मा को पृथक्-पृथक् गुणों द्वारा चर्चित किया है। आहाहा! **(सुखादि अन्य गुण द्वारा) अन्य है।** अन्य गुण द्वारा अन्य है। ज्ञान वह आत्मा, आत्मा वह ज्ञान सही, ज्ञान द्वारा ज्ञान भी सही, आनन्द द्वारा आनन्द भी सही, शान्ति द्वारा चारित्र भी सही, अस्तित्व द्वारा अस्तित्व सही, वस्तु द्वारा वस्तुत्व सही। कहो, समझ में आया? आत्मा अन्य गुण द्वारा अन्यरूप है। ज्ञान द्वारा आत्मा है। ज्ञान वह आत्मा परन्तु आत्मा ज्ञान द्वारा ज्ञान है और अन्य द्वारा अन्य है। क्योंकि उसमें अनन्त गुण हैं। अनन्तगुणे हैं।

टीका :- शेष समस्त चेतन... अपने अतिरिक्त जितने आत्मायें, वे सब चेतन **और अचेतन...** परमाणु से लेकर सभी (द्रव्य)। उन **वस्तुओं के साथ समवाय-सम्बन्ध नहीं है,...** यह ज्ञानस्वभाव जो आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान आत्मा के साथ समवाय सम्बन्ध है तादात्म्य सम्बन्ध। परन्तु वह ज्ञान दूसरे चेतन के साथ और दूसरे अचेतन के साथ... समवाय अर्थात् तादात्म्य है न? व्याख्या जरा समझ में आये ऐसी है समवाय अर्थात्। **जहाँ गुण होते हैं, वहाँ गुणी होता है और जहाँ गुणी होता है, वहाँ गुण होते हैं, जहाँ गुण नहीं होते वहाँ गुणी नहीं होता और जहाँ गुणी नहीं होता वहाँ गुण नहीं होते—इस प्रकार गुण-गुणी का अभिन्न-प्रदेशरूप सम्बन्ध; तादात्म्यसम्बन्ध है।** लो! गर्जना लगती है। गर्जता तो बहुत है। ऐसा है। गाजे, फिर बरसे। सुना है यह?

पण्डित थे गोपालदास पण्डित। स्त्री ऐसी थी ठीक सी। यह गोपालदास बरैया। उन पण्डित को ऐसी स्त्री मिली। सब पण्डित चर्चा करते थे। उसमें आकर जोर से बोली, यह कुछ करते नहीं, ऐसे के ऐसे बैठे हो। बहुत जोरदार गरजी, बहुत गरजी। ठीक, सुन लिया। फिर (सामने) बोले नहीं, फिर बोली जाकर अन्दर जूठन का बर्तन ले आयी। अेठवाड-अेठवाड। अेठवाड समझते हो? जूठन। वह रखते हैं न। आकर सिर पर डाला। तो पण्डितजी कहते हैं, गरजे वह बरसे। वह गरजी थी और बरसी थी। ऐई! तपसी! कहाँ गये तपसी? वहाँ बैठे हैं। ठीक! यह तो स्त्री याद आने पर जरा...

कहो, समझ में आया? उन पण्डित की स्त्री ऐसी थी। लो, कहो ठीक! जैनसिद्धान्त प्रवेशिका बनायी, पण्डितों में चर्चा और कैसे उसे क्या पद है? पंचाध्यायी में पद दिया है न! स्याद्वादवारिधी। वारिधी—समुद्र स्याद्वाद का समुद्र। वहाँ स्त्री मिली जूठन की वारिधी। इसलिए पण्डितजी कहते हैं कि वह गरजी थी और अभी गरजी थी। गरजे वह बरसे। जूठन डाला सिर पर! ऐई! न्यालभाई! ऐसा संयोग होता है। आहाहा! संयोगी चीज़ की अन्दर में कैसे होना कैसे, वह तो जगत का स्वतन्त्र पदार्थ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब स्वतन्त्र। एक-एक परमाणु किस क्षण में कहाँ से पड़ना और कहाँ जाना, वह सब स्वतन्त्र। कोई मेघराज है न, देव है और वह बरसाता है, सब धूलधूल खोटी (बात)। स्वयं दिव्यशक्तिवाला प्रत्येक पदार्थ है, इस अपेक्षा से देव कहा जाता है। परमाणु भी देव है। अपनी शक्ति की दिव्यता किसी को देता नहीं।

कहते हैं कि वह ज्ञानस्वरूप जो भगवान आत्मा, उसे और आत्मा को तद्‌रूप सम्बन्ध है, परन्तु दूसरे चैतन्य को अचेतन के साथ समवायसम्बन्ध रहित होने के कारण, दूसरे के साथ कुछ सम्बन्ध है नहीं। देखो! इस ज्ञान का शरीर के साथ, वाणी के साथ, कर्म के साथ, भगवान के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं, ऐसा कहते हैं। यह भगवान तीन लोक के नाथ और उनकी वाणी के साथ इस ज्ञान को सम्बन्ध नहीं, ऐसा कहते हैं। वाणी अचेतन और इसका आत्मा चेतन। उसके साथ इस ज्ञानभाव को कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

जिसके साथ अनादि अनन्त स्वभावसिद्ध समवायसम्बन्ध है, ऐसे एक आत्मा का... देखो! परन्तु **जिसके साथ...** अर्थात् आत्मा के साथ। **अनादि-अनन्त...** वस्तु अनादि-अनन्त है न! उसका ज्ञानभाव, ज्ञानस्वरूप ज्ञानभाव, वह भी अनादि-अनन्त, आदि और अन्तरहित **स्वभावसिद्ध समवायसम्बन्ध है...** वापस ऐसा। स्वभावसिद्ध समवायसम्बन्ध, ऐसा। इतनी विशेष बात है। वह संयोगसिद्ध सम्बन्ध। नहीं आया था? तादात्म्यसिद्ध सम्बन्ध, परस्पर अवगाहसिद्ध सम्बन्ध (संयोगसिद्ध सम्बन्ध)—तीन कर्ताकर्म (अधिकार में है)। पहला तादात्म्यसिद्ध सम्बन्ध, फिर संयोगसिद्ध सम्बन्ध,

फिर परस्पर अवगाह सम्बन्ध कर्म के साथ। यह स्वभावसिद्ध सम्बन्ध ऐसा लिया। देखो, यह तादात्म्य लेना है न! तादात्म्यसम्बन्ध को **स्वभावसिद्ध समवायसम्बन्ध है...** भगवान आत्मा वस्तु और अन्दर ज्ञान के साथ तन्मय एक स्वभावसिद्ध। क्योंकि स्वभाववान आत्मा और ज्ञान, स्वभाव, वह स्वभावसिद्ध समवाय तादात्म्यसम्बन्ध है आत्मा को। कहो, समझ में आया? आहाहा! पर के साथ तो कुछ सम्बन्ध नहीं—स्त्री, पुत्र, कर्म, शरीर, परन्तु राग के साथ आत्मा को सम्बन्ध नहीं, ऐसा कहते हैं। वह तो संयोग है, परवस्तु हो गयी। समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव... ज्ञानस्वभाव, वह ज्ञानस्वभाव स्वयं अनादि-अनन्त आत्मा, उसके साथ उसे स्वभावसम्बन्ध है। स्वभावसिद्ध समवायसम्बन्ध, स्वभावसिद्ध तादात्म्य सम्बन्ध, तद्रूप सम्बन्ध। समझ में आया? **ऐसे एक आत्मा का...** जिसके साथ ज्ञानस्वभाव जो वस्तु जानना... जानना... जानना, ऐसा स्वभाव, उसके साथ आत्मा को स्वभावसिद्ध समवायसम्बन्ध होने के कारण **एक आत्मा का अति निकटतया अवलम्बन करके प्रवर्तमान...** वह ज्ञान एक आत्मा को अवलम्बकर प्रवर्तता है। निमित्त को और पर को अवलम्बकर ज्ञान नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान का अस्तित्व है न। जानपना वह गुण है, उसका अस्तित्व है न! कहते हैं कि **एक आत्मा का अति निकटतया...** अति निकट अर्थात् वह तो असंख्य प्रदेश स्वयं आत्मा है और उसमें ज्ञान व्याप्त है। समझ में आया?

अति निकटतया... अर्थात्? इसकी व्याख्या की। अति निकट में और कोई कहे, अति निकट अर्थात् बहुत नजदीक है, ऐसा जरा सा ऐसा। इतना तो अन्तर होगा या नहीं? नहीं, नहीं। **(अभिन्न प्रदेशरूप से)...** ऐसा। उसकी व्याख्या करनी पड़ी। वह दूर है ऐसा करते... करते... करते... करते... यहाँ हो तो अति निकट कहलाये। समझे? वह ऐसा नहीं, कहते हैं। जहाँ आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं, वहाँ ज्ञान है, अर्थात् अभिन्न प्रदेश में ज्ञान है। समझ में आया? आहाहा! आचार्यों ने ज्ञान और आत्मा को सिद्ध करने के लिये कितने न्याय से बात सिद्ध की है। प्रवचनसार है। सर्वज्ञ भगवान के मुख से निकली हुई दिव्यध्वनि का यह सार है। अब यह सिरपच्ची करना क्या? आत्मा और फिर ज्ञान और उसे व्याप्त है तथा पर में नहीं। लो!

यह है न, कितने ही अभी निकले हैं न! पाँच सौ वर्ष में कोई युवा धर्म पके नहीं। अब युवा धर्म को... धर्म का ढाँचा बदलना है, ऐसा लिखा है। धर्म का ढाला बदल डालना है। युवकों को धर्म हो। पाँच सौ वर्ष में कोई युवक धर्म पका नहीं। सब वृद्ध ऐसा कि यह गौशाला में रखने जैसे हों, वे सब धर्म में जुड़े हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसा आया है उसमें। ... युवकों को लगे, आहाहा! उसमें आया था न कल नहीं? रजनीश में आया था। पाँच सौ वर्ष में कोई इस प्रकार का ढाला बदल गया है। अब धर्म को दूसरे ढलना है ऐसा। ढाल देना है। युवकों को भी धर्म हो। अरे! परन्तु युवक कहाँ? आत्मा युवक कहाँ है? वह तो आत्मा है। जवान-वृद्ध आत्मा कब था? आत्मा जवान-वृद्ध में प्रविष्ट था कब? आहाहा! अरे! क्या करते हैं परन्तु लोगों को?

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा का ज्ञानस्वभाव है, गुण है, शक्ति उसे स्वभावसिद्ध सम्बन्ध से रहा हुआ, इसलिए वह असंख्य प्रदेश में जो आत्मा है, उसमें वह अभिन्न प्रदेश में ज्ञान है। उसके प्रदेश—क्षेत्र उस भाव के, आत्मा का भाव, आत्मा का क्षेत्र भिन्न और आत्मा के ज्ञान का क्षेत्र भिन्न, ऐसा है नहीं। अग्नि का क्षेत्र भिन्न और उसकी उष्णता का भिन्न—ऐसा होगा? वह अग्नि का क्षेत्र है, वही उष्णता का क्षेत्र है। इसी प्रकार भगवान आत्मा जो असंख्यप्रदेशी वस्तु है, यही उसमें ज्ञान हुआ और ज्ञान का क्षेत्र भी वही है। इसलिए अति निकट की व्याख्या अभिन्न प्रदेश, ऐसी करनी पड़ी। अति निकट का अर्थ और कोई ऐसा ले जाये कि बहुत नजदीक में है।

(अभिन्न प्रदेशरूप से) अवलम्बन करके प्रवर्तमान होने से... ओहोहो! **ज्ञान आत्मा के बिना अपना अस्तित्व नहीं रख सकता;...** ज्ञान गुण है न, स्वभाव त्रिकाल। वह आत्मा बिना ज्ञान अपनी अस्ति नहीं रखता सकता। समझ में आया? राग बिना, निमित्त बिना अस्ति धार सकता है, परन्तु आत्मा बिना ज्ञान अपनी अस्ति नहीं रख सकता। ज्ञान अर्थात् ज्ञानस्वभाव, जो स्वभाव है न जानना-जानना। **इसलिए ज्ञान आत्मा ही है।** इसलिए ज्ञान आत्मा है। **और आत्मा तो अनन्त धर्मों का अधिष्ठान (आधार) होने से...** आत्मा तो अनन्त गुण का आधार है, कहीं एक ही गुण का आधार है, ऐसा नहीं। आत्मा ज्ञान बराबर है, ज्ञान वह आत्मा बराबर है परन्तु आत्मा अकेला

ज्ञान है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? असंख्य प्रदेश में वस्तु स्वयं और उसका ज्ञान इतना अभिन्न, तथापि ज्ञान वह आत्मा बराबर है, परन्तु आत्मा, वह अकेला ज्ञान ही है, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : भिन्न-भिन्न तर्क करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। सच्ची बात है। वस्तुस्थिति सिद्ध करनी है न! ऐसा भगवान ने देखा हुआ आत्मा ऐसा है और इस प्रकार से है। इससे कर्म, अधिक, विपरीत माने तो उसका मिथ्यादर्शन जाये नहीं, मिथ्याश्रद्धा जाये नहीं। सम्यक्श्रद्धा हो कब? कि ऐसा आत्मा ऐसे क्षेत्र में ऐसा ज्ञान वह आत्मा, परन्तु आत्मा वह ज्ञान है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

आत्मा तो अनन्त धर्मों का अधिष्ठान... देखा! उसे धर्म कहा। सुख, चारित्र, सम्यग्दर्शन इत्यादि को यहाँ धर्म कहा। लो, है गुण इसके। तथापि **धर्मों का अधिष्ठान (आधार) होने से ज्ञानधर्म के द्वारा ज्ञान है और अन्य धर्म के द्वारा अन्य भी है।** ज्ञानधर्मवाला ज्ञान भी आत्मा, आनन्दधर्म द्वारा आनन्द भी आत्मा, वीर्यगुण द्वारा वीर्य भी आत्मा, शान्ति-चारित्र द्वारा चारित्र भी आत्मा, चारित्र भी आत्मा। वह चारित्र आत्मा वीतरागी पर्याय और गुण, वह आत्मा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? प्रवचनसार जरा सूक्ष्म बात है। उसमें तो दृष्टि का विषय और अमुक बात आती है। यहाँ तो ज्ञानप्रधान कथन है, इसलिए एक-एक अंश के अस्तित्व में क्या है और उसका अंश पर में नहीं और कितने अंशों के कितने सत्वाला है? कितना क्षेत्र है? ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? कि जिससे उसे दूसरी भ्रमणा रहे नहीं। जहाँ-तहाँ यह आत्मा कहते हैं और यह आत्मा कहते हैं न। वह आत्मा की बातें सब करते हैं, वे सब गप्प मारते हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर ने यह आत्मा का स्वभाव ऐसा देखा है और ऐसा है। इस प्रकार से उसके ज्ञान में बराबर आना चाहिए।

और फिर, इसके अतिरिक्त (विशेष समझना कि) यहाँ अनेकान्त बलवान है। देखो! अब एकान्त छोड़कर अनेकान्त, वह जोरदार वस्तु है। वस्तु का स्वरूप ही अनेकान्त है, ऐसा कहते हैं। **यदि यह माना जाये कि एकान्त से ज्ञान आत्मा है,...**

एकान्त से ज्ञान, वह आत्मा है—ऐसा माना जाये **तो, (ज्ञानगुण आत्मद्रव्य हो जाने से)...** तो ज्ञानगुण, वह आत्मद्रव्य हो गया। क्योंकि ज्ञान, वही आत्मा, तो आत्मद्रव्य इतना हो गया। इस **ज्ञान का अभाव होता है,...** क्या कहा? ज्ञानगुण स्वयं द्रव्य हो गया तो ज्ञानगुण का अभाव हो गया। आहाहा! ऐसी बात ली है। समझ में आया? गजब काम! सन्तों ने भी जंगल में निर्मल धारा में रहकर एक ऐसी वाणी में निमित्त हुए। समझ में आया?

यदि **यह माना जाये कि एकान्त से ज्ञान आत्मा है...** एकान्त से-एकान्त से। स्यात् ज्ञान, वह आत्मा यह बराबर है। समझ में आया? क्या कहा? कथंचित् ज्ञान, वह आत्मा यह बराबर है, कथंचित् ज्ञान वह आत्मा बराबर है, परन्तु ज्ञान वह आत्मा सर्वथा है, ऐसा यदि कहो, (तो) ज्ञान रहता नहीं। क्यों? कि ज्ञान ही जब आत्मा कहो तो ज्ञान हो गया द्रव्य और ज्ञानगुण का तो अभाव हो गया, अपना तो अभाव हो गया। लॉजिक से है या नहीं? आहाहा! जरा मस्तिष्क पर गूँथना चाहिए ज्ञान को, तो यह पकड़ में आये, ऐसी बात है। भाई! यह तो तत्त्व की, तत्त्व की बात है। यह ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है न! ज्ञान, वह तो अस्ति धराता है गुणस्वभाव। यह ज्ञान, वह आत्मा, यह बराबर है, परन्तु आत्मा, वह ज्ञान ही है अकेला कहो, तब तो ज्ञान स्वयं ही द्रव्य हो गया और द्रव्य होने से गुण का अभाव हो गया।

हो जाने से ज्ञान का अभाव हो जायेगा, (और ज्ञानगुण का अभाव होने से) आत्मा के चेतनता आ जायेगी... समझ में आया? ज्ञान हो गया द्रव्य, ज्ञान का हो गया अभाव। अभाव होने से द्रव्य भी अचेतन हो गया, ऐसा कहा। आहाहा! कहो, समझ में आया? **अथवा विशेष गुण का अभाव होने से आत्मा का अभाव हो जायेगा।** विशेष गुण है उसका भाव, उसका अभाव होने से आत्मा का अभाव होता है। उस गुण का अभाव बताया, अब फिर गुण के अभाव में तो द्रव्य का अभाव बताया, ऐसा। क्योंकि विशेष जो ज्ञान, वह आत्मा अकेला कहो तो ज्ञान द्रव्य हो गया, द्रव्य होने से गुण का अभाव हो गया। गुण का अभाव होने से आत्मा अकेला अचेतन रह गया। अचेतन अस्तिरूप से रखा उसे, समझे न? अब? कहते हैं कि विशेषपने का अभाव होने से वह चेतनद्रव्य सामान्य भी नहीं रहता। समझ में आया? समझ में आया या नहीं?

भगवान आत्मा यहाँ ज्ञानस्वरूप है, चैतन्यस्वरूप है। अब कहते हैं कि यह बात बराबर है, ज्ञान वह आत्मा, कथंचित्। सर्वथा यदि ज्ञान वह आत्मा कहो तो ज्ञान है, वह आत्मा हो गया, द्रव्य हो गया। द्रव्य होने से ज्ञानगुण का अभाव हो गया। गुण का अभाव होने से द्रव्य ज्ञानरहित अचेतन हो गया। एक बोल। अथवा ज्ञान, वह उसका विशेष-खास गुण है। और गुण नहीं तो उस द्रव्य का अभाव हो गया। समझ में आया? विशेष गुण का अभाव होने से आत्मा का अभाव होता है। आहाहा!

यह माना जाये कि सर्वथा आत्मा ज्ञान है... सर्वथा। अब दूसरे प्रकार से। वह ज्ञान साथ में लिया, अब द्रव्य लिया। **(आत्मद्रव्य एक ज्ञानगुणरूप हो जाने पर ज्ञान का कोई आधारभूत द्रव्य नहीं रहने से) निराश्रयता के कारण ज्ञान का अभाव हो जायेगा...** सर्वथा आत्मा ज्ञान है। **यह माना जाये कि सर्वथा आत्मा ज्ञान है तो, (आत्मद्रव्य एक ज्ञानगुणरूप हो जाने पर ज्ञान का...** ज्ञानरूप हो गया आत्मद्रव्य। **(आत्मद्रव्य एक ज्ञानगुणरूप हो जाने पर ज्ञान का कोई आधारभूत द्रव्य नहीं रहने से) निराश्रयता के कारण ज्ञान का अभाव हो जायेगा...** आत्मा को अकेला ज्ञान माना जाये, सर्वथा आत्मा को ज्ञान माना जाये तो ज्ञान तो द्रव्य हो गया। समझ में आया? और ज्ञान **निराश्रयता के कारण ज्ञान का अभाव हो जायेगा अथवा (आत्मद्रव्य के एक ज्ञानगुणरूप हो जाने से)...** वापस दूसरी बात। **(आत्मद्रव्य के एक ज्ञानगुणरूप हो जाने से) आत्मा की शेष पर्यायों का अभाव हो जायेगा और उनके साथ ही अविनाभावी सम्बन्धवाले आत्मा का भी अभाव हो जायेगा।** यहाँ द्रव्य का अभाव कहा। पहले गुण का अभाव कहा था। थोड़ा सूक्ष्म पड़ता है। भीखाभाई!

मुमुक्षु : सूक्ष्म पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहला विषय सूक्ष्म, दोनों विषय सूक्ष्म हैं। आहाहा!

(क्योंकि सुख, वीर्य इत्यादि गुण न हों तो आत्मा भी नहीं हो सकता)। इसकी विशेष बात आयेगी, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ३, बुधवार, दिनांक २५-०९-१९६८
गाथा - २८ - २९, प्रवचन - २३

गाथा - २८

यह ज्ञानतत्त्व अधिकार है। प्रवचनसार की २८वीं गाथा। **अब, ज्ञान और ज्ञेय के परस्पर गमन का निषेध करते हैं।**

एक-दूसरे में प्रविष्ट नहीं होते तथापि ज्ञान ज्ञेय को बराबर जैसा है, वैसा जानता है—यह सिद्ध करते हैं। सर्वज्ञ का ज्ञान अर्थात् आत्मा में सर्वज्ञस्वभाव जो है, उसे अन्तर में शुद्ध उपयोग के साम्यभाव द्वारा जो सर्वज्ञपद शक्ति में था, वह प्रगट हुआ, वह ज्ञान सर्व ज्ञेयों को जानता अवश्य है, परन्तु वह ज्ञान ज्ञेय में जाता नहीं और ज्ञेय ज्ञान में आते नहीं। यह बात सिद्ध करते हैं।

णाणी णाणसहावो अट्ठा णेयप्पगा हि णाणिस्स।
रूवाणि व चक्खूणं णेवण्णोण्णेसु वट्टंति॥२८॥

हरिगीत ऊपर।

आत्मा ज्ञान-स्वभावी एवं, अर्थ आत्मा के हैं ज्ञेय।
यथा वर्ण है ज्ञेय नेत्र का, इक-दूजे में नहीं रहे॥२८॥

इसका **अन्वयार्थ :- आत्मा ज्ञानस्वभाव है...** आत्मा ज्ञान जिसका स्व—अपना भाव है। **और पदार्थ आत्मा के ज्ञेय स्वरूप हैं,...** और आत्मा के, देखो! **आत्मा ज्ञानस्वभाव है...** ऐसा इस प्रकार। **आत्मा ज्ञानस्वभाव है और पदार्थ आत्मा के ज्ञेय स्वरूप हैं,...** ऐसा। समझ में आया? आत्मा ज्ञानस्वभाव है और आत्मा के दूसरे पदार्थ ज्ञेय हैं, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया या नहीं? **आत्मा ज्ञानस्वभाव है और पदार्थ आत्मा के...** ज्ञानी के हैं न, मूल उस ज्ञानी को। **आत्मा के ज्ञेय स्वरूप हैं, जैसे कि रूप नेत्रों का ज्ञेय है वैसे...** नेत्र का प्रकाश स्वभाव है और दूसरी चीज़ उसका ज्ञेय है। समझ में आया? नेत्र का प्रकाश स्वभाव है और नेत्र के, दूसरी चीज़ें वे ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेय हैं। इसी प्रकार आत्मा का ज्ञानस्वभाव है और दूसरी चीज़ें आत्मा के ज्ञेय हैं, ज्ञात होनेयोग्य

हैं। समझ में आया? ऐसी साधारण भाषा है, परन्तु उसमें भाव है पूरा।

आत्मा तो ज्ञानस्वभाव है, ऐसा कहते हैं। तब आत्मा के अतिरिक्त जितने पदार्थ हैं, वे आत्मा के, यहाँ ज्ञानस्वभाव कहा तब आत्मा के वे ज्ञेयपदार्थ हैं, पर हैं। समझ में आया? **नेत्रों का ज्ञेय है वैसे वे एक-दूसरे में नहीं वर्तते।** आत्मा का ज्ञानस्वभाव, वह ज्ञेय आत्मा का ज्ञेय परज्ञेय पदार्थ। उस ज्ञेय को ज्ञानस्वभाव जाने, परन्तु वह ज्ञानस्वभाव ज्ञेय में जाता नहीं और वह ज्ञेयपदार्थ ज्ञान में आता नहीं। समझ में आया? भिन्न वस्तु अनन्त ज्ञेय और आत्मा के अभिन्न ज्ञानस्वभाव का अनन्त ज्ञेयों को जानने का स्वरूप।

टीका :- आत्मा और पदार्थ स्वलक्षणभूत पृथक्त्व के कारण... आत्मा का लक्षण ज्ञानस्वभाव और पदार्थ का लक्षण पर का ज्ञेयस्वभाव, ऐसा। दोनों के पृथक् लक्षण हैं। समझ में आया? **आत्मा और पदार्थ स्वलक्षणभूत...** दोनों के स्वलक्षणभूत **पृथक्त्व के कारण एक-दूसरे में नहीं वर्तते...** समझ में आया? आत्मा का ज्ञानस्वभाव और पदार्थों का ज्ञेयस्वभाव, दोनों के लक्षण अत्यन्त भिन्न हैं। समझ में आया इसमें? **आत्मा और पदार्थ स्वलक्षणभूत पृथक्त्व के कारण...** भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वभावी लक्षण और परपदार्थ प्रमेयस्वभावी लक्षण। यह सूक्ष्म बात है। प्रवचनसार बहुत सूक्ष्म है। जरा ऐसी बात सादी लगे, परन्तु है गूढ़। एकदम भगवान आत्मा जो अपना ज्ञानस्वभाव है, वह प्रगटरूप से पर्याय में सर्वज्ञ ज्ञानस्वभाव प्रगट हो गया। तो कहते हैं कि आत्मा का तो ज्ञानस्वभाव है और दूसरे पदार्थों का ज्ञेय—ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य उनका स्वभाव है। दोनों के लक्षण भिन्न हैं। समझ में आया?

एक-दूसरे में नहीं वर्तते परन्तु उनके मात्र... उन्हें मात्र **ज्ञानज्ञेयस्वभाव-सम्बन्ध से होनेवाली एक-दूसरे में प्रवृत्ति पाई जाती है। परन्तु उनके मात्र ज्ञान...** जाननेयोग्य स्वभाव। **ज्ञेय...** ज्ञात होनेयोग्य। उस **ज्ञानज्ञेयस्वभाव-सम्बन्ध से...** ज्ञान और ज्ञेय। सर्वज्ञ परमेश्वर ज्ञानमय और यह दूसरी चीज़ें ज्ञेय। ऐसे स्वभावसम्बन्धी **होनेवाली एक-दूसरे में प्रवृत्ति पाई जाती है।** इस अपेक्षा से एक-दूसरे में वर्तते हैं, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। **नेत्र और रूपी पदार्थ की भाँति।(प्रत्येक द्रव्य का लक्षण अन्य द्रव्यों से भिन्नत्व होने से...** अन्य द्रव्यों से भिन्नता प्रत्येक द्रव्य का लक्षण होने से **आत्मा और पदार्थ एक-दूसरे में नहीं वर्तते,...** भगवान आत्मा अपने शुद्ध उपयोग द्वारा केवलज्ञान

प्राप्त करे, वह ज्ञान सब अनन्त ज्ञेयों को जानता है, परन्तु ज्ञान ज्ञेय में जाता नहीं। पदार्थों का ज्ञान, ऐसे ज्ञान और ज्ञेय स्वभावसम्बन्ध के कारण से मात्र उनका....

किन्तु आत्मा का ज्ञानस्वभाव है और पदार्थों का ज्ञेयस्वभाव है,... देखो! समझ में आया? देखो! दूसरे आत्मायें, दूसरे आत्माओं का भी ज्ञानस्वभाव है, वह एक ओर रखो। यहाँ तो आत्मा का ज्ञानस्वभाव है, और दूसरे सब ज्ञेयस्वभावी हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आत्मा का ज्ञानस्वभाव, वह प्रगट हुआ और दूसरे सब ज्ञेयस्वभाव। यह सिद्ध और केवलज्ञानी यह (मेरे) ज्ञानस्वभाव की अपेक्षा से ज्ञेयस्वभाव। भाई! एक ओर भगवान आत्मा अपने ज्ञानस्वभावरूप परिणमा, वह उसका स्वभाव ज्ञान है। उसके अतिरिक्त जितने सर्वज्ञ हों, निगोद के जीव हों, रजकण हों या दूसरे वे सब ज्ञेयस्वभाव हैं, इतनी बात है यहाँ तो, इसकी अपेक्षा से। समझ में आया?

आत्मा का ज्ञानस्वभाव और पदार्थों का ज्ञेयस्वभाव। ऐसी संक्षिप्त बात करके फिर उसका स्पष्टीकरण किया कि भाई! **आत्मा का ज्ञानस्वभाव है और पदार्थों का ज्ञेयस्वभाव है,...** ऐसा पदार्थ शब्द से तो अनन्त सर्वज्ञ आये, सिद्ध आये। समझ में आया? प्रत्येक केवली हैं, तीर्थंकर हैं, सिद्ध हैं, निगोद हैं, अनन्त आत्मायें हैं और अनन्त परमाणु आदि। तो एक ओर आत्मा का ज्ञानस्वभाव है तथा एक ओर सब पदार्थों का ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेयस्वभाव है। बस, इतनी बात। समझ में आया? एक केवलज्ञानी के आत्मा को भी उसका ज्ञानस्वभाव है, उसका स्वयं का, ऐसा कहते हैं और उसके अतिरिक्त दूसरे केवलज्ञानी जो हैं और इस ज्ञान के स्वभाव की अपेक्षा से तो वे सब ज्ञेयस्वभावी हैं। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा का ज्ञानस्वभाव है... देखो तो इसका—वस्तु का माहात्म्य। वह तो ज्ञानस्वभाव है, वह पूर्ण प्रगट हो गया है। उसका तो ज्ञान जानना ऐसा स्वभाव है, बस। इसके अतिरिक्त जितने आत्मायें आदि अनन्त हों, वे भले एक-एक केवली स्वयं ज्ञानस्वभाव है उनका, परन्तु इस ज्ञानस्वभाव की अपेक्षा से वे सब ज्ञेयस्वभाव हैं। समझ में आया? एक-एक सर्वज्ञ का आत्मा परमेश्वर अरिहन्त का या सिद्ध का, उस आत्मा में स्वरूप में वह शुद्ध चैतन्यशक्ति शुद्ध थी, उसके अन्तर्मुख के शुद्ध उपयोग के आचरण द्वारा सर्वज्ञपना प्रगट किया। तो कहते हैं कि वह सर्वज्ञपना, वह ज्ञान का

स्वभाव, ज्ञान का स्वभाव। इसके अतिरिक्त दूसरे सर्वज्ञ हैं, उनका वह ज्ञानस्वभाव, परन्तु इस ज्ञान के स्वभाव की अपेक्षा से सब ज्ञेयस्वभावी हैं। वजुभाई! कठिन! समझ में आया?

एक ओर राम तथा एक ओर गाम। एक ओर सर्वज्ञस्वभावी आत्मा प्रगट हुआ (तो) कहते हैं कि वह तो ज्ञानस्वरूपी कहो, स्वभाव कहो, भाव कहो। इसके अतिरिक्त के जितने आत्मायें हैं, जितने पुद्गल आदि सब, उन सबको ज्ञेयस्वभाव में डाला। केवलज्ञानी, एक इस ज्ञानस्वभाव की अपेक्षा से केवलज्ञानी भी ज्ञेयस्वभाव और रजकण भी ज्ञेयस्वभाव और आकाश भी ज्ञेयस्वभाव। समझ में आया? यह साधारण बात नहीं, हों! इसमें बड़े न्याय भरे हैं। समयसार में द्रव्यदृष्टि (प्रधान कथन आवे)। यह तो एक-एक समय का इसका सामर्थ्यपना वर्णन करते हैं।

वस्तु का स्वरूप आत्मा ज्ञ-स्वभावी वस्तु, ज्ञ-स्वभावी वस्तु का अन्तर ध्यान करके, एकाग्र होकर जो कुछ ज्ञ-स्वभाव सर्वज्ञरूप से था, वह पर्याय में प्रगट दशा हो गयी, वह आत्मा का पूरा रूप, वह आत्मा का पूरा रूप। और उस पूरे रूप में उसका ज्ञानस्वभाव, उसका रूप और उसके अतिरिक्त जगत के सब पदार्थों का ज्ञेयस्वरूप। समझ में आया? उसके ज्ञान में वे सब ज्ञेय ज्ञात होते हैं, परन्तु ज्ञान में वे ज्ञेय आते नहीं, और वे ज्ञेय इसमें ज्ञात होते हैं, परन्तु यह ज्ञान वहाँ ज्ञेय में जाता नहीं।

किन्तु आत्मा का ज्ञानस्वभाव है और पदार्थों का ज्ञेयस्वभाव है, ऐसे ज्ञानज्ञेयस्वभावरूप सम्बन्ध के कारण ही... ऐसे ज्ञान और ज्ञेयस्वभावरूप—भावरूप सम्बन्ध के कारण से **मात्र उनका एक-दूसरे में होना उपचार से कहा जा सकता है)।** क्योंकि उस सम्बन्धी का यह ज्ञेय जो है, उस सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान हुआ न, उस सम्बन्धी का ज्ञान हुआ, उतना उपचार करके ज्ञेय ऐसे हैं, उसमें हैं, ऐसा कहा जाता है। ज्ञेय उसमें नहीं, परन्तु ज्ञेय सम्बन्धी का लोकालोक, केवली आदि सब वे हैं, उनका यहाँ ज्ञान हुआ है, इतने सम्बन्ध के कारण ज्ञेय ज्ञान में वर्तते हैं, ऐसा कहा जाता है।

नेत्र और रूपी पदार्थों की भाँति... ज्ञान ज्ञेय में वर्तते हैं। कहो, समझ में आया? क्योंकि ज्ञान का स्वभाव, जितने ज्ञेय, उनको जानने का है; इसलिए वह ज्ञान मानो ज्ञेय में वर्तता हो—ऐसा उपचार से, व्यवहार से कहा जाता है। दृष्टान्त देते हैं। **जैसे नेत्र और**

उनके विषयभूत रूपी पदार्थ... कहो, समझ में आया? कहते हैं, जैसे आँख है और सामने रूपी पदार्थ है रूप-रूप। **उनके विषयभूत रूपी पदार्थ परस्पर प्रवेश किये बिना ही...** अग्नि ऐसी है और यहाँ आँख है। उस अग्नि को नेत्र जानते हैं, तथापि नेत्र अग्नि में प्रवेश नहीं करता।

पदार्थ परस्पर प्रवेश किये बिना ही ज्ञेयाकारों को ग्रहण... क्या कहते हैं? कि आँख में, जो अग्नि है सामने या बर्फ है या जो चीज़ है, उस ज्ञेय को जानने का स्वभाव आँख का है **और समर्पण करने के स्वभाववाले हैं,...** वे (पदार्थ) अर्पित करते हैं। अग्नि और बर्फ सामने हैं—नेत्र के सामने, तो उस अग्नि और बर्फ का जैसा स्वभाव है, वैसा जानने का आँख का स्वभाव है और उसका (-ज्ञेय का) अर्पित करने का स्वभाव है। जैसा वह स्वरूप है, वैसा अर्पित करता है अन्दर में। ऐसा। आँख में। समझ में आया? यह दृष्टान्त हुआ। यों भी आता है न अन्दर, मेरी आँख फिरती है। नहीं लिखा? लिखा है अन्दर? हाँ यह। फिर आयेगा। नहीं? ५० में। यों भी ऐसा कहते हैं न, मेरी आँख सर्वत्र फिरती है। और फिरी नहीं। वास्तव में तो सबको जाना है। परन्तु ऐसे सबको फिरती है। मेरी आँख सर्वत्र फिरती है, ऐसा कहते हैं न? इसी प्रकार ज्ञान ज्ञेयों में सबमें फिरता है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! फिरा है? फिरकर वापस मुड़ा होगा? फिरकर मुड़ा क्या होगा? ऐई! ऐसे फिरा और जानकर मुड़ा होगा? है अपने में ऐसा। आँख सर्वत्र फिरी। सबको जानने में आँख ने काम किया है। इसी प्रकार केवलज्ञान लोकालोक में फिरा है। अर्थात् कि जानने का काम किया है। आहाहा! ऐसा एक-एक आत्मा का स्वभाव है, उसे आत्मा कहते हैं। यहाँ तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरे! यह वास्तविक आत्मा का स्वरूप क्या है, उसे अन्दर सुने नहीं, विचारे नहीं और उसके बिना उसे धर्म हो जाये, (ऐसा नहीं है)।

यहाँ तो यह सिद्ध करते हैं। इस आत्मा का ऐसा स्वभाव है, भाई! वह तो ज्ञानस्वरूपी है। यह ज्ञान है, वह लोकालोक को, रागादि सबको तो जाने, ऐसा स्वभाव है। जगत के पदार्थों में दूसरे को भी राग है, केवलज्ञान है, दूसरे को राग है, वह सब ज्ञान उसे जानता है। जानता है अर्थात् ज्ञान मानो सबमें फिर गया हो, ऐसा उपचार से कहा जाता है और ज्ञेय मानो उसमें (ज्ञान में) आ गये हों, ऐसा कहा जाता है। क्योंकि अर्पित

किया न ? ऐसा कहा न ? उसने अर्पित कर दिया। जैसा अग्नि और बर्फ का स्वरूप था, वैसा आँख में आ गया, ख्याल में आ गया। भड़का ऐसा है। उस ज्ञेय का अर्पित करने का स्वभाव है और इसका (ज्ञान का) ग्रहण करने का स्वभाव है। समझ में आया ?

इसी प्रकार आत्मा.... यह नेत्र के रूपी के दृष्टान्त से। **आत्मा और पदार्थ एक-दूसरे में प्रविष्ट हुए बिना...** एक-दूसरे में वर्त बिना, प्रविष्ट हुए बिना, प्रवेश किये बिना, स्पर्शे बिना **ही समस्त ज्ञेयाकारों के ग्रहण...** ओहोहो! जितने ज्ञेय जगत के हैं अनन्त सिद्ध, केवली लाखों मनुष्यरूप से विराजमान। तीर्थंकर संख्यात... आदि। समझ में आया ? और अनन्त परमाणु तथा अनन्त स्कन्ध और असंख्य कालाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, इन सबको ज्ञान का स्वभाव ज्ञेयाकारों का ग्रहण करना, वे ज्ञेय जैसे जिस प्रकार के हैं, उन्हें उस प्रकार से जानना **और समर्पण करने के स्वभाववाले हैं।** और केवलज्ञानी का आत्मा भी (दूसरे) केवलज्ञानी के आत्मा को अर्पित करे, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया ?

अनन्त सिद्धों का स्वभाव, यहाँ ज्ञानस्वभाव को जानने का उसे है और वह सब ज्ञेय ज्ञान में ज्ञात हों, ऐसा उनका स्वभाव है। ओहोहो! समझ में आया ? यह तो इतना आत्मा पर्याय में हो, उसे पूरा आत्मा कहते हैं, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! ऐसे साधारण आत्मा... आत्मा करे—ऐसा नहीं चलता, कहते हैं।

भाई! जिसका स्वरूप-स्वभाव ही है न। वस्तु है न, वस्तु है न। और वस्तु है तो उसका स्वभाव है न! और स्वभाव है उसकी हद और मर्यादा क्या होगी ? ऐसी बेहद शक्ति का सत्त्व दिव्यशक्ति जिसकी ज्ञान की, आनन्द की आदि ऐसी शक्ति का—सत्त्व का सत्त्व जो बेहद है, उसके सन्मुख होकर उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता द्वारा जो शक्ति का स्वभाव था, वह प्रगट होकर वीतरागविज्ञान हुआ, उसमें लोकालोक और अनन्त केवली उसमें आ गये, उन्हें जानने का उसका स्वभाव है। समझ में आया ?

और समर्पण करने के स्वभाववाले हैं। वे सब ज्ञेय जितने हैं, सर्वज्ञ से लेकर परमाणु या सर्वज्ञ से लेकर आकाश, वे सब पदार्थ हैं। देखो! इस आकाश का अन्त नहीं, ऐसा जो आकाश ज्ञेय, उसका ज्ञान में अर्पित होने का स्वभाव है, कहते हैं। अरे! गजब बात है! समझ में आया ? जिस आकाश का अन्त नहीं, ऐसा जो ज्ञेय आकाश,

उसे ज्ञान उसके जानने के स्वभाववाला है और वह ज्ञेय उसमें अर्पित होकर ज्ञात होने का उसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे तीन काल आदि-अन्तरहित का काल, वह ज्ञान उसे जानने के स्वभाववाला है और वह काल पर्याय द्रव्य की, काल की और त्रिकाल पर्याय या समय, वे सब ज्ञान में अर्पित हों, ऐसा उनका स्वभाव है। कोई बाकी रहे नहीं। समझ में आया? इस धर्म की बात में भी यह सब क्या? ऐई! न्यालभाई! धर्म करना, उसमें यह? भाई! धर्म अर्थात्? धर्म करनेवाला कितना है? धर्म करनेवाले का स्वभाव कितना है? कि जितने स्वभाव में से उसमें से धर्म की पर्याय प्रगट करता है और प्रगट करके जिसकी स्वभावपर्याय पूर्ण हुई है, ऐसा जो उसका धर्म, सर्वज्ञस्वभाव ऐसा उसका धर्म। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा परिपूर्ण ज्ञानस्वभाव, वस्तुस्वभाव, द्रव्यस्वभाव एक-एक शक्ति से परिपूर्ण, उसके सन्मुख की पर्याय की एकाग्रता द्वारा जो शक्ति में पूर्णता पड़ी है, वह प्रगटता पूर्ण की पर्याय में हो, ऐसे ज्ञान को लोकालोक उसे जानने का स्वभाव है। समझ में आया? और वे सब लोकालोक क्षेत्र और काल और वस्तु, उस ज्ञान में अर्पित हो जाते हैं, बाकी नहीं रहे, ऐसा उनका स्वभाव है। ओहोहो! केवली ने कुछ आदि-अन्त देखा नहीं इतने तो कच्चे सही या नहीं? भगवानजीभाई! आदि देखी कि इसका यह पहला आत्मा था? पहला। आदि नहीं देखी, इतना तो कम है या नहीं? अरे! भगवान! देख तो सही तू। तेरी आदि नहीं। है, उसे आदि क्या? है, उसे अन्त क्या? समझ में आया? इसी प्रकार अनादि-अनन्त पदार्थ हैं, काल की आदि नहीं, अन्त नहीं, इस प्रकार से है। ऐसा जो ज्ञान की एक समय की पर्याय, इस प्रकार से ही उन्हें जान लेती है। आहाहा! समझ में आया? और वे जैसे पदार्थ जिस प्रकार से हैं, उस प्रकार से वे ज्ञान में अर्पित हो जाते हैं। दूसरे प्रकार से अर्पित होते हैं? समझ में आया?

ओहो! ऐसी पर्याय का ज्ञान के पूर्ण परिणमन का ऐसा स्वभाव। ऐसे-ऐसे अनन्त केवलज्ञान की पर्याय का ज्ञानगुण का स्वभाव। इतना-इतना प्रत्येक पर्याय का स्वभाव और इतने अनन्त पर्याय का एक गुण, ऐसे अनन्त गुण। उसके ज्ञान में इतना सामर्थ्य तो उसकी श्रद्धा में इतना सामर्थ्य, उसकी स्थिरता में इतना सामर्थ्य, उसके वीर्य में इतना सामर्थ्य, उसके अस्तित्व का इतना सामर्थ्य, ऐसा अनेक उसके कर्ता-कर्म में भी इतना

सब सामर्थ्य। समझ में आया? गजब बात करते हैं! ऐसा भगवान पूर्ण सामर्थ्य का नाथ जहाँ प्रगट हुआ, उसे परमेश्वर कहते हैं। लो! समझ में आया?

यह तो वह नाम तुमने पूछा था न भूतकाल के तीर्थंकर का। भूतकाल के तीर्थंकर का नाम पूछा। भूतकाल के नाम हैं, कहा। बताये थे। उसमें एक तीर्थंकर का नाम परमेश्वर है, नाम ही परमेश्वर। लिख लिये न? है। भूतकाल के, हों! इस चौबीसी के अतिरिक्त भूतकाल के तीर्थंकरों के नाम हैं न? एक का निर्वाण नाम है, एक का परमेश्वर नाम है। आहाहा! इस चौबीसी के पहले चौबीसी हो गयी है न? उनके नाम हैं। भविष्य के नाम हैं। यहाँ तीनों चौबीसी के नाम हैं। और तीन चौबीसी के बिम्ब कैलाश(पर्वत) में स्थापित किये हैं, भरत चक्रवर्ती ने (स्थापित किये हैं)। अपने हैं न प्रवचनमण्डप में? ७२ बिम्ब भरत चक्रवर्ती के समय में स्वर्ण के बिम्ब, स्वर्ण के मन्दिर ७२ बनाये हैं, मेरुपर्वत। समझ में आया? लोगों को ऐसा लगे कि यह सब बड़ी (बातें)। बड़ी नहीं बापू! यह तो साधारण बात है। समझ में आया? जहाँ ज्ञानस्वभाव में तीन काल, तीन लोक ज्ञात हो, उसमें ऐसी चीज़ हो, उसमें भी क्या है?

और समर्पण करने के स्वभाववाले हैं। (जिस प्रकार आँख रूपी पदार्थों में प्रवेश नहीं करती और रूपी पदार्थ आँख में प्रवेश नहीं करते तो भी आँख रूपी पदार्थों के ज्ञेयाकारों के ग्रहण करने—जानने के—स्वभाववाली है... समझ में आया? **और रूपी पदार्थ स्वयं के ज्ञेयाकारों को...** अर्थात् जैसी स्थिति अपनी द्रव्य-गुण-पर्याय आदि की है। **समर्पित होने—जानने के—स्वभाववाले हैं,...** सरल किया है समझाने के लिये। ऐसा आत्मा इतना अस्तित्व-सत्तावाला है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? आहाहा! इतना आत्मा सत्ता के अस्तित्ववाला एक-एक (आत्मा) है।

यह और कहते हैं न वह कि ज्ञान, नहीं? दिव्यज्ञान, उसे ज्ञान कहते हैं। उन चार ज्ञानवालों की बात नहीं है। उसे ज्ञान (कहा जाता है)? ज्ञान तो यह है। यह आयेगा अन्दर। है न आता है। यह ज्ञान कहते हैं। क्योंकि ज्ञानस्वरूप है। स्वस्वभाव स्वस्वरूप स्वशक्ति का सत्त्व, वह पूर्ण प्रगट हो, उसे ज्ञान कहते हैं। अधूरा ज्ञान, वह ज्ञान क्या? कहते हैं। समझ में आया? अरे! यह वार्ता भी अन्दर समझकर सुनना कठिन पड़े। आहाहा! यह तो भगवान परमेश्वर की स्थिति ऐसी है, ऐसा वर्णन करते हैं। ऐसा जो सत् है।

समझ में आया? ऐसे सत् के इतने अस्तित्व को पूर्ण स्वीकार करे, तब उसकी दृष्टि द्रव्य के स्वीकार पर जाती है, तब उसे स्वीकार हुआ कहा जाता है। समझ में आया? लो!

उसी प्रकार आत्मा पदार्थों में प्रवेश नहीं करता... समझ में आया? पदार्थ आत्मा में प्रवेश नहीं होते। कहो, समझ में आया? **आत्मा पदार्थों में प्रवेश नहीं करता...** आहाहा! (संवत्) १९८४ में, कहा न, उस खत्री ने प्रश्न किया था। राणपुर का खत्री। रूगनाथ है न नारणभाई के साथ, नहीं? नारणभाई के साथ। ...नाथ। वह कहे कि परन्तु तुम परमाणु कहो, परमाणु में प्रविष्ट हुए बिना ज्ञान किस प्रकार जाने? (संवत्) १९८४ में। अरे! प्रविष्ट क्या हो? सुन न अब। समझ में आया? वेदान्तवाले सही न। इसलिए प्रविष्ट हुए बिना परमाणु सिद्ध नहीं होता, ऐसा (वे) कहते हैं। परवस्तु सिद्ध होती नहीं। क्योंकि उसमें प्रविष्ट हुए बिना जाने नहीं, इसलिए परवस्तु सिद्ध नहीं होती। वह यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

ऐसा कि परवस्तु जो है और आत्मा अकेला न हो और दो हो तो उस दूसरे को जाने किस प्रकार? उसमें प्रवेश करे तो जाने। इसलिए वह प्रवेश करे तो वह ज्ञान ही हो गया सब एक। कोई दूसरी चीज़ रही नहीं—ऐसा नहीं। सूक्ष्म न्याय है इसमें, हों! परमाणु ऐसे दल है एक रजकण। एक पूरा आत्मा दूसरा है ऐसा। अनन्त गुण का धनी। यह ज्ञान वहाँ प्रविष्ट तो नहीं होता, (तो) जाने किस प्रकार? प्रविष्ट हुए बिना, स्पर्श किये बिना जाने किस प्रकार? प्राप्त करके दृष्टान्त देंगे न इसमें? चक्षु को प्राप्त करे, कहा है न भाई! चक्षु को प्राप्त करे। अर्थात् सामने ऐसे हो। कान को आवश्यक नहीं, दूर से भी खबर पड़े। यह ऐसी सामने चीज़ हो। समझे न? ... मानो ज्ञान में आयी हो, तब ज्ञात हो। ऐसा नहीं है, कहते हैं।

यह ज्ञान के स्वभाव की स्थिति का माहात्म्य कहते हैं और ज्ञेय के स्वभाव का माहात्म्य भी इतना है। आहाहा! समझ में आया? इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान! तू तो ज्ञाता-दृष्टा है। समझ में आया? उसे राग का करना और पर का करना उसमें नहीं है। परन्तु पर का जानना, वह पूरा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? एक रजकण को करे नहीं, रजकण की पर्याय को करे नहीं, राग के विकल्प को करे नहीं और जाने सबको। और वह भी प्रवेश किये बिना, स्पर्श किये बिना जाने। यह बात है यहाँ तो। आहाहा!

समझ में आया? इसलिए आँख का दृष्टान्त दिया न कि ऐसा दिखता है न ऐसा आँख द्वारा। अग्नि, बर्फ आदि है, उसे वह जानती है पर्याय। वह चीज़ यहाँ आयी है? वह यहाँ आवे तो आँख गर्म हो जाये। और आँख वहाँ जाये तो जल जाये आँख अग्नि को देखते हुए। समझ में आया? परन्तु ऐसा स्वभाव ही नहीं है, कहते हैं। आँख का स्वभाव जो चीज़ रूपी है, उसे जानने का है, वह जो चीज़ें हैं, वे यहाँ अर्पित कर दे ऐसा उसका—चीज़ का स्वभाव है। भिन्न रहकर, छुए बिना, स्पर्श किये बिना, प्रवेश किये बिना। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान का परिणमन ही ऐसा है। पर्याय का स्वभाव ही इतना है। यहाँ तो एक समय की पर्याय का इतना स्वभाव। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वस्तु हो, उसे पर्याय की प्रगटता जहाँ पूर्ण हुई, वस्तु में से प्रगट हो गयी, जो है उतनी हो गयी। अब उसे बाकी क्या रहा? काल एक समय का, ऐसा न लेना, परन्तु उसका भाव कितना? समझ में आया? अरे! यह बात नहीं, यह अलौकिक बात बापू! एक समय का ज्ञान तीन काल-तीन लोक के पदार्थों को जाने। वर्तमान हो, वैसे उन्हें जान लेता है। आहाहा! ऐसा आत्मा का स्वभाव है और तीन काल-तीन लोक के पदार्थ वर्तमान में निमित्तरूप से हैं न? नैमित्तिक यहाँ हुआ न ज्ञान? तो वर्तमान पूरा निमित्त है या नहीं? पूरा निमित्त है उसे। भूत-भविष्य सब वर्तमान में पूरा निमित्त है। एक साथ समय में सब अर्पित हो गया है। वजुभाई!

मुमुक्षु : एक समय में सब अर्पित हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में सब अर्पित हैं। बाद में यह और पहले यह। वर्तमान का जाना, भविष्य का बाद में, ऐसा वस्तु में नहीं। ऐसा भी हो सकता ही नहीं।

मुमुक्षु : ....मूल स्वभाव पूरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा एक समय में है, ऐसा सिद्ध करना है न! एक समय में पूरा है। यहाँ जब पूरा जाना ऐसे। वहाँ पूरा निमित्त होता है। नैमित्तिक का सम्बन्ध कब कहलाता है? नैमित्तिक का पूरापना और निमित्त का बाद में आवे तो यहाँ वर्तमान में

निमित्त पूरा कहाँ से हुआ? अमरचन्दभाई! समझ में आया? ऐसा ज्ञान के झूले में चढ़ा हुआ आत्मा और अपनी शक्ति की व्यक्तता जहाँ पूर्ण की, उस धर्म के फलरूप से... धर्म अर्थात् चारित्र की बात चलती है न! चारित्र अर्थात् स्वरूप आनन्दमूर्ति में रमणता। आनन्द भगवान आत्मा, आनन्दमूर्ति नित्यानन्द नाथ में रमणता, वह चारित्र और उस चारित्र के फल में सर्वज्ञपना। समझ में आया?

आत्मा पदार्थों में प्रवेश नहीं करता और पदार्थ आत्मा में प्रवेश नहीं करते तथापि आत्मा पदार्थों के समस्त ज्ञेयाकारों को ग्रहण कर लेने... बाकी रखे बिना एक समय में। आहाहा! अरे! सर्वज्ञ के पद के ही विवाद हैं अभी सब। समझ में आया? पहले से जानने में आवे, तत्प्रमाण हो। परन्तु पहले से ही जानना है यहाँ। और पहले-पश्चात् है कब यहाँ? समझ में आया? भगवान! तेरी महत्ता की शक्ति इतनी है, इतना तेरा सत् है। तेरा सत् ही इतना है। यह सर्वज्ञ की पर्याय सत् है या नहीं? उत्पाद हुआ वह सत् है या नहीं? उत्पाद हुआ, पूर्व का व्यय हुआ और ध्रुवरूप रहा। इतना उत्पाद का सत्पना इतना है। यह तो ज्ञान की बात की, ऐसे-ऐसे अनन्त गुणों की एक-एक पर्याय का इतना ही सामर्थ्य है। समझ में आया?

वे कहते हैं न कितने ही? कि भगवान ने यह किया। किया तब इसका अर्थ हुआ कि भूतकाल का उसे ज्ञान नहीं था, तो यहाँ भूतकाल की वस्तु नहीं थी। तो त्रिकाल ज्ञानी नहीं हुए। उन्होंने किया ऐसा कहने से जो भूत में नहीं था तो उसका ज्ञान उन्हें नहीं था, इसलिए सर्वज्ञ नहीं हुए। यह था सब ऐसा का ऐसा। किया नहीं परन्तु जैसा है, वैसा उन्होंने जाना है। यह सिद्ध करते हैं। समझ में आया? भूतकाल में भगवान ने यह किया और करने के पश्चात् यह ऐसा का ऐसा रहा। अर्थात् वर्तमान का ज्ञान और भविष्य का ज्ञान (रहा)। भूतकाल में वह था नहीं। तो त्रिकालज्ञानी तो हुए नहीं। इसलिए कर्ता-फर्ता है नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया? वह तो ज्ञ-स्वभावी ज्ञाता ही है और भूत-भविष्य के पदार्थ भी उस प्रकार से ज्ञेयरूप से है। अनन्त काल के केवली हैं और अनन्त काल का ज्ञेय है। उसमें कोई ज्ञान ने ज्ञेय बनाया नहीं और ज्ञेय ज्ञान से उत्पन्न हुआ नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कर्ता। यह शब्द रखते हैं। क्योंकि टीका में वह सर्वज्ञ है न। कर्ता अर्थात् यह

सर्वज्ञपर्याय, ऐसा। जयसेनाचार्य की टीका में। कर्ता अर्थात् करनेवाला सर्वज्ञपर्याय। वह जाने। कर्ता क्या? सर्वज्ञपर्याय कर्ता, उसका कर्ता आत्मा। पूरी दुनिया तीन काल-तीन लोक वह ज्ञान में अर्पित हो जाये ऐसा उसका स्वभाव, उसे ग्रहण करे ऐसा स्वभाव। यह साधारण बात नहीं, भीखाभाई! आहाहा! यह तत्त्वज्ञान की दृष्टि की महिमा बताते हैं। न्यालभाई! यह कभी सुना नहीं। अपने ... ज्ञात होने के स्वभाववाले हैं। बस हो गया। ओहोहो! यह (गाथा) २८ हुई।

★ ★ ★

गाथा - २९

अब, आत्मा पदार्थों में प्रवृत्त नहीं होता, तथापि जिससे (जिस शक्तिवैचित्र्य से) उसका पदार्थों में प्रवृत्त होना सिद्ध होता है, उस शक्तिवैचित्र्य को उद्योत करते हैं:- प्रतिदिन होता है अभी, हों! जमा है, अन्धेरा हुआ। उसके अवसर में उसकी पर्याय परिणमने की हो, वह ज्ञान में ज्ञात होती है, ऐसा कहते हैं। उस समय में वही पर्याय वहाँ हो, उसे ज्ञान जानता है। कहो, यह करे कौन ऐसा? कहो। यह रजकणों के दल के दल, दल के दल, उस-उस क्षेत्र में परिणमे और उस-उस क्षेत्र में पड़े। एक-एक समय का पदार्थ उसके काल में स्वतन्त्र परिणमता है, ज्ञान उसे जानता है बस। समझ में आया? भाई! हम ऐसा करें तो वर्षा आवे। लोग नहीं कहते?

मुमुक्षु : अन्दर बर्फ रखे न....

पूज्य गुरुदेवश्री : बर्फ रखे... यह तो और ... बरसात बरसी थी। यह अभी कुछ आया था। फलाना लेकर रखा, बरसात आयी। यह तो वह आनेवाली थी, उसकी पर्याय होनेवाली (थी), उसमें कुछ नहीं। परन्तु यह तो ऐसा नहीं, यह तो ऐसा कहते हैं अपने यह करते हैं, एक रामधुन लगायें, फलानी धुन लगायें तो वर्षा आवे। ऐसा। यह (माननेवाले) तो स्वतन्त्र जीव हैं। कहो, समझ में आया? कि ऐसा करें तो आवे। अरे! भगवान! यह परमाणु तो जगत के पदार्थ हैं, उसके काल में वे परिणमते हैं, वे ज्ञेय हैं जगत में। तेरे ज्ञान में तो ज्ञेय होने के योग्य हैं। कोई तेरे विकल्प से और कोई क्रिया से

परिणमकर आवे बाहर, ऐसी वह चीज़ नहीं और तू ऐसा नहीं। समझ में आया? २९वीं (गाथा)।

ण पविट्ठो णाविट्ठो णाणी णेयेसु रूवमिव चक्खू।
जाणदि पस्सदि णियदं अक्खातीदो जगमसेसं॥२९॥

चक्षु-वर्णवत् आत्मा ज्ञेयों में प्रविष्ट-अप्रविष्ट नहीं।
जीव अतीन्द्रिय होकर जाने-देखे सकल जगत को ही॥२९॥

यह अन्वयार्थ का टीका में आ जाता है तुरन्त। **जिस प्रकार चक्षु रूपी द्रव्यों को स्वप्रदेशों के द्वारा...** क्या कहते हैं? चक्षु अपने प्रदेश क्षेत्र द्वारा अपने भाव से। जानने का प्रकाश अपने प्रदेशों द्वारा **अस्पर्श करता हुआ...** अर्थात् रूपी पदार्थ को आँख अस्पर्शती होने से... आँख के प्रदेश तो यहाँ हैं जानने के यह। और अग्नि को स्पर्शे बिना आँख जानती है। **स्वप्रदेशों के द्वारा अस्पर्श करता हुआ अप्रविष्ट रहकर...** वह रूपी को आँख जानते हुए रूपी में प्रवेश किये बिना **(जानता-देखता है) तथा ज्ञेय आकारों को आत्मसात् (निजरूप) करता हुआ अप्रविष्ट न रहकर जानता-देखता है;...** आँख, हों आँख। अभी आँख का दृष्टान्त देते हैं। आँख उसे अस्पर्शकर अपने प्रदेश से आगे गये बिना उसे जानती है। इसलिए अस्पर्श है ऐसा। परन्तु ज्ञेयाकारों को आत्मसात् करता हुआ... जैसा ज्ञेयों का सामने स्वभाव है, वैसा ज्ञान में होता है, इसलिए जानता है अपनेरूप करता हुआ अप्रविष्ट नहीं रहकर... अर्थात् प्रवेश भी करता है, ऐसा भी एक व्यवहार से कहने में आता है। क्योंकि ज्ञाननेत्र का स्वभाव जैसा है, वैसा जाना। तो जो है, उस सम्बन्धी का नेत्र में ज्ञान हुआ न? उस सम्बन्धी का। इस अपेक्षा से मानो वह नेत्र उसमें प्रवेश करता है, ऐसा कहा जाता है। अप्रविष्ट, वह अस्पर्श बिना और प्रविष्ट—उस सम्बन्धी का ज्ञान है, इसलिए प्रवेश करता है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। समझ में आया?

उसी प्रकार... यह आँख का दृष्टान्त दिया। **आत्मा भी, इन्द्रियातीतता के कारण...** यहाँ सर्वज्ञ की बात है न! सर्वज्ञ की बात सिद्ध करते हैं। **'सव्वण्हू'** स्वयंभू हुए हैं, अपने से जो सर्वज्ञपद प्राप्त अपने कारण से प्रगट किया, उसका क्या स्वरूप है, यह वर्णन चलता है। उसी प्रकार **आत्मा भी, इन्द्रियातीतता के...** इन्द्रिय से अतीत हो गये हैं,

अतीन्द्रिय हो गये हैं। **प्राप्यकारिता की विचारगोचरता से दूर होता हुआ... प्राप्यकारिता=ज्ञेय विषयों को स्पर्श करके ही कार्य कर सकना—जान सकना।** ऐसा है नहीं। वरना तो चक्षु को रूप प्राप्यकारी है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? प्राप्यकारी अर्थात् क्या? ऐसा सामने हो न। वे शब्दादिक न हों, आगे हों प्राप्त। इसलिए मात्र ऐसे नजदीक हैं और इतना ऐसे (बतलाना है)। नजर की आँख से। चक्षु को प्राप्यकारि कहा है, उसका अर्थ इतना कि उसे स्पर्शे बिना सामने चीज़ है, उसे जानता है।

यहाँ तो कहते हैं कि **इन्द्रियातीतता के कारण प्राप्यकारिता की विचारगोचरता से...** उसकी यहाँ बात ही नहीं कि यह आया इसलिए जाने, ऐसा है नहीं। यह ज्ञेय यहाँ आये इसलिए जाने (ऐसे) विचार के तर्क का यहाँ काम ही नहीं। वह **दूर होता हुआ ज्ञेयभूत समस्त वस्तुओं को...** वह ज्ञेयभूत समस्त वस्तुओं को **स्वप्रदेशों से अस्पर्श करता है,...** भाषा, ओहोहो! क्षेत्र को समाहित किया। भाव तो अपना है, ज्ञान अपना ज्ञान। अब ज्ञान में स्वप्रदेश अपने, ऐसा क्षेत्र है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! स्वयं अन्दर असंख्यप्रदेशी है जो ज्ञान, उन असंख्य प्रदेश में स्वप्रदेश वे अपने हैं। उन स्वप्रदेशों को छोड़े बिना **स्वप्रदेशों से अस्पर्श...** ज्ञेयों को अपने असंख्यप्रदेश से अस्पर्शता... दूसरे के प्रदेशों को, उसके क्षेत्र को, उसके भाव को स्वप्रदेश से अस्पर्शता हुआ। ज्ञान अपने क्षेत्र में रहा है, ऐसा कहते हैं। स्वक्षेत्र में रहा है। ओहोहो! स्वयं ज्ञान, आत्मा है असंख्यप्रदेशी, उसमें ज्ञान है, इसलिए ज्ञान का स्वप्रदेश अपने... उस स्वप्रदेश से ज्ञेय को जानते हुए स्पर्शे बिना स्वप्रदेश से, है न? अस्पर्शता हुआ। भगवान आत्मा असंख्य प्रदेश में ज्ञान व्याप्त है। भले सर्वज्ञ की पर्याय एक समय की है, परन्तु व्याप्त है असंख्य प्रदेश में। समझ में आया?

यह द्रव्य है, यह सिद्ध किया। अब उसके असंख्य प्रदेश हैं। प्रदेश इतनी सामान्य बात ली, परन्तु वह प्रदेश उसका क्षेत्र है। उन प्रदेशों में गुण हैं, वे असंख्य प्रदेशी व्याप्त हैं त्रिकाल। और उसकी वर्तमान ज्ञानपर्याय व्यापी है असंख्य प्रदेश में। वह प्रदेश को छोड़कर उसे ऐसे स्पर्शती है, ऐसा है नहीं। प्रदेशों में रहकर उसे जानता है। वह प्रदेश छोड़े बिना (अर्थात्) अस्पर्शकर। प्रदेशों में रहा हुआ **स्वप्रदेशों से अस्पर्श करता है, इसलिए अप्रविष्ट रहकर...** ज्ञेयों में अपने प्रदेश से स्पर्शता नहीं। अप्रविष्ट रहकर उसे जानता है। थोड़ा डाला है इकट्ठा, देखा! समझ में आया?

दर्पण नहीं... अपने क्षेत्र में रहकर ज्ञान जानता है, अपने प्रदेश से ज्ञेयों को स्पर्शता नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा का ज्ञान स्वक्षेत्र में है, उस स्वक्षेत्र से वह परज्ञेयों को स्पर्शे बिना जानता है। समझ में आया? प्रवचनसार के सूक्ष्म न्याय हैं। ऊपर-ऊपर से ऐसा का ऐसा वाँच जाये, ऐसा नहीं, सूक्ष्म बात है। आहाहा! वे कहे, आत्मा किसे कहना? हिले-चले वह आत्मा। स्थावर स्थिर हो, वह स्थावर, त्रस हिले-चले, वह आत्मा, लो! ऐई! न्यालभाई! तुम सीखे थे न पहले ऐसा? यह स्थावर जीव किसे कहना? स्थिर रहे, वह आत्मा स्थावर। और त्रस किसे कहना? कि हिले-चले वह त्रस। यह आत्मा की व्याख्या ही नहीं। तेरी (व्याख्या) खोटी है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! हिले-चले, वह त्रस और स्थिर रहे, वह स्थावर। सीधी बात है या नहीं? ऐसा नहीं है। आत्मा तो उसे कहते हैं कि जो अनन्त सर्वज्ञस्वभाव आदि से भरपूर तत्त्व और उसकी पर्याय में पूर्णता प्रगटता हो, उसे आत्मा कहा जाता है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानतत्त्व अधिकार है न! आत्मा अपने असंख्य प्रदेश में ज्ञान व्याप्त है, उन असंख्यप्रदेश से पर को जानते हुए अस्पर्श रहकर जानता है, पर को स्पर्शकर जानता नहीं। समझ में आया?

भगवान का ज्ञान तो नारकी के दु:ख को जानता है। नहीं जानता? केवलज्ञानी के अनन्त आनन्द को जानता है। पर (केवली) पर की बात है, हों! अपने को तो अपने में है असंख्यप्रदेश में। केवली परमात्मा हैं अनन्त, उन्हें अपने असंख्य प्रदेश में रहा हुआ ज्ञान, स्वप्रदेश को छोड़े बिना और स्वप्रदेश से पर को स्पर्शे बिना केवली के अनन्त आनन्द को स्पर्शे बिना ज्ञान जानता है। और नारकी के अनन्त दु:ख को केवलज्ञान अपने प्रदेश से अस्पर्शकर जानता है। सातवें नरक के दु:ख, निगोद की हीन दशा, हीन दशा। अक्षर का अनन्तवाँ भाग हीन दशा और आकुलता का पार नहीं होता, उसे भी यह ज्ञान अपने स्वप्रदेश से अस्पर्शकर उसे जानता है। आहाहा! समझ में आया? इन सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं हो सकती। परमेश्वर जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे, उन्होंने यह कहा और इस प्रकार से है और इस न्याय से इसे बैठ सके, ऐसी बात है। समझ में आया?

स्वप्रदेशों से अस्पर्श करता है, इसलिए अप्रविष्ट रहकर (जानता-देखता है)...

एक बात सिद्ध की निश्चय की। **तथा शक्तिवैचित्र्य के कारण...** ऐसा कोई ज्ञान का स्वभाव विचित्र प्रकार है कि **वस्तु में वर्तते समस्त ज्ञेयाकारों को मानों...** अपनी शक्ति विचित्र के कारण अपनी, सामने वस्तु में वर्तते समस्त ज्ञेयाकारों को जैसे हैं, उसी प्रकार से एक समय में पूरा जाने। **ज्ञेयाकारों को मानों मूल में से उखाड़कर ग्रास कर लेने से अप्रविष्ट न रहकर...** पूरे ज्ञेय को मूल में से उखेड़कर एक समय में ग्रास कर गया ज्ञान। इसके अतिरिक्त (ज्ञान) बाकी अनन्त रहा। आहाहा! मुख बड़ा और ग्रास तो छोटा है। केवलज्ञान की पर्याय—सर्वज्ञ की पर्याय ज्ञेयों को एक समय में जाने जितने हैं उसे ग्रास कर गया, कवळ कर गया, ले लिया अन्दर। समझ में आया? आहाहा!

मूल में से उखाड़कर ग्रास कर लेने... मूल में से उखाड़कर। ज्ञेयपना जैसा है, उसे उतने प्रकार का यहाँ ज्ञान करके ज्ञेयपना उखड़ गया मानो अन्दर से। ज्ञान में आ गया अन्दर। समझ में आया? आहाहा! **ग्रास कर लेने से अप्रविष्ट न रहकर जानता-देखता है।** अर्थात् मानो अन्दर प्रवेश नहीं किया, ऐसा भी नहीं। क्योंकि जितने ज्ञेय हैं, उसी प्रकार का ज्ञान यहाँ अन्दर आ गया है। इसलिए इस अपेक्षा से पर में प्रवेश किया है, ऐसा कहा जाता है। उपचार से है। समझ में आया? टीका में स्पष्ट कहा है जयसेनाचार्य ने। व्यवहार को स्पर्शता हुआ। ऊपर पहले लिया। **'लोचनं कर्तृ रूपिद्रव्याणणि यद्यपि निश्चयेन न स्पृशति तथापि व्यवहारेण स्पृशतीति' 'यत्केवल-ज्ञानत्वपूर्वं विशिष्टभेदज्ञानं तेनोत्पन्नं यत्केवलज्ञानदर्शनद्वयं तेन जगतत्त्रयकालत्रयवर्ति-पदार्थोन्निश्चयेनास्पृशन्नापि...'** निश्चय से अस्पर्श है। संस्कृत। व्यवहार से स्पर्श कहा जाता है। उसे उस सम्बन्धी का ज्ञान होता है इसलिए (ऐसा कहा जाता है)। देखो! यह स्याद्वाद की विचित्र पद्धति! उसका यह स्वभाव है, इस प्रकार से बात करते हैं, हों! मानो सब ग्रास कर गया। लोकालोक (को) ज्ञान ग्रास कर गया। आहाहा! ज्ञान की पर्याय विराट हो गयी। वे कहते हैं न, कृष्ण ने मुख फाड़ा, उसमें विराट देखा सब। वह यह केवलज्ञानी पर्याय प्रगट हुई, उसमें लोकालोक विराट देखा। समझ में आया?

इस प्रकार इस विचित्र शक्तिवाले आत्मा के पदार्थों में अप्रवेश की भाँति प्रवेश भी सिद्ध होता है। व्यवहार से उसका ज्ञान हुआ न, इस अपेक्षा से सिद्ध होता है। भावार्थ। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ४, गुरुवार, दिनांक २६-०९-१९६८
गाथा - २९-३०-३१, प्रवचन - २४

ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन अधिकार। २९वीं गाथा का भावार्थ। **यद्यपि आँख अपने प्रदेशों से रूपी पदार्थों को स्पर्श नहीं करती इसलिए वह निश्चय से ज्ञेयों में अप्रविष्ट है...** यह सब विशेष क्यों कहते हैं? कि आत्मा की ज्ञानपर्याय पूर्ण प्राप्त हो, उसमें ज्ञेय जितने लोकालोक अनन्त हैं, उन्हें जानने की उसकी शक्ति—सामर्थ्य है। समझ में आया? एक समय की ज्ञान की पर्याय पूर्ण, एक समय इतना एक पर्याय एक गुण की एक पर्याय इतनी है कि जिसमें लोकालोक—तीन काल-तीन (लोक का) क्षेत्र सब, यह द्रव्य, गुण, पर्याय को जानने की ... अर्थात् लोकालोक ज्ञेय है, वह भी अस्ति है, ऐसा सिद्ध करते हैं और जितना अस्ति है, उतना यहाँ ज्ञान की पर्याय जानती है स्वयं के द्वारा, इतनी ज्ञान की एक पर्याय है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

आत्मा ज्ञानस्वभावी... यहाँ उसकी ज्ञान की एक समय की पर्याय इतनी प्रगट होती है कि जिसमें लोकालोक ज्ञात होता है। और तीन काल-तीन लोक तो एक ही समय में पर को स्पर्शे बिना अपने सामर्थ्य से वह जानती है। ऐसे ज्ञान में अनन्त-अनन्त आनन्द होता है। और उतने ज्ञान को प्रगट करने, उतना ही बड़ा साधन चाहिए चारित्र। समझ में आया? इतना सर्वज्ञपद आत्मा में जो प्रगट हो, एक समय की जो दशा, वह ज्ञान की पूरी अवस्था है। और उस एक समय की अवस्था में तीन काल-तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्याय-क्षेत्र-काल ज्ञात होते हैं। इसलिए यह अस्ति भी ऐसी सिद्ध करते हैं इतना बड़ा सब और एक ओर उसे एक समय की जानने की सामर्थ्य और इतनी स्वतन्त्र पर्याय (प्रगट हुई) तो उसके साथ अनन्त आनन्द भी साथ में है। और उसे प्रगट करने के कारणरूप चारित्र उसके प्रमाण में चारित्र का शुद्ध उपयोग कारण होता है। ऐसा जो केवलज्ञान और पूर्ण आनन्द प्रगट करना है, उसके साधनरूप से शुद्ध उपयोग का आचरण, उसके कारणरूप होता है। और उस शुद्ध उपयोग के कारणरूप से पहले दर्शन और ज्ञान होता है और उस दर्शन और ज्ञान के कारणरूप से इतना बड़ा द्रव्य उसके ध्येय में होता है। समझ में आया?

उसे आत्मा की पूर्ण दशा, भगवान आत्मा की पूर्ण दशा सर्वज्ञपद अर्थात् पूर्ण आनन्दपद और पूर्ण स्वभाव का अस्तित्व कितना? कि लोकालोक को जाने और वह सब अस्तिरूप है। है, उसे जाने न? तो वह भी अस्ति सिद्ध करते हैं सत्ता सब और यहाँ एक समय का अस्तित्व इतना सब जाने इतनी उसकी अस्तित्वशक्ति है। इतने ज्ञान को प्रगट करने के लिये यहाँ चारित्र कारण लिया है न? चारित्तं खलु धम्मो। चारित्र का फल यह लिया है। समझ में आया? ऐसे पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान को प्रगट करने का साधन चारित्र है। स्वरूप में शुद्ध उपयोगरूप से रमना, उसका साधारण साधन हो नहीं सकता। पुण्य के विकल्प या शुभभाव वे साधन नहीं हो सकते। क्योंकि इतना बड़ा सामर्थ्य जिसे प्रगट करना है, उसे द्रव्य के पूर्ण शुद्ध उपयोग का सामर्थ्य चारित्र का प्रगट हो, उसे केवलज्ञान होता है। समझ में आया? यह एक आत्मा का यह केवलज्ञान वर्णन करते हुए बहुत बातों का अस्तित्व सिद्ध करते हैं।

और वह इतना चारित्र जो है, वह चारित्र किस भूमिका में होता है? कि यह एक समय की ऐसी पर्याय, ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय का एक गुण, ऐसे अनन्त गुण का एक द्रव्य। ऐसे द्रव्य के ध्येय से सम्यग्दर्शन (होता है)। इतने के इतने द्रव्य को स्वीकार करने से सम्यग्दर्शन और ज्ञान प्रगट होता है। समझ में आया? इतना अस्तित्व जो बड़ा। यह तो एक समय की पर्याय का अस्तित्व, परन्तु वह तो बड़ा द्रव्य का अस्तित्व। समझ में आया? एक समय का द्रव्यस्वभाव... गये वे सोगनचन्दजी? समझ में आया? एक समय का द्रव्यस्वभाव इतना बड़ा कितना सामर्थ्यवाला कि जिसके ध्येय से सम्यक्त्व जैसा है, वैसी उसकी प्रतीति ज्ञान में भानसहित होती है। जिस प्रतीति का कारण द्रव्य, उस प्रतीति का सामर्थ्य कितना? समझ में आया? और उसके साथ हुआ ज्ञान का सामर्थ्य कितना? सारे पूर्ण द्रव्य को जिसने ज्ञेय करके जाना। समझ में आया? यह बात इस प्रकार से जैसी है, वैसी स्थापित करके इस बात का स्पष्टीकरण करते हैं। ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकती। समझ में आया? आहाहा!

इसलिए कहते हैं कि भगवान आत्मा, जिसकी एक पूर्ण पर्याय में यह लोकालोक कितने! ऐसे-ऐसे अनन्त केवलज्ञानी जिसके एक समय के ज्ञान में ज्ञात हो। वह भी यह

है इसलिए ज्ञात हो, ऐसा नहीं। वह तो स्वयं के अस्तित्व में एक समय की अवस्था का स्व का स्वभाव इतना है। समझ में आया? वहाँ से शुरु किया, देखो न! चारित्तं खलु धम्मो। और उसकी प्रधानता, दर्शन-ज्ञानप्रधान आचरण है, उसमें वह प्राप्त होता है। आहाहा! और उस दर्शन, ज्ञान का कारण द्रव्यस्वभाव, विशुद्ध सामान्य दर्शन-ज्ञानस्वरूप त्रिकाल। ऐसी अन्तर में स्वभाव सन्मुख की प्रतीति और उसका ज्ञान, उस पूर्वक स्वरूप की रमणता के शुद्ध उपयोग का चारित्र, उसके फलरूप से यह पूर्ण आनन्द और सर्वज्ञपद होता है। वह सर्वज्ञ की पर्याय कितनी बड़ी, उसके लिये यह सब वर्णन है। समझ में आया?

कहते हैं कि वह सर्वज्ञ की पर्याय लोकालोक को जाने। और मानो ज्ञान लोकालोक में प्रविष्ट न हुआ हो? ऐसा भी व्यवहार से कहा जाता है। इसलिए ऐसा दृष्टान्त दिया है कि **यद्यपि आँख....** आँख का दृष्टान्त दिया है। **आँख अपने प्रदेशों से...** अर्थात् अपने क्षेत्र द्वारा, अपने क्षेत्र में रहकर आँख **रूपी पदार्थों को स्पर्श नहीं करती...** वह अग्नि को, बर्फ को और उस बाह्य चीज़ को किसी रूपी को वह आँख स्पर्शती नहीं। **वह निश्चय से ज्ञेयों में अप्रविष्ट है...** आँख यहाँ अग्नि को और बर्फ को जानते हुए कहीं बर्फ और अग्नि में प्रवेश नहीं करती। **तथापि वह रूपी पदार्थों को जानती-देखती है, इसलिए व्यवहार से यह कहा जाता है कि 'मेरी आँख बहुत से पदार्थों में जा पहुँचती है।'** कहा जाता है या नहीं? कि मेरी आँख ऐसे सर्वत्र पहुँचती है, ऐसा। पहुँचती है, इसका अर्थ जानती है। परन्तु यहाँ पहुँचती है, ऐसा कहा जाता है।

इसी प्रकार यद्यपि केवलज्ञान प्राप्त आत्मा... आहाहा! सर्वज्ञता प्राप्त भगवान, जिसे सर्वज्ञदशा प्राप्त हुई है, ऐसा आत्मा। समझ में आया? और परमात्मा ऐसे होते हैं, सर्वज्ञ ऐसे होते हैं। इसके अतिरिक्त की बातें करते हों, वे सब गप्प और कल्पित हैं। समझ में आया? क्योंकि भगवान आत्मा ही ऐसा ज्ञान और आनन्द के बेहद स्वभाव से भरपूर वस्तु, उसे अन्तर आश्रय से प्रगट हुई शुद्ध उपयोग द्वारा जो केवल(ज्ञान) दशा, वह केवलज्ञान, कहते हैं कि केवलज्ञान प्राप्त आत्मा—जिसकी दशा में सर्वज्ञपद पर्याय में प्राप्त है, ऐसा आत्मा **अपने प्रदेशों के द्वारा...** अपने क्षेत्र जो असंख्यप्रदेश में केवलज्ञान

व्याप्त है, उन प्रदेशों द्वारा **ज्ञेय पदार्थों को स्पर्श नहीं करता,...** लोकालोक के क्षेत्र-काल को और द्रव्य-गुण-पर्याय को स्पर्शता नहीं। आँख की भाँति।

नहीं करता, इसलिए वह निश्चय से तो ज्ञेयों में अप्रविष्ट है... वास्तव में तो ज्ञात होनेयोग्य पदार्थ में केवलज्ञान की पर्याय प्रविष्ट हुई है नहीं, प्रविष्ट नहीं। ओहोहो! समझ में आया? **तथापि ज्ञायक-दर्शक शक्ति की किसी परम अद्‌भुत विचित्रता के कारण...** पाठ में दो शब्द हैं न, इसलिए फिर भावार्थ में कहा। पण्डित जयचन्द्रजी ने इतनी न्यायपूर्ण बात की। इसलिए देखा यहाँ। पण्डित जयचन्द्र नहीं, परन्तु हेमराज... हेमराज पाण्डे। ज्ञायकदर्शक शक्ति। भगवान आत्मा की जानने की शक्ति और देखने की शक्ति। यहाँ शक्ति अर्थात् पर्याय, हों! प्रगट। वस्तु चैतन्यपुंज प्रभु, उसकी वर्तमान प्रगट पर्याय जो हुई, **ज्ञायक-दर्शक शक्ति की किसी परम अद्‌भुत विचित्रता के कारण (निश्चय से दूर रहकर भी)...** जगत के ज्ञेय—तीन काल-तीन लोक के ज्ञान से दूर रहे होने पर भी **वह समस्त ज्ञेयाकारों को जानता-देखता है,...** समझ में आया? जितने ज्ञात होनेयोग्य पदार्थ हैं, उन सबकी विशेषता सहित सामान्य सब जानते हैं।

व्यवहार से यह कहा जाता है कि 'आत्मा सर्वद्रव्य-पर्यायों में प्रविष्ट हो जाता है।' जैसे आँख पहुँचती है, वैसे ज्ञान-दर्शन मानो सर्वत्र पहुँचे हैं, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। है तो अपने ही प्रदेश क्षेत्र में रही हुई ज्ञान की अवस्था। अपने क्षेत्र में रही हुई असंख्य प्रदेश में ज्ञान और दर्शन की अवस्था, वह लोकालोक को जानती है, इस अपेक्षा से मानो पहुँचती है, ऐसा कहने में आता है। **इस प्रकार व्यवहार से ज्ञेय पदार्थों में आत्मा का प्रवेश...** उपचार से **सिद्ध होता है।** व्यवहार अर्थात् उपचार। यथार्थरूप से तो है नहीं। ओहो! अर्थात् कि जानता है, ऐसा।

★ ★ ★

गाथा - ३०

अब, इस प्रकार ज्ञान पदार्थों में प्रवृत्त होता है:- देखो! यह सर्वज्ञ का ज्ञान पदार्थों में इस प्रकार व्यवहार से वर्तता है **इस प्रकार (दृष्टान्तपूर्वक) यह स्पष्ट करते हैं...** यह दृष्टान्त तो... समझ में आया? '**अक्खातीदो**' था न? उसमें '**रुवम् चकखु**' साधारण दृष्टान्त दिया था। अब दूध का और नीलमणि का दृष्टान्त देते हैं। ....

रयणमिह इन्दणीलं दुद्धज्झसियं जहा सभासाए।
अभिभूय तं पि दुद्धं वट्टदि तह णाणमट्ठेसु॥३०॥

यथा दूध में इन्द्रनील-मणि व्याप्त स्वकीय प्रभा द्वारा।
वैसे ही यह ज्ञान, ज्ञेय में व्याप्त स्वकीय प्रभा द्वारा॥३०॥

ओहोहो! अर्थ सिद्धि करते हैं, ज्ञान का सामर्थ्य सिद्ध करते हैं। दोनों को छूते नहीं तथापि जानते हैं, इस अपेक्षा से प्रवेश करते हैं, ऐसा भी व्यवहार से कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

टीका :- जैसे दूध में पड़ा हुआ इन्द्रनील रत्न... रत्न है न ऊँचा? बहुत ऊँचा रत्न होता है न! वह **दूध में पड़ा हुआ इन्द्रनील रत्न अपने प्रभासमूह से...** मानो कि रत्न है उसका प्रवाह। वास्तव में तो रत्न तो रत्न के क्षेत्र में ही है, परन्तु उसकी नीली झांईं पड़ती है न, वह है पुद्गल दूसरे उनसे। परन्तु उसे इकट्ठा गिनकर **अपने प्रभासमूह से दूध में व्याप्त होकर वर्तता हुआ दिखाई देता है,...** उस दूध में इन्द्रनील पड़ा हो तो पूरा दूध नीला हो, ऐसा दिखता है। दूध नीला, ऐसा दिखता है। समझ में आया?

उसी प्रकार... उसमें आता है न? अनुभवप्रकाश में दृष्टान्त आता है न? मणि का—नीलमणि का आता है। एक व्यक्ति था, वह बहुत मणिरत्न के ढ़ेर बहुत थे वहाँ रहता था। परन्तु उसे कुछ कीमत नहीं थी। इसलिए फिर एकाध नीलमणि उसके कन्दोरा में रह गयी कन्दोरा में। ... उसमें वह नहाता था, उसमें पानी नीला हो गया। उसमें उस झबेरी ने देखा। झबेरी कहे, यह क्या? गरीब व्यक्ति नहाता है न! पूरा पानी नीला हो गया। पश्चात् .... यह रत्न मुझे देना है? मेरी हजार स्वर्ण की मोहर पड़ी है।

हें...! इसकी कीमत यह! है यह। ... हजार अलमारी भरी है सोने की, वह (ले और यह) मुझे दे, ऐसी कीमती चीज़ है। हें...! मैं तो यों ही बाँधकर यहाँ लाया था साधारण रीति से। मैं रहता था वहाँ तो बड़े ढ़ेर थे।

इसी प्रकार आत्मा की एक समय की पर्याय नीलमणि रत्न जैसी लोकालोक को मानो प्रभा करे, ऐसी उसकी शक्ति है। ऐसी-ऐसी अनन्त नीलमणि की पर्यायों का रत्न का ढ़ेर भगवान है। समझ में आया? कीमत नहीं होती, कीमत नहीं होती। इसलिए कहते हैं कि भाई! **इन्द्रनील रत्न अपने प्रभासमूह से दूध में व्याप्त होकर वर्तता हुआ दिखाई देता है, उसी प्रकार संवेदन (ज्ञान) भी...** यहाँ संवेदन भाषा ज्ञान को प्रयोग की है। इसलिए यह प्रयोग करते हैं न भाई रतनचन्दजी। संवेदन ज्ञान को कहा जाता है, अनुभव ही हो, ऐसा नहीं। अनुभव अर्थात् क्या? वह यहाँ ज्ञान है न! यह रहा, देखो। कहने में क्या बाधा है कि ज्ञान है। इसलिए इन्होंने अर्थ डाला है। समझ में आया? यह तो संवेदन ज्ञान के ही अर्थ में है, अभी यहाँ। परन्तु वह ज्ञान के अर्थ में होने पर भी जहाँ अनुभव है, वहाँ ज्ञान के वेदन और आनन्दसहित का अनुभव, उसे स्वसंवेदन कहते हैं। स्वसंवेदन है न, वह स्व और संवेदन अर्थात् स्व का ज्ञान। ऐसा वहाँ अर्थ किया है भाई ने। स्वसंवेदन, स्व का संवेदन। उस स्व के ज्ञान का अर्थ भाई! ज्ञान को स्पर्शित ज्ञान, रागरहित होकर ज्ञान को स्पर्शित हुआ तब साथ में आनन्दसहित का स्पर्शित हुआ तब उसे स्ववेदन कहा जाता है। अकेला ज्ञान वह ज्ञान। तब तो कहते हैं कि ज्ञान अकेला आत्मा, ऐसा नहीं। वह तो आनन्द आदि सहित आत्मा है, ऐसा तो यहाँ सिद्ध करते हैं। अकेला ज्ञान का ज्ञान हो तो आत्मा तो अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति का पिण्ड है। तो अकेला यदि ज्ञान प्रगटे, तब तो उसे द्रव्य की दृष्टि और द्रव्य का अंश प्रगट नहीं हुआ। अमरचन्दभाई! इसलिए संवेदन जहाँ स्वसंवेदन आता है, उसमें पूरा आत्मा जो अनन्त गुण का पिण्ड है, उसकी अन्तर दृष्टि होने पर वह आनन्दसहित अनन्त गुण के अंश निर्मल प्रगट हुए, उसके वेदन को यहाँ स्वसंवेदन कहा जाता है। समझ में आया? शब्द का अर्थ करने में विवाद, तकरार। अरे भगवान! क्या है?

पूरी वस्तु है... जब अनादि से राग और द्वेष और विकार का वेदन था, वह तो दु:खरूप वेदन था। वह तो वस्तु को आड़ मारकर अकेले विकार का वेदन था। तब

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु अनन्त गुण का पिण्ड है, ऐसी जहाँ अन्तर्दृष्टि हुई, तब वह वेदन विकार का था, उससे मुड़ता है या नहीं कुछ? समझ में आया?

यह भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप आनन्दमूर्ति की दृष्टि होने पर उसका आनन्द और ज्ञान और शान्ति अर्थात् स्थिरता और स्वरूपाचरण इत्यादि अनन्त वीर्य, उन सब अंशों की निर्मलता का वेदन होता है, तब उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। क्योंकि सम्यक् पूरी चीज़ की प्रतीति हुई और पूरी चीज़ का ज्ञान हुआ। तो पूरी चीज़ में तो अनन्त गुण हैं। एक ही ज्ञानगुण की प्रतीति, ऐसा यहाँ नहीं। समझ में आया? अरे! भाव ऐसे और लोगों को अन्दर तैयारी नहीं होती, इसलिए लोग बेचारे कहीं के कहीं भटकते हैं। मुश्किल से मनुष्यपना मिला है चौरासी के अवतार में। उसमें बहुत (वर्ष) तो चले गये न! भगवानजीभाई! ४०, ५०-५०, ६० वर्ष तो चले गये। अरे! इसे करने का जो है, वह न करे और आड़ मारकर अन्यत्र जाये, बापू! किनारा नहीं आयेगा भाई! इस दुनिया में तेरा रहना, अज्ञान में, दु:ख में सहन होगा नहीं भाई! यहाँ कहते हैं कि तू विपरीतता क्या करता है? बापू! यहाँ जिसे ज्ञान की इतनी पर्याय कही, उसे भले हमने यहाँ संवेदन कहा। समझ में आया? परन्तु इससे अकेला ही ज्ञान है, ऐसा नहीं। क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : राग-द्वेष रहित का....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग-द्वेष बिना का ज्ञान, उसमें अनन्त गुणों का ज्ञान और द्रव्य का ज्ञान आ गया।

मुमुक्षु : वह ज्ञान अपना....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने अनन्त गुण और अनन्त आनन्द का आ गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ज्ञान कहे वहाँ स्वसंवेदन कहने से समकिती को आनन्द का वेदन आवे तो उसे मान्य नहीं वापस। वह तो श्रद्धा हो। इसलिए समकित को सरल करना... यह तो महँगा हो गया। अकेला जानपना। साथ में आनन्द लेने जाये तो आनन्द न मिले और समकिती तो नाम धराना है। व्यवहार की ....

दूसरे प्रकार से कहें, आत्मा द्रव्यस्वरूप जो अखण्ड अभेद है, उसकी दृष्टि होने

पर जितने अभेद गुण हैं, उतने सब गुणों में वेदन हो अन्दर, उसे निश्चय कहते हैं। समझ में आया? अभी क्या कहते हैं, उसे पकड़ने में देरी लगे। यहाँ तो यहाँ संवेदन शब्द आया न, वे कितने ही लोग कहते हैं कि संवेदन अर्थात् ज्ञान, स्वसंवेदन अर्थात् ज्ञान का नाम स्वसंवेदन, अनुभव का नाम ज्ञान। ज्ञान में फिर आनन्द का वेदन आया, यह बात नहीं, ऐसा। ...भाई! क्योंकि जिस भूमिका में बैठा, वहाँ आनन्द है नहीं उसे और समकिती मनवाना है। समझ में आया? उस वस्तु की दृष्टि हुई नहीं, इसलिए आनन्द है नहीं, शान्ति है नहीं, अनन्त गुणों की निर्मलता का वेदन जो चाहिए, वह है नहीं, इसलिए समकिती है नहीं। परन्तु अनेकान्त को माननेवाले हम समकिती हैं। समझ में आया? परन्तु अनेकान्त कहाँ आया तेरा इसमें? अनेक अन्त ऐसे जो अनन्त धर्मस्वभाव आत्मा में, ऐसे अनेक अन्त ऐसा जो द्रव्यस्वरूप, वह स्वयं से है, पर से नहीं ऐसे अनन्त गुण, उस ओर की एकता होने पर अनन्त गुणों का व्यक्तपना, प्रगटपना हो, तब तो उसे द्रव्य की दृष्टि का, द्रव्य का ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! क्या हो? जगत लुटता है अनादि से। अरेरे! कहाँ जायेगा? भाई! तुझे क्या करना है?

अभी तो ऐसी चीज़ है, उसे मानना कठिन पड़ता है। समझ में आया? और ऐसी श्रद्धा में जो ऐसा... उस श्रद्धासहित में वर्तन, वह चारित्र और उसके फल में मोक्ष। एकदम बहुत हल्का बना दिया यहाँ। भाई! समझ में आया इसमें? आहाहा! मात्र श्रद्धा कि आत्मा है इतना। परन्तु वह श्रद्धा किसे कहना? श्रद्धा अन्धी हुई? वस्तु पूरी अनन्त गुण का पिण्ड चैतन्यद्रव्य ज्ञायकमूर्ति को स्पर्शकर जो प्रतीति और ज्ञान हुआ, अनन्त गुणों का वेदन प्रगट हुआ, तब उसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और अनुभव कहा जाता है। वह यहाँ वेदन में अकेला ज्ञान नाम दिया, इसलिए वह सब अनुभव को ही अकेला ज्ञान कहना, यह बात सच्ची नहीं है। अरे! भगवान! समझ में आया?

यहाँ तो केवलज्ञान को सिद्ध करना है न! तो केवलज्ञान को सिद्ध करना है तो साथ ही आनन्द नहीं उसमें? अकेला जानता है पर को, इतना है वहाँ? यहाँ तो केवलज्ञान की एक पर्याय पूर्ण इतनी... आनन्द में कुछ जानना नहीं रहता। समझ में आया? समकित में कुछ जानना नहीं, समकित तो प्रतीतिरूप है। आनन्द, शान्ति के वेदनरूप है आनन्द और यह ज्ञान की पर्याय की इतनी सामर्थ्य है कि अपने द्रव्य-गुण-

पर्याय और तीन काल के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, इसलिए ज्ञान की प्रधानता से यह बात की जाती है। समझ में आया? मूल तो आत्मा का पूरा रूप पर्याय में प्रगटे, उसे यहाँ सर्वज्ञ कहा जाता है। तब वह पर्याय से पूरा हुआ। इतना आत्मा, उसे आत्मा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

आँख का दृष्टान्त कहकर कहा। वह नीलमणि का दृष्टान्त। **उसी प्रकार संवेदन (ज्ञान) भी आत्मा से अभिन्न होने से...** भगवान आत्मा अपने स्वरूप की शुद्धता के रमणता के फलरूप से जो सर्वज्ञपद, जो आनन्द प्रगट हुआ, सर्वज्ञपद, वह ज्ञान आत्मा से तो अभिन्न है। कहीं आत्मा से ज्ञान भिन्न नहीं। जैसे आँख से आँख का प्रकाश है, वह कहीं भिन्न नहीं। **कर्ता-अंश से आत्मता को प्राप्त होता हुआ...** क्या कहते हैं? वह **(ज्ञान) भी आत्मा से अभिन्न होने से कर्ता-अंश से आत्मता को...** ज्ञान कर्ता होकर आत्मापने को। नीचे (फुटनोट में) है— **प्रमाणदृष्टि से संवेदन अर्थात् ज्ञान कहने पर अनन्त गुणपर्यायों का पिण्ड समझ में आता है।** देखो! उसे यहाँ संवेदन ज्ञान कहा है। **प्रमाणदृष्टि से संवेदन अर्थात् ज्ञान कहने पर अनन्त गुणपर्यायों का पिण्ड समझ में आता है।** इतना। अब यहाँ तो वह संवेदन, इतना कहा, तथापि सब पूरा इकट्ठा है, नहीं—ऐसा नहीं।

उसमें यदि कर्ता, करण आदि अंश किये जायें तो कर्ता—अंश वह अखण्ड आत्मद्रव्य है... अखण्ड आत्मद्रव्य है, ऐसा कहा है। वास्तव में तो कर्ता द्रव्य का अंश परिणमता है, वह कर्ता वर्तमान पर्याय से होता है। परन्तु पूरा कर्ता द्रव्य को सिद्ध किया है। कर्तापना जो कारकपना है, वह तो वर्तमान कर्तापने में पर्याय का परिणमन है, वह कर्ता का अंश है। समझ में आया? परन्तु यहाँ द्रव्य पूरा है कर्ता, पूरा द्रव्य कर्ता है न वस्तु। अनन्त गुण की पर्याय के पिण्ड का कर्ता पूरा द्रव्य है, इसलिए यहाँ ज्ञान को गिनकर **यदि कर्ता, करण आदि अंश किये जायें तो कर्ता—अंश वह अखण्ड आत्मद्रव्य है...** अर्थात् अखण्ड आत्मद्रव्य वह कर्ता है **और करण-अंश वह ज्ञानगुण है।** वह ज्ञानगुण द्वारा, कर्ता आत्मा ज्ञानगुण द्वारा लोकालोक को जानता है। समझ में आया? ज्ञानगुण है। लो इतना। देखो, संवेदन की व्याख्या में यह आया। समझ में आया? वरना यहाँ तो संवेदन अर्थात् ज्ञान अकेला कहा। परन्तु यहाँ संवेदन वापस आयेगा न सामने?

'नहीं होय अर्थ ज्ञान में तो ज्ञान सौ-गत भी नहीं।' यह पूरा इसमें आता है, भाई! समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा ऐसे ज्ञान की पर्याय जो सर्वज्ञपर्याय प्रगट हुई, वह **कर्ता-अंश से...** कहो तो आत्मा कर्ता है और करण अर्थात् साधन ज्ञान द्वारा, वह पर को जानता है। ज्ञान द्वारा अर्थात् ज्ञान करण हुआ, करण-साधन हुआ। समझ में आया? **कर्ता-अंश से आत्मता को प्राप्त होता हुआ...** कौन? वह पूरा ज्ञान। और **ज्ञानरूप करण-अंश के द्वारा...** वहाँ अकेला ज्ञान भिन्न किया है वापस। कर्ता का संवेदन लिया है पूरा। **ज्ञानरूप करण-अंश के द्वारा कारणभूत पदार्थों के कार्यभूत समस्त ज्ञेयाकारों में व्याप्त हुआ वर्तता है,...** क्या कहते हैं? कारणभूत की व्याख्या की। जगत के सब पदार्थ कारण हैं और उनके द्रव्य-गुण-पर्यायें उस द्रव्य के उस कारण के वे कार्य हैं। क्या कहा, समझ में आया?

आत्मा के अतिरिक्त लोकालोक जो ज्ञान में ज्ञात होता है, वे सब पदार्थ हैं, वे कारण सामान्य। और कारण का कार्य उनके द्रव्य-गुण-पर्याय के कार्य। समझ में आया? वह **कारणभूत पदार्थों के कार्यभूत समस्त ज्ञेयाकारों...** स्व-पर। उसमें **व्याप्त हुआ वर्तता है,...** ऐसा कहा जाता है। **इसलिए कार्य में कारण का (ज्ञेयाकारों में पदार्थों का) उपचार करके...** वे ज्ञेयाकार यहाँ ज्ञात होते हैं न? उसमें पदार्थ, ज्ञेयाकारों में पदार्थों का उपचार करके '**ज्ञान पदार्थों में व्याप्त होकर वर्तता है।**' ज्ञान मानो पर में व्यापकर वर्तता है, **यह कहने में विरोध नहीं आता।** व्यवहार से कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी गाथायें करके भी सन्तों ने... यह वस्तु की सत्ता में असितत्व का इतना सामर्थ्य आदि, तो पूरे द्रव्य का कितना सामर्थ्य! समझ में आया? और वह भी उसके जानने में आवे, ऐसे सामने अनन्त अस्तित्ववाले—सत्तावाले पदार्थ हैं। वह सब निर्णय कराकर यह पदार्थ का सामर्थ्य वर्णन करते हैं। समझ में आया? **उपचार करके ज्ञान पदार्थों में व्याप्त होकर वर्तता है।** है न **(ज्ञेयाकारों में पदार्थों का) उपचार करके...** ऐसा। **यह कहने में विरोध नहीं आता कि 'ज्ञान पदार्थों में व्याप्त होकर वर्तता है।'**

भावार्थ :- जैसे दूध से भरे हुए पात्र में पड़ा हुआ इन्द्रनील रत्न (नीलमणि)

सारे दूध को (अपनी प्रभा से नीलवर्ण कर देता है,... अपनी प्रभा। है तो नीलमणि नील के क्षेत्र में और जो प्रभा है न, वह तो वास्तव में दूसरे परमाणु के स्कन्ध हैं। परन्तु उन्हें अभेद गिनकर यहाँ रत्न नील की प्रभा है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? वह तो अनन्त परमाणुओं का स्कन्ध है न! यहाँ दृष्टान्त देना है ज्ञान में। अब उसे दृष्टान्त देकर ऐसा कहते हैं कि भाई! ज्ञानप्रभा द्वारा, प्रकाश द्वारा सबको ऐसे जानता है। जैसे रत्न जो है, उसकी प्रभा द्वारा सब दूध को नीला कर डालता है।

इसी प्रकार ज्ञेयों से भरे हुए विश्व में... जैसे उस दूध में नीलमणि पड़ा न? इसी प्रकार पूरे ज्ञेय—लोकालोक भरा हुआ है, उसमें भगवान आत्मा अन्दर है। **ज्ञेयों से भरे हुए विश्व में रहनेवाला आत्मा...** जैसे दूध में रहा हुआ नीलमणि रत्न अपनी प्रभा से मानो सबको नीला करता है। लोकालोक जगत, उसमें यह चैतन्य भगवान सर्वज्ञपर्याय जहाँ प्रगटी, (उस) लोकालोक के मध्य में रहा हुआ सबको प्रकाशित करता है और सबमें व्यापता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? वरना इतना सब है, वह प्रवेश ही है एक न्याय से। भगवान आत्मा ज्ञान में सब जानता है न! उसके जानने की पर्याय स्वयं की, उसमें जब पदार्थ का आरोप करके कहो तो ज्ञान पर में प्रविष्ट है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। यह तो वस्तु सिद्ध की है पूरी भिन्न और उससे जाननेवाला अत्यन्त भिन्न, भगवान परमात्मदशा को प्राप्त करे, वह अत्यन्त भिन्न है। परन्तु इस चीज़ का जितना स्वरूप है, वैसा जहाँ ज्ञान में आ जाता है, इससे ज्ञानाकार हुआ ज्ञान, उसमें वे पदार्थ निमित्त थे, वे पदार्थ मानो यहाँ आ गये अथवा ज्ञान पदार्थ में प्रविष्ट हुआ, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है।

आत्मा समस्त ज्ञेयों को... देखा! **(लोकालोक को) अपनी ज्ञानप्रभा के द्वारा प्रकाशित करता है अर्थात् जानता है, इसलिए व्यवहार से आत्मा का ज्ञान और आत्मा सर्वव्यापी कहलाता है।** आत्मा का ज्ञान और आत्मा दोनों। ऐसा। दोनों द्रव्य और गुण। यहाँ तो ज्ञान अर्थात् पर्याय है। समझ में आया? और आत्मा का ज्ञान और आत्मा सर्वव्यापी कहलाता है। इस अपेक्षा से। वे लोग कहते हैं कि सर्वव्यापी आत्मा हो जाता है। इस बात का झूठापन सिद्ध करने के लिये वास्तविक तत्त्व की स्थिति यह है, ऐसा वर्णन करते हैं। समझ में आया? **(यद्यपि निश्चय से वे अपने असंख्य प्रदेशों में ही**

रहते हैं, ज्ञेयों में प्रविष्ट नहीं होते)। कौन प्रविष्ट नहीं ? ज्ञान और आत्मा, ऐसा। दो लिये न दो ? ज्ञान और आत्मा ने पर को जानते हुए पर में प्रवेश किया नहीं। तब एक न्याय से मानो सबको जाना है ज्ञान और आत्मा ने, इसलिए सबमें व्याप्त है, ऐसा व्यवहार से, उपचार से कहा जाता है। समझ में आया ?

★ ★ ★

गाथा - ३१

अब, ऐसा व्यक्त करते हैं कि इस प्रकार पदार्थ ज्ञान में वर्तते हैं:- इस गाथा में भी ज्ञान शब्द से अनन्त गुण-पर्यायों का पिण्डरूप ज्ञातृद्रव्य समझना चाहिए। लो ! नीचे लिखा है।

जदि ते ण संति अट्ठा णाणे णाणं ण होदि सव्वगयं।

वह सर्वगत—सर्वगत करते हैं या नहीं ? उसे इस प्रकार से सर्वगत सिद्ध करते हैं कि व्यवहार से सर्वगत है। निश्चय से तो अपने प्रदेश में ही है। समझ में आया ? आहाहा !

जदि ते ण संति अट्ठा णाणे णाणं ण होदि सव्वगयं।
सव्वगयं वा णाणं कहं ण णाणट्ठिया अट्ठा ॥३१॥

ज्ञान में कोई पदार्थ नहीं ? ऐसा कहते हैं। वह ज्ञान पर में था। समझ में आया ? अब ज्ञान में पदार्थ आ गये। समझ में आया ? व्यवहार से ज्ञान पर में व्याप्त था, ऐसा कहा। अब पदार्थ ज्ञान में आ गये हैं, व्यवहार से ऐसा कहा जाता है। आहाहा !

यदि पदार्थ वर्ते न ज्ञान में, ज्ञान सर्वगत कैसे हो ?।
ज्ञान सर्वगत है तो फिर क्यों, अर्थ ज्ञान में नहिं वर्ते ?॥३१॥

इसकी टीका। अहो ! एक-एक गाथा रचकर कुन्दकुन्दाचार्य ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व कितना, ऐसा सिद्ध करते हैं और ऐसा होने पर भी सब ज्ञेय पदार्थ हैं, उन्हें भी जान लेता है, प्रवेश करता है और वे पदार्थ मानो यहाँ प्रगट करते हैं, ऐसा व्यवहार भी सिद्ध करते हैं। समझ में आया ?

यदि समस्त स्व-ज्ञेयाकारों के समर्पण द्वारा... स्व-ज्ञेयाकार। पूरी दुनिया के ज्ञेय के भाग विशेष सब। लोकालोक जितने हैं ज्ञेय—अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, उसके द्रव्य, उसके गुण, उसकी पर्याय, आकाश का द्रव्य, उसके गुण की पर्याय क्षेत्र से अमाप, काल व्यवहार से त्रिकाल, बाकी काल द्रव्य जो है असंख्य, उनके द्रव्य, गुण और पर्याय। वे सब **स्व-ज्ञेयाकारों के समर्पण द्वारा (ज्ञान में) अवतरित होते हुए समस्त पदार्थ ज्ञान में प्रतिभासित न हों तो वह ज्ञान सर्वगत नहीं माना जाता।** यहाँ वस्तु भगवान आत्मा ज्ञान की पर्याय में सब लोकालोक जाना, इससे मानो ज्ञान लोकालोक में व्याप्त है ऐसा व्यवहार से कहा। अब वे लोकालोक के पदार्थ ज्ञान में यहाँ आ गये, ऐसा कहते हैं। उस सम्बन्धी का ज्ञान आया, इसलिए वे आये, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। समझ में आया? ओहोहो!

यहाँ परस्पर है न... बात सिद्ध करते हैं न! दोनों का अस्तित्व इतना बड़ा, लोकालोक का अस्तित्व और तीन काल का अस्तित्व, तथापि ज्ञान की एक समय की पर्याय में सब ज्ञात हो जाता है। और इससे उसे एक समय की पर्याय में जो सर्वज्ञदशा, वह ज्ञान की दशा मानो सर्वत्र पहुँच गयी हो, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। और जब उन पदार्थों का जब यहाँ ज्ञान हुआ अपने में उस सम्बन्धी का अपने कारण से, तो वे पदार्थ भी यहाँ हैं, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। समझ में आया? ऐसी भिन्न-भिन्न गाथायें रखकर, कहीं आचार्य फुरसत में थे? आहाहा! समझ में आया?

वस्तु का स्वरूप कितना कैसा सामर्थ्य है? और वह प्रगट हुआ सामर्थ्य उसके कारण में चारित्र का कितना सामर्थ्य था कि जिससे वह प्रगटे? स्वयं चारित्र अंगीकार करके फिर यह बात करते हैं न। यह साम्यभाव के शुद्ध उपयोग के फलरूप से सर्वज्ञ की प्रशंसा करते हैं, सर्वज्ञ के फल को अनुमोदते हैं। समझ में आया? स्वयं को अभी सर्वज्ञपद नहीं। परन्तु भगवान आत्मा शुद्ध अखण्ड आनन्द की प्रतीति और ज्ञानसहित में जिसे शुद्ध उपयोग की रमणता है, उसे ऐसी पर्याय प्रगट होगी, उसकी प्रशंसा शुद्ध उपयोग की करते हुए ज्ञान की भी करते हैं। आहाहा! समझ में आया? और कोई ऐसा लेता है कि देखो! चारित्र के फलरूप से तो सर्वज्ञपद होता है तो अभी भी होता है, ऐसा और एक कहता है। ऐई! है न वह पण्डित, नहीं? कैसा? पिड़ावा। पिड़ावा के पण्डित

ने यह सब अर्थ किये हैं न धवल के, वह ऐसा कहता है। केवल मोक्ष का कहाँ निषेध है ? यह रहा यहाँ, देखो! चारित्र से मोक्ष होता है, आचार्य स्वयं कहते हैं। ऐई! यह तो वर्णन करते हैं, भगवान! उसके फलरूप से ऐसा ज्ञान हो, उसका स्वरूप वर्णन करते हैं। परन्तु स्वयं केवलज्ञान प्राप्त इस भव में है या होंगे, ऐसा है नहीं। यह स्वयं आचार्य है, वह अपनी वर्तमान स्थिति का ही सब वर्णन करते हैं। ऐसा कोई कहे तो यह भी उसकी वर्तमान स्थिति और चारित्र के परिणाम में प्राप्त होगी, इसलिए वर्णन है। यह तो चारित्र के फलरूप से ऐसी जहाँ दशा पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द (प्रगट हो), वह चरित्र कौनसा ? शुद्ध उपयोग। अकेले स्वरूप में शुद्ध आचरणरूप से थे, उससे यह होगा, ऐसी शुद्ध उपयोग की प्रशंसा करते हैं और उसके फल की भी प्रशंसा करते हैं। धीरुभाई! इसमें विवाद है। यह तो मोक्ष से कहते हैं। इनकार करते हैं मोक्ष से, ऐसा कहते हैं।

कहते हैं कि जो **समस्त स्व-ज्ञेयाकारों के समर्पण द्वारा (ज्ञान में) अवतरित होते हुए...** देखो! उस सम्बन्धी का ज्ञान आ गया है न, इसलिए वे उतरे, ऐसा कहने में आता है। **सर्व पदार्थ...** देखो! **ज्ञान में प्रतिभासित न हों...** दूसरी लाईन है यह। **यदि समस्त स्व-ज्ञेयाकारों के समर्पण द्वारा...** एक तो स्व ज्ञेयाकार अनन्त लोकालोक को ऐसे सिद्ध किया और उस ज्ञान में उतरे हुए वह ज्ञान उस सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ हो गया है, इससे उसमें **अवतरित होते हुए समस्त पदार्थ ज्ञान में प्रतिभासित न हों तो वह ज्ञान सर्वगत नहीं माना जाता।** सर्व को जाननेवाला नहीं कहा जा सकता। आहाहा! समझ में आया ? लोगों ने आत्मा को तो पामर जैसा माना है न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो है, ऐसा कहते हैं। बनावे कौन ? बने कौन और बनावे कौन ?

कहते हैं कि भगवान! तू (और) एक-एक आत्मा, भाई! वस्तु है न वह, पदार्थ है न, वस्तु है न, चीज़ है न, तत्त्व है न ? तत्त्व है न ? तत्त्व है न ? आत्मा तत्त्व है न ? उस आत्मतत्त्व में अन्दर तत्त्व का जो स्वभाव बेहद ज्ञानानन्द जिसकी शक्ति का स्वभाव है, उस स्वभाव का माप और हद क्या ? ऐसे अनन्त स्वभाव से अभिन्न भगवान, उसकी

पर्याय में अभिन्नता करने से... समझ में आया? आत्मा उसका जो सत्त्व भाव बेहद ज्ञान और आनन्द आदि अनन्त भाव, उसका स्वभाव, उससे एकत्व अभिन्न, ऐसे स्वभाव के साथ पर्याय को जिसने अभिन्न एकत्व किया है। समझ में आया? उसके फलरूप से सर्वज्ञपद प्राप्त होता है। और वह ज्ञान कितना बड़ा है? कि लोकालोक के पदार्थ मानो उसमें प्रविष्ट हो गये हों, ऐसे सामर्थ्यवाला है। ज्ञान तो वहाँ गया, ऐसा कहा एक न्याय से, अब वह सब यहाँ आ गये। आहाहा! समझ में आया? गजब ... वर्णन है, भाई! अकेला पूर्णानन्द प्रभु नाथ। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

गड़गड़ाकर गरज उठे आत्मा तब सर्वज्ञपद को प्राप्त होता है। समझ में आया? भगवान ज्ञान की मूर्ति प्रभु है, उसमें एकाकार होकर रमणता में जगा, सर्वज्ञ स्वयं हो गया। इतना वह आत्मा है, भाई! इतना आत्मा स्वीकार किये बिना उसने आत्मा (माना) नहीं। समझ में आया? आता है न? 'जागकर देखूँ तो विश्व दिखे नहीं।' इसका अर्थ ऐसा नहीं। विश्व नहीं, ऐसा नहीं। मेरा ज्ञान ही ऐसा प्रगट हो गया कि मानो विश्व मुझमें नहीं, परन्तु उस विश्व सम्बन्धी मेरे ज्ञान की अवस्था का स्वभाव शक्ति जो था, वह प्रगट-व्यक्त हो गया, वह ... इसलिए यहाँ तो जरा ऐसा भी कह दिया कि ज्ञानपर्याय मानो विश्व में व्यापी हो, ऐसा भी व्यवहार से कहने में आता है। और पूरा विश्व मानो ज्ञान में आ गया हो। आहाहा! समझ में आया? वास्तव में उस सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ आया है, इसलिए वे आये, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

आत्मा की शक्ति पूर्ण और उसकी पर्याय पूर्ण, ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय की पूर्णता का रूप, उसे परमात्मा कहा जाता है। समझ में आया? और अन्तर आत्मा, वह वस्तु है पूरा पूर्णानन्द, उसकी प्रतीति और ज्ञान करे, उसे अन्तरात्मा कहा जात है और उसमें स्थिर होकर प्रगट दशा हो, तब परमात्मा कहा जाता है। और वह आत्मा इतना है, तथापि एक समय के राग और पुण्य जितना माने, वर्तमान अंश के विकास जितना माने, पूरा तत्त्व रह जाये, ऐसे जीव को बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि कहते हैं। समझ में आया?

ज्ञान में प्रतिभासित न हों तो वह ज्ञान सर्वगत नहीं माना जाता। और यदि वह (ज्ञान) सर्वगत माना जाये,... सर्वगत। ... **तो फिर (पदार्थ) साक्षात् ज्ञानदर्पण-भूमिका में...** ज्ञान के दर्पणरूपी भूमि में **अवतरित बिम्ब की भाँति अपने-अपने ज्ञेयाकारों**

के कारण (होने से)... देखो नीचे (फुटनोट में) है। **बिम्ब=जिसका दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ा हो वह।** बिम्ब की व्याख्या। **जिसका दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ा हो वह। (ज्ञान को दर्पण की उपमा दी जाये तो, पदार्थों के ज्ञेयाकार बिम्ब समान हैं और ज्ञान में होनेवाले ज्ञान की अवस्थारूप ज्ञेयाकार प्रतिबिम्ब समान है)।** ऐसे बिम्ब है सामने, यह प्रतिबिम्ब है यहाँ। ज्ञान की पर्याय परिणम जाती है। समझ में आया? मनुष्य है, वह बिम्ब है ऐसे और दर्पण में मनुष्य का आकार हुआ, वह प्रतिबिम्ब है। समझ में आया? है दर्पण की अवस्था। वह मनुष्य है, वह बिम्ब, यहाँ (उसका) प्रतिबिम्ब। इसी प्रकार लोकालोक बिम्ब और यहाँ ज्ञान की पर्याय हो गयी तत्प्रमाण, वह प्रतिबिम्ब। बिम्ब का प्रतिबिम्ब मानो इसमें आ गया हो बिम्ब, ऐसा भी व्यवहार से कहा जाता है। वह प्रतिबिम्ब हो गया है न? आहाहा!

इतने अस्तिरूप से आत्मा पर्याय में हो, तब यह पूरा आत्मा ऐसा यहाँ वर्णन करते हैं। ऐसे का ऐसा साधारण मान ले, आत्मा है और आत्मा क्या? हम आत्मा को मानते हैं। परन्तु क्या आत्मा? आत्मा, वह क्या चीज़ है? पदार्थ है या वस्तु है, अनादि-अनन्त है, अकृत्रिम है, नाश न हो ऐसा है और वस्तु है, वह अनन्त स्वभाव से भरपूर है, अनन्त शक्ति से भरपूर है। अब उसकी प्रतीति और उसका ठिकाना न हो और उसे धर्म हो (ऐसा नहीं होता)। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा इतना, उसकी अन्दर दृष्टि और ज्ञान, रमणता हुई, चारित्रसहति प्रगट दशा हो, तब उसे पूर्ण वीतराग और केवलज्ञानदशा होती है। वह ज्ञान मानो लोकालोक बिम्ब में प्रविष्ट हो गया हो, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। और उस बिम्ब का यहाँ प्रतिबिम्ब ज्ञान में हुआ है, इससे वे बिम्ब मानो यहाँ आ गये हों, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा!

सामने व्यक्ति हो तो ऐसा ही आकार दिखता है न! वह आकार मनुष्य का नहीं वहाँ। वह तो दर्पण का आकार है। दर्पण में मनुष्य दिखे, उस मनुष्य का आकार है वह? परन्तु मनुष्य यहाँ है, उसका बिम्ब है, उसका प्रतिबिम्ब है। ऐसा तो कहा जाता है कि देखो! यह मनुष्य रहा। देखो, यह मनुष्य रहा इसमें। ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। समझ में आया? ऐसे ज्ञान की पर्याय निर्मलबिम्ब दर्पण समान है, उसमें लोकालोक बिम्ब अर्थात् परनिमित्तरूप से है, उस सम्बन्धी में ज्ञान हुआ, वह प्रतिबिम्ब समान है।

इससे प्रतिबिम्ब ज्ञान की अवस्था में बिम्ब मानो आये अर्थ (पदार्थ आये), ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! दोनों की अस्तित्वता... नहीं जिसे। ऐसा है, कहते हैं, हों! है बाद में। बड़ी वर्णन करते हैं, इसलिए बड़ी नहीं और वर्णन करते हैं, ऐसा नहीं।

वस्तु ऐसी है और ऐसा फल आयेगा शुद्ध उपयोगवाले को। समझ में आया? इससे चारित्र, वह धर्म है, ऐसा उठाकर यह सब बातें ली हैं। आहाहा! हमको भी चारित्र के प्रताप से ऐसी दशा होगी, ऐसा कहते हैं कि इतनी दशा होगी। समझ में आया? कोलकरार करके कहते हैं कि हमको यह होगा ही। बाद में करनेवाले हैं, बाद में नहीं होगी, यह प्रश्न है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सामर्थ्य है, उसे पारस्परिक से दोनों के माहात्म्य से वर्णन करते हैं।

प्रतिबिम्ब समान है। क्या कहा? **बिम्ब की भाँति अपने-अपने ज्ञेयाकारों के कारण (होने से) और परम्परा से प्रतिबिम्ब के समान ज्ञेयाकारों के कारण होने से...** प्रतिबिम्ब समान है न उसके कारण? **पदार्थ कैसे ज्ञानस्थित निश्चित नहीं होते?** ऐसा **(अवश्य ही ज्ञानस्थित निश्चित होते हैं)**। है न नीचे। **बिम्ब=जिसका दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ा हो वह।** बिम्ब की व्याख्या। मनुष्य आकार वह बिम्ब-निमित्त और अन्दर में प्रतिबिम्ब। **(ज्ञान को दर्पण की उपमा दी जाये तो, पदार्थों के ज्ञेयाकार बिम्ब समान हैं...** सामने। ज्ञान दर्पण और ज्ञेयाकार बिम्ब। **और ज्ञान में होनेवाले ज्ञान की अवस्थारूप ज्ञेयाकार प्रतिबिम्ब समान है)**। जैसे ज्ञेय हैं बिम्ब, वैसा यहाँ प्रतिबिम्ब ज्ञेयाकार है। समझ में आया? ... एकड़ा है न? परम्परा है न, परम्परा?

पदार्थ साक्षात् स्वज्ञेयाकारों के कारण हैं (अर्थात् पदार्थ अपने-अपने ज्ञेयाकारों के साक्षात् कारण हैं)... क्या कहते हैं? जगत की चीज़ें आत्मा के अतिरिक्त अनन्त आत्मायें, अनन्त रजकण, वे पदार्थ अपने-अपने द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् शक्ति और अवस्था, उसका वह कारण है। लो, ठीक! समझ में आया? यह भी सिद्ध किया। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय का कारण वह द्रव्य-पदार्थ है।

मुमुक्षु : निमित्त कहाँ गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ गया होगा ? ऐई ! प्रत्येक जितने द्रव्य हैं, उनके गुण और पर्याय। वह गुण और पर्याय द्रव्य का कारण पदार्थ है। उस द्रव्य का कारण पदार्थ, गुण का कारण पदार्थ और पर्याय का कारण पदार्थ। उसका पदार्थ उसकी पर्याय का कारण है। समझ में आया ?

पदार्थ अपने-अपने ज्ञेयाकारों के साक्षात् कारण हैं और परम्परा से ज्ञान की अवस्थारूप ज्ञेयाकारों के (ज्ञानाकारों के) करण हैं। क्योंकि वह बिम्ब जो है, उस (रूप) यहाँ परिणमी है न ज्ञान अवस्था ? वास्तव में तो उसके द्रव्य-गुण-पर्याय का कारण वह पदार्थ है और वे पदार्थ इसके कारण हैं, ज्ञेयाकार यहाँ ज्ञान परिणमा, उसके कारण हैं, इसलिए ज्ञेयाकारों के कारण भी कहा जाता है। है तो उसके (अपने) कारण, परन्तु यहाँ ज्ञान हुआ है न उनका, इससे उसका कारण वह है, ऐसा कहा गया है। आहाहा ! ऐसी बात है, भाई ! समझ में आया ? इसलिए **(अवश्य ही ज्ञानस्थित निश्चित होते हैं)।** भगवान ज्ञानस्वरूप में विराट लोकालोक ज्ञात हो जाता है। इसलिए मानो विराट लोकालोक मानो ज्ञान की अवस्था में आ गया है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। जादवजीभाई ! यह बड़ी बातें सब सुनी नहीं वहाँ कहीं। आहाहा ! भगवान आत्मा भी पर में व्याप्त है, ऐसा पहले कहा। ज्ञान और आत्मा दोनों, ऐसा। ज्ञान और आत्मा दोनों मानो पर में (व्याप्त हैं)। क्योंकि उस पर का ज्ञान हुआ न, इसलिए मानों उसमें गया वास्तव में और अब वे चीज़ें जो हैं, उन सम्बन्धी यहाँ ज्ञान हुआ। वास्तव में उस चीज़ के कारण तो वे हैं, परन्तु यहाँ ज्ञान की अवस्था में निमित्त कारण थे, इससे यह प्रतिबिम्ब मानो बिम्ब अन्दर आ गये, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

आसोज शुक्ल ५, शुक्रवार, दिनांक २७-०९-१९६८
गाथा - ३१, ३२, प्रवचन - २५

प्रवचनसार, ३१वीं गाथा। क्या चलता है? कि आत्मा अपना शुद्धस्वरूप जो है त्रिकाल, उसके सन्मुख होकर दर्शन, ज्ञान और चारित्र के निश्चयरत्नत्रयरूप शुद्ध उपयोगरूप से परिणमते हुए उसे सर्वज्ञपद प्राप्त होता है। उसकी एक समय की पर्याय का सामर्थ्य कितना है, उसका यह सब वर्णन है। आत्मा है, उसका ज्ञानगुण है, उसका तो सामर्थ्य अपरम्पार। तथा प्रगट हुई एक समय की पर्याय का अस्तित्व, अस्तित्व—उसकी सत्ता, उसका सामर्थ्य कितना है। और सामने लोकालोक तीन काल-तीन लोक पदार्थ आदि है, वे सब एक समय में ज्ञान की अवस्था में ज्ञात हो जायें, उतना ज्ञान का सामर्थ्य है। उतना पर्याय में आत्मा ज्ञान की पर्याय में बड़ा है। ऐसी पर्यायों का पिण्ड गुण और ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य महा-महा बड़ा है। समझ में आया? ऐसे पदार्थ की अन्तर दृष्टि करके अनुभव करना, उसका नाम धर्म है। इन जन्म-मरण के मिटाने का उपाय यह है। बाकी तो अनादि से भटकता है। कहीं गति का अन्त नहीं। नरक के, ढोर के, कीड़ा के, कौवे के (भव) कहीं भटकता है और जब तक यह सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं करे, तब तक मिथ्यात्व में तो अनन्त संसार करने की सामर्थ्य पड़ी है। और यह भान होने पर अनन्त लोकालोक आदि जो है, उसका ज्ञान करने की सामर्थ्य जागती है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान। आहाहा! समझ में आया?

यह जरा बिम्ब और प्रतिबिम्ब का दृष्टान्त देकर, वह वस्तु भी सामने ऐसी पूरी है और उसका यहाँ ज्ञान में प्रतिबिम्ब पड़े। प्रतिबिम्ब शब्द से यह ज्ञानाकार ज्ञान अवस्था होती है, उसमें वे ज्ञेय हैं सब, उन्हें बिम्ब कहा जाता है और यहाँ पर्याय परिणमती है, उसे यहाँ प्रतिबिम्ब कहा जाता है। दोनों का सामर्थ्य कितना है... और बिम्ब उसमें आ गये है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। समझ में आया?

भावार्थ है। **दर्पण में...** जैसे दर्पण है उसमें। **मयूर,...** मोर-मोर। **मन्दिर, सूर्य, वृक्ष इत्यादि के प्रतिबिम्ब पड़ते हैं।** अर्थात् कि दर्पण, वह सामने चीज़ है, उसरूप अपनी अवस्था होती है। दर्पण में सामने चीज़ है, उस प्रकार की अवस्था दर्पण में स्वयं

से होती है। वह दर्पण में मोर दिखता है, **मन्दिर, सूर्य, वृक्ष इत्यादि के प्रतिबिम्ब पड़ते हैं। वहाँ निश्चय से तो प्रतिबिम्ब दर्पण की ही अवस्थायें हैं,...** वास्तव में तो वह दर्पण की ही अवस्था है। सामने दृष्टान्त दिया न मोर का? समझ में आया? मन्दिर अर्थात् मकान। दर्पण बड़ा हो तो पूरा मकान उसमें दिखता है। मकान प्रमाण दर्पण होता है न बड़ा? पूरा मकान दिखाई दे। वह मकान तो मकान में है। यहाँ दर्पण जो अवस्थारूप से परिणमता है, उसे यहाँ प्रतिबिम्ब—दर्पण की अवस्था कहते हैं। और मकान आदि तथा सूर्य आदि। देखो, सूर्य लिया देखो! दर्पण में सूर्य दिखता है न? वह दर्पण में सूर्य नहीं। वह दर्पण की ही अवस्था है। सूर्य तो बाहर रह गया बिम्बरूप से। यहाँ सूर्य की अवस्था, जैसा सूर्य का स्वरूप है, उस प्रकार से दर्पण अपनी अवस्थारूप से अन्दर परिणमता है।

यह मोर, मन्दिर, सूर्य और बड़ा वृक्ष, देखो! वृक्ष बड़ा हो आम का और सामने दर्पण इतना हो तो उसमें दिखता है। यह वृक्ष है, वह बिम्ब कहलाता है। सूर्य को बिम्ब कहते हैं, वृक्ष को बिम्ब कहते हैं, मकान को, मोर को बिम्ब कहते हैं और दर्पण में हुई अवस्था को प्रतिबिम्ब कहते हैं। यह प्रतिबिम्ब है, वह वास्तव में **प्रतिबिम्ब तो दर्पण की ही अवस्थायें हैं,...** वास्तव में तो वह दर्पण की ही अवस्था है। देखो, एक दर्पण के अनन्त रजकण की स्वच्छ अवस्था का भी इतना सामर्थ्य है कि सामने चाहे जितनी चीज़ें हों तो वे अपने में अपने कारण से उसकी जिसकी सम्बन्धी की अवस्था अपने में धारण करता है। यह तो प्रत्यक्ष दिखता है न, ऐसा कहते हैं। यह दृष्टान्त प्रत्यक्ष का कहते हैं। उसकी स्वच्छता में इतनी अवस्था हो, वह सब दर्पण की अवस्था है। उसकी अवस्था सामने मोर की अवस्था, मन्दिर की, वह तो उसमें रही। इसमें आयी है वह?

तथापि दर्पण में प्रतिबिम्ब देखकर... दर्पण में वह मकान, सूर्य, वृक्ष और मोर, उसकी यहाँ अवस्था—आकार—प्रतिबिम्ब नैमित्तिक देखकर, निमित्त तो वहाँ रहे, देखकर **कार्य में कारण का उपचार करके...** अर्थात् क्या? कि दर्पण में जो नैमित्तिक कार्य हुआ। है न नीचे, देखो! **प्रतिबिम्ब नैमित्तिक कार्य हैं और मयूरादि निमित्त-कारण हैं।** दर्पण में जो अवस्था हुई है, वह तो अवस्था दर्पण की नैमित्तिक कार्यरूप

अवस्था है और मोर, सूर्य, वह निमित्त है। वह बिम्ब बाहर है। यहाँ नैमित्तिक है, यह उसकी अपनी—दर्पण की अवस्था है। उसे प्रतिबिम्ब कहते हैं, कार्य कहते हैं और उस कार्य में निमित्त कारण थे, इसलिए कार्य में कारण का उपचार करके वह बिम्ब उसमें है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। समझ में आया? कितनी बात... की। ऐई! वजुभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी इसमें अन्दर है न। वह तो है उसका स्पष्टीकरण (होता है)। प्रत्येक गाथा सर्वज्ञपद का कितना किस प्रकार से स्पष्टीकरण करती है, ऐसा। उसके अस्तित्व का... अन्दर है न अन्दर।

साक्षात् ज्ञानदर्पण भूमिका में उतरे हुए बिम्ब समान... नहीं अन्दर? यह तो सामान्य है, उसका यह विशेष स्पष्टीकरण किया है। अपने-अपने ज्ञेयाकारों का... वस्तु है, वह अपने ज्ञेयाकारों का कारण है **और परम्परा से ज्ञान की अवस्थारूप ज्ञेयाकारों के कारण हैं।** है न अन्दर? कहो, समझ में आया? आत्मा की एक समय की पूर्ण दशा जहाँ प्रगट हुई, उसका कितना सामर्थ्य, कितना सामर्थ्य उसके अस्तित्व की सत्ता का, उसे स्पष्टीकरण करके सामनेवाले को ख्याल कराते हैं। इतना जिसका सामर्थ्य है। पूरा लोकालोक एक ओर, एक ओर एक समय की पर्याय। उस पर्याय में मानो बिम्ब है, उसका प्रतिबिम्ब है। प्रतिबिम्ब अर्थात्? उसके सम्बन्धी यहाँ जो ज्ञानाकार अवस्था है, वह प्रतिबिम्ब है। सर्वज्ञपद में वह बिम्ब है। तो उस प्रतिबिम्ब में कार्य जहाँ हुआ, निमित्तकारण वह है, तो कार्य में उसका कारण आरोपित करके तो मानो लोकालोक यहाँ ज्ञान में हो, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! विराट स्वरूप उसका है, ऐसा कहते हैं। एक समय की आत्मा की ज्ञानस्वभावदशा विराट-विराट। क्षेत्र में असंख्य प्रदेश में व्याप्त पर्याय इतनी एक समय की। समझ में आया?

भगवान आत्मा... आत्मा द्रव्य है, उसमें ज्ञानगुण है, वह असंख्य प्रदेश में व्याप्त है और वह त्रिकाल है। वस्तु त्रिकाल है, वैसे उसका ज्ञानगुण असंख्य प्रदेश हैं, उनमें त्रिकाल व्याप्त है और उसकी ज्ञान की यह पर्याय है, वह असंख्य प्रदेश में व्याप्त है, परन्तु उसकी स्थिति एक समय की है। एक समय की स्थिति में इतना सामर्थ्य है। इतना

आत्मा है, पर्याय में इतना है, ऐसी तो अनन्त पर्याय का ज्ञान, ऐसे अनन्त गुणों का एकरूप ऐसा आत्मा एक-एक ऐसा है, ऐसा सिद्ध कराते हैं। समझ में आया? पामर मानकर बैठ गये हैं न कि हम इतने हैं, हम रागवाले हैं, एक समय की पर्यायवाले हैं। बापू! तेरी तो अल्प पर्याय उघड़ी हुई है, परन्तु जैसी पर्याय उघड़ी है उतना भी आत्मा नहीं। समझ में आया? यहाँ तो अल्पज्ञ पर्याय उघड़ी हुई है दर्शन, ज्ञान, वीर्य आदि।

जहाँ पूर्ण सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य प्रगट हुआ है, तो भी वह एक समय की अवस्था है। समझ में आया? ऐसी अनन्त अवस्था का समुद्र एक-एक गुण है, ऐसे अनन्त गुण का एकरूप द्रव्य महा समुद्र है। चैतन्यरत्नाकर है। समझ में आया? भगवान आत्मा ऐसा पूर्ण स्वरूप, उसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणता को भी रत्नत्रय कहा है पर्याय को। समझ में आया? भगवान रत्नाकर प्रभु चैतन्यवस्तु है, भाई! उसकी कीमत करना न आवे और पर की कीमत उसमें से हटे, ऐसा नहीं हो सकता। उसकी कीमत करना आवे तो उसे पर की पर्याय की और राग की—पर की कीमत उसके हृदय में—ज्ञान में से उड़ जाये। समझ में आया? इसलिए यहाँ शुद्ध उपयोग के फलरूप से सर्वज्ञ की पर्याय के सामर्थ्य को बहुत विविध प्रकार से वर्णन करते हैं। समझ में आया?

ऐसी बात वस्तु की अस्तित्व के—सत्ता के स्वभाव की बात है यह। साधारण मनुष्य ऐसे आत्मा... आत्मा करे, ऐसा नहीं चलता। जैसा है, जैसे है, जिस प्रकार से दशा में है, ऐसी ही दशा का सागर पूरा और अनन्त गुण का समुद्र, इतने बड़े आत्मा को प्रतीति में लेना, वह कितना पुरुषार्थ सम्यग्दर्शन में है। इतना बड़ा आत्मा, उसे सम्यक् प्रतीति में, सम्यग्ज्ञान में लेना, वह ज्ञान और प्रतीति का कितना सामर्थ्य है! समझ में आया? और उसमें रमणता करना, वह चारित्र का कितना सामर्थ्य है! और उसके फलरूप से सर्वज्ञपद के सामर्थ्य की क्या बात करना! वह तो जिसे जन्म-मरण टालना हो और जिसे आत्मा जैसा है, वैसी प्रतीति और अनुभव करना हो, उसकी कीमत करके उसमें रहना हो और पर की कीमत उड़ाकर नाश कर देनी हो पर की कीमत—उसके लिये यह बात है। समझ में आया?

कहते हैं कि **कार्य में कारण का उपचार करके व्यवहार से यह कहा जाता है कि 'मयूरादिक दर्पण में हैं।' इसी प्रकार...** इतना सामर्थ्य एक दर्पण का दृष्टान्त दिया, उसमें उसे प्रत्यक्ष दिखता है, ऐसा कहते हैं। जड़ के अनन्त रजकण, उसकी स्वच्छता की पर्यायरूप से परिणमित दर्पण में भी ऐसे पदार्थ प्रतिबिम्बरूप से, बिम्ब वहाँ और प्रतिबिम्ब यह, जैसा हो ऐसा जाने न? यह भगवान की मूर्ति को प्रतिबिम्ब क्यों कहते हैं, समझ में आया? कि जैसे भगवान परमात्मा परमेश्वर वीतराग सर्वज्ञदेव बिम्ब थे, उस प्रकार से सामने यहाँ हो तो उसे प्रतिबिम्ब कहा जाता है। वरना उसे प्रतिबिम्ब नहीं कहा जाता। समझ में आया? भगवान की मूर्ति—प्रतिमा भी ऐसी चाहिए कि जैसे भगवान थे बिम्ब, उनका सामने प्रतिबिम्ब है यह तो। वीतराग। वस्त्र, अलंकाररहित। समझ में आया? नग्न शरीर की परमौदारिक दशा, अन्दर केवलज्ञानदशा, ऐसी जो वस्तु है, उसकी प्रतिमा ऐसी होती है। उसके लिये वस्त्र और वे (शृंगारादि) डालना, वह उसका प्रतिबिम्ब नहीं है। गहने और यह वस्त्र और यह क्या कहलाता है? पहनाते हैं न? चाँदी के और मुकुट और वह भगवान का प्रतिबिम्ब ही नहीं है। प्रतिबिम्ब जैसा हो, वैसी चीज़ हो तो प्रतिबिम्ब कहलाये न? इसी प्रकार ज्ञान में लोकालोक जैसे बिम्ब हैं, वैसा ज्ञान में प्रतिबिम्ब पड़ता है। प्रतिबिम्ब का अर्थ कि ज्ञान, उस अवस्थारूप परिणमता है। समझ में आया? यह कहीं ऐसे झलक नहीं आती ज्ञान में।

ज्ञानदर्पण में भी सर्व पदार्थों के समस्त ज्ञेयाकारों के... समस्त पदार्थों के **समस्त ज्ञेयाकारों के...** अर्थात् जो द्रव्य-गुण-पर्याय पदार्थ में है, उसके प्रतिबिम्ब पड़ते हैं। ज्ञान की पर्याय में उसकी अवस्थारूप से परिणम जाती है। ओहोहो! उन **पदार्थों के ज्ञेयाकारों के निमित्त से...** जो सामने पदार्थ है, उनका जो द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप है ज्ञेयाकार, उसके निमित्त से **ज्ञान में ज्ञान की अवस्थारूप...** ज्ञान में ज्ञान की दशारूप—अवस्थारूप **ज्ञेयाकार होते हैं...** देखो! ज्ञान की अवस्थारूप ज्ञेयाकार होते हैं। उसकी अपनी अवस्था है वह। **(क्योंकि यदि ऐसा न हो तो ज्ञान सर्व पदार्थों को नहीं जान सकेगा)। वहाँ निश्चय से ज्ञान में होनेवाले ज्ञेयाकार ज्ञान की ही अवस्थायें हैं,...** लोकालोक... समझ में आया? वह तो साधक में भी ऐसा आया न अपने सवेरे? इस प्रकार से लिया कि रागादि ज्ञेय है, उस सम्बन्धी का ज्ञान वह ज्ञानाकाररूप परिणमा,

परिणमा है, वह स्वयं से है। समझ में आया? परन्तु व्यवहार से ऐसा कहा जा सकता है कि राग उसमें आया। ज्ञान आया न तो राग व्यवहार आया, ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है। बाकी तो वह व्यवहार भिन्न है। समझ में आया?

भगवान आत्मा राग से, निमित्त से पृथक् होकर अपना ज्ञायकस्वरूप है, ऐसा जो भान, अनुभव दृष्टि और ज्ञान हुआ तो वह ज्ञान की पर्याय तो अपनी है। वह स्व को जानने की अपनी है और रागादि जो व्यवहार है, उसे जानने की पर्याय अपनी अपने से परिणमी है, परन्तु उसमें वह व्यवहार निमित्त है तो वह निमित्त मानो यहाँ आ गया, उस सम्बन्धी का ज्ञान... व्यवहार, वह बिम्ब है और ज्ञान की पर्याय प्रतिबिम्ब है। समझ में आया? यह तो साधक में वहाँ यह कहा था।

ज्ञान अपना जानना स्वभाव है न। ज्ञायक भगवान चैतन्यस्वभाव जाननेरूप जहाँ परिणमित हुआ अपने ज्ञायकभाव के आश्रय से, उस परिणमन में ज्ञायकभाव तो त्रिकाल है, परन्तु जानना, ऐसा परिणमन जहाँ हुआ, उसमें अपना ज्ञान भी उसमें है और जो व्यवहार है, उसका ज्ञान, उसका ज्ञान अर्थात् उस प्रकार का जो बिम्ब है, उस प्रकार का ज्ञान, परन्तु है ज्ञान अपनी अवस्था। उस अवस्था में निमित्त देखकर उससे ज्ञान हुआ अथवा वह उसमें है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु की... वस्तु की स्थिति की मर्यादा ऐसी है। उस मर्यादा को उस प्रकार से (न) जाने, न माने तब तक दृष्टि में विपरीतता है और विपरीतता है, वह चार गति के भटकने के कारणरूप भाव है। भटकेगा चार गति में। समझ में आया?

इसलिए कहते हैं, यदि ऐसा न हो तो... **निश्चय से ज्ञान में होनेवाले ज्ञेयाकार ज्ञान की ही अवस्थायें हैं, पदार्थों के ज्ञेयाकार कहीं ज्ञान में प्रविष्ट नहीं है। निश्चय से ऐसा होने पर भी...** ज्ञेयाकार होते हैं, ऐसा कहते हैं न? **व्यवहार से देखा जाये तो, ज्ञान में होनेवाले ज्ञेयाकारों के कारण पदार्थों के ज्ञेयाकार हैं,...** पर कारण है न निमित्त? **उनके कारण पदार्थ हैं...** देखो! यहाँ ज्ञानाकार हुए न! पदार्थ सम्बन्धी के द्रव्य-गुण-पर्याय है, उनके (रूप) ज्ञानाकार परिणमा, उसके ज्ञानाकार में वे निमित्त कारण हैं सामनेवाले। उनके कारण पदार्थ हैं। **परम्परा से ज्ञान में होनेवाले ज्ञेयाकारों के कारण**

पदार्थ हैं;... समझ में आया? **इसलिए उन (ज्ञान की अवस्थारूप) ज्ञेयाकारों को...** ज्ञेयाकारों को अन्तर **ज्ञान में देखकर...** उन पर ज्ञेयाकारों को, यहाँ ज्ञान अवस्था हुई, उस ज्ञेयाकार को देखकर **कार्य में कारण का उपचार करके...** नैमित्तिक ज्ञान ज्ञेयाकार अपने ज्ञानरूप से परिणमा है, उसमें उस निमित्त का ज्ञान यहाँ हुआ—उसमें नैमित्तिक पर्याय में कार्य हुआ। उसे निमित्त का आरोप देकर **व्यवहार से ऐसा कहा जा सकता है कि 'पदार्थ ज्ञान में हैं'।** समझ में आया? लो, यह ३१ (गाथा) हुई।

★ ★ ★

गाथा - ३२

अब, इस प्रकार (व्यवहार से) आत्मा की पदार्थों के साथ एक-दूसरे में प्रवृत्ति होने पर भी,... व्यवहार से। **(निश्चय से) वह पर का ग्रहण-त्याग किये बिना तथा पररूप परिणमित हुए बिना सबको देखता-जानता है,...** देखो! दोनों शब्द पड़े हैं इसमें, हों! **'पेच्छदि'** और **'जाणदि।'** **उसे (पदार्थों के साथ) अत्यन्त भिन्नता है,...** भगवान आत्मा अपने शुद्ध उपयोग के प्रसाद द्वारा प्राप्त हुई दशा, उस ज्ञान में लोकालोक ज्ञात होने पर भी लोकालोक और ज्ञान की पर्याय अत्यन्त भिन्न है। समझ में आया? **ऐसा बतलाते हैं:-** ३२ (गाथा)।

गेण्हदि णेव ण मुंचदि ण परं परिणमदि केवली भगवं।
पेच्छदि समंतदो सो जाणदि सव्वं णिरवसेसं॥३२॥

केवलज्ञानी परद्रव्यों को, नहीं ग्रहें, छोड़ें न कभी।
सर्व ज्ञेय को सर्व प्रदेशों, से जानें-देखें नित ही॥३२॥

... **'भगवं'** है न? केवली भगवान। अर्थात् प्रभु हुआ वह तो। ...का अर्थ ... लिया है। और यह तो दो विशेषण... विशेष रखे न! केवली भगवान है न मूल पाठ में।

केवलज्ञानी परद्रव्यों को, नहीं ग्रहें, छोड़ें न कभी।
सर्व ज्ञेय को सर्व प्रदेशों, से जानें-देखें नित ही॥३२॥

ओहोहो! भगवान आत्मा अपना शुद्ध भगवान सच्चिदानन्द प्रभु अखण्ड अभेद

एकरूप चीज़, उसका अन्तर आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र प्रगट हुए, वह धर्म और उस धर्म का धर्मफल सर्वज्ञपद। वह भी उस जीव का धर्म केवल। समझ में आया? यह तो जीव को पामर माने, कर्म ने किया हुआ माने, पर की सहायता हो तो इसमें कुछ प्रगटे, ऐसा माने, वह आत्मा को समझता नहीं। समझ में आया? यह तो समुच्चय बात है, हों! यह कहीं उसे—भीखाभाई को ख्याल आया नहीं बात में।

यह आत्मा इतना है भगवान आत्मा कि पर से कराया हुआ नहीं और वर्तमान दशा में पर से कुछ होता नहीं। समझ में आया? और पर की अपेक्षा रखे तो उसे ज्ञान और श्रद्धा हो, ऐसा वह आत्मा नहीं। ऐसा आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। वस्तु ऐसी है, वस्तु ऐसी है। इस प्रकार वस्तु को दृष्टि और ज्ञान में न ले, तब तक उसे धर्म नहीं होता। सत्य नहीं होता वह। जैसा उसका सत्यस्वरूप है, उस प्रकार से सत्य की प्रतीति ज्ञान में आवे, तब सत्य को स्वीकार किया, ऐसा कहने में आता है। और असत्य का निषेध हो गया। तो इससे विरुद्ध, विपरीत, कम, अधिक, विपरीत... समझ में आया? इतनी पर्याय की महत्ता, उसके चारित्र से प्रगटे और चारित्र द्रव्य के आश्रय से प्रगटे, ऐसा जो बड़ा द्रव्यपना उसका सामर्थ्य जिसे प्रतीति में न आवे और इतनी प्रतीति जिसे प्रगटे नहीं, उसे धर्म प्रगट नहीं होता। कुछ का कुछ मानो किसी का आश्रय लूँ, राग का लूँ, इसका लूँ... इसका लूँ.... समझ में आया? भगवान की कृपा हो जाये तो मुझे प्रगटे। ऐसा आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। भगवानजीभाई! भगवान आत्मा इतना है कि उसकी कृपा होने से प्रगट हो, ऐसा है। समझ में आया?

इसका अन्वयार्थ पहले लेते हैं। **केवली भगवान पर को ग्रहण नहीं करते,...** अपने अतिरिक्त पर अनन्त पदार्थ हैं, अनन्त आत्मायें, अनन्त रजकण, उन्हें ग्रहण नहीं करते। तथा **छोड़ते नहीं...** ग्रहण-छोड़ है नहीं, एक बात। ग्रहण-छोड़ता नहीं परन्तु **पररूप परिणमित नहीं होते...** ऐसा। समझ में आया? भगवान आत्मा अपने ज्ञानरूप जहाँ परिणमा, अपनी अवस्था पूर्ण हुई, उसमें लोकालोक ज्ञात हुए। परन्तु उस लोकालोक को ग्रहण नहीं किया, तथा लोकालोक को उसने छोड़ा नहीं। वे तो पर है। समझ में आया? तथा लोकालोकरूप उसका ज्ञान परिणमा नहीं। अपनी अवस्थारूप हुआ है। आहाहा!

वे निरवशेषरूप से... बाकी रखे बिना, ऐसा कहते हैं। निरवशेष, नि:अवशेष। कुछ बाकी रखे बिना। तीन काल–तीन लोक को क्षेत्र को अमाप, अनादि–अनन्त द्रव्य, आत्मायें अनन्तगुणे परमाणु और जितने द्रव्य हैं, उससे अनन्तगुणे एक–एक द्रव्य के गुण। समझ में आया? उन सबको बाकी रखे बिना **निरवशेषरूप से सबको (सम्पूर्ण आत्मा को, सर्व ज्ञेयों को)...** समझ में आया? **सर्व ओर से (सर्व आत्मप्रदेशों से) देखते–जानते हैं।** वहाँ डाला देखो न, **'सव्वं निरवशेषम्'** सर्व के शब्द में पूरे आत्मा को, ऐसा। पूरे आत्मा को और सर्व ज्ञेयों को। दोनों। समझ में आया? सर्व ओर से... और सर्व तरफ से। पूरे आत्मा को, सर्व ज्ञेयों को और सर्व ओर से अर्थात् सर्व प्रदेशों से, ऐसा। असंख्य प्रदेश हैं न, देखते–जानते हैं।

इसकी **टीका :– यह आत्मा, स्वभाव से...** उसका स्वभाव ही है ऐसा **परद्रव्य के ग्रहण–त्याग का तथा परद्रव्यरूप से परिणमित होने का (उसके) अभाव होने से,...** भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु ऐसा आत्मा, सर्व को ग्रहण करने का—पकड़ने का या पर को छोड़ने का अभाव है। पर तो भिन्न चीज़ है। कहो, समझ में आया? यह ऐसा कहे कि इसे ग्रहण करूँ और इसे छोड़ूँ, यह दृष्टि मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्योंकि उसके स्वभाव में ग्रहण–रखना–छोड़ना है नहीं। **आत्मा, स्वभाव से ही परद्रव्य के ग्रहण–त्याग का...** एक बात। डाह्याभाई! ... विकल्प है ... वह कहीं उससे होता नहीं। रजकण की पर्याय है। आत्मा उसका कर्ता नहीं।

कहते हैं, भगवान आत्मा वस्तु है न प्रभु आत्मा। यहाँ प्रभु केवलज्ञानी की बात है, परन्तु प्रत्येक आत्मा की बात है। समझ में आया? यह अन्त में कहेंगे। ...अन्त में। **प्रत्येक आत्मा स्वभाव से केवलीभगवान जैसा ही होने से यह सिद्ध हुआ कि निश्चय से प्रत्येक आत्मा पर से भिन्न है।** अन्त में शब्द पड़ा है भावार्थ में। भावार्थ की अन्तिम लाईन। समझ में आया? **यह आत्मा, स्वभाव से ही परद्रव्य के ग्रहण–त्याग का तथा परद्रव्यरूप से परिणमित होने का (उसके) अभाव होने से,...** यह केवलज्ञानी की बात है, परन्तु केवलज्ञानी जैसा ही यह आत्मा है, ऐसा कहते हैं। केवली भगवान जैसा ही होने से। समझ में आया?

स्वतत्त्वभूत केवलज्ञानरूप से परिणमित होकर... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा

परमेश्वरपद की प्राप्ति हुई। परम ईश्वर स्वयं। केवलज्ञान सर्वज्ञपद अन्तर में से शक्तिरूप था, वह प्रगटरूप से स्वतत्त्व के परिणमनरूप हुआ। देखो! **स्वतत्त्वभूत केवलज्ञानरूप...** पर्याय को **स्वतत्त्वभूत केवलज्ञानरूप से परिणमित होकर...** यह पर्याय के विशेषण हैं। **स्वतत्त्वभूत केवलज्ञानरूप से परिणमित होकर...** समझ में आया? यह पर्याय का स्वतत्त्वभूत अपना स्वरूप है यह। **स्वतत्त्वभूत केवलज्ञानरूप से परिणमित होकर निष्कम्प निकलनेवाली ज्योतिवाला उत्तम मणि जैसा...** उत्तम मणि हो न, मणि? ऐसे मानो ज्योति निकलती हो। निकलती-बिकलती नहीं, वह तो यह प्रभा दिखती है। ऐसा उसमें और उसमें झलक... झलक... झलक... होती है न? इसी प्रकार भगवान आत्मा निष्कम्प निकलती ज्योतिवाला। केवलज्ञानी स्थिर-स्थिर अवस्थावाला। केवलज्ञानी स्थिर अवस्थावाला। **उत्तम मणि जैसा होकर रहता हुआ,...** मणिरत्न। लाखों के मणि होते हैं। लाख-लाख रुपये के एक मणि ऐसे पड़े हों अन्दर। चमक-चमक उसके क्षेत्र में ही, उसकी अवस्था में और उसके भाव में ही उसका परिणमन हो जाता है। इसी प्रकार चैतन्यमणि भगवान आत्मा अपने अन्दर ज्ञान, आनन्द का आश्रय लेकर जो केवलज्ञान की पर्याय परमात्मपद हुआ, कहते हैं कि निष्कम्प निकलती ज्योतिवाला... ज्योति पर्याय परिणमती है, परन्तु उसमें कम्प नहीं, अस्थिरता नहीं। समझ में आया?

उत्तम मणि जैसा होकर रहता हुआ, (१) जिसके सर्व ओर से (सर्व आत्मप्रदेशों से) दर्शनज्ञानशक्ति स्फुरित है... दोनों रखे, हों! पाठ में है न! भगवान आत्मा असंख्य प्रदेश का पिण्ड प्रभु, उसके असंख्य प्रदेश से—सारे असंख्य प्रदेश से—**सर्व ओर से (सर्व आत्मप्रदेशों से) दर्शनज्ञानशक्ति स्फुरित है...** दृष्टा और ज्ञान की परिणति जिसकी पर्याय में स्फुरित—प्रगट हो गयी है। समझ में आया? देखो, बात चलती है सर्वज्ञ की, उसमें देखना-जानना इकट्ठा लिया है। सर्वज्ञपर्याय ज्ञानतत्त्व अधिकार है। और ज्ञानतत्त्व... स्वतत्त्व। स्वतत्त्व, वह केवलज्ञानरूप पूर्ण ऐसा। उस केवलज्ञानरूपी स्वतत्त्वरूप परिणमा, वह परिणमने में उसे निष्कम्प जानने-देखने की दशा उसको हो गयी है। समझ में आया?

दर्शनज्ञानशक्ति स्फुरित है, ऐसा होता हुआ,... ऐसा भगवान अपनी पर्याय—अवस्थारूप होता हुआ। आहाहा! समझ में आया? **निःशेषरूप से=कुछ भी किंचित्**

मात्र शेष न रहे इस प्रकार से। निःशेषरूप से परिपूर्ण आत्मा को... देखा! पूरे आत्मा को। **आत्मा से आत्मा में...** केवलज्ञान की पर्याय में सर्व प्रदेश से पूरे आत्मा को आत्मा में से... आत्मा को आत्मा से आत्मा में **संचेतता-जानता-अनुभव करता है,...** सर्वज्ञ परमात्मा, आत्मा शक्ति में पड़ा है परमात्मा ने उसे प्रगट दशा की, यह कहते हैं कि ज्ञान और दर्शन जिसकी स्फुरित दशा है। समझ में आया? और कोई बाकी रखे बिना अथवा सर्व आत्मप्रदेश से निष्कम्प मणि जैसा होकर। आत्मा को, पूरे आत्मा को परिपूर्ण। पर्यायें त्रिकाल हैं न उसकी। त्रिकाल पर्याय और पूरा आत्मा।

अपने आत्मा को, यह पूरे आत्मा को सर्वज्ञ की पर्याय देखना-जानना, उसे **जानता-अनुभव करता है,...** कहो, समझ में आया? क्या कहते हैं यह? आत्मा को संचेतता है, ऐसा। उसके लिये आया था। संचेतता है, संचेतता है। इसका अर्थ किया जानता और अनुभव करता है। भगवान आत्मा... समझ में आया? ज्ञान की पर्याय की अपेक्षा से दर्शन की परिणति है, वह पूरे आत्मा को जानती है और देखती है और अनुभव करती है, ऐसा। यह जानने-देखने की अपेक्षा से, हों! पूरा आत्मा वर्तमान पर्याय के अनुभव में आ जाता है वेदन में, ऐसा नहीं। उसकी जानने-देखने की पर्याय में पूरा आत्मा जानने-देखने में आ जाता है। इसलिए अनुभव करता है पूरे आत्मा को, ऐसा कहा जाता है। यह जानने-देखने की अपेक्षा से अनुभव करता है, ऐसा कहने में आता है। पूरा आत्मा एक समय के वेदन में, अनुभव में, आनन्द में एक द्रव्य पूरा आ जाये, ऐसा नहीं होता। आनन्द का अनुभव तो एक समय का ही होता है। समझ में आया? अनुभव का वेदन एक समय का होता है, परन्तु यहाँ तीन काल-तीन लोक (को जाने) ऐसा पूरा आत्मा को जानता-देखता है, उस रूप से उसे—पूरे आत्मा को जानने-देखने को अनुभवता है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

अथवा (२) एकसाथ ही सर्व पदार्थों के समूह का साक्षात्कार करने के कारण... उसकी ज्ञानदशा, दर्शनदशा, सर्वज्ञपद प्रगट हुआ, उसने धर्म किया—जिसने—जीव ने धर्म किया, वह धर्म किया, उसके फलरूप से सर्वज्ञपद प्राप्त हुआ। समझ में आया? उस धर्म के फलरूप से स्वर्ग मिले और देवलोक मिले, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। और धर्म के फलरूप से तीर्थंकर हो, समवसरण हो, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं।

समझ में आया? लो, पुण्यफला अर्हंता। वे तो ऐसा कहते हैं। पुण्य के फलरूप से अरिहन्त (होते हैं)। अरे! भगवान! ऐसा नहीं है, भाई! वह तो उदय की बात की है। उनके उदय ऐसा है बाहर का। ... हो जाता है, समवसरण हो जाता है, ऐसा कहते हैं। कहते हैं, पूरे जगत के सर्व पदार्थ के समूह का साक्षात्कार करने के कारण... अपनी पर्याय में पूर्ण सब पदार्थों का साक्षात्कार प्रत्यक्ष किया है। यह उसका फल है, उस धर्म का। समझ में आया? यह तो कहे, '**कामदं मोक्षदं चैव**' आता है या नहीं? '**ओंकारं बिन्दु संयुक्तं नित्यम् ध्यायन्ति योगीनः।**' यह तो अधूरी दशा होती है, तब ऐसा एक इच्छाभाव रह गया है, उसके फलरूप से स्वर्गादि होते हैं। शुद्धता के फलरूप से तो पवित्रता होती है। समझ में आया?

यहाँ तो चारित्ररूपी धर्म जिसे प्रगटे, स्वरूप में रमणतारूपी धर्म जिसने प्रगट किया, वह धर्म। उस धर्म का कारण भले सम्यग्दर्शन, परन्तु धर्म जो प्रगट किया, उसके फलरूप से तो सर्वज्ञपने परिणमता है, वह उसका फल है। उस '**पुण्यफला अरहंता**' का आता है। बहुत बारंबार डालते हैं। '**पुण्यफला अरहंता**' पुण्य के फलरूप से केवली हुए। अरे! भगवान! क्या कहता है तू? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं देखो न, इतनी स्पष्ट बात रखी है। यह अब आयेगा आगे। ४५ गाथा में आता है न? समझ में आया? कितनी में आता है यह? ४५ में आता है न? देखो! '**पुण्यफला अरहंता**' ४५ में कहते हैं। अरे! भगवान! तुझे क्या होता है? उसे किसी प्रकार ऐसे पुण्य में से ऐसा हो और वैसा हो और भगवान प्रगटे... यह ४५-४५ गाथा है। '**पुण्यफला अरहंता**' विवादित गाथा। विवादित उन्होंने कर डाली है। गाथा विवादित कहाँ है? गाथा विवादित है? उसमें से उल्टे अर्थ खड़े किये कि पुण्यफल में भगवान होते हैं। ऐई! पुण्य तो राग है, उसके फल में सर्वज्ञपद—केवलज्ञान हो? आहाहा! यह तो पुण्य के फल में समवसरण है, वाणी निकली है, चलते हैं—गति करते हैं, आवाज निकलती है, यह सब पुण्य का फल है। यह भी वह कहीं उनकी चीज़ नहीं। वह उदय है, वह आकर खिर जाता है। इसलिए उदयभाव को पुण्यफल गिना है और खिर जाता है, फिर उसे क्षायिक होता है, ऐसा गिना है। बहुत जगह ऐसा कहे। ओहोहो! जीव को भी कुछ पराधीनता से कुछ होता हो तो उसे मजा आता है। जहाँ-तहाँ से झपट्टे मारता है। कुछ ऐसा आवे शास्त्र में

कि पुण्य के फलरूप से धर्म की दशा या वीतरागता प्रगट हो। अरे, भाई! यह पुण्य के फलरूप से वीतरागता नहीं होती।

देखो न, इसके लिये तो यह डाला है। छठवें गुणस्थान में विकल्प आवे जरा कषाय का कण, उसे उल्लंघ जाते हैं, उल्लंघकर स्वरूप में रमणता करते हैं, यह हमारा शुद्ध उपयोग और चारित्र है। आहाहा! उसके फलरूप से, शुद्ध उपयोग के फलरूप से, यह केवलज्ञान उसके फलरूप से है। पुण्य के फलरूप से है? गजब परन्तु! संसार में जब इसकी विपरीतता डाली है न! उसमें भी विपरीतता डाली है।... उतरी हो न संसार में आड़ी-टेढ़ी। देने के अलग, लेने के अलग। अभी बहुत करना पड़े सरकार में। यहाँ कुछ का कुछ करे। भगवान की बहियों में से (शास्त्र में से) कुछ का कुछ निकाले। उन्होंने नहीं कहा, ऐसा निकालता है।

यहाँ तो कहते हैं। ओहोहो! भगवान आत्मा अपने शुद्ध उपयोग की रमणता के फलरूप से सर्व पदार्थों को साक्षात करे, ऐसी जिसकी दशा है। प्रत्यक्ष ज्ञात हो ऐसा। **कारण ज्ञप्तिपरिवर्तन का अभाव होने से...** क्या कहते हैं? वह ग्रहण-त्याग का अभाव है न! यह सिद्ध करना है न? **ज्ञप्तिपरिवर्तन का अभाव...** अर्थात् कि ज्ञान एक समय में एक को जाने और दूसरे समय में दूसरे को जाने, ऐसा परिवर्तन केवलज्ञान में नहीं। केवलज्ञान तो एक समय में तीन काल-तीन लोक को एक साथ जानता है। पहले अनन्त को जाने और फिर दूसरे जानने के लिये उसे पलटा खाना पड़े, ऐसा नहीं है। उसके ज्ञान में सब ज्ञेयाकार लोकालोक के एक समय में आ गये हैं, इसलिए आकारान्तर होना पड़े, ऐसा उसे है नहीं। जिस प्रकार का आकार है, वही आकार उसे दूसरे समय हुआ करता है। समझ में आया?

नीचे (फुटनोट में) है न! **ज्ञप्तिपरिवर्तन का अभाव होने से जिसके ग्रहणत्यागरूप क्रिया विराम को प्राप्त हुई है...** ग्रहण-त्यागस्वरूप क्रिया विराम को प्राप्त हुई है। **ऐसा होता हुआ,...** नीचे। **ज्ञप्तिक्रिया का बदलते रहना अर्थात् ज्ञान में एक ज्ञेय को ग्रहण करना और दूसरे को छोड़ना सो ग्रहण-त्याग है;...** ज्ञान एक को जाने और जानकर फिर छूटकर दूसरे को जाने, ऐसा ज्ञान में परिवर्तन—पलटा खाना, वह राग हो, तब तक

है। समझ में आया ? राग न हो परन्तु पूर्ण न हो, तब तक वह है। पूर्ण को वह है नहीं। समझ में आया ? **ग्रहण-त्याग है; इस प्रकार का ग्रहण-त्याग वह क्रिया है, ऐसी क्रिया का केवलीभगवान के अभाव हुआ है।** यह ज्ञानपर्याय, आत्मा की पर्याय सर्वज्ञपर्याय—अवस्था एक को जाने और दूसरे को जानने—पकड़ने को दूसरा छोड़े, ऐसा उसे नहीं है। एक समय में सब ज्ञात हो गया है। एक ही आकार हो गया है उसे। समझ में आया ?

ऐसा होता हुआ, पहले से ही समस्त ज्ञेयाकाररूप परिणमित होने से... देखो! एक समय में जितने ज्ञेय अनन्त हैं, उनके ज्ञेयाकाररूप से एक ही समय में अपनी ज्ञान अवस्था हुई है। **पररूप से—आकारान्तररूप से नहीं परिणमित होता हुआ...** इसलिए अब आकार एक प्रकार का पहला हुआ और दूसरा दूसरे प्रकार का हो, ऐसा वहाँ है नहीं। आकारान्तर अर्थात् अन्य आकार ऐसा। अन्य आकार होता है। पहले में एक हो और दूसरे में अन्य आकार—ऐसा है नहीं। उसे एक ही आकार है। लोकालोक को जानने की एक समय की पर्याय हो गयी, एक ही आकार रहा। समझ में आया ? आहाहा! कितनी सीधी बात करते हैं!

एक सर्वज्ञपद परमेश्वरपद... है। निजपद जो है, उसे पर्याय में निजपद की प्राप्ति हुई। इतनी पर्याय—अवस्था जिसे एक समय में जितना है उतना ज्ञात हो गया। एक आकार सबका होना एकरूप पाकर और दूसरे समय में दूसरा आकार है, ऐसा वहाँ रहा नहीं। वह ज्ञप्ति अर्थात् जानने की पलटने की क्रिया का एकरूप पूर्ण जाना, उसका अभाव है। ग्रहण-त्याग का तो अभाव है... समझ में आया ? परन्तु पररूप से परिणमने का अभाव, उसमें से यह निकाला। क्या कहा, समझ में आया ? पाठ में ऐसा है न ? न ग्रहे, पररूप न परिणमे। अर्थात् ज्ञेय का परिवर्तन से परिणमना, वह उसे अब है नहीं। एक को जाना था और दूसरे को जानने के लिये परिवर्तन है, (ऐसा नहीं है)। ग्रहण-त्याग का अभाव है। समझ में आया ? इससे जिसे विराम पाकर अन्त आ गया है। ग्रहण-त्याग का...

और **प्रथम से ही...** पहले क्षण में, पहले क्षण में। **पहले से ही समस्त ज्ञेयाकाररूप...** जितने ज्ञेय हैं, उसरूप से अपना ज्ञानपरिणमन हुआ है। **फिर पररूप से—आकारान्तर...**

पररूप से अर्थात् दूसरा आकार होना और दूसरा भाव होना, ऐसा **नहीं परिणमित होता हुआ सर्व प्रकार से अशेष विश्व को,...** सर्व प्रकार से समस्त विश्व को (अर्थात्) तीन काल-तीन लोक पदार्थ को **(मात्र) देखता-जानता है।** परिवर्तन है नहीं, मात्र देखता-जानता है। समझ में आया? कितनी बात की है आचार्यों ने! इसकी टीका है अमृतचन्द्राचार्य की। पूर्ण ज्ञान है, उसे स्वभाव... नीचे भी ऐसा स्वभाव है कि पर का ग्रहण-त्याग है नहीं। तो केवलज्ञानी को भी ग्रहण-त्याग नहीं। समझ में आया?

पश्चात्? कि परिवर्तन नहीं। परिणमित है। वह स्वयं एक समय में लोकालोक जैसा है (उसरूप) परिणमित है। एक समय में एक आकाररूप हो गया है। समझ में आया? उसे दूसरे आकाररूप होना नहीं। परिणमन एकरूप हो गया है, ऐसा कहते हैं। दूसरे आकार अर्थात् एक समय में एक को जाने, दूसरे समय में दूसरे को, ऐसा उसे परिवर्तन-परिणमन नहीं। एक आकाररूप परिणमन परिणम गया है। आहाहा!

यह क्या? ऐसे धर्म की बात क्या हो? भाई! यह धर्म तेरी दशा के फलरूप से ऐसा फल आवे, वह धर्म का फल ऐसा अथवा तेरा धर्म अर्थात् स्वभाव इतना है। आहाहा! समझ में आया? अरे! चौरासी के भटकना पाट में पड़ा, उसे यह क्या चीज़ है, उसकी दरकार नहीं। समझ में आया? और मिले तो ऐसे उल्टे कहनेवाले मिले धर्म के नाम से कि जो यह धर्म नहीं और धर्म की चीज़ का क्या फल है, उसकी जिसे खबर भी नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, अहो! एक समय में पहले से पूरा परिणमा होने से, फिर पररूप से अर्थात् आकारान्तररूप से—दूसरे आकाररूप से होना, वह नहीं। **सर्व प्रकार से अशेष विश्व को, (मात्र) देखता-जानता है।** बस, एक समय, एक समय। **इस प्रकार (पूर्वोक्त दोनों प्रकार से)...** दोनों प्रकार से। ग्रहण करना-छोड़ना नहीं और आकारान्तर होना नहीं। **उसका (आत्मा का पदार्थों से) अत्यन्त भिन्नत्व ही है।** आहाहा! ग्रहण करना-छोड़ना नहीं, इससे भिन्न है और ज्ञान में परिवर्तन नहीं अब, इसलिए पर से अत्यन्त अकेला भिन्न हो गया है। समझ में आया?

भगवान चैतन्यस्वरूप की सत्ता में, स्वभाव में तो सर्वज्ञपद ही पड़ा है। निजपद

सर्वज्ञपद है उसका। उसको अवलम्बकर श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति प्रगट करके, उससे आगे बढ़कर एकाग्र होकर... वास्तव में वह शुद्ध उपयोग का फल हुआ है। समझ में आया? परन्तु वास्तव में पश्चात् भी केवलज्ञान उत्पन्न (होने के) काल में भी वह सर्वज्ञपद है, उसे एकाकार—बहुत जोर से एकाकार हुआ, तब केवलज्ञान का परिणमन हो जाता है। समझ में आया? उस केवलज्ञान में समस्त वस्तुओं को ग्रहण-छोड़ने की क्रिया का अभाव है और एक को जानना और फिर दूसरे को जानना, ऐसे परिवर्तन की ज्ञप्तिक्रिया का भी अभाव है। समझ में आया? ... यह समझना पड़े? परन्तु सुन तो सही! तेरा द्रव्यस्वभाव कितना? गुणस्वभाव कितना और पर्यायस्वभाव कितना? जितना है उतना न माने, न जाने वहाँ तक आत्मा को जाना नहीं। और आत्मा को जाने बिना भटकना बन्द पड़ता नहीं। समझ में आया?

(आत्मा का पदार्थों से) अत्यन्त भिन्नत्व... अत्यन्त और भिन्नपना **ही है।** समझ में आया? है न '**विविक्तत्वमेव**'।'**एवमस्यात्यन्तविविक्तत्वमेव**' सर्वज्ञ परमात्मा किसी के कर्ताहर्ता नहीं, किसी को ग्रहण-छोड़नेवाले नहीं और उनकी पर्याय में पर को जानने का एक जानकर दूसरा जाने, ऐसा भी है नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आत्मा की सर्वज्ञदशा ऐसा उसका रूप, वह पर को ग्रहे-छोड़े नहीं। ऐसी क्रिया का अभाव और एक को जानकर फिर दूसरे को जाने, ऐसी परिवर्तन की क्रिया का अभाव। ऐसी उनकी अवस्था एकरूप हो गयी है। उन्हें—सर्वज्ञ को परमेश्वर परमात्मा धर्म के फलरूप से कहते हैं।

गजब बात है प्रवचनसार! इसका नाम तत्त्वदीपिका है न? तत्त्वदीपिका है इस टीका का नाम। तत्त्व को बतानेवाली दीपिका—दीपक है। तत्त्व को बतलानेवाला दीपक-दीपक। समझ में आया? आत्मद्रव्यतत्त्व, गुणतत्त्व और पर्याय पूर्ण तत्त्व को बतलानेवाली यह दीपिका है, यह प्रवचनसार की टीका। समझ में आया? नवरात्रि में करते हैं न गरबा में? दीपक। ... दीपक। भ्रमणा... भ्रमणा... भ्रमणा... वह तो ऐसा है कि आत्मा को प्रदेश-प्रदेश में अंश में उघाड़ है, वह गरबा। छिद्र है न वह थोड़े-थोड़े हैं और अन्दर में पूरा दीपक जलता है पूरा पूर्ण। समझ में आया? चैतन्यदीपक पूरा

जलता है। उसके उघाड़ में जरा छिद्र हैं थोड़े-थोड़े। वह पूर्ण है, उसका आश्रय ले तो वे छिद्र मिट जायें और पूरा आत्मा पूर्ण हो जाये। लो, यह गरबा आ गया इसमें। समझ में आया? मूल तो यह छिद्र चेतन के अंश हैं और अन्दर पूरा दीपक जलता है और यहाँ थोड़ा-थोड़ा दिखता है, परन्तु पूरा जलता है अन्दर। बाहर में प्रगट में इतना। समझ में आया? ऐसा चैतन्यदीपक भगवान अन्तर है, उसकी अन्तर एकाग्रता होने से उसका सर्वज्ञपद पर्याय में प्रगट हो जाता है। अंश अंश में जानता है, यह रहता नहीं। लो, एक को जाने और दूसरे को जाने, ऐसा उसे रहता नहीं। पूरा भगवान तीन काल-तीन लोक को एक समय में परिणम जाता है। उसे पूरा आत्मा और उसे सर्वज्ञ, उसे दिव्यशक्ति धारक देव और उसे परमात्मा तथा परमेश्वर कहा जाता है। इससे दूसरे प्रकार से कल्पे तो वह देव के स्वरूप को नहीं जानता। समझ में आया?

भावार्थ :- केवली भगवान सर्व आत्मप्रदेशों से... कथंचित् लेंगे। **अपने को ही अनुभव करते रहते हैं;...** पर को नहीं जानते, ऐसा कहते हैं। अपनी पर्याय को ही अनुभवते हैं, वे कहीं पर को अनुभवते नहीं। **इस प्रकार वे परद्रव्यों से सर्वथा भिन्न हैं।** भगवान आत्मा अभी भिन्न है और पर्याय में पूर्ण हो गया, तब सर्वथा है। **अथवा....** वह अधूरी पर्याय है न? उससे भिन्न है। वरना तो पूर्ण-पूरी हो जाये, ऐसा कहते हैं।

केवलीभगवान को सर्व पदार्थों का युगपत् ज्ञान होता है... एक समय में। है न यह प्रथम से एक समय में। एक समय में सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग, एक समय में सर्वज्ञपर्याय एक समय में पूर्ण जानकर केवल (ज्ञान) होता है। **उनका ज्ञान एक ज्ञेय में से दूसरे में और दूसरे से तीसरे में नहीं बदलता...** समझ में आया? **तथा उन्हें कुछ भी जानना शेष नहीं रहता,...** जानने का कुछ बाकी नहीं। **उनका ज्ञान किसी विशेष ज्ञेयाकार को जानने के प्रति भी नहीं जाता;...** विशेष जानने के लिये ढलता नहीं, पूर्ण ज्ञात हो गया है। आहाहा! **इस प्रकार भी वे पर से सर्वथा भिन्न हैं।** विशेष बात.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ७, शनिवार, दिनांक २८-०९-१९६८
गाथा - ३२ से ३४, प्रवचन - २६

यह ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन अधिकार है। केवलज्ञानी का ज्ञान या स्वरूप वह तीन काल-तीन लोक के पदार्थों को एक ही समय में एक ही आकार से जानता है। पहले कुछ थोड़े जाने और दूसरे बाद में, ऐसा उन्हें परिवर्तन नहीं होता। इसलिए पर से अत्यन्त भिन्न हैं और **(जो...)** यह कोष्ठक में यहाँ से शुरु होता है। उस **जीव की जाननक्रिया बदलती हो...** जानने की अवस्था एक को जाने और फिर दूसरे को जाने, ऐसे पलटा खाती हो, **तभी उसे विकल्प (पर-निमित्तक राग-द्वेष) हो सकते हैं...** ऐसा चाहिए। परन्तु उसे पलटा खाती नहीं; इसलिए राग-द्वेष उसे होते नहीं, ऐसा। **और तभी इतना परद्रव्य के साथ का सम्बन्ध कहलाता है।** वे राग-द्वेष होते हों, इस अपेक्षा की बात है, हों! सम्बन्ध है बाहर का। परन्तु यहाँ तो पलटा खाता हो, राग-द्वेष हो तो परद्रव्य के साथ सम्बन्ध हो, इतना यहाँ सिद्ध करना है। केवली को वह पलटा होता नहीं, इसलिए राग-द्वेष होते नहीं। इसलिए परद्रव्य के साथ उन्हें सम्बन्ध होता नहीं। समझ में आया?

किन्तु केवलीभगवान की ज्ञप्ति का परिवर्तन नहीं होता,.. लो! आत्मा ज्ञानस्वरूपी तो है, उसके अन्तर में रमणता द्वारा जो ज्ञानशक्तिरूप से पूर्ण था, वह पर्यायरूप से—अवस्थारूप से पूर्ण हुआ, ऐसे आत्मा को अर्थात् भगवान को **ज्ञप्ति का परिवर्तन नहीं होता,..** उन्हें जानने की पर्याय में जानने की क्रिया में पलटा नहीं। परिणमन है। परन्तु थोड़ा जानना और फिर दूसरा जानना, ऐसा पलटा नहीं है। समझ में आया? **इसलिए वे पर से अत्यन्त भिन्न हैं।** भगवान आत्मा अपने ज्ञानस्वरूप की पूर्ण प्राप्ति की, इसलिए वे परमात्मा पर से अत्यन्त पृथक् और भिन्न हैं।

इस प्रकार केवलज्ञान प्राप्त आत्मा... अकेला ज्ञान जो स्वरूप, ऐसे भगवान आत्मा को **पर से अत्यन्त भिन्न होने से...** पर से अत्यन्त भिन्न होने से। **और प्रत्येक आत्मा स्वभाव से केवलीभगवान जैसा ही होने से...** लो! आत्मा ज्ञ—स्वरूप है, ज्ञ—

स्वरूप है। ज्ञ—स्वरूप कहो या ज्ञानस्वरूप कहो या सर्वज्ञस्वरूप कहो या केवली भगवानस्वरूप कहो। ऐसा जिसका स्वभाव है अकेला केवलज्ञान। केवल अर्थात् अकेला ज्ञान। बस! वह ज्ञान है, वह परिपूर्ण ही है। परिपूर्ण है, वह शक्तिरूप यहाँ है। सर्वज्ञ को व्यक्तिरूप प्रगट पर्याय हो गयी है। बाकी आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है। समझ में आया? वस्तु है आत्मा, और पदार्थ है न? तो उसका स्वभाव मुख्यरूप से तो ज्ञान है कि जो ज्ञान स्व को जाने, पर को जाने, ऐसा जो ज्ञान आत्मा का स्वभाव, वह तो केवली की जैसी एक समय की परिपूर्ण पर्याय है, वैसा ही उनका एक समय का केवल—अकेला ज्ञान परिपूर्ण है। समझ में आया?

प्रत्येक आत्मा स्वभाव से केवलीभगवान... देखो! अनन्त आत्मायें। फिर अभव्य का हो या भव्य का हो, निगोद का हो या नित्यनिगोद में हो या निगोद में से बाहर निकला हुआ हो, भगवान वस्तु है न वह, वस्तु है न! तो वस्तु का स्वभाव है न! वस्तु तो स्वभाववान कहलाती है। तो वस्तु है, उसका स्वभाव हो न! तो स्वभाव उसका स्व-अपना ज्ञानभाव है। बस, वह ज्ञानभाव से परिपूर्ण ही आत्मा है। जेठालालभाई! समझ में आया? और परिपूर्ण है तो परिपूर्ण पर्याय में प्रगट होता है। इसलिए सब भगवान आत्मा केवलज्ञानस्वभावी हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसमें पुण्य-पाप का स्वभाव या उदयभाव का स्वभाव उसमें नहीं है, तथा अपूर्ण ज्ञान, ऐसा उसका स्वभाव नहीं हो सकता। द्रव्य है न वस्तु। वस्तु है, एक है, अखण्ड है, इसलिए उसका ज्ञान सामर्थ्य सम्पूर्ण है। है न शब्द यह? जीव एक अखण्ड सम्पूर्ण वस्तु द्रव्य होने से उसका ज्ञान सामर्थ्य सम्पूर्ण है। कौने में-कौने में (लिखा) है। बाहर आकर देखना। समझ में आया? इसलिए सर्वज्ञ दिखता है तुमको? देखो!

यह एक-एक जीव। है न? जीव एक और अखण्ड सम्पूर्ण। है न? द्रव्य वस्तु है न, वस्तु है न! वस्तु होने से, द्रव्य होने से उसका जो ज्ञानस्वभाव है, गुणस्वभाव है, वह सम्पूर्ण ही है। समझ में आया? उसके अन्तर में एकाकार होने से पर्याय में सम्पूर्ण हो जाता है। इसलिए कहते हैं कि वीतराग हो, वह केवलज्ञान पाता है। सम्पूर्ण वीतराग हो, वह सम्पूर्ण केवलज्ञान पाता है। अर्थात् कि जो शक्तिरूप से अकेला केवलज्ञान का

पिण्ड ही है, वह आत्मा। समझ में आया? आत्मा अर्थात् ज्ञान का पूरा रूप, पूरा स्वभाव। पर्याय की अपेक्षा बाद में। भगवान को पर्याय में परिपूर्ण हो गया। यहाँ परिपूर्ण ही वस्तु है। समझ में आया?

प्रत्येक आत्मा स्वभाव से... अपनी शक्ति से—उसके सत्त्व से—आत्मा के अन्तर तत्त्व से—भाव से **केवलीभगवान जैसा ही होने से...** वह केवली भगवान जैसा होने से **निश्चय से प्रत्येक आत्मा पर से भिन्न है।** राग से भिन्न है, कर्म से भिन्न है। समझ में आया? उस प्रत्येक आत्मा का ऐसा स्वरूप है। आहाहा! ऐसे आत्मा को—अखण्ड एकरूप स्वभाव को—दृष्टि में लेना, उसे अनुभव कहा जाता है, उसे धर्म कहा जाता है। लो!

★ ★ ★

गाथा - ३३

अब केवलज्ञानी को और श्रुतज्ञानी को अविशेषरूप से दिखाकर... दोनों को समान दिखलाते हैं अब। कहते हैं कि यहाँ केवलज्ञानी कहा न। अब यहाँ श्रुतज्ञानी साधक हुए, वे भी उनके जैसे ही हैं केवली जैसे। शक्ति से सभी आत्मा समान कहे, अब यहाँ पर्याय में भी श्रुतज्ञानी और केवलज्ञानी समान ही हैं, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? **केवलज्ञानी को और श्रुतज्ञानी को अविशेषरूप से...** अविशेष अर्थात् सामान्यपने। विशेष भेद किये बिना सामान्यपने दर्शाकर **विशेष आकांक्षा के क्षोभ का क्षय करते हैं...** विशेष जानने की इच्छा के क्षोभ को नाश करते हैं। आहाहा! **(अर्थात् केवलज्ञानी में और श्रुतज्ञानी में अन्तर नहीं है, ऐसा बतलाकर विशेष जानने की इच्छा के क्षोभ को नष्ट करते हैं) :-** ऐसा जानना और ऐसा जानना। वह जाननेवाला है, उसे जाना और अनुभव किया, वह केवली जैसा ही है, कहते हैं। समझ में आया? यह परोक्ष है और वे प्रत्यक्ष हैं, इतना भेद। समझ में आया? विशेष जानना... जानना... जानना, ऐसी जो आकांक्षा, कुछ इच्छा, ऐसे क्षोभ का नाश करते हैं। भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसे अनुभव किया, उसे दृष्टि में लेकर भावश्रुतज्ञान द्वारा वेदन

किया, जाना, अनुभव किया। बस, स्थिरता का थोड़ा अन्तर हो श्रुतज्ञानी और केवलज्ञानी में। समझ में आया? परन्तु वस्तु की स्थिति से देखने पर वह केवली और श्रुतकेवली दोनों एकसरीखे हैं। ३३ (गाथा)।

जो हि सुदेण विजाणदि अप्पाणं जाणगं सहावेण।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोगप्पदीवयरा॥३३॥

सु-श्रुतज्ञान द्वारा जो जाने, ज्ञानस्वभावी आतम को।
लोक-प्रकाशक ऋषिगण उसको, कहते श्रुतकेवली अहो॥३३॥

देखो! भगवान के मुख में ऐसा आया है, ऐसा स्वयं कहते हैं। भगवान ऐसा कहते हैं, हों! लोक के जाननेवाले श्रुतकेवली कहते हैं।

अन्वयार्थ :- जो वास्तव में श्रुतज्ञान के द्वारा... भावश्रुतज्ञान द्वारा **स्वभाव से ज्ञायक (अर्थात् ज्ञायकस्वभाव)...** जिसका स्वभाव ही अकेला ज्ञायकस्वभाव है, उसे भावश्रुतज्ञान द्वारा उस ज्ञायकस्वभाव को। देखा! यह ज्ञायकस्वभाव को—जाननस्वरूप को भावश्रुतज्ञान द्वारा, ऐसा। **आत्मा को जानता है, उसे लोक के प्रकाशक ऋषीश्वरगण श्रुतकेवली कहते हैं।**

टीका :- जैसे भगवान,... देखो! ज्ञायकभाव भगवान आत्मा को केवलज्ञानी जैसे पर्याय से आत्मा को जानते हैं, वैसे भगवान ज्ञायकभाव आत्मा को श्रुतज्ञानी भी जानता है। समझ में आया? भगवान आत्मा... **युगपत् परिणमन करते हुए समस्त चैतन्यविशेषयुक्त...** चैतन्य की पर्याय जो है, वह समस्त चैतन्य की विशेष अवस्था सब प्रगट हो गयी है। **युगपत् परिणमन करते हुए समस्त चैतन्यविशेषयुक्त केवलज्ञान के द्वारा,...** एक साथ परिणमते। चैतन्य के विशेष एकसाथ परिणमते हैं, ऐसा कहते हैं। उसमें कोई पहले थोड़ा और बाद में (विशेष जाने), उसका क्रम उसे नहीं है। श्रुतज्ञानी में जरा क्रम है, ऐसा कहेंगे। यहाँ **युगपत् परिणमन करते हुए समस्त चैतन्यविशेष...** चैतन्य की विशेष अवस्थायें सब जितनी हैं, वे पूरी उन्हें **केवलज्ञान द्वारा...** विशेषोंवाले केवलज्ञान द्वारा, ऐसा। ऐसे **विशेषयुक्त केवलज्ञान के द्वारा,...** देखो! अब क्या कहते हैं?

अनादिनिधन... सामान्य वस्तु चैतनय है अनादि-अनन्त है, अनादिनिधन। अनादि

अर्थात् अनन्त। **(चैतन्यसामान्य आदि तथा अन्त रहित है)**। नीचे (अर्थ) किया है। चैतन्य सामान्य जो वस्तु है, सामान्य भेदरहित एक वस्तु चैतन्य, वह **आदि तथा अन्त रहित है। निष्कारण=जिसका कोई कारण नहीं है ऐसा; स्वयंसिद्ध; सहज** है। सत् ज्ञायक, सत् ज्ञायक सत्। ज्ञानस्वरूप जो त्रिकाल एकरूप सामान्य सहज स्वयंसिद्ध है। उसे कोई कारण नहीं। कोई हेतु से, कारण से उत्पन्न है, ऐसा है नहीं। **असाधारण...** है। **जो अन्य किसी द्रव्य में न हो, ऐसा**। ऐसा ज्ञानस्वभाव कोई जड़ में नहीं।

स्वसंवेद्यमान=स्वतः ही अनुभव में आनेवाला। ऐसा जो भगवान आत्मा का स्वरूप स्व अर्थात् स्वयं से संवेद्य प्रत्यक्षरूप से वेदन में आता हुआ ऐसा **चैतन्यसामान्य जिसकी महिमा है,...** चैतन्यसामान्य त्रिकाली वस्तु जिसकी महिमा है, अब यहाँ कहते हैं। **तथा जो चेतकस्वभाव से एकत्व होने से...** ऐसा वापस एकपना सिद्ध करना है न! **चेतकस्वभाव=दर्शक-ज्ञायक**। वह दर्शक-ज्ञायक द्वारा—चेतकस्वभाव द्वारा चैतन्य जो सामान्य जो त्रिकाल है, वह **चेतकस्वभाव से एकत्व होने से केवल है**। एकपना होने से केवल है। एकपना होने से **(अकेला, निर्भेल...)** मिलावट बिना का, मिश्र बिना का अकेला **(शुद्ध, अखण्ड) है...** समझ में आया? **ऐसे आत्मा को आत्मा से...** ऐसे आत्मा को आत्मा से **आत्मा में अनुभव करने के कारण...** कौन? केवलज्ञान द्वारा। केवलज्ञान द्वारा ऐसा आत्मा अनुभव करते हैं।

वह केवल ऐसे एकरूप चैतन्यसामान्य जो त्रिकाल और उसका चेतकस्वभाव अर्थात् कि देखना-जानना स्वभाव द्वारा जिसका एकपना है, ऐसा। एक है न? एक है एक वस्तु है। एक, ऐसा जो केवल निर्भेल, शुद्ध है, ऐसे आत्मा को... देखो! केवलज्ञानी की बात चलती है यह। उस केवलज्ञान द्वारा ऐसे आत्मा को, केवलज्ञान द्वारा ऐसे आत्मा को। लो, ठीक! श्रुतज्ञानी के साथ मिलाया है वापस। आत्मा से—अपने निर्विकल्प ज्ञान से और आत्मा में अन्दर में अनुभवने के कारण अपने ज्ञान की पूर्ण दशा के अनुभव के कारण केवली है। अकेले को अनुभव करते हैं, इसलिए अकेला है, इसलिए केवली है, ऐसा कहते हैं। केवली है अर्थात् तीन काल को जाने, वह यहाँ बात नहीं।

भगवान आत्मा अनादि-अनन्त निष्कारण, असाधारण, असाधारण, स्वसंवेद्यमान ऐसा चैतन्यसामान्य जिसकी त्रिकाल महिमा है और चेतक जिसका स्वभाव दर्शन-ज्ञान

है, ऐसे आत्मा को केवलज्ञान द्वारा अनुभव करते हैं, जानते हैं। पर की बात यहाँ अभी नहीं है। समझ में आया? इसलिए श्रीमद् में लिया न!

केवल निज स्वभाव का अखण्ड वर्ते ज्ञान,
कहिये केवलज्ञान वह देह होता निर्वाण।

अकेला निश्चय लिया है। समझ में आया?

एकत्व होने से केवल है... केवली सबको जानते हैं, इसलिए केवली- ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वस्तु जो चैतन्यसामान्य, उसमें दर्शन-ज्ञान का स्वभाव है, ऐसे को ऐसा अकेला है, उसे जानते हैं, एक को जानते हैं; इसलिए केवली, केवल को जानते हैं, इसलिए केवली। समझ में आया? आहाहा! बस! यह तो एक केवली की बात की।

अब आचार्य कहते हैं कि **हम भी...** भाषा देखो! आहाहा! भगवान, युगपद् समस्त चैतन्य के विशेषोंवाले केवलज्ञान द्वारा अनादि-अनन्त निष्कारण असाधारण ऐसे चैतन्यसामान्य को—जो चेतकस्वभाव द्वारा जो है उसे—अकेले को, अकेले को, मिलावट रहित को, पर की अपेक्षारहित को, अकेले शुद्ध को भगवान केवली भी जानते हैं, अनुभव करते हैं। समझ में आया? अब आचार्य पंचम काल के मुनि... समझ में आया? जिन्हें अवधिज्ञान नहीं, मन:पर्ययज्ञान नहीं, केवलज्ञान नहीं। नहीं तो भी कहते हैं कि हम तो केवल आत्मा को अनुभव करते हैं (और) वह भी केवल अकेले आत्मा अनुभव करते हैं। हमारे में अन्तर कितना है, वह हम कहेंगे अभी। समझ में आया?

हम भी, क्रमशः परिणमित होते हुए... यहाँ पूरा ज्ञान पूर्ण प्रगट नहीं हुआ, इसलिए क्रम से परिणमते। उसमें (केवलज्ञान में) युगपद परिणमते थे। चैतन्य के विशेष एक समय में पूरे परिणमते थे। और **क्रमशः परिणमित होते हुए कितने ही चैतन्यविशेषों से...** ऐसा। समझ में आया? भगवान को युगपद और समस्त चैतन्यविशेषवाले यह **क्रमशः परिणमित होते हुए कितने ही चैतन्यविशेषों से युक्त श्रुतज्ञान के द्वारा,...** आहाहा! समझ में आया? वे और क्या जानते हैं? शब्द सब वह के वह वापस **अनादिनिधन-निष्कारण-असाधारण-स्वसंवेद्यमान-चैतन्यसामान्य**

जिसकी महिमा है तथा जो चेतकस्वभाव के द्वारा एकत्व होने से केवल (अकेला) है... जो केवल है। **ऐसे आत्मा को आत्मा से आत्मा में अनुभव करने के कारण श्रुतकेवली हैं।** सब एक ही कर डाला। समझ में आया?

भगवान आत्मा पर के, राग की मिलावटरहित अकेला चैतन्यस्वभाव जो दर्शन-ज्ञानमय ऐसा प्रभु का—आत्मा का स्वरूप, उसे हम क्रम से होते... होते अर्थात् परिणमते। एक साथ नहीं चैतन्य के विशेष परिणम गये। **क्रमशः परिणमित होते हुए कितने ही चैतन्यविशेषों से युक्त श्रुतज्ञान के द्वारा,...** कितने ही और क्रम से इतना अन्तर है। समझ में आया? परन्तु वह केवल है, उसमें अन्तर नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो भाई! आहाहा! केवल जो उसे अनुभव में अन्तर नहीं, ऐसा कहना है यहाँ। समझ में आया? यह आत्मा केवल—अकेला निर्भेल—मिलावटरहित, राग के परिणामरहित अकेला अभेद चैतन्यस्वरूप अकेला तत्त्व ज्ञायकस्वरूप, उसे केवलज्ञानी **युगपत् परिणमन करते हुए समस्त चैतन्यविशेषयुक्त केवलज्ञान के द्वारा,...** अकेले को जानते है, इसलिए केवली हैं। इसलिए वे केवली हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

हम भी... आहाहा! देखो तो सही आचार्यों को! छद्मस्थ मुनि हैं। यह अमृतचन्द्राचार्य स्वयं ९०० वर्ष (पहले) कहते हैं। समझ में आया? न्याय डाला है इतना।

जो हि सुदेण विजाणदि अप्पाणं जाणगं सहावेण।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोगप्पदीवयरा॥३३॥

यहाँ तो श्रुतकेवली की बात है। निकाली वापस केवलज्ञानी के साथ। भाई! पाठ में तो श्रुतकेवली की बात है। '**जो हि सुदेण विजाणदि**' किसे? '**अप्पाणं जाणगं सहावेण**' भावश्रुतज्ञान द्वारा, भावश्रुतज्ञान द्वारा जो '**अप्पाणं जाणगं सहावेण**' ज्ञायक-स्वभाव को '**अप्पाणं**' अकेले को जाने, वह श्रुतकेवली, उसे श्रुतकेवली ऋषिश्वर कहते हैं। यह पाठ है। समझ में आया? आहाहा! १४३ में यह कहा है न, श्रुतकेवली के साथ नहीं? समयसार में। श्रुत के अवयव जिसे नहीं। उसे व्यवस्थित मिलाया है वहाँ १४३।

कहते हैं, यहाँ तो '**सुदेण विजाणदि अप्पाणं जाणगं सहावेण**' ऐसा। आत्मा श्रुतज्ञान द्वारा ज्ञानस्वभाववाला, उसे जानता है, उसे अनुभव करता है, उसे श्रुतकेवली

लोक के तीन काल-तीन लोक के जाननेवाले सन्त, ऋषिश्वर उसे श्रुतकेवली कहते हैं। उसमें से यह निकाला कि वे श्रुतकेवली उसे कहते हैं, परन्तु वह केवलियों ने जो केवलरूप से जाना, उसे हमने जाना, इसलिए हम भी श्रुतकेवली हैं। समझ में आया? आहाहा!

उसी प्रकार हम भी,... ऐसा। जैसे भगवान हैं, वैसे हम भी। अब उस गाथा का अर्थ यह अब आता है। उसके साथ मिलाते हैं। समझ में आया? क्रम से होते, एक साथ चैतन्य की सब विशेष दशायें एक समय में परिणमी नहीं। और **कितने ही चैतन्यविशेषों से युक्त...** अर्थात् चैतन्य की पर्यायों के विशेष भागवाला ऐसा जो श्रुतज्ञान। उस श्रुतज्ञान का विशेषण। अनादि-अनन्त भगवान आत्मा, यह आत्मा अनादि-अनन्त, निष्कारण। कारण कैसा? वस्तु है, उसे कारण कैसा? सत् है। **असाधारण—**जो ज्ञानगुण दूसरे में नहीं, चैतन्यपना दूसरे में नहीं। ऐसा **स्वसंवेद्यमान...** स्वयं अपने से प्रत्यक्ष वेदन में आये ऐसा यह **चैतन्यसामान्य जिसकी महिमा है...** समझ में आया? **तथा चेतकस्वभाव द्वारा एकत्व होने से...** उसका स्वभाव चेतन का एक है। यहाँ केवलज्ञान के साथ मिलाते हैं न! केवलज्ञान पर्याय एक को जानती है, वैसे हम भी एक को जानते हैं। भले क्रम से और थोड़े विशेषवाला हो परन्तु जानने का जो स्वरूप है, वह एक ही पूरा है। क्या कहा, समझ में आया इसमें? पर्याय में क्रम से परिणमन और कुछ चैतन्य के कितने ही विशेषोंवाले, इतना भले अन्तर हो, परन्तु केवल असाधारण चिदानन्द भगवान को जानना, वह तो हमारे और उन्हें दोनों को एक समान है। आहाहा! समझ में आया? जादवजीभाई! ऐसी बातें हैं यह। आहाहा!

भगवान आत्मा... कहते हैं कि **हम भी...** आहाहा! हमारे में कितने ही चैतन्य के परिणमन—विशेष, वे एक साथ नहीं परिणमते, क्रम-क्रम से परिणमते हैं और कितने ही चैतन्य के विशेष हैं। सब विशेष जो चाहिए, वे केवलज्ञानी को हैं। इतना भले अन्तर हो, परन्तु उसे जानने का जो उन्होंने जाना अकारण, असाधारण, अनादि-अनन्त एक अभेल, अभेल अर्थात् मिलावटरहित निर्भेल उसे जाना, हम भी उसे जानते हैं, ऐसा। आहाहा! समझ में आया? इतने शास्त्र जाने या यह अमुक जाना या भगवान ने बहुत तीन काल जाना, उसका हमारे काम नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : आत्मा को अनुभव किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो आत्मा वस्तु जो अखण्डानन्दकन्द चैतन्यस्वभाव द्वारा भरपूर प्रभु, एकरूप मिलावटरहित शुद्ध तत्त्व, उसे हम ज्ञेय बनाकर अनुभव करते हैं, भगवान ने भी उसे ज्ञेय बनाकर केवलज्ञान द्वारा उसे अनुभव करते हैं। आहाहा! समझ में आया? देखो, यह दिगम्बर सन्तों के कथन! समझ में आया? ऐसी बात अन्यत्र नहीं हो सकती। स्वयं चारित्रसहित हैं और थोड़ा अन्तर है परिणमन में। सब चैतन्य के विशेष-पर्यायें पूरी भले प्रगट नहीं हुई। समझ में आया? और क्रम क्रम से तो परिणमते हैं। समझ में आया? तथापि उस क्रम के और कितने ही विशेषों द्वारा जाननेवाला जो ज्ञात होता है, वह तो ज्ञ पूरा अखण्ड एक है। उसे—केवल को हम जानते हैं, इसलिए हम श्रुतकेवली हैं। वे भी केवल को जानते हैं, इसलिए केवली हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इसमें क्या धर्म कहा?

कहते हैं कि भाई! धर्म अर्थात् धर्मी ऐसा जो आत्मा अकेला एक स्वरूप है, ऐसा जो आत्मा, उसे वर्तमान ज्ञान की दशा द्वारा उसका अनुभव करना, उसका लक्ष्य, दृष्टि करके उसका वेदन करना, इसका नाम धर्म। इसका नाम धर्म। कहीं पुण्य-पाप और विकल्प और निमित्त में जोड़े, वह कहीं धर्म है नहीं। धर्म अर्थात् जन्म-मरण के अन्त को लाने की यह एक दशा और मोक्ष को लाने की यह दशा। अर्थात् केवलज्ञान को प्राप्त करने की यह दशा। कहा न, साम्यभाव से केवलज्ञान होता है और उसका वर्णन करते... करते... करते सर्वज्ञ हुआ जाता है और एक समय में ऐसा है और भूत-भविष्य सब है, तथापि उसकी ज्ञान की विशेषतायें जो हैं, उन विशेषताओं का यहाँ काम नहीं, कहते हैं।

जो यह ज्ञान द्वारा भी एक आत्मा असाधारण को स्वयं अनुभवता है, जानता है, बस इतना हमारे भी ऐसा है। समझ में आया? आत्मा की भावश्रुतज्ञान—वर्तमान भावश्रुतज्ञान, भावश्रुतज्ञान में पूरे चैतन्य के विशेष भले नहीं। समझ में आया? और उसमें क्रम-क्रम से परिणमन है। विशेष, वापस विशेष विशेषण दूसरी बार आवे, तीसरी बार आवे, ऐसे बहुत प्रकार आवे। समझ में आया? एक साथ नहीं सब। तथापि उसमें एक साथ न होने पर भी, भगवान आत्मा अन्दर असाधारण अनादि-अनन्त

भगवान चैतन्यप्रभु, यह उसे हम अवलम्बनकर अनुभव करते हैं; इसलिए एक को अनुभव करते हैं, इसलिए हम केवली हैं अर्थात् केवल हैं, अर्थात् श्रुतकेवली हैं। उस एक को अनुभव करे, इसलिए भी वह केवली है। अमरचन्दभाई! आहाहा! समझ में आया?

यह वहाँ अर्थ किया है, उस केवल का। समझ में आता है न? पहले केवल का अर्थ नहीं किया था। कोष्ठक में किया था, अकेला निर्भेल और शुद्ध अखण्ड। यहाँ और नीचे कोष्ठक में किया। अब कोष्ठक में नीचे है न! **एकत्व होने से केवल है...** उसमें केवल के अर्थ बहुत किये थे। उसे कोष्ठक में निर्भेल कहकर नीचे उसका अर्थ किया अधिक। **आत्मा निश्चय से परद्रव्य के तथा राग-द्वेषादि के संयोग से रहित...** है। भगवान अजीव से भिन्न है और आस्रव से भिन्न है, ऐसा कहना है। आत्मा वास्तव में परद्रव्य के और पुण्य-पाप के विकल्प के संयोगरहित है, उसे आत्मा कहते हैं। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का कन्द वह आत्मा, एकरूप आत्मा, वह परद्रव्य के और पुण्य-पाप के संयोग के सम्बन्धरहित। **तथा गुणपर्याय के भेदों से रहित...** सामान्य लेना है न यहाँ? अकेला सामान्य चेतन गुण-पर्याय के भेदरहित अकेला अभेद वस्तु **मात्र चेतकस्वभावरूप ही है,...** चेतकस्वभाव। समझ में आया? आत्मा, वह वस्तु हुई। उसका चेतकस्वभाव, वह उसका गुण हुआ। समझ में आया? चेतकस्वभाव ही है। मात्र चेतकस्वभाव ही है। उसका जानना-देखना, वही उसका स्वभाव है, वही वस्तु और उस वस्तु का यह स्वभाव। द्रव्य और उसका स्वभाव, वस्तु, उसका स्वभाव, गुणी का यह गुण पूर्ण।

इसलिए वह परमार्थ से केवल... वह केवल है। परमार्थ से वह केवल है। केवल है अर्थात्? अकेला है। अकेला है अर्थात्? निर्भेल है। निर्भेल है अर्थात्? शुद्ध है। शुद्ध है अर्थात् कि अखण्ड है। समझ में आया? उसे दृष्टि में लेकर अनुभव करना, यह उसका नाम धर्म और वह श्रुतकेवली है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह गाथा में आयेगा न वहाँ नौवीं, दसवीं। समयसार में आता है न! उसे श्रुतकेवली कहते हैं। बारह अंग का पढ़ना, वह द्रव्यश्रुत है। यह आत्मा के एक स्वरूप को अनुभव करना, वह भावश्रुतकेवली है। समझ में आया?

ऐसे आत्मा को... यह सब विशेषण तो समान ही हैं दोनों के। मात्र अन्तर इतना कि क्रम से परिणमते और कितने ही चैतन्यविशेष, बस। **ऐसे आत्मा को आत्मा से आत्मा में...** आत्मा को आत्मा से निर्विकल्प द्वारा आत्मा में अन्दर स्वभाव में **अनुभव करने के कारण...** आत्मा को आत्मा से आत्मा में अनुभव करने के कारण **श्रुतकेवली हैं।** आहाहा! समझ में आया? **(इसलिए) विशेष आकांक्षा के क्षोभ से बस हो;...** विशेष ऐसा कि इस शास्त्र को जानते हैं, यह विशेष जानना, वह सब ठीक है। समझ में आया? अन्तर द्रव्य का अनुभव करना, वही वस्तु है। फिर जानपना कम हो, अधिक हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा जिसमें अकेला चैतन्यस्वभाव ही पड़ा है न प्रभु का। ऐसे भगवान आत्मा को अनुसरकर अनुभव करना, होना, उसे अनुसरकर होना, बस वह धर्म है, वह मोक्ष का मार्ग है, वह बन्ध के छेद का उपाय है और केवलज्ञान की प्राप्ति का भी वह उपाय है। यहाँ तो केवली के साथ तुलना कर दी। उसमें से हमको केवलज्ञान होगा। इस स्थिति में क्रम से परिणमना और चैतन्य के विशेष कितने ही हैं, वे सब टलकर अक्रम से युगपद् परिणमना और सब विशेष एक समय में प्रगट हो जायेंगे, इस कारण से। ज्ञान की न्यूनाधिकता के साथ हमारे कुछ सम्बन्ध नहीं। स्थिरता की थोड़ी-बहुत बात ... वह बात गौण है इसमें। समझ में आया? अर्थ में तो उसे मुख्य कहेंगे। भेद है, वह मुख्य है। स्वरूप स्थिरता की तारतम्यता में भेद ही मुख्य है, ऐसा। मूल तो वहाँ स्वरूप स्थिरता की तारतम्यता का भेद ही मुख्य है। कहेंगे अभी। कहो, समझ में आया? अलौकिक लोकोत्तर गाथा है, मर्म की गाथा है। धर्म का मर्म।

धर्मी ऐसा आत्मा, उसका धर्म अर्थात् ज्ञानस्वभाव से परिपूर्ण चेतक, वह दर्शन। पाठ में जाणकस्वभाव, इतना लिया है न! अर्थ में फिर चेतन डालना पड़ा। ऐसा आत्मा वस्तु अनादि-अनन्त अहेतु, सत् है अर्थात् हेतुरहित, असाधारण कि ऐसा गुण दूसरे किसी अन्य में नहीं, उसे स्वसंवेदन द्वारा चेत लेना, अकेले का अनुभव करना, बस वह धर्म। उस भावश्रुतज्ञान में उसे वेदन करना, वह भावश्रुतज्ञान धर्म है। जिसे जैनशासन कहा १५ गाथा (में)। **'पस्सदि जिणसासणं सव्वं'** इस श्रुतज्ञान द्वारा यह जाना, उसने पूरा जैनशासन जाना। समझ में आया? यह धर्म की पद्धति भी साथ ही बताते हैं। धर्म

की कौनसी क्रिया, वह भी यहाँ साथ में बताते हैं। क्या हो? जगत ऐसे दूसरे रास्ते चढ़ गया है न, इसलिए अन्दर मुड़ना उसे भारी कठिन पड़ता है। ऐसा कि भगवान के दर्शन करें, लो! भगवान के दर्शन करें तो उसमें से होगा या नहीं धर्म?

मुमुक्षु : भक्ति में आया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हो, वह तो निमित्त के कथन हैं। यह (स्व)भगवान के दर्शन करे, तब धर्म होता है। पर भगवान के दर्शन करे तो पुण्यभाव होता है। यह निश्चयदृष्टि और धर्म हो तो उसको—व्यवहार को व्यवहारधर्म कहा जाता है, वरना तो अकेला व्यवहाराभास है। आहाहा! समझ में आया? यह जिनबिम्ब केवलज्ञान बिम्ब नहीं कहा यह? अकेला केवलज्ञान का कन्द ही भगवान आत्मा। केवलज्ञान का कन्द प्रभु है एकरूप। ऐसे आत्मा की दृष्टि करके ज्ञान द्वारा जानकर वेदन करना, उसका नाम धर्म है। बाकी व्रत, नियम, पूजा, भक्ति, और भगवान के दर्शन, वह सब पुण्य विकल्प है; धर्म है नहीं। कहो, समझ में आया? और आज लेख आया है वह। सम्यग्दर्शन तो धर्म नहीं, चारित्र धर्म है। और वृक्ष हो, वह वस्तु है, बीज की कीमत नहीं। वृक्ष हो... इसलिए चारित्र हो (तो सफल है), वरना सम्यग्दर्शन निष्फल है। ऐसा बड़ा लेख आया है जैन गजट (में आया है)। वह चारित्र ग्रहण करे तो समकित का सफलपना कहलाये, वरना समकित का कुछ नहीं। परन्तु समकित में चारित्र का अंश इकट्ठा है, सुन न! यह क्या कहते हैं यहाँ? **चौथे गुणस्थान में भी इस न्याय से श्रुतकेवली है।** भले उस जाति का क्षयोपशम है नहीं। यहाँ तो एक को—केवल को, निर्मल को, अखण्ड को, शुद्ध को अनुभव करे, केवल को अनुभव करे—अकेले को अनुभव करे, इसलिए केवली। केवली भी अकेले को अनुभव करे, इसलिए केवली, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ :- भगवान समस्त पदार्थों को जानते हैं, मात्र इसलिए ही वे 'केवली' नहीं कहलाते,... ऐई! ... इसलिए सब पदार्थों को जानते नहीं? यह तो सिद्ध किया कि पदार्थों को जानते हैं, ऐसा। समझ में आया? सर्वज्ञपर्याय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात होते हैं, परन्तु इससे उन केवली का केवलपना नहीं, कहते हैं। कहो, समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग परमेश्वर जिनेन्द्रदेव **समस्त पदार्थों को जानते हैं, मात्र इसलिए ही वे 'केवली' नहीं कहलाते,...** आहाहा! **किन्तु केवल अर्थात् शुद्ध आत्मा को**

जानने-अनुभव करने से 'केवली' कहलाते हैं। यह वस्तु सिद्ध करते हैं। शुद्ध आत्मा भगवान शुद्ध चैतन्यप्रभु पूरा परमात्मा स्वयं परमात्मा, अप्पा सो परम अप्पा। आत्मा स्वयं ही परमात्मास्वरूप ही स्वयं है अन्दर। समझ में आया? आहाहा! ऐसे **शुद्ध आत्मा को जानने-अनुभव करने से 'केवली' कहलाते हैं।**

केवल (शुद्ध) आत्मा के जानने-अनुभव करनेवाला श्रुतज्ञानी भी 'श्रुतकेवली' कहलाता है। वे केवली, यह श्रुतकेवली। केवल को जानते हैं, इसलिए केवली। तो यह भी केवल को जानता है, इसलिए श्रुतकेवली। आहाहा!

मुमुक्षु : श्रुत निकालकर केवली....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पश्चात् तो वह तो उस सूत्र को निकाल डाले, वह तो श्रुत का वह सूत्र जो है, भगवान की वाणी पुद्‌गल की है वह तो। वह कहीं श्रुत नहीं। वह तो व्यवहारज्ञान है। उस सम्बन्धी उसमें कहा हुआ जो यहाँ ज्ञानरूप परिणमन हुआ, वह ज्ञान है। कहीं भगवान की वाणी ज्ञान नहीं, वह तो पुद्‌गल की पर्याय है। व्यवहार से ज्ञान कहा जाता है। अर्थात् नहीं है और कहना, उसका नाम व्यवहार। समझ में आया?

केवली और श्रुतकेवली में इतना मात्र अन्तर है कि—केवली जिसमें चैतन्य के समस्त विशेष... चैतन्य की समस्त दशायें पूर्ण एक समय में, ऐसा। **एक ही साथ परिणमित होते हैं,... केवली जिसमें चैतन्य के समस्त विशेष एक ही साथ परिणमित होते हैं,...** दो में अन्तर पड़ा न! **ऐसे केवलज्ञान के द्वारा...** ऐसे केवलज्ञान द्वारा **केवल आत्मा का अनुभव करते हैं, जिसमें चैतन्य के कुछ विशेष क्रमशः परिणमित होते हैं, ऐसे श्रुतज्ञान के द्वारा श्रुतकेवली केवल आत्मा का अनुभव करते हैं;...** लो! समझ में आया? देखो! यह ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन का सार। आहाहा! **अर्थात्, केवली सूर्य के समान केवलज्ञान के द्वारा आत्मा को देखते और अनुभव करते हैं,...** सूर्य समान, ऐसा। **श्रुतकेवली दीपक के समान श्रुतज्ञान के द्वारा आत्मा को देखते और अनुभव करते हैं,...** समझ में आया? यह तो उसे दीपक और सूर्य इतना (अन्तर), परन्तु देखने की वस्तु है, वह तो अखण्ड को देखती है दोनों, ऐसा। दीपक द्वारा देखी तो चीज़ देखी, उसने सूर्य द्वारा देखी, वह तो चीज़ देखी, ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार केवलज्ञान द्वारा

देखा तो पूरा आत्मा अखण्ड देखा, श्रुतज्ञान द्वारा देखा तो पूरा अखण्ड आत्मा देखा। समझ में आया? **इस प्रकार केवली और श्रुतकेवली में स्वरूपस्थिरता की तरतमतारूप भेद ही मुख्य है,...** स्थिरता थोड़ी बहुत अन्तर है, परन्तु अन्दर एकरूप को अनुभवने में अन्तर नहीं, एक को अनुभवते हैं, ऐसा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं लेना यहाँ। यहाँ तो सूर्य से देखे चीज़ वह एक ही है, ऐसा कहना है। सूर्य के प्रकाश में भी जो वस्तु देखते हैं, ऐसी ही है। दीपक के प्रकाश में वस्तु देखते हैं, (वह ऐसी ही है), ऐसा लेना है यहाँ। ठीक वजुभाई! यहाँ तो सूर्य के प्रकाश में जो वस्तु देखी है, वह उसे देखता है। दीपक के प्रकाश में जो वस्तु देखता है, वह ऐसा देखता है, ऐसा कहते हैं। यहाँ यह सिद्ध करना है। समझ में आया? केवलज्ञान द्वारा भी वस्तु असाधारण एकरूप शुद्ध है, उसे जानते हैं, अनुभव करते हैं। यह श्रुतकेवली भी एकरूप वस्तु अखण्ड है, उसे जानते हैं, बस! समझ में आया? भावश्रुतज्ञान की महिमा और उस भावश्रुत का आश्रय अकेला द्रव्यस्वभाव। आहाहा! समझ में आया?

स्वरूपस्थिरता की तरतमतारूप भेद ही मुख्य है,... थोड़ी स्थिरता में अन्तर है, इतनी बात। **कम-बढ़ जाननेरूप भेद अत्यन्त गौण है।** हीनाधिक जानने की विशेषता नहीं। **इसलिए अधिक जानने की इच्छा का क्षोभ छोड़कर स्वरूप में ही निश्चल रहना योग्य है।** समझ में आया? **यही केवलज्ञान-प्राप्ति का उपाय है।** लो! बहुत सरस। ३३-३३। जहाँ चैतन्य भगवान पूरा है, उसमें ही दृष्टि देकर अनुभव करनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। विशेष जानने की इच्छा का क्षोभ मिटाकर अन्तर में जाने का बारम्बार प्रयत्न करना चाहिए, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और उस श्रुतज्ञान द्वारा—भावश्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को अनुभव किया—जाना, बस यही केवलज्ञान प्राप्ति का उपाय है। और वह स्थिरता अन्दर चारित्र, वह श्रुतज्ञान साथ में चारित्र भी है न! अन्दर जाना तो उस ओर स्थिर हुआ है न एकाग्र? तब इतनी चारित्रदशा हुई या नहीं? श्रुतज्ञान ज्ञान की अवस्था ज्ञेय स्व अखण्ड के ऊपर गयी तो गयी न कुछ एकाग्रता है या नहीं? एकाग्रता है, इतनी स्थिरता है साथ में। समझ में आया?

ज्ञेय, अखण्ड वस्तु को ज्ञेय किया। ज्ञान हुआ, उसके साथ श्रद्धा हुई, उसमें एकाग्रता अर्थात् स्थिरता भी साथ में ही है। समझ में आया? स्थिरता का अंश न हो और इस ज्ञेय को जाने अकेला, वह किस प्रकार बने? समझ में आया? सर्वज्ञ की पूर्ण स्थिरता है, ऐसा कहते हैं। यहाँ थोड़ी है, तथापि जानने का विषय तो दोनों को एकसरीखा है। इसलिए करके करना यह, अन्तर में श्रुतपने ज्ञान करके अन्दर में अनुभव में बारम्बार रहना, वह करने का, वह धरने का और यह पालने का और यह आचरण है। आहाहा! समझ में आया? अब वह कल (कहे), भगवान की वाणी वह श्रुत है, श्रुत है। ऐसा कहे। वह ज्ञान है और वहाँ से ज्ञान आता है। ऐसा नहीं, भाई! वाणी तो उपाधि है। ज्ञान को निमित्तपना, वह तो उपाधि है, कहते हैं। भगवान की वाणी तो पुद्गलमय है। लो! भीखाभाई! वाणी तो पुद्गलमय है। देखो!

★ ★ ★

गाथा - ३४

अब, ज्ञान के श्रुत-उपाधिकृत भेद को दूर करते हैं... श्रुत अर्थात यह वाणी, ऐसा। **(अर्थात् ऐसा बतलाते हैं कि श्रुतज्ञान भी ज्ञान ही है, श्रुतरूप उपाधि के कारण ज्ञान में कोई भेद नहीं होता) :-** श्रुतज्ञान भी ज्ञान ही है, वह भावश्रुत है, वह ज्ञान ही है, उसके कारण श्रुत को, कोई निमित्त के कारण अन्तर पड़ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? निमित्त जो श्रुत है, वह तो पुद्गल की पर्याय है। वह तो अधिकता की वस्तु है, ऐसा कहते हैं न! उपाधि है। आहाहा! उपकरण कहा है न आगे प्रवचनसार में। वाणी, वचन वे सब उपकरण हैं।

मुमुक्षु : अपवादमार्ग में उसका निषेध नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका?

मुमुक्षु : वाणी का।

पूज्य गुरुदेवश्री : वाणी का निषेध है। अपवाद-फपवाद कुछ नहीं। कहो, जीवणभाई!

मुमुक्षु : उसके आश्रय से....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वहाँ कहाँ ज्ञान था? ऐसा कहते हैं। यहाँ यह बताते हैं। ज्ञान तो उसे कहा, ऐसा यहाँ जाना, वह ज्ञान वह ज्ञप्ति, ज्ञप्ति को ज्ञान कहा जाता है। उस वाणी को ज्ञान कहा जाता है? वाणी तो पर है, उपाधि है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....होने से अपवाद मार्ग को....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपवाद-फपवाद कुछ नहीं यहाँ। अपवाद को निन्दा होती है। है या नहीं? अपवाद तो दोष कहलाता है या नहीं? इसका अपवाद बोला गया, ऐसा नहीं कहते? ऐसा बोलते हैं। निन्दा बोली गयी, ऐसा है। आहाहा! उसे कहते हैं कि वह श्रुत शब्द है न इसलिए मानो सुना, इसलिए ज्ञान हुआ, ऐसा। श्रुत शब्द है सही न? श्रुतकेवली कहा न? इसलिए श्रुत आया तो सुना इसलिए हुआ? समझ में आया? ऐसा नहीं है। देखो! श्रीमद् में ऐसा आता है बारहवें गुणस्थान तक श्रुत का आधार है। आता है, उसमें आता है। यहाँ तो कहते हैं कि श्रुतज्ञान में जो उपाधि थी, वह तो वाणी, उस सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान किया, उस ज्ञान को ज्ञप्ति क्रिया कहा जाता है। कहीं वाणी में ज्ञप्तिपना, ज्ञानपना नहीं। वह तो जड़ है। आहाहा! अरे! भगवान की वाणी को जड़ कहना? यहाँ भगवान स्वयं कहते हैं, देखो! अरे! भगवान की वाणी को जड़ कहा जाये? और उसमें ज्ञान नहीं? उनकी वाणी में ज्ञान नहीं? ऐसा कहा जाये? अमरचन्दभाई! आहाहा! यह यहाँ आचार्य कहते हैं। ३४ (गाथा) लो।

सुत्तं जिणोवदिट्ठं पोग्गलदव्वप्पगेहिं वयणेहिं।
तं जाणणा हि णाणं सुत्तस्स य जाणणा भणिया॥३४॥

पुद्‌गलद्रव्यात्मक वचनों से, श्री जिनवर द्वारा उपदिष्ट।
सूत्रों की जो ज्ञप्ति उसे, श्रुतज्ञान कहा जाना है इष्ट॥३४॥

देखो! जिनउपदिष्ट है, ऐसा लिया, भाई! भगवान ने उपदेश किया है। गाजते हैं? अब चार होने को आये।

अन्वयार्थ :- सूत्र अर्थात् पुद्‌गलद्रव्यात्मक वचनों के द्वारा... लो ठीक! **'जिनोपदिष्टं'। जिनेन्द्र भगवान के द्वारा उपदिष्ट वह...** निमित्त से कथन है। जिन

भगवान ने कही हुई वाणी। लो ठीक! वाणी भगवान ने कही। ऐई! आहाहा! **वह उसकी ज्ञप्ति ज्ञान है** वाणी को जो कहने का आशय है, उसमें स्व-पर बात, उसे यहाँ जाने, उसे ज्ञान कहा जाता है। कहीं वाणी में ज्ञान नहीं। वाणी कहीं ज्ञानस्वरूप नहीं। वह तो पुद्गलस्वरूप है। पुद्गलस्वरूप में कुछ... समझे न? उन लोगों में बहुत बोलते हैं यह तारणस्वामी में, उस वाणी में तो सब भाव भरे हैं भगवान के। मूर्ति में कहाँ भरे हैं? दोनों में नहीं है, सुन न! बहुत लिखते हैं उन लोगों के पण्डित, ऐसे लेख लिखते हैं। जिनवाणी में ऐसा है, वाणी में ऐसा है। परन्तु वाणी में कितना तुझे कहना है? वाणी तो पुद्गल है, ले! यह भगवान की मूर्ति में भी तेरा ज्ञान नहीं, वहाँ से आता नहीं और वाणी में से आता नहीं। ले! यहाँ तो कहते हैं कि उस सम्बन्धी का ज्ञान, उसे हम ज्ञान कहते हैं। **सूत्र की ज्ञप्ति... 'भणिता'** उसे सूत्र में कहा हुआ ज्ञान, उसे—ज्ञप्ति को ज्ञान कहा जाता है। सूत्र के शब्दों को ज्ञान कहा नहीं जाता। टीका में कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ८, रविवार, दिनांक २९-०९-१९६८
गाथा - ३४, ३५, प्रवचन - २७

३४वीं गाथा, ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। पहले ऐसा आया कि श्रुतकेवली और केवली दोनों समान हैं। ऐसा आया न? केवलज्ञानी भी अकेले निर्भेल एक आत्मा को अनुभव करते हैं, जानते हैं। ऐसे श्रुतकेवली भी एक ही अभेद निर्भेल—मिलावटरहित, अभेद—भेदरहित, ऐसे आत्मा को श्रुतकेवली भी जानते हैं। समझ में आया? केवली बहुत पदार्थों को जानते हैं, इसलिए केवली—ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। केवली, अपना एक आत्मा शुद्ध चैतन्य एकरूप है, वह केवल है, उसे जानते हैं, इसलिए वे केवली हैं। श्रुतज्ञानी भी एकरूप शुद्ध चैतन्य को जानते हैं, इसलिए वे भी श्रुतकेवली हैं। वे केवली हैं, यह श्रुतकेवली हैं। तब कहे, वह श्रुत आया न बीच में? श्रुत-श्रुत। श्रुत, वह क्या है? कि श्रुत, वह स्वयं ज्ञान है। श्रुत अर्थात् शब्दों को सुना, वह कुछ नहीं। यहाँ यह कहना है। समझ में आया?

श्रुतकेवली कहा न? श्रुत तो सुना हुआ है सर्वज्ञ की वाणी, उसके कारण श्रुत हुआ न? कहे, नहीं, ऐसा नहीं। शब्द आया इसलिए सुना हुआ है शब्द, उसका ज्ञान है, ऐसा नहीं। शब्द है, ऐसा नहीं। शब्दों का जो ज्ञान है वास्तविक, उसके सम्बन्धी स्वयं श्रुत ज्ञप्तिरूप से परिणमा है आत्मा, उसे ज्ञान कहा जाता है। वीतराग की वाणी तो व्यवहार से ज्ञान कही जाती है। लो!

टीका :- प्रथम तो श्रुत ही सूत्र है;... यहाँ से शुरु किया है न, ३४। श्रुतकेवली में से शुरु किया है यह। श्रुत भी ऐसा कि श्रुत है न? उसे श्रुत है न? भगवान की वाणी है न श्रुत उसके पास? नहीं। वजुभाई! **प्रथम तो श्रुत ही सूत्र है; और वह सूत्र भगवान अरहन्त-सर्वज्ञ के...** परमात्मा अर्हंत, अर्हंत सर्वज्ञ ने कुछ भी रहस्य बाकी रखे बिना जिन्होंने सब जाना है, ऐसे सर्वज्ञ ने। भगवान अर्हत् सर्वज्ञ ने, ऐसा शब्द प्रयोग किया है। **स्वयं जानकर...** भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने **स्वयं जानकर उपदिष्ट...** स्वयं जानकर कहा हुआ, उपदेश किया हुआ। **स्यात्कार चिह्नयुक्त, पौदगलिक शब्दब्रह्म है।** लो! **स्यात्कार=कथंचित्; किसी अपेक्षा से...** कहना। ऐसा जिसका चिह्न है, निशान है, ऐसा

पौद्गलिक शब्दब्रह्म। देखो! भगवान की वाणी तो पौद्गलिक शब्दब्रह्म है। शब्दब्रह्म अर्थात् पूरा शब्द में कहते हैं, इसलिए उसे शब्दब्रह्म कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

उसकी ज्ञप्ति, सो ज्ञान है;... वह सूत्र पुद्गल जो है, वह कहीं ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान की दिव्यध्वनि, वह तो पौद्गलिक वस्तु है, पौद्गलिक की पर्याय है। उसे सूत्र कहा जाता है, परन्तु वह सूत्र तो पुद्गल सम्बन्धी पर्याय है, उसमें कुछ ज्ञान नहीं। **उसकी ज्ञप्ति (शब्दब्रह्म को जाननेवाली ज्ञातृक्रिया)...** शब्दब्रह्म में जो यह है कहने का भाव, वह भाव तो शब्द की—जड़ की पर्याय है, उसमें से जो ज्ञानभाव जान लेता है ज्ञप्ति, उसमें से जान लेता है ज्ञप्ति। **ज्ञप्ति (शब्दब्रह्म को जाननेवाली ज्ञातृक्रिया) सो ज्ञान है;...** जानने की क्रिया, वह ज्ञान है। शब्द की वाणी, वह कहीं ज्ञान नहीं। वह तो निमित्तरूप से, व्यवहाररूप से कही जाती है। कहो, समझ में आया इसमें? शब्द ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। और शब्द में जो कुछ कहना है, ऐसा जो भाव ज्ञानरूप से परिणमता है, उसे श्रुतज्ञान कहा जाता है। समझ में आया?

वह **ज्ञप्ति (शब्दब्रह्म को जाननेवाली ज्ञातृक्रिया), सो ज्ञान है; श्रुत (सूत्र) तो उसका कारण होने से...** कारण अर्थात् निमित्त कारण, हों! वीतराग की वाणी शब्दरूप है, वह तो ज्ञान का निमित्त कारण है। देखो! यहाँ कारण होने से लिया है वापस कि उससे होता है। शब्द ऐसा प्रयोग किया है। **श्रुत (सूत्र) तो उसका कारण होने से...** किसका? वह जानने की जो क्रिया। सुननेवाले को जो जानने की क्रिया अपने में हुई, उसमें वह सूत्र शब्द निमित्तकारण है, व्यवहारकारण है, परमार्थकारण वह नहीं। समझ में आया? उसे **ज्ञान के रूप में उपचार से ही कहा जाता है...** देखो! उस वाणी को ज्ञानरूप से कहा जाता है। उपचार से, व्यवहार से, आरोप से, निमित्त से कहा जाता है। शब्द पुद्गल की पर्याय है। समझ में आया? आगम, वह तो पुद्गल की पर्याय है। भगवान की वाणी, वह पुद्गल की पर्याय है, ऐसा कहते हैं। उसमें से जो जानने की क्रिया परिणमित हुई, उसे ज्ञान कहा जाता है। उसे (वाणी को) निमित्तरूप से, व्यवहाररूप से उसे ज्ञान कहा जाता है। यहाँ निश्चय से ज्ञान होता है, उसका निमित्त है, इसलिए उसे व्यवहाराान कहा जाता है। वह व्यवहारज्ञान शब्द को (कहते हैं)। समझ में आया?

ज्ञान यहाँ होता है जानने की क्रिया, उसमें वह निमित्त है, पर है, उपचार है, व्यवहार है तो उससे व्यवहारज्ञान कहा जाता है। निश्चयज्ञान तो यह है। कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल को। पुद्गल को व्यवहारज्ञान कहा जाता है। है न, देखो! है या नहीं? देखो न!

श्रुत (सूत्र) तो उसका कारण होने से... किसका? भावश्रुतज्ञान का। निमित्त कारण पुद्गल की पर्याय होने से **ज्ञान के रूप में उपचार से ही कहा जाता है...** इन शब्दों को, पुद्गल की पर्याय को ज्ञानरूप से उपचार से, व्यवहार से कहा जाता है। यहाँ जाननक्रिया हुई है, वह निश्चयज्ञान हुआ, यथार्थ ज्ञान वह ज्ञान है। उसमें निमित्त होने से उसे उपचार से ज्ञान, व्यवहार से ज्ञान कहा जाता है। अर्थात् कि ज्ञान नहीं, उसे ज्ञान कहना, इसका नाम व्यवहार, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **(जैसे कि अन्न को प्राण कहा जाता है)।** दृष्टान्त दिया है। अन्न को प्राण कहते हैं न, अन्न को प्राण। वह कहीं प्राण नहीं। प्राण तो यहाँ है दस। पाँच इन्द्रियाँ, मन-वचन-काया, श्वास और आयुष्य। प्राण तो यह है। परन्तु प्राण में वह अन्न निमित्त है, इसलिए वास्तविक प्राण तो यह है, परन्तु उसमें निमित्त है, इसलिए उसे (—अन्न को) उपचार से, व्यवहार से, प्राण नहीं उसे व्यवहार से कहा जाये, उसका नाम व्यवहार कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा क्या उसमें शैली तो भाषा तो देखो! उसकी शैली आती है न उसमें। असद्भूत का अर्थ ही यह है कि वह वस्तु तो नहीं। वह तो जड़ की-पुद्गल की पर्याय है। अब पुद्गल की पर्याय को ज्ञान कहना, वह तो यहाँ भावज्ञान है, उसका निमित्त होने से उसे व्यवहार से ज्ञान कहा जाता है। ज्ञान नहीं, उसे व्यवहार से ज्ञान कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार का अर्थ ही हुआ कि वह ज्ञान नहीं, उसे कहना, इसका नाम व्यवहार। समझ में आया? यहाँ निश्चयज्ञान है न अपने में। उन भगवान की वाणी में आया कि तू शुद्ध अभेद चैतन्य है। समझ में आया? ऐसा अभेद चैतन्य का आश्रय लेकर जो यहाँ ज्ञान प्रगट हुआ, उसमें वह वाणी निमित्त थी। इसलिए यहाँ निश्चयज्ञान तो भावश्रुत है, वही है। और उसका विषय अकेला चैतन्य को पकड़ा, इसलिए उस श्रुतज्ञानी को श्रुतकेवली कहा जाता है। ऐसा सिद्ध करना है यहाँ तो। समझ में आया?

श्रुत (सूत्र) तो उसका (ज्ञान का) कारण होने से ज्ञान के रूप में उपचार से ही कहा जाता है (जैसे कि अन्न को प्राण कहा जाता है)। कहो, इन प्राणों को पहिचाने नहीं और अन्न के प्राण को अकेले को पकड़े तो प्राण रहेंगे? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? दस प्राण तो यह है। पाँच इन्द्रियाँ, श्वास, आयुष्य, मन आदि। वे प्राण तो यह है। अब इसका तो वह (अन्न) निमित्त है। उस अन्न का संग्रह किया करे और इन प्राणों को जाने नहीं तो प्राण रहेंगे? इसी प्रकार शब्द को ही ऐसा का ऐसा पकड़ा करे और उसका ज्ञान न करे तो वह उस शब्द को पकड़ने से कहीं ज्ञान होगा? ऐसा कहते हैं।

श्रुत (सूत्र) तो उसका (ज्ञान का) कारण होने से ज्ञान के रूप में उपचार से ही कहा जाता है (जैसे कि अन्न को प्राण कहा जाता है)। ऐसा होने से यह फलित हुआ कि... ऐसा होने से उसका फल ऐसा आता है कि **'सूत्र की ज्ञप्ति' सो श्रुतज्ञान है।** जो शब्द है, उस सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान अपने में हो, वह ज्ञान है। कहो, समझ में आया? भाषा में ज्ञान नहीं, भाषा ज्ञान नहीं, परन्तु उसे जो कहना है भगवान की ध्वनि में, वह यहाँ ज्ञान हुआ अपने से अपने में, इसलिए उसे निमित्त कारण को व्यवहार से ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया?

अब यदि सूत्र तो उपाधि होने से... कहो, वीतराग की वाणी सुनना और यह शब्द सुनना, वह उपाधि है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि ज्ञान की पर्याय तो अपनी है, उसमें और शब्द तो उपाधि है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : सूत्र न हो तो यह उपदेश....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ज्ञान न होता तो कौन जाने? यह ज्ञान ने जाना है। सूत्र से ज्ञात हुआ नहीं। सूत्र में जानपना है ही नहीं।

मुमुक्षु : सूत्र में लिखा तो है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, वह तो जड़ है।

मुमुक्षु : निमित्त की दलील है....

पूज्य गुरुदेवश्री : दलील तो हो न, दलील तो हो। यह तो लोगों को समझाने के लिये जरा कहते हैं। दूसरे सामनेवाले पक्के हों, वे दलील करें न इस प्रकार से। क्यों चन्दुभाई!

ऐसा है कि यहाँ तो वास्तविक भगवान आत्मा एक स्वरूप शुद्ध ध्रुव, उसका ज्ञान होने पर जो ज्ञान हुआ, वह स्वयं से हुआ है और उसे ज्ञान कहने में आता है। वाणी में ऐसा आया कि तू अभेद चैतन्य को अनुभवकर। परन्तु उस वाणी का ज्ञान कब कहलाता है? कि जब द्रव्य का आश्रय लेकर जो भावश्रुत प्रगट हुआ, तब उसे ज्ञान कहा, तब उस निमित्त को व्यवहार ज्ञान कहने में आया। बाकी है तो उपाधि ऐसी, कहते हैं। आहाहा! अर्थात्? कि उस वाणी का लक्ष्य छोड़कर ज्ञान का लक्ष्य करेगा, तब उसे ज्ञान होगा, ऐसा कहते हैं। वाणी का—दिव्यध्वनि का भी लक्ष्य छोड़कर, चैतन्य ज्ञायकमूर्ति का लक्ष्य करेगा, तब उसे ज्ञान होगा। वाणी के लक्ष्य से नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। भगवानजीभाई! आहाहा! ज्ञायक चैतन्यस्वरूप तो स्वयं ज्ञायक है। अब ज्ञान का सूझ होकर अपने में ज्ञान हो कि वाणी का सूझ होकर उसमें ज्ञान होता है? यह ऐसा कहते हैं इसमें। समझ में आया? जहाँ चैतन्यमूर्ति ज्ञायकभाव का ज्ञान करने से, अकेले का ज्ञान करने से, अकेला चैतन्य है, उसका ज्ञान करने से यहाँ ज्ञान भावश्रुत होता है। वह तो उपाधि है, निमित्त है।

'सूत्र की ज्ञप्ति' सो श्रुतज्ञान है। अब यदि सूत्र तो उपाधि होने से उसका आदर न किया जाये... देखो! **उसका आदर न किया जाये...** उस शब्द का लक्ष्य छोड़ा जाये अर्थात् शब्द का लक्ष्य न किया जाये, ऐसा कहते हैं। **तो 'ज्ञप्ति' ही शेष रह जाती है;...** उस सूत्र का आदर न किया जाये, उसका लक्ष्य छोड़े तो यहाँ ज्ञान, वह जानने का भाव,

वह ज्ञप्ति ही बाकी रहती है। सूत्र वहाँ रहता नहीं, दिव्यध्वनि वहाँ रहती नहीं। देखो, यह प्रवचनसार चलता है। प्रवचन का लक्ष्य छोड़े, तब प्रवचन का ज्ञान हो आत्मा का, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वत्र लिखा है। सर्वत्र लिखा नहीं? गुण की व्याख्या करो। ज्ञानगुण अर्थात् क्या? जैनसिद्धान्त प्रवेशिका में नहीं आया? द्रव्य के सर्व भाग में व्यापे और सर्व अवस्था में हो। उसमें ऐसा नहीं आया? आता है या नहीं उसमें? सिद्धान्त प्रवेशिका। ज्ञानगुण स्वयं है आत्मा का, जानना वह पूरे द्रव्य अर्थात् सब क्षेत्र में व्यापता है और उसकी अवस्थाओं में व्यापता है, वह ज्ञान अवस्था में व्यापता है। वह ज्ञान सूत्र की अवस्था से व्यापता है? दूसरे एक भी शास्त्र में है या नहीं? इन लड़कों को समझाने में से निकाला यह। चिमनभाई! आहाहा! ज्ञान, वह गुण है त्रिकाली और उसकी अवस्था होना, वह गुण के अवलम्बन से अन्दर होती है। अर्थात् उस ज्ञान की पर्याय ज्ञान से होती है। ज्ञान की पर्याय शब्द से नहीं होती, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

सूत्र तो उपाधि होने से उसका आदर न किया जाये तो 'ज्ञप्ति' ही शेष रह जाती है;... अर्थात् कि सूत्र का लक्ष्य छोड़ने से द्रव्य के आश्रय में जहाँ हो तो ज्ञप्ति-जानने की क्रिया रह जाती है अकेली। जानने की क्रिया, द्रव्य को जानने की क्रिया, वह श्रुतज्ञान है, वह भावश्रुतज्ञान है। कहो, समझ में आया? इसी प्रकार स्वयं कहते हैं। समझ में आया? देखो, कहा है न! '**सुत्तं जिणोवदिट्ठं**' इसकी व्याख्या की यह। '**पोग्गलदव्वप्पगेहिं वयणेहिं**' वह पुद्गलद्रव्य की पर्याय है, वचन है। '**तं जाणणा हि णाणं**' उसका जानना, वह ज्ञान है। '**सुत्तस्स य जाणणा भणिया**' उसे सूत्र का ज्ञान कहा जाता है। कहो, समझ में आया? सूत्र की ज्ञप्ति हुई, वह ज्ञान है। सूत्र शब्द वे कहीं ज्ञान नहीं। आता है अन्यत्र या नहीं यह? समयसार में आता है। शब्द वह नहीं ज्ञान, शब्द कुछ जानता नहीं। आता है या नहीं? वस्तुविज्ञानसार प्रकाशित किया है या नहीं?

मुमुक्षु : हरिगीत में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हरिगीत में आता है। अपने छपाया नहीं? कहाँ गये

जगजीवनभाई? भेदविज्ञान (सार)। तुम्हारे पुस्तक प्रकाशित करना है न भेदविज्ञान (सार)। उसमें यह आया है एक-दो गाथा का। श्रुत, वह ज्ञान नहीं, शब्द वह ज्ञान नहीं। उसमें आया या नहीं उसमें? दूसरे आगम में है या नहीं? या इस जगह ही है? न्याय तो एक हो, चाहे जहाँ हो एक न्याय तो। समझ में आया?

सूत्र तो उपाधि होने से उसका आदर न किया जाये तो 'ज्ञप्ति' ही शेष रह जाती है; ('सूत्र की ज्ञप्ति' कहने पर निश्चय से ज्ञप्ति कहीं पौद्गलिक सूत्र की नहीं,... सूत्र की जानने की क्रिया कहने में आती है, वह कहीं वास्तव में ज्ञप्ति कहीं पुद्गल-जड़ की नहीं, वह तो आत्मा की है। **सूत्र ज्ञप्ति का स्वरूपभूत नहीं,...** कहो, जानने की जो क्रिया हुई, वह सूत्र, वह ज्ञप्ति के स्वरूपभूत नहीं, जानने को स्वरूपभूत कुछ सूत्र नहीं। जानने की जो क्रिया हो, वह कहीं जड़स्वरूप नहीं। **विशेष वस्तु अर्थात् उपाधि है;...** समझ में आया? कोष्ठक में स्पष्टीकरण किया। **क्योंकि सूत्र न हो तो वहाँ भी ज्ञप्ति तो होती ही है।** लो! शब्द न हो तो भी जानपने की क्रिया जानने की तो होती ही है। इसलिए सूत्र है, इसलिए ज्ञानपर्याय अस्ति है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सूत्र है, इसलिए ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व है? सूत्र न हो तो ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व यहाँ है। **इसलिए यदि सूत्र को न गिना जाय तो 'ज्ञप्ति' ही शेष रहती है।)** लो! शब्दों को गिनने में न आवे, जानने की क्रिया जो स्व के आश्रय से हुई, वह ज्ञप्ति जानने की क्रिया ही बाकी रह जाती है। उसे ज्ञान कहा जाता है।

और वह (ज्ञप्ति) केवली और श्रुतकेवली के आत्मानुभव में समान ही है। भाषा देखो! योगफल यहाँ डाला। योगफल यहाँ डाला। क्योंकि श्रुतज्ञान है न, श्रुतज्ञान है न, इसलिए उसे जरा सूत्र का अवलम्बन आया, इसलिए कुछ अन्तर है? केवली के ज्ञान में और श्रुतज्ञान में? नहीं। दोनों में समान ही है। केवलज्ञानी ने भी अपने असंग ज्ञायक एकरूप आत्मा को अवलम्बन कर केवलज्ञान हुआ है। और उन्होंने आत्मा को ऐसा जाना। केवलज्ञानी ने ऐसे आत्मा को जाना, वैसे श्रुतज्ञानी भी ऐसे ही आत्मा को जानते हैं। यह कैसी बात ली, देखा! **केवली और श्रुतकेवली के आत्मानुभव में समान ही है।** कौन? जानने की क्रिया। केवली जानने की क्रिया भी आत्मा को—पूर्ण को जानती है। यह श्रुतज्ञान की जानने की क्रिया भी पूर्ण आत्मा को ही जानती है। शब्द है

इसमें। समझ में आया? जानने की जो क्रिया है पर्याय... पर्याय, वह केवलज्ञानी की भी जानने की क्रिया ज्ञप्तिक्रिया केवलज्ञान की, वह भी अकेला द्रव्यस्वभाव अभेद, निर्भेल, अकेला शुद्ध, उसे केवली जानते हैं। श्रुतज्ञान की श्रुत ज्ञप्तिक्रिया में भी उस आत्मा को जानते हैं। आत्मा में दोनों समान तुल्य है, इस हिसाब से। श्रुत कहा, इसलिए श्रुत की उपाधि थोड़ी इसे लागू पड़ी, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अलौकिक रचना है। कुन्दकुन्दाचार्य के तो एक-एक शास्त्र, एक-एक लाईन और एक-एक गाथा का पद (अलौकिक है)।

इसलिए ज्ञान में श्रुत-उपाधिकृत भेद नहीं है। लो! इसलिए केवलज्ञानी के ज्ञान में और श्रुतज्ञानी के ज्ञान में श्रुत-उपाधिकृत भिन्न दो में नहीं है। भावश्रुतज्ञानी भी अपने ज्ञायक अकेले अखण्ड आत्मा को जानता है, उसमें सूत्र की उपाधि है ही नहीं। इसी प्रकार केवलज्ञानी केवलज्ञान द्वारा अकेले अखण्ड आत्मा को जानते हैं, उसे जैसे श्रुत शब्द की और श्रुत उपाधि नहीं, वैसे इसे भी उपाधि नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दिया न! एक सूर्य से देखे और एक दीपक से देखे। वस्तु देखता है न! देखने में कहाँ अन्तर है? यह तो आ गया न! पहले में आ गया या नहीं? यह तो आ गया उसमें। **दीपक समान श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को देखते-अनुभव करते हैं... केवली सूर्यसमान केवलज्ञान द्वारा आत्मा को देखते-अनुभव करते हैं...** दोनों का देखना तो एक ही है। समझ में आया? सूर्य द्वारा यह मणिरत्न है, ऐसा देखे और एक दीपक द्वारा मणिरत्न को देखे, देखने में क्या अन्तर है? इसी प्रकार चैतन्यरत्न भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप, केवलज्ञानी उसे देखते हैं और श्रुतज्ञानी देखते हैं, उसमें अन्तर क्या है, कहते हैं। समझ में आया? यह ३४ (गाथा) हुई।

यहाँ तो यह सिद्ध करना है, श्रुतज्ञानी का ज्ञान कम, क्रम से परिणमता। क्रम से कितना ही परिणमता... कितना ही है न? तथापि उसे कहे कि कुछ अन्तर है? नहीं, जानने की क्रिया में तो एक अभेद चैतन्य है, उसे ही जानते हैं और वे केवलज्ञानी पूर्ण ज्ञान है, वे इसे जानते हैं। जानने में अन्तर कहाँ आया कहीं? समझ में आया? उसमें

थोड़ा या पूरा, परोक्ष या प्रत्यक्ष, इस अन्तर का यहाँ कुछ उसका काम नहीं, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो ज्ञान द्वारा, जानने की क्रिया द्वारा ज्ञायकस्वरूप को एकरूप को जाने, केवली भी केवलज्ञान द्वारा आत्मा को एकरूप को जाने। देखा! यहाँ तो परपदार्थ की बात है नहीं। समझ में आया? दोनों की जानने की क्रिया तुल्य है। लो! दोनों की जानने की क्रिया तुल्य है। किसकी? स्वद्रव्य को जानने की अपेक्षा से। पर का जानना हो कम-अधिक, भगवान को सब तीन काल-तीन लोक जाने, वह कुछ नहीं। वह सब इसमें आ गया। क्योंकि वह एक पर्याय इतनी, ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायों का ज्ञानगुण और ऐसे अनन्त गुणों का पिण्ड एक द्रव्य अखण्ड, उसे यहाँ जाना। केवली ने यहाँ ऐसा जाना उसे। इसने भी उसको जाना, परन्तु उन केवली ने आत्मा को देखा न? आत्मा देखा न! तो यहाँ भी आत्मा देखा। कितना आत्मा? कि समस्त पर्याय एक समय में छह द्रव्य पर्याय(सहित) जाने, ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय का पिण्ड सत्त्व तो ज्ञानगुण है। उसका धारक द्रव्य है। बस, उस द्रव्य को जाना। तो केवली ने भी उसे जाना, श्रुतकेवली ने भी उसे जाना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? 'एगं जाणई सव्वं जाणई।' आत्मा जाना उसने सब जाना। केवली ने भी आत्मा जाना और श्रुतज्ञानी ने भी आत्मा जाना। विशेष जानने की आकांक्षा का क्षोभ मिटाओ, ऐसा कहते हैं और श्रुत की उपाधि का लक्ष्य छोड़ दे। तेरे द्रव्य का आश्रय कर और जो ज्ञान की ज्ञप्ति हो, वह केवली को भी वही है और तुझे भी वही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग-द्वेष की यहाँ बात ही नहीं। आत्मा में राग-द्वेष है? आत्मा में तो राग-द्वेष का जो ज्ञान और ऐसी-ऐसी अनन्त ज्ञान की पर्यायें, ऐसा जो ज्ञानगुण और ऐसे-अनन्त अनन्त गुण का द्रव्य, अनन्त गुण का द्रव्य, तो उसमें है राग-द्वेष? केवली ने देखा तो यह देखा और इसने (श्रुतज्ञानी ने) देखा तो यह देखा। आहाहा! भगवानजीभाई! समझ में आया? जानने की अपेक्षा में भी सब आ गया है, ऐसा कहना है। राग-द्वेषरहित आत्मा जो है, उस राग-द्वेष का ज्ञान और अपना ज्ञान, वह सब ज्ञान की पर्याय का पिण्ड गुण है न ज्ञान का? और ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड वह द्रव्य अकेला अभेद वस्तु है। और ऐसी पूरी इस चीज़ को देखा तो केवली ने भी इसे

देखा और उसने (श्रुतज्ञानी) ने भी उसे देखा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसके जानने में छोटा आया, केवली को बड़ा आया है और श्रुतज्ञान को थोड़ा आया है, ऐसा नहीं है, यहाँ (यह) सिद्ध करना है। पर की अपेक्षा नहीं। केवलज्ञानी ने बहुत जाना आत्मा को बड़ा इतना और श्रुतज्ञानी ने आत्मा को छोटा जाना, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी वस्तु है न! अब छह द्रव्य का जानना तो एक समय की पर्याय है। श्रुतज्ञान की एक समय की पर्याय जाने छह द्रव्य को। समझ में आया? केवली भी जाने और श्रुतज्ञानी भी ऐसा ही जानते हैं। यह नहीं। ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड पूरा ज्ञानगुण, ऐसे-ऐसे अनन्त गुणों का एक (रूप) द्रव्य। बस, केवली ने भी उसे जाना और श्रुतज्ञानी ने (भी) उसे जाना, तो उसमें कम क्या रहा? कहते हैं। कम क्या रहा कि उसे कम कहना, ऐसा कहते हैं। ऐई! वजुभाई! आहाहा! गजब कथन की पद्धति भी देखो न कहाँ डाला!

भगवान आत्मा... भाई! ऐसे-ऐसे केवलज्ञानी की पर्यायें तो अनन्त-अनन्त पर्याय, श्रुतज्ञान की ऐसी अनन्त असंख्य पर्याय साधक को। समझ में आया? श्रुतज्ञान की साधकरूप से प्रगटी, वह केवलज्ञान होगा, तब अन्त आयेगा। पश्चात् केवल (ज्ञान) होगा। वह सब ज्ञान की पर्याय का पिण्ड तो ज्ञानगुण है और उस गुण का धारक द्रव्य है। उस द्रव्य को जाना, उसमें कम क्या रहा केवली और श्रुतकेवली को? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मगनभाई! आहाहा! न्याय से बात सिद्ध करते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा जो यहाँ लिया है न! एक आत्मा। आत्मा अर्थात् क्या? समझ में आया? केवलज्ञान में एक समय में सब ज्ञात हुआ वह तो एक समय की पर्याय है। ऐसे श्रुतज्ञान की पर्याय में भी सब ज्ञान लोकालोक का आ गया परोक्ष, वह भी पर्याय है। वह यहाँ बात नहीं। वह तो जिस पर्याय ने यह जाना, वह तो सब पूरा है। वहाँ कहाँ कम है या थोड़ा है या केवली को अधिक पर्यायवाला द्रव्य है, इसे थोड़ी पर्यायवाला द्रव्य है, थोड़े गुण हल्का है और उनको पूरे गुण हैं, ऐसा है उसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा पूरा ही है यहाँ। उसके ज्ञान के ध्येय में पूरा पूर्ण है उसे। समझ में आया? आहाहा! किस प्रकार से सिद्ध करते हैं, देखो न! **केवली और श्रुतकेवली के आत्मानुभव में समान ही है।**

मुमुक्षु : केवली को पूरा आत्मा आया है, श्रुतकेवली को पूरा आत्मा आया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे पूरा आया है। अब उसमें बाकी क्या रहा? एक समय में लोकालोक जाने, वह तो एक समय की पर्याय है। यहाँ भी श्रुतज्ञान की पर्याय लोकालोक को जाने, उसकी शक्ति खिली है। उसकी शक्ति इतनी है। उसका यहाँ क्या काम है? ऐसी अनन्त शक्ति का पिण्ड जो द्रव्य है, उस द्रव्य का जहाँ भान हुआ, अकेला द्रव्य, ऐसा कहा है न? समझ में आया? क्या कहा यह? देखो न! वहाँ है? केवल, ऐसा लिया था न? निर्भेद। भगवान ने भी केवल ऐसे आत्मा को आत्मा से आत्मा में अनुभव करने के कारण। यह भी केवल आत्मा को आत्मा से आत्मा में अनुभव करने के कारण। उसमें क्या अन्तर पड़ा? कहते हैं। आहाहा! वस्तु इतनी बड़ी है कि अब केवलज्ञान पर्याय तो कहीं रह गयी। भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा द्रव्य है और द्रव्य में क्या कम है उसे? उसे कम क्या है कि उसे ज्ञप्ति में कम कहना? समझ में आया? आहाहा! क्या परन्तु... द्रव्य को लक्ष्य में लिया दोनों ने, तो दोनों कहते हैं, ज्ञप्तिक्रिया से समान है। दास! आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय जानने की....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी पर को जानने की पर्याय भी एक समय की है न? तो यहाँ नहीं हुई? और एक समय की पर्याय है, वह द्रव्य को जानती है। तो द्रव्य तो इतना बड़ा है। .... है। समझ में आया? अकेला भगवान चैतन्य पूर्णानन्द प्रभु, जिसमें ऐसी पर्यायें केवलज्ञानी को ... अनन्त पर्यायें जिसके गुण में, ज्ञान में पड़ी है। अनन्त सिद्ध पर्यायें जिसके गुण में पड़ी हैं। समझ में आया? अनन्त आनन्द की पर्याय आनन्द में, अनन्त ज्ञान की पर्याय ज्ञान में, अनन्त वीर्य की पर्याय वीर्य में, अनन्त दर्शन की पर्याय

दर्शन में। ऐसी-ऐसी अनन्त गुण की स्वच्छता की अनन्त पर्याय स्वच्छतागुण में। समझ में आया? प्रत्यक्ष होने की जो वेदन पर्याय है, वह भी उसके एक-एक समय की पर्याय, ऐसा सब इस आत्मा में गुणरूप से अन्दर पड़ा है। ऐसा अनन्त गुण का पिण्ड एक द्रव्यस्वरूप, उसे ज्ञप्ति से केवली ने जाना, श्रुतज्ञानी ने ज्ञप्ति द्वारा जाना। उसमें कुछ अन्तर है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

सूत्र को न गिना जाय तो 'ज्ञप्ति' ही शेष रहती है।) और वह केवली के... उन केवली को। उन अर्थात्? जानने की क्रिया। **केवली और श्रुतकेवली के आत्मानुभव में...** आत्मा को जानने में दोनों समान हैं। आहाहा! एक समय की पर्याय केवली की भी द्रव्य को जानती है और उस द्रव्य को जाने, उसमें अन्तर क्या है? ऐसा कहते हैं। भगवान स्वयं सच्चिदानन्द प्रभु, महा बड़ा भगवान द्रव्य। अब वह बड़ा जितना है, उतना केवली ने जाना और जितना है उतना श्रुतज्ञानी ने जाना। उसमें कहीं श्रुतज्ञानी को कम आत्मा है, ऐसा है? समझ में आया? श्रुतज्ञान की पर्याय में छोटा द्रव्य और केवलज्ञान की पर्याय में बड़ा द्रव्य, ऐसा है? श्रुतज्ञान की पर्याय में छोटा गुण और केवलज्ञान की पर्याय में बड़ा इतना गुण? तब है क्या? कहते हैं। तुल्य में बाधा क्या आयी तुझे? ऐसा कहते हैं। न्यालभाई! ऐसी बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ बाधा नहीं जरा भी। द्रव्य को जानने की अपेक्षा से कुछ बाधा नहीं। समझ में आया? आहाहा! केवल (ज्ञान) की पर्याय ऐसे अपने को आत्मा आत्मा को आत्मा से अन्दर जानती है। यह श्रुतज्ञान की पर्याय भी आत्मा आत्मा से आत्मा को आत्मा में आत्मा से जानती है। बस उसमें... ओहोहो! समझ में आया? कहो, समझ में आता है या नहीं इसमें? जेठालालभाई! लॉजिक से, न्याय से तो बात करते हैं। द्रव्य में क्या बाकी रह गया ज्ञान के विषय में? ऐसा कहते हैं। केवलज्ञान का—ज्ञान का विषय (और) श्रुतज्ञान का विषय, इसमें बाकी क्या काम है, उसमें द्रव्य में क्या कम है कि उसे तुल्य नहीं कहता तू? भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा भगवान है पूर्णानन्द प्रभु, ऐसा श्रुतज्ञान ने जाना, ऐसा केवलज्ञान ने जाना। अब क्या है तुझे? ज्ञप्तिक्रिया में दो की समानता में क्या बाधा आती है तुझे? ऐसा कहते हैं। क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें है नहीं परन्तु इस पद्धति में। इस पद्धति से बाधा उठावे तो बाधा उठाने का हेतु क्या है तुझे? जो जानने की क्रिया पर्याय है, वह द्रव्य को पकड़ी है, अनुभवी है। वही केवलज्ञान की पर्याय में द्रव्य को जाना। उसमें अन्तर क्या है? द्रव्य तो बड़ा जितना है उतना और उतना है। दो के ज्ञान के विषय में अन्तर है द्रव्य में? समझ में आया? ऐसा सिद्ध करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य...

मुमुक्षु : इतनी निडरता चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : निडर नहीं, वस्तु ऐसी है। निडरता नहीं। वस्तु ऐसी है। उसे निडर होने को... निडर नहीं, वस्तु का सत्पना इस प्रकार से है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया का कहाँ प्रश्न है? उसके ख्याल में देते हैं कि मैं तुझे पूछता हूँ कि ज्ञान की पर्याय श्रुतज्ञान की भले अल्प हो, अल्प अर्थात्? केवलज्ञान जितनी नहीं, परन्तु उसने जाना है वह तो द्रव्य को पूरे को (जाना है)। समझ में आया? जिसने भगवान आत्मा को ज्ञान में ज्ञेय बनाया, केवलज्ञानी ने भी ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाया, यहाँ उसने द्रव्य को ज्ञेय बनाया। उसकी ज्ञप्ति में क्या अन्तर है? ज्ञप्ति में क्या न्यूनता रही? और केवली को ज्ञप्ति में क्या अधिकता आयी? द्रव्य तो दोनों की दृष्टि में एकसरीखा आया है। समझ में आया?

ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य की तो गाथायें और पद पूरे अलग ही प्रकार के। सत् को जिस प्रकार से है, उस प्रकार से सिद्ध करते हैं। तुझे ऐसा लगता हो कि श्रुतज्ञान अर्थात्! ओहोहो! श्रुतज्ञान! आहाहा! तो क्या है श्रुतज्ञान? श्रुतज्ञान पूरे द्रव्य को जानता है। केवलज्ञान! ओहो! बड़ा लोकालोक जाने। समझ में आया? लोकालोक को जानने की पर्याय की विशेषता यहाँ कहाँ है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसकी विशेषता

कहाँ है यहाँ ? वह वस्तु उसमें कुछ... नहीं ऐसा। ऐसा हो नहीं सकता। एक समय की पर्याय पूरा जाने और यहाँ थोड़ा जाने इतना अन्तर। अब, तो भी एक पर्याय को जानना हे केवलज्ञानी को। केवल की पर्याय को जानना है ? श्रुतज्ञानी को श्रुतज्ञान की पर्याय को जानना है, ऐसा है यहाँ ? समझ में आया ?

केवलज्ञानी को एक समय की पर्याय को जानने का है, इसलिए बड़ा है, श्रुतज्ञानी की एक समय की... ऐसी है यहाँ बात ? केवलज्ञान की एक पर्याय में लोकालोक ज्ञात होते हैं, इसलिए एक पर्याय को जानते हैं, ऐसा है ? यह भी एक समय की पर्याय में लोकालोक को जानता है ज्ञान। समझ में आया ? विशेष कुछ नहीं। परन्तु और इस प्रकार से कैसे हो सकता है ? ज्ञान की पर्याय में यह जानने की क्रिया, ओहोहो ! उसकी (श्रुतज्ञानी की) क्रिया में जहाँ द्रव्य अकला आत्मा आत्मा से जानने में आया, केवली को ज्ञप्तिक्रिया में अकेला आत्मा आत्मा से जानने में आया। उसमें अन्तर क्या पड़ा उसमें ? अप्रिय तुझे क्या लगता है इसमें ? समझ में आया ? फेरफार, न्यूनता, विरुद्धता, विपरीतता, अल्पता किस प्रकार लगती है तुझे इसमें ? समझ में आया ?

भगवान आत्मा अनन्त अनन्त गुण की खान, अनन्त पर्याय की खान, उसे उसका... बस, केवलज्ञान की पर्याय उसे जाने, श्रुतज्ञान की उसे जाने, परन्तु उसमें अन्तर क्या है ? शशीभाई ! ओहो ! गजब बात की है !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। न्याय कर न ! तू क्या कहता है ? बोल, तू तर्क कर। यहाँ सूत्र की उपाधि को निकालकर जो श्रुतज्ञान हुआ, उस श्रुतज्ञान ने द्रव्य को जाना है। इसलिए श्रुतकेवली... श्रुतकेवली कैसे हुए ? केवल अकेले को जाने, इसलिए श्रुतकेवली। केवली (ने) तीन लोक को जाना, इसलिए (केवली है) ऐसा नहीं। केवली ने भी अकेला आत्मा को जाना, इसलिए केवली। केवल एक को जाना, इसलिए केवली। इन दोनों में अन्तर क्या है ? कहते हैं। समझ में आया ? न्याय से... यह तो सब वीतरागी नियम हैं। सत्य के नियम त्रिकाल सत्य, त्रिकाल सत्य।

सूत्र न हो तो वहाँ भी ज्ञप्ति तो होती ही है। आत्मा हो तो ज्ञप्ति होती है। सूत्र नहीं

हो तो ज्ञप्ति होती है, आत्मा हो तो ज्ञप्ति होती है। केवली को भी सूत्र नहीं और अकेला ज्ञान है। तो यह आत्मा है तो ज्ञप्ति है केवल। यहाँ आत्मा है तो ज्ञप्ति है श्रुत की। समझ में आया? ज्ञानतत्त्व अधिकार है न! ज्ञान का भाव, श्रुत का भाव और केवली का भाव, ऐसा तत्त्व तो उसने सब द्रव्य को पकड़ा है, द्रव्य को जाना है, बस। द्रव्य को जाना, इतना ही यहाँ कहना है। दास!

★ ★ ★

गाथा - ३५

अब, आत्मा और ज्ञान का कर्त्तृत्व-करणत्वकृत भेद दूर करते हैं क्या कहते हैं? (अर्थात् परमार्थतः अभेद आत्मा में, 'आत्मा ज्ञातृक्रिया का कर्ता है और ज्ञान करण है' ऐसा व्यवहार से भेद किया जाता है, तथापि आत्मा और ज्ञान भिन्न नहीं हैं, इसलिए अभेदनय से 'आत्मा ही ज्ञान है'... देखो! आत्मा ज्ञान द्वारा कर्म किया, साधन किया, ऐसे भेद उसमें नहीं। वह ज्ञानस्वरूप ही स्वयं है। समझ में आया? यह कहते हैं। ३५ (गाथा)।

जो जाणदि सो णाणं ण हवदि णाणेण जाणगो आदा।
णाणं परिणमदि सयं अट्ठा णाणट्ठिया सव्वे॥३५॥

जो जाने वह ज्ञान जानिए, नहीं ज्ञान द्वारा ज्ञायक।
स्वयं ज्ञानमय वह परिणमता, रहें ज्ञान में सभी पदार्थ॥३५॥

ऐसे ज्ञान द्वारा, ऐसा नहीं। **जो जानता है सो ज्ञान है...** देखो! ज्ञान से ही सब अर्थ उसमें पड़े हैं सब। विराट-विराट भगवान है। वह आता है न गीता में, नहीं? ऐसे भगवान मुख फाड़ते हैं। दर्शन कराया। ओहोहो! इस ज्ञान की पर्याय का विराट स्वरूप है, जिसने आत्मद्रव्य को देखा। समझ में आया? इससे ज्ञान में परिणमन होने से जितने पदार्थ पर हैं, उन सबका ज्ञान हुआ, (इससे) वे पदार्थ ज्ञान में हैं, ऐसा व्यवहार से कहा। समझ में आया?

अन्वयार्थ :- जो जानता है, सो ज्ञान है (अर्थात् जो ज्ञायक है, वही ज्ञान है),...

ऐसा। जो जानता है, वह ज्ञान है, अर्थात् कि ज्ञायक है, वह ज्ञान है, ऐसा। ज्ञायक है, वह ज्ञान है। और ज्ञायक तथा ज्ञान दोनों भिन्न, ऐसा है नहीं। **ज्ञान के द्वारा आत्मा ज्ञायक है ऐसा नहीं है।** ज्ञान द्वारा आत्मा ज्ञायक है, ऐसा नहीं है। **स्वयं ही ज्ञानरूप परिणमित होता है और सर्व पदार्थ ज्ञानस्थित हैं।** यह ज्ञान का तत्त्व कितना बड़ा है, ऐसा इसका स्वरूप कितना है, ऐसा सिद्ध करते हैं। जितना जैसा उसका स्वरूप सत् है, उस प्रकार से माने तो उसने सच्चे ज्ञान को माना कहलाये। समझ में आया?

टीका :- आत्मा अपृथग्भूत कर्तृत्व और करणत्व की शक्तिरूप पारमैश्वर्यवान होने से... भगवान आत्मा उससे भिन्न नहीं—अपृथग्भूत, पृथक् नहीं ऐसा **कर्तृत्व और करणत्व की शक्तिरूप पारमैश्वर्यवान होने से...** कर्ता और करण कहीं आत्मा से भिन्न नहीं। आत्मा ही कर्ता और आत्मा ही ज्ञानस्वरूप है। आत्मा ज्ञान द्वारा जाने, ऐसा नहीं। आत्मा कर्ता और आत्मा ही ज्ञानस्वरूप से जानता है। आत्मा ही ज्ञानस्वरूप होकर जानता है। **आत्मा अपृथग्भूत...** पृथक्भूत नहीं ऐसे, आत्मा से भिन्न नहीं। **कर्तृत्व और करणत्व...** कर्तापना और साधन, कर्तापना और कारण, कर्तापना और साधन—ऐसी **शक्तिरूप पारमैश्वर्यवान होने से...** यह तो स्वयं ऐसी शक्तिवाला है। कर्ता शक्तिवाला है और करण शक्तिवाला है, स्वयं करणशक्तिवाला है। ज्ञान के करण द्वारा जानता है, ऐसा नहीं, स्वयं ही ज्ञानरूप से जानता है। स्वयं आत्मा ज्ञानरूप होकर, परिणमकर जानता है। समझ में आया?

जो स्वयमेव जानता है (अर्थात् जो ज्ञायक है) वही ज्ञान है;... जाननेवाला है, वही ज्ञान है। और जाननेवाला तथा ज्ञान भिन्न, (ऐसा नहीं है)। जाननेवाला ज्ञान द्वारा जानता है, ऐसा कहाँ है? जाननेवाला जानता है, जाननेवाला जानता है। जाननेवाला ज्ञान द्वारा जानता है। जाननेवाला कर्ता और ज्ञान करण—साधन, ऐसा भेद उसमें कहाँ है? समझ में आया? वह स्वयं ही उस शक्तिरूप पारमैश्वरवाला होने से। **पारमैश्वर्य=परम सामर्थ्य; परमेश्वरता।** थे। अपने में जैसी परम सामर्थ्यता कर्तापने की और करणपने की आत्मद्रव्य में सामर्थ्यता है। आत्मा द्रव्य कर्ता और ज्ञान का करणपना सामर्थ्य गुण ज्ञान-गुण में, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते है। धर्म में ऐसा सब निर्णय करना पड़ता होगा?

वही ज्ञान है;... ज्ञायक है, वही ज्ञान है। जाननेवाला है, वही ज्ञान है। जाननेवाला

और ज्ञान भिन्न है, ऐसा है नहीं। **जैसे—जिसमें साधकतम उष्णत्वशक्ति अन्तर्लीन है,...** साधकतम। २ है न? **उत्कृष्ट साधन, वह करण।** तम है न तम? उत्कृष्ट साधन। **जिसमें उष्णत्वशक्ति अन्तर्लीन है, ऐसी स्वतन्त्र अग्नि के...** स्वतन्त्ररूप से कर्ता जो अग्नि है, उसे **दहनक्रिया की प्रसिद्धि...** दहन अर्थात् **अग्नि जलाने की क्रिया करती है...** अग्नि जलाने की क्रिया करती होने से **अग्नि को उष्णता अर्थात् उष्णता कहा जाता है।** अग्नि को उष्ण कहा जाता है। अब अग्नि और अग्नि का उष्ण गुण, ऐसे दो भेद नहीं करते। अग्नि स्वयं गर्म है, ऐसा कहने में आता है। अग्नि उष्णता द्वारा गर्म है, ऐसा कहने में नहीं आता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया इसमें? अग्नि उष्णता द्वारा गर्म है और अग्नि स्वयं गर्म है, इसमें कुछ अन्तर पड़ता है? बड़ा अन्तर पड़ता है। बड़ा अन्तर पड़ता है, ऐसा सिद्ध करते हैं। अग्नि उष्णता द्वारा गर्म है और अग्नि गर्म है, बड़ा अन्तर। अग्नि स्वयं गर्म है, यह यथार्थ है। अग्नि उष्णता द्वारा गर्म, यह तो और भेद पड़ गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। ऐसा कहते हैं यहाँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गर्म स्वयं ही है। ज्ञायक ज्ञान स्वयं ही है, ऐसा सिद्ध करना है और अग्नि गर्म स्वयं ही है। और गर्मी-उष्णता भिन्न तथा अग्नि भिन्न, ऐसा है नहीं। अग्नि को ही उष्णस्वरूप कहते हैं। उष्णस्वरूप। दहन-दहनस्वरूप, गरमस्वरूप। गर्म-गर्म। अग्नि का गुण गर्म है, ऐसा नहीं, अग्नि स्वयं गर्म है। इसी प्रकार आत्मा का ज्ञानगुण है, उससे जानता है, ऐसा नहीं, आत्मा स्वयं ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? **स्वतन्त्र अग्नि के दहनक्रिया की प्रसिद्धि होने से...** गर्म है ऐसा। समझ में आया?

मुमुक्षु : उष्णता को छोड़ दे तो फिर अग्नि कही नहीं जा सकती।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अग्नि स्वयं ही गर्मस्वरूप है। उसका स्वरूप ही वह है। उष्णता का गुण उष्ण और अग्नि अलग, ऐसा है उसमें? इसी प्रकार आत्मा ज्ञायक और ज्ञानगुण भिन्न, ऐसा है? वह ज्ञायक स्वयं ही ज्ञानगुणस्वरूप है। समझ में आया?

आहाहा! सब न्याय से बात करते हैं यह तो। न्याय-लॉजिक से बात करते हैं या नहीं? ऐई! देवानुप्रिया! उष्णता कहलाती है। देखा! उसे ही उष्णता कहा जाता है। देखा!

दहनक्रिया की प्रसिद्धि... स्वतन्त्र अग्नि को कर्ता और दहनक्रिया की प्रसिद्धि। **दहनक्रिया की प्रसिद्धि होने से उष्णता कही जाती है।** अग्नि को उष्णता कहते हैं। और अग्नि का उष्ण गुण, ऐसा नहीं। अग्नि को उष्णता कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? ऐसे धर्म की बातें अब। वे समझे बिना सीधे पूजा और भक्ति करने लगे। व्रत और नियम। ऐई! भगवानभाई!

मुमुक्षु : चारित्र है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी चारित्र नहीं। यहाँ तो अभेदस्वरूप आत्मा है, उसके दर्शन और ज्ञान बिना तेरे सब व्यर्थ है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

कही जाती है। परन्तु ऐसा नहीं है कि जैसे पृथग्वर्ती हँसिये से... देखा! **पृथग्वर्ती हँसिये से देवदत्त काटनेवाला कहलाता है, उसी प्रकार ज्ञान से आत्मा जाननेवाला है।** ऐसा नहीं है। देवदत्त हौसलें द्वारा काटता है, ऐसे आत्मा ज्ञान द्वारा जानता है, ऐसा नहीं है। जैसे अग्नि स्वयं गर्म है, उसी प्रकार आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानस्वरूप होकर ही सब जानता है। ज्ञानरूप होकर ज्ञानरूप है, इस प्रकार से जानता है। कहो, समझ में आया? देखो! इतना भेद निकाल दिया। **पृथग्वर्ती हँसिये से...** क्योंकि देवदत्त और हौसला भिन्न है। लो, भाषा हौसला डाला है। उसमें क्या है? दांतरडो। ठीक! **'दात्रेण'। 'पृथग्वर्तिना दात्रेण लावको भवति' 'लावको'** अर्थात् क्या? लणनारो, काटनेवाला। यह लणता है नहीं कहते? लणता है, वह देवदत्त हौसला द्वारा काटता है, ऐसा नहीं, इसी प्रकार आत्मा ज्ञान द्वारा जानता है, ऐसा नहीं।

ज्ञान से आत्मा जाननेवाला है। यदि ऐसा हो तो दोनों के अचेतनता आ जायेगी... ज्ञायक आत्मा ज्ञान द्वारा। तो ज्ञान भिन्न हो गया और ज्ञायक भिन्न हो गया। तो ज्ञायक में ज्ञान नहीं रहा, ज्ञायक अचेतन हो गया, ज्ञान में ज्ञायक नहीं आया, इसलिए ज्ञान भी अचेतन हो गया। समझ में आया? आहाहा! मुनियों ने जंगल में रहकर कैसी बात को (सिद्ध किया है)! कहते हैं, **यदि ऐसा हो तो दोनों के अचेतनता आ जायेगी और**

अचेतनों का संयोग होने पर भी ज्ञप्ति उत्पन्न नहीं होगी। दोनों अचेतन हुए। क्योंकि आत्मा ज्ञायक, ज्ञान द्वारा। तो ज्ञान भिन्न हुआ, यह भिन्न हुआ। तो ज्ञायक में ज्ञान नहीं रहा इसलिए ज्ञायक अचेतन हुआ और ज्ञान हो तो ज्ञान में ज्ञायक नहीं आया, इसलिए ज्ञान अचेतन हुआ। और दो का संयोग होने से, दो अचेतन का संयोग होने से ज्ञान कहाँ से होगा? दो अचेतन है यहाँ तो। दो के मिलाप से—दो के अचेतन के मिलाप से ज्ञान की पर्याय कहाँ से होगी? समझ में आया? आहाहा! वकीलों को समझ में आये ऐसा होगा? व्यापारियों को न समझ में आये, ऐसा है? न्याय से बात करते हैं न न्याय से?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको यह तो न्याय से बात करते हैं लॉजिक से, युक्ति से। कहते हैं, सुन न!

देवदत्त भिन्न और हौसला भिन्न। उसी प्रकार आत्मा ज्ञायक भिन्न और ज्ञान भिन्न। तो ज्ञायक में ज्ञान नहीं रहा तो वह अचेतन हो गया और ज्ञान में ज्ञायक नहीं आया, इसलिए अचेतन हुआ और दो के इकट्ठे होने से भी—दो अचेतन के इकट्ठे होने से ज्ञान कहाँ से आयेगा? इसलिए आत्मा स्वयं ही ज्ञानस्वरूप है। समझ में आया? **आत्मा और ज्ञान के पृथग्वर्ती होने पर भी यदि आत्मा के ज्ञप्ति का होना माना जाये तो परज्ञान के द्वारा पर को ज्ञप्ति हो जायेगी...** यह घड़े को भी ज्ञान होना चाहिए, राख को भी ज्ञान हो जाना चाहिए। क्योंकि उसमें ज्ञान नहीं और ज्ञान उसे जुड़ गया घड़े के साथ में। जैसे ऐसा नहीं हो सकता, उसी प्रकार आत्मा और ज्ञान भिन्न हों तो जाननापना अपना स्वरूप ही है, वह नहीं हो सकता। ज्ञायक स्वयं ही ज्ञानस्वरूप परिणमकर जानता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ९, सोमवार, दिनांक ३०-०९-१९६८
गाथा - ३५, ३६, प्रवचन - २८

ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। यहाँ बीच में आया है, देखो! यह आत्मा है, उसे ज्ञान है, वह ज्ञान भिन्न हो और आत्मा यहाँ जुड़े तो आत्मा ज्ञानी हो—ज्ञायक हो, ऐसा नहीं है। आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है। ज्ञानस्वरूप द्वारा ही स्व और पर को जानता है, ऐसा उसका स्वभाव है। वह ज्ञान पृथक् हो और आत्मा पृथक् हो तो आत्मा, जैसे देवदत्त हौसला द्वारा काटता है, इसी प्रकार आत्मा ज्ञान द्वारा जुड़कर जाने तब तो ज्ञान राख के साथ जुड़कर राख को भी ज्ञान हो, घड़े के साथ ज्ञान जुड़े। जैसे आत्मा के साथ जुड़े तो ज्ञान (होता है, ऐसा) राख के साथ, स्तम्भ के साथ, घड़े के साथ जुड़े (तो) उसे भी ज्ञान होना चाहिए। बराबर है?

अब आया वहाँ, देखो! **राख इत्यादि के भी ज्ञप्ति का उद्भव निरंकुश हो जायेगा।** यदि आत्मा और ज्ञान भिन्न हो और उस ज्ञान द्वारा आत्मा जुड़कर जाने, ऐसा होता नहीं। क्योंकि ज्ञान बिना आत्मा अचेतन हुआ और आत्मा बिना ज्ञान अचेतन हुआ। समझ में आया? आत्मा और ज्ञान दोनों भिन्न हों तो आत्मा बिना ज्ञान, वह भी अचेतन हुआ और आत्मा ज्ञान बिना का, वह भी अचेतन (हुआ)। और दो अचेतन के मिलने से भी ज्ञान हो, ऐसा नहीं हो सकता। इसलिए ज्ञान, वह आत्मा ही है। इसलिए आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है। उसे ज्ञान से जुड़कर काम करता है, ऐसा है नहीं। यदि ऐसा हो तो **राख इत्यादि के भी...** जानने की क्रिया की उत्पत्ति निरंकुश होगी। कहो, बराबर है? क्या कहा यह?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बस यह। दो बार कहा गया न कि यह आत्मा है, वस्तु है न, वह ज्ञान और आत्मा यदि दोनों भिन्न हों और फिर आत्मा ज्ञान के साथ जुड़कर काम करे तो ज्ञान भी आत्मारहित अचेतन हुआ और आत्मा भी ज्ञानरहित अचेतन हुआ। अब दो अचेतन इकट्ठे होकर भी, अचेतन दो इकट्ठे होकर ज्ञान हो, ऐसा भी नहीं हो सकता। यदि ऐसा हो तो ज्ञान राख के साथ जुड़े और राख में भी ज्ञप्तिक्रिया, जानने की क्रिया

होनी चाहिए। स्तम्भ के साथ ज्ञान जुड़े। क्योंकि ज्ञान जोड़ना है न? यहाँ जुड़े तो राख के साथ जुड़े, स्तम्भ के साथ जुड़े तो उसे भी ज्ञप्तिक्रिया उत्पन्न होने में निरंकुशता अर्थात् उसमें कोई बाधा नहीं आयेगी, विरोध नहीं आयेगा, ऐसा कहते हैं। ऐसा है नहीं। वह भगवान स्वयं ही ज्ञानस्वरूप है।

कोष्ठक में है, देखो! (**'आत्मा और ज्ञान पृथक् हैं किन्तु ज्ञान आत्मा के साथ युक्त हो जाता है, इसलिए आत्मा जानने का कार्य करता है'...** कोष्ठक में है न? **ऐसा माना जाये तो जैसे ज्ञान आत्मा के साथ युक्त होता है, उसी प्रकार राख, घड़ा, स्तम्भ इत्यादि समस्त पदार्थों के साथ युक्त हो जाये और उससे वे सब पदार्थ भी जानने का कार्य करने लगें;...** पढ़ा होगा या नहीं, घर में पढ़ते हो या नहीं यह?

मुमुक्षु : जवाब तैयार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जवाब तैयार रखते हो व्यवस्थित। परन्तु वाँचकर अन्दर वाँचना...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु थोड़ा वाँचकर करे न! रामजीभाई कहते थे कि हमारे मास्टर ऐसा कहते थे कि तुम पढ़कर आना। हमारे मास्टर ऐसा कहते थे कि पढ़कर आना। वे नरोत्तम मास्टर थे, वे कहे, पढ़कर आना। फिर हम पढ़ें तो तुमको पढ़ने में कहाँ नहीं समझ में आता था, वह तुमको यहाँ समझ में आयेगा। तो यहाँ पढ़ा हो न थोड़ा तो उसे ख्याल आवे कि यह समझ में नहीं आया था और यह समझ में आया।

कहते हैं कि राख और घड़ा और स्तम्भ, उसमें ज्ञान नहीं और ज्ञान उसमें जुड़े। जैसे आत्मा में ज्ञान नहीं और आत्मा में ज्ञान जुड़े, उसी प्रकार राख और स्तम्भ में ज्ञान नहीं और ज्ञान वहाँ भी जुड़े, तो भी वहाँ जानने की क्रिया होती है। तो ऐसा हो नहीं सकता। **किन्तु ऐसा तो नहीं होता, इसलिए आत्मा और ज्ञान पृथक् नहीं हैं)।** यह आत्मा गुणी और गुण, दोनों पृथक् नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। भगवान ज्ञानस्वरूप ही है। वह ज्ञान से स्वयं जानता है। इसलिए आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप परिणमन करके जानता है, ऐसा कहते हैं। स्वयं आत्मा ज्ञानरूप परिणमकर जानता है।

और, अपने से अभिन्न ऐसे समस्त ज्ञेयाकाररूप... क्या कहते हैं ? यदि ज्ञान में दूसरे ज्ञेय हैं, उनका जो यहाँ ज्ञान हुआ। **अपने से अभिन्न ऐसे समस्त ज्ञेयाकाररूप परिणमित जो ज्ञान है,...** अपना ज्ञान, जो ज्ञेय है जगत के और द्रव्य स्वयं—उसरूप से जाना हुआ ज्ञान **उसरूप स्वयं परिणमित होनेवाले को,...** उसरूप से आत्मा स्वयं ज्ञानरूप से परिणमता है। स्व और पर को जानने के लिये ज्ञान ही स्वयं—आत्मा स्वयं परिणमता है। **परिणमित होनेवाले को, कार्यभूत समस्त ज्ञेयाकारों के कारणभूत...** जिस ज्ञान में ज्ञेय कारण थे और यहाँ कार्य, उसका हुआ, उसमें वे निमित्त कारण हैं। यहाँ कार्य हुआ ज्ञान में परिणमन का तो वह कार्य है ज्ञेयाकार का। तो कार्य में कारणभूत सर्व पदार्थ जो ज्ञेय हैं वे, यहाँ कार्य हुआ इससे वे कारण उसमें है। **ज्ञानवर्ती ही कथंचित् हैं।** ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। समझ में आया ? ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा परिणमते स्व और पर का सब ज्ञेयाकार का परिणमन स्वयं का है और इससे वह कार्य हुआ यहाँ ज्ञान का परिणमने का, उसमें कारण वे थे। तो उस कार्य में कारण का उपचार करके ज्ञान में दूसरे पदार्थ हैं, ऐसा किसी अपेक्षा से कथंचित् व्यवहार से कहने में आता है। समझ में आया ?

(इसलिए) ज्ञाता और ज्ञान के विभाग की क्लिष्ट कल्पना से क्या प्रयोजन है ? जाननेवाला आत्मा और ज्ञान भिन्न, ऐसा क्लिष्ट कल्पना का क्या काम है ? वह तो ज्ञाता और ज्ञान दोनों एक ही है। समझ में आया ? आत्मा अर्थात् ज्ञानस्वभाव, आत्मा अर्थात् ज्ञ-स्वभाव, चैतन्यस्वभाव। आत्मा अर्थात् चैतन्यस्वभाव। और पृथक् कहाँ आया उसमें ? ज्ञान पृथक् है और आत्मा जाननेवाला पृथक् है, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? **ज्ञाता और ज्ञान के विभाग की क्लिष्ट कल्पना से...** यह तो क्लिष्ट कल्पना है। इससे **क्या प्रयोजन है ?** समझ में आया ? '**विभागक्लेशकल्पनया**' क्या काम है ? भगवान आत्मा ही ज्ञानस्वरूप से परिणमित है, स्व को—पर को जानने में। समझ में आया ? यह ३५ (गाथा) हुई।

★ ★ ★

गाथा - ३६

अब ज्ञान क्या है और ज्ञेय क्या है :— ज्ञान क्या है और ज्ञान में ज्ञात हो, वह ज्ञेय क्या है ? आत्मा ज्ञान है, वह ज्ञान, अब वह ज्ञान क्या है और उस ज्ञान में ज्ञात हो वह ज्ञेय क्या है ? यह ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। तुम ऐसा करो तो ऐसा नहीं। यहाँ तो ज्ञान क्या है और ज्ञेय क्या है ? अर्थात् इस प्रकार ऐसा नहीं। यह भी ज्ञेय है। ज्ञान क्या है और ज्ञेय क्या है ? अर्थात् ज्ञान ज्ञान है और ज्ञेय, आत्मा और पर सब ज्ञेय है। समझ में आया ? इसलिए ऐसा किया, ऐसा नहीं। **अब यह व्यक्त करते हैं कि ज्ञान क्या है और ज्ञेय क्या है :—**

तम्हा णाणं जीवो णेयं दव्वं तिहा समक्खादं।
दव्वं ति पुणो आदा परं च परिणामसंबद्धं॥३६॥

अतः ज्ञान ही जीव, और हैं ज्ञेय त्रिधा-स्पर्शी सब।
ज्ञेयभूत सब द्रव्य और आत्मा परिणामों से सम्बद्ध॥३६॥

देखो ! '**परिणामसंबद्धं**' शब्द पड़ा है। द्रव्य परिणाम के सम्बन्धवाला है। वह सम्बन्ध वहाँ डाला। राग और संयोगी सम्बन्ध ? परसंयोगी ? वस्तु स्वयं त्रिकाल वस्तु है। प्रत्येक हों, यहाँ। उसे परिणाम—पर्याय का सम्बन्ध है, परिणमने का उसका सम्बन्ध है। आत्मा हो या परमाणु हो, जितने पदार्थ हैं, वे शाश्वत् ध्रुवरूप से रहे हुए हैं, नित्यरूप से रहे हैं, उसे परिणाम अर्थात् पलटने का उसे सम्बन्ध है। समझ में आया ? एक समय जितना परिणाम है न ? और त्रिकाल द्रव्य है, इसलिए उस परिणाम का उसका सम्बन्ध है अथवा परिणाम से युक्त है अथवा परिणामवाला प्रत्येक द्रव्य है।

इसका **अन्वयार्थ :- इसलिए जीव ज्ञान है...** पहला कहा न ऊपर कि ज्ञान और जीव दो भिन्न हैं, ऐसा है नहीं। **इसलिए जीव ज्ञान है...** ऐसा कहा। **और ज्ञेय तीन प्रकार से वर्णित (त्रिकालस्पर्शी)...** यह स्पष्टीकरण करेंगे। भूत, भविष्य और वर्तमान में पर्याय से परिणमित अथवा द्रव्य-गुण पर्याय से द्रव्य है। द्रव्य किसे कहना ? वह ज्ञेयभूत। **द्रव्य अर्थात् आत्मा और पर...** दो। **(वह ज्ञेयभूत) द्रव्य अर्थात् आत्मा और पर...** दोनों ज्ञेय। उस ज्ञान के दो ज्ञेय। क्योंकि ज्ञान स्व-परप्रकाशक है इसलिए। समझ

में आया? इस तत्त्व का तात्पर्य क्या कहलाता है यह? यह तत्त्वदीपिका है। तत्त्व को बतलानेवाले दीपिका—दीवड़ी—दीपक। ऐसा तत्त्व है, ऐसा उसे बराबर जानना और मानना चाहिए। आत्मा, वह भी ज्ञानपरिणाम का ज्ञेय है। सब द्रव्य, गुण और सब पर्यायें और अपनी पर्याय, ज्ञान की पर्याय। परिणाम जो ज्ञान की अवस्था है, उसमें द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों उस ज्ञान का ज्ञेय है और सामने द्रव्य, गुण और पर्याय वे भी ज्ञान में ज्ञेय हैं। ऐसा वह ज्ञान है।

टीका :- (पूर्वोक्त प्रकार) ज्ञानरूप से स्वयं परिणमित होकर... ऐसा। ज्ञान और आत्मा दो भिन्न नहीं, ऐसा सिद्ध किया है न? इसलिए पूर्वोक्त रीति से—पूर्व में कहा वह ज्ञान, वही आत्मा। आत्मा ही ज्ञानरूप परिणमता है। **ज्ञानरूप से स्वयं परिणमित होकर...** आत्मा ज्ञानरूप स्वयं परिणमकर **स्वतन्त्रतया ही जानता है,...** स्वतन्त्ररूप से जानता है। उसे जानने में कोई पर की अपेक्षा नहीं। **जीव ही ज्ञान है,...** ज्ञानरूप से स्वयं परिणमकर स्वतन्त्ररूप से कर्ता स्वतन्त्र जानता होने से। समझ में आया? '**उपादानरूपेण ज्ञानं परिणमति**' ऐसा है न अन्दर? उपादान। उसमें जयसेनाचार्य में। **परिणमित होने तथा जानने में...** स्वयं ही परिणमने को समर्थ है, ऐसा कहते हैं।

क्योंकि अन्य द्रव्य... आत्मा के अतिरिक्त दूसरे पदार्थ **इस प्रकार (ज्ञानरूप) परिणमित होने तथा जानने में असमर्थ हैं।** कहो। शरीर, वाणी, मन आदि जो है, वह जानने को समर्थ नहीं और जानकर परिणमनेरूप भी समर्थ नहीं, ऐसा। **(ज्ञानरूप) परिणमित होने तथा जानने में असमर्थ हैं।** ज्ञान ही नहीं उसमें, इसलिए कहाँ से हो? ऐसा कहते हैं। शरीर, वाणी, मन, यह सब उस ज्ञानरूप परिणमने को और जानने को समर्थ नहीं हैं। जड़ है पर। **और ज्ञेय...** ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेय **वर्त चुकी,...** जितनी आत्मा की और पर की वर्त चुकी पर्यायें, वर्तते, वर्त चुकी और वर्तेगी (ऐसी) पर्यायें और **वर्तनेवाली ऐसी विचित्र पर्यायों...** भगवान ज्ञानस्वरूप से परिणमते ज्ञान में अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में पर्याय बीत गयी, वर्तती है और होगी, दूसरे की भी पर्यायें बीत गयीं, वर्तती है और वर्तेगी, उन सबको **विचित्र पर्यायों की परम्परा के प्रकार से...** एक के बाद एक, एक के बाद एक, उसमें जो होता है, अपने में और पर में दोनों में, हों! ज्ञान की पर्याय भी एक के बाद एक, एक के बाद एक होती है। अनन्त गुण को स्वयं एक

के बाद एक पर्याय होती है, दूसरे द्रव्य में भी उसके गुण की एक के बाद एक पर्याय बीत गयी, हुई और होती है। ऐसे पर्यायों की विचित्र अवस्थाओं की **परम्परा के प्रकार से त्रिविध कालकोटि को स्पर्श करता होने से...** कौन? ज्ञेय। ज्ञान में ज्ञात हो ऐसा ज्ञेय, ज्ञात होनेयोग्य ऐसा ज्ञेय, वर्त चुकी, वर्तती और वर्तेगी, ऐसे **विचित्र पर्यायों की परम्परा के प्रकार से त्रिविध कालकोटि को स्पर्श करता होने से...** तीनों काल में उस प्रकार की पर्यायें होती हैं। समझ में आया? यह एक बोल लिया। उसमें द्रव्य-गुण-पर्याय तीन लिये। दो लिये। यह तो आ गया न?

त्रिविध कालकोटि को स्पर्श करता होने से... देखो, ज्ञान की एक समय की पर्याय, केवलज्ञान की एक समय की पर्याय। स्वयं वर्त गयी ज्ञान की पर्यायें या अनन्त गुणों की पर्यायें, वर्तेंगीं, वर्तती है, वर्तेंगी, ऐसे दूसरे ज्ञेयों की पर्यायें वर्त गयी, वर्तती है और वर्तेंगी, वे तीन काल के कोटि स्पर्श है जिसे, वे ज्ञेय हैं। उस ज्ञेय को ज्ञान जानता है।

मुमुक्षु : सब ज्ञात हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब ज्ञात हो गया। जानने में क्या बाकी हो? एक समय की पर्याय इतनी केवलज्ञान की है। समझ में आया? अपने ज्ञानगुण की भी पर्याय वर्त गयी, वर्तती है और वर्तेगी। ऐसे दूसरे अनन्त गुणों की पर्यायें वर्त गयीं, वर्तती हैं और वर्तेंगी, ऐसे दूसरे परमाणु और दूसरे आत्मायें, उनकी भी पर्यायें हो गयी, है और होगी—उन सबको तीन काल स्पर्शी पर्यायों की विचित्र परम्परा को स्पर्शता वह ज्ञेय। समझ में आया? अनादि-अनन्त ऐसा द्रव्य है। ऐसा अनादि-अनन्त, ऐसा वह द्रव्य है। स्वयं और पर।

मुमुक्षु : सभी गुण हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : सभी हैं। आहाहा! कितनी सामर्थ्य, देखो! समझ में आया?

पहले में कहा था न केवली... आचार्य कहते हैं। क्योंकि हम भी द्रव्य को जानते हैं और भगवान केवली भी द्रव्य को जानते हैं। द्रव्य जो स्वरूप है, वस्तु जो है, ऐसी-ऐसी तो अनन्त पर्यायों का पिण्ड जो गुण और अनन्त गुण का एकस्वरूप द्रव्य, ऐसा जो आत्मद्रव्य उसे हम श्रुतज्ञान द्वारा, ज्ञप्ति द्वारा उसे जानते हैं। भगवान केवली भी उनकी ज्ञप्ति द्वारा, जिस द्रव्य को हम जानते हैं, उसी द्रव्य को उसमें वे जानते हैं। इस अपेक्षा

से तो हमारी दोनों की ज्ञप्ति समान है, कहते हैं। हम दोनों समान हैं। और ऐसे देखो तो पर को जानने की अपेक्षा में भी श्रुतज्ञान की पर्याय परोक्ष रीति से जानती है, केवली प्रत्यक्ष (जानते हैं)। इस प्रकार भी स्याद्वाद श्रुतज्ञान और केवलज्ञान, इस प्रकार समान है। पर को जानने की अपेक्षा से समान है और हम स्व की अपेक्षा से दोनों समान हैं, ऐसा कहते हैं यहाँ। आहाहा! समझ में आया? कितनी बात करना, कहते हैं।

भगवान आत्मा जिसे ज्ञान की पर्याय या अनन्त गुण की पर्याय, वह सब केवलज्ञान एक समय में अपना ज्ञेय, गुण और पर्याय तीन काल की और पर को जानती है। अब वह एक समय की पर्याय, वह श्रुतज्ञान की जो है, वह भी इस प्रकार से ही जानती है। मात्र परोक्ष और प्रत्यक्ष का अन्तर है। बाकी जानने में तो दोनों ऐसे भी समान हैं और स्वद्रव्य को जानने के लिये समान हैं हम तो। क्योंकि भगवान केवलज्ञान भी केवल द्रव्य जो वस्तु है शुद्ध चैतन्य, जो अनन्त पर्यायें एक ज्ञान की अवस्था, ऐसी अनन्त पर्यायों का समूह एक गुण, ऐसे त्रिकाल पर्यायों का एक-एक समूह, वह एक-एक गुण, ऐसे अनन्त गुण का एकरूप वह द्रव्य। केवल द्रव्य को केवली जानते हैं, इसलिए केवली हैं। हम भी केवल द्रव्य को जानते हैं, इसलिए हम श्रुतकेवली हैं। आहाहा! समझ में आया? बाहर से देखो तो हम परोक्ष-प्रत्यक्ष में दोनों समान हैं। यह परोक्ष और प्रत्यक्ष में अन्तर है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। सिद्ध का साधर्मी। समझ में आया? यह सिद्ध का साधर्मी। ऐसा भगवान आत्मा, उसकी शक्तियाँ और समूह का पिण्ड प्रभु, उसे ज्ञान द्वारा जाना। बस! भगवान ने केवलज्ञान द्वारा जाना, हमने श्रुतज्ञान द्वारा जाना। जानने में-जानने में द्रव्य को जाना, उसमें हमारी ज्ञप्ति की क्रिया में क्या अन्तर है? देखो, यह सामर्थ्य श्रुतज्ञान का! आहाहा! उसका स्वभाव ही जानना है। किसी का करना या किसी को कर देना, किसी से लेना—ऐसा स्वरूप उसमें नहीं है, ऐसा कहते हैं। वह तो जानने के स्वभाववाला भगवान जानने की क्रिया में पर को भी जाने और स्व को जाने। पहले स्व को कहा, अब यहाँ पर को जानने का कहेंगे। स्व और पर दोनों ज्ञेय हैं, उन्हें ज्ञान की पर्याय जानती है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान का ऐसा स्वभाव ही है। इस खुमारी का अर्थ? ज्ञान की पर्याय का स्वभाव ही ऐसा है कि स्व और पर को जाने, बस। केवलज्ञानी एक समय में प्रत्यक्ष जानते हैं, श्रुतज्ञानी एक समय में परोक्ष जानते हैं। उसमें अन्तर नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ओहोहो!

ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन अधिकार है न! तो ज्ञान का स्वभाव कितना है, कैसा है, यह बात सिद्ध करते हैं। जैसा ज्ञानस्वरूप है और ज्ञान का जितना सामर्थ्य है, उतने प्रमाण में उसे पहिचाने और माने तो ज्ञानतत्त्व माना कहलाये। समझ में आया? यह ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। कहते हैं कि भगवान आत्मा ज्ञान की पर्याय में अपनी अनन्त पर्यायें तीन काल को स्पर्शता द्रव्य, तीन काल की पर्याय को छूता, स्पर्शता, होता द्रव्य। दूसरे जो द्रव्य हैं, वे भी उसे तीन काल की पर्यायों को स्पर्शता वह द्रव्य—वह ज्ञेय दो प्रकार के। यह ज्ञान दोनों को जानता है। समझ में आया? ओहोहो!

अनादि-अनन्त ऐसा द्रव्य है। (आत्मा ही ज्ञान है और ज्ञेय समस्त द्रव्य हैं) वह ज्ञेयभूत द्रव्य आत्मा और पर ऐसे दो भेद से दो प्रकार का है। भगवान आत्मा में ज्ञानतत्त्व, उस ज्ञानतत्त्व में ज्ञेय के दो प्रकार। आत्मा का ज्ञानतत्त्व, ज्ञानसत्त्व में ज्ञेय के दो प्रकार—आत्मा और पर। वह आत्मा और पर **ऐसे दो भेद से दो प्रकार का...** ज्ञेय हैं। क्योंकि **ज्ञान स्व-परज्ञायक है, इसलिए ज्ञेय की ऐसी द्विविधता मानी जाती है।** समझ में आया? क्यों? ज्ञान, भगवान आत्मा का ज्ञान स्व-परज्ञायक होने से, स्व-पर को जाननेवाला होने से, ज्ञान स्व-पर को जाननेवाला होने से उसका ज्ञेय दो प्रकार से है। ज्ञान स्व-पर जाननेवाला होने से उसका ज्ञेय दो प्रकार से—स्व और पर। ऐसा। समझ में आया?

वह ज्ञेयभूत द्रव्य आत्मा और पर (स्व और पर) ऐसे दो भेद से दो प्रकार का ज्ञेय है। क्योंकि **ज्ञान स्व-परज्ञायक है,...** ज्ञान स्व-पर को जाननेवाला होने से। एक-एक ज्ञान की पर्याय स्व-पर को जाननेवाली होने से। ज्ञेय दो प्रकार से कहा क्योंकि स्व-पर का जाननेवाला है। इसलिए स्व और पर दोनों ज्ञान के ज्ञेय हैं। समझ में आया?

तब इसमें प्रश्न उठा कि ज्ञान की पर्याय स्वयं ज्ञान हो, और स्वयं ज्ञेय हो एक समय में। तुमने तो ऐसा कहा कि ज्ञान, वह वस्तु तत्। अब यह उसका स्वभाव स्व-परप्रकाशक। इसलिए वह ज्ञेय दो प्रकार के। उसमें अपनी ज्ञानपर्याय भी ज्ञेयरूप से आ गयी। उत्पन्न होते ज्ञान और उसका जानना उस काल में, उत्पन्न होता ज्ञान और उस काल में उस पर्याय को स्वयं उसे जानता हुआ ज्ञान। उत्पन्न होता है और जानना। यह क्या ? समझ में आया ?

प्रश्न यह उठा। **अपने में क्रिया के हो सकने का विरोध है, इसलिए आत्मा के स्वज्ञायकता कैसे घटित होती है ?** शिष्य ऐसा कहता है कि तुम ऐसा कहते हो कि ज्ञान की जो अवस्था उत्पन्न होती है, उसे भी ज्ञान उस समय का उत्पन्न हो, उसे वह जानता है। क्योंकि ज्ञेय तो सब द्रव्य, गुण और त्रिकालवर्ती पर्यायें, वे ज्ञान का ज्ञेय हुआ। इसलिए अपनी पर्याय उस काल की, वह भी ज्ञान का ज्ञेय हुआ और अनन्त परवस्तु का द्रव्य गुण की पर्याय, वह भी उसका ज्ञेय हुआ। तो जो ज्ञान उत्पन्न हुआ, उस समय उस ज्ञान का ज्ञेय उत्पन्न हो और उस समय का ज्ञेय और उसे वह जाने। समझ में आया ?

अपने में क्रिया के हो सकने का विरोध है, आत्मा के स्वज्ञायकता... ज्ञान की उत्पत्ति हो और उस समय आत्मा ज्ञान को जाने, उत्पन्न हो और जाने, वह तो विरोध आता है, कहते हैं। समझ में आया इसमें ? उत्पन्न होता है और उसे जाने ? अभी तो उत्पन्न होती है यहाँ ज्ञान की पर्याय वर्तमान। उत्पन्न होती है, उत्पन्न हुई और उसे जाने ऐसा कैसे होगा ? कहते हैं।

मुमुक्षु : वह तो स्वभाव ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जानने का स्वभाव उत्पन्न हुआ, वह उत्पन्न हुआ और उस समय जाने, ऐसा कैसे ? कहते हैं। ऐसा उसे विरोध दिखता है। प्रश्न का रूप जानना चाहिए न पहले। समझ में आया ?

अपने में क्रिया के हो सकने का विरोध है,... ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हो और फिर उस समय उसे जाने। **आत्मा के स्वज्ञायकता कैसे घटित होती है ?** स्वयं आप उत्पन्न हो ज्ञान की पर्याय और वह पर्याय स्वयं द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों को जाने।

अपने को। यह प्रश्न बस। क्या कहा, समझ में आता है कुछ? कि ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, अब वह उत्पन्न हुई, उसके ज्ञेय दो प्रकार के। ज्ञान स्व-परप्रकाशक अर्थात् ज्ञेय दो प्रकार के हुए न, स्व-पर? उसमें द्रव्य, गुण और अनन्त पर्यायें अपनी पर्याय, उन सबको उत्पन्न होता ज्ञान यह द्रव्य-गुण-पर्याय को—उन्हें जाने और दूसरे को जाने। अभी उत्पन्न हुआ, वह इन सबको जाने, ऐसा किस प्रकार बने? कहते हैं। स्व ज्ञायक परिणमन कहाँ से आवे? अभी उत्पन्न हुआ ज्ञान। वह ज्ञान द्रव्य-गुण को अपनी पर्याय को किस प्रकार जाने? समझ में आया? ऐसा प्रश्न है। पहले प्रश्न क्या है, यह जानना चाहिए न?

उत्तर :- कौनसी क्रिया है और किस प्रकार का विरोध है? क्या कहना है तुझे? ऐसा कहते हैं। कौनसी तुझे क्रिया कहनी है और किस प्रकार का तेरा विरोध है? समझ में आया? **क्रिया, जो यहाँ विरोधी कही गयी है,...** स्वयं और स्वयं कहते हैं। **क्रिया, जो यहाँ विरोधी...** तू विरोध उठाता है कि उत्पन्न होता ज्ञान, वह ज्ञान और अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, ऐसा जो तू कहता है उस क्रिया में, **कौनसी क्रिया है और किस प्रकार का विरोध है? जो यहाँ (प्रश्न में) विरोधी क्रिया कही गयी है, वह या तो उत्पत्तिरूप होगी या ज्ञप्तिरूप होगी।** क्रिया का अर्थ यहाँ उत्पत्तिरूप क्रिया और या जानने की क्रिया। अब उत्पत्तिरूप क्रिया जो है, उसमें से उत्पत्ति नयी नहीं होती, यह तो बराबर है, कहते हैं। ज्ञान की पर्याय उत्पत्तिरूप हो क्रिया, उसमें से उत्पत्ति नयी हो, यह तो विरोध आता है।

या तो उत्पत्तिरूप होगी या ज्ञप्तिरूप होगी। उत्पत्तिरूप क्रिया और उस समय की जानने की क्रिया दो प्रकार से। अब तेरा विरोध ऐसा हो कि यह ज्ञान की उत्पत्ति होती है, उसमें नयी उत्पत्ति कैसे होगी? तो यह तो बराबर है, कहते हैं। ज्ञान की उत्पत्ति हो और उसमें से नयी उत्पत्ति दूसरी हो पर्याय में, तो पर्याय से पर्याय की उत्पत्ति (हुई), यह तो विरोध बराबर है। समझ में आया? **प्रथम, उत्पत्तिरूप क्रिया तो 'कहीं स्वयं अपने में से उत्पन्न नहीं हो सकती' इस आगमकथन से विरुद्ध ही है;...** ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, और उसमें से पर्याय उत्पन्न हो, ऐसा तो हो नहीं सकता। समझ में आया

इसमें कुछ? प्रवचनसार सूक्ष्म बात, सूक्ष्म तत्त्व है यह। जैसा है, वैसा ज्ञान का तत्त्व, ज्ञान का भाव, ज्ञान का स्वभाव, उसे प्रतीति में आना चाहिए। आहाहा!

या तो उत्पत्तिरूप होगी या ज्ञप्तिरूप होगी। प्रथम, उत्पत्तिरूप क्रिया तो 'कहीं स्वयं अपने में से उत्पन्न नहीं हो सकती'... पर्याय में से पर्याय उत्पन्न हो, यह (विरोध) तो बराबर है, यह तो आगम से विरुद्ध है। **परन्तु ज्ञप्तिरूप क्रिया में विरोध नहीं आता,...** परन्तु जो ज्ञान की पर्याय उत्पत्ति हुई, वह उसे जानने का काम करे, यह विरोध नहीं है। समझ में आया? भाई! इसमें तो मस्तिष्क को फैलाना पड़े थोड़ा। ऐसे स्थूल बुद्धि से पकड़ में आये, ऐसा यह नहीं है। कहते हैं कि ज्ञानरूप परिणमता आत्मा, उस परिणमने में तीन प्रकार की पर्याय—भूत, भविष्य और वर्तमान। पर में भी भूत, भविष्य और वर्तमान। उसे ज्ञान का स्वभाव पर्याय का स्व-परप्रकाशक होने से उस ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय दो प्रकार का कहा गया है—स्व और पर। तब अब ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हो और उसी समय स्वद्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, यह किस प्रकार बने? उत्पत्ति में से उत्पत्ति को कैसे जाने? कि भाई! उत्पत्ति में से उत्पत्ति नयी की होवे, तब तो विरोध है। द्रव्य के आश्रय से पर्याय उत्पन्न हो। पर्याय में से पर्याय न हो, यह तो बराबर है। परन्तु उत्पन्न होता ज्ञान, उसे ज्ञान होने के काल में भी ज्ञान को ज्ञान न जाने, यह कहाँ है विरोध तुझे? जान सकता है। समझ में आया? आहाहा! ज्ञान उत्पन्न होता, उस ज्ञान को, उस उत्पन्न काल में ज्ञान को जानता है। उत्पन्न काल में दूसरी नयी उत्पत्ति हो, ऐसा नहीं होता। परन्तु उत्पन्न काल में उसे न जाने, ऐसा कैसे बने? यह तो ज्ञान का स्वभाव है। समझ में आया?

क्योंकि वह, प्रकाशन क्रिया की भाँति, उत्पत्तिक्रिया से विरुद्ध प्रकार से (भिन्न प्रकार से) होती है। देखा! **जैसे जो प्रकाश्यभूत पर को प्रकाशित करता है...** दीपक-दीपक। प्रकाशभूत पर को दीपक प्रकाशित करता है। **ऐसे प्रकाशक दीपक को स्व-प्रकाश्य को प्रकाशित करने के सम्बन्ध में अन्य प्रकाशक की आवश्यकता नहीं होती,...** दीपक ऐसे प्रकाशित करता है, प्रकाशपर्याय नयी (उत्पन्न होती है), वह पर्याय प्रकाशित करे, उसे प्रकाशित करने के लिये दूसरे की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह प्रकाशित करती है, पर्याय जो उत्पन्न हो, वही उसे प्रकाशित करती है। समझ में आया?

उसे प्रकाशित करने के लिये दूसरे की आवश्यकता नहीं है। यह तो प्रत्यक्ष दिखता है, कहते हैं। दीपक में दिखता नहीं तुझे? ऐसे दीपक की पर्याय जलहल... जलहल नयी... नयी... नयी... पर्याय हो। तो दीपक की पर्याय हुई, उसमें से नयी पर्याय हो, यह तो नहीं, परन्तु दीपक की पर्याय हुई, वह हुई उसे प्रकाशित करती है। उसे प्रकाशित नहीं करती कि यह मैं दीपक हूँ? ऐसा नहीं ज्ञात होता उसमें? एक समय में उत्पन्न होने के समय भी प्रकाशित नहीं करता? उसे नहीं प्रकाशित करती? उसे प्रकाशित न करे तो पर को प्रकाशित करे, कहाँ से आया? कहते हैं। उसे और पर को दोनों को उस समय प्रकाशित करती है। समझ में आया? देखो! वीतरागी ज्ञान। ऐसा पर्याय का स्वभाव है, उत्पन्न होता ज्ञान उत्पन्न करे नहीं पर को अथवा अपनी पर्याय को। परन्तु उत्पन्न होता ज्ञान उसे जानता हुआ उत्पन्न होता है। उत्पन्न होता हुआ जाने और जानता हुआ उत्पन्न हो, यह तो उसका स्वरूप है। समझ में आया?

ऐसे प्रकाशक दीपक को स्व-प्रकाश्य को प्रकाशित करने के सम्बन्ध में अन्य प्रकाशक की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि उसके स्वयमेव प्रकाशन क्रिया की प्राप्ति है;... देखो! दीपक को प्रकाशित करने की क्रिया की स्वयमेव उस काल में प्रकाश हो, ऐसी उसकी प्राप्ति है। **उसी प्रकार जो ज्ञेयभूत पर को जानता है...** देखो! इसी प्रकार भगवान आत्मा का ज्ञान, ज्ञान में जो ज्ञेयभूत पर को जानता है, **ऐसे ज्ञायक आत्मा को स्वज्ञेय के जानने के सम्बन्ध में अन्य ज्ञायक की आवश्यकता नहीं होती,...** उसे अपनी पर्याय जानने के लिये दूसरी पर्याय की आवश्यकता नहीं पड़ती। **क्योंकि स्वयमेव ज्ञान-क्रिया की प्राप्ति है।** ज्ञान की पर्याय उत्पत्ति हुई, उसे ही ज्ञान जाने, ऐसा स्वयमेव ज्ञानक्रिया की प्राप्ति है। न्याय समझ में आता है? **(इससे सिद्ध हुआ कि ज्ञान स्व को भी जान सकता है।)** इसका नीचे (फुटनोट में) स्पष्टीकरण है।

यहाँ बात सिद्ध करते हैं कि आत्मा ज्ञानरूप परिणमता है। परिणमता है न ऐसे? परिणमता है, ऐसा कहते हैं। तो परिणमता है और जानता है, ऐसा। जिस समय परिणमता है, उस समय जाने? यह सिद्ध करते हैं। तब कहते हैं, हाँ। परिणमता है, उस समय दूसरा परिणमन नहीं होता, परन्तु परिणमता है, उस समय जानता भी है दीपक की

भाँति। दीपक प्रकाशित करता है तो अपना भी प्रकाशन है। समझ में आया? न्याय से तो बात करते हैं। नीचे।

कोई पर्याय स्वयं अपने में से उत्पन्न नहीं हो सकती,... कहो, बराबर है? पर्याय में से पर्याय नहीं होती। यह प्रश्न हुआ था (संवत्) २००६ के वर्ष में पालीताना। कि पर्याय में से पर्याय होती है? ऐसा किसी को पूछा था। तब उन्होंने कहा कि हाँ। दस परमाणु की पर्याय हो, तो पाँच परमाणु की पर्याय दस परमाणु के साथ जुड़े तो पन्द्रह परमाणु हुए। पर्याय में से पर्याय हुई। कहो, समझ में आया? क्या समझ में आया, कहा? दस परमाणु हैं न, दस परमाणु? उनकी पर्याय है न स्कन्ध की। अब पाँच के साथ जुड़े और पन्द्रह प्रमाण स्कन्ध की पर्याय उत्पन्न हुई, पर्याय में से पर्याय हुई। पहले दस परमाणु की पर्याय थी और फिर पाँच मिले, तब पन्द्र की पर्याय में से पर्याय हुई? या द्रव्य-गुण में से पर्याय हुई? द्रव्य-गुण आये? द्रव्य-गुण तो त्रिकाली है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो समय दूसरा हो गया। दस परमाणु के स्कन्ध की पर्याय है और पाँच परमाणु जुड़े और हुई, वहाँ पन्द्रह पर्याय। परन्तु वह तो दूसरा समय हो गया, दूसरा समय। पर्याय दूसरी हो गयी। यह पर्याय रही नहीं। पर्याय दूसरी हो गयी। वह पर्याय इस पर्याय में से वह पर्याय हुई नहीं। समझ में आया? बड़ा नाम धरानेवाले थे, उनसे पूछा तो कहे, हाँ। पर्याय में से पर्याय होती है। कहो, होती है या नहीं? कथंचित् अनेकान्त लगाना चाहिए। एक ही द्रव्य में से पर्याय हो, उसका तो एकान्त हो जाये। द्रव्य में से भी पर्याय होती है और पर्याय में से भी पर्याय (होती है)। अनेकान्त है न जैन का मार्ग? परन्तु अनेकान्त तो, जैसे वस्तु का स्वरूप हो, उसका अनेकान्त होगा या न हो वैसा होगा? समझ में आया? है?

कोई पर्याय **स्वयं अपने में से उत्पन्न नहीं हो सकती,...** तीन काल के जितने द्रव्य हैं, उनकी एक समय की पर्याय, उस पर्याय में से पर्याय उत्पन्न नहीं हो सकती। परन्तु उस द्रव्य के आधार से द्रव्य में से उत्पन्न होती है। द्रव्य में से उत्पन्न होती है। समझ में आया? मूल तत्त्व की बात ही बहुत बदल गयी न! ऊपरी क्रियाओं का रह गया। यह

करो, पूजा करो, भक्ति करो, शान्तियज्ञ करो और बड़ा शान्ति क्या कहलाता है शान्ति? शान्ति तुम्हारे क्या कहते हैं? स्नात्र। शान्ति स्नात्र करो और ढींकणा करो। यह सब राग के पूंछड़े रह गये, मूल वस्तु पड़ी रही। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि वे परमाणु जो ऐसे 'स्वाहा' भाषा के हुए। वह भाषा की पर्याय पर्याय में से हुई नहीं, वह द्रव्य में से हुई है। आहाहा! समझ में आया? और वहाँ परमाणु जो कोई रखे, खोपरे का क्या कहलाता है? खोपरे का टुकड़ा। वे टुकड़े यहाँ से ऐसे गये, वह पर्याय हुई, वह पर्याय पर्याय में से नहीं हुई।

मुमुक्षु : वह तो नैवेद्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नैवेद्य कहो, जो कहो उस खोपरे को। पीला करके रखे फूलरूप से, सफेद करके रखे नैवेद्यरूप से। सफेद करके नैवेद्य, पीला करके फूल और सफेद को नैवेद्य कहा जाता है। वे कहते थे। कहो, समझ में आया इसमें? वे परमाणु हैं... चावल हो, लो न! उन चावल की जो पर्याय है, ऐसे पहली थी, वह बाद में ऐसी हुई। उस पर्याय में से पर्याय हुई नहीं। वह ऐसे पर्याय थी, उसका व्यय हो गया और नयी पर्याय परमाणु में द्रव्य में से आयी है। उसके हाथ में से नहीं, उसकी इच्छा में से नहीं, उसके ज्ञान में से नहीं। समझ में आया? यह बात यहाँ करते हैं कि परमाणु ऐसे जहाँ चावल रखे, अँगुली ऐसे हुई। उस अँगुली की यह पर्याय ऐसे थी और ऐसे हुई, उस पर्याय में से पर्याय नहीं हुई, तथा आत्मा में से हुई नहीं, राग से हुई नहीं। वह पर्याय, पर्याय द्रव्य के आश्रय से हुई है। पहली पर्याय ऐसे थी और बाद में ऐसे हुई, वह द्रव्य में से पर्याय हुई है। परमाणु के द्रव्य में से हुई है।

मुमुक्षु : हाथ न छुए तो कहाँ हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन छुआवे?

यह यहाँ कहते हैं, ज्ञेय का ज्ञान करने का तेरा स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। उस समय के जो ज्ञेय और उस समय के तेरे ज्ञान की पर्याय, उसे वह ज्ञान स्वयं को प्रकाशित करता है और पर को प्रकाशित करता है, इतना तेरा स्वभाव है। यह चावल रखने-बखने की क्रिया, वह तेरी नहीं है, ऐसा कहते हैं। अमरचन्दभाई! ऐसा कहते हैं

यह। अकेली बात ऐसे नहीं करते। ज्ञान की पर्याय का स्व-परप्रकाशक स्वभाव है, इसलिए उसके ज्ञान में दो प्रकार के ज्ञेय ज्ञात होते हैं। दो प्रकार के ज्ञेय ज्ञात होते हैं। स्वयं भी ज्ञात होता है और पर के (भी ज्ञात होते हैं) । तो उसका प्रश्न है कि परन्तु स्वयं और स्वयं उत्पन्न हो, उसमें से उत्पन्न (हो) ? उत्पत्ति का किसने कहा तुझे ? पर्याय में से पर्याय उत्पत्ति हो, वह तो हम विरोध ही करते हैं। उत्पत्ति पर्याय में से, पर्याय होती नहीं। समझ में आया ? पहले अँगुली ऐसी थी और फिर ऐसे हुई। वह पर्याय में से, उस पर्याय में से यह पर्याय हुई नहीं। ऐसी पर्याय थी, वह गयी और नयी ऐसे हुई, वह तो द्रव्य में से हुई है, परमाणु में से हुई है। समझ में आया ? आहाहा!

तेरे ज्ञान की पर्याय, उस काल में तो स्व और पर को जानने का स्वभाव। बस, इतनी बात है। तेरा द्रव्य, तेरा गुण और तेरी उत्पन्न होती अनन्त पर्यायें और उसमें ज्ञान की पर्याय भी उत्पन्न होती, उसे वह जानती है। ऐसा यहाँ कहते हैं। और परज्ञेयों की जो पर्याय, उस काल में होती है उसे ज्ञान जानता है। बस! ओहोहो! ज्ञानचन्दजी! यह ज्ञान की बात चलती है, देखो! ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है न इसमें।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ज्ञान की गुण में से पर्याय आती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह भाषा है, उसकी पर्याय जो हुई, वह परमाणु में से आयी है और सामने जो ज्ञान होता है, वह ज्ञान उसके गुण में से, द्रव्य में से पर्याय आयी है। भाषा में से आयी नहीं और पर्याय में से पर्याय आती नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

द्रव्य के आधार से—द्रव्य में से उत्पन्न हाती है; क्योंकि यदि ऐसा न हो तो द्रव्यरूप आधार के बिना पर्यायें उत्पन्न होने लगें और जल के बिना तरंगें होने लगें;... पानी न हो और तरंगें उठे। ऐसा होता है कहीं ? तरंगें उठीं (परन्तु) पानी नहीं। परन्तु पानी बिना तरंग उठती ही नहीं। समझ में आया ? जल की तरंगें उठे और जल में समाये। समझ में आया ? इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य की पर्याय उस क्षण में उत्पन्न होती है। इसी प्रकार ज्ञान भी उस क्षण में नया उत्पन्न होता है। वह उत्पन्न होता ज्ञान स्वद्रव्य-गुण-पर्याय को प्रकाशित करता है, स्वयं को उत्पन्न होता अपने को प्रकाशित करता है और परज्ञेय को

भी प्रकाशित करता है, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया? **जल के बिना तरंगें होने लगें; किन्तु यह सब प्रत्यक्ष विरुद्ध है;...** पानी न हो और तरंगें हों, ऐसा कभी देखा नहीं। बस, पानी द्रव्य है और उसमें से तरंग उठती है पानी के आधार से। तरंग में से तरंग नहीं होती।

इसलिए पर्याय के उत्पन्न होने के लिये द्रव्यरूप आधार आवश्यक है। अवस्था को, आत्मा की ज्ञान की पर्याय या प्रत्येक द्रव्य की पर्याय, उसे उत्पन्न होने के लिये द्रव्यरूप आधार चाहिए। **इसी प्रकार ज्ञानपर्याय भी स्वयं अपने में से उत्पन्न नहीं हो सकती;...** ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, उसमें से ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती नहीं। समझ में आया? कितना समय-समय का उसका भेदज्ञान कराते हैं। समझ में आया? **पर्याय के उत्पन्न होने के लिये द्रव्यरूप आधार आवश्यक है।** इसके बिना अपने में से हो सके नहीं।

आत्मद्रव्य में से उत्पन्न हो सकती है जो कि ठीक ही है। ज्ञान की पर्याय आत्मद्रव्य से उत्पन्न हो, यह तो बराबर है। समझ में आया? **परन्तु ज्ञानपर्याय स्वयं अपने से ही ज्ञात नहीं हो सकती...** पर्याय में से पर्याय हो, यह तो विरोध है। पर्याय द्रव्य के आधार से हो, यह तो बराबर है। परन्तु पर्याय होती पर्याय को न जाने, ज्ञान की होती पर्याय ज्ञान को न जाने, यह तो विरोध है, कहते हैं। न जाने, यह विरोध है; जाने, यह अविरोध है। ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती उसे जाने, यह अविरोध है। समझ में आया? वह पर्याय उसे न जाने, दूसरी पर्याय उसे जाने, दूसरी को तीसरी जाने, तीसरी को चौथी जाने, यह लिखा है उसमें, हों! '**गगनावलम्बिनी महती दुर्निवारानवस्था प्राप्नोतीति सूत्रार्थः**' जयसेनाचार्य की टीका में है। ३६ (गाथा की टीका) की अन्तिम लाईन। समझ में आया? वह तो संस्कृत है।

क्या कहा? कि ज्ञान आत्मा का जो उत्पन्न हुआ, उस उत्पन्न हुए में से ज्ञान की पर्याय उत्पन्न नहीं होती। उस पर्याय का आधार द्रव्य में से होता है। परन्तु हुआ ज्ञान उसे न प्रकाशित करे, यह तो विरोध है। न प्रकाशित करे? यह जाना उसने... हुआ उसे न जाने? तब कौन उसे जाने? दूसरी पर्याय उसे जाने? या दूसरी पर्याय जानने में तीसरी

पर्याय चाहिए। तीसरी पर्याय के लिये चौथी चाहिए, चौथी के लिये (पाँचवीं चाहिए ऐसे) अनन्त... अनन्त... अनन्त... कहीं अन्त ही नहीं आया? न जानने का रहा, जानने का तो आया नहीं कहीं। समझ में आया? उत्पन्न होती ज्ञान की अवस्था, उत्पन्न होती उत्पन्न को न जाने तो कौन जाने उसे? दूसरी अवस्था जाने। तो दूसरी अवस्था को जानने के लिये? तीसरी चाहिए। तीसरी के लिये (चौथी चाहिए, ऐसे) अनन्त-अनन्त काल की पर्याय चली। कहीं जानने का तो आया नहीं। समझ में आया? आहाहा! देखो न किस प्रकार से सिद्ध किया है! भगवान आत्मा के आश्रय से ज्ञान की पर्याय हुई, परन्तु हुई वह अपने को भी उस काल में प्रकाशित करती है और पर को भी प्रकाशित करती है। पर को प्रकाशित करने में दिक्कत नहीं। यह कहे, स्वयं उत्पन्न हो और अपने को प्रकाशित करे? दो कहाँ से आये? न प्रकाशित करे तब, उसे कौन प्रकाशित करे?

मुमुक्षु : दूसरी।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी। तो दूसरी को कौन प्रकाशित करे वापस?

मुमुक्षु : तीसरी।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब तीसरी। तो अनन्त काल में कहीं अन्त नहीं आया, प्रकाशित करे, ऐसा आया ही नहीं कहीं। इसलिए उसी काल में उत्पन्न होता ज्ञान उसे प्रकाशित करे वहाँ उसका अन्त आया है। समझ में आया?

स्वयं अपने से ही ज्ञात नहीं हो सकती यह बात यथार्थ नहीं है। समझ में आया? **आत्मद्रव्य में से उत्पन्न होनेवाली ज्ञानपर्याय स्वयं अपने से ही ज्ञात होती है।** आत्मा के द्रव्य में से उत्पन्न होता ज्ञान, ज्ञान ज्ञान को जाने, पर्याय पर्याय को जाने, पर्याय पर्याय को जाने। द्रव्य-गुण को तो जाने, पर को जाने, परन्तु पर्याय स्वयं उत्पन्न होती, उसे भी जाने। यह सिद्ध करना है न यहाँ? समझ में आया? **जैसे दीपकरूपी आधार में से उत्पन्न होनेवाली प्रकाशपर्याय स्व-पर को प्रकाशित करती है,...** कहो, दीपक की लौ, दीपक की लौ, वह स्वयं को और पर को दोनों को प्रकाशित करती है। **उसी प्रकार आत्मारूपी आधार में से उत्पन्न होनेवाली ज्ञानपर्याय स्व-पर को जानती है।** कहाँ से उत्पन्न होती है पर्याय? भीखाभाई! ज्ञान की पर्याय कहाँ से उत्पन्न होती है?

मुमुक्षु : द्रव्य में से होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य में से? निमित्त में से नहीं आया, ऐसा कहा। उसके लिये अपवाद रखो। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि अपवाद तो दोष कहलाता है। यहाँ कहते हैं कि ज्ञान की पर्याय समय-समय में ज्ञान द्रव्य में से आता है। कहो, वाणी में से नहीं, यह पर्याय में से पर्याय नहीं। वाणी में से नहीं, राग में से नहीं, संयोग से नहीं। यह दिव्यध्वनि सुने, उसमें से ज्ञान की पर्याय आती नहीं, ऐसा कहते हैं, लो! कहो, समझ में आया इसमें?

प्रत्येक द्रव्य की ज्ञानपर्याय उत्पन्न होती हुई वह स्वयं अपने को जानती है। उत्पन्न होती हुई द्रव्य में से और जानती है स्वयं अपने को, अपने आश्रित परिणमती है। समझ में आया? ऐसा ज्ञानतत्त्व का स्वभाव है, ऐसा सिद्ध करना है। ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है न! भगवान ज्ञान महिमावाला तत्त्व, वह ज्ञान की पर्याय क्षण-क्षण में उत्पन्न होती है। उत्पन्न होती हुई स्वयं अपने को जानती है। द्रव्य-गुण को तो जाने, दूसरी पर्याय को जाने, परन्तु स्वयं अपनी उत्पन्न होती, उत्पन्न होते काल में उसे जाने। आहाहा! ऐसा ज्ञान की पर्याय के तत्त्व का स्वभाव है। इससे विरुद्ध माने तो उसकी पर्याय के अंश को यथार्थ माना नहीं। तो अंश को माना नहीं, तो उसने द्रव्य-गुण को भी यथार्थ नहीं माना। आहाहा! समझ में आया?

उसी प्रकार आत्मारूपी आधार में से उत्पन्न होनेवाली ज्ञानपर्याय स्व-पर को जानती है। देखा! **और यह अनुभव सिद्ध भी है कि ज्ञान स्वयं अपने को जानता है।** उसे जानने में नहीं आता? कि यह ज्ञान यह हुआ, ज्ञान यह हुआ। हुआ, तब भी यह हुआ, ऐसा जाना है, उस समय। समझ में आया? ओहोहो! कितनी बात सिद्ध करते हैं! भगवान आत्मा... यह तो ज्ञानगुण की बात की। क्योंकि वह तो सबको जानता है न, इसलिए उसकी बात ली। ऐसे प्रत्येक गुण की पर्याय, उसके द्रव्य में से आती है, परन्तु उसमें जानने-देखने का स्वभाव नहीं, इसलिए उसकी बात विशेष करनी नहीं। यहाँ ज्ञानतत्त्व है, वह ज्ञान स्वयं, आत्मा के आनन्द की पर्याय उत्पन्न हो, उस समय उसे जाने और स्वयं अपने को उत्पन्न हो, उसे भी जाने और वह ज्ञान की पर्याय द्रव्य-गुण को भी जाने। पर को तो जाने। कहो, समझ में आया?

आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है, ऐसा सिद्ध करना है न यहाँ। आत्मा ज्ञान से ज्ञानस्वरूप है, ज्ञान से जुड़कर ज्ञान, ऐसा नहीं। वह तो स्वयं ज्ञ-स्वरूप ही है, ज्ञानस्वरूप ही है। उसका स्वरूप है, इसलिए ज्ञान आत्मा ज्ञानरूप से परिणमता है, ऐसा कहते हैं। आत्मा ज्ञानरूप से परिणमता उस पर्याय में पर्याय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है, इसलिए स्व और पर दो उसके ज्ञेय हैं। तो ज्ञेय में पहली उत्पन्न होती पर्याय भी उसका ज्ञान और ज्ञेय स्वयं दोनों हैं। समझ में आया? उसमें तुझे विरोध क्या आया, कहते हैं उसमें।

मुमुक्षु : दूसरी पर्याय उत्पन्न होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पर्याय में से पर्याय दूसरी कहनी हो क्रिया तो। दृष्टान्त दिया था न, उसमें नहीं कहीं? कन्धे के ऊपर। हेमराजजी ने दृष्टान्त दिया है। मनुष्य को नाचना हो तो कन्धे के ऊपर नाचे, यह विरोध है। क्या? नाचना हो मनुष्य को तो कन्धे के ऊपर चढ़कर नाचे, यह होगा? यह विरोध है। कन्धे के ऊपर नाचे, यह विरोध है, इसी प्रकार पर्याय में से पर्याय उत्पन्न हो, यह विरोध है, ऐसा कहते हैं। परन्तु पर्याय को मानो उत्पन्न (होती), उसका स्वरूप ही है स्व-परप्रकाशक। स्व-परप्रकाशक उसका स्वभाव है तो स्व स्वयं पर्याय, उसके स्वद्रव्य-गुण और सब उसे जाने नहीं तो स्व-परप्रकाशक पर्याय का सत्त्व रहा कहाँ? समझ में आया?

आहाहा! कैसी बात की है न! ज्ञानतत्त्व सिद्ध करते हैं। ज्ञान की पर्याय का तत्त्व ही इतना है। ज्ञानतत्त्व की उत्पन्न होती पर्याय है न वह तो समय-समय में। उस पर्याय का इतना सत्त्व ही उत्पन्न होता हुआ अपने को जानता है, स्व को जाने और पर को जाने। स्व में से ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, वह स्व को भी जाने। स्व शब्द से द्रव्य को जाने, गुण को जाने, दूसरी पर्याय को जाने, उसे जाने—ऐसा ही उसका स्वभाव है। उसमें से यदि कुछ (भी) निकाल डाले तो ज्ञान की पर्याय का स्वरूप जैसा स्व-परप्रकाशक है, वह रहता नहीं। तो द्रव्य-गुण भी तेरी दृष्टि में सच्चे रहते नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा कहे, शास्त्र बिना ज्ञान होगा? गुरु बिना ज्ञान होगा? सुने बिना ज्ञान होगा? भगवान मिले बिना ज्ञान होगा? ऐई! सुनकर ज्ञान हुआ, आया था न सवेरे? क्या आया

था? हिम्मतभाई! क्या आया था? यह कहे कि, उसे सुनने के बाद तो उसे इतना प्रश्न तो उत्पन्न होता है या नहीं? ऐसा। उसके ख्याल में उस समय की वही पर्याय उत्पन्न होनेवाली है। ज्ञान के समय, जब सुनने के समय भी ज्ञान की पर्याय स्वयं द्रव्य से ही उत्पन्न हुई है। समझ में आया? और पश्चात् भी प्रश्न का जो ज्ञान आया, वह भी स्वयं द्रव्य में से उत्पन्न हुई है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान के ज्ञेयभूत द्रव्य आलम्बन अर्थात् निमित्त हैं। नीचे है न। **ज्ञान के ज्ञेयभूत द्रव्य...** अर्थात् स्वयं और पर दोनों, हों! यहाँ समुच्चय कहना है न! **ज्ञान ज्ञेय को न जाने तो ज्ञान का ज्ञानत्व क्या?** अरे! ज्ञान, ज्ञेय को न जाने तो ज्ञान का ज्ञानत्व—ज्ञान का ज्ञानपना क्या? **ज्ञेय का ज्ञान आलम्बन अर्थात् निमित्त है। ज्ञेय ज्ञान में ज्ञात न हो तो ज्ञेय का ज्ञेयत्व क्या?** दोनों की बात की। यह तो दोनों में लागू पड़ता है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रश्न यहाँ से शुरु होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ। परन्तु इसमें लिखा नहीं कुछ। ऐकड़ा-दोकड़ा किया है। ठीक। समझ में आया? यह बाद में दूसरे में। परन्तु इसमें साथ में इसका न्याय तो ले लो।

ज्ञान के ज्ञेयभूत द्रव्य आलम्बन अर्थात् निमित्त हैं। ज्ञान ज्ञेय को न जाने तो ज्ञान का ज्ञानत्व क्या? वह ज्ञान ज्ञेय अर्थात् स्वयं उत्पन्न हो और अपने को न जाने। स्वयं उत्पन्न होता हुआ न जाने, वह ज्ञान ही क्या? और **ज्ञेय का ज्ञान आलम्बन अर्थात् निमित्त है। ज्ञेय ज्ञान में ज्ञात न हो तो ज्ञेय का ज्ञेयत्व क्या?** उसकी विशेष बात करेंगे, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १०, मंगलवार, दिनांक ०१-१०-१९६८
गाथा - ३६, ३७, प्रवचन - २९

यह प्रवचनसार। ज्ञानतत्त्व अधिकार चलता है। ३६वीं गाथा। ३६ है? ३६-३६। कहाँ तक आया? प्रश्न। देखो, क्या चलता है? कि आत्मा का ज्ञानस्वभाव है। आत्मा है आत्मा, वह आत्मा तो वस्तु है। उसका स्वभाव क्या मुख्य? कि ज्ञानस्वभाव-ज्ञानस्वभाव-जानना। वह जानना स्वभाव सर्वज्ञस्वभाव आत्मा में है, वह अन्तर में एकाग्रता होने से शुद्ध उपयोग द्वारा केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। स्वरूप शुद्ध चैतन्य है, ज्ञानमूर्ति है, अनन्तगुणस्वरूप स्वभाव है, उसमें एकाग्र (होने से) सम्यग्दर्शन (होता है)। पहले स्वयप की अन्तर्दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है, उसका ज्ञान करने से स्वसंवेदन ज्ञान होता है और स्वरूप में लीनता, शुद्ध उपयोग से लीनता करने से उसके फलरूप केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। समझ में आया? वह केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक और अपने को जानता है, ऐसा स्वभाव है।

तो यहाँ प्रश्न उठा था कि जब ज्ञान अपनी एक समय की दशा में नया उत्पन्न होता है, नया उत्पन्न होता है और उस समय में उसको क्यों जाने? समझ में आया? ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा अपनी पर्याय में स्व-परप्रकाशकपना एक समय में अपने से जो हुआ, वह हुआ उसको क्यों जाने? उस समय में तो ज्ञान की उत्पत्ति होती है और उस समय में उसको जाने, ऐसा क्यों बने? ऐसा शिष्य का प्रश्न है।

तो उसका उत्तर दिया कि क्या विरोध है? दीपक की लौ उत्पन्न होती है और अपने को भी प्रकाशित करती है। दीपक-दीपक है न? दीवा कहते हैं न? दीपक। उसकी लौ है तो अपने को भी प्रकाशित करती है और पर को भी प्रकाशित करती है। क्षण में नयी... नयी... नयी... उत्पन्न पर्याय होती है तो दीपक अपने को भी प्रकाशित करता है और पर को भी प्रकाशित करता है। उसका यह स्वभाव है। ऐसा आत्मा अपने ज्ञानस्वरूप की प्रतीति अनुभव जब हुआ तो ज्ञान की पर्याय प्रगट हुई, उसी समय में प्रगट होती है, उस समय में जानती है। समझ में आया? केवलज्ञान की बात है और साधक की भी बात है उसमें। कैसे लगायेंगे देखो! अमरचन्दभाई!

ज्ञानतत्त्व की बात है कि आत्मा ज्ञानतत्त्वस्वरूप, उसकी दृष्टि हुई (कि) मैं तो ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसी दृष्टि—सम्यग्दर्शन हुआ और सम्यग्ज्ञान हुआ, तो कहते हैं कि सम्यग्ज्ञान तो नया-नया उत्पन्न होता है। क्योंकि वह तो पर्याय है। सम्यग्ज्ञान हुआ, वह भी नया-नया उत्पन्न होता है। तो नया-नया उत्पन्न होता है, वह उत्पन्न होता है उससमय अपने को जाने? १२वीं गाथा में आ गया है समयसार में, कि जो आत्मा सम्यग्दर्शन पाया, शुद्ध चैतन्यमूर्ति का अनुभवज्ञान हुआ तो उस समय में जितने प्रकार का अन्दर राग-द्वेषादि विकल्प व्यवहार है, उसको जानते हैं। समझ में आया? जानते हैं, करते नहीं।

सम्यग्दृष्टि धर्मी भी अपना ज्ञानस्वरूप भगवान चैतन्यप्रकाशपुंज प्रभु की अन्तर्दृष्टि में अनुभवदृष्टि सम्यग्दर्शन हुआ—सत्यदर्शन हुआ, सच्ची जैसी चीज़ है, उसकी प्रतीति ज्ञान में भान करके हुई, तो उस समय में जो रागादि आते हैं, पुण्य-पाप का विकल्प शुभ-अशुभ आदि तो उसको भी ज्ञान जानता है, और ज्ञान नया उत्पन्न होता है तो अपने को भी जानता है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। भगवान आत्मा चैतन्यज्योति ज्ञानतत्त्व की बात है यहाँ। ज्ञानस्वरूप ज्ञानभाव। तो आत्मा ज्ञानस्वरूप—ज्ञानभाव है, उसके सामर्थ्य का स्वरूप क्या? ज्ञान भगवान आत्मा, ऐसा ज्ञानस्वरूप मैं हूँ, ज्ञायक हूँ, पुण्य-पाप भी मुझमें नहीं, मुझमें तो अकेला ज्ञान और आनन्द भरा पड़ा है। समझ में आया? ऐसी अन्तर्दृष्टि करने से जो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का धर्म हुआ, वह समय-समय में ज्ञान की पर्याय नयी-नयी होती है। इसलिए वह शब्द है न १२वीं (गाथा) में, उस समय जाना हुआ प्रयोजनवान है। भाषा अलौकिक बात करते हैं! यह बात और वह बात, दोनों एक ही है। यह तो पूर्ण की बात है, वहाँ अपूर्ण साधक की बात है। आहाहा! समझ में आया कुछ?

उस काल में जाना हुआ अर्थात् क्या कहते हैं? कि जब अपना भान हुआ धर्म, धर्म का अर्थ सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन द्रव्यस्वरूप त्रिकाली के आश्रय से होता है, तो उसके साथ उसकी—सम्यग्ज्ञान की किरण भी प्रकाशित होती है। तब वह ज्ञान की पर्याय उत्पन्न नयी... नयी होती है, क्योंकि वह पर्याय है, द्रव्य-गुण तो त्रिकाली है। तो नयी-नयी पर्याय उत्पन्न होती है, वह अपने को भी जानती है और साथ में जो रागादि

विकल्प जो है, उसको भी अपने में जानती है। अपने में रहकर अपने से उसको जानते हैं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानचन्दजी! सूक्ष्म बात है।

सर्वज्ञ परमात्मा ने ऐसा जानकर कहा... वह कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, भगवान के पास गये थे। सीमन्धर परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। दो हजार वर्ष पहले वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह सब प्रवचनसार, समयसार आदि बनाया। तो कहते हैं कि भगवान ज्ञानतत्त्व का स्वरूप ऐसा कहते हैं। तू तो जाननेवाला आत्मा है। राग का, पुण्य का, विकल्प का, पर का करनेवाला है ही नहीं। जैसे सर्वज्ञ एक समय में पर को—सबको जानते हैं और अपने को भी जानते हैं। ऐसे आत्मा अपना ज्ञान चिदानन्दस्वरूप का जहाँ भान हुआ तो अपने को भी ज्ञानपर्याय में अपने द्रव्य को जानते हैं, गुण को जानते हैं, अपनी अनन्त पर्याय प्रगट, उनको जानते हैं और ज्ञानपर्याय उत्पन्न हुई, उसको भी जानते हैं और उस समय में जितना दया, दान, व्रतादि का विकल्प जो शुभ उठता है, उसको भी अपने में रहकर जानते हैं। आहाहा! ऐसा ज्ञानतत्त्व का स्वरूप है। जैसा है, ऐसा उसकी प्रतीति में आवे, तब सम्यग्ज्ञान कहने में आता है। कहो, समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

प्रभु! अपनी क्या चीज़ है और उस चीज़ का क्या परिणमन है, अवस्था क्या होती है, उसका उसने कभी अनन्त काल में यथार्थरूप से प्रतीति अनुभव किया नहीं। आत्मा क्या शरीररूप है? यह तो मिट्टी है। क्या कर्मरूप आत्मा है? वह तो जड़ है। पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, वे तो आस्रव हैं। क्या आत्मा उस आस्रवरूप है? नहीं। आत्मा को आस्रव, पुण्य-पाप और कर्म अजीवसहित मानना, वही मिथ्यात्व है। वह ज्ञानसहित और आनन्दसहित है, ऐसा मानना—प्रतीति करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? वह सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन हुआ, उसमें स्वरूप... यहाँ तो वह बात ली है। मुनि हैं न वे तो? कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं कि हमें हमारा स्वरूप शुद्ध स्वरूप पूर्ण की प्रतीति, अनुभव और ज्ञान, वह तो दर्शन-ज्ञान तो मुख्य वस्तु ही है। वह तो हमको है। अब हम शुद्ध उपयोग अंगीकार करते हैं। ऐसे शुरुआत की है। मैं साम्य अंगीकार करता हूँ। मुनि हैं न? मैं शुद्ध उपयोग अंगीकार करता हूँ, पुण्य-पाप, अट्ठाईस मूलगुण नहीं। समझ में आया? मैं शुभ-अशुभ जो विकल्प-राग है, अट्ठाईस मूलगुण,

उसको अंगीकार करता हूँ—ऐसा नहीं। वह तो विकल्प–राग है, कषाय अंश है। मैं तो साम्य शुद्ध उपयोग अंगीकार करता हूँ। अन्तर स्वरूप में राग के अवलम्बन के कण बिना शुद्धस्वरूप की रमणता का भाव मैं अंगीकार करता हूँ। वह मेरा चारित्र है। उसका नाम चारित्र है और उस चारित्र के फलरूप चारित्र का फल केवलज्ञान है। समझ में आया? वह केवलज्ञान एक समय की पर्याय है। केवलज्ञान कोई गुण नहीं है। समझ में आया? तो केवलज्ञान एक समय की पर्याय है तो नयी–नयी पर्याय उत्पन्न होती है और ज्ञेय भी नया–नया परिणमन करता है। समझ में आया? तो कहते हैं कि दोनों का सम्बन्ध कैसे होता है? वह प्रश्न है, देखो!

आत्मा को द्रव्यों की ज्ञानरूपता... प्रश्न है न? आत्मा में द्रव्य का ज्ञानरूप, जो ज्ञेय है, उसकी ज्ञानरूपता **और द्रव्यों को आत्मा की ज्ञेयरूपता...** और जगत के जो अनन्त पदार्थ ज्ञेय हैं, उसको ज्ञान में ज्ञेयरूपता **कैसे है?** समझ में आया? आत्मा को ज्ञानरूपता, द्रव्यों की ज्ञनरूपता। यहाँ तो केवलज्ञान की बात है, परन्तु यहाँ भी साधक में ऐसा ले लेना कि आत्मा का, द्रव्यों का... द्रव्य जो अनन्त है न? उसकी ज्ञानरूपता और ज्ञेयों की आत्मा में ज्ञेयरूपता। समझ में आया? **कैसे है? (किस प्रकार घटित है? (उत्तर) :-** पहले प्रश्न समझ में आया? प्रश्न उसका क्या है कि आत्मा है, उस आत्मा को ज्ञेयद्रव्यों की ज्ञानरूपता, जो द्रव्य है, उसकी ज्ञानरूपता, ज्ञानपना, उसका ज्ञानपना और द्रव्यों को आत्मा में ज्ञेयरूपता कैसे है? द्रव्यों की ज्ञानरूपता—ज्ञानपने का अपना भाव और ज्ञेय में आत्मा को ज्ञेयरूपता का भाव कैसे है यह? उन दोनों का घटित सम्बन्ध—मेल कैसे होता है? ओहोहो! समझ में आया? **वे परिणामवाले होने से।** १२वीं गाथा में ऐसा कहा था न कि उस काल में तदात्वे जाना हुआ प्रयोजनवान। वहाँ भी ऐसा कहा कि आत्मा अपना शुद्ध सम्यग्दर्शन–ज्ञान पाया तो उसमें भी ज्ञान का परिणमन तो नया–नया होता है और राग भी भिन्न–भिन्न प्रकार का, विकल्पादि भिन्न–भिन्न प्रकार का ज्ञेय है तो आत्मा का ज्ञान, उस ज्ञेय की ज्ञानरूपता और ज्ञेय की आत्मा में ज्ञेयरूपता कैसे घटित होती है? समझ में आता है या नहीं? भीखाभाई! बहुत जोरवाला नहीं आता। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? आत्मा वस्तु अरीसा—दर्पण समान चैतन्यप्रकाश की मूर्ति है।

मुमुक्षु : दर्पण।

पूज्य गुरुदेवश्री : दर्पण। चैतन्यप्रकाश, चैतन्यप्रकाश। वह कहीं कर्म नहीं, शरीर नहीं, शुभ-अशुभ विकल्प वह नहीं। वह तो विकार है, विकल्प है, आस्रव है। तो आत्मा ज्ञानप्रकाश चैतन्य का पुंज है। चैतन्य का पुंज, ज्ञान का पुंज है। तो ऐसा भान हुआ कि मैं तो ज्ञान का पुंज चैतन्य हूँ, ऐसी दृष्टि और उसका ज्ञान हुआ, और उसका केवलज्ञान हुआ, लो! वह तो केवलज्ञान हुआ लो या यहाँ ज्ञान हुआ लो, दोनों की—साध्य-साधक की बात है। समझ में आया? साधक में भी अपना ज्ञानस्वरूप का भान हुआ, फिर भी ज्ञान में ज्ञेय का ज्ञान उठने पर, जैसे रागादि उत्पन्न होते हैं, उसका ही यहाँ ज्ञानरूप है। भाई! आहाहा! ज्ञानचन्दजी! जैसे दया, दान, व्रतादि, जैसे भिन्न-भिन्न प्रकार के विकल्प होते हैं तो आत्मा का—ज्ञान का भान हुआ तो ज्ञेय की ज्ञानरूपता कैसे है और ज्ञान में ज्ञेय आता है किस प्रकार से आता है? क्योंकि दोनों का परिणमन होता है, दोनों भिन्न-भिन्न हैं। तो कहते हैं, दोनों का परिणमन होता है तो भिन्न-भिन्न होता है, उसमें जानने में आता है। ज्ञान भी उस प्रकार का समय-समय में नया-नया परिणमन करता है और ज्ञेय भी समय-समय में नया-नया परिणमन करते हैं। ऐसे परिणामसम्बन्ध के कारण ज्ञान में ज्ञेय की ज्ञानरूपता और ज्ञेय की ज्ञान में ज्ञेयरूपता का परिणमन का सम्बन्ध हो जाता है। समझ में आया? आहाहा!

फिर से। यह तो सूक्ष्म विषय है। यहाँ अभी तो बाहर की सब चलती है। परन्तु अन्तर चीज़ क्या है और चीज़ की प्रतीति और अनुभव का ज्ञान क्या है? और ज्ञान में ज्ञेय का कैसे भान होता है? ज्ञेय भी भिन्न-भिन्न है और ज्ञान की पर्याय भी भिन्न-भिन्न है। तो दो भिन्न-भिन्न का मेल कैसे होता है? घटित कैसे होता है? समझ में आया? ज्ञान, देखो!

परिणामवाले होने से। परिणामवाले होने से। कौन? दोनों। आत्मा भी ज्ञानरूप का भान हुआ और केवलज्ञान हुआ। भान हुआ साधक, केवलज्ञान हुआ। तो वह भी परिणमन करता है। साधक की ज्ञान की पर्याय, ज्ञान की पर्याय परिणमन भिन्न-भिन्न करती है और केवलज्ञान की भी एक समय की पर्याय परिणमन भिन्न-भिन्न करती है और छह द्रव्य जो हैं, वह भी समय में भिन्न-भिन्न परिणमन करते हैं। यहाँ जैसे भिन्न-

भिन्न परिणमन होता है, तो जैसा ज्ञेय है, वैसा ज्ञान होता है और ज्ञानरूप में वह ज्ञेय आ जाता है। ज्ञेय का ज्ञान ज्ञानरूप में आ जाता है। परस्पर दोनों निमित्त-नैमित्तिक है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो अन्तर धर्म की और धर्म के फल की बात चलती है।

आत्मा और द्रव्य परिणामयुक्त हैं,... पहली बात इतनी कही न? **परिणामवाले होने से। आत्मा और द्रव्य परिणामयुक्त हैं,...** आत्मा भी परिणमन करता है और छह द्रव्य हैं, वे भी परिणमन करते हैं। परिणामयुक्त हैं। पाठ में परिणामसम्बन्ध है न? परिणामसम्बन्ध। मानो ध्रुव में परिणाम का सम्बन्ध है अथवा ध्रुव परिणामयुक्त है, ध्रुव परिणाम परिणामसहित है। **इसलिए... परिणामवाले होने से। आत्मा और द्रव्य...** भगवान आत्मा और द्रव्य पर **परिणामयुक्त हैं, इसलिए आत्मा के, द्रव्य जिसका आलम्बन हैं...** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा का ज्ञान परिणमन में छह द्रव्य लोकालोक निमित्त हैं। है न आलम्बन? नीचे है दो (२)। **ज्ञान के ज्ञेयभूत द्रव्य आलम्बन अर्थात् निमित्त हैं।** ज्ञान में ज्ञेयभूत अनन्त द्रव्य, द्रव्य आलम्बन अर्थात् निमित्त हैं। **यदि ज्ञान ज्ञेय को न जाने तो ज्ञान का ज्ञानत्व क्या?** केवलज्ञान भी समय-समय में परिणमन करता हुआ ज्ञेय को न जाने तो ज्ञान का ज्ञानपना कहाँ रहा? समझ में आया?

यों आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ऐसा भान हुआ और राग भी साथ में है, शरीर की क्रिया भी है, तो कहते हैं कि ज्ञान में वह निमित्त है रागादि और वह निमित्त है तो ज्ञान उसको और अपने को न जाने तो ज्ञान का ज्ञानत्व—ज्ञान का ज्ञानपना—ज्ञान का ज्ञानस्वरूपपना कहाँ रहा? आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है। आहाहा! ज्ञान की क्रिया परिणमन में भिन्न-भिन्न होती है। तो कहते हैं, भिन्न-भिन्न होती है और वह भी भिन्न-भिन्न होता है। तो ज्ञान में वह व्यवहार जो रागादि है, वह भी भिन्न-भिन्न होता है, यहाँ भी भिन्न-भिन्न होता है। और ज्ञान उसको न जाने, ज्ञान में वह निमित्त है, ज्ञान में वह निमित्त है, निमित्त है तो यह ज्ञान उसको न जाने तो ज्ञान का ज्ञानपना कहाँ रहा? समझ में आया?

ऐसे ज्ञानरूप से (परिणति),... द्रव्य जिसका आलम्बन हैं, ऐसे ज्ञानरूप से (परिणति),... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य सारे जैनतत्त्व का, वस्तुतत्त्व का स्तम्भ है।

ऐसी वस्तु की स्थिति प्रसिद्ध की है। अलौकिक! यह तत्त्वदीपिका है। टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य ९०० वर्ष पहले दिगम्बर सन्त मुनि जंगल में रहते थे। आत्मध्यान आनन्द में मस्त, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, उसका नाम मुनि कहते हैं। वह यहाँ विकल्प आया और टीका बन गयी शब्द से। शब्द से। उसमें वह कहते हैं, (टीका बनाने के) पीछे हमारे ज्ञान का भाव कैसा है? शब्द में तो ज्ञान निमित्त है, शब्द कहीं ज्ञान रचते नहीं। समझ में आया? और शब्द का ज्ञान हुआ, उस ज्ञान में भी शब्द निमित्त है। समझ में आया?

ज्ञानस्वरूप चैतन्य ज्ञानतत्त्व है, ज्ञानतत्त्व है, ज्ञानभावरूप है, ज्ञानस्वरूप है। तो ज्ञान का परिणमन होता है, तो उसमें—ज्ञान में जितना वह व्यवहार उत्पन्न होता है न, शरीर की क्रिया, देह की क्रिया, वह असद्भूत और शुभाशुभ आदि भाव विकल्प, वह असद्भूत। उस ज्ञेय को ज्ञान परिणमन करते हुए उसको यदि न जाने, अपने में रहकर अपने को और उसको न जाने तो ज्ञान का ज्ञानत्वपना कहाँ रहा? समझ में आया?

केवलज्ञान की भी एक समय की अवस्था परिणमन करती है। केवलज्ञान कोई गुण नहीं है। समय-समय में केवलज्ञान की पर्याय नयी-नयी होती है। केवलज्ञान नया-नया होता है। यह सिद्ध करते हैं, देखो! समझ में आया? क्योंकि गुण में केवलज्ञान की परिणति—पर्याय है वह तो, परिणमन होता है। आहाहा! तो कहते हैं कि ज्ञान का परिणमन केवलज्ञान में हुआ और लोकालोक छह द्रव्य हैं, वह ज्ञेय है, वह भी परिणमन करते हैं। तो यहाँ आत्मा के ज्ञान में वह ज्ञेय जो है, वह निमित्त है। अर्थात् उस निमित्त का ज्ञान और अपना ज्ञान, ज्ञान यदि न करे तो ज्ञान का ज्ञानपना कहाँ रहा? समझ में आया?

ज्ञानरूप से (परिणति), और द्रव्यों के,... अब छह द्रव्य सामने लिये, सारा ज्ञेय। **ज्ञान का अवलम्बन लेकर...** देखो! ज्ञेयों में ज्ञान का निमित्त है। ज्ञान के परिणमन में ज्ञेयों का निमित्त है और ज्ञेयों के परिणमन में ज्ञान का निमित्त है। कोई कहते हैं न कि ज्ञान के परिणमन में ज्ञेय निमित्त है, तो जैसा ज्ञेय है, वैसा परिणमन करना पड़ता है। ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! तुम क्या करते हो? वह तो यहाँ कहते हैं। केवलज्ञान में या साधकज्ञान में जैसा सामने ज्ञेय परिणमन करता है, वह अपने ज्ञान में ज्ञेय निमित्त है,

और निमित्त का और अपना ज्ञान, ज्ञान न करे तो ज्ञान का ज्ञानपना कहाँ रहा? अब ज्ञानपना जो है, वह ज्ञेय को निमित्त है, ज्ञेय को निमित्त है। और वह निमित्त जो है, ज्ञेय जो है, ज्ञान में जो ज्ञानपना न आवे, उसका ज्ञानपना यहाँ उत्पन्न न हो जाये (तो ज्ञान का ज्ञानत्व कहाँ रहा?) देखो!

और द्रव्यों के, ज्ञान का अवलम्बन लेकर ज्ञेयाकाररूप से परिणति अबाधितरूप से तपती हैं—अवलम्बन है न नीचे, देखो! **ज्ञेय का ज्ञान आलम्बन अर्थात् निमित्त है।** क्या कहते हैं? लोकालोक ज्ञेय को केवलज्ञान की पर्याय निमित्त है। लोकालोक तो, ज्ञान की पर्याय अपने से परिणमती है, उसमें वह निमित्त है, यह तो वह परिणमते हैं, ज्ञेय जो परिणमते हैं, क्योंकि परिणमन है न उसका नया-नया? तो नया-नया परिणमन है तो यहाँ केवलज्ञान का नया-नया परिणमन है। उसकी नयी-नयी पर्याय होती है, तो वह उसमें निमित्त है। ज्ञानचन्दजी!

नीचे ले, नीचे साधक में (ले) तो ज्ञानस्वरूप भगवान चैतन्यबिम्ब है, ऐसी अन्तर्दृष्टि और अनुभव हुआ, ज्ञान हुआ, ज्ञान का ज्ञान हुआ, वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान। तो कहते हैं कि उस समय में पुण्यादि दया, दान, व्रतादि के विकल्प जो हैं, वह ज्ञान में निमित्त है और वह ज्ञान उस निमित्त को न जाने तो ज्ञान का ज्ञानपना कहाँ रहा? व्यवहार को ज्ञान जानता है, ऐसा कहते हैं। और व्यवहार जो ज्ञेय है, वह ज्ञान में जानने में निमित्त (होता है)। ज्ञान में वह निमित्त है, यहाँ तो कहते हैं, ज्ञान उसको निमित्त है। दया, दान, व्रत के विकल्प को ज्ञान की पर्याय निमित्त है और वह ज्ञान की पर्याय निमित्त है तो, वह ज्ञेय जो ज्ञान में जानने में आये नहीं तो ज्ञेय का ज्ञेयपना कहाँ रहा? आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो लॉजिक से, न्याय से सिद्ध किया है। समझने का प्रयत्न करना पड़ेगा। ऐसी चीज़ मिलती नहीं है। बिना समझे, बिना प्रयत्न के ऐसी चीज़ मिलती नहीं है। आहाहा! क्या बात करते हैं! क्या कहते हैं! केवलज्ञान की बात करते हैं तो ज्ञानतत्त्व का स्वरूप साधक में भी ऐसा है, ऐसी बात साथ में करते हैं।

मुमुक्षु : ३३ गाथा से शुरु किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, करते हैं न, करते हैं। दोनों की बात साथ में कही है। गजब बात!

भगवान आत्मा चैतन्यपुंज, चैतन्य की डली, वह चैतन्यपने से अपना परिणमन ज्ञानरूप, दर्शनरूप, आनन्दरूप करता है। तो उसमें ज्ञान की प्रधानता से कथन है न, ज्ञानतत्त्व का कथन है न? तो अपना ज्ञानस्वरूप जो गुण तो त्रिकाल है, परन्तु उस गुण को धरनेवाला द्रव्य है, और द्रव्य की दृष्टि जहाँ हुई तो ज्ञान, सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शनपने प्राप्त हुआ। तो उस सम्यग्ज्ञान की पर्याय में जो व्यवहार उस समय में देह की क्रिया, वाणी की क्रिया और शुभादि का परिणाम, वह उस ज्ञान में निमित्त है। निमित्त है, उसका अर्थ? कि ज्ञान उसको जानता है। निमित्त है न, निमित्त कहा वहाँ। लोकालोक केवलज्ञान में निमित्त, यहाँ साधक ज्ञान में व्यवहार का निमित्त। तो निमित्त का अर्थ? ज्ञान उस सम्बन्धी को न जाने, निमित्त का ज्ञान न जाने तो ज्ञान का ज्ञानपना कहाँ रहा? राजमलजी बुद्धिवाले हैं न! न्याय से, लॉजिक से तो बात है या नहीं?

मुमुक्षु : बहुत स्पष्ट है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत स्पष्ट। बहुत लॉजिक और न्याय से कितना स्पष्ट! ओहोहो!

भगवान! तुम तो चैतन्यप्रभु है न! तेरी प्रभुता तो चैतन्य—जानने में तेरी प्रभुता है। राग करने से, निमित्त करने से, तेरी प्रभुता नहीं। तेरी प्रभुता तो तेरे ज्ञानस्वभाव में जो चीज़ सामने है, केवली को पूर्ण है, तुझे अपूर्ण कोई भाव है तो वह निमित्त है ज्ञान में। उसका अर्थ? उस सम्बन्धी का आत्मा ज्ञान न करे तो निमित्त कहाँ रहा? निमित्त कहाँ रहा का अर्थ? निमित्त को जाननेवाला कहाँ रहा? ऐई! वजुभाई!

भगवान आत्मा ज्ञान की पर्याय में परिणमन करता है, उसमें वह निमित्त है। निमित्त का अर्थ? कि उस सम्बन्धी का ज्ञान। वह तो निमित्त है। केवलज्ञान में लोकालोक निमित्त है, साधक में दया, दान का विकल्प वह निमित्त है। अब निमित्त है, उसका अर्थ कि उस सम्बन्धी का ज्ञान... वह तो निमित्त है। उस सम्बन्धी का और अपना ज्ञान न करे तो ज्ञान का ज्ञानपना कहाँ रहा? और दूसरी बात। वह दूसरी कहते हैं। द्रव्यों के (अर्थात्) जो द्रव्य सामने है अनन्त लोकालोक और यहाँ व्यवहार दया, दान आदि विकल्प, उस ज्ञान का अवलम्बन लेकर। ज्ञान उसमें निमित्त है। लोकालोक को केवलज्ञान

की पर्याय निमित्त है। वह लोग ना कहते हैं। नहीं, वह निमित्त नहीं है, यहाँ निमित्त है। अरे! भगवान! सुन न भाई! ऐसा कहते हैं कि केवलज्ञान, वह निमित्त है। जैसा ज्ञेय परिणमन करता है, ऐसा परिणमन (ज्ञान को) करना पड़ता है—ऐसा नहीं है। इसीलिए तो कहते हैं कि केवलज्ञान में तो वह निमित्त है। निमित्त का अर्थ? उपादान से परिणमन करनेवाला तो केवलज्ञान अपने से है। समझ में आया? कठिन बात कही। केवलज्ञान अपनी पर्याय से परिणमता है, उसमें लोकालोक निमित्त है। निमित्त का अर्थ क्या? कि उस सम्बन्धी और अपने सम्बन्धी ज्ञान, ज्ञानपने से परिणमना, वह कार्य केवलज्ञान का है। एक बात। वैसे साधक में भी अपना ज्ञानपना, अपना ज्ञान हुआ, उसमें दया, दान, विकल्प, वह तो निमित्त है। निमित्त का अर्थ? उस सम्बन्धी का ज्ञान (हुआ), वह तो निमित्त है, उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान, ज्ञानरूप से परिणमन न करे तो ज्ञान कहाँ रहा? समझ में आया? आहाहा!

और द्रव्यों के... अथवा व्यवहार को **ज्ञान का अवलम्बन लेकर ज्ञेयाकाररूप से परिणति अबाधितरूप से तपती हैं**—लो! समझ में आया? **ज्ञेय का ज्ञान आलम्बन अर्थात् निमित्त है। यदि ज्ञेय ज्ञान में ज्ञात न हो...** लोकालोक ज्ञान में ज्ञात न हो **तो ज्ञेय का ज्ञेयत्व क्या?** और व्यवहार दया, दान आदि विकल्प है, वह ज्ञानी के ज्ञान में निमित्त न हो और उसका ज्ञान न हो तो उसका ज्ञेयपना कहाँ रहा? समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! हिन्दी में भी भाव तो जो होता है, वही आयेगा या नहीं? भाव कोई दूसरा आता है? आहाहा!

ज्ञान का अवलम्बन लेकर ज्ञेयाकाररूप से परिणति अबाधितरूप से तपती हैं—प्रतापवंत वर्तती है। (आत्मा और द्रव्य समय-समय पर परिणमन किया करते हैं,... कोष्ठक में स्पष्ट किया है। **आत्मा और द्रव्य...** अर्थात् परवस्तु। **समय-समय पर परिणमन...** पर्याय नयी-नयी करती है। दोनों। **वे कूटस्थ नहीं हैं;...** एकरूप रहनेवाले दोनों नहीं। **इसलिए आत्मा ज्ञानस्वभाव से और द्रव्य ज्ञेयस्वभाव से...** आत्मा ज्ञानस्वभाव से परिणमन करता है और द्रव्य ज्ञेयस्वभाव से परिणमन करता है। वह ज्ञेयाकाररूप से परिणति अबाधित है ज्ञेय की। यहाँ ज्ञानरूप से परिणति अबाधित है। आहाहा! मुनि ने जंगल में रहकर (कितना स्पष्ट किया है)! सन्त, दिगम्बर मुनि आत्मध्यान में मस्त।

उसमें ऐसा विकल्प है। कैसी चीज़ बनी है, आहाहा! केवलज्ञान को खड़ा कर दिया है!! समझ में आया?

भगवान! तेरी शक्ति तो केवलज्ञान पाने की है। क्योंकि ज्ञानस्वरूप तुम हो न! तो ज्ञानस्वरूप जो है, वह तो पूर्ण स्वरूप द्रव्य है। द्रव्य का गुण तो, द्रव्य पूरा है तो उसका गुण भी पूरा स्वरूप है। तो पूरा स्वरूप की शक्ति जो त्रिकाल है, उसमें भी स्व-पर पूर्ण जानने की शक्तिरूप सत्त्व है। किसी से करना, किसी से ज्ञान-दर्शन का रहना और उस ज्ञेय को ज्ञान-दर्शन से रहना, ऐसा स्वभाव नहीं है। ऐसा कहते हैं। ऐसे जब केवलज्ञान हुआ अपनी पर्याय में शुद्ध उपयोग द्वारा, तो ज्ञान में पर निमित्त है। उसका अर्थ? लोकालोक का ज्ञान अपने में अपने से यदि न हो तो निमित्तपने का ज्ञान न रहे तो ज्ञानपना कहाँ रहा? समझ में आया? और निमित्त जो ज्ञेय है, वह ज्ञान में न परिणमे, ज्ञान में न आवे, ज्ञेयपने से न आवे और ज्ञेयाकार परिणति अपनी समय-समय में करता है, ऐसा ज्ञान में यदि ज्ञेय न आवे तो ज्ञेयपना कहाँ रहा?

दूसरी बात है कि ज्ञान अपने से परिणमता है, उसमें ज्ञेय निमित्त है। उसका अर्थ ज्ञानपना अपने से अपने में हुआ। वह तो निमित्त हुआ। हुआ? अब ज्ञेय में ज्ञान निमित्त, उसका अर्थ? उसका अर्थ? कि ज्ञेय अपने से परिणमता है, ज्ञेयपने ज्ञेय अपने से परिणमता है, तब ज्ञान को निमित्त कहते हैं। समझ में आया? ऐई! ज्ञानचन्दजी! ऐई! देवानुप्रिया!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ज्ञेय शरीरादि है, ऐसी पर्याय जो होती है ज्ञेयाकार, तो उसमें ज्ञान निमित्त है। निमित्त का अर्थ? उसकी ज्ञेय की परिणति स्वतन्त्र उससे हुई। ऐसा ज्ञेय परिणमन यदि उसका न हो तो ज्ञेय कहाँ रहा? ज्ञान तो उसमें निमित्त है और ज्ञान के परिणमन में वह निमित्त है। तो उस निमित्त का अर्थ—निमित्त का परिणमन यहाँ नहीं करता। लेकिन उस सम्बन्धी और अपने सम्बन्धी का ज्ञान परिणमन अपने से स्वतन्त्र परिणमन करता है तो ज्ञान का परिणमन ज्ञान से हुआ है, निमित्त से हुआ नहीं। और ज्ञेय का परिणमन ज्ञान का निमित्त है तो ज्ञान के निमित्त से परिणमन ज्ञेयों में हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

अब अन्तर में ले, साधक में। बात साधक की कहते हैं न! हम श्रुतकेवली हैं, ऐसा कहते हैं न, वहाँ भी लिया न, ३३वीं गाथा में। आहाहा! कहते हैं कि हम आत्मा हैं, तो दूसरे को भी जिसको करना है तो उसको आत्मा का ज्ञान करो। आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप है, उसके सन्मुख होकर ज्ञान करो और वह ज्ञान जो हुआ, उस ज्ञान की पर्याय समय-समय में नयी-नयी होती है। और पर्याय में जो ज्ञान होता है, पुण्य दया, दान, विकल्प का शुभभाव, वह भी नया-नया होता है। तो कहते हैं कि नया-नया हुआ तो क्यों सम्बन्ध हुआ? कि परिणमन के कारण से। यहाँ भी परिणमन है, वहाँ भी परिणमन है। ठीक!

अब यहाँ ज्ञान के परिणमन में वह दया, दान, व्रतादि निमित्त है। निमित्त है तो वह है तो ज्ञान परिणमता है, ऐसा नहीं। क्योंकि वह तो निमित्त है। समझ में आया? दया, दान, पूजा का विकल्प आया, वह तो ज्ञान की परिणति में निमित्त है, तो उसका अर्थ कि वह निमित्त है तो ज्ञान परिणमता है, ऐसा नहीं है। और निमित्त है, उसका ज्ञानरूप से ज्ञान न परिणमे तो ज्ञान कहाँ रहा? समझ में आया? और जो दया, दान, विकल्पादि शुभ है भिन्न... भिन्न... भिन्न ज्ञेयरूप परिणमन करता है स्वतन्त्र, उसमें ज्ञान निमित्त है—ज्ञान की पर्याय निमित्त है। तो निमित्त है, उसका अर्थ? कि रागादि स्वतन्त्र अपने से परिणमन करता है। ज्ञान की पर्याय निमित्त है तो उसके कारण से यहाँ परिणमन करता है रागादि, ऐसा है नहीं। वजुभाई! देखो भाई यहाँ तो पढ़ते-पढ़ते यह सब आ गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इसमें क्या कहते हैं? समझ में आया कुछ? गजब बात कही है! ओहोहो!

यह तत्त्व स्व ज्ञान और ज्ञेय, दोनों तत्त्व है। समझ में आया कुछ? एक ओर ज्ञानतत्त्व आत्मा और एक ओर ज्ञेयतत्त्व सब। अब तत्त्व की उसको यथार्थ श्रद्धा करनी है या नहीं? 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।' है? तो यथार्थ तत्त्व जैसा है, वैसी श्रद्धा करनी है या नहीं? आहाहा! तो कहते हैं कि ज्ञानतत्त्व ऐसा है कि ज्ञानतत्त्व में सारा लोकालोक ज्ञेय भले निमित्त हो। ऐसे साधक में ज्ञान की परिणति में तत्त्व में व्यवहार

निमित्त हो। उसका अर्थ निमित्त है, उसका ज्ञान अपने से हुआ है, वह तो निमित्त है। केवलज्ञान भी, लोकालोक निमित्त है तो लोकालोक से हुआ है, ऐसा नहीं। वह तो निमित्त है, पर है। लोकालोक है तो केवलज्ञान का परिणमन होता है, ऐसा नहीं। ऐसे दया, दान और विकल्प है तो ज्ञान की परिणति उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं। वह तो ज्ञान में निमित्त है। समझ में आया? भैया! सूक्ष्म बात, भाई!

कुन्दकुन्दाचार्य... आहाहा! केवलज्ञानी का काम किया है। बहुत बात भर दी है। जैसा तत्त्व है, उसकी शक्ति जितनी है, उसका सामर्थ्य जैसा है, ऐसा उसको ज्ञान में लेना है या नहीं? या विपरीत, अधिक-कम ले तो वह तो तत्त्व की प्रतीति यथार्थ हुई नहीं। समझ में आया? कोई ऐसा माने कि लोकालोक है तो केवलज्ञान है। झूठ है। क्योंकि केवलज्ञान में लोकालोक तो निमित्त है और निमित्त है तो यहाँ ज्ञान केवलज्ञान है, ऐसा भी नहीं। और केवलज्ञान है तो निमित्त है, सामने ज्ञेय है—ऐसा भी नहीं। समय-समय में परिणमन है तो भिन्न-भिन्न होता है न? भिन्न-भिन्न हो। ज्ञान ज्ञान के कारण से अपने में भिन्न-भिन्न पर्याय से परिणमन करता है, वह तो निमित्त है। और वह ज्ञेय परिणमन करते हैं, ज्ञेय परिणमन करते हैं, उसमें ज्ञान निमित्त है। तो ज्ञान निमित्त है तो ज्ञेय परिणमन करते हैं, ऐसा नहीं है। वह तो अपने से परिणमन करते हैं। आहाहा! समय-समय का स्वतन्त्र परिणमन सिद्ध करने की कितनी युक्ति! समझ में आया? इतने शब्द में इतना भरा है। शान्ति से मध्यस्थ होकर क्या चीज़ है, उसको समझना चाहिए। ऐसे तत्त्व को बिना समझे धर्म हो जाता है, ऐसा है नहीं।

तो कहते हैं कि भगवान! तू तो ज्ञानस्वरूप है न! तो ज्ञानस्वरूप क्या कार्य करे? जानने का करे। क्या राग का करे? कि राग का ज्ञान करे? क्या ज्ञान राग करे? और ज्ञान राग को जानने का कार्य न करे तो ज्ञान कहाँ रहा? समझ में आया? और ज्ञान राग करे? ज्ञान ज्ञेय को बनावे? ज्ञान ज्ञेय को बनावे? तो ज्ञान कहाँ रहा? और ज्ञेय ज्ञान को बनावे? लोकालोक ज्ञेय ज्ञान को बनावे? ऐसे साधक में रागादि है, वह ज्ञान को बनावे? तो ज्ञेय कहाँ रहा? समझ में आया? आहाहा! स्वतन्त्र समय-समय की पर्याय की स्वतन्त्रता और एक-दूसरे में ज्ञेय ज्ञान, ज्ञेय-निमित्त सम्बन्ध। सम्बन्ध का अर्थ ऐसा नहीं है कि उससे यह और इससे वह। वह तो निमित्त रहा ही नहीं। समझ में आया?

(लोग) कहते हैं कि निमित्त है या नहीं? निमित्त है या नहीं? परन्तु निमित्त का अर्थ क्या? निमित्त है तो ज्ञान हुआ? वह कहते हैं यहाँ। समझ में आया? और ज्ञान ज्ञेय को निमित्त है तो ज्ञेय परिणमन (ज्ञान के) कारण से करता है? ओहोहो! समझ में आया? सूक्ष्म बात, भाई! धर्म की समझण, सच्ची श्रद्धा करना, वह बड़ी अपूर्व चीज है? अनन्त काल से किया नहीं।

अपने सम्यग्ज्ञान बिना और सम्यग्दर्शन बिना अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गये। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' धर्म नहीं पाया, धर्म नहीं। धर्म क्या चीज़ है, उसको जाना नहीं। समझ में आया? तेरा स्वभावधर्म तो जानना तेरा धर्मस्वभाव है, भाई! आहाहा! समझ में आया? तो जानना तेरा स्वभाव, उसकी श्रद्धा कर, राग और पुण्य तेरा स्वभाव नहीं, वह तो ज्ञेय का स्वभाव है। वह तो ज्ञेय का स्वभाव है। क्या ज्ञेय का स्वभाव ज्ञानस्वभावरूप हो जाता है? ज्ञानस्वभाव क्या ज्ञेयरूप हो जाता है? और ज्ञेय का स्वभाव का ज्ञान ज्ञानरूप से न हो, ऐसा बनता है? और ज्ञान का स्वभाव में ज्ञेय का ज्ञान न हो, ऐसा ज्ञेय अकेला रहता है? ज्ञेय का ज्ञानपना यहाँ न हो, अर्पणता... प्रमेय है वह, तो प्रमाण में जैसा है, वैसा आ जाता है। उसका ज्ञान आ जाता है। समझ में आया?

लो, वह भी अद्‌भुत बात कही थी। ज्ञान उत्पन्न हुआ, वह अपने को जाने? वह बात कही थी। जिस समय ज्ञान उत्पन्न हो, उत्पन्न हो, उस ही समय में जाने? हाँ। पर्याय की उत्पत्ति में नयी पर्याय उत्पन्न होती है, वह विरोध है। पर्याय में से नयी पर्याय, पर्याय में से पर्याय आती है, वह विरोध है। परन्तु पर्याय की उत्पत्ति हुई और उसको उस ही समय जाने, वह तो अविरोध है, वह तो वास्तविकता है। समझ में आया? सामने जितना ज्ञेयप्रमाण ज्ञेय है, इतना ज्ञान में जानने की ज्ञेय चीज़ है, इतना ही प्रमाण में ज्ञान ज्ञानरूप से अपने में से यदि परिणमन न करे तो ज्ञान कहाँ रहा? और ज्ञेय भी इतने प्रमाण में ज्ञान में निमित्तपने न हो तो ज्ञेय कहाँ रहा? समझ में आया? आहाहा!

कूटस्थ नहीं हैं; इसलिए आत्मा ज्ञानस्वभाव से और द्रव्य ज्ञेयस्वभाव से परिणमन करता है, इस प्रकार ज्ञान स्वभाव में परिणमित आत्मा... ज्ञान स्वभाव में परिणमित पर्यायरूप था आत्मा **ज्ञान के आलम्बनभूत...** ज्ञान के निमित्तभूत। आलम्बन अर्थात्

निमित्त। निमित्तभूत **द्रव्यों को जानता है...** बस, केवलज्ञान की पर्याय में लोकालोक आलम्बन अर्थात् निमित्त है, लोकालोक को ज्ञान जानता है, बस। ज्ञानरूप रहकर लोकालोक को जानता है। ज्ञेयरूप होकर ज्ञान उसको जानता है, ऐसा होता नहीं। और ज्ञेय ज्ञान में (ज्ञात होते) हैं तो ज्ञेय ज्ञानरूप होकर उसमें प्रवेश करता है, ऐसा नहीं। ज्ञेय ज्ञेयरूप रहता है और ज्ञान ज्ञानरूप रहता है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। हिन्दी में आये परन्तु जो भाव होगा वह आता है, दूसरा कहाँ से आवे? लोगों को तत्त्व को समझने की दरकार ही नहीं। वास्तविकता क्या है? यथार्थता क्या है? वस्तु की स्थिति की मर्यादा क्या है? समझ में आया? वह कहते हैं। भगवान! तेरे ज्ञान की मर्यादा तो वह है कि जितना ज्ञेय सामने है, उसको स्पर्शे बिना, छुए बिना तेरा ज्ञान तुझमें तेरा और उसका ज्ञान तुझमें होता है। ऐसी ज्ञान की वास्तविकता—मर्यादा है। ज्ञान की मर्यादा तो वह है। समझ में आया? और ज्ञेय की मर्यादा वह है कि अपने में अपने से परिणमन करते हैं और ज्ञान में... वह ज्ञान उसको निमित्त है तो ज्ञान में जाननेयोग्य परिणमता है। उसमें ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेय हो जाता है। ज्ञान में ज्ञेय का ज्ञान हो जाता है। ऐसा ज्ञेय का स्वभाव है। समझ में आया?

ज्ञेय-स्वभाव से परिणमित द्रव्य ज्ञेय के आलम्बनभूत ज्ञान में—आत्मा में—ज्ञात होते हैं।) लो! ज्ञेय का ज्ञान में भास होता है। जैसा ज्ञेय है, ऐसा ज्ञान जान लेता है। यह ३६ गाथा हुई। ओहो! परिणामसम्बन्ध में से बहुत चला है न? पहले परिणामसम्बन्ध के ऊपर से चला, कि '**परिणामसंबद्धं**'। यह तो ध्रुव है, उसे परिणाम का सम्बन्ध कितना सम्बन्ध लिया है। परिणामयुक्त भगवान आत्मा छहों द्रव्य, हों! छहों द्रव्य। छहों द्रव्य वस्तु है और पर्याय-परिणमन परिणमन-पर्याय उसके सम्बन्धवाली। परिणमन भिन्न-भिन्न, भिन्न-भिन्न। तो वहाँ भी ज्ञेय ध्रुव है और उसकी पर्याय भी परिणमन भिन्न-भिन्न परिणमती है, ऐसे परिणामसम्बन्ध के कारण से एक-दूसरे में ज्ञेय-ज्ञायक का निमित्तपना है। ज्ञेय उसमें निमित्त है, ज्ञान उसे निमित्त है, उसकी विशेषता बतायी है। यह तो आगे सर्वविशुद्ध अधिकार में कहेंगे। समझ में आया? लोकालोक ज्ञेय को केवलज्ञान निमित्त। यह तो कहे, नहीं। केवलज्ञान में लोकालोक निमित्त ज्ञेय कहो, ... ये क्या कहते हैं? ३६वीं गाथा हुई।

★ ★ ★

गाथा - ३७

अब, ऐसा उद्योत करते हैं... अब वह प्रकाश करते हैं। प्रकाश करते हैं। अन्तिम है न! **कि द्रव्यों की अतीत और अनागत पर्यायें भी तात्कालिक पर्यायों की भाँति पृथक्रूप से ज्ञान में वर्तती हैं :—** अब यह प्रश्न उठता है कि भगवान आत्मा का केवलज्ञान, वह तो जगत की वर्तमान पर्याय जो द्रव्य की प्रगट है (उसको जाने), परन्तु जो प्रगट नहीं—भूत की होकर समा गयी, भविष्य की है नहीं, उसको केवलज्ञान कैसे जानता है? समझ में आया? केवलज्ञान एक समय का, तीन काल-तीन लोक की जितनी पर्याय है, वह एक समय में कैसे जानता है? वर्तमान की पर्याय को तो जाने, परन्तु भूत की जो आकर समा गयी और भविष्य की सत्तारूप है, प्रगट है नहीं, असद्भूत है। भूत, भविष्य असद्भूत है, वर्तमान सद्भूत है। ऐसा कहा न? शब्द सद्भूत कहा है। उसका विद्यमान, अविद्यमान अर्थ किया। समझ में आया कुछ? ओहोहो! केवलज्ञान सर्वज्ञ की पर्याय का विवाद अभी तो। सर्वज्ञ कब जाने? जब निमित्त आयेगा और ऐसी पर्याय हुई, तब केवलज्ञान जानता है। तो केवलज्ञान को नया जानना है? सर्वज्ञ भगवान परमात्मा एक समय में तीन काल-तीन लोक की जो पर्याय जहाँ जैसी है, ऐसी वर्तमान में जाने। प्रत्यक्ष ज्ञान है, प्रत्यक्ष ज्ञान है। सद्भूत (हो या) भले असद्भूत वहाँ हो, परन्तु यहाँ तो ज्ञान में नियत निश्चय है। वह कहेंगे आगे। समझ में आया?

३७ में कहते हैं देखो। ज्ञेयरूप द्रव्यों की अतीत भूतकाल की और अनागत पर्याय भी, ऐसे। अनागत पर्याय भी। ऐसे। वर्तमान तो है। **तात्कालिक पर्यायों की भाँति...** मानों तत्काल वर्तमान हो, उसकी भाँति। वह कहा है न, तत्काल। **पृथक्रूप से ज्ञान में वर्तती हैं :—** केवलज्ञान में तो जिस द्रव्य की जहाँ जिस समय में जैसी होती है विशेषरूप, ऐसा ज्ञान एक समय में उसको जानने में आता है। नया नहीं कि इस जीव को यहाँ गुरु मिला और समकित हुआ। निमित्त (मिला) और समकित हुआ। तो जब मिलेगा तो होगा, ऐसा ज्ञान में यहाँ नहीं आता है। ऐसा ही आया है कि ऐसा है और ... ठीक न, दृष्टान्त तुम्हारा दिया यह। कहो, समझ में आया? आहाहा! कठिन बात!

सर्वज्ञपद जानना, अरिहन्तपद। अरिहन्त णमो अरिहंताणं। वह अरिहन्तपद है क्या? वह तो सर्वज्ञपर्याय प्रगट हुई है। कर्म का नाश तो एक व्यवहार से कहा, अशुद्ध का नाश भी अशुद्धनय से कहा। बाकी अपनी पर्याय अपने से निर्मल सर्वज्ञपर्याय प्रगट हुई, अपने अन्तर द्रव्य के आश्रय से, वह एक समय में तीन काल–तीन लोक देखते हैं। तो कहते हैं, जगत की द्रव्य की पर्याय तो वर्तमान में है। दूसरी तो भूतकाल की अभी नहीं, भविष्य की अभी नहीं है तो कैसे जानते हैं? कि वर्तमानवत् तीन काल की पर्याय एक समय में (जानते हैं)। क्योंकि ज्ञान की एक समय में वर्तमानवत् सब निश्चित हो गयी है। समझ में आया? नियत है न? कहीं शब्द है। उसमें लिखा था। नियत है न? ३८ में। बस यह। **ज्ञान के प्रति नियत होने से...** ३८ में है। ज्ञान के प्रति तो नियत होने से। देखो! है न? पर्याय अभी तक उत्पन्न नहीं हुई और उत्पन्न होकर नष्ट हो गयी, वास्तव में **ज्ञान के प्रति नियत होने से...** ज्ञान में तो निश्चित, ज्ञान में स्थिर लगी हुई है, ज्ञान में सीधी बराबर जानते हैं। एक समय में न हुई हो, वह पर्याय भी केवलज्ञान (जानता है)। देखो, यह केवलज्ञान की महिमा! एक समय की पर्याय तीन काल को वर्तमान में जान लेती है। आहाहा! ऐसा आत्मा, ऐसी तो अनन्त पर्याय का धनी ज्ञानगुण है। समझ में आया कुछ? और अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य है। उस द्रव्य में कितना सामर्थ्य है, कितनी महत्ता है—ऐसी दृष्टि जब महत्ता की हो, तब सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? और सम्यग्दर्शन हुए बिना जो कोई भी क्रिया आदि करते हैं, वह सब बिना एक के शून्य हैं। शून्य-शून्य। समझ में आया? आहाहा! वह कहते हैं। ३८ (गाथा)। **अविद्यमान पर्यायों को (भी) कथंचित्...** ३७।

तक्कालिगेव सव्वे सदसब्भूदा हि पज्जया तासिं।
वट्टंते ते णाणे विसेसदो दव्वजादीणं॥३७॥

इव, इव शब्द पड़ा है, हों! पेठी कहा है, परन्तु वर्तमान है, ऐसा कहाँ है? वर्तमान नहीं, परन्तु यहाँ ज्ञान में तो वर्तमान जैसे ज्ञात होता है, ऐसा सिद्ध करना है। वहाँ तो है उसे तो वर्तमान नहीं, तथापि ज्ञान में तो वर्तमान की ही भाँति ज्ञात होता है, ऐसा कहना है। समझ में आया? आहाहा! उस ज्ञान की पर्याय का इतना माहात्म्य है, ऐसा

कहते हैं। वर्तमान न हो, उसे वर्तमान एक समय में वर्तमान की भाँति नियत निश्चित कर लेता है अनुभव में अन्दर। नयी पर्याय भविष्य में होगी और भूत की हो गयी, उसे वर्तमान की भाँति ज्ञान जान लेता है। समझ में आया? ओहोहो!

ऐसा तो एक समय की पर्याय का सामर्थ्य! ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय का ज्ञानगुण। ऐसे अनन्त गुण का एकरूप द्रव्य। वह सुबह आया था न? एकरूप ज्ञायक शुद्ध। ऐसा एकरूप ज्ञायक शुद्ध। अशुद्धता नहीं, अनेकता नहीं, ऐसे द्रव्य का क्या माहात्म्य! ओहोहो! ऐसा माहात्म्य करके द्रव्य की दृष्टि करना, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन धर्म कहने में आता है। उस सम्यग्दर्शन बिना सब रण में चिल्लाने जैसी बात है। रण में पोक समझते हो? अरण्यरुदन। अरण्य में रुदन कोई सुने नहीं और उसका रुदन बन्द होता नहीं। ऐसी बात है। लोगों को कठिन पड़े। प्रयत्न करना नहीं, अवसर लेना नहीं और एकदम मानो धर्म हो जाये। बाहर से बता दे कि ऐसा करो.. ऐसा करो.. ऐसा करो... व्रत ले लो, पूजा करो, भक्ति करो, दान करो। क्या है परन्तु? वह चीज़ क्या है? वह तो विकल्प है, वह तो राग है। उसमें धर्म कहाँ आया?

उस राग का जाननेवाला ज्ञायकस्वरूप है, ऐसे ज्ञायक की दृष्टि-अनुभव करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन-धर्म है। वह बात यहाँ सिद्ध करते हैं। जैसा ज्ञानतत्त्व है, ऐसी उसकी प्रतीति स्वसन्मुख होकर करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? और उसका ज्ञान करना—ज्ञान का ज्ञान करना, ज्ञान का ज्ञान करना, वह ज्ञान है। और ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उसमें लीनता, ऐसी चीज़ है, ऐसी चीज़ महान प्रभु में लीनता, रमणता करना, जमना, अनुभव में, उसका नाम चारित्र है। उस चारित्र के फल में केवलज्ञान और केवलज्ञान की व्याख्या करते हुए केवलज्ञान ऐसा बताते हैं और श्रुतकेवली हम भी हैं, ऐसा कहा। क्योंकि भगवान ने भी आत्मा को देखा। लोकालोक की कोई बात नहीं। लोकालोक तो एक समय की पर्याय है जानने की। उसका क्या है? ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड जो द्रव्य है तो भगवान ने केवल द्रव्य को केवली ने देखा, इसलिए केवली हैं। लोकालोक को देखा, इसलिए केवली हैं—ऐसा नहीं।

एक केवल भगवान आत्मा वस्तु एकरूप केवल एकरूप को जाना तो आचार्य

कहते हैं कि एकरूप आत्मा को जाना तो हम भी श्रुतकेवली हैं। समझ में आया? आहाहा! सम्यग्दृष्टि भी श्रुतकेवली है एक न्याय से। समझ में आया? द्रव्य को जाना, भगवान ने भी द्रव्य को जाना और इसने भी द्रव्य को जाना। द्रव्य तो अखण्डानन्द पूर्ण प्रभु। आहाहा! केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य ऐसी तो अनन्त-अनन्त पर्याय जिसमें घुस पड़ी है, अन्दर में पड़ी है। आहाहा! और पर्याय तो ठीक, उसके अतिरिक्त उसकी अनन्त शक्ति एक-एक गुण की। ऐसा अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु आत्मा... ओहो! उसको जाना।... श्रुतज्ञान से केवल द्रव्य को जाना तो श्रुतज्ञानी है, श्रुतकेवली है। केवलज्ञान ने भी केवलज्ञान से केवल द्रव्य को जाना तो वह केवली है। समझ में आया? आहाहा! वीतरागमार्ग को समझना महाप्रयत्न है और ऐसा मार्ग दूसरे कहीं है नहीं। परमात्मा सर्वज्ञ के अतिरिक्त वह मार्ग कहीं तीन काल में है नहीं। सब तत्त्व की विरुद्ध बात है। यहाँ कहते हैं कि क्या चीज़ है? समझे? वह बात कहेंगे, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ११, बुधवार, दिनांक ०२-१०-१९६८
गाथा - ३७, प्रवचन - ३०

ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। क्या चलता है? देखो! **ऐसा उद्योत करते हैं कि द्रव्यों की अतीत और अनागत पर्यायें भी तात्कालिक पर्यायों की भाँति पृथक्‌रूप से ज्ञान में वर्तती हैं:—** वह उपोद्‌घात ऊपर कहा है। क्या कहते हैं? इस आत्मा की एक समय की ज्ञान की पर्याय जो केवलज्ञान उत्पन्न होता है, उसका इतना सामर्थ्य है... समझ में आया? एक समय। सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग, उसको एक समय कहते हैं। तो एक समय में आत्मा अपना शुद्ध चैतन्य शुद्ध आनन्द ज्ञायक त्रिकाली स्वरूप की दृष्टि करके, उसका ज्ञान करके, उसमें शुद्ध उपयोग से रमण करके, उसके फलस्वरूप केवलज्ञान उत्पन्न होता है। समझ में आया? समझ में आया कुछ? ... समझ में आया?

क्या कहते हैं? आयी है केवलज्ञान की बात, परन्तु केवलज्ञान जो परमात्मा अरिहन्त को उत्पन्न होता है, वह किस प्रकार होता है, वह बात पहले आयी है। आत्मा जो... जिसको एक समय में तीन काल-तीन लोक जानने की शक्ति ऐसी जो पर्याय उत्पन्न हो, उसका साधन भी बड़ा होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आत्मा में जो अरिहन्तपद प्राप्त होता है, केवलज्ञान होता है तो उस केवलज्ञान का सामर्थ्य कितने है? कि एक समय (अर्थात्) सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग। उसमें केवलज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य एक समय का, तीन काल-तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्याय एक समय में जानने में आते हैं। समझ में आया? ऐसा जो केवलज्ञान कैसे प्राप्त होता है? वह तो पहले कह गये।

अपने आत्मा में ऐसी केवलज्ञान जो पर्याय—अवस्था है, ऐसी तो अनन्त अवस्था अपने ज्ञानगुण में अन्दर पड़ी है। ऐसे-ऐसे अनन्त गुण आत्मा में हैं। अनन्त गुण का सामर्थ्यरूप एक आत्मा ऐसे द्रव्य के ऊपर दृष्टि देने से—अन्तर्मुख दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है और उसका ज्ञान करने से सम्यग्ज्ञान होता है। और उसमें लीनता, शुद्ध उपयोग, व्यवहार जो दया, दान, व्रतादि है, वह तो विकल्प है, शुभ उपयोग है, वह कहीं केवलज्ञान प्राप्त करने का साधन नहीं। समझ में आया? आत्मा में मोक्षपर्याय

कहो, केवलज्ञान कहो, उसकी उत्पत्ति में शुभ उपयोग दया, दान विकल्प जो है, वह साधन नहीं। क्योंकि वह तो राग है। समझ में आया?

साधन तो आत्मा एक समय में शुद्ध ध्रुव चैतन्य परमात्मा स्वयं स्वरूप है, एक-एक आत्मा ऐसा ही है। ऐसे आत्मा की दृष्टि सम्यक् करना, उसमें इतना बड़ा आत्मा, उसकी प्रतीति करना कि जिसमें अनन्त केवलज्ञान और अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य समय-समय में जो उत्पत्ति होती है केवली को, वह सब पर्याय अन्दर में पड़ी है। आहाहा! समझ में आया? उसका द्रव्य और उसका गुण अनन्त सामर्थ्यवाला है। वह गुण और द्रव्य के अन्तर में एकाकार होकर, स्वभाव सन्मुख होकर; निमित्त, राग और भेद से विमुख होकर अन्तर स्वभाव में सन्मुख होकर दर्शन-ज्ञान होता है और सन्मुख होने में शुद्ध उपयोग काम करता है। शुद्ध उपयोग अन्तर सन्मुख में काम करता है। समझ में आया? ऐसा शुद्ध उपयोग करते हैं, उनको अरिहन्तपद, केवलज्ञानपद अथवा मोक्षपद प्राप्त होता है। समझ में आया? उस केवलज्ञान की एक समय की पर्याय में कितनी सामर्थ्य है, इस बात का वर्णन करते हैं। समझ में आया?

तो कहते हैं, देखो ३७ (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ३७

तक्कालिगेव सव्वे सदसब्भूदा हि पज्जया तासिं।
वट्टंते ते णाणे विसेसदो दव्वजादीणं॥३७॥

इसका हरिगीत हिन्दी में नहीं है। यह तो हिन्दी है न। गुजराती में है। इसमें पीछे है। इसके पीछे गुजराती है। गुजराती है न? है न, यह रहा।

असद्भूत-सद्भूत सभी पर्यायें सकल पदार्थों की।
सदा वर्तती ज्ञान-मुकुर में, वर्तमानवत् स्पष्ट सभी॥३७॥

पीछे से डाला है। इतना हरिगीत बनाना नहीं आया होगा। क्या कहते हैं? देखो! इसका अन्वयार्थ लेते हैं। अन्वयार्थ है न, शब्दार्थ।

उन (जीवादि) द्रव्यजातियों की... भगवान ने इस जगत में छह द्रव्य देखे हैं। परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा तीर्थंकरदेव ने केवलज्ञान में छह द्रव्य देखे हैं। छह द्रव्य जाति अपेक्षा से, संख्या अपेक्षा से अनन्त। अनन्त आत्मा, उससे अनन्तगुणे परमाणु। यह परमाणु पॉईन्ट यह जड़, धूल, उसका टुकड़ा करते-करते अन्तिम परमाणु रहता है वह। आत्मा कि जो अनन्त हैं, उससे अनन्तगुणे परमाणु हैं और असंख्य कालाणु हैं अरूपी, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्ति और एक आकाश। भगवान के ज्ञान में द्रव्य संख्या से अनन्त और जाति से छह। और प्रत्येक द्रव्य में अनन्त गुण हैं। और प्रत्येक द्रव्य की, एक समय में अनन्त द्रव्य की अनन्त गुण की अनन्त पर्याय है—ऐसा तीन काल-तीन लोक की जो द्रव्यजाति है, उसको **समस्त विद्यमान और अविद्यमान...** जो द्रव्य जगत की चीज़ है, उसकी वर्तमान प्रगट अवस्था, वह विद्यमान है और भूतकाल की अवस्था होकर चली गयी और नयी उत्पन्न भविष्य की नहीं है, उसको यहाँ असद्भूत कहते हैं। अविद्यमान—वर्तमान में है नहीं।

पर्यायें तात्कालिक (वर्तमान) पर्यायों की भाँति,... केवलज्ञान में तो मानो ऐसे वर्तमान हो त्रिकाल—ऐसे ज्ञान में भासित होता है। समझ में आया? एक द्रव्य आत्मा, उसका एक ज्ञानगुण, उसकी एक समय की ज्ञान की पर्याय अर्थात् अवस्था। इतनी सामर्थ्य पर्याय में है कि एक समय में... एक समय यहाँ, वहाँ तीन काल का समय और अनन्त द्रव्य की जो गुण-पर्याय सब एक समय में वर्तमान जैसा केवलज्ञान में भासित होता है। आहाहा! समझ में आया? अभी केवलज्ञान किसको कहते हैं, उसकी भी खबर नहीं। यह तो वाडा में पड़े इसलिए मानते हैं। भगवान है, तीन काल का ज्ञान ऐसा है। क्या परन्तु तीन काल का ज्ञान वह?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। पड़ी है किसे? उस धन्धे के कारण पूरे दिन पाप और पाप। उसमें एकाध घण्टे (धर्म) करना चाहिए, वरना भव बिगड़ेगा। लाओ न, थोड़ा करते हैं। एक घण्टे जाये, कुछ सुने उल्टा और सुल्टा और... मोहनभाई! क्या है? भगवान क्या कहते हैं? आत्मा किसे कहते हैं? उसकी शक्तियों का समूह कितना है? कैसे कहते हैं? उस शक्ति की एक-एक समय की अवस्था की सामर्थ्य कितनी है?

समझ में आया? उसकी खबर न हो तो द्रव्य के ऊपर दृष्टि हो नहीं सकती।

एक समय के केवलज्ञान में इतनी सामर्थ्य है कि जैसे भूतकाल के द्रव्य की वर्तमान अवस्था है नहीं, भूतकाल की तो चली गयी, होकर गयी। भविष्य में हुई नहीं, वह अभी सत्ता में है और वर्तमान में प्रगट जो दशा एक समय की है वह, केवलज्ञान में तो वर्तमानवत् सब त्रिकाल ऐसे भासित होता है। आहाहा! समझ में आया? एक समय सूक्ष्म। एक 'क' बोले उसमें असंख्य समय जाये। उसमें एक समय में केवलज्ञान की पर्याय की इतनी सामर्थ्य है। अमरचन्दभाई! अब इस पर्याय की इतनी सामर्थ्य, उसके गुण की कितनी सामर्थ्य! और एक-एक अनन्त गुण के (धारक) द्रव्य की कितनी सामर्थ्य! समझ में आया? खबर नहीं, कुछ खबर नहीं। भगवान कहते हैं, भगवान कहे वह सच्चा जाओ। परन्तु उसे ज्ञान में तो आया नहीं, (तो) सच्चा कहाँ से आया तुझे? क्या कहते हैं परमात्मा और उसकी चीज़ सामर्थ्यता कितनी है, यह तो खबर नहीं। भीखाभाई! यह सब क्या? तुमने भी ऐसा किया है न! यह सब बड़े-बड़े बेरिस्टर हों और फलाना हो। क्या कहलाये? यह तो कलेक्टर थे। लो। बाहर के बकवास सब। ऐई! यह वकील रहे, लो न!

तत्त्व क्या है? सर्वज्ञ परमेश्वरपना उसने प्राप्त कैसे किया? और उसने आत्मा कैसा सामर्थ्यवाला कहा? खबर नहीं। आत्मा है। परन्तु आत्मा क्या है? आत्मा तो है। आत्मा तो वस्तु है, इतना हुआ। तो उसमें कोई शक्ति है या नहीं? वस्तु तो एक द्रव्य हुआ, द्रव्य। द्रव्य अर्थात् आत्मा है। परन्तु आत्मा में कोई शक्ति है या शक्तिरहित द्रव्य है? उसमें ज्ञानशक्ति है गुण। गुण कहो, शक्ति कहो। उस ज्ञान में अनन्त केवलज्ञान पर्याय प्रगट होने की सामर्थ्य है। उसमें दर्शनगुण है तो अनन्त दर्शनगुण की पर्याय प्रगट करने की सामर्थ्य है। उसमें आनन्द है तो उसमें अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होने की आनन्द में सामर्थ्य है। ऐसा अनन्त गुण का पिण्ड, उसके सन्मुख दृष्टि किये बिना सम्यग्दर्शन कभी होता नहीं। सच्ची प्रतीति जैसा सत् है, जैसा सत् है, द्रव्य और गुण के सामर्थ्यवाला जितना सत् है, इतना सत् प्रतीति में आना, (उसमें) अनन्त पुरुषार्थ है। समझ में आया? उसका नाम सम्यग्दर्शन अर्थात् सम्यक् प्रशंसनीय प्रतीति, प्रशंसनीय प्रतीति। तो प्रशंसनीय सम्यक् प्रतीति का अर्थ क्या?

जिसमें एक-एक गुण में अनन्त शक्ति, अनन्त पर्याय होने की (शक्ति) और उसके अतिरिक्त अनन्त शक्ति। ऐसा अनन्त गुण शक्तिरूप ऐसा भगवान आत्मा, इतनी ताकतवाला है, ऐसी अन्तर में दृष्टि जाती है, उसको सम्यग्दर्शन होता है। उसके अतिरिक्त सम्यग्दश्रन होता नहीं। यह तो देव-गुरु की श्रद्धा करो, (वह) समकित। नौ तत्त्व की श्रद्धा (वह समकित)। परन्तु क्या नौ तत्त्व, किसको कहना? समझ में आया? कहो, समझ में आया कुछ? यहाँ तो कहते हैं, जैसा तत्त्व का स्वभाव है वह, तीन काल की पर्यायें, एक वर्तमान की भाँति तीन काल की पर्यायें **विशिष्टतापूर्वक (अपने-अपने भिन्न-भिन्न स्वरूप में) ज्ञान में वर्तती हैं।** अपने ज्ञान की पर्याय में वह परद्रव्य है, उसकी पूर्व की पर्याय लाख समय पहले कौनसी थी, भविष्य की पर्याय अनन्त समय (बाद) कौनसी होगी, वह सब विशिष्ट पृथक्-पृथक् काल से, भाव से, क्षेत्र से, प्रदेश से जैसा भिन्न-भिन्न है, ऐसा एक समय में भगवान के ज्ञान में सब जानने में आता है। ऐसी आत्मा की एक समय की पर्याय की सामर्थ्य है। समझ में आया? ओहोहो! यह शब्दार्थ हुआ।

टीका :- (जीवादिक) समस्त द्रव्यजातियों की... जीव आदि छह द्रव्य हैं न? जीव, पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल, यह छह द्रव्य हैं। **(जीवादिक) समस्त द्रव्यजाति...** सब द्रव्यजाति, द्रव्य की जाति। उसकी **पर्यायें...** उसकी अवस्थायें, हालतें, उसकी वर्तमान होनेवाली दशायें। उसकी **उत्पत्ति की मर्यादा...** उस पदार्थ की अवस्था की उत्पत्ति की हद **तीनों काल की मर्यादा जितनी होने से...** समय-समय में पर्याय नयी-नयी प्रत्येक द्रव्य में होती है। अनन्त काल बीता, अनन्त काल आयेगा, समय-समय में प्रत्येक द्रव्य की, प्रत्येक गुण की समय-समय में पर्याय होगी, ऐसी तीन काल की उसकी मर्यादा है।

तीनों काल की मर्यादा जितनी होने से... ओहोहो! जिसके भूतकाल की आदि नहीं और भविष्यकाल का अन्त नहीं। अन्त है? आत्मा भविष्य में नाश होगा? और आत्मा नया हुआ, ऐसा है? और परमाणु नया हुआ, ऐसा है? और परमाणु भविष्य में नाश होगा, ऐसा है? तो एक-एक परमाणु, एक-एक आत्मा अनन्त काल से नयी-नयी पर्याय जो आती है और अनन्त काल तक रहेगा, वह तीन काल की उसकी मर्यादा द्रव्य

की पर्याय की है। **(वे तीनों काल में उत्पन्न हुआ करती हैं,...)** तीनों काल में प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु में... परमाणु यह जड़, मिट्टी। देखो, उससे पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा कहते हैं। रात्रि का प्रश्न आया था न कि आत्मा के साथ शरीर है न ? नहीं है। शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है। यह तो मिट्टी है, धूल है। यह परमाणु है, उसमें भी समय-समय में ऐसे तीन काल में पर्यायें उत्पन्न होती हैं, ऐसी परमाणु की मर्यादा है। वह पर्याय आत्मा से उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं। क्या कहते हैं ? क्या कहा देखो!

समस्त द्रव्यजातियों की पर्यायों की उत्पत्ति की मर्यादा तीनों काल की मर्यादा जितनी होने से (वे तीनों काल में उत्पन्न हुआ करती हैं, इसलिए), उनकी (उन समस्त द्रव्य-जातियों की), क्रमपूर्वक तपती हुई स्वरूप-सम्पदावाली (एक के बाद दूसरी प्रगट होनेवाली), विद्यमानता और अविद्यमानता को प्राप्त जो जितनी पर्यायें हैं, वे सब तात्कालिक (वर्तमानकालीन) पर्यायों की भाँति,... जानता है। हमें तो पहले उसमें यह लेना है कि यह परमाणु—रजकण है एक-एक। यह (शरीर) कोई मूल चीज़ नहीं, यह शरीर तो अनन्त रजकण का बना हुआ पिण्ड दिखता है। तो एक-एक परमाणु, एक-एक समय में नयी-नयी पर्याय उत्पन्न करता है, ऐसी तीन काल की पर्यायें उत्पन्न करने की मर्यादा परमाणु में है। आत्मा से उसमें तीन काल की पर्याय उत्पन्न करे, ऐसा है नहीं। समझ में आया ?

यह एक शब्द में कितना भरा है, देखो! कि **द्रव्यजातियों की पर्यायों की उत्पत्ति की मर्यादा तीनों काल की मर्यादा जितनी होने से...** बस, जितना त्रिकाल समय अनन्त है, उतनी एक द्रव्य की इतनी पर्याय है। पर्याय अर्थात् अवस्था, हालत। इतनी तीन काल के समय जितनी। और वह उत्पत्ति उस द्रव्य में अपने से तीन काल में समय-समय में उत्पन्न होती है। परद्रव्य से नहीं और परद्रव्य के कारण से अपने में नहीं। समझ में आया ? यह ऐसे चलता है न ? वह पर्याय जड़ की है, आत्मा से नहीं।

मुमुक्षु : कौन चलाता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन चलाये ? कौन चलाता है ? वह पर्याय अपने से उत्पन्न होती है। आत्मा में अपने से उत्पत्ति हुई। वह द्रव्य है न ? तो द्रव्य में तीनों काल की उत्पत्ति की मर्यादा है तो अपने में तीनों काल की पर्याय अपने से उत्पन्न होती है। कुछ

खबर नहीं होती। कहो, वकील! वकील तो होशियार हों तो ऐसी बराबर भाषा करे या नहीं कोर्ट में? नहीं? धूल में भी करे नहीं। यह सब डंफासी हैं। जेठालालभाई!

यहाँ क्या कहते हैं? कि समस्त द्रव्यजातियों की... द्रव्यजाति—द्रव्य की जो छह जाति है। उसके अनन्त **पर्यायों की उत्पत्ति की मर्यादा...** उस द्रव्य में वह समय-समय की अवस्था की उत्पत्ति की हद। उत्पत्ति की मर्यादा **तीनों काल की मर्यादा जितनी होने से...** लो! परमाणु में भी समय-समय में भूतकाल या वर्तमान, भविष्य तीनों काल में अपने-अपने काल में अपनी-अपनी पर्याय उत्पन्न होती है। आत्मा से उसमें नहीं और उससे आत्मा में नहीं। अन्यथा तीनों काल की—द्रव्य के काल की मर्यादा कहाँ रहेगी? भगवानजीभाई! आहाहा! मैं बोलता हूँ, मैं शरीर को चलाता हूँ। मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है। भगवान ने जैनतत्त्व कहा, उसकी तुझे प्रतीति नहीं है। समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा उनकी पर्याय में ऐसा देखते हैं कि प्रत्येक द्रव्य की पर्याय जितना तीन काल है, इतनी पर्याय है, उस-उस समय में तीन काल की पर्याय उत्पन्न होती है, उसकी मर्यादा है। एक-एक द्रव्य में। परद्रव्य से नहीं और परद्रव्य से अपने में नहीं। समझ में आया? आहाहा! देखो! यह शरीर ऐसे होता है तो कहते हैं, वह तो परमाणु की पर्याय उस समय में उत्पन्न होने में तीन काल की मर्यादा उसमें है। और आत्मा क्षेत्रान्तर होता है उसमें, वह अपने कारण से पर्याय क्षेत्रान्तर होती है। शरीर चला तो अपनी पर्याय चली, ऐसा भी नहीं, ऐसा कहते हैं। तत्त्व की खबर नहीं होती, खिचड़ा करे और मिथ्यादृष्टिपना सेवन करे, वह कहते हैं। समझ में आया?

आत्मा भी ऐसे क्षेत्रान्तर होता है, देखो! यह होंठ हिलते हैं न होंठ? उस समय की पर्याय वह परमाणु की-रजकण की होती है। और वह तीनों काल में उत्पन्न होती है, एक-एक परमाणु ऐसी पर्याय की मर्यादा है और उसमें आत्मा का प्रदेश जो हिलता है थोड़ा, क्षेत्रान्तर होता है, वह भी अपनी पर्याय में उत्पत्ति होती है। वह पर्याय, होठ हिलता है तो आत्मा की पर्याय क्षेत्रान्तर होती है, ऐसा नहीं। और क्षेत्रान्तर अपना अन्दर प्रदेश होता तो यह हाथ ऐसा होठ में ऐसा होता है, ऐसा नहीं। क्योंकि प्रत्येक द्रव्य में पर्याय की उत्पत्ति (की मर्यादा) तीन काल जितनी है। कहो, बराबर है? जगजीवनभाई! गजब, यह तो जैन में जन्मे को जैन की खबर नहीं होती। नटुभाई! बराबर है न? दरकार

ही कहाँ है ? भगवान कहते हैं वह सच्चा, करो अपने अब। करो सामायिक, करो प्रौषध।

मुमुक्षु : क्रिया तो कुछ करनी ही चाहिए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कौन सी क्रिया ? किसकी क्रिया ? कौन करे ? इसका ज्ञान तो करना चाहिए या नहीं ? वह तो जड़ की पर्याय है। ऐसी होती है। भाषा जड़ की पर्याय है। समझ में आया ? ऐसा लाओ भाई ! कपड़ा छोड़ो, बैठ जाओ। यह पर्याय ऐसी हुई, वह तो जड़ की पर्याय हुई। तुम कहते हो कि हमारे से हुई। तो उसकी पर्याय का काल है, ऐसे उत्पन्न होने में और तुमने उत्पन्न की ? तो अजीव पर्याय की उत्पत्ति की मर्यादा उसमें है नहीं और जीव मानता है कि मुझसे हुई, (तो) मिथ्यादृष्टि अजीव को जीव मानता है।

मुमुक्षु : शास्त्र में आता है, भगवान ने कपड़े छोड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ छोड़े नहीं। कौन छोड़े ? ऐई ! भीखाभाई ! कपड़े की पर्याय वह छूटने की क्षेत्रान्तर होने की मर्यादा परमाणु में उस काल में वह पर्याय उत्पत्ति का काल नहीं था ? भूतकाल की पर्याय का उत्पन्न काल भूत था, वर्तमान की पर्याय का उत्पन्न (काल) वर्तमान है, भविष्य की उत्पन्न (होने का काल) भविष्य है। तीनों काल की पर्याय उत्पन्न होने में मर्यादा उसकी है। तो किसी द्रव्य की पर्याय किसी द्रव्य से होती है, (ऐसा) तीन काल-तीन लोक में होता नहीं।

मुमुक्षु : अबाधित।

पूज्य गुरुदेवश्री : अबाधित त्रिकाल वस्तु का स्वरूप खबर नहीं। फिर करो सामायिक। तावकायं ठाणेणं... मिथ्यात्व किया। समझ में आया ? ऐई ! भीखाभाई ! तावकायं ठाणेणं माणेणं ठाणेणं... काया को ऐसे रखूँ, वाणी को ऐसे रखूँ। अब वह तो पर्याय जड़ की है। उसे तू क्या रखे ? वह तो मिट्टी की परमाणु की पर्याय है। क्योंकि द्रव्य जाति की तीन काल की पर्याय की मर्यादा द्रव्य में है, पर में है नहीं।

मुमुक्षु : ऐसा चलता नहीं कहीं, क्या करे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चलता नहीं तो इसे समझना पड़ेगा न ! आहाहा ! कहो, समझ में आया ?

क्या कहा? देखो! **(जीवादिक) समस्त द्रव्यजातियों की...** अर्थात् छह द्रव्य भगवान ने देखे—अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, एक धर्मास्ति आदि। **पर्यायों की उत्पत्ति की...** उसकी वर्तमान अवस्था की उत्पत्ति की **मर्यादा...** अर्थात् हद। **तीनों काल की मर्यादा जितनी होने से...** तीन काल की मर्यादा जितनी प्रत्येक द्रव्य में पर्याय उत्पत्ति का काल है। तो जिस-जिस समय में जहाँ-जहाँ जिस द्रव्य की पर्याय उत्पन्न होती है, वह द्रव्य अपने काल से उत्पन्न होती है, पर से उत्पन्न नहीं होती। भगवान ऐसा केवलज्ञान में देखते हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं। कहते हैं, देखो!

तीनों काल की मर्यादा जितनी होने से (वे तीनों काल में उत्पन्न हुआ करती हैं, इसलिए),... तीनों काल में प्रत्येक द्रव्य में उत्पन्न हुआ करती है। तो वर्तमान में भी उत्पन्न हुआ करती है, वह उसके कारण से है। अपने कारण से पर में नहीं और पर के कारण से अपने में नहीं। कहो, समझ में आया? वस्तु है न? द्रव्य है या नहीं? द्रव्य है तो द्रवता है या नहीं? समय-समय में अनन्त गुण की पर्याय एक समय में अनन्त पर्यायें उत्पन्न होती हैं। गुण अनन्त हैं न, तो प्रत्येक गुण की (पर्याय की) उत्पत्ति का काल तीन काल के जितना है। जितना तीन काल है, उतनी पर्यायें हैं। तो उस-उस काल में उत्पन्न होने का उसका स्वभाव है। आत्मा से पर की पर्याय का उत्पन्न होना नहीं और पर की पर्याय से अपनी (पर्याय उत्पन्न) होना नहीं। अब इतनी भी खबर नहीं जड़-चैतन्य की भिन्नता, उसको सम्यग्दर्शन कहाँ से होता है? समझ में आया? पर की भिन्नता। और पीछे पर्याय मेरी मेरे में, पर की पर्याय पर में। और पर्याय उत्पन्न होती है, इतना भी मैं नहीं। और वह परद्रव्य भी एक पर्याय उत्पन्न होती है, इतना भी वह परद्रव्य नहीं। आहाहा! जेठालालभाई!

ऐसी त्रिकाल की उत्पन्न होनेवाली पर्यायें, ऐसा द्रव्य में हूँ, ऐसा द्रव्य मैं हूँ। तो तीन काल की पर्यायें, वर्तमान में प्रगट अंश है, भूत और भविष्य की नहीं, परन्तु उन सबकी उत्पत्ति मेरे द्रव्य से उत्पन्न होती नहीं। उसके द्रव्य से उसकी पर्यायें तीनों काल में; मेरे द्रव्य से मेरी उत्पत्ति पर्यायें तीनों काल में। ऐसी दृष्टि हो तो द्रव्यस्वभाव त्रिकाल है, उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन की उस समय की पर्याय अपने से अपने काल में श्रद्धागुण की पर्याय उत्पन्न होती है। समझ में आया? आहाहा!

श्रद्धा भी गुण है न आत्मा में त्रिकाल ? तो उसकी पर्याय उत्पत्ति का काल भी त्रिकाल है या नहीं ? श्रद्धागुण त्रिकाल है तो पर्याय उत्पन्न होने का (काल) त्रिकाल है। तो श्रद्धागुण की सम्यग्दर्शन की पर्याय अपने से होती है। तो उसका अर्थ क्या हुआ ? कि श्रद्धा को धरनेवाला जो आत्मा उसकी दृष्टि करने से श्रद्धागुण की सम्यक् पर्याय जो है, वह अपने से उत्पन्न होती है। दर्शनमोह का अभाव करने से और कर्म का अभाव हुआ तो हुई, ऐसा है नहीं। भीखाभाई ! ऐसा का ऐसा सुना नहीं और ठिकाना कूटा। वीतराग परमात्मा क्या द्रव्य की जाति, द्रव्य की पर्याय की जाति, कितना काल और कितने काल में उसमें उत्पन्न होती है, उसकी मर्यादा क्या है ? (यह फरमाते हैं)। कैसी भाषा है, देखो !

द्रव्यजातियों की पर्यायों की उत्पत्ति की मर्यादा तीनों काल की मर्यादा जितनी होने से... जितना तीन काल है, उतनी पर्यायें हैं। उतने समय जितनी। आहाहा ! एक 'क' बोले उसमें असंख्य समय जाता है। असंख्य समय। तो एक-एक समय में प्रत्येक द्रव्य की पर्याय अपने से उत्पन्न होती है। ऐसी तीन काल में उत्पन्न होती है, वह द्रव्य की मर्यादा है। कहो, क्या कहा ? व्यापार-व्यापार करते हैं, यह तो वकालत करनी नहीं है अब तो, उसको व्यापार करना है। व्यापार कर सकते नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा !

कहते हैं, एक रुपया है न ? यहाँ से ऐसे जाता है, तो कहते हैं कि उस परमाणु की उस समय में वह पर्याय उत्पन्न होने की उसकी मर्यादा (है)। ऐसे उस परमाणु में तीन काल की पर्याय उत्पन्न होने की परमाणु की मर्यादा है। तो रुपया ऐसे गया, वह हाथ से नहीं गया, आत्मा की इच्छा से नहीं गया। आत्मा की इच्छा हो कि उसको पैसा दूँ। तो इच्छा से पैसा उसको—पर को जाता है, ऐसी बात तीन काल में है नहीं। यहाँ ऐसा कहते हैं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। कहो, भगवानभाई ! यह क्या किया सामायिक और किया था न सब प्रौषध और प्रतिक्रमण ? बहुत किया खोटा। खोटा... खोटा, सच्चा नहीं। खबर नहीं होती। पुराने व्यक्ति हैं न ! परन्तु कहीं चलता नहीं यह। यह करो सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो। वह हो तो कहे, पूजा करो, मन्दिर जाओ और मन्दिर की भक्ति करो भगवान की। वह कहे, भक्ति निकालो, यह संघ निकालो। अब वह तो सब सुन न ! वह तो परमाणु की जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, वह

होती है। अपने आत्मा (से होती नहीं)। भगवान के ज्ञान में द्रव्य की तीन काल की पर्यायें जिस काल में उत्पन्न होती है वह, ज्ञान की पर्याय में वर्तमानवत् देखते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन बात है, सुनने को तैयार नहीं था। बात सच्ची। आहाहा!

(उन समस्त द्रव्य-जातियों की), क्रमपूर्वक तपती हुई... देखो, भाषा! **क्रमपूर्वक तपती हुई...** प्रत्येक पदार्थ में—आत्मा में, परमाणु में। एक निगोद का एक शरीर हो तो अनन्त आत्मा है। और अनन्त आत्मा में एक-एक आत्मा में और उसमें रजकण कर्म का एक-एक रजकण में **क्रमपूर्वक तपती हुई...** देखो, क्रमबद्ध आया। क्रम-क्रम से उस द्रव्य में पर्याय तपती हुई, उत्पन्न होती हुई। देखो! **स्वरूप-सम्पदावाली है...** क्रमपूर्वक तपती हुई स्वरूप सम्पदा। अपने से प्रगट हो, ऐसी स्वरूप की सम्पदावाली वह पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? **क्रमपूर्वक तपती हुई...** अर्थात् एक साथ में तीनों काल की पर्यायें उत्पन्न नहीं होतीं, ऐसा कहते हैं। क्रम-क्रम से, परमाणु में और आत्मा में क्रमसर पर्याय तपती हुई, तपती अर्थात् उत्पन्न होती हुई, शोभती हुई स्वरूप सम्पदा। वह पर्याय की स्वरूप सम्पदा है।

(एक के बाद दूसरी प्रगट होनेवाली), विद्यमानता और अविद्यमानता को प्राप्त... भूतकाल की पर्यायें जो गयी हैं और वर्तमान की उत्पन्न हुई और भविष्य की उत्पन्न नहीं हुई, सबको **जो जितनी पर्यायें हैं,...** जितनी पर्यायें हैं द्रव्य की, आहाहा! **वे सब तात्कालिक (वर्तमानकालीन) पर्यायों की भाँति, अत्यन्त मिश्रित होने पर भी...** क्या कहते हैं? एक समय में अनन्त गुण की जैसे एक समय में अनन्त मिश्रित पर्यायें एक समय में है। समझ में आया? अनन्त है न? एक आत्मा में अनन्त गुण है। ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त। तो एक समय में, अनन्त पर्यायें मिश्रित एक समय में साथ में है। एक समय में साथ में। परन्तु केवली तो एक-एक पर्याय भिन्न-भिन्न देखते हैं, ऐसा कहते हैं। उसका प्रदेश भिन्न, उसका काल भिन्न, उसका भाव भिन्न—ऐसा भगवान देखते हैं। आहाहा! समझ में आया?

प्रगट होनेवाली, विद्यमानता और अविद्यमानता को प्राप्त जो जितनी पर्यायें हैं, वे सब तात्कालिक पर्यायों की भाँति,... जानते हैं। ऐसे वर्तमान हो, ऐसी भूत और भविष्य की पर्यायें उस-उस समय की भिन्न-भिन्न अपनी सम्पदा से शोभती है, प्रगट

होती है। है, अस्तिपने है, उसको **अत्यन्त मिश्रित होने पर भी...** नीचे कोष्ठक में है। **ज्ञान में समस्त द्रव्यों की तीनों काल की पर्यायें एक ही साथ ज्ञात होने पर भी प्रत्येक पर्याय का विशिष्ट स्वरूप...** विशिष्ट अर्थात् खास स्वरूप। एक-एक आत्मा की एक समय की पर्याय का खास भिन्न स्वरूप, दूसरी पर्याय से भी उनका भिन्न स्वरूप, एक समय में होने पर भी... ऐसे परमाणु एक रजकण है, उसमें अनन्त गुण हैं। तो एक समय में अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें एक समय में मिश्रित अर्थात् साथ में हैं। उनको भगवान का ज्ञान प्रत्येक पर्याय का खास स्वरूप, प्रत्येक पर्याय का—अवस्था का खास प्रदेश, उसका समय, उसका आकार, **इत्यादि विशेषतायें...** केवलज्ञान में **स्पष्ट ज्ञात होता है...** लोग कहते हैं कि केवलज्ञानी सामान्य को देखे, विशेष को नहीं। समझ में आया? क्योंकि विशेष देखे तो हो गया। भगवान ने देखा ऐसा होता है, अब हमें करना क्या रहा? अरे! सुन तो सही। वह कहते हैं भगवान। भगवान के ज्ञान की पर्याय में प्रत्येक द्रव्य की जो-जो अवस्था जिस समय में जिस भाव से, जिस प्रदेश में जो है, एक-एक पर्याय को भिन्न-भिन्न करके भगवान जानते हैं। धर्मचन्दजी! तो कहते हैं कि ऐसा जो विशेषपने सबकी विशेषता जाने, तो जब जहाँ पर्याय होनी है, वह होगी। भगवान ने देखा ऐसा हुआ। तो हमारे करना क्या रहा? अरे! सुन तो सही।

ऐसा जब जहाँ पर्याय, जब जिस समय में होती है भूत-भविष्य की, ऐसा केवलज्ञान में आया, ऐसी केवलज्ञान की पर्याय की जिसको प्रतीति हो, एक समय में प्रत्येक पर्याय भिन्न... भिन्न... भिन्न... भिन्न... भिन्न... भिन्न... जिस समय में होनेवाली भूत, भविष्य, वर्तमान जानते हैं, ऐसी ज्ञान की एक समय की पर्याय की प्रतीति जब होती है, कब होती है? वह होनेवाली है, उसको ज्ञान जानता है, उस ज्ञान की प्रतीति कब होती है? कि वह पर्याय जिसमें से निकलती है, ऐसा द्रव्य, ऐसा द्रव्य, उस द्रव्य के स्वभाव की दृष्टि करने से, केवलज्ञान की पर्याय हो, उस अनुसार बनता है, उसका निर्णय उसको द्रव्यस्वभाव के आश्रय से होता है। आहाहा! भारी कठिन बात! समझ में आया?

एक समय की पर्याय में तीन काल-तीन लोक (जानते हैं)। तो जहाँ-जहाँ जिस पदार्थ की जो पर्याय जिस क्षेत्र में, जिस का काल में वह भावसहित जहाँ जिस गुण की पर्याय उत्पन्न होती है, सब केवलज्ञान की पर्याय वर्तमानवत् देखती है। तो ऐसा हो गया

कि भगवान के ज्ञान में तीन काल–तीन लोक की पर्यायें देखने में आती हैं, ऐसा बनता है। अब हमारे करना क्या? परन्तु सुन तो सही! ऐसा विश्वास तुझे आया है अभी? आहाहा! ऐसा यदि विश्वास तुझे हो कि एक समय में तीन काल–तीन लोक की जितनी पर्यायें हैं, एक समय में जहाँ–जहाँ उत्पन्न होती है, भगवान देखते हैं। ऐसे ज्ञानगुण की एक पर्याय का सामर्थ्य है। ऐसा विश्वास कब आता है? कि एक समय की पर्याय का विश्वास (कि) द्रव्य में से वह पर्याय आती है। तो ज्ञायकस्वभाव मेरा कितना है, ऐसी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है, तब पुरुषार्थ स्वभाव सन्मुख हो गया। आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें भाई! वीतराग का मार्ग ऐसा लोगों ने बिखेरकर नौंच डाला है न! वास्तविक तत्त्व ही हाथ में रहने नहीं दिया। उल्टा... उल्टा... उल्टा सब और मानते हैं कि हम बराबर हैं। समझ में आया? ओहोहो!

कहते हैं, जिस द्रव्य का जिस क्षेत्र में जिस समय में जिस भाव से जो भाव पर्याय उत्पन्न होगी, भूत की भूत में, वर्तमान की वर्तमान में, भविष्य की भविष्य में, सब ज्ञान की पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय में वर्तमानवत्, यह वर्तमानवत् तीन काल–तीन लोक भगवान ज्ञान में जानते हैं। ऐसी ज्ञान की एक समय की सामर्थ्यता है। आहाहा! समझ में आया? वह तीन काल और लोकालोक और यहाँ एक समय का ज्ञान। तीन काल, लोकालोक क्षेत्र। अनन्त द्रव्य, अनन्त गुण, अनन्त त्रिकाल पर्याय की मयार्दा। भगवान तो एक ही समय में वर्तमानवत् सब देखते हैं। ओहोहो! इतनी ज्ञान की पर्याय, इतनी सामर्थ्य एक समय में, एक पर्याय की इतनी सामर्थ्य, (उसकी) प्रतीति–विश्वास किसको आवे? समझ में आया? कि पर्याय में इतनी सामर्थ्य है तो वह पर्याय किसमें से आती है? पर्याय तो एक समय की है। तो द्रव्य में से केवलज्ञान की पर्याय आती है। दूसरे समय की पर्याय केवलज्ञान भी दूसरे समय में दूसरी होती है, तीसरे समय में तीसरी होती है। केवलज्ञान पर्याय है, गुण नहीं। तो ऐसी एक समय की पर्याय का इतना सामर्थ्य, तो वह पर्याय जिसमें से—खान में से निकलती है, उस गुण का कितना सामर्थ्य! तो एक गुण का इतना अनन्त सामर्थ्य केवलज्ञान की पर्याय से अनन्तगुना, अनन्तगुना सामर्थ्य। केवलज्ञान की पर्याय से एक गुण का अनन्तगुना सामर्थ्य, तो एक द्रव्य का कितना सामर्थ्य? अनन्त गुण का सामर्थ्य, इतना एक द्रव्य का सामर्थ्य। समझ में आया? ओहोहो! कैसी बात की है न!

ज्ञान अधिकार है यह ज्ञानतत्त्व। ज्ञान के सत्त्व की पर्याय की प्रगटता की कितनी सामर्थ्य! तीन काल-तीन लोक की जितनी पर्याय द्रव्य की है, सबको भिन्न-भिन्न करके, ज्ञान में भिन्न करके अर्थात् भिन्न जैसे है, ऐसे ज्ञान जान लेता है। खास—विशिष्ट कहा न? विशिष्ट पर्यायें। विशिष्टस्वरूप, खास स्वरूप जितना है, उन सबका। **सब पर्यायों के विशिष्ट लक्षण...** खास लक्षण। एक परमाणु में हरी अवस्था समय में हुई तो उसका लक्षण ज्ञान में आया कि वह वर्तमान हरी है। लीली समझे? हरी। और दूसरे समय में हरी पर्याय सफेद हो जाये तो उस समय में उसकी उत्पत्ति की मर्यादा, वह सफेद होने की थी। ऐसा केवलज्ञान एक समय में पहली हरी दिखी, दूसरे में यह दिखी, ऐसी मर्यादा एक परमाणु की है। ऐसे आत्मा। आत्मा में एक समय में केवलज्ञान हुआ, सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा कि वह केवलज्ञान की पर्याय उस समय उत्पन्न होने के योग्य मर्यादा है। समझ में आया?

तो प्रत्येक पदार्थ प्रत्येक समय में भिन्न-भिन्न पर्याय जैसे उत्पन्न होती है, ऐसा विशिष्ट लक्षणसहित केवलज्ञान की एक समय की दशा सबको पहुँच जाती है। वर्तमानवत्। ओहोहो! एक समय की इतनी सामर्थ्य। एक समय की पर्याय तो ऐसी अनन्त पर्याय का धरनेवाला तो गुण है ज्ञान। यहाँ ज्ञानतत्त्व का अधिकार है न! तो अनन्त पर्याय का धरनेवाला ऐसी अनन्तगुनी शक्तिवाला ज्ञानगुण है। तो वह ज्ञानगुण जो असाधारण त्रिकाल स्वभाव है, उसकी जहाँ दृष्टि करे तो गुण को धरनेवाला द्रव्य है। द्रव्य के ऊपर दृष्टि होने से महासामर्थ्यवाला भगवान आत्मा, उसकी महासामर्थ्यवाले की पर्याय में प्रतीति अनन्त वीर्य से उत्पन्न होती है। आहाहा! समझ में आया? तो उसमें पीछे, भगवान ने देखा तो क्या करना? यह प्रश्न रहेगा नहीं। समझ में आया?

उसमें भी कहा न! शीतलनाथ की स्तुति है न! देवचन्दजी (कृत) खतरगच्छ में श्वेताम्बर में हुए हैं। उसने भी ऐसा कहा है 'द्रव्य क्षेत्र ने काल भाव गुण राजनीतिअे चार जी। त्रास विना जड़ चेतन प्रभुनी कोई न लोपे कार जी। द्रव्य, क्षेत्र ने काल, भाव गुण।' सब वस्तु का द्रव्य, उसका क्षेत्र, उसका स्वकाल, उसकी शक्ति और उसका भाव राजनीतिअे... द्रव्य का स्वभाव, त्रिकाल ऐसा है। 'त्रास विना जड़ चेतन प्रभुनी कोई न लोप कार जी।' सर्वज्ञ पर्याय में भगवान ने जो देखा है, ऐसा वहाँ जड़-चैतन्य में होगा,

होगा और होगा। वह त्रास बिना—पर के पराधीन बिना। समझ में आया ? वह शीतलनाथ की स्तुति है। खतरगच्छ में हुए न! वस्तु का कुछ ठिकाना नहीं। समझ में आया ?

तीन काल–तीन लोक जिसकी एक पर्याय में हथेली में आये, ऐसे वर्तमानवत् आ गया। आहाहा! ऐसी आत्मा द्रव्य की, गुण की एक समय की पर्याय एक ज्ञान की, एक समय की पर्याय—अवस्था की इतनी सामर्थ्य। वह सामर्थ्य क्या राग से उत्पन्न होती है ? रागरहित निर्मल पर्याय इतनी क्या पुण्य की क्रिया से उत्पन्न होती है ? समझ में आया ? दया, दान, व्रत, भक्ति, सब तो विकल्प है, वह तो राग है। जिसमें राग नहीं, ऐसा अनन्त सामर्थ्यवाला गुण है और ऐसे अनन्त गुणवाला द्रव्य है। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र धर्म होता है। समझ में आया ? और उस सामर्थ्य के कारण केवलज्ञान उत्पन्न होता है। उस केवलज्ञान में तीन काल–तीन लोक की पर्यायें एक समय में जानने में आ जाती है। और ऐसे ही उत्पन्न वह अन्दर होता है। केवलज्ञान ने देखा दूसरा और पर में हो दूसरा, ऐसा फेरफार तीन काल में होता नहीं। सर्वज्ञ की खबर नहीं, अभी केवलज्ञान किसको कहना, केवलज्ञान की पर्याय की सामर्थ्य कितनी ? समझ में आया ?

वह चर्चा हुई न अपने, नहीं ? कुण्डला में। वह आये थे न झबेरचन्दभाई! बड़े पत्रकार थे स्थानकवासी के। आये चर्चा में २००६ के वर्ष में। उपादान से काम होता है, निमित्त से होता है, निमित्त से होता है, इसकी चर्चा लाये। अच्छा भाई! सुनो! सुनो तुम। जिस समय में जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह भगवान ने देखी है या नहीं ? नहीं, नहीं, उसका कुछ काम नहीं है। केवलज्ञान में देखी (है) ? नहीं, उत्पन्न होगी तब (जानेंगे)। ऐसा कहा। उत्पन्न होगी, तब जानेंगे। ऐसा केवलज्ञान का ऐसा स्वभाव है कि जब उत्पन्न होगी, तब जानेंगे कि इस प्रमाण होगी, ऐसा वर्तमान में जानते हैं ? तब वे भगवानजीभाई थे न, भगवानजी। प्रेमचन्दभाई के रिश्तेदार। प्रेमचन्द खारा के रिश्तेदार थे न, भगवानजी। वे कहें, नहीं। वे आये थे सब उसके साथ विरोध करने। समझे न ? उपादान से होता है। अकेला उपादान नहीं... भगवान ने देखा है या नहीं, जिस समय में यहाँ उत्पन्न होगी, उस समय निमित्त यह होगा और उपादान... उस समय की पर्याय भगवान ने नहीं देखी ? तब कहे, होगी तब देखें। केवलज्ञान उसे कहते हैं ? केवलज्ञान

उसे कहते हैं कि होगी तब देखें? या वर्तमान में, भूत, भविष्य और तीन काल की पर्यायें इस समय में यह होगी—ऐसा वर्तमान में देखते हैं। पश्चात् बदल गये। फिर अन्तिम दिन माफी माँगने आये। मेरी भूल हुई है। परन्तु ऐसा तुम समझे बिना ऐसे का ऐसा विरोध करो, समझे बिना, ऐसा कहीं चले बापू! यह तो सर्वज्ञ का मार्ग है।

यह तो सर्वज्ञ का मार्ग है, सर्वज्ञ का पंथ है। एक समय में तीन काल-तीन लोक देखते हैं। आहाहा! इतना एक समय का काल, एक समय का काल... एक समय तो अज्ञानी भिन्न कर सकता नहीं। परन्तु इसकी पर्याय में इतनी सामर्थ्य! ओहोहो! तीन काल किसको कहते हैं? काल की आदि नहीं, अन्त नहीं। ज्ञान में आ गया अनादि-अनन्त। और अनादि-अनन्त जहाँ जो पर्याय होती है, वह भी ज्ञान में आ गया। जिस क्षेत्र में जिस द्रव्य की पर्याय हुई, वह भी ज्ञान में आ गया। और जिस क्षेत्र में जिस काल की पर्याय अपने से होती है, तब निमित्त कौन हो, वह भी ज्ञान में आ गया है। भगवान के ज्ञान में तो जिस समय की पर्याय उपादान से होती है और उस समय निमित्त कौन है, दोनों का ज्ञान निश्चित केवलज्ञान में आ गया है। ज्ञानचन्दजी! या नया है भगवान को? श्रेणिक राजा तीर्थंकर होंगे और केवलज्ञान पायेंगे, वह भगवान के ज्ञान में पहले से नहीं आ गया? वे केवल (ज्ञान) प्राप्त करेंगे, तब यहाँ केवली जानेंगे? ऐंई!

अत्यन्त मिश्रित होने पर भी सब पर्यायों के विशिष्ट लक्षण स्पष्ट ज्ञात हों... देखो! खास-खास प्रत्येक द्रव्य की पर्याय जिस-जिस समय में भिन्न-भिन्न काल में भिन्न-भिन्न क्षेत्र में भिन्न-भिन्न द्रव्य में जो होती है, स्पष्ट ज्ञानरूप... **इस प्रकार, एक क्षण में ही, ज्ञानमन्दिर में स्थिति को प्राप्त होती हैं।** ज्ञानमन्दिर। आहाहा! जैसे मन्दिर में देव है न? एक समय की पर्याय में—मन्दिर में बाकी बहुत रह गया, कहते हैं। एक समय की। 'क' बोले, उसमें असंख्य होता है। आहाहा! यह वह कहीं बात है! ऐसा एक समय, उस एक समय में सारे तीन काल-तीन लोक की विशेषतासहित, भेदसहित जहाँ-जहाँ जो क्षेत्र पर्याय में उत्पन्न होती है तीन काल की मर्यादा सब ज्ञानमन्दिर में स्थिति को प्राप्त होती है। ज्ञानमन्दिर में सबका ज्ञान हो जाता है। लो, ज्ञानमन्दिर भगवान का। उसमें महल किया है न? महल किया है। आहाहा! क्या नाम दिया? अवबोध शौध, अवबोध शौध। शौध का अर्थ किया। ठीक!

ओहो! सर्वज्ञपर्याय परमात्मा अरिहन्त की या सिद्ध की या तीर्थंकर की कोई भी... लाखों केवली विराजते हैं महाविदेह में और तीर्थंकर सीमन्धर भगवान आदि बीस तीर्थंकर वर्तमान महाविदेह में विराजते हैं। और सिद्ध अनन्त हो गये। सबके केवलज्ञान में एक समय की पर्याय में तीन काल-तीन लोक एक ज्ञानमन्दिर में आ जाता है, स्थिति को प्राप्त होता है। कोई बाकी रहती नहीं। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि यदि ज्ञान में वह पर्याय आ जाये तो ऐसा होता है। परन्तु आ जाये क्या? आती है। केवलज्ञान में आ जाये क्या? ऐसा लिखा है। है न? लिखा है मनोहरलालजी। यदि पहले से जान ले... परन्तु केवलज्ञान में पहले से ही जानता है तीन काल। आहाहा! अरे! भगवान! तुझे खबर नहीं। केवलज्ञान एक गुण की एक अवस्था, एक समय की एक अवस्था। जिसमें तीन काल-तीन लोक ज्ञानमन्दिर में स्थिति प्राप्त होता है।

इतनी पर्याय की प्रतीति करना, उस प्रतीति में कितना सामर्थ्य है! उतनी पर्याय में तीन काल-तीन लोक की विशेष... विशेष... जब जो हो, सब ज्ञानमन्दिर में प्राप्त होती है, वह पर्याय इतनी है, उसका उपाय कितना है? जिसे केवलज्ञान उत्पन्न हो, उसका उपाय कितना बड़ा है? कि शुद्ध उपयोग बड़ा है। अन्दर शुद्ध चैतन्य भगवान अनन्त ऐसे सामर्थ्य का पिण्ड प्रभु, उसमें शुद्ध उपयोग अर्थात् शुद्ध आचरण। पुण्य-पाप के विकल्प से रहित निर्विकल्प के सामर्थ्य से जो आत्मा में रमते हैं, उसको ऐसे केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। समझ में आया?

जिस भूमि में रमते हैं, वह भूमि—द्रव्य कितना सामर्थ्यवाला! जिस भूमि के ऊपर रमते हैं शुद्ध उपयोग से लीन, उस भूमि की सामर्थ्य कितनी? अनन्त-अनन्त जिसका सामर्थ्य है। वस्तु का स्वभाव एक-एक का अनन्त सामर्थ्य है। एक-एक गुण का, पर्याय का इतना सामर्थ्य, गुण का इतना सामर्थ्य। तो अनन्त गुण का एकरूप, उसका कितना सामर्थ्य, उसका स्वीकार प्रतीति में आ जाये और सम्यक् न हो, (ऐसा) तीन काल में होता नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! और भगवान ने ज्ञान में भी ऐसा ही देखा है। समझे? कि हमारी अरिहन्त की पर्याय की प्रतीति, उसको द्रव्य की ओर झुकने से आती है। आहाहा! समझ में आया? कठिन धर्म, भाई! ऐसा वीतरागी धर्म वीतराग के जैन का धर्म ऐसा होगा? जैन में तो रात्रि में नहीं खाना, आलू नहीं खाना,

फलाना करना, ऐसा धर्म सुना था अभी तक। ऐई! भगवानजीभाई! परन्तु ऐसा तो कुछ आया नहीं। यह एक घण्टा हो गया तो भी। आलू नहीं खाना और रात्रि में नहीं खाना, यह तो कुछ आया नहीं। अब सुन न! खा कौन सकता है? और छोड़ कौन सकता है? तुझे खबर नहीं। वह तो परद्रव्य वस्तु है। ज्ञान जाने कि यह चीज़ है और वह जगत की पर्याय उसमें अपने से होती है, मुझसे नहीं। मैं उसकी पर्याय छोडूँ। तो क्या उसकी पर्याय यहाँ आती है तो छोड़ने की ताकत उसमें है? मैं उस पर्याय को छोडूँ और उस पर्याय को ग्रहण करूँ, वही मिथ्यात्वभाव है। क्योंकि उसकी ज्ञान पर्याय में तो जानना, (जो) नहीं आया, और आया, (उसको) जानने का स्वभाव है। उसके उपरान्त उसने छोड़ दिया, मैं छोडूँ, वह ग्रहण करूँ। मिथ्यादृष्टि को तत्त्व की यथार्थ की प्रतीति है नहीं। भगवानजीभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : तीन काल में बदलता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन काल में बदले (नहीं)। बदले क्या? केवली बदलते होंगे? लोगों को न बैठे और न माने, इसलिए कहीं वस्तु बदल जाती होगी? ओहोहो! गजब बात करते हैं! ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। है न नाम ऊपर? ज्ञान के भाव का कथन। ज्ञान का तत्त्व कितना है। समझे? इतना भाव भरा है।

एक ज्ञान का भाव इतना पर्याय का कि तीन काल-तीन लोक को मानो वर्तमान में हों न सब, ऐसे जान लेता है। अनन्त काल पहले सिद्ध हुआ, वह भी वर्तमान ज्ञान में ऐसा आ गया कि जैसे ये अभी सिद्ध हुए वर्तमान, ऐसा ज्ञान में आ जाता है। अनन्त काल बाद सिद्ध होगा, वह भी वर्तमान में ऐसा जानता है (कि) यह पर्याय वहाँ अनन्त काल के बाद होगी, यहाँ वर्तमान में जानते हैं। और ऐसे न जाने तो एक समय का पूर्ण ज्ञान, उसमें पूर्ण सामने वर्तमान में निमित्त पूर्ण होना चाहिए। भूत का, भविष्य का कैसे आया? एक समय में जब सर्वज्ञपद हुआ, एक समय में, तो सामने चीज़ भी एक समय में सामने पूरी है, तो पूरी निमित्त में है, पूरी है (और) पूरी जानते हैं।

वर्तमान में जाने और भविष्य की पर्याय बाद में होगी, (तब जानेंगे), ऐसा निमित्त बने? ऐसा निमित्त होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। लोकालोक निमित्त है न केवलज्ञान में। और लोकालोक में ज्ञान निमित्त है। तो निमित्त का अर्थ क्या? भगवान

ने सर्वज्ञपर्याय अपने शुद्ध उपयोग से प्रगट किया, लोकालोक वर्तमान में... वह ज्ञान वर्तमान है, उसमें वर्तमान में सारी चीज़ निमित्त है। वर्तमानवत् सब निमित्त है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसको वर्तमानवत् जाने। और दृष्टान्त दिया न कि वर्तमान जानते हैं न? पर्याय में जानते हैं तो वर्तमान एक समय की पर्याय है न? पूरा जानते हैं न? तो उसको उपादान अपनी पर्याय पूरा जानता है तो सामने निमित्त भी वर्तमान में पूरा होना चाहिए न? भविष्य-भूत की बात यहाँ क्या है? आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! समझ में आता है या नहीं?

ज्ञानमन्दिर में स्थिति को प्राप्त होती हैं। देखो! ज्ञानमन्दिर में घुस जाती है। देखो! है न? ओहोहो! **'एवावबोधसौधस्थितिमवतरन्ति'** है न? स्थिति। वह अवतरित होती है, उपजती है। ऐसे आ जाती है, एक समय में। आहाहा! उसके आनन्द का क्या कहना, उसकी शान्ति का क्या कहना! शान्ति अर्थात् चारित्र। क्या कहना? समझ में आया? एक समय में भगवान की प्रतीति करना, उसका क्या कहना! और उस प्रतीति बिना जो कुछ करे, वह सब बिना एक के शून्य है। समझ में आया? एक के बिना शून्य। बिन्दु-बिन्दु। बिन्दु की संख्या क्या? करोड़ बिन्दु हो तो एक होता है? ऐसे भगवान केवलज्ञान की एक समय की पर्याय में इतना देखते हैं वर्तमानवत्। ओहो! उसकी गति निर्विकल्प दृष्टि स्वभाव में जाये, तब उसकी प्रतीति होती है। क्योंकि वह पर्याय निर्विकल्प है, वीतरागी पर्याय है और शुद्ध उपयोग से प्राप्त होती है। तो जब वह दृष्टि हुई तो दृष्टि भी निर्विकल्प हो, तब द्रव्य की ऐसी प्रतीति होती है। इतना सामर्थ्यवाला अपना द्रव्य, वह राग की अपेक्षा छोड़कर यदि स्वभाव का आश्रय ले, राग का विकल्प न रहे, तब निर्विकल्प दृष्टि में ऐसी प्रतीति आती है। समझ में आया? गजब बात है!

यह (तीनों काल की पर्यायों का वर्तमान पर्यायों की भाँति ज्ञान में ज्ञात होना) अयुक्त नहीं है;... वह तो युक्त है, अयुक्त है नहीं। उसको सिद्ध करेंगे, दृष्टान्त देकर.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १२, गुरुवार, दिनांक ०३-१०-१९६८
गाथा - ३७, ३८ प्रवचन - ३१

प्रवचनसार, ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। ३७ गाथा चलती है। एकड़ा। है न? ५३ पृष्ठ है न? हिन्दी। हिन्दी चलती है न। हिन्दी में ५३ है। गुजराती में ५४। यह तो पृष्ठ का अन्तर है। देखो, क्या चलता है? कि इस आत्मा का ज्ञानस्वभाव है। यह ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है। तो आत्मा का स्वभाव मुख्यरूप से ज्ञान है। दूसरे अनन्त स्वभाव साथ में हैं। परन्तु असाधारण परमभाव ऐसा आत्मा का ज्ञानस्वभाव, उसकी अन्तर्दृष्टि करके शुद्ध उपयोग का अन्तर आचरण करके ज्ञान की पर्याय की पूर्णता—केवलज्ञान जो प्राप्त होता है, उसकी सामर्थ्यता कितनी है, उसका वर्णन करते हैं। समझ में आया? शुद्ध उपयोग की प्रशंसा करते हुए शुद्ध उपयोग के फल की प्रशंसा की। आत्मा... मुनिपना है, वह शुद्ध उपयोग है, चारित्र है, वह शुद्ध उपयोग है। समझ में आया?

आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्यस्वरूप... आत्मा में जो ज्ञानस्वभाव स्वरूप है आत्मा, उसकी जब दृष्टि करते हैं सम्यग्दर्शन, कि मैं ज्ञानस्वरूप शुद्ध आनन्द हूँ, ऐसी दृष्टि होती है, तब निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होता है। सच्चा दर्शन, सच्चा सम्यग्दर्शन। वहाँ से धर्म की शुरुआत होती है। पश्चात् उसमें शुद्ध उपयोग, पुण्य-पाप के परिणाम से रहित शुद्ध—शुभ-अशुभ परिणाम से रहित शुद्ध, ऐसा आत्मा में शुद्धरूपी आचरण की स्थिरता करते हैं, उसका नाम चारित्र है, उसका नाम शुद्ध उपयोग है, उसका नाम साम्य है और उसका नाम मोक्ष का मार्गरूप चारित्र परिणाम है। उस चारित्र परिणाम के फलरूप केवलज्ञान होता है। क्योंकि ज्ञानस्वरूप आत्मा है तो अन्दर चरना—एकाग्र हुआ, तो ज्ञान की पूर्ण पर्याय प्रगट हुई, उसका नाम केवलज्ञान कहा जाता है। कहो, समझ में आया? उस केवलज्ञान में तीन काल की पर्याय जानने में आती है, वह युक्त है, अयुक्त नहीं।

कोई ऐसा कहे कि वर्तमान की पर्याय है तो उसको जानने में आती है, परन्तु भूतकाल की और भविष्यकाल की पर्याय बीत गयी और उत्पन्न हुई नहीं। जो वस्तु में अवस्था होकर बीत गयी, विलय हो गयी और जो अवस्था उत्पन्न हुई नहीं, उसको

केवली कैसे जाने? अथवा ज्ञान की पर्याय उसको कैसे पहुँच जाये? जो वर्तमान में है नहीं, भूतकाल की चली गयी, वर्तमान की है, भविष्य की तो उत्पन्न हुई नहीं। तो कहते हैं, सुन तो सही! ऐसी सामर्थ्य ज्ञान की है कि वर्तमानवत् त्रिकाल पर्याय को जानता है। समझ में आया? ऐसा ही आत्मा का ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव है। पर का करना, पर के समीप जाना या राग का करना, पुण्य, दया, विकल्प व्यवहार का करना, उसका स्वभाव नहीं। समझ में आया?

.... केवलज्ञान उत्पन्न होता है। उस केवलज्ञान की एक समय की अवस्था में... ऊपर आया है। **(तीनों काल की पर्यायों का वर्तमान पर्यायों की भाँति ज्ञान में ज्ञात होना)...** ज्ञान में ज्ञात होना **अयुक्त नहीं है;...** यहाँ केवलज्ञान की पर्याय कितनी सामर्थ्यवाली है, वह सिद्ध करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य जंगलवासी मुनि परमात्मा के पास गये थे। आठ दिन रहे। देखो! परमात्मा की बात लेकर आये हैं। समझ में आया? जगत को सन्देश देते हैं कि प्रभु! तुम तो आत्मा हो और आत्मा में तो केवल ज्ञानशक्ति सम्पूर्ण पूर्ण पड़ी है। उसकी अन्तर दृष्टि करके, स्वरूप रमणता करके हमने साम्यभाव उत्पन्न किया है। और उस साम्यभाव से हमको केवलज्ञान प्राप्त होगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और उस केवलज्ञान की पर्याय में तीनों काल की पर्याय जानने में आती है, वह युक्त ही है, उचित है; अयुक्त है नहीं।

उसका दृष्ट के साथ... देखो! **(जगत में जो दिखाई देता है—अनुभव में आता है, उसके साथ) अविरोध है।** जगत में भी दिखने में आता है, उसके साथ वह केवलज्ञान की एक समय की पर्याय तीन काल को जाने, उसमें विरोध नहीं, अविरोध है। कैसे? कि **(जगत में) दिखाई देता है कि छद्मस्थ के भी,...** अल्पज्ञ प्राणी को भी। है न? अल्पज्ञ—थोड़ा ज्ञान है, पूर्ण सर्वज्ञ नहीं, ऐसे अल्प ज्ञान को भी **जैसे वर्तमान वस्तु का चिन्तवन करते हुए...** ज्ञान उसके वर्तमान में जैसे कोई चीज़ देखता है, तो ज्ञान उसके आकार का अवलम्बन करता है। जैसी उसकी अवस्था है, वैसा यहाँ ज्ञान होता है। अवलम्बन करता है अर्थात् वह निमित्त है।

उसी प्रकार भूत और भविष्यत वस्तु का चिन्तवन करते हुए... अल्पज्ञ प्राणी।

समझ में आया? आटा है आटा, देखो! एक आटा है न? आटा की रोटी होनेवाली है रोटी। ऐसा लिया। उस समय ख्याल में आ गया कि वर्तमान तो यह पर्याय है। समझ में आया? चिन्तवन में आकार ख्याल में आया वह। और यह आटा की भूत की पर्याय गेहूँरूप थी, वह भी ख्याल में आ गया और वह पर्याय अभी रोटीरूप हो जायेगी, वह भी ख्याल में आ गया। देखो, ख्याल आता है या नहीं? ऐई! देवानुप्रिया! ज्ञानचन्दजी! ख्याल में आया या नहीं? एक साथ एक समय में तीन काल, देखो। क्या कहते हैं वह? गोयणा कहते हैं हमारे वह। आटा बहुत होता है, उसमें से थोड़ा निकालते हैं। क्या कहते हैं तुम्हारे? लोया, इतना थोड़ा। वह आकार ख्याल में आया वर्तमान देखो! और उसके साथ वह पहले आटा था, ऐसी पर्याय नहीं थी। आटा की पर्याय थी। यह तो लोया हुआ है। वह भी ख्याल में आ गया है। वर्तमान आ गया है। और यह अभी रोटी होगी, अभी रोटी का ऐसा आकार होगा, वह भी ज्ञान में तीन काल का ख्याल में आ गया।

ऐसे कुम्हार। यह तो रोटी से बात ली। हमारे नारणभाई यह दृष्टान्त हर समय देते थे। नारणभाई यह दृष्टान्त देते थे। इसलिए पहले यह दृष्टान्त आया। तीन काल का ख्याल आता है या नहीं? ऐई! जेठालालभाई! और जिसमें आत्मा में वर्तमान पर्याय का ख्याल आया और पूर्व की एक समय की पर्याय का ख्याल आया और भविष्य की एक समय की (पर्याय का ख्याल आया)। जिसको भूत की, भविष्य की एक समय मिलाकर ख्याल आता है, उसको अनन्त काल में भविष्य का अनन्त काल ख्याल में आये बिना रहता ही नहीं। समझ में आया? ज्ञान में... यह तो कहे दृष्ट में दिखाते हैं न? कुम्हार लो। मिट्टी है मिट्टी। मिट्टी का ख्याल है न? तो पहले वहाँ थी खान में। उस पर्याय का ख्याल है या नहीं? यह पूर्व में यह थी। पर्याय में ऐसा ख्याल आया, वर्तमान आया है। वर्तमान वह आकृति ख्याल में आ गयी है। वह वर्तमान मिट्टी का पिण्ड होता है पिण्ड, वह भी ख्याल आया। और पिण्ड में से घड़ा होगा। अभी आकृति बदल जायेगी, वह भी वर्तमान में ख्याल आ जाता है। भगवानजीभाई! ख्याल आता है या नहीं?

अरे! कपड़े का थान। तुम्हारा क्या है? कपड़े का व्यापार है या नहीं? कपड़े का

व्यापार है न? प्रेमचन्दभाई! यह कपड़ा है न? थप्पी पड़ी है पाँच वार की। लाओ... लाओ। तब ख्याल में आ गया कि वह वहाँ है तो यहाँ आयी। अब यहाँ आकर खुलेगी। बताने को ऐसे पट-पट खोल देते हैं न? वह ख्याल आता है या नहीं? वर्तमान समय में उसकी पर्याय भूत की, वर्तमान और भविष्य की (ख्याल में) आती है, परन्तु उसने विचार किया नहीं। समझ में आया? तो अल्पज्ञ को भी वर्तमान और भूत-भविष्य का ख्याल आता है, तो सर्वज्ञ की पर्याय की बात क्या कहना? ऐसा कहते हैं। दृष्ट के साथ देखने में आता है, ऐसा उसमें युक्तपना दिखता है, उचितपना दिखता है दृष्ट में से। समझ में आया? अयुक्त तो है नहीं। यह कहा, देखो!

उसी प्रकार भूत और भविष्यत वस्तु का चिन्तवन करते हुए (भी) ज्ञान उसके आकार का अवलम्बन करता है। करता है या नहीं? आहाहा! गेहूँ लिया, लो। दस सेर गेहूँ। गेहूँ कहते हैं? क्या कहते हैं? गेहूँ। ऐसा दस सेर लिया। तो ख्याल आया कि पहले वह पर्याय वहाँ थी, अब यहाँ आयी और अब आटा होगा। आटा की पर्याय, अभी आटा होगा, ऐसा ख्याल में है या नहीं वर्तमान में? समझ में आया? ऐसे कपड़ा। कपड़ा का टुकड़ा लो। टुकड़ा का ख्याल ऐसा है कि पहले वह कपड़ा रुई की पर्याय थी। रुई की अवस्था थी। रुई-रुई। अब यह अवस्था हुई। अभी कपड़ा बनेगा, ऐसा पहनाव आदि। वह भी वर्तमान पर्याय वर्तमान काल में दृश्य में भी अल्प ज्ञानी को भी तीन काल का ज्ञान का ख्याल अल्प समय पूर्व का और भविष्य का मिलाकर आता है। तो थोड़ा समय जिसको मिलाया भूतकाल और भविष्य का, (उसको) त्रिकाल मिल जाता है, उसमें क्या है? समझ में आया?

लोगों को केवलज्ञान क्या है, (यह खबर नहीं)। वह एक समय में तीन काल-तीन लोक (जाने)। ओहोहो! समय एक और तीन काल। भविष्य में... कोई प्रश्न करते थे। धीरुभाई गये? धीरुभाई प्रश्न करते थे। बुद्धि है न! अपने धीरुभाई मास्टर। वह कहे कि भविष्य की पर्याय निश्चित हो गयी या नहीं कि भविष्य की पर्याय यह है यहाँ? भविष्य की पर्याय। कहा, भविष्य की पर्याय अनन्त है, ऐसा ख्याल आया। अन्तिम यह है, ऐसा ख्याल नहीं आया। अन्तिम है नहीं तो ख्याल कहाँ से आवे? क्या कहा, समझ

में आया ? तीन काल की पर्याय का ख्याल आया। प्रश्न था। बुद्धिवाले हैं न, तो तर्क तो उठे। तीन काल की पर्याय तो तीनों काल की पर्याय यहाँ ख्याल में आ गयी कि यह यह है। परन्तु यह है तो वहाँ अन्त आ गया। ऐसा अन्त है नहीं। तीन काल भविष्य की... भविष्य की... भविष्य की... भविष्य की... भविष्य की... ऐसा। परन्तु भविष्य में अन्तिम है तब तो (अनन्त) कहाँ रहा ? भविष्य की अन्त बिना की पर्याय है, ऐसे अन्त बिना की है, ऐसा ज्ञान में आ गया। समझ में आया ? क्योंकि द्रव्य और पर्याय आगे-पीछे है नहीं। द्रव्य भी अनादि का है और पर्याय भी अनादि है। कि भाई ! पहले द्रव्य और बाद में पर्याय, ऐसा है ? वस्तु है, पर्याय भी है, सामान्य है, विशेष भी है। तो ऐसा अनादि से है सामान्य-विशेष, अनन्त काल सामान्य-विशेष है। समझ में आया ? सारा ख्याल आ जाता है सबका। जैसा है, ऐसा चक्कर का ख्याल आ जाता है। तो आ गया ख्याल कि वहाँ भविष्य का अन्त आ गया, ऐसा है नहीं। भविष्य का अन्त है नहीं, ऐसा ख्याल में आया है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात, भाई !

सर्वज्ञ की पर्याय इतनी सामर्थ्यवाली है, यह निःशंकपने शंका छोड़कर जानना, यह कोई अलौकिक बात है। ऐसी निःशंक श्रद्धा (कि) उस समय की पर्याय में इतनी सामर्थ्य है, वह पर्याय को धरनेवाला द्रव्य भगवान आत्मा है। ऐसी द्रव्य की प्रतीति बिना उस पर्याय की ऐसी प्रतीति यथार्थरूप से, निःशंकरूप से नहीं आती। समझ में आया ? क्योंकि जो ज्ञान में वह विषय ख्याल में न आया, ख्याल में नहीं आया। ख्याल में आये बिना प्रतीति कैसी ?

ओहो ! अन्तरहित पर्याय की शुरुआत। पहली पर्याय है कोई ? पहली क्या, समझे ? शुरु की कोई पर्याय है ? शुरु है ? शुरु कहाँ से आया ? द्रव्य भी अनादि है और पर्याय भी अनादि है। और द्रव्य भी अन्तरहित ऐसा है और पर्याय भी ऐसी की ऐसी है। देखो तो सही ! और अपना भी अनादि-अनन्त है या नहीं ? दूसरा एक ओर रखो। अपनी पर्याय भी आदिरहित है और यह पर्याय भी अन्तरहित ऐसी की ऐसी चलेगी। तो ऐसा ज्ञान में आता है या नहीं ? आहाहा ! बात ऐसी है।

यह ज्ञानतत्त्व का कथन करके आचार्य ने द्रव्य के स्वभाव का कितना सामर्थ्य

है! एक पर्याय का इतना सामर्थ्य! तो गुण का क्या कहना और द्रव्य का तो क्या कहना!! भाई! महाप्रभु है वह तो। ओहोहो! एक समय में तीन काल-तीन लोक। देखो! एक ओर तीन काल-तीन लोक और एक ओर एक समय की पर्याय, एक ही समय की पर्याय। समझ में आया? और उस समय की पर्याय में केवलज्ञान में तो अनन्त केवली जानने में आये, अनन्त सिद्ध आये, अनन्त निगोद आया, अनन्त निगोद में सर्वज्ञस्वभाव है, एक-एक का सर्वज्ञस्वभाव है, ऐसा अनन्त आत्मा का ज्ञान, ज्ञान में आया है। समझ में आया? ओहोहो! ऐसी पर्याय की प्रतीति अपने में द्रव्यस्वभाव सन्मुख हो, (तब आती है)। उसकी—द्रव्य की महिमा इतनी है। एक पर्याय की इतनी सामर्थ्य, तो वह पर्याय जहाँ से आयी है, उसके निधान में तो अनन्त-अनन्त शक्ति पड़ी है। ऐसे द्रव्यस्वभाव में दृष्टि देने से उसको नि:शंक सम्यग्ज्ञान का भान होता है। उसमें केवलज्ञान की पर्याय ऐसी है, उसको प्रतीति साथ में आ गयी। जेठालालभाई! आहाहा! यह बात ऐसे ही नहीं करते, मुफ्त में नहीं करते। कुछ धर्म की दृष्टि कराने को है। धर्मदृष्टि अर्थात् स्वभाव। एक समय की पर्याय का इतना स्वभाव, भगवान! कि भूत और भविष्य वर्तमान में नहीं है तो (भी) वर्तमानवत् जानते हैं। समझ में आया?

भूत और भविष्यत वस्तु का चिन्तवन करते हुए (भी) ज्ञान उसके आकार का अवलम्बन करता है। ज्ञान में उस जाति की विशेषता का अवलम्बन आ जाता है। समझ में आया? दूसरी बात। **(२) और ज्ञान चित्रपट के समान है।** अब दूसरा सिद्धान्त सिद्ध करने को (दृष्टान्त देते हैं)। चित्रपट है न चित्रपट? **चित्रपट के समान है। जैसे चित्रपट में अतीत, अनागत और वर्तमान वस्तुओं के आलेख्याकार साक्षात् एक क्षण में ही भासित होते हैं;...** दृष्टान्त देंगे आगे। तीन काल के तीर्थंकरों का स्तम्भ में आकार हो, स्तम्भ में। समझ में आया? चित्रपट में भूतकाल के तीर्थंकर, वर्तमान के तीर्थंकर और भविष्य के तीर्थंकर चित्रपट में हैं। ख्याल में आता है या नहीं साथ में? समझ में आया? यह बाद में दृष्टान्त देंगे।

वर्तमान वस्तुओं के आलेख्याकार... आलेख्य अर्थात् जो कुछ जानने में आये, ऐसी चीज़। **आलेखनयोग्य; चित्रित करनेयोग्य।** जाननेयोग्य। **साक्षात् एक क्षण में ही भासित होते हैं;...** चित्रपट में भूतकाल, वर्तमान और भविष्य सबका चिह्न किया। तीन

काल की चौबीसी तीर्थंकर की प्रतिमा है है न? कैलाश (पर्वत)। भरत चक्रवर्ती ने बनाया न तीन काल के तीर्थंकर का? हम देखते हैं तो वह वर्तमान एक समय में तीनों का ख्याल आ जाता है। समझ में आया?

उसी प्रकार ज्ञानरूपी भित्ति में... जैसे चित्रपट। वैसे ज्ञानरूपी भित्ति में। **(ज्ञानभूमिका में, ज्ञानपट में)...** ज्ञानरूपी चित्रपट में। **अतीत, अनागत और वर्तमान पर्यायों के ज्ञेयाकार साक्षात् एक क्षण में ही भासित होते हैं।** ओहोहो! ज्ञेयाकार, जैसा ज्ञेय भूत, भविष्य और वर्तमान का है, ऐसा पर्यायों का ज्ञेयाकार साक्षात् एक क्षण में ही भासित होता है। ओहोहो! द्रव्य का, पर्याय का—ज्ञान की पर्याय का स्वभाव कितना, यह सिद्ध करते हैं। समझ में आया? निःशंकपने सिद्ध करते हैं। ऐसा ही है। मानना पड़ेगा, ऐसा नहीं। मानो, ऐसा स्वभाव है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी पर्याय में इतना सामर्थ्य! वर्तमान के अलावा भूत, भविष्य का भी वर्तमानवत् ख्याल में आ जाता है। ऐसी एक समय की पर्याय इतनी, तो उस पर्याय को धरनेवाला भगवान द्रव्य कितना? उस द्रव्य पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है, उसमें यह सब पर्याय की प्रतीति उसमें आ जाती है। उसको केवलज्ञान...

श्रीमद् ने कहा है न, श्रद्धा से केवलज्ञान हुआ है। देखो भाई आया। उसमें आया न? श्रीमद् लिखते हैं। श्रद्धा से केवलज्ञान हो गया। आत्मा अकेला ज्ञानरूप है, अकेला ज्ञानरूप है तो ज्ञान का स्वभाव तीन काल-तीन लोक जानने का है, ऐसी अपनी श्रद्धा सम्यक् हुई तो श्रद्धा से केवलज्ञान हुआ। प्रतीति में नहीं था (और प्रतीति हुई कि) यह है, तो प्रतीति में केवलज्ञान हो गया। इच्छा से भी केवलज्ञान है ही। क्योंकि इच्छा में केवलज्ञान की भावना है और ज्ञान में भी केवलज्ञान हो गया। ज्ञान की ज्ञानपर्याय में। यह वस्तु पूर्ण है, केवलमय है। मात्र ज्ञान, मात्र ज्ञान। मात्र ज्ञान पर्याय में अकेला ज्ञान हो जायेगा। राग के अवलम्बन बिना, राग के बिना अकेला ज्ञान हो जायेगा। ऐसे आत्मा में पूर्ण ज्ञानस्वरूप, ऐसी प्रतीति होने से उसको श्रद्धा में केवलज्ञान हुआ। ऐसा कहते हैं। भगवानजीभाई! आता है? पढ़ा नहीं? २८ वर्ष के पत्र में। २८ में। छह बोल का गुजराती पत्र। समझ में आया? देखो, है या नहीं? अन्तिम। कौनसा पृष्ठा है? २८। २८ में है न? ३१३ पृष्ठ है इसमें।

'जो कभी प्रगटरूप से वर्तमान में केवलज्ञान की उत्पत्ति हुई नहीं है। जिसके वचन के विचारयोग से शक्तिपने केवलज्ञान है, ऐसा स्पष्ट जाना है।' जानने की पहली बात कही। 'जिसके वचन विचारयोग से...' भगवान परमात्मा के वचन से (जाना कि) केवलज्ञान की ऐसी शक्ति है। उस विचारयोग से अन्दर विचार करके (जाना कि) शक्तिपने केवलज्ञान है अर्थात् अकेला ज्ञानस्वरूपी आत्मा है, अकेला ज्ञानस्वरूप। उस अपेक्षा से ज्ञान का स्वरूप अकेला है तो केवलज्ञान है, केवल अर्थात् अकेला ज्ञान है और प्रगट होगा तो मात्र केवलज्ञान रहेगा। अपूर्णता और राग रहेगा नहीं। शक्तिपने केवलज्ञान है, ऐसा स्पष्ट जानने में आया है, श्रद्धापने केवलज्ञान हुआ है। देखो! भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति ऐसी अन्दर ज्ञानमूर्ति आत्मा, ऐसा सम्यग्दर्शन हुआ तो श्रद्धापने केवलज्ञान हुआ। श्रद्धा में केवलज्ञान नहीं था, वह केवलज्ञान है—ऐसा श्रद्धापने केवलज्ञान हो गया। समझ में आया? आहाहा!

'और विचारदशा से केवलज्ञान है।' हुआ है। विचारदशा में केवलज्ञान वर्तता है। पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पहले शक्तिरूप कहा, फिर श्रद्धारूप से लिया, फिर ज्ञान से लिया, फिर चारित्र से लेंगे। इच्छादशा से केवलज्ञान हुआ है। इच्छादशा से केवलज्ञान हुआ है। इच्छा में केवलज्ञान की प्रतीति आयी, केवलज्ञान प्रगट होगा, ऐसी इच्छादशा में आ गया है। समझ में आया? विकल्प है तो उस प्रकार का है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बस इतना। आहाहा! समझ में आया? देखो! यह सम्यग्दर्शन का माहात्म्य! और सम्यग्दर्शन में सारा आत्मा अखण्ड परिपूर्ण प्रतीति में आया तो शक्तिपने केवलज्ञान है, ऐसा हुआ, श्रद्धापने केवलज्ञान हुआ, विचारयोग से केवलज्ञान वर्तता है, इच्छायोग से केवलज्ञान वर्तता है।

'मुख्यनय के हेतु से केवलज्ञान वर्तता है।' निश्चयनय की अपेक्षा से तो वर्तमान केवलज्ञान मात्र केवलज्ञान वर्तता ही है। आहाहा! देखो! सम्यग्दर्शन का माहात्म्य! समझ में आया? कि जिसमें सारा आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, ज्ञान का पुंज प्रभु आत्मा प्रतीति में आया तो केवलज्ञान इच्छापने वर्तता ही है। मुख्यनयपने से केवलज्ञान वर्तता है।

वर्तमान वर्तता है। जाओ! समझ में आया? 'वह केवलज्ञान सर्व अव्याबाध सुख को प्रगट करनेवाला जिसके योग से सहजमात्र में जीव पानेयोग्य हुआ, उस सत्पुरुष के उपकार को सर्वोत्कृष्ट भक्ति से नमस्कार हो... नमस्कार हो!' ऐसा बहुमान आये बिना रहता नहीं। विकल्प आये बिना रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा जहाँ भान हुआ कि परमात्मा के प्रति, सन्तों के प्रति बहुमान का विकल्प आये बिना रहता नहीं। ऐसा शुभ व्यवहार आये बिना रहता नहीं। है तो विकल्प, परन्तु आये बिना रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **ज्ञेयाकार साक्षात् एक समय में ही भासित होता है।** लो!

तीसरी बात। **(३) और सर्व ज्ञेयाकारों की तात्कालिकता (वर्तमानता, साम्प्रतिकता)...** वर्तमान **अविरुद्ध है।** ज्ञेय ओर से लेते हैं। **जैसे नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओं के आलेख्याकार वर्तमान ही हैं,...** नाश हुआ और उत्पन्न नहीं है, ऐसी वस्तुओं के आलेख्याकार। वह वर्तमान ही है। वह ज्ञेय भी वर्तमान है, ऐसा कहते हैं अब। **उसी प्रकार अतीत और अनागत पर्यायों के ज्ञेयाकार वर्तमान ही हैं।** आलेख्याकार जैसे वर्तमान बताते हैं न, आलेखने योग्य चीज़। वैसे सारा ज्ञेय भूत और भविष्य का आलेख्याकार वर्तमानवत् ही है। ज्ञान में है और वहाँ भी वर्तमानवत् है, ऐसा कहते हैं अब। आहाहा! अरे! उसको अपने स्वभाव का माहात्म्य क्या है (यह खबर नहीं)। राग का माहात्म्य लो, पुण्य, दया, दान, विकल्प का माहात्म्य। या पुण्य आया शरीर में अनुकूलता। ओहोहो! क्या है? वह तो धूल है, उसमें माहात्म्य क्या आया तुझे? समझ में आया? देवपद मिला। ऐसा पद। समझे?

आगे ४५ (गाथा) में आयेगा वह, 'पुण्यफला अर्हंता।' पुण्यफल अरिहंता नहीं। अरिहन्त का शरीर आदि पुण्यफल, ऐसा कहते हैं। '**पुण्यफला अरहंता**' तो पुण्यफल से अर्हंतपना प्राप्त है सर्वज्ञपना, ऐसा कहते हैं? '**पुण्यफला अरहंता**' पुण्य का फल अरिहन्तों को प्राप्त होता है ऐसा। तब वह लोग कहते हैं कि पुण्य के फल से अरिहन्त होता है। अरे! भगवान! क्या कहते हो? वह तो कहते हैं कि जब तीर्थंकर सर्वज्ञपद प्राप्त हुआ तो पूर्व के पुण्य का फल परम औदारिक शरीर, वाणी—दिव्यध्वनि, चलना, हिलना आदि वह क्रिया पूर्व के पुण्य के फल के कारण प्राप्त होता है। वह तो बाहर की

चीज़ है। समझ में आया? **'पुण्यफला अरहंता'** शब्द आया न! अर्हंता... अर्हंता... अर्हंता... अर्हंता अर्थात? समझ में आया? है न? ४५ (गाथा)।

'पुण्यफला अरहंता' अरिहन्त शब्द पड़ा है न? तो वह पुण्य के फलरूप अरिहन्त भगवान ऐसा नहीं, यहाँ तो अरिहन्त भगवान पुण्यफलवाले हैं, ऐसा कहते हैं। अरिहन्त भगवान को सर्वज्ञपना, वीतरागपना प्राप्त हुआ है, ऐसे भगवान को पुण्य का फल बाहर में क्या है, वह बताते हैं। परन्तु ऊपर लाईन ऐसी है न, **'तीर्थंकृता पुण्यविपाको-ऽकिंचित्कर'** पुण्य का विपाक भगवान को कुछ करता नहीं। कुछ करता नहीं तो वह कहते हैं कि पुण्य का विपाक आत्मा को केवलज्ञान प्राप्त करवाता है। देखो न! है न ज्ञानचन्दजी! ऊपर शब्द है। **'अथैवं सति तीर्थंकृता पुण्यविपाकोऽकिंचित्कर'** पुण्य का फल भगवान को कुछ करता नहीं, ऐसा तो पाठ लिया है। उसकी जगह पुण्य के फल में अरिहन्तपद प्राप्त होता है। क्या कहते हैं? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि सर्वज्ञपद जब प्राप्त हुआ अन्तर में से, तब पूर्व का पुण्य था, उससे क्या हुआ? वाणी है, दिव्यध्वनि है, हिलना है, चलना है—ऐसी उदय की क्रिया है पुण्य से। भगवान को कुछ करती नहीं। भगवान के तो ज्ञान का ज्ञेय है। भगवान के ज्ञान में वह पुण्य का फल समवसरण, वाणी आदि तो ज्ञान का ज्ञेय है। समझ में आया? पुण्यफल से अरिहन्तपद प्राप्त होता है, ऐसा कहा है? ऐसा लिखते हैं पत्रों में। कैसे लिखते हैं? कैसे बोलते हैं, कुछ खबर ही नहीं। उनको, हाँ! ऐसे लिखते हैं तो अज्ञान से लिखते हैं। भान नहीं। यहाँ लेते-लेते वह ४५ गाथा आयेगी देखो!

वह बताते हैं कि आत्मा भगवान अपना निज शुद्धात्मप्रभु, अपनी शुद्धात्मा की अन्तर दृष्टि, ज्ञान, रमणता करने से—निश्चय मोक्षमार्ग की रमणता करने से उसके फलरूप केवलज्ञान प्राप्त होता है। उस केवलज्ञान में अपनी त्रिकाली पर्याय, दूसरे की सबकी पर्याय एक समय में वर्तमानवत् दिखने में आती है। समझ में आया? उसमें भी झगड़ा करे। अर्थ लेते हैं न। क्या? जयधवल। वर्तमान अर्थ है, फिर अर्थ नहीं है। वह तो विद्यमान नहीं है, परन्तु ज्ञान में तो विद्यमानवत् ही है। वत् ही है। सुन न! ओहोहो! कहो, समझ में आया? सर्व अनागत और अतीत पर्यायों के ज्ञेयाकार। सामने हों सामने। सामने भी वर्तमान ही है, ऐसा कहते हैं।

भावार्थ :- केवलज्ञान समस्त द्रव्यों की तीनों काल की पर्यायों को युगपद् जानता है। कहो, भविष्य में होगी, तब जानेंगे ऐसा है केवलज्ञान में? तो सब निश्चय है। भगवान के ज्ञान में तो भविष्य में उस समय में, उस क्षेत्र में, उस काल में, उस निमित्त से अर्थात् निमित्त की उपस्थिति में वह होगी (ऐसा)। सब निश्चित है। भगवान के ज्ञान में तो वह अनिश्चित है नहीं, अनिश्चित है ही नहीं। कहाँ से अनिश्चित हो? सब एक समय में तीन काल जाना, फिर अनिश्चित कहाँ रहा?

मुमुक्षु : अनेकान्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त अर्थात् निश्चित है, अनिश्चित नहीं है, उसका नाम अनेकान्त है। आहाहा! पूर्ण देखा... पूर्ण देखा... भगवान ने तो पूर्ण देखा है। पूर्ण देखा है, ऐसा कहते नहीं। यहाँ तो आत्मा की पर्याय का माहात्म्य बताते हैं। एक समय की पर्याय का... एक समय... आहाहा! प्रगटरूप एक समय की दशा का। भूत, भविष्य को वर्तमानवत् जान लेते हैं, ऐसी तो भगवान तेरी एक समय की अवस्था की सामर्थ्य है। ऐसी सामर्थ्य है। क्या राग तेरी सामर्थ्य है? राग करना, राग छोड़ना, वह तुझमें है? तुझमें तो जानना, देखना से भरा पड़ा भगवान है। वह जानन-देखन स्वभाव भगवान, वह चैतन्यमूर्ति, उसका अनुभव करो, उसकी दृष्टि करो, सन्मुख हो और उसमें लीन हो, वही मोक्ष का मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग है नहीं। समझ में आया? आहाहा! लोगों को बाहर की स्थिति से गड़बड़ हो जाये। बहुत लिखते हैं। बहुत पण्डित नाम धरनेवाले ऐसा लिखते हैं।

यहाँ तो कहते हैं, **केवलज्ञान समस्त द्रव्यों की तीनों काल की पर्यायों को युगपद् (एक समय में) जानता है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि ज्ञान नष्ट और अनुत्पन्न पर्यायों को वर्तमान काल में कैसे जान सकता है? उसका समाधान है कि— जगत में भी देखा जाता है कि अल्पज्ञ जीव का ज्ञान भी नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओं का चिन्तवन कर सकता है,...** चिन्तवन कर सकता है। **अनुमान के द्वारा जान सकता है, तदाकार हो सकता है;...** तीन बोल लिये। समझ में आया? शरीर की अवस्था का ख्याल नहीं है पहले से? लो! पहले अवस्था बालक थी, युवा थी, अभी यह है और बाद में परमाणु पलटकर दूसरी अवस्था हो जायेगी, ऐसा वर्तमान में ख्याल नहीं है? कि

ऐसी-ऐसी अवस्था रहेगी, ऐसा ख्याल है। किसी भी चीज़ को वर्तमान में ख्याल करते कहते हैं कि उसके चिन्तवन में तीन काल आ जाता है। समझ में आया? और अनुमान द्वारा भी जान सकते हैं कि ऐसा होगा, ऐसा हुआ, ऐसा होगा। और **तदाकार हो सकता है;...** उस समय में भी अपने ज्ञान में भी वह आकार है, ऐसा ज्ञान में आ जाता है।

तब फिर पूर्ण ज्ञान नष्ट और अनुत्पन्न पर्यायों को क्यों न जान सकेगा? ज्ञानशक्ति ही ऐसी है... ओहोहो! ज्ञानशक्ति प्रगट की बात है, हों! **कि वह चित्रपट की भाँति अतीत और अनागत पर्यायों को भी जान सकती है...** चित्रपट में दिखता है। सामने देखो। बाहुबलीजी हुए, ऐसे मोक्ष गये, सिद्ध हुए—ऐसा ख्याल में नहीं आता? पाण्डव यहाँ थे। शत्रुंजय, लो। पाण्डव थे। ऐसे पहले राजकुमार थे, दीक्षित हुए और सिद्ध हुए। समझ में आया? परन्तु वह विचार मनन में वह बात लेता नहीं कि क्या केवलज्ञान की सामर्थ्य है! ऐसा ही मान ले कि भगवान ने कहा वह सत्य। भगवान कहे, परन्तु तुझे बैठे बिना भगवान सच है, वह कहाँ है तुझे? वह तो भगवान के घर में भगवान सच्चे हुए। तुझे सच्चा कब होगा? तेरी पर्याय में निःशंकपने केवलज्ञान की पर्याय ऐसी है, उसमें निःसन्देहपने सन्देह बिना तुझे तुझे बैठे, तब तुझे सच्चे भगवान है। तेरे लिये तेरा भगवान तब सच्चा। आहाहा! ...एक समय, एक समय की पर्याय! पूरी बैलगाड़ी भर दी। एक व्यक्ति ऐसा कहता था। कहाँ समा जाना? अरे... परन्तु... आहाहा! समझ में आया?

एक लाख घड़ा पानी का हो, पानी का। जल का, लो। तो वह पानी एकदम सबको कहा छोड़ दो। तो पहले ख्याल में है कि वर्तमान पानी ऐसा था। फिर छोड़ देते हैं धग... धग... डालते हैं न? पहले से ख्याल में है कि अभी ऐसा होगा और पानी ऐसे पसरेगा। पहले से ख्याल नहीं है? समझ में आया? लाख करोड़ लोग हो, करोड़ लोग हो। उसमें कोई भाषण करता हो भाषण। तो करोड़ लोग में ऐसा कहे कि आत्मा परिपूर्ण है। ऐसी भाषा हुई। करोड़ों मनुष्यों को वह ख्याल वर्तमान में है, वर्तमान में है कि आत्मा परिपूर्ण है, ऐसा ज्ञान सबको एक साथ में हो गया। हो गया या नहीं? तो एक सेकेण्ड में भी सारा उसका ख्याल आ जाता है और ऐसी श्रद्धा उसकी रहेगी। समझ में आया? और यह श्रद्धा की शक्ति उसमें थी, परन्तु प्रतीति नहीं करता था, वह भी उसके ख्याल में आ जाता है।

केवलज्ञान की शंका करते थे दरबारीलाल। एक हजार घड़े का पानी एक घड़े में आ जाता है ? अरे ! सुन तो सही ! यहाँ पानी की बात कहाँ है ? वह तो संयोग की बात है। यह बात ख्याल में आ जाती है या नहीं ? सारे अनन्त जीव हैं, वह राग को अपना मानते हैं, राग का एकत्व है, वह मिथ्यात्व है। ऐसी श्रद्धा उसकी थी, वर्तमान है और भविष्य रहेगी, अनन्त प्राणी रहेंगे संसार में, ऐसा ख्याल में नहीं आता है ? ज्ञानचन्दजी ! समझ में आया ? अल्पज्ञान में भी ऐसा ख्याल में आता है, जैसे भूत-भविष्य होगा, ऐसा वर्तमान में ख्याल आता है। आहाहा ! निगोद (में) अनन्त जीव पड़े हैं, कभी त्रस नहीं होंगे, ऐसा ख्याल में नहीं आता ? समझ में आया ? अभी त्रस नहीं, भविष्य में भी त्रस होंगे नहीं, स्थावर रहेंगे और अनन्त काल से स्थावर में पड़े हैं। ऐसा भले सुना। फिर सुनने के बाद ज्ञान में समझ में आया या नहीं ? तो ज्ञान की पर्याय तीनों काल को अवलम्बन करके चिन्तवन करती है, अनुमान करती है और तदाकार होकर ज्ञान में तीनों काल की पर्याय समा जाती है। समझ में आया ?

ज्ञानशक्ति ही ऐसी है कि वह चित्रपट की भाँति अतीत और अनागत पर्यायों को भी जान सकती है और आलेख्यत्वशक्ति की भाँति,... सामने ज्ञेय... ज्ञेय। **द्रव्यों की ज्ञेयत्वशक्ति ऐसी है...** तीन काल के तीर्थंकर सामने लिये तो उसमें भी शक्ति ऐसी है न तीन काल को बताने की ? आता है न ! **उनकी अतीत और अनागत पर्यायें भी ज्ञान में ज्ञेयरूप होती हैं**—वह ज्ञात होती है। तीन काल के ज्ञेय भी ज्ञान में आ जाते हैं। ज्ञान उनको जानता है और ज्ञेय उसमें आ जाते हैं। उसका ज्ञान।

इस प्रकार आत्मा की अद्‌भुत ज्ञानशक्ति... ओहोहो ! देखो ! समझ में आया ? **इस प्रकार आत्मा की अद्‌भुत ज्ञानशक्ति और द्रव्यों की अद्‌भुत ज्ञेयत्वशक्ति...** दोनों ओर लिया। **के कारण केवलज्ञान में समस्त द्रव्यों की तीनों काल की पर्यायों का एक ही समय में भासित होना अविरुद्ध है।** युक्त है, अयुक्त नहीं है। आहाहा ! अपनी ज्ञानपर्याय में, देखो ! भगवान ने पहले से कहा न ! सर्व सिद्धों की हम पर्याय में स्थापना करते हैं। लो ! समयसार शुरु करते हुए (कहा है)। अनन्त केवलज्ञान की पर्याय को एक समय में अल्पज्ञ में हम स्थापना करते हैं। समझ में आया ? राग से भिन्न होकर अपनी ज्ञान की पर्याय में अनन्त केवलज्ञान आया। पर्याय में केवलज्ञान। समझ में

आया ? तो उसकी दृष्टि द्रव्य पर झुक गयी, राग के ऊपर रही नहीं, निमित्त पर रही नहीं। तब अनन्त सिद्धों को अपनी पर्याय में स्थापन कर सकते हैं। स्थापन का अर्थ आदर कर सकते हैं। '**वंदित्तु**' शब्द है न ? अनन्त सिद्ध को तब आदर कर सकते हैं। अन्दर में एकाग्र होकर अनन्त सिद्ध ज्ञेय करनेयोग्य, आदर करनेयोग्य अपनी पर्याय में स्थापन किया तो अनन्त सिद्ध अपनी पर्याय में आ गये। समझ में आया ? अब संसार में राग रहेगा नहीं। आहाहा!

.... आया था न ? आत्मधर्म में है। आत्मधर्म में यह सब रखा है। सब रखा है। विविध ... से रखते हैं। कहो, समझ में आया ? दृष्टान्त लिया था न ? पहले लिया था न राम का। राम-रामचन्द्रजी। रामचन्द्रजी छोटे थे न छोटे, तो रामचन्द्रजी को ऐसी इच्छा हुई कि मुझे चन्द्र को अपनी जेब में रखना है। खिस्सा को क्या कहते हैं ? जेब में। मेरी जेब में चन्द्र को लाओ। यह क्या है ? छोटे थे। पुरुषोत्तम पुरुष हैं। केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जायेंगे, अन्तिम शरीर है। बरामदे पर बैठे थे। राजकुमार पुण्यवन्त शरीर, अन्तिम शरीर। दशरथ ने दीवान को कहा। दीवानजी! पुरुषोत्तम पुरुष रामचन्द्रजी ऐसा क्यों करते हैं ? समाधान करो। अरे! हम राज का समाधान करें और बालक का भी समाधान करें ? क्या है ? क्या है ? बुद्धि तो लगाओ। यह क्या करता है ? क्यों रुदन करता है ? चलो भाई! शान्त हो जाओ। वह चन्द्र है, उसको नीचे उतारने का भाव है। तो एक दर्पण लाये दर्पण। शीशा। ऐसा रखा। बस आ गया। जेब में डाल दिया। चन्द्र अपनी जेब में आ गया। इसी प्रकार सिद्ध अपनी पर्याय में आ गये यहाँ। आहाहा! ज्ञानपर्याय की निर्मलता और अनन्त सिद्ध का जहाँ आदर हुआ, राग नहीं, विकल्प नहीं। परिपूर्ण पर्यायवाले को आदर दिया है लो! आहाहा! गजब काम किया है। कथन की पद्धति कोई अलौकिक पद्धति है। वह यहाँ कहते हैं।

आत्मा की अद्भुत ज्ञानशक्ति और द्रव्यों की अद्भुत ज्ञेयत्वशक्ति के कारण केवलज्ञान में समस्त द्रव्यों की तीनों काल की पर्यायों का एक ही समय में भासित होना अविरुद्ध है। लो।

★ ★ ★

गाथा - ३८

अब ३८। **अब, अविद्यमान पर्यायों की (भी)...** असद्‌भूत का अविद्यमान अर्थ किया है। **अविद्यमान पर्यायों की (भी)...** अर्थात् भूतकाल की और वर्तमान की अविद्यमान है, असद्‌भूत है। **कथंचित् (किसी प्रकार से; किसी अपेक्षा से) विद्यमानता बतलाते हैं:—** नहीं है, वह है—ऐसा बतलाते हैं। आहाहा!

जे णेव हि संजाया जे खलु णट्ठा भवीय पज्जाया।
ते होंति असब्भूदा पज्जाया णाणपच्चक्खा॥३८॥

उसका श्लोक तो इसमें नहीं है। पीछे है हरिगीत। ३८।

जो पर्यायें अनुत्पन्न हैं, होकर भी जो नष्ट हुईं।
अनुपस्थित पर्याय सभी, प्रत्यक्ष ज्ञान में झलक रहीं॥३८॥

गुजराती है। गुजराती बहुत आसान है। समझना चाहे तो समझ सके। समझना चाहे तो। परन्तु पहले से कहे कि नहीं समझ में आता, उसे समझ में आता नहीं।

इसका **अन्वयार्थ :- जो पर्यायें...** ओहोहो! केवलज्ञान की पर्याय तीन काल की बात जानती है, यह सिद्ध करने को कितनी गाथायें ली है!

मुमुक्षु : सब पहलुओं से।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहलुओं से और जैसी है वैसी बराबर उसको आ जाये, ऐसी अपने में बैठी है न ऐसी? लोगों को ऐसी बैठ जाये, ऐसा विकल्प आया है।

जो पर्यायें वास्तव में उत्पन्न नहीं हुई हैं,... भविष्य की पर्याय द्रव्य में उत्पन्न नहीं हुई। **तथा जो पर्यायें वास्तव में उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं,...** उत्पन्न होकर वर्तमान में रही नहीं, नष्ट हो गयी। **वे अविद्यमान पर्यायें ज्ञान प्रत्यक्ष हैं।** ज्ञान में तो प्रत्यक्ष ही है, वर्तमानवत् प्रत्यक्ष है। आहाहा! समझ में आया?

टीका :- जो (पर्यायें) अभी तक उत्पन्न भी नहीं हुई... जो अवस्था परमाणु की, आत्मा (आदि) की छहों द्रव्यों की **अभी तक उत्पन्न भी नहीं हुई और जो उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं, वे (पर्यायें)...** उत्पन्न होकर नष्ट हो गयी है। अर्थात् यही बात...

उत्पन्न और नष्ट हो गयी। अब रही कहाँ? उसमें ऐसा लिखा है। परन्तु नष्ट हो गयी अर्थात् वर्तमान नष्ट हो गयी, अन्दर तो घुस गयी है। समझ में आया? शब्द ऐसा है। **जो (पर्यायें) अभी तक उत्पन्न भी नहीं हुई और जो पर्यायें वास्तव में उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं, वे (पर्यायें) वास्तव में अविद्यमान होने पर भी,...** वह अवस्था वास्तव में वर्तमान में न होने पर भी। **ज्ञान के प्रति...** यहाँ जोर है। समझ में आया?

ज्ञान के प्रति नियत होने से (ज्ञान में निश्चित—स्थिर—लगी हुई होने से,... बराबर निश्चित—स्थिर लगी हुई होने से... **ज्ञान में सीधी ज्ञात होने से)...** उसका अर्थ किया। नियत होने से उसकी व्याख्या। भगवान आत्मा ज्ञान की पर्याय में भूत और भविष्य की पर्याय वर्तमान न होने पर भी नियत है। देखो! निश्चित है, लगी हुई है, स्थिर है, ज्ञान में चिपक गयी है। आगे आयेगा न, वह बोल नहीं आता? लगी है न वह आ गया। लगी है, वह आ गया। समझ में आया? आहाहा! **ज्ञान में सीधी ज्ञात होने से) ज्ञानप्रत्यक्ष वर्तती हुई,...** देखो! ज्ञान में तो प्रत्यक्ष है, वहाँ परोक्ष है नहीं। भविष्य में होगी, तब यहाँ जानते हैं, ऐसा है ज्ञान में? आहाहा! अहो! दिव्यज्ञान की महिमा क्या! यह महिमा कैसे करना? और ऐसा न जाने तो उसे दिव्यज्ञान कहे कौन? एक समय में तीन काल वर्तमानवत् न जाने तो उसको दिव्यज्ञान कहे कौन? अर्थ में तो ऐसा लिया है न भाई ने! उसको ज्ञान भी कौन कहे? वह आयेगा इसमें। उसको ज्ञान भी कौन कहे? यह इसमें आयेगा। उसमें आ गया। ज्ञान भी कौन कहे? जयसेनाचार्य की टीका में दो बार लिखा है। इसमें तो नहीं है। यह तो हिन्दी है न। हिन्दी में नहीं है। संस्कृत। इसमें भी आता है। ज्ञान भी कौन कहे? यह तो नया है न, यह पढ़ा नहीं है। ४२। यहाँ इसमें लेना है न। वह क्षायिकज्ञान। बस वह। 'ज्ञायक ज्ञान नहीं है अथवा उससे ज्ञान ही नहीं।' वह। यह तो पहले में सुधारा है। चिह्न किया है। ४२ गाथा में, उसे ज्ञान ही नहीं है। ४२ गाथा। ४ और २। उसकी टीका की तीसरी पंक्ति। **उसे ज्ञान ही नहीं है।** आहाहा! यहाँ नहीं, उसको परिपूर्ण को ही जीव कहते हैं। निश्चय जीव, आता है न संस्कृत में आता है। मति-श्रुतज्ञानी, वह तो व्यवहार जीव है, व्यवहारजीव है। समझ में आया? क्योंकि वस्तु का जीवन जो पूर्ण ज्ञान है, वही उसका पूर्ण जीवन है। पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द, वही जीव का पूर्ण जीवन है। वही निश्चय से जीव है। समझ में

आया ? आहाहा ! अल्प ज्ञान से जीता है, वह क्या निश्चयजीव है ? वह तो व्यवहारजीव है। ओहोहो ! ऐसा है संस्कृत में जयसेनाचार्य की टीका में। समझ में आया ?

ज्ञानप्रत्यक्ष वर्तती हुई,... यह अर्थ किया '**असब्भूदा पज्जाया णाणपच्चक्खा**' चौथे पद का अर्थ है। भूत और भविष्य की पर्याय ज्ञान में तो प्रत्यक्ष ही है। समझ में आया ? **पाषाण स्तम्भ में...** पाषाण का स्तम्भ होता है न पत्थर का। **उत्कीर्ण...** उसमें खुदा हुआ। कोरी समझते हो ? क्या कहते हैं ? खुदा हुआ, खुदा हुआ (उत्कीर्ण)। **भूत और भावी देवों...** भूतकाल के तीर्थंकर और भविष्य के तीर्थंकर। देखो ! दृष्टान्त कैसा लिया है ! **देवों (तीर्थंकरदेवों) की भाँति...** भूतकाल के तीर्थंकर का चित्र हो और भविष्य का चित्र हो, वर्तमान में प्रत्यक्ष देखते हैं। समझ में आया ? भूतकाल के अनन्त तीर्थंकर। थोड़े... भले थोड़े। भविष्य के थोड़े। धारावाही। सब जैसे एक समय में उस पत्थर के स्तम्भ में उत्कीर्ण हुए दिखने में वर्तमान में ही दिखते हैं। ऐसे ज्ञान की पर्याय में तीन काल की पर्याय वर्तमान में प्रत्यक्ष दिखती है।

ज्ञान की पर्याय पूर्ण की ही तकलीफ है सबको। सर्वज्ञपद का। एक-एक सर्वज्ञ, एक-एक सर्वज्ञ (ऐसे)। अनन्त मिलकर सर्वज्ञ हो। तो तुझे द्रव्य की पर्याय का सामर्थ्य और द्रव्य कितना अखण्ड है, उसकी तुझे खबर नहीं। समझ में आया ? सब मिलकर एक आत्मा। कहते हैं न अद्वैत आदि ? एक आत्मा है, सर्वव्यापक है। ऐसा है ही नहीं। बड़ी झूठी दृष्टि है, विपरीत दृष्टि है। निश्चयाभास बड़ी दृष्टि विपरीत। समझ में आया ? भगवान एक ही है। भगवान व्यापक एक ही परमात्मा है। ऐसा नहीं है। तेरी ज्ञान की परिपूर्ण पर्याय ही लोकालोक को जाने, ऐसी सामर्थ्य तुम परमात्मा पूर्ण हो। अप्प सो परम-अप्पा। आत्मा सो ही परमात्मपने परिणमित हो जाता है। अप्पा सो परमात्मा तो है ही शक्तिरूप से। द्रव्यरूप से शक्तिरूप से तो आत्मा परमात्मा ही है। पर्याय में परिणमित हो जाता है तो सर्वज्ञ हो जाता है अन्तर्मुख आश्रय करके। समझ में आया ? ओहो !

कहते हैं कि **स्तम्भ में उत्कीर्ण,** खुदा हुआ **भूत और भावी देवों...** नीचे लिखा है न प्रत्यक्ष ! उसका अर्थ। प्रत्यक्ष है न ? ज्ञानप्रत्यक्ष वर्तता है, उसका अर्थ किया। **अक्ष के प्रति—** अक्ष अर्थात् ज्ञान अथवा आत्मा दोनों। अक्ष अर्थात् ज्ञान-प्रति अथवा आत्मा-

प्रति। **अक्ष के सन्मुख—**ज्ञान-सन्मुख अथवा आत्मा-सन्मुख। **अक्ष के निकट में—** ज्ञान में नजदीक में अथवा आत्मा के नजदीक में। **अक्ष के सम्बन्ध में...** ज्ञान के सम्बन्ध में और आत्मा के सम्बन्ध में। ऐसा ज्ञान आत्मा है, लो! समझ में आया? प्रत्यक्ष। अक्ष अर्थात् ज्ञान और आत्मा। और प्रति। अक्ष के प्रति। ज्ञान और आत्मा के प्रति। ज्ञान और आत्मा के सन्मुख, ज्ञान और आत्मा के निकट में, ज्ञान और आत्मा के सम्बन्ध में हो। उसको ज्ञानप्रत्यक्ष कहते हैं। आहाहा!

वस्तु का अस्तित्व इतना सिद्ध करते हैं। यह तो वस्तु कैसी अस्ति है, वह कुछ नहीं। विकल्प छोड़ो, यह छोड़ो, वह छोड़ो। अब एक ऐसा निकला है। कौन जाने कैसे काल में... एक तो प्राणी ऐसे विचारे और उनको सुनानेवाला ऐसा मिले। विकल्प छोड़ो, निर्विचार हो जाओ। परन्तु किसका निर्विचार? पर का विचार छोड़ दे। स्व का विचार अस्ति क्या है वस्तु? द्रव्य कैसा है? उसकी शक्ति कैसी है? और पर्याय पूर्ण हो तो कितनी अस्ति है? ऐसा ज्ञान हुए बिना स्वभावसन्मुख होगा नहीं और विकल्प का नाश कभी होगा नहीं तीन काल में। वह कहते हैं न, विकल्प शून्य हो जाओ शून्य। शून्य हो जायेगा जड़। भगवान आत्मा अशून्य अर्थात् भरा पड़ा है परिपूर्ण, द्रव्य से, गुण से और पर्याय से। समझ में आया? आहाहा!

तत्त्वानुशासन में कहा है न? भाई! हम अरिहन्त का ध्यान करते हैं। तुम अरिहन्त तो नहीं हो। अरिहन्त तुम हो नहीं और तुम ध्यान करते हो तो तुम्हारा ध्यान झूठा है। नहीं, झूठा नहीं है। हमारा सच्चा ध्यान है। क्यों? कि हम अरिहन्त होनेवाले हैं, केवलज्ञान तो होगा ही हमको, तो उस केवलज्ञान की पर्याय हमारे पास पड़ी है अन्दर में। तो हम उस अरिहन्त का ध्यान करते हैं। अरिहन्त परमात्मा मैं हूँ, उसका ध्यान करता हूँ। और वह ध्यान निष्फल नहीं है। शान्ति आती है, श्रद्धा में शान्ति आती है तो वह सफल है। तो अरिहन्त का ध्यान झूठा है और अरिहन्त नहीं है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

तत्त्वानुशासन में लिया है कि भाई! अरिहन्त का ध्यान करते हो, अरिहन्त तो हो नहीं तुम। कहाँ से ध्यान किया तुमने? कि सुन तो सही। है। हम अरिहन्त की पर्याय

प्राप्त करनेयोग्य तो हैं। केवलज्ञान प्राप्त करेंगे ही, प्राप्त करेंगे हम तो। वह पर्याय कहाँ से आयेगी? बाहर से आयेगी? राग में से आयेगी? निमित्त में से आयेगी? कहाँ से आयेगी? वह पर्याय मेरी शक्ति में अन्दर पड़ी है। तो मैं अरिहन्त हूँ। और मैं अरिहन्त का ध्यान करता हूँ तो मुझे शान्ति, श्रद्धा प्राप्त होती है तो निष्फल नहीं, सफल है। मेरा अरिहन्त का ध्यान सफल है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वे अरिहन्त नहीं, हों! भगवान का ध्यान नहीं। ऐई! आहाहा! आचार्यों ने तो काम किया है! दिगम्बर सन्तों ने गजब काम किया! बहुत सादी भाषा में, सरल भाषा में ऐसा तत्त्व को समझाया है, ऐसा तत्त्व को समझाया है, ऐसी बात कहीं है नहीं। समझ में आया? श्वेताम्बर शास्त्र वाँचे लाखों-करोड़ों, परन्तु यह बात कहीं है नहीं। ऐसी चीज़ है। ओहोहो!

अरिहन्त का ध्यान करते हो? अरिहन्त तुम हो? हाँ। अरिहन्त की पर्याय का अस्तित्व हमारे प्राप्त होगा या नहीं? हमको होगा। तो कहाँ से होगा? बाहर से आती है कोई पर्याय? हमारे द्रव्य में पड़ा है अरिहन्तपद। समझ में आया? हम उसकी दृष्टि लगाकर ध्यान करते हैं तो हमको शान्ति मिलती है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान, शान्ति मिलती है तो सफल हुआ अरिहन्त का ध्यान हमको। निष्फल है नहीं। आहाहा! देखो तो सही। समझ में आया? गजब बात है!

यहाँ तो कहते हैं कि **(तीर्थंकरदेवों) की भाँति...** तीन काल के तीर्थंकर जैसे चित्रित किये हों पत्थर में और ख्याल में आ जाता है, ऐसे **अपने स्वरूप को अकम्पतया (ज्ञान को) अर्पित करती हुई (वे पर्यायें) विद्यमान ही हैं।** तीन काल के जैसे तीर्थंकर विद्यमान हैं, ऐसा ख्याल में है, वैसे पर्याय विद्यमान है, ऐसा हमारे ख्याल में आता है। अकम्पतया ऐसे। वह **अकम्पतया (ज्ञान को) अर्पित करती हुई...** आहाहा! भूत और भविष्य की अवस्था—पर्याय ज्ञान में अर्पित करती है। ऐसा **विद्यमान ही है।** ऐसा ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य। केवलज्ञान होगा हमारा तो ऐसा होगा, ऐसा हमको वर्तमान से प्रतीति और अनुभव करते हैं और तुमको भी बताते हैं कि ऐसा द्रव्य का स्वभाव तुम समझो और श्रद्धा करो। समझ में आया? इसलिए कहने में आया है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)